

श्री
धवला-टीका-समन्वितः

षट्खंडागमः

जीवस्थान-क्षेत्र-स्पर्शन-कालानुगम

खंड १

भाग ३, ४, ५.

पुस्तक ४



सम्पादक
हीरालाल जैन

श्री भगवत्-पुष्पदन्त-भूतबलि-प्रणीतः

षट्खंडागमः

श्रीवीरसेनाचार्य-विरचित-ध्वला-टीका-समन्वितः ।

तस्य

प्रथम-खंडे जीवस्थाने

हिन्दीभाषानुवाद-तुलनात्मकटिप्पण-गणितोदाहरण-प्रस्तावनानेकपरिशिष्टैः सम्पादिताः

क्षेत्र-स्पर्शन-कालानुगमाः ४

सम्पादकः

अमरावतीस्थ-किंगएडवर्डकालेज-संस्कृताध्यापकः, एम्. ए., एल्. एल्. बी., इत्युपाधिधारी
हीरालालो जैनः

सहसम्पादकः

पं. हीरालालः सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थः

संशोधने सहायकौ

व्या. वा., सा. सू., पं देवकीनन्दनः

*

डा. नेमिनाथ-तनय-आदिनाथः

सिद्धान्तशास्त्री

उपाध्यायः, एम्. ए., डी. लिट्.

प्रकाशकः

श्रीमन्त सेठ शितावराय लक्ष्मीचन्द्र

जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालयः

अमरावती (बरार)

वि. सं. १९९८]

वीर-निर्वाण-संवत् २४६८

[ई. स. १९४२

मूल्यं रूप्यक-दशकम्

प्रकारकः

श्रीमन्त सेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द्र,
जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालय
अमरावती (बरार)



मुद्रक—

टी. एम्. पाटील,
मॅनेजर,
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, अमरावती (बरार)

THE
ṢAṬKHAṆḌĀGAMA

OF

PUṢPADANTA AND BHŪTABALĪ

WITH

THE COMMENTARY DHAVALĀ OF VIRASENA

VOL. IV

KṢETRA-SPARSĀNA-KĀLĀNUGAMA

Edited

with introduction, translation, notes, and indexes

BY

HIRALAL JAIN, M. A., LL. B.,

C. P. Educational Service, King Edward College, Amraoti.

ASSISTED BY

Pandit Hiralal Sidhānta Shāstrī, Nyāyatīrtha.

With the cooperation of

Pandit Devakinandana
Sidhānta Shāstrī

*

Dr. A. N. Upadhye,
M. A., D. Litt.

Publish by

Shrimanta Seth Shitabrai Laxmichandra,

Jaina Sāhitya Udhāraka Fund Karyālaya.

AMRAOTI [Berar].

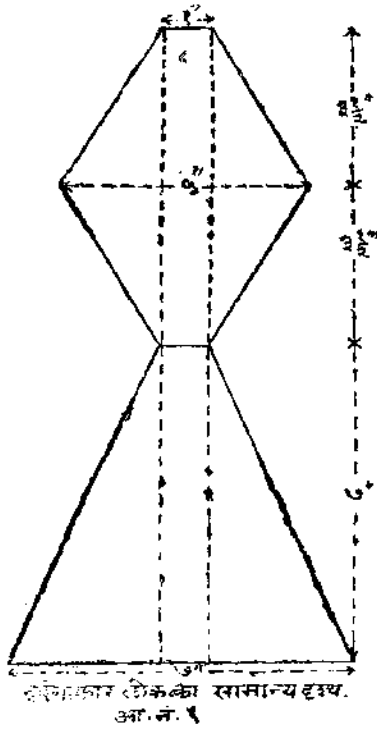
1942

Price rupees ten only.

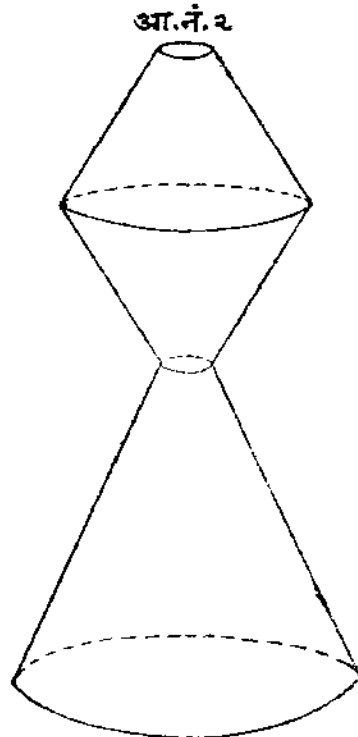
Published by—
Shrimant Seth Shitabrai Laxmichandra.
Jaina Sāhitya Uddhāraka Fund Karyālaya,
AMRAOTI (Berar).



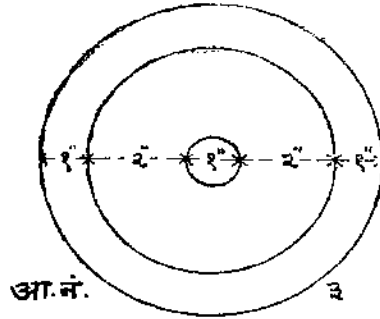
Printed by—
T. M. Patil, Manager,
Saraswati Printing Press,
AMRAOTI (Berar,).



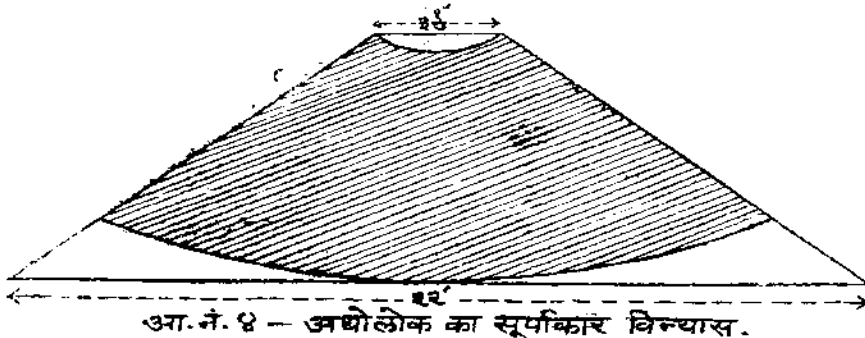
(पृ. १२)



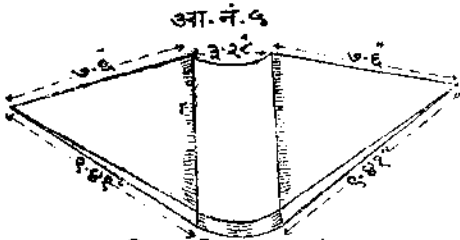
वर्णाकार लोका का -
- यथादर्शन चित्र .
(पृ. १२)



चु.लो. का तल विन्यास.
(पृ. १२)

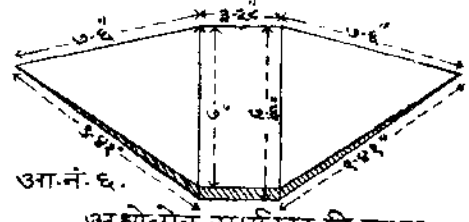


आ.नं. ४ - अधोलोका का सूर्यकार विन्यास.
(पृ. १३)



अ. लो. रूपिकार विन्यास का यथादर्शन चित्र.

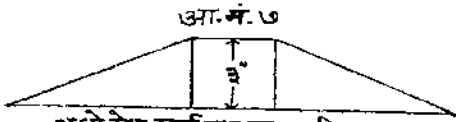
(पृ. १३)



आ. नं. ६.

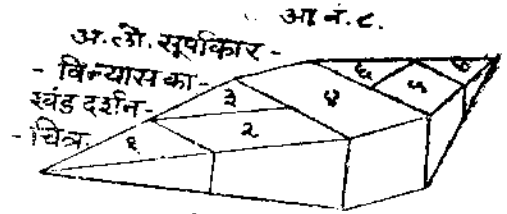
अधोलोक रूपिकार विन्यास. (समीकृत)

(पृ. १३)



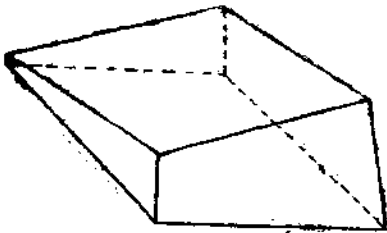
अधोलोक रूपिकार का उपरितम दृश्य.

(पृ. १३)



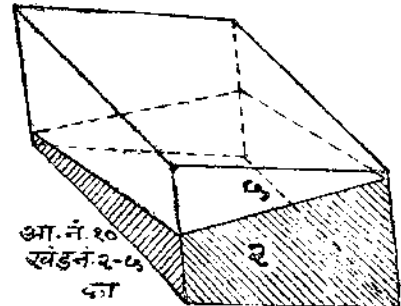
अ. लो. रूपिकार - विन्यास का खंड दर्शन - चित्र.

(पृ. १३-१४)



आ. नं. ९ खंड नं. २ और ५ का यथादर्शन चित्र.

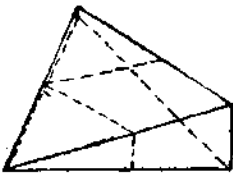
(पृ. १४)



आ. नं. १० खंड नं. २-५ का

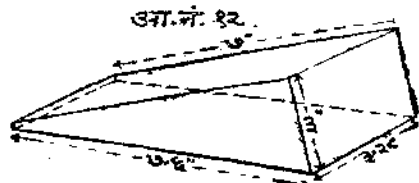
एक पर एक रखने पर दृश्य.

(पृ. १४)



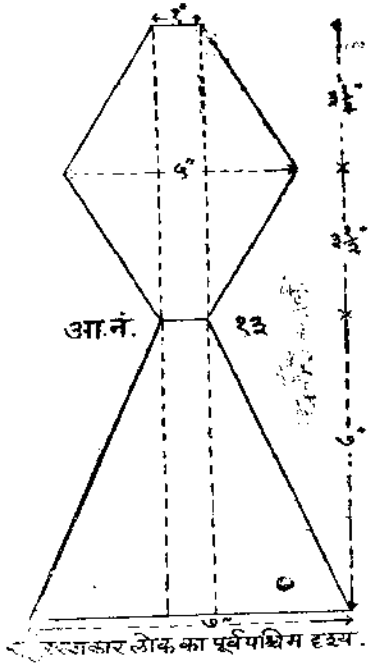
आ. नं. ११. खंड नं. १-३-६-७ के यथादर्शन चित्रमे त्रिकोणाकार और चतुरस्राकार खंड.

(पृ. १४)

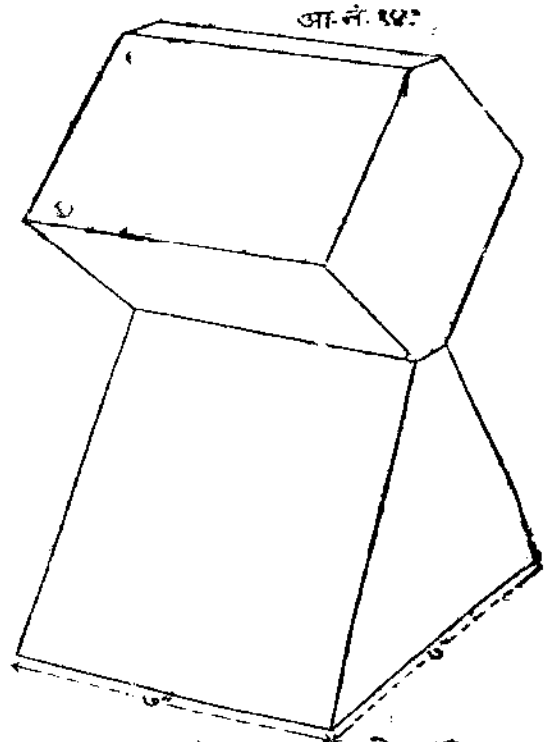


मध्यखंड नं. ५ का यथादर्शन चित्र.

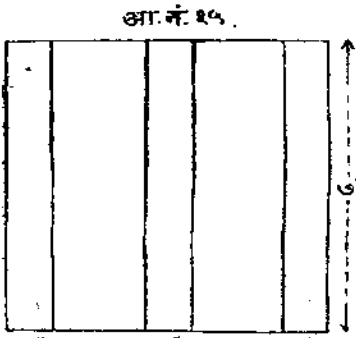
(पृ. १३)



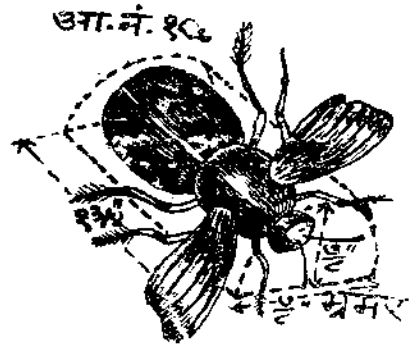
(पृ. १९-२०)



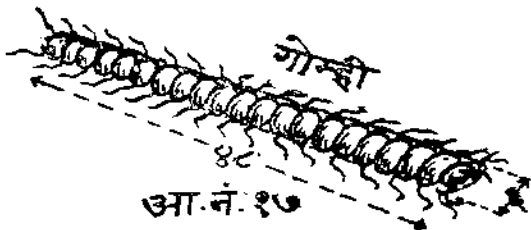
(पृ. १९-२०)



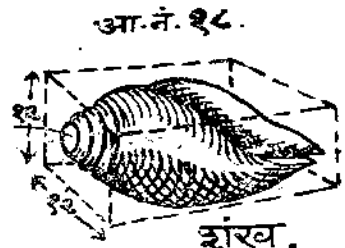
(पृ. १९-२०)



(पृ. ३४)



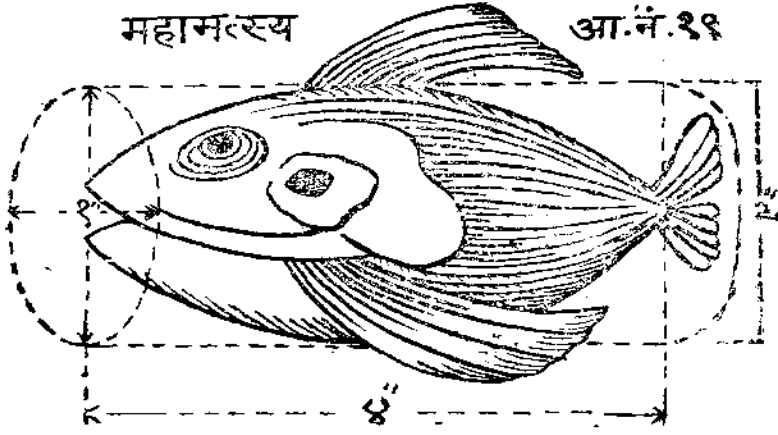
(पृ. ३४)



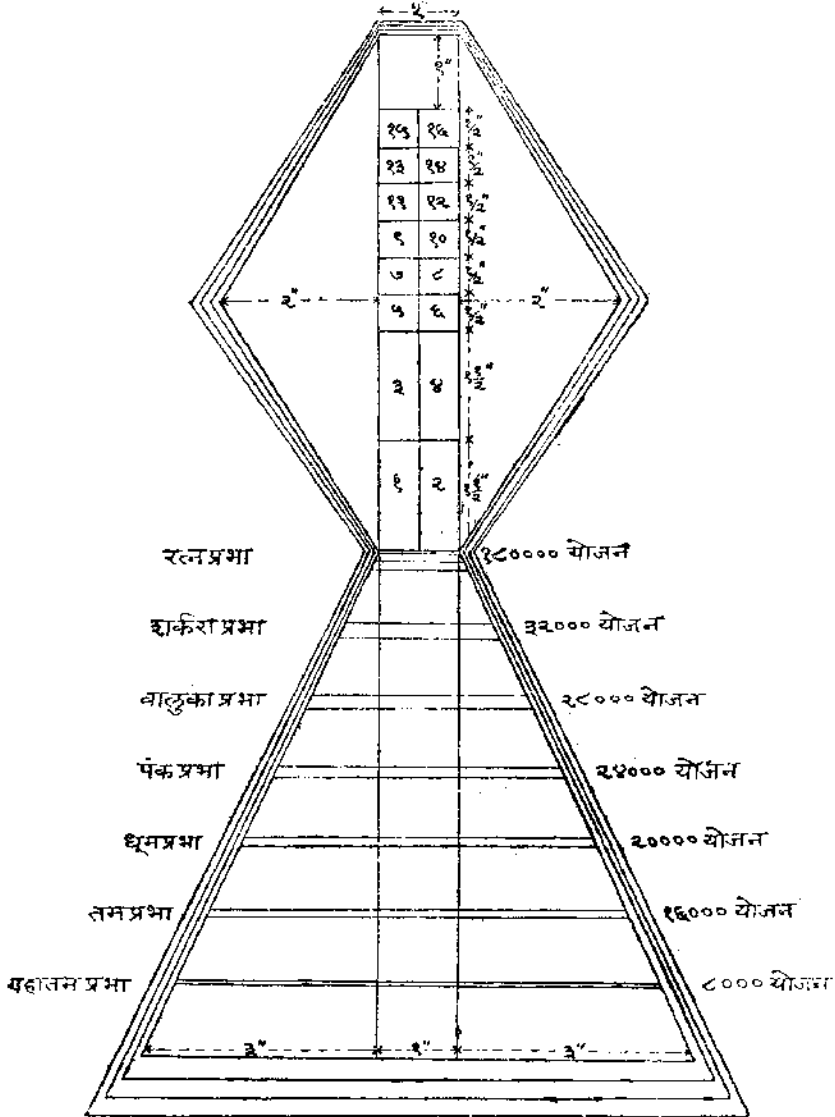
(पृ. ३५)

महामत्स्य

आ.नं. १९



(पृ. ३६)



— लोकाकाशलिं स्वर्गनरक विभाग. —
(आ.नं. २०.)

(पृ. ८८-९१)

विषय सूची

	पृष्ठ		पृष्ठ
प्राक् कथन	१-४	२	
१		मूल, अनुवाद और टिप्पण	१-४८८
प्रस्तावना		क्षेत्रानुगम	१-१३८
Introduction	i-iv	स्पर्शानुगम	१३९-३०९
Mathematics of Dhavala	i-xxiv	कालानुगम	३११-४८८
(with index)		३	
(by Dr. A. N. Singh)		परिशिष्ट	१-४२
१ सिद्धान्त और उनके अध्ययनका		१ क्षेत्रप्ररूपणा सूत्रपाठ	१
अधिकार	१	स्पर्शनप्ररूपणा सूत्रपाठ	५
२ शंका-समाधान	१६	कालप्ररूपणा सूत्रपाठ	१३
३ विषय-परिचय	२३	२ अवतरण-गाथासूची	२६
४ विषय-सूची	३०	३ न्यायोक्तियां	२७
५ शुद्धिपत्र	५९	४ ग्रंथोल्लेख	२८
६ क्षेत्र-स्पर्शन-कालप्रमाणदर्शक चार्ट	२९ अ-आ	५ पारिभाषिक शब्दसूची	३०-४२

चित्र सूची

	मुख पृष्ठ		मुख पृष्ठ
१ मृदंगाकार लोकका सामान्य दृश्य	मुख पृष्ठ	११ खंड नं. १, ३, ६ व ७ के यथादर्शन	
२ मृदंगाकार लोकका यथादर्शन चित्र	”	चित्रमें त्रिकोणाकार और चतुरस्राकार	
३ मृदंगाकार लोकका तलविन्यास	”	खंड	”
४ अधोलोकका सूर्पाकार विन्यास	”	१२ मध्यखंड नं. ४ का यथादर्शन चित्र	”
५ अधोलोक सूर्पाकार विन्यासका यथादर्शन चित्र	”	१३ चतुरस्राकार लोकका पूर्व-पश्चिम दृश्य	”
६ अधोलोक सूर्पाकार विन्यासका (समीकृत) चित्र	”	१४ ” ” यथादर्शन चित्र	”
७ ” ” ” का उपरितन दृश्य	”	१५ ” ” का तलविन्यास	”
८ अधोलोक सूर्पाकार विन्यासका खंड-दर्शन चित्र	”	१६ भ्रमर चित्र	”
९ खंड नं. २ और ५ का यथादर्शन चित्र	”	१७ गोम्ही ”	”
१० खंड नं. २ और ५ का एकपर एक रख-नेपर दृश्य	”	१८ शंख ”	”
		१९ महामत्स्य ”	”
		२० लोकाकाशमें स्वर्ग-नरक विभाग	”

प्राक् कथन

पट्टखंडागमका तीसरा भाग अप्रैल १९४१ में प्रकाशित हुआ था। वर्ष पूरा होते होते उसका चौथा भाग भी तैयार होकर पाठकोंके हाथमें पहुँच रहा है। इन सिद्धान्त ग्रन्थोंका समाजमें आदर और प्रचार देखकर हमें अपने ध्येयकी सफलताका संतोष है। विद्वत्समाज अब इस ओर कितना उत्सुक और तत्पर हो उठा है इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि इसी अल्प-कालमें हमें इस सिद्धान्तोद्धारके कार्यमें पंडिताचार्यवर्य भट्टारक चारुकीर्तिजी स्वामी तथा पंचोंकी कृपासे मूडबिंद्री संस्थानका पूर्ण सहयोग प्राप्त हो गया है, जिससे अब सिद्धान्तग्रंथका मूल पाठ वहांकी ताड़पत्रीय प्रतियोंके मिलान परसे ही निश्चित किया जाता है। इस कारण अब इतर प्रतियोंके मिलान प्रकाशित करनेकी आवश्यकता नहीं रही। इसी बीच द्वितीय सिद्धान्तग्रंथ कपायप्राभृत और उसकी टीका जयधवलके प्रकाशनके लिये भी एक नहीं अनेक संस्थाएं उत्सुक हो उठी हैं, और जैनसंघ, मथुरा, ने उस ओर कार्य प्रारंभ भी कर दिया है। उधर शोलापुरवाले स्वर्गीय सेठ रावजी सखारामजी दोशीके संरक्षणमें जो सिद्धान्तोद्धारसंबंधी फंड था, उसकी उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी सेठ गुलाबचंद्रजीने सुव्यवस्था करके महाधवलके निमित्त एक समिति सुसंगठित कर दी है। यही नहीं, श्रीयुक्त मंजैयाजी हेगडेने तीनों सिद्धान्तोंके मूलपाठको ताड़पत्रीय प्रतियोंके अनुसार प्रकाशित करानेकी भी एक स्कीम प्रस्तुत की है। साहित्योद्धारके महत्त्व और उसकी आवश्यकताको अनुभव करके शोलापुरके अत्यन्त धर्मानुरागी ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचंद्रजी दोशाने गम्भीर विचार और विद्वत्परामर्शके पश्चात् 'जैन संस्कृति संरक्षक संघ' का आयोजन किया है, और उसके लिये अपनी ओरसे तीस हजारका दान भी दे दिया है। इस संघका ध्येय बहुत विशाल और सर्वांगव्यापी है, जिसकी पूर्ति धीरे धीरे ही हो सकती है तथा समाजके सहयोगपर अवलम्बित है। किन्तु उसके अन्तर्गत जो एक 'जीवराज जैन ग्रंथमाला' के संचालनका निश्चय किया गया था, उसका मेरे प्रियमित्र डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय और मेरे सम्पादकत्वमें कार्य प्रारंभ होगया है, और उस मालाका प्रथम पुष्प, उक्त सिद्धान्तग्रंथोंकी ही कौटिका प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथ 'तिलोयपण्णत्ति' (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) मुद्रणाधीन है। इस प्रकार यह सिद्धान्तोद्धारका अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य अब अनेक कंधोंद्वारा सम्हाला जा रहा है, जिससे हमें अब अपना बोल कुठ हलका हुआ प्रतीत होने लगा है। इसकी हमें प्रसन्नता है।

किन्तु गतिके साथ गति—अवरोधोंके प्रयत्नोंका भी सर्वथा अभाव नहीं है। प्रकाशित सिद्धान्त ग्रन्थोंकी धार्मिक ज्ञानवृद्धिमें बड़ी भारी उपयोगिताका अनुभव करके बंबईकी माणिकचंद्र जैन परीक्षालय समितिने अपनी मत बैठकमें धवलसिद्धान्तके प्रथम भाग सत्प्ररूपणाको अपनी सर्वोच्च शास्त्री परीक्षाके पाठ्यक्रममें सम्मिलित करना आवश्यक समझा। इसका अधिकांश पाठकों और विद्यार्थियोंने बड़ा हर्ष मनाया। किन्तु, मोरेना जैन सिद्धान्त विद्यालयके प्रधान अध्यापक पं मन्खनलालजी

शास्त्रीने इसका घोर विरोध प्रारंभ कर दिया है। उन्होंने 'सिद्धान्तशास्त्र और उनके अध्ययनका अधिकार' शीर्षक एक पुस्तिका लिखी है जिसमें उन्होंने यह बतलानेका प्रयत्न किया है कि गृहस्थ जैनियोंको इन सिद्धान्तग्रंथोंके पढ़नेका बिल्कुल अधिकार नहीं है और इसलिये इनका पढ़ना पढ़ाना व छपाना एकदम बंद कर देना चाहिये। इस पुस्तिकाके आधारसे जैन पाठशालाओंके अध्यापकोंके ऐसे मत संग्रह करनेका भी प्रयत्न किया जा रहा है कि वे धवल, जयधवल, महाधवल, इन सिद्धान्त ग्रंथोंका पठन-पाठन नहीं करेंगे। अपनी अपनी समझ और विवेकके अनुसार तो प्रत्येकको अपना मत बनाने और उसका प्रचार करनेका अधिकार है, किन्तु उक्त पुस्तिकामें जो इस मतके लिये प्राचीन प्रमाण दिये गये हैं, उनसे साधारण पाठकोंको एक भ्रम पैदा हो जानेकी संभावना है। अतएव हमने यह आवश्यक समझा कि हम अपने पाठकोंके लिये उन प्राचीन प्रमाणोंकी जांच पड़ताल करके अपना निष्कर्ष उनके सन्मुख रख दें, ताकि वे उक्त मतकी सारहीनताको समझ सकें। हमारे इस विवेचनको पाठक प्रस्तुत भागकी प्रस्तावनामें 'सिद्धान्त और उनके अध्ययनका अधिकार' शीर्षक लेखमें देखेंगे जिससे उन्हें पता चल जायगा कि कुंदकुंद, समन्तभद्र आदि जैसे अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक आचार्योंने गृहस्थोंको सिद्धान्त शास्त्र पढ़नेका प्रतिषेध नहीं किया, किन्तु खूब उपदेश दिया है। तथा सिद्धान्त अध्ययनका प्रतिषेध करनेवाले जो ग्रंथ हैं वे बहुत पछिके १२ हवीं शताब्दि और उसके पश्चात्के अत्यन्त साधारण लेखकों द्वारा रचे गये हैं; और उन्होंने भी यह कहीं नहीं कहा कि धवल—जयधवल ग्रंथ ही सिद्धान्त ग्रंथ हैं, व गोम्मतसारादि सिद्धान्त ग्रंथ नहीं हैं। यह सब उक्त पुस्तिकाके लेखककी ही मौलिक कल्पना है जिसका यथार्थ मर्म वे ही जानें। स्वयं धवलादि सिद्धान्त ग्रंथोंमें बार बार यह कहा गया है कि इन ग्रंथोंकी रचना, सर्व प्राणियोंके हितके लिये, मनुष्यमात्रके उपयोगके लिये, मूर्खसे मूर्ख और बुद्धिमान् से बुद्धिमान् पुरुषोंके उपकारार्थ हुई है। अतएव उनके पठन-पाठनका सभीको पूरा अधिकार है।

पूर्व-प्रकाशित द्रव्यप्रमाणानुगममें जो गणित आया है, और उसके संबंधमें हमें जो कुछ सहायता लखनऊ विश्वविद्यालयके गणिताध्यापक डॉ० अवधेश नारायण सिंह जीसे मिली थी उसका हम उसी भागमें उल्लेख कर आये हैं। वहां हमारे अंग्रेजी नोटमें हमने यह भी कहा था कि डॉ० साहब उस गणितका विशेष अध्ययन कर रहे हैं। हमें बड़ा हर्ष है कि डॉ० सिंहजीने अब अपने अध्ययनका फल इस भागमें पाठकोंके सन्मुख उपस्थित कर दिया है। उन्होंने उस भागकी गणित पर अंग्रेजीमें एक विद्वत्पूर्ण लेख लिखकर हमें भेजा है जो इस भागमें प्रकट हो रहा है। उससे पाठक समझ सकेंगे कि जैनियोंके द्वारा भारतीय गणितशास्त्रमें कितनी उन्नति हुई है, और धवलाके अन्तर्गत गणितशास्त्र किस कोटिका है। अगले भागमें हम इस लेखका पूरा हिन्दी अनुवाद भी अपने पाठकोंको भेंट करेंगे, और उसमें प्रस्तुत भागके क्षेत्रमिति संबंधी गणित पर भी ऐसा ही विद्वत्पूर्ण लेख सम्मिलित करेंगे। इस सहयोगके लिये हम डॉ० सिंहके बहुत ऋणी हैं।

प्रस्तुत खंडांशमें जीवद्व्याणकी तीन प्ररूपणाएं आई हैं—क्षेत्र, स्पर्शन और काल । इनमें क्रमशः ९२, १८५ और ३४२ सूत्र पाये जाते हैं । इनकी टीकामें क्रमशः लगभग १०१, १२४ और ११५ शंका-समाधान आये हैं । हिन्दी अनुवादमें अर्थको स्पष्ट करने के लिये क्रमशः ३५, १७ और ८ विशेषार्थ, तथा २७ और २५ गणितके उदाहरण जोड़े गये हैं । तुलनात्मक व पाठ-भेदसंबंधी टिप्पणियोंकी संख्या क्रमशः १९७, १४८ और २७६ है । इस प्रकार इस ग्रंथभागमें लगभग ३४० शंका-समाधान, ६० विशेषार्थ, ५२ गणितोदाहरण, तथा ६२१ टिप्पण पाये जावेंगे ।

इनमें और विशेषतः प्रथम दो प्ररूपणओंमें द्रव्यप्रमाणप्ररूपणाके सदृश बहुतसा गणित भाग आया है । विशेषतः यह है कि यहांका गणित प्रायः क्षेत्रमिति [Geometry] से संबंध रखता है, जत्र कि द्रव्यप्रमाणका गणित अंकगणितसंबंधी था । लोकके आकारसंबंधी मान्यताओंमें मतभेद और उनमें तथ्यातथ्य-निर्णयके लिये उनके घनप्रमाण लानेकी प्रक्रियाएं जैन करणानुयोगकी विलकुल नई चीजें हैं । उसी प्रकार शंखक्षेत्र, गोहीक्षेत्र, भ्रमरक्षेत्र व मत्स्यक्षेत्रके घनफलकी प्रक्रियाएं भी ध्यान देने योग्य हैं । स्पर्शनप्ररूपणमें द्वीपसागरोंके विस्तार और तत्संबंधी चंद्रोंके प्रमाणका गणित भी बड़ा सूक्ष्म है और अनेक गणितसूत्रोंसे संबंध रखता है ।

इस सब गणितको विधिवत् समझने व समझानेमें हमें पुनः हमारे कालेजके गणित अध्यापक प्रोफेसर काशीदत्तजी पांडे से बहुत सहायता मिली है । जैसे परिश्रमसे उन्होंने द्रव्य-प्रमाणके गणितको व्यवस्थित करा दिया था, वैसे ही उन्होंने यहां भी बड़ा योग दिया । लोकाकार संबंधी मतभेद व प्रमाणके गणितको समझनेके लिये हमें उस उस आकारके काष्ठादर्शों (wooden models) की आवश्यकता पड़ी जो हमारे प्रियमित्र, श्रद्धेय पं. सूरजभानुजी बकीलके सुपुत्र, कुलवंतरायजी जैनी के परिश्रमसे तैयार हो गये । उन्होंने उनके कुछ चित्रादि बनाकर भी दिये जिनसे विषयके स्पष्टीकरणमें हमें बड़ी सहायता मिली । उन्हीं काष्ठादर्शों व चित्रोंके आधारसे तथा अन्य गणित परसे हमारे नगरके 'न्यू हाइस्कूल' के ड्राइंग मास्टर श्रीयुक्त एस. वाय. पतकी, डी. टी. सी, ने हमें वे तीस चित्र बनाकर दिये जिनके ब्लाक इस भागमें प्रकट किये जा रहे हैं, तथा जिनकी सहायतासे तत्संबंधी गणित हमारे पाठकोंको भी सुग्राह्य हो सकेगा । इस सब सहायताके लिये हम उक्त सज्जनोंके बहुत कृतज्ञ हैं । हमारी प्रतियोंकी साधन-सामग्री पूर्ववत् कायम है जिसके लिये हम अमरावती जैन मंदिर, सिद्धान्तभवन आरा, तथा कारंजा ब्रह्मचर्याश्रमके अनुगृहीत हैं । हमारे संशोधनसहायक भी पूर्ववत् स्थिर हैं ।

गत भागकी प्रस्तावनाके भीतर हमने एक शंका-समाधानका स्तम्भ भी रखा था जिसमें उस समय तक आई हुई चौबीस शंकाओंके उत्तर दिये गये थे । समालोचकोंने इस स्तम्भ पर

हर्ष प्रकट किया, और आगे भी उसे नियत रखनेकी प्रेरणा की। किन्तु इस बार हमारे पास कोई विशेष शंकाएं नहीं आईं। तब हमने इसके लिये पत्रोंमें एक सूचना निकाली, जिसके फलस्वरूप जो शंकाएं हमारे पास आईं उनका हमने पूरा उपयोग किया है, और प्रस्तुत भागकी प्रस्तावनाके अन्तर्गत शंका-समाधान, एवं शुद्धिपत्रमें पूर्वभागोंके पाठका संशोधन उसाकी सुपरिणाम है। इस ओर विशेषरूपसे रुचि दिखलानेके लिये श्रीयुक्त नानकचंदजी, खतौली, श्रीयुक्त रतनचंदजी मुख्तार, सहानपुर, और श्रीयुक्त नेमिचंदजी वकील, सहारनपुर, को हम धन्यवाद देते हैं। यदि उनकी भेजी गई कोई शंकाएं या शुद्धियां, यहां सम्मिलित नहीं की गई हैं तो समझना चाहिये कि उनका संकलन पूर्वभागोंमें हो चुका है जिनका पाठकोंको सदैव ध्यान रखना चाहिये। कभी कभी शंकाकार हमसे ऐसा प्रश्न भी कर बैठते हैं कि अमुक बात अमुक प्रकार से क्यों नहीं कही या अमुक बात क्यों नहीं जोड़ी गई? इसके उत्तर में हम अपने पाठकोंका ध्यान केवल हमारे इस आदर्श की ओर आकर्षित करते हैं कि—

‘ नामूलं लिख्यते किञ्चित्, नानपेक्षितमुच्यते ’

इस महान् कार्यमें हमें अब उत्तरोत्तर कठिनाइयोंका अनुभव हो रहा है। जैसा कि हम पूर्व भागमें प्रकट कर चुके हैं, हमारे एक सहयोगी पं. फूलचंद्रजी शास्त्री उस भागके सम्पूर्ण हो सकनेके पूर्व ही आकस्मिक विपत्तिके कारण यहांसे चले गये थे। तबसे वे फिर वापिस नहीं आसके। अतएव इस भागका संपूर्ण कार्य केवल पं. हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्रीकी सहायतासे हुआ है। प्रूफ और प्रति मिलानमें तिलोपपण्णत्ति-विभागके कार्यकर्ता पं. बालचन्द्रजी शास्त्रीका साहाय्य रहा है। इधर यूरोपीय युद्धके कारण कागज आदिका भाव बेहद बढ़ता गया। यथेष्ट कागज ठीक समय पर मिलना भी अशक्य हो गया। इतने पर अमरावती नगरमें साम्प्रदायिक झगड़ेने कुछ समयके लिये ऐसा भीषणरूप धारण किया कि आफिस और प्रेसका कार्य बंद रखना पड़ा। पुस्तकोंकी बिक्री भी इतनी नहीं हो रही जिससे आगेका कार्य चलता जावे। इससे हमारा फंड भी कुछ कुछ कम होता जा रहा है। इन सिद्धान्त ग्रंथोंके प्रचारको रोकनेका भी जो प्रयत्न हो रहा है उसका हम ऊपर उल्लेख कर ही आये हैं। किन्तु इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी किसी अज्ञात शक्तिके प्रभावसे कार्य अग्रसर होता ही गया। हम कहां तक अपने आदर्शको स्थिर रख सके हैं, इसका निर्णय करना हमारे मर्मज्ञ पाठकोंके अधिकारमें है।

किंग एडवर्ड कालेज,
अमरावती
१५-१२-४१

हीरालाल जैन



प्रस्तावना

INTRODUCTORY

The present volume contains three prarūpanās, namely, Kshetra, Sparsāna and Kāla, out of the eight prarūpanās of Jīvaṭṭhāna, of which two, namely, Sat and Dravya-pramāṇa have already been published in the previous three volumes, while the last three, namely, Antara, Bhāva and Alpa-bahutva are going to be included in the next volume.

The Kshetra prarūpanā contains 92 Sūtras and concerns itself with the determination of the volume of space that living beings occupy under the various conditions of life and existence. The Sūtras confine themselves to the treatment of the subject under the usual fourteen spiritual stages (Guṇasthānas) and the fourteen soul-quests (Mārgaṇā-sthānas). But the commentator introduces ten other conditions of life which have to be taken into consideration. These fall under three main classes, namely, the place of habitation of the beings (Svasthāna), their expansion (Samudghāta) and their journey for rebirth (Upapāda). The first of these includes the usual place of habitation (Svasthāna-svasthāna) and places of occasional visits (Vihāravat-svasthāna). The expansion of the soul-substance beyond its usual volume (Samudghāta) may be due to pain (Vedanā), or passion (Kashāya), or for a temporary transformation of personality (Vikriyā), or for a visit to the next place of birth just before death (Māraṇāntika), or by effulgence of lustre for evil or good (Taijasa), or for reaching a learned person for the removal of a doubt in knowledge in the case of saints (Ahāraka), or for getting rid of the remnant karmic bonds in the case of an all-knowing saint (Kevali-samudghata). Thus, the commentator calculates the volume of space occupied by the living beings in these ten different conditions under the different spiritual stages and soul-quests.

The spatial units adopted for these measurements are five, namely, (1) the entire universe (Sarva-loka), (2) the lower universe (Adholoka), (3) the upper universe (Urdhva-loka), (4) the middle world (Madhyaloka), and (5) the human world (Manusa-loka). To make these standards definite and precise, the commentator divides the limitless space into two, namely, the Alokakaśa which is pure void and limitless, and the Lokakaśa which is situated in the middle of the former, where life and matter subsist and which is limited. It is this Lokakaśa which has been adopted as the largest measure in the treatment of volumes. As regards the shape and

volume of this universe, the commentator is confronted with two divergent views. According to one view it is in the form of three conical frusta with a common circular section in the middle; while according to the other view it is in the form of three frusta of pyramids with a common rectangular base in the middle. Virasena with his philosophic insight, discriminating genius and mathematical skill ultimately rejects the former view and adopts the latter. His conclusions are that the entire universe (Lokakāśa) has a total height of 14 rajjus and is in its volume $7^3=343$ cubic rajjus, consisting of the lower universe which is 196 cubic rajjus and the upper universe which is 147 cubic rajjus. Between the lower and the upper universe is the rectangular section called the middle world which is $1 \times 7=7$ square rajjus, and which contains in its middle the human world which is a circular area of 45 lakhs of yojanas in diameter. The rajju is thus the standard unit of this spatial measurement and it is only determined as innumerable yojanas long, equal to the smaller side, and $\frac{1}{7}$ of the larger side of the rectangular middle world, $\frac{1}{7}$ of the height of the lower or upper world and $\frac{1}{14}$ of the total height of the entire universe. This discussion as well as similar others bring to light several geometrical problems that confronted our ancient thinkers, and their solutions throw a considerable light upon the evolution of mathematical processes and theories in this country. We have tried to illustrate some of these by twenty diagrams in addition to a large number of examples.

Under the Sparsāna-prarupana which contains 185 Sutras, we find the volumes of space similarly considered from the point of view of the past as well as the future status of those beings, in addition to the present to which Kshetra-prarupana confines itself. The question here is the volume of space which beings of different spiritual stages and soul-quests ever happen to touch under one of the ten conditions mentioned above. In this connection the determination of the number of heavenly luminaries shining above the innumerable islands and seas gives rise to a number of interesting mathematical exercises, (see pp 150-161 of the text).

In the Kala-prarupana which contains 342 Sutras, the consideration is of the minimum and maximum periods of time spent by the souls, singly or in aggregates, in the various spiritual stages and soul-quests. The smallest period of time comprehended is an instant (Samaya) of which innumerable are included in an avali and a breath (Prana) which is equal to $\frac{2880}{8778}$ of a second (see Vol. III, Introduction p. 34). The series

of periods of time rises on to a Muhurta (48 Minutes), a day, a fortnight, a month, a year, a Yuga a Purvanga, a Purva, and so on to a Palyopama and a Sagaropama and ultimately to an Utsarpini and Avasarpini which constitute a Kalpa. The longest period of time conceived and denominated is a Pudgala-parivartana (for which see p. 330 text and explanatory note).

In interpreting the mathematical part of these texts I again received very valuable assistance from my colleague Mr. K. D. Panday, professor of mathematics in King Edward College, Amraoti. Without his help here, as in the previous volume, it would have been almost an impossible task for me to explain adequately the mathematical portions. As I mentioned in the previous volume, Dr. Avadhesh Narain Singh, professor of Mathematics in the Lucknow University and author of the History of Hindu Mathematics, has taken a keen interest in the mathematical contents of these texts. He has now studied the mathematical portions of the III volume and has obliged me by writing out a dissertation on the mathematical contents of that volume. The same is being published here under the caption " Mathematics of Dhavala. " It is expected that he would continue his valuable study of these texts and the readers might look forward to a very interesting note on the geometrics of the present volume in the volume to be issued next.

Another topic dealt with in the Hindi Introduction of this volume is an answer to the objection raised in a certain quarter that Jaina traditions prohibit the study of these Sacred Texts by laymen, and therefore these texts should neither be published in a printed form, nor should they be taught in Jaina Pathaśālas, nor should they be allowed to be read anywhere by any body except by the Jaina ascetics. A critical examination of all the traditions bearing on this subject shows that an injunction against the study of Siddhanta by the laymen is found in a few books dealing with the duties of Jaina house-holders. But all these books are found to have been written by a few obscure and insignificant writers belonging to a period subsequent to the 12th century A. D. Again, they either do not make clear what is meant by Siddhanta, or explain it in a manner so as to make the present texts, as well as all other available books, fall outside the sphere of Siddhanta. The injunction is, moreover, in direct conflict with the statements of the most ancient and authoritative Jaina writers who have strongly recommended the study of the Jaina texts of the highest kind by all, laymen as well as ascetics. The author of the Dhavala himself lays down in clear and unmistakable terms at every step of his commentary that the Sutras as well as the commentary are so designed

as to be useful to all mankind, dull as well as intelligent. The tradition is thus found to be a very late one invented by some man of narrow outlook and small brain during the age of decadence, and it is altogether incompatible with the whole spirit and ideology of Jainism and with the clear and definite recommendations of all other writers of far greater importance and authority.

A number of queries concerning the meaning and significance of certain statements in the previous volumes have also been answered in the Hindi Introduction.

MATHEMATICS OF DHAVALĀ

Introductory Remarks

It has been known that in India the study of **Ganita**—arithmetic, algebra, mensuration etc—was carried on at a very early date. It is also well known that the ancient Indian mathematicians made substantial and solid contributions to mathematics. In fact they were the originators of modern arithmetic and algebra. We have been accustomed to think that amongst the vast population of India only the Hindus studied mathematics and were interested in the subject, and that the other sections of the population of India, e. g. the Buddhists and the Jainas, did not pay much attention to it. This view has been held by scholars because mathematical works written by Buddhist or Jaina mathematicians had been unknown until quite recently. A study of the Jaina canonical works, however, reveals that mathematics was held in high esteem by the Jainas. In fact the knowledge of mathematics and astronomy was considered to be one of the principal accomplishments of the Jaina ascetics.¹

We know now that the Jainas had a school of mathematics in South India, and at least one work—the **Ganita-sara-samgraha** by Mahāvīracārya—of this school was in many ways superior to any other existing work of that time. Mahāvīracārya wrote in 850 A. D. and his work although similar in general outline to the works of the Hindu mathematicians like Brahmagupta, Sridharācārya, Bhāskara and others, is entirely different in details, e. g., the problems in the **Ganita-sara-samgraha** are almost all different from those in the other works.

From the mathematical literature available at present we can say that important schools of mathematics flourished at Pataliputra (Patna), Ujjain, Mysore, Malabar, and probably also at Benares, Taxila and some other places. Until further evidence is available, it is not possible to say precisely what the relation between these schools was. At the same time we find that works coming from the different schools resemble each other in their general outline, although they differ in details. This shows that there was intercommunication between the various schools—that scholars and students travelled from one school to another, and that discoveries made at one place were soon communicated throughout the length and breadth of India.

It seems that the spread of Buddhism and Jainism gave an impetus to the study of the various sciences and arts. The religious literature of India in general and of Buddhism and Jainism in particular is full of big numbers. The use of big numbers necessitated the development of a simple symbolism for writing those numbers, and

1. Cf. *Bhagavati-sūtra* with the commentary of Abhayadeva Sūri edited by Āgamodayasamiti of Mehesana, 1919, Sutra 90; English translation by Jacobi of the *Uttarādhyayana-sūtra*, Oxford, 1895, Ch. 7, 8, 38.

has been responsible for the invention of the decimal place value notation. It is now established beyond doubt that the place value system of notation was invented in India about the beginning of the Christian Era – the brightest period of Buddhism and Jainism. The new notation was an instrument of great power and accelerated the development of mathematics from the crude Vedic stage – as found in the **Sulba sutras** – to the finished stage of the fifth century – as found in the works of Aryabhata and Varāhamihira.

One very significant fact which has escaped the notice of historians of mathematics is the following: whilst the general literature of the Hindus, the Buddhists, and the Jainas is continuous from the third or the fourth century B. C. right up to the middle ages, in the sense that works representing each century are found, there is a gap in the mathematical literature. In fact there is hardly any mathematical text earlier than the **Aryabhatiya** which was composed in 499 A. D. The only exception is a fragmentary manuscript known as the **Bakhshali manuscript**, which probably belongs to the second or the third century A. D. This manuscript, however, fails to give us any detailed information regarding the state of mathematical knowledge at the time of its composition for the reason that is not strictly speaking a Mathematical text as the treatises of Aryabhata, Brahmagupta or Sridhara etc. It is of the nature of notes on some selected mathematical problems. All that we can infer from the manuscript is that the place value numerals as well as the fundamental operations of arithmetic with them were well known, and that some types of problems treated by later mathematicians were also known.

It has already been pointed out that mathematics as found in the **Aryabhatiya** is highly developed, for we find in it a treatment of the entire elementary arithmetic of today including the rules of proportion, interest, barter and exchange, and of algebra up to the solution of the simple and the quadratic equations, simple indeterminate equations etc. The question arises: Did Aryabhata borrow from some foreign source or is the material contained in the **Aryabhatiya** indigenous and of Indian origin? Aryabhata writes:—

“ Having paid reverence to Brahman, the Earth, the Moon, Mercury, Venus, the Sun, Mars, Jupiter, Saturn, and the asterisms, Aryabhata sets forth the science which is honoured here at Kusumapura.”¹ This shows that he did not borrow from a foreign source. The study of the history of mathematics in other countries leads to the same conclusion, for the mathematics of the **Aryabhatiya** was far in advance of what was known at that time in any other country of the world. The possibility of borrowing from some foreign source having been ruled out, the question arises: How is it that practically no mathematical work anterior to that of Aryabhata is available? The explanation is simple enough. The place value system of notation was invented some time about the beginning of the Christian Era. It must have taken four or five hundred years to come into general use. Aryabhata's work seems to be the first good text book employing the new arithmetic of the place value numerals. Works anterior

1. **Aryabhatiya**, ii, 1.

to Aryabhata's either used the old type of numerals or were not good enough to stand the test of time. I think that Aryabhata's great popularity as a mathematician was, in a great measure, due to his being the first to write a good text book employing the place value numerals. Aryabhata was responsible for driving out and killing all previous text books. This explains why we get a series of works from 499 A. D. onwards while no works belonging to earlier times are available.

Thus we have practically no material to trace the development and growth of mathematics in India before 500 A. D. It becomes a question of paramount importance to hunt and trace out works which may give information regarding the knowledge of mathematics in India anterior to Aryabhata. Mathematical works having been lost, we have to scan and analyse Hindu, Buddhist and Jaina literatures in general, and their religious literatures in particular, to find what material we can in order to reconstruct the history of mathematics in India before 500 A. D. In several of the Puranas we have portions dealing with mathematics and astronomy. Likewise in most of the Jaina canonical works there is to be found some mathematical or astronomical material. This material represents the traditional mathematics of India, and such material is generally about three to four centuries older than the age of the work in which it is contained. Thus if we examine a religious or philosophical work written in the period 400 to 800 A. D., its mathematical content will belong to O. A. D. to 400 A. D.

It is in the light of the above remarks that we regard the discovery of the **Dhavalā**, a commentary on the **Sat'chandagama**, written in the beginning of the ninth century as very important. Mr. H. L. Jaina has placed scholars under a permanent debt of gratitude by editing the work and getting it published.

The Jaina school of mathematics.

Since the discovery and publication of the **Ganita-sara-samgraha** by Rangacarya, in 1912, scholars¹ have suspected the existence of a school of mathematics run exclusively by Jaina scholars. A recent study of some of the Jaina canonical works has brought to light various references to Jaina mathematicians and mathematical works². The religious literature of the Jainas is classified into four groups, called **anuyoga**, meaning "the exposition of the principles (of Jainism)." One of them is called **karananuyoga** or **ganitanuyoga**, i. e. the exposition of the principles dependent upon mathematics. This shows the high position accorded to mathematics in Jaina religion and philosophy.

Although the names of several Jaina mathematicians are known, their works have been lost. The earliest among them is Bhadrabāhu who died in 278 B. C. He is known to be the author of two astronomical works: (i) a commentary on the

-
1. See the Introduction by D. E. Smith to the **Ganita-sara-samgraha** ed. by Rangacarya Madras, 1912.
 2. B. Datta: **The Jaina school of Mathematics**, Bulletin, Cal. Math. Soc., Vol. XXI (1929), pp. 115-145.

Suryaprajñapti and (ii) an original work called the **Bhadrabahavi Samhita**. He is mentioned by Malayagiri (c. 1150) in his commentary on the **Suryaprajñapti**, and has been quoted by Bhaṭṭotpala (966)¹. Another Jaina astronomer of the name of Siddhasena has been quoted by Varāhamihira (505) and Bhaṭṭotpala. Mathematical quotations in Ardha-magadhi and Prakrit are met with in several works. The **Dhavaḷa** contains a large number of such quotations. These quotations will be considered at their proper places, but it must be noted here that they prove beyond doubt the existence of mathematical works written by Jaina scholars which are now lost². Works written by Jaina scholars under the title of **Ksetra-samasa** and **Karana-bhavana** dealt with mathematics, but no such works are available to us now. Our knowledge of Jaina mathematics which is of an extremely fragmentary character is gleaned from a few non-mathematical works such as **Sthananga-sutra**, **Tattvarthadhigama-sutra-bhasya** of Umasvati, **Suryaprajñapti**, **Anuyogadvara-sutra**, **Triloka Prajñapti**, **Trilokasara**, etc. To these may now be added the **Dhavaḷa**.

The importance of the Dhavaḷa.

The **Dhavaḷa** was written by Virasena in the beginning of the ninth century. Virasena was a philosopher and religious divine. He certainly was not a mathematician. The mathematical material contained in the **Dhavaḷa** may therefore be attributed to previous writers, especially to the previous commentators of whom five have been mentioned by Indranandi in the *Srutavatara*. These commentators were Kundakunda, Shamakunda, Tumbulura, Samantabhadra and Bappadeva, of whom the first flourished about 200 A. D. and the last about 600 A. D. Most of the mathematical material in the **Dhavaḷa** may therefore be taken to belong to the period 200 to 600 A. D. Thus the **Dhavaḷa** becomes a work of first rate importance to the historian of Indian mathematics, as it supplies information about the darkest period of the history of Indian Mathematics—the period preceding the fifth century A. D. The view that the mathematical material in the **Dhavaḷa** belongs to the period before 500 A. D. is corroborated by detailed study. For instance, many of the processes described in the **Dhavaḷa** are not to be found in any known mathematical work. Furthermore, there is a certain imperfection which, one acquainted with the later Indian mathematical works, can easily discern. The mathematics in the **Dhavaḷa** lacks the finish and the refinement of the **Aryabhatiya** and later works.

Mathematical Content of the Dhavaḷa

Numbers and Notation—The author of the **Dhavaḷa** is fully conversant with the place value system of notation. Evidence of this is to be found everywhere. We quote some methods of expressing numbers taken from quotations given in the **Dhavaḷa**—

-
1. *Brhat Samhita*, ed. by S. Dvivedi, Benares, 1895, p. 226.
 2. Silanka in his commentary on the *Sutrakrtanga Sutra*, *smayadhyayana*, *anuyogadvara*, verse 28, quotes three rules regarding permutations and combinations. These rules are apparently taken from some Jaina mathematical work.

(i) 79999998 is expressed as a number which has 7 in the beginning, 8 at the end, and 9 repeated six times in between¹.

(ii) 46666664 is expressed as sixty-four, six hundreds, sixty-six thousands sixty-six hundred-thousands, and four koṭis².

(iii) 22799498 is expressed as two koṭis, twenty-seven, ninety-nine thousands four and ninety-eight³.

The method used in (i) is found elsewhere also in Jaina literature and at some places in the *Ganita-sara-samgraha*⁴. It shows familiarity with the place value notation. In (ii) the smaller denominations are expressed first. This is not in accordance with the general practice current in Sanskrit literature. Likewise, the scale of notation is hundred and not ten as is generally found in Sanskrit literature.⁵ In Pali and Prakrit, however, the scale of hundred is generally used. In (iii) the highest denomination is expressed first. Quotations (ii) and (iii) are evidently from different sources.

Big numbers—It is well known that big numbers occur frequently in Jaina literature. In the *Dhavalā* also the various kinds of *jīva-rāśi*, *dravya-pramāṇa* etc. are discussed. The biggest number that is definitely stated is the number of developable human souls. In the *Dhavalā*⁶ it is stated to lie between the sixth-square of two and the seventh square of two; or to be more precise, between *koti-koti-koti* and *koti-koti-koti-koti*, i. e.,

$$\begin{array}{ccc} & 6 & 7 \\ & 2 & 2 \\ \text{between} & 2 & \text{and} & 2 \end{array}$$

and more definitely, between (1,00,00,000)³ and (1,00,00,000)⁴

The actual number of such souls known from other works⁷ is 79,22,81,62,51,42,64,33,75 93,54,39,50,336. This number occupies twenty-nine notational places. It has the same number of notational places as (1,00,00,000)⁴ but is greater. This is known to the author of *Dhavalā* who calculates the area of the world inhabited by men and shows that the larger number of men can not be contained in it, and hence that view was wrong.

The Fundamental Operations—Mention is found of all the fundamental operations— addition, subtraction, division, multiplication, the extraction of square and cube-roots, the raising of numbers to given powers, etc. These operations are mentioned

1. *Dhavalā* III, p. 98, quoted verse 51. cf. *Gommatasāra*, *Jīva kāṇḍa*, p. 688.
2. *Dhavalā* III, p. 99, quoted verse 52.
3. *Dhavalā* III, p. 100, quoted verse 53.
4. cf. *Ganita-sāra-samgraha*, i, 27. See also *History of Hindu Mathematics* by Datta and Singh, Vol. I, Lahore, 1935, p. 16.
5. Datta and Singh, 1, c, p. 14.
6. *Dhavalā* III, p. 253.
7. cf. *Gommatasāra*, *Jivakaṇḍa* S. B. J. Series, p. 104.

both with respect to integers and fractions. The theory of indices as described in the Dhavalā is somewhat different from what is found in the mathematical works. This theory is certainly primitive and is earlier than 500 A. D. The fundamental ideas seem to be those of (i) the square, (ii) the cube, (iii) the successive square, (iv) the successive cube (v) the raising of a number to its own power, (vi) the square-root (vii) the cube-root (viii) the successive square-root, (ix) the successive cube-root, etc. All other powers are expressed in terms of the above. For example, $a^{3/2}$ is expressed as the first square-root of the cube of a ; a^9 is expressed as the cube of the cube of a ; a^6 is expressed as the square of the cube or the cube of the square of a ; etc.¹ The successive squares and square-roots are as below—

1st square of a means	$(a)^2 = a^2$
2nd square of a means	$(a^2)^2 = a^4 = a^{2^2}$
3rd square of a means	a^{2^3}
.....
nth square of a means	a^{2^n}

Similarly,

1st square-root of a means	$a^{1/2}$
2nd square-root of a means	$a^{1/3}$
3rd square-root of a means	$a^{1/3^2}$
.....
nth square-root of a means	$a^{1/3^n}$

Vargita-samvargita—The technical term vargita-samvargita has been used for the raising of a number to its own power. For instance, n^n is the vargita-samvargita of n . In connection with this the Dhavala mentions an operation called **Viralana-deya**—"spread and give". The **Viralana** (spreading) of a number means the separating of the number into its unities, i. e., the **viralana** of n is—

1 1 1 1 1n times.

Deya (giving) means the substitution of n in the place of 1 everywhere in the above. The vargita-samvargita of n is obtained by multiplying together the n 's obtained by the viralana-deya. The result is the first vargita-samvargita of n , i. e.,

1st vargita-samvargita of n is n^n .

The application of the process of viralana-deya once again, i. e., to n^n , gives the

2nd vargita-samvargita of n $(n^n)^n$.

A further application of the same procedure gives the—

1. Dhavala Vol. III, p. 58.

3rd vargita-samvargita of n $\left\{ (n^n)^{n^n} \right\}$

The Dhavalā does not contemplate the application of the above more than thrice. The third vargita-samvargita has been used very often¹ in connection with the theory of very large or infinite numbers. That the process yields very big numbers can be seen from the fact that the 3rd vargita-samvargita of 2 is 256^{256} .

The laws of indices—From the above description it is obvious that the author of the Dhavalā was fully conversant with the laws of indices, viz.,

- (i) $a^m \cdot a^n = a^{m+n}$
- (ii) $a^m \div a^n = a^{m-n}$
- (iii) $(a^m)^n = a^{mn}$

Instances of the use of the above laws are numerous. To quote one interesting case,² it is stated that the 7th varga of 2 divided by the 6th varga of 2 gives the 6th varga of 2. That is—

$$2^7 \div 2^6 = 2^6.$$

The operations of *duplation* and *mediation* were considered important when the place value numerals were unknown. There is no trace of these operations in the Indian mathematical works. But these processes were considered to be important by the Egyptians and the Greeks and were recognised as such in their works on arithmetic. The Dhavalā contains traces of these operations. The consideration of the successive squares of 2 or other numbers was certainly inspired by the operation of duplation which must have been current in India before the advent of the place value numerals. Similarly, there are traces of the method of mediation. In the Dhavalā we find generalisation of this operation into a theory of logarithms to the base 2, 3, 4, etc.

Logarithms—The following terms have been defined in the Dhavalā³:

(i) **Ardhaccheda** of a number is equal to the number of times that it can be halved. Thus the ardhaccheda of $2^m = m$. Denoting ardhaccheda by the abbreviation *Ac*, we can write in modern notation—

Ac of x (or $Ac x$) = $\log x$, where the logarithm is to the base 2.

(ii) **Vargasalaka** of a number is the ardhaccheda of the ardhaccheda of that number, i. e.,

Vargasalākā of $x = Vs x = Ac Ac x = \log \log x$, where the logarithm is to the base two.

(iii)⁴ **Trkaccheda** of a number is equal to the number of times that it can be divided by 3. Thus—

1. Dhavalā III, p. 20 ff. 2. *ibid* p. 253 ff. 3. *ibid* p. 21 ff. 4. *ibid* p. 56.

Trkaccheda of $x = Tc x = \log 3^x$, where the logarithm is to the base 3.

(iv)¹ **Caturthaccheda** of a number is the number of times that it can be divided by 4. Thus—

Caturtha-ccheda of $x = Cc x = \log 4^x$, where the logarithm is to the base 4.

The following results regarding logarithms have been used in the **Dhavalā**:

$$(1)^2 \quad \text{Log} (m/n) = \log m - \log n.$$

$$(2) \quad \text{Log} (m \cdot n) = \log m + \log n.$$

$$(3)^3 \quad \text{Log} m = m, \quad \text{where the logarithm is to the base 2.}$$

$$(4)^4 \quad \text{Log} (x^x)^2 = 2x \log x.$$

$$(5)^5 \quad \text{Log} \log (x^x)^2 = \log x + 1 + \log \log x,$$

$$\begin{aligned} (\text{for the left side} &= \log (2x \log x) \\ &= \log x + \log 2 + \log \log x \\ &= \log x + 1 + \log \log x. \end{aligned}$$

as $\log 2$ to the base 2 is 1).

$$(6)^6 \quad \text{Log} (x^x)^{x^x} = x^x \log x^x$$

(7) Let a be any number, then—

$$\text{1st vargita-samvargita of } a = a^a = B \text{ [say]}$$

$$\text{2nd vargita-samvargita of } a = B^B = y \text{ [say]}$$

$$\text{3rd vargita-samvargita of } a = y^y = D \text{ [say]}$$

The **Dhavalā** gives the following results⁷—

$$(i) \quad \text{Log } B = a \log a$$

$$(ii) \quad \text{Log} \log B = \log a + \log \log a.$$

$$(iii) \quad \log y = B \log B$$

$$\begin{aligned} (iv) \quad \log \log y &= \log B + \log \log B \\ &= \log a + \log \log a + a \log a. \end{aligned}$$

$$(v) \quad \log D = y \log y$$

$$(vi) \quad \log \log D = \log y + \log \log y.$$

and so on.

$$(8)^8 \quad \text{Log} \log D < B^2$$

This inequality gives the inequality—

$$B \log B + \log B + \log \log B < B^2$$

1. *ibid* p. 56. 2. *ibid* p. 60. 3. *ibid* p. 55. 4. *ibid* p. 21 ff. 5. *l. c.*

6. *l. c.* It should be mentioned here that nowhere in the text are these logarithms restricted to be integral. The number x is any number. x^x is the first vargita-samvargita rasi and $(x^x)^{x^x}$ is the second vargita-samvargita rasi.

7. *Dhavalā* III, p. 21-24.

8. *ibid* p. 24.

Fractions— Besides the fundamental arithmetical operations with fractions, knowledge of which has been assumed in the Dhavalā, we find a number of interesting formulae relating to fractions, which are not found in any known mathematical work. Amongst these may be mentioned the following :—

$$[1]^1 \quad \frac{n^2}{n \pm (n/p)} = n \mp \frac{n}{p \pm 1}$$

[2]² Let a number m be divided by the divisors d and d' , and let q and q' be the quotients (or the fractions). The following formula gives the result when m is divided by $d \pm d'$ —

$$\frac{m}{d \pm d'} = \frac{q'}{(q'/q) \pm 1}$$

$$\text{or} = \frac{q}{1 \pm (q/q')}$$

[3]³ If $\frac{m}{d} = q$ and $\frac{m'}{d} = q'$, then—

$$d (q - q') + m' = m.$$

[4]⁴ If $\frac{a}{b} = q$, then—

$$\frac{a}{b + \frac{b}{n}} = q - \frac{q}{n + 1};$$

$$\text{and} \quad \frac{a}{b - \frac{b}{n}} = q + \frac{q}{n - 1}.$$

[5]⁵ If $\frac{a}{b} = q$, then—

$$\frac{a}{b + c} = q - \frac{q}{\frac{b}{c} + 1};$$

$$\text{and} \quad \frac{a}{b - c} = q + \frac{q}{\frac{b}{c} - 1}.$$

[6]⁶ If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b'} = q + c$, then—

1. Dhavalā p. 46.

3. ibid p. 47, quoted verse 27.

4. ibid p. 46, quoted verse 24.

5. ibid p. 46, quoted verse 24.

6. ibid p. 46, quoted verse 25.

2. ibid p. 46.

x

$$b' = b - \frac{b}{\frac{q}{c} + 1},$$

and if $\frac{a}{b'} = q - c$, then—

$$b' = b + \frac{b}{\frac{q}{c} - 1}.$$

[7]¹ If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b'}$ is another fraction, then—

$$\frac{a}{b} - \frac{a}{b'} = q \left(\frac{b' - b}{b'} \right)$$

[8]² If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b+x} = q - c$, then—

$$x = \frac{bc}{q - c}$$

[9]³ If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b-x} = q + c$, then—

$$x = \frac{bc}{q + c}$$

[10]⁴ If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b+c} = q'$, then—

$$q' = q - \frac{qc}{b+c}$$

[11]⁵ If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b-c} = q'$, then—

$$q' = q + \frac{qc}{b-c}$$

The above results are all found in quotations given in the Dhavalā. They are not found in any known mathematical work. The quotations are from Ardha-Māgadhi or Prakrit works. The presumption is that they are taken from Jaina works on mathematics or from previous commentaries. They do not represent any essential arithmetical operation. They are relics of an age when division was considered a difficult and tedious operation. These rules certainly belong to an age when the place-value notation was not in common use for arithmetical operations.

The rule of three— The rule of three is mentioned and used at several

-
1. *ibid* p 46, quoted verse 28.
 2. *ibid* p 48, quoted verse 29.
 3. *ibid* p. 49, quoted verse 30.
 4. *ibid* p, 49, quoted verse 31.
 5. *ibid* p. 49, quoted verse 32.

places¹. The technical terms in connection with the process are *phala*, *iccha* and *pramana*, the same as found in the known mathematical works. This suggests that the rule of three was known and used in India even before the invention of the place-value notation.

The Infinite.

Use of big numbers—The word infinite used in various senses is found in the literature of all ancient peoples. A correct definition and appreciation of the idea, however, came much later. It is natural that the correct definition was evolved by people who used big numbers, or were accustomed to such numbers in their philosophy. The following will show that *in India the Jaina philosophers succeeded in classifying the various notions connected with the term infinite, and in evolving the correct definition of the numerical infinite.*

The evolution of suitable notation for expressing big numbers as well as of the idea of the infinite arise when abstract reasoning and thinking reach a certain high standard. In Europe, Archimedes tried to estimate the number of sand particles on the sea-shore and the Greek philosophers speculated about the infinite and the limit. They, however, did not possess suitable symbols for the expression of big numbers. In India, the Hindu, Jaina and Buddhist philosophers used very big numbers and evolved suitable symbolism for the purpose. In particular, the Jainas tried to form an estimate of all living beings in the Universe, of time instants, of locations [points or places] in the Universe and so on.

Three methods of expressing big numbers were employed:—

(1) The place-value notation using the scale of ten. In this connection it may be noted that number-names based on the scale of ten² were coined to express numbers as large as 10¹⁴⁰.

(2) The law of indices (*varga-samvarga*) was employed to give compact expressions for big numbers, e. g.—

$$(i) \quad (2^3) = 4,$$

$$(ii) \quad (2^2)^{2^2} = 4^4 = 256,$$

$$(iii) \quad \left\{ (2^2)^{2^2} \right\} \left\{ (2^3)^{2^2} \right\} = 256^{256} \quad \text{is called the third}$$

Vargita-samvargita of 2. This number is greater than the number of protons and electrons in the Universe.

1. See, for example, Dhavala III, p. 69 and 100 etc.

2. For details of big numbers and numerical denominations, see Datta and Singh, *History of Hindu Mathematics* (Published by Motilal Banarsi Dass, Lahore) Part 1, pp. 11 f.

(3) The logarithm (*ardhaccheda*) or the logarithm of a logarithm (*ardhaccheda-salaka*) was used to reduce the consideration of big numbers to those of smaller ones, e. g.—

(i) $\text{Log}_2 2^2 = 2$

(ii) $\text{Log}_2 \log_2 4^4 = 3,$

(iii) $\text{Log}_2 \log_2 256^{256} = 11.$

It is no wonder to find that today we take recourse to one or the other of the above three methods of expressing numbers. The decimal place-value notation has become the common property of all nations. Logarithms are used whenever calculations with big numbers have to be made. Instances of the use of the law of indices to express magnitudes in modern physics is common. For instance, the number of protons in the Universe has been calculated and expressed as—

$$136.2^{256} .$$

And Skewes' number which gives information regarding the distribution of primes is expressed in the form—

$$\begin{matrix} & & & 34 \\ & & & 10 \\ & & 10 & \\ & 10 & & \\ 10 & & & \end{matrix}$$

All the above methods of expressing numbers have been used in the *Dhavalā*. It follows that the methods were commonly known before the seventh century A. D. in India.

1. The number 136.2^{256} expressed in the decimal notation is 15,747,724,136,275,002,577 605,653,961,181,555.468,044,717,914, 572,116,709,366,231,425.076,185.631,031,296.

It will be observed that the third *vargita-samyargita* of 2, i. e., 256^{256} is greater than the number of protons in the Universe. If we imagine the entire Universe as a chess-board, and the protons in it as chessmen, and if we agree to call any interchange in the position of two protons a 'move' in this cosmic game, then the total number of possible moves would be the number—

$$\begin{matrix} & & & 34 \\ & & & 10 \\ & & 10 & \\ & 10 & & \\ 10 & & & \end{matrix}$$

This number is also connected with the theory of the distribution of primes.

Classification of the infinite. The Dhavalā gives a classification of the infinite. The term infinity has been used in literature in several senses. The Jaina classification takes into account all these. According to it there are eleven kinds of infinity as follows:—

(1) **Namananta** – Infinite in name. An aggregate of objects which may or may not really be infinite might be called as such in ordinary conversation, or by or for ignorant persons, or in literature to denote greatness. In such a context the term infinite means infinite in name only, i. e., *Nāmānanta*.

(2) **Sthapanananta**—Attributed, or associated infinity. This too is not the real infinite. The term is used in case infinity is attributed to or associated with some object.

(3) **Dravyananta**—Infinite in relation to knowledge which is not used. This term is used for persons who have knowledge of the infinite, but do not for the time being use that knowledge.

(4) **Gananananta**—The numerical infinite. This term is used for the actual infinite as used in mathematica.

(5) **Apradesikananta**—Dimensionless, i. e., infinitely small.

(6) **Ekananta**—One directional infinity. It is the infinite as observed by looking in one direction along a straight line.

(7) **Ubhayananta**—Two directional infinite. This is illustrated by a line continued to infinity in both directions.

(8) **Vistarananta**—Two dimensional or superficial infinity. This means an infinite plane area.

(9) **Sarvananta**—Spatial infinity. This signifies the three dimensional infinity, i. e. the infinite space.

(10) **Bhavananta**—Infinite in relation to knowledge which is utilised. This term is used for a person who has knowledge of the infinite, and who uses that knowledge.

(11) **Saswatananta**—Everlasting or indestructible.

The above classification is a comprehensive one, including all senses in which the term *ananta* is used in Jaina literature¹.

Gananananta (numerical infinite)

The Dhavalā clearly lays down that, in the subject-matter under discussion, by the term *ananta* (infinite) we always mean the numerical infinite,² and not any

1. Dhavala III, p. 11-16.

2. *ibid* p. 16.

of the other infinities enumerated above. For, in the other kinds of infinity "the idea of enumeration is not found"¹. It has also been stated that the "numerical infinite is describable at great length and is simpler". This statement probably means that in Jaina literature *ananta* (infinite) was defined more thoroughly by different writers and had become commonly used and understood. The Dhavalā, however, does not contain a definition of *ananta*. On the other hand, operations on and with the *ananta* are frequently mentioned along with numbers called *samkhyata* and *asamkhyata*.

The number *samkhyata*, *asamkhyata* and *ananta* have been used in Jaina literature from the earliest known times, but it seems that they did not always carry the same meaning. In the earlier works *ananta* was certainly used in the sense of infinity as we define it now, but in the later works *anantananta*, takes the place of *ananta*. For example, according to the *Trilokasara*, a work written in the 10th century by Nemicaandra, *Parita-ananta*, *Yuktananta* and even *Jaghanya-anantananta* is a very big number, but is finite. According to this work, numbers may be divided into three broad classes:—

- (i) Samkhyāta, which we shall denote by- s;
- (ii) Asamkhyāta, which we shall denote by- a;
- (iii) Ananta, which we shall denote by- A.

The above three kinds of numbers are further sub-divided into three classes as below:—

I. Samkhyata (numerable) numbers are of three kinds:

- (i) Jaghanya-samkhyāta (smallest numerable) which we shall denote by sj;
- (ii) Madhyama-samkhyāta (intermediate numerables) which we shall denote by- sm;
- (iii) Utkrsta-samkhyāta (the highest numerable) which we shall denote by- su.

II. Asamkhyāta (un-numerable) numbers are divided into three classes:—

- (i) Parita-asamkhyāta (first order unnumerable) which we shall denote by- ap;
- (ii) Yukta-asamkhyāta (medium unnumerable) which we shall denote by- ay;
- (iii) Asamkhyāta-asamkhyāta (unnumerably-unnumerable) which we shall denote by- aa.

Each of the above three classes is further sub-divided into three classes, viz. Jaghanya (smallest), Madhyama (intermediate) and Utkrsta (highest). Thus we

1. ibid p. 17.

have the following numbers included under Asamkhyāta:—

1. Jaghanya-parita-asamkhyata	apj
2. Madhyama-parita-asamkhyata	apm
3. Utkrsta-parita-asamkhyata	apu
1. Jaghanya-yukta-asamkhyata	ayj
2. Madhyama-yukta-asamkhyata	aym
3. Utkrsta-yukta-asamkhyata	ayu
1. Jaghanya-asamkhyata-asamkhyata	aa ¹ j
2. Madhyama-asamkhyata-asamkhyata	aam
3. Utkrsta-asamkhyata-asamkhyata	aa ¹ u

III. Ananta, which we denote by A, is divided in to three classes—

- (i) Parita-Ananta (first order infinite) which we shall denote by- Ap;
- (ii) Yukta-Ananta (medium infinite) which we shall denote- Ay;
- (iii) Ananta-Ananta (infinitely infinite) which we shall denote by- AA.

As in the case of the asamkhyāta numbers, each of these is further subdivided into three classes- Jaghanya, Madhyama and Utkrsta- so that we have the following numbers in the Ananta class:—

1. Jaghanya-parita-ananta	Apj
2. Madhyama-parita-ananta	Apm
3. Utkrsta-parita-ananta	Apu
1. Jaghanya-yukta-ananta	Ayj
2. Madhyama-yukta-ananta	Aym
3. Utkrsta-yukta-ananta	Ayu
1. Jaghanya-ananta-ananta	AAj
2. Madhyama-ananta-ananta	AAM
3. Utkrsta-ananta-ananta	AAu

Numerical value of the Samkhyata—According to all Jaina authorities, the Jaghanya-samkhyata is the number 2. being, according to them, the smallest number that represents multiplicity. Unity was not counted as a member of the aggregate of Samkhyata numbers. The Madhayama-samkhyata includes all numbers between 2 and the Utkrsta-samkhyata (the highest numerable) su, which itself is the number immediately preceding the Jaghanya-parita-asamkhyata apj, i. e.,

$$su = apj - 1.$$

And apj is defined in the Trilokasara as follows¹:—

According to Jaina cosmology the Universe is composed of alternate rings of land and water whose boundaries are concentric circles with increasing radii.

1. See, Triloka-sāra, 35.

Then, the Jaghanya-parita-asamkhyata, apj , is equal to the number of rape-seeds contained in A'' . And $Utkrsta-samkhyāta = su = apj - 1$.

Remarks:—The central idea in dividing numbers into three classes seems to be this:—The extent to which numeration, i. e., counting, can proceed depends on the number-names available in the language or on other methods of expressing numbers. In order, therefore, to extend the bound of numbers which may be counted or expressed in speech, a long series of names of numerical denominations, based primarily on the scale of ten, was coined in India. The Hindus contented themselves with eighteen denominations by the help of which numbers up to 10^{17} could be expressed in speech. Numbers greater than 10^{17} could be expressed by repetition, as we do now when we say million million, etc. But it was realised that repetition was cumbersome. The Buddhists and the Jains who needed numbers much bigger than 10^{17} in their philosophy and cosmology coined denominational names for still greater numbers. We do not possess Jaina denominational names,¹ but the following series of denominational names which is of

1 The Jains possess in their old literature a list of names denoting long periods of time with the year as the unit. The series is as follows:—

1 Varsa (वर्ष) = 1 Year	18 Aṭaṭa (अट्ट) = 84 Lakhs of Aṭaṭangas
2 Yuga (युग) = 5 Years	19 Amamanga (अममांग) = 84 Aṭaṭas
3 Purvāṅga (पूर्वांग) = 84 Lakhs of years	20 Amama (अमम) = 84 Lakhs of Amamangas
4 Purva (पूर्व) = 84 Lakhs of Pūrvāngas	21 Habanga (हाहांग) = 84 Amamas
5 Nayutāṅga (नयुतांग) = 84 Purvas	22 Haha (हाहा) = 84 Lakhs of Habangas
6 Nayuta (नयुत) = 84 Lakhs of Nayutangas	23 Huhanga (हुहांग) = 84 Hahas
7 Kumudāṅga (कुमुदांग) = 84 Nayutas	24 Huhu (हुहु) = 84 Lakhs of Huhangas
8 Kumud (कुमुद) = 84 Lakhs of Kumudangas	25 Latanga (लतांग) = 84 Huhus
9 Padmanga (पद्मांग) = 84 Kumudas	26 Lata (लता) = 84 Lakhs of Lalitangas
10 Padma (पद्म) = 84 Lakhs of Padmangas	27 Mahalatanga (महालतांग) = 84 Latas
11 Nalinanga (नलिनांग) = 84 Padmas	28 Mahalata (महालता) = 84 Lakhs of Mahalatangas
12 Nalina (नलिन) = 84 Lakhs of Nalinangas	29 S'rikalpa (श्रीकल्प) = 84 „ Mahalatas
13 Kamalanga (कमलांग) = 84 Nalinas	30 Hastaprahelita (हस्तप्रहेलित) = 84 Lakhs of Srikalpa
14 Kamala (कमल) = 84 Lakhs of kamalangas	31 Acalapra (अचलप्र) = 84 Lakhs of Hastaprahelita
15 Truṭitanga (त्रुटितांग) = 84 Kamalas	
16 Truṭita (त्रुटित) = 84 Lakhs of Truṭitangas	
17 Aṭaṭanga (अट्टांग) = 84 Truṭitas	

This list is found in the *Triloka-prajñapti* [4th–6th cent.], *Harivamsa-purana* (8th cent.) and *Rajavarttika* [8th cent.], with a few variations in the names only. According to a statement found in *Triloka-prajñapti*, the value of *Acalapra* is obtainable by multiplying 31 times 84 i. e.—

$$Acalapra = 84^{31},$$

and that the value will lead us to 90 decimal places. According to Logarithmic tables, however, 84^{31} gives us only sixty decimal places of notation. (See Dhavala III, introduction and footnote, p. 34). —*Editor*.

Let $C = B + \text{six dravyas}^1$.

Let $D = \left\{ (C^C)C^C \right\} \left\{ (C^C)C^C \right\} + \text{four aggregates}^2$.

Then, Jaghanya parita-ananta [Apj] = $\left\{ (D^D)D^D \right\} \left\{ (D^D)D^D \right\}$

Madhyama-parita-ananta [Apm] is $> Apj$, but $< Apu$;

Utkrsta-parita-ananta [Apu] = $Ayj - 1$;

where—

Jaghanya-yukta-ananta [Ayj] = $(apj)^{(api)}$

Madhyama-yukta-ananta [Aym] is $> Ayj$, but $< Ayu$;

Utkrsta-yukta-ananta [Ayu] = $AAj - 1$;

where—

Jaghanya-ananta-ananta [AAj] = $(Ayj)^2$

Madhyama-ananta-ananta [AAm] is $> AAj$, but $< AAu$;

where—

AAu stands for Utkrsta-ananta-ananta, which, according to *Nemicandra*, is obtained as follows:—

Let—

$$x = \left[\left\{ (AAj)^{AAj} \right\} \left\{ (AAj)^{AAj} \right\} \right] \left[\left\{ (AAj)^{AAj} \right\} \left\{ (AAj)^{AAj} \right\} \right] + \text{six rasis}^3;$$

$$y = \left\{ (x^x)^{x^x} \right\} \left\{ (x^x)^{x^x} \right\} + \text{two rasis}^4;$$

1. The six dravyas are the spatial points of; (1) Dharma, (2) Adharma, (3) one Jiva (4) Iokākāsa, (5) apratisthita (vegetable souls) and (6) Pratisthita (vegetable souls).

2. The four aggregates are: (1) instants of a kalpa, (2) spatial units of the Universe, (3) anubhāgabandha-adhyavasāya-ssthāna, and (4) avibhāga praticcheda of Yoga.

3. These are: (1) siddha, (2) sādharana-vanaspati-nigoda, (3) vanaspati, (4) pudgala (5) vyavahāra kala, and (6) alokakasa.

4. These are: (1) Dharma dravya, (2) adharma dravya, (aguru-laghu-guna-avibhāga praticcheda of both,)

$$z = \{(y^y)^{y^y}\} \{((y^y)^{y^y})^{y^y}\}$$

Now, the aggregate known as kevalajnana is greater than z, and—

$$\begin{aligned} AAu &= \text{Kevalajnana} - z + z \\ &= \text{Kevalajnana} \end{aligned}$$

Remarks—From the above it follows that—

[i] Jaghanya-parita-ananta [apj] is not infinite unless one or more of the six dravyas or the one of the four aggregates, which have been added to obtain it, is infinite.

[ii] Utkrsta-ananta-ananta [AAu] is equivalent to the aggregate called *Kevalajnana*. The description above seems to imply that the utkrsta-ananta-ananta can not be reached by any arithmetical operation, however far it may be carried. In fact it is greater than any number z which can be reached by arithmetical operations. It seems to me, therefore, that *Kevalajnana* is infinite, and hence that utkrsta-ananta-ananta is infinite.

Thus, the description found in the *Trilokasara* leaves us in doubt as to whether any of the three classes of parita-ananta and the three classes of yukta-ananta and the jaghanya-ananta-ananta is actually infinity or not, in as much as they are all said to be the multiples of asamkhyata and even the aggregates that have been added are also asamkhyata only. But the Ananta of the Dhavala is actual infinity, for it is clearly stated that “ a number which can be exhausted by subtraction cannot be called ananta.”¹ It is further stated in the Dhavala that by ananta-ananta is always meant the madhyama-ananta-ananta. So the madhyama-ananta-ananta, according to the Dhavala, is infinite.

The following method of comparing two aggregates given in the Dhavala² is very interesting. Place on one side the aggregate of all the past Avasarpinis and Utsarpinis (i. e., the time-instants in a kalpa, which are supposed to form a continuum and are consequently infinite) and on the other the aggregate of *Mithyadrsti* jiva-rasi. Then taking one element of the one aggregate and a corresponding element from the other, discard them both. Proceeding in this manner the first aggregate is exhausted, whilst the other is not.³ The Dhavala, therefore, concludes that the aggregate of *mithyadrsti-rasi* is greater than that of all the past time-instants.

The above is nothing but the method of one-to-one correspondence which forms the basis of the modern theory of infinite cardinals. It may be argued that the method is applicable to the comparison of finite cardinals also, and so was taken recourse to for comparing two very big finite aggregates, so big that their elements

1. Dhavala III, p. 25. 2. ibid p. 28. 3. ibid p. 28.

could not be counted in terms of any known numerical denomination. This view-point is further supported by the fact that the Jaina works fix the duration of a time-instant, and so the number of time-instants in a Kalpa (*Avasarpini* and *Utsarpini*) must be finite, as the Kalpa itself is not an infinite interval of time. According to this latter view the Jaghanya-parita-ananta (which according to definition is greater than the aggregate of time instants) is finite.

As already pointed out, the method of one-to-one correspondence has proved to be the most powerful tool for the study of infinite cardinals, and the discovery and first use of the principle must be ascribed to the Jainas.

In the above classification of numbers I see a primitive attempt to evolve a theory of infinite cardinal numbers. But there are some serious defects in the theory. These defects would lead to contradictions. One of these is the assumption of the existence of the number $c - 1$, where c is infinite and a limiting number of a class. On the other hand, the Jaina conception that the vargita-samvargita of a cardinal c (i. e., c^c) would lead to a new number is justifiable. If it be true that the Utkrsta-asamkhyata of the early Jaina literature corresponds to infinity, then the creation of the numbers of the ananta class anticipated to some extent the modern theory of infinite cardinals. Any such attempt at such an early age and stage in the growth of mathematics was bound to be a failure. The wonder is that the attempt was made at all.

The existence of several kinds of infinity was first demonstrated by George Cantor about the middle of the nineteenth century. He gave a theory of transfinite numbers. Cantor's researches in the domain of infinite aggregates, have provided a sound basis for mathematics, a powerful tool for research, and a language for correctly expressing the most abstruse mathematical ideas. The theory of transfinite numbers however, is at present in an elementary stage. We do not as yet possess a calculus of these numbers, and so have not been able to bring them effectively in mathematical analysis.

A. N. Singh, D. Sc.,
Lucknow University.

INDEX

(Owing to deficiency of types, proper diacritical marks could not be used in the ' Mathematics of Dhavala '. The following index will be helpful in reading the Sanskrit and Prakrit technical terms correctly.)

- Ababa (अबब) xviii
 Abbuda (अबुद, sk. अबुद) xviii
 Abhayadeva Suri (अभयदेवसूरि) i fn
 Acalapra (अचलप्र) xvii fn
 Adharma (अधर्म) xix fn
 Agamodaya samiti (आगमोदय समिति) i fn
 Aguru-laghu-guṇa (अगुरुलघु गुण) xix fn
 Ahaḥa (अहह) xviii
 Akhobhini (अखोभिनी, sk. अक्षोहिणी) xviii
 Alokakaśa (अलोकाकाश) xix fn
 Amama (अमम) xvii fn
 Amamanga (अममंग) xvii fn
 Ananta (अनन्त) xiv, xv etc.
 Anantananta (अनन्तानन्त) xiv etc.
 Anubhagabandha-adhyasaya-sthana
 (अनुभागबंध-अध्यवसायस्थान) xix fn
 Anuyoga (अनुयोग) iii
 Anuyogadvara-sutra (अनुयोगद्वारसूत्र) iv
 Apradeśikananta (अप्रदेशिकानन्त) xiii
 Apratiṣṭhita (अप्रतिष्ठित) xix fn
 Arddhaccheda (अर्धच्छेद) vii, xii
 Arddhaccheda-śalaka (अर्धच्छेदशलाका) xii
 Ardha-magadhi (अर्धमागधी) iv, x
 Aryabhata (आर्यभट) ii, iii
 Aryabhaṭīya (आर्यभटीय) ii, iv
 Asamkhyata (असंख्यात) xiv, xvii
 Asamkhyeya (असंख्येय) xviii
 Atata (अट) xvii fn, xviii
 Atatanga (अटअंग) xvii fn
 Avibhaga-praticcheda (अविभाग
 -प्रतिच्छेद) xix fn
 Avasarpini (अवसर्पिणी) xx, xxi
 Bappadeva (बप्पदेव) iv
 Benares (बनारस) i
 Bhadrabahavi Saṃhita (भद्रबाहवी
 संहिता) iv
 Bhadrabahu (भद्रबाहु) iii
 Bhagavati-sutra (भगवतीसूत्र) i fn
 Bhaskara (भास्कर) i
 Bhattotpala (महोत्पल) iv
 Bhavananta (भावानन्त) xiii
 Bindu (बिन्दु) xviii
 Brahmagupta (ब्रह्मगुप्त) i, ii.
 Brhat Saṃhita (बृहत्संहिता) iv fn
 Caturthachheda (चतुर्थछेद) viii
 Dasa (दस, sk दश) xviii
 Deya (देय) vi
 Dharma (धर्म) xix fn
 Dhavala (धवल) iii, iv, etc.
 Dravyananta (द्रव्यानन्त) xiii
 Dravya pramana (द्रव्यप्रमाण) v
 Eka (एक) xviii
 Ekananta (एकानन्त) xiii
 Ganita (गणित) i
 Gananananta (गणनानन्त) xiii
 Ganitanuyoga (गणितानुयोग) iii
 Ganita-sara-samgraha (गणितसार-संग्रह)
 i, iii, v,
 Gommatasara (गोम्मतसार) v fn
 Haha (हाहा) xvii fn
 Hahanga (हाहांग) xvii fn
 Harivamsapurana (हरिवंशपुराण) xvii fn
 Hastaprahelita (हस्तप्रहेलित) xvii fn
 Huhanga (हूहांग) xvii fn
 Huhu (हूह) xvii fn
 Ichha (इच्छा) xi
 Indranandi (इन्द्रनन्दि) iv
 Jaghanya° (जघन्य°) xiv, xv, xvii
 Jaghanya-anantananta (जघन्य-अनन्तानन्त)
 xiv, xv, xix
 Jaghanya-asamkhyata-asamkhyata
 (जघन्य-असंख्यात-असंख्यात) xv, xviii etc.

Jaghanya-parita-ananta (जघन्य-परीत-अनन्त) xv, xviii etc.	Madhyama yukta-asamkhyata (मध्यम- युक्त-असंख्यात) xv, xviii etc.
Jaghanya-parita-asamkhyata (जघन्य-परीत- असंख्यात) xv, xviii etc.	Mahakathana (महाकथान) xviii
Jaghanya-yukta-ananta (जघन्य-युक्त-अनन्त) xv, xix	Mahalata (महालता) xvii fn
Jaghanya-yukta-asamkhyata (जघन्य-युक्त- असंख्यात) xv, xviii etc.	Mahalatanga (महालतांग) xvii fn
Jambudvipa (जम्बूद्वीप) xvi	Mahaviracarya (महावीराचार्य) i
Jiva (जीव) xix fn	Malabar (मलबार) i
Jivakanda (जीवकाण्ड) v fn	Malayagiri (मलयगिरि) iv
Jiva-rasi (जीवराशि) v	Mithyadrsti Jiva-rasi (मिथ्यादृष्टि जीवराशि) xx
Kalpa (कल्प) xix fn, xx, xxi	Mysore (मैसूर) i
Kamala (कमल) xvii fn	Nahuta (नहुत) xviii
Kamalanga (कमलांग) xvii fn	Nalina (नलिन) xvii fn
Karana-bhavana (करणभावना) iv	Nalinanga (नलिनांग) xvii fn
Karananuyoga (करणानुयोग) iii	Namananta (नामानन्त) xiii
Kathana (कथान) xviii	Nayuta (नयुत) xvii fn
Kevala-jnana (केवलज्ञान) xx	Nayutanga (नयुतांग) xvii fn
Koti (कोटि) v, xviii	Nemicandra (नेमिचन्द्र) xiv, xviii, xix
Kotippakoti (कोटिपकोटि) xviii	Ninnahuta (निन्नहुत, sk निर्णहुत) xviii
Ksetra-samasa (क्षेत्रसमास) iv	Nirabbuda (निरब्बुद, sk निरर्बुद) xviii
Kumuda (कुमुद) xvii fn, xviii	Padma (पद्म) xvii fn
Kumudanga (कुमुदांग) xvii fn	Padmanga (पद्मांग) xvii fn
Kundakunda (कुंदकुंद) iv	Paduma (पदुम, sk पद्म) xviii
Kusumapura (कुसुमपुर) ii	Pakoti (पकोटि, sk प्रकोटि) xviii
Lata (लता) xvii fn	Pali (पाली) v
Latanga (लतांग) xvii fn	Parita-ananta (परीत-अनन्त) xiv
Lokakasa (लोकाकाश) xix fn	Pataliputra (पाटलिपुत्र) i
Madhyama-ananta-ananta (मध्यम-अनन्त- अनन्त) xv, xix	Phala (फल) xi
Madhyama-asamkhyata-asamkhyata (मध्यम-असंख्यात-असंख्यात) xv, xviii etc.	Prakrit (प्राकृत) iv, v, x
Madhyama-parita-ananta (मध्यम-परीत- अनन्त) xv, xix	Pramana (प्रमाण) xi
Madhyama-parita-asamkhyata (मध्यम- परीत-असंख्यात) xv, xviii etc.	Pratisthita (प्रतिष्ठित) xix
Madhyama-yukta-ananta (मध्यम-युक्त- अनन्त) xv, xix	Pudgala (पुद्गल) xix fn
	Pundarika (पुण्डरीक) xviii
	Purana (पुराण) iii
	Purva (पूर्व) xvii fn
	Purvanga (पूर्वांग) xvii fn
	Rajavarttika (राजवार्तिक) xvii fn
	Rangacarya (रंगाचार्य) iii
	Sadharana-vanaspati-nigoda (साधारण- वनस्पति निगोद) xix fn

- Sahassa** (सहस्र, sk सहस्त्र) xviii
Samantabhadra (समन्तभद्र) iv
Samkhyata (संख्यात) xiv, xv
Sarvananta (सर्वानन्त) xiii
Saswatananta (साश्वतानन्त) xiii
Sata (सत, sk शत) xviii
Satkhandagama (षट्खंडागम) iii
Shamakunda (शामकुंद) iv
Siddha (सिद्ध) xix fn
Siddhasena (सिद्धसेन) iv
Silanka (शीलोक) iv fn
Sogandhika (सोगंधिक, sk सौन्धिक) xviii
Smayadhyayana (स्मयाध्ययन) iv fn
Sridharacarya (श्रीधराचार्य) i, ii
Srikalpa (श्रीकल्प) xvii fn
Srutavatara (श्रुतावतार) iv
Sthananga-sutra (स्थानांग सूत्र) iv
Sthapanananta (स्थापनानन्त) xiii
Sulbasutra (सुल्वसूत्र) ii
Suryaprajnapti (सूर्यप्रज्ञप्ति) iv
Sutrakrtanga sutra (सूत्रकृतांग सूत्र) iv fn
Tathvartbadhigama-sutra-bhasya
 (तत्त्वार्थाधिगमसूत्र-भाष्य) iv
Taxila (तक्षशिला) i
Triloka-prajnapti (त्रिलोक-प्रज्ञप्ति)
 iv, xvii fn
Trilokasara (त्रिलोकसार) iv, xiv, xv, xx
Trikachheda (त्रिकच्छेद) vii
Trutita (त्रुटित) xvii fn
Trutitanga (त्रुटितांग) xvii fn
Tumbulura (तुम्बुलूर) iv
Ubhayananta (उभयानन्त) xiii
Ujjain (उज्जैन) i
Umasvati (उमास्वति) iv
Uppala (उप्पल, sk उत्पल) xviii
Utkrsta-ananta-ananta (उत्कृष्ट-अनन्त-अनन्त)
 xv, xix
Utkrsta-asamkhyata- asamkhyata
 (उत्कृष्ट-असंख्यात-असंख्यात) xv, xviii etc.
Utkrsta-parita-ananta (उत्कृष्ट-परीत-अनन्त)
 xv, xix
Utkrsta-parita-asamkhyata (उत्कृष्ट-परीत-
 असंख्यात) xv, xviii etc.
Utkrsta-yukta-ananta (उत्कृष्ट-युक्त-अनन्त)
 xv, xix
Utkrsta-yukta-asamkhyata (उत्कृष्ट-युक्त-
 असंख्यात) xv xviii etc.
Utsarpini (उत्सर्पिणी) xx, xxi
Uttaradhyayana sutra (उत्तराध्ययनसूत्र)
 i fn
Vanaspati (वनस्पति) xix fn
Varahamihira (वराहमिहिर) ii, iv
Varga (वर्ग) vi
Varga-samvarga (वर्ग-संवर्ग) xi
Varga-salaka (वर्ग-शलाका) vii
Vargita-samvargita (वर्गित-संवर्गित) vi,
 vii, viii, xi, xii fn, xxi.
Varsa (वर्ष) xvii fn
Viralana (विरलन) vi
Viralana.deya (विरलन-देय) vi
Virasena (वीरसेन) iv
Vistarananta (विस्तारानन्त) xiii
Vyavaharakala (व्यवहार काल) xix fn.
Yoga (योग) xix fn
Yojana (योजना) xv
Yuga (युग) xvii fn
Yuka° (युक्त°) xiv, xv
Yuktananta (युक्तानन्त) xiv

सिद्धान्त और उनके अध्ययनका अधिकार

जैनधर्म ज्ञान और विवेक प्रदान है । यहां मनुष्यके प्रत्येक कार्यकी अच्छाई और बुराईका निर्णय वस्तुस्वरूपके विचार और भावोंकी शुद्धि या अशुद्धिके अनुसार किया गया है । ज्ञानका स्थान यहां बहुत ऊंचा है । मोक्षका मार्ग जो रत्नत्रयरूप कहा गया है उसमें ज्ञानका स्थान चारित्रसे पूर्व रखा है । जब कुछ ज्ञान हो जायगा तभी तो चारित्र सुधर सकेगा, और जितनी मात्रामें ज्ञान विशुद्ध होता जायगा उतनी मात्रामें ही चारित्र निर्मल होने की सम्भावना हो सकती है । इसीलिये जैनी देवके साथ ही शास्त्रकी भी पूजा करते हैं । दैनिक आवश्यक क्रियाओंमें शास्त्र-स्वाध्यायका स्थान विशेष रूपसे है^१ । चार प्रकारके दानोंमें^२ शास्त्रदानकी भी बड़ी महिमा है । जैन आचार्योंको ज्ञात था कि धर्मका प्रचार और परिपालन शास्त्रोंके आधारसे ही हो सकता है, अतः उन्होंने समय समय पर सभी स्थानों और प्रदेशोंकी भाषाओंमें ग्रंथ रचकर उनका प्रचार व पठन-पाठन बढ़ानेका प्रयत्न किया । स्वयं तीर्थंकर भगवान्की दिव्यवाणीकी यह एक विशेषता कही जाती है कि उसे सब प्राणी सुन और समझ सकते तथा उससे लाभ उठा सकते हैं । प्राचीन कालकी शिष्ट भाषा कहलानेवाली संस्कृत को छोड़कर जैन सिद्धान्तको प्राकृत-भाषा-निबद्ध करनेमें यह भी एक हेतु कहा जाता है कि जिससे बाल, स्त्री, मन्द, मूर्ख सभी चारित्र सुधारनेकी बांछा रखनेवाले उससे लाभ उठा सकें^३ ।

किन्तु धर्मका उदात्त ध्येय और स्वरूप सदैव एकसा नियत नहीं रहने पाता । ज्यों ही उसमें गुरु कहलानेकी अभिलाषा रखनेवाले व्यक्तियोंकी वृद्धि हुई, और ज्ञानकी हीनता होते हुए भी वे मर्यादासे बाहरकी बातें कहने सुनने लगे, त्यों ही उसमें अनेक विवेकहीन और तर्कशून्य बातें व विश्वास भी आ घुसते हैं, जो भोली समाजमें घर करके कभी कभी बड़े अनर्थके कारण बन जाते हैं । जैनशास्त्र-स्वाध्यायके सम्बन्धमें भी ऐसी ही एक बात उत्पन्न हुई है जिसका हमें यहां विचार करना है ।

षट्खंडागमकी इससे पूर्व तीन जिल्दें प्रकाशित हो चुकी हैं और अब चौथी जिल्द पाठकोंके हाथमें पहुंच रही है । इन सिद्धान्त ग्रंथोंका समाजमें आदर और प्रचार देखकर हमें अपने ध्येयकी सफलताका संतोष हो रहा है । इस ओर समाजके औत्सुक्य और तत्परता का अनुमान इसीसे हो सकता है कि इतने अल्प कालमें हमें सिद्धान्तोद्धारके कार्यमें मूडविद्दी-संस्थानका पूर्ण सहयोग प्राप्त हो गया है, जयधवलके प्रकाशनके लिये भी अनेक संस्थाएं उत्सुक हो उठीं और जैन संघ,

१ देवपूजा गुरुपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः । दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने ॥

२ औषधिदान, शास्त्रदान, अभयदान और आहारदान ।

३ बालस्त्रीमंदमूर्खाणां नृणां चारित्रकांक्षिणाम् । अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः सिद्धान्तः प्राकृतः कृतः ॥

मथुरा, की ओरसे उसका कार्य भी प्रारम्भ हो गया, तथा सेठ गुलाबचंदजी शोलापुरकी सद्भावनासे महाधवलके सम्बन्धमें भी एक समिति सुसंगठित हो गई है। श्रीयुक्त मंजैयाजी हेगडेने तीनों सिद्धान्तोंके मूलपाठको ताड़पत्रीय प्रतियोंके आधारसे प्रकाशित करनेकी स्कीम भी प्रस्तुत की है। प्रकाशित सिद्धान्तका स्वाध्याय भी अनेक मंदिरों और शाखमंडारों व गृहोंमें हो रहा है। यही नहीं, बम्बईकी माणिकचंद जैन परीक्षालय समितिने अपनी गत बैठकमें धवलसिद्धान्तक प्रथम भाग सत्प्ररूपणाको अपनी सर्वोच्च शास्त्री परीक्षाके पाठ्यक्रममें सम्मिलित कर इन सिद्धान्तोंके समयोचित पठन-पाठन का मार्ग भी खोल दिया है।

इस सब प्रगतिसे विद्वत्संसार को बड़ा हर्ष है। किन्तु एकाध विद्वान् अभी ऐसे भी हैं जिन्हें इन सिद्धान्तोंका यह उद्धार-प्रचार उचित नहीं जंचता*। उनके विचारसे न तो इन ग्रंथोंका मुद्रण होना चाहिये, और न इन्हें विद्यालयोंमें अध्ययन-अध्यापनका विषय बनाना चाहिये। यहां तक कि गृहस्थमात्रको इनके पढ़नेका निषेध कर देना चाहिये। उनका यह विवेक निम्न-लिखित आगम और युक्ति पर निर्भर है—

(१) अनेक प्राचीन ग्रंथोंमें यह उपदेश पाया जाता है कि गृहस्थोंको सिद्धान्तोंके श्रवण, पठन या अध्ययनका अधिकार नहीं है।

(२) सिद्धान्तग्रन्थ दो ही हैं जो कि धवल, जयधवल, महाधवलके रूपमें टीका द्वारा उपलब्ध हैं, बाकी सभी शाख सिद्धान्तग्रन्थ नहीं हैं।

प्रथम बातकी पुष्टिमें निम्न लिखित ग्रंथोंके अवतरण दिये गये हैं—

(१) वसुनन्दि श्रावकाचार, (२) श्रुतसागरकृत षट्प्राभृतटीका, (३) वामदेवकृत भावसंग्रह, (४) मेधावीकृत धर्मसंग्रह श्रावकाचार (५) धर्मोपदेशपीयूषवर्षाकर श्रावकाचार,

* देखो पं. भक्तनलाल शास्त्री लिखित 'सिद्धान्तशास्त्र और उनके अध्ययनका अधिकार', मोरेना, वी. सं. २४६८.

१ दिणपडिम धोरचरिया तियालजोगेसु णत्थि अहियारो । सिद्धंत-रहस्साण वि अउमयणं देसाविरदाणं ॥ ३१२ ॥
(वसुनन्दि-श्रावकाचार)

२ वीरचर्या च सूर्यप्रतिमा त्रिकालयोगनियमश्च । सिद्धान्तरहस्यादिष्वध्ययनं नास्ति देशविरतानाम् ॥
(श्रुतसागर-षट्प्राभृतटीका)

३ नास्ति त्रिकालयोगोऽस्य प्रतिमा चाकंसम्मुखा । रहस्यग्रंथसिद्धान्तश्रवणे नाधिकारिता ॥ ५४७ ॥
(वामदेव-भावसंग्रह)

४ कल्प्यन्ते धीरचर्याहःप्रतिमातापनादयः । न श्रावकस्य सिद्धान्तरहस्याध्ययनादिकम् ॥ ७४ ॥
(मेधावी-धर्मसंग्रहश्रावकाचार)

५ त्रिकालयोगनियमो धीरचर्या च सर्वथा । सिद्धान्ताध्ययनं सूर्यप्रतिमा नास्ति तस्य वै ॥
(धर्मोपदेशपीयूषवर्षाकर-श्रावकाचार)

(६) इन्द्रनन्दिकृत नीतिसार और (७) आशाधरकृत सागारधर्माभृत ।

इन सत्र ग्रंथोंमें केवल एक ही अर्थका और प्रायः उन्हीं शब्दोंमें एक ही पद्य पाया जाता है जिसमें कहा गया है कि देशविरत श्रावक या गृहस्थको वीरचर्या, सूर्यप्रतिमा, त्रिकाल-योग और सिद्धान्तरहस्यके अध्ययन करनेका अधिकार नहीं है ।

जिन सात ग्रंथोंमेंसे गृहस्थको सिद्धान्त-अध्ययनका निषेध करनेवाला पद्य उद्धृत किया गया है उनमेंसे नं. ५ और ६ को छोड़कर शेष पांच ग्रंथ इस समय हमारे सन्मुख उपस्थित हैं । वसुनन्दिकृत श्रावकाचारका समय निर्णीत नहीं है तो भी चूंकि आशाधरके ग्रंथोंमें उनके अवतरण पाये जाते हैं और उनके स्वयं ग्रंथोंमें अमितगतिके अवतरण आये हैं, अतः वे इन दोनोंके बीच अर्थात् विक्रमकी १२ हवीं १३ हवीं शब्दादिमें हुए होंगे । उनके ग्रंथकी कोई टीका भी उपलब्ध नहीं है, जिससे लेखकका ठीक अभिप्राय समझमें आ सकता । उनकी गाथाकी प्रथम पंक्तिमें कहा गया है कि दिनप्रतिमा, वीरचर्या और त्रिकालयोग इनमें (देशविरतोंका) अधिकार नहीं है । दूसरी पंक्ति है ' सिद्धन्तरहस्साण वि अज्जयणं देसविरदाणं ' । यथार्थतः इस पंक्तिकी प्रथम पंक्तिके ' णथि अहियारो ' से संगति नहीं बैठती, जब तक कि इसके पाठमें कुछ परिवर्तनादि न किया जाय । ' सिद्धन्तरहस्साण ' का अर्थ हिन्दी अनुवादकने ' सिद्धान्तके रहस्यका पढ़ना ' ऐसा किया है, जो आशाधरजीके किये गये अर्थसे भिन्न है । ग्रंथकारका अभिप्राय समझनेके लिये जब आगे पीछेके पद्य उलटते हैं तो सम्यक्त्वके लक्षणमें देखते हैं—

अत्तागमतत्त्वाणं जं सद्दहणं सुणिम्मलं होदि । संकाइदोसरहियं तं सम्मत्तं सुणेयध्वं ॥ ६ ॥

अर्थात्, जब आप्त आगम और तत्त्वोंमें निर्मल श्रद्धा हो जाय और शंका आदिक कोई दोष नहीं रहे तब सम्यक्त्व हुआ समझना चाहिये । अब क्या सिद्धान्त ग्रंथ आगमसे बाहर हैं, जो उनका अध्ययन न किया जाय ? या शंकादि सब दोषोंका परिहार होकर निर्मल श्रद्धा उन्हें बिना पढ़े ही उत्पन्न हो जाना चाहिये ? आगमकी पहिचानके लिये आगेकी गाथामें कहा गया है—

अत्ता दोसत्रिमुक्को पुच्चापरदोसवज्जियं चयणं ।

अर्थात्, जिसमें कोई दोष नहीं वह आप्त है, और जिसमें पूर्वापर विरोधरूपी दोष न हो वह वचन आगम है । तब क्या आगमको बिना देखे ही उसके पूर्वापर-विरोध-राहित्यको स्वीकार कर निःशंक, निर्मल श्रद्धान कर लेनेका यहां उपदेश दिया गया है ? जैसा हम देखेंगे, आगम और सिद्धान्त एक ही अर्थके द्योतक पर्यायवाची शब्द हैं । कहीं इनमें भेद नहीं किया गया । आगे देशविरतके कर्तव्योंमें कहा गया है—

६ आर्यिकाणां गृहस्थानां शिव्याणामल्पमेधसाम् । न वाचनीयं पुरतः सिद्धान्ताचारपुस्तकम् ॥

(इन्द्रनंदि-नीतिसार)

७ श्रावको वीरचर्याहःप्रतिमातापनादिषु । स्यान्नाधिकारी सिद्धान्तरहस्याध्ययनेऽपि च ॥ ७, ५० ॥

(आशाधर-सागारधर्माभृत)

णाणे णाणुवयरणे णाणवंतम्मि तह थ भत्तीय । जं पडियरणं कीरइ गिच्चं तं णाणविणओ ॥ ३२२ ॥

अर्थात्, ज्ञान, ज्ञानके उपकरण अर्थात् शास्त्र, और ज्ञानवान्की नित्य भक्ति करना ही ज्ञानविनय है । और भी—

हियमियपिज्जं सुत्ताणुवच्चि अफरसमकक्कसं वयणं । सज्जमिजगम्मि जं चाहुभासणं वाचिओ विणओ ॥ ३२७ ॥

अर्थात्, हित, मित, प्रिय और सूत्रके अनुसार वचन बोलना.... आदि वचनविनय है । इन गाथाओंमें जो ज्ञान, ज्ञानोपकरण और ज्ञानी का अलग अलग उल्लेख कर उनके विनयका उपदेश दिया गया है, तथा जो सूत्रके अनुसार वचन बोलने का आदेश है, क्या इस विनय और अनुसरणमें सिद्धान्त गर्भित नहीं है ? क्या सूत्रका अर्थ सिद्धान्त वाक्य नहीं है ? हम आगे चलकर देखेंगे कि सूत्रका अर्थ साक्षात् जिन भगवान् की द्वादशांग वाणी है । तब फिर द्वादशांगसे सम्बन्ध रखनेवाले सिद्धान्त ग्रंथोंके पठनका गृहस्थको निषेध किस प्रकार किया जा सकता है ?

अब श्रुतसागरजीकी षट्प्राभृतटीकाको लीजिये । कुंदकुंदाचार्यकृत सूत्रपाहुडकी २१ वीं गाथा है—

दुइयं च वुत्तलिंगं उकिंठुं अवर सावथाणं च ।

मिक्खं भमेइ पत्तो समिदीभासेण मोणेण ॥

इस गाथामें आचार्यने ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावकके लक्षण बतलाये हैं कि वह भाषासमितिका पालन करता हुआ या मौनसहित भिक्षाके लिये भ्रमण करनेका पात्र है । इसी गाथाकी टीका समाप्त हो जानेके पश्चात् ' उक्तं च समन्तभद्रेण महाकविना ' कहके चार आर्याएं उद्धृत की गई हैं, जिनमें चौथी गाथा है ' वीर्यचर्या च सूर्यप्रतिमा— ' आदि । यहां न तो इसका कोई प्रसंग है और न पाहुडगाथामें उसके लिये कोई आधार है । यह भी पता नहीं चलता कि कौनसे समन्तभद्र महाकविकी रचनामेंसे ये पद्य उद्धृत किये गये हैं । जैनसाहित्यमें जो समन्तभद्र सुप्रसिद्ध हैं उनकी उत्कृष्ट और प्रसिद्ध रचनाओंमें ये पद्य नहीं पाये जाते । प्रत्युत इसके उनके रचित श्रावकाचारमें जैसा हम आगे चलकर देखेंगे, श्रावकों पर ऐसा कोई नियंत्रण नहीं लगाया गया । अतएव वह अवतरण कहां तक प्रामाणिक माना जा सकता है यह शंकास्पद ही है ।

स्वयं कुंदकुंदाचार्यकी इतनी विस्तृत रचनाओंमें कहीं भी इस प्रकारका कोई नियंत्रण नहीं है । इसी सूत्रपाहुडकी गाथा ५ और ७ को देखिये । वहां कहा गया है—

सुत्तथं जिणभणियं जीवाजीवादिबहुविहं अथं ।

हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्धिटी ॥ ५ ॥

सुत्तथपयविगट्टो मिच्छादिट्टी हु सो मुण्यव्वो ॥ ७ ॥

अर्थात्, जो कोई जिनभगवान्के कहे हुए सूत्रोंमें स्थित जीव, अजीव आदि सम्बन्धी माना प्रकारके अर्थको तथा हेय और अहेयको जानता है वही सम्यग्दृष्टि है । सूत्रोंके अर्थसे अज्ञ हुआ मनुष्य मिथ्यादृष्टि है । यहां श्रुतसागरजी अपनी टीकामें कहते हैं ' सूत्रस्यार्थं जिनेन

भणितं प्रतिपादितं ... यः पुमान् जानाति वेत्ति स पुमान् स्फुटं सम्यग्दृष्टिर्भवति । ... सूत्रार्थपदविनष्टः पुमान् मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यः । '

यहाँ श्रुतसागरजी स्वयं जिनोक्त सूत्रोंके अर्थके ज्ञानको सम्यग्दर्शनका अत्यन्त आवश्यक अंग मान रहे हैं, और उस ज्ञानके बिना मनुष्य मिथ्यादृष्टि रहता है यह भी स्वीकार कर रहे हैं। वे 'पुमान्' शब्द के उपयोगसे यह भी स्पष्ट बतला रहे हैं कि जिनोक्त सूत्रोंका अर्थ समझना केवल मुनिराजोंके लिये ही नहीं, किन्तु मनुष्यमात्रके लिये आवश्यक है। ऐसी अवस्थामें वे सिद्धान्त ग्रंथोंको जिनोक्त सूत्रोंसे बाहर समझकर श्रावकोंको उन्हें पढ़नेका निषेध करते हैं, या श्रावकोंको मिथ्यादृष्टि बनाना चाहते ह, यह उनकी स्वयं परस्पर-विरोधी बातोंसे कुछ समझमें नहीं आता। इससे स्पष्ट है कि उस निषेधवाली बातका न तो भगवान् कुंदकुंदकाचार्यके वाक्योंसे सामञ्जस्य बैठता है, और न स्वयं टीकाकारके ही पूर्व कथनोंसे मेल खाता है। श्रुतसागरजीका समय विक्रमकी सोलहवीं शताब्दि सिद्ध होता है'। श्रुतसागरजी कैसे लेखक थे और उनकी षट्पाहुडमें कैसी कैसी रचना है इसके विषयमें एक विद्वान् समालोचकका मत देखिये'।

“ वे (श्रुतसागरजी) कट्टर तो थे ही, असहिष्णु भी बहुत ज्यादा थे। अन्य मतोंका खंडन और विरोध तो औरोंने भी किया है, परन्तु इन्होंने तो खण्डनके साथ बुरी तरह गालियाँ भी दी हैं। सबसे ज्यादा आक्रमण इन्होंने मूर्तिपूजा न करनेवाले लोंकागच्छ (ढूँढियों) पर किया है। जरूरत गैरजरूरत जहाँ भी इनकी इच्छा हुई है, ये उनपर टूट पड़े हैं। इसके लिये उन्होंने प्रसंगकी भी परवा नहीं की। उदाहरणके तौरपर हम उनकी षट्पाहुडटीका को पेश कर सकते हैं। षट्पाहुड भगवत्कुंदकुंदका ग्रंथ है, जो एक परमसहिष्णु, शान्तिप्रिय और आध्यात्मिक विचारक थे। उनके ग्रंथोंमें इस तरहके प्रसंग प्रायः हैं ही नहीं कि उनकी टीकामें दूसरोंपर आक्रमण किये जा सकें, परंतु जो पहलेसे ही भरा बैठा हो, वह तो कोई न कोई बहाना ढूँढ ही लेता है। दर्शनपाहुडकी संगलाचरणके बादकी पहली ही गाथा है—

दंसणमूलो धम्मो उवहट्ठो जिणवरोहिं सिस्साणं । तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिब्बो ॥

इसका सीधा अर्थ है कि जिनदेवने शिष्योंको उपदेश दिया है कि धर्म दर्शनमूलक है, इसलिये जो सम्यग्दर्शनसे रहित है उसकी बंदना नहीं करनी चाहिये। अर्थात्, चारित्र तर्फी बन्दनीय है जब वह सम्यग्दर्शनसे युक्त हो।

इस सर्वथा निरुपद्रव गाथाकी टीकामें कलिकालसर्वज्ञ स्थानकवासियोंपर बुरी तरह बरस पड़ते हैं और कहते हैं—

१ षट्प्राश्नतादिसंग्रह (मा. अ. मा.) भूमिका पृ. ७.

२ जैनसाहित्य और इतिहास, पं. नाथूरामप्रेमी कृत पृ. ४०७-४०८.

‘ कोऽसौ दर्शनहीन इति चेत् तीर्थंकरपरमदेवप्रतिमां न मानयन्ति, न पुष्पादिना पूजयन्ति..... यदि जिनसूत्रमुल्लंघते तदाऽऽस्तिकैर्युक्तिवचनेन निषेधनीयाः । तथापि यदि कदाग्रहं न मुञ्चन्ति तदा समर्थैरास्तिकैरुपानमिः गूयाल्लिप्ताभिर्मुखे ताडनीयाः, तत्र पापं नास्ति ’ ।

अर्थात्, दर्शनहीन कौन है, जो तीर्थंकरप्रतिमा नहीं मानते, उसे पुष्पादिसे नहीं पूजते.... जब ये जिनसूत्रका उल्लंघन करें तब आस्तिकोंको चाहिए कि युक्तियुक्त वचनोंसे उनका निषेध करें, फिर भी यदि वे कदाग्रह न छोड़ें तो समर्थ आस्तिक उनके मुँहपर विष्टासे लिपटे हुए जूते मारें, इसमें जरा भी पाप नहीं । ”

यह है श्रुतसागरजीकी भाषासमिति और उनकी आप्तता । ऐसे द्वेषपूर्ण अश्लील वाक्य एक प्रामाणिक विद्वान् तो क्या साधारण शिष्ट व्यक्तिके मुखसे भी न निकल सकेंगे ।

अब वामदेवजीकेभाव संग्रहको लीजिये जिसके ५४७ वें श्लोक ‘ नास्ति त्रिकाळयोगो ’ आदिमें ग्यारहवीं प्रतिमाके घारी श्रावकको ‘ सिद्धान्त-श्रवण ’ के अधिकारसे वर्जित किया गया है । वामदेवजीका काल विक्रमकी १५ हवीं या १६ हवीं शताब्दि अनुमान किया गया है, । उनकी ग्रंथरचना मौलिक नहीं है, किन्तु १० वीं शताब्दिके देवसेनाचार्यके प्राकृत भावसंग्रहका कुछ परिवर्धित संस्कृत रूपान्तर है । उनकी इस कृतिके विषयमें उस ग्रंथकी भूमिकामें कहा गया है—

“ यह भावसंग्रह प्रायः प्राकृत भावसंग्रहका ही संस्कृत अनुवाद है, दोनों ग्रंथोंको आमने सामने रखकर पढ़नेसे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जाती है । यद्यपि पं. वामदेवजीने इसमें जगह जगह अनेक परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधन आदि किये हैं, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह स्वतंत्र ग्रंथ है । शिष्टताकी दृष्टिसे अच्छा होता, यदि पं. वामदेवजीने अपने ग्रंथमें यह बात स्वीकार कर ली होती । ”

इस परसे जाना जा सकता है कि वामदेवजी किस दर्जेके लेखक और विद्वान् थे । एक प्राचीन और प्रामाणिक आचार्यकी रचनाका उसका नाम लिये बिना ही चुपचाप उसका रूपान्तर करके उन्होंने ग्रंथकार बननेका यश छूटा है । उसमें यदि उन्होंने कुछ परिवर्धन किया है तो वह उसी प्रकारका है जिसका एक उदाहरण हमारे सन्मुख है । उनसे कोई छहसौ वर्ष प्राचीन उक्त प्राकृत भावसंग्रहमें ऐसे निषेधका नाम निशान तक नहीं है । अतएव स्पष्ट है कि वामदेवजीने १६ वीं शताब्दिके लगभग कहींसे यह बात जोड़ी है ।

अब इन्द्रनन्दिजीके नीतिसारान्तर्गत उपदेशको लीजिये । इसमें उक्त निषेधने और भी बड़ा उपरूप धारण किया है । यहां कहा गया है कि—

आर्यिकाणां गृहस्थानां शिष्याणामल्पमेधसाम् । न वाचनीयं पुरतः सिद्धान्ताचारपुस्तकम् ॥

अर्थात्, “ आर्यिकाओंके सामने, गृहस्थोंके सामने और थोड़ी बुद्धिवाले शिष्य मुनियोंके

सामने भी सिद्धान्त शास्त्र नहीं पढने चाहिये ।” इसके अनुसार गृहस्थ ही नहीं, किन्तु मन्दबुद्धि मुनि और समस्त अर्जिकाएं भी निषेधके लपेटेमें आगये । इसका उत्तर हम स्वयं सिद्धान्त-ग्रंथकारोंके शब्दोंमें ही देना चाहते हैं ।

पाठक सत्प्ररूपणाके सूत्र ५ और उसकी धवला टीकाको देखें । सूत्र है—

एदेसि चैव चोद्दसण्हं जीवसमासाणं परुवणट्टदाए तस्य इमाणि अट्ट अणियोगहाराणि णायव्वाणि भवंति ॥ ५ ॥

इसकी टीका है—

‘ तस्य इमाणि अट्ट अणियोगहाराणि ’ एतदेवालं, शेषस्य नान्तरीयकरवादिति चेन्नैष दोषः, मन्दबुद्धिसत्त्वानुग्रहार्थत्वात् ।

अर्थात्, ‘ तस्य इमाणि अट्ट अणियोगहाराणि ’ इतने मात्र सूत्रसे काम चल सकता था, शेष शब्दोंकी सूत्रमें आवश्यकता ही नहीं थी, उनका अर्थ वहीं गर्भित हो सकता था ? इस शंकाका धवलाकार उत्तर देते हैं कि नहीं, यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, सूत्रकारका अभिप्राय मन्दबुद्धि जीवोंका उपकार करना रहा है । अर्थात्, जिस प्रकारसे मन्दबुद्धि प्राणिमात्र सूत्रका अर्थ समझ सकें उस प्रकार स्पष्टतासे सूत्र-रचना की गई है । यहां दो बातें ध्यान देने योग्य हैं । धवलाकारके स्पष्ट मतानुसार एक तो सूत्रकारका अभिप्राय अपना ग्रंथ केवल मुनियोंको नहीं, किन्तु सत्त्वमात्र, पुरुष स्त्री, मुनि, गृहस्थ आदि सभीको ग्राह्य बनानेका रहा है, और दूसरे उन्होंने केवल प्रतिभाशाली बुद्धिमानोंका ही नहीं, किन्तु मन्दबुद्धियों, अल्पमेधावियोंका भी पूरा ध्यान रखा है ।

ऐसी बात आचार्यजीने केवल यहीं कह दी हो, सो बात भी नहीं है । आगेका नौवां सूत्र देखिये जो इस प्रकार है ‘ ओषेण अस्थि मिच्छाविट्ठी । ’ यहां धवलाकार पुनः कहते हैं कि—

यथोद्देशस्तथा निर्देश इति न्यायात् ओषाभिधानमन्तरेणापि ओषोऽवगम्यते, तस्येहपुनरुच्चारणमनर्थकमिति न, तस्य दुर्भेधेनानुग्रहार्थत्वात् । सर्वसत्त्वानुग्रहकारिणो हि जिनाः, नीरागत्वात् ।

अर्थात्, जिस प्रकार उद्देश होता है, उसी प्रकार निर्देश किया जाता है, इस नियमके अनुसार तो ‘ ओष ’ शब्दको सूत्रमें न रखकर भी उसका अर्थ समझा जा सकता था, फिर उसका यहां पुनरुच्चारण अनर्थक हुआ ? इस शंकाका आचार्य उत्तर देते हैं कि नहीं, दुर्भेध, अर्थात् अस्यन्त मन्दबुद्धिवाले लोगोंके अनुग्रहके ध्यानसे उसका सूत्रमें पुनरुच्चारण कर दिया गया है । जिनदेव तो नीराग होते हैं, अर्थात् किसीसे भी रागद्वेष नहीं रखते, और इस कारण वे सभी प्राणियोंका उपकार करना चाहते हैं केवल मुनियों या बुद्धिमानोंका ही नहीं । (सत्प्र. १, पृ. १६२)

और आगे चलिये । सत्प्र. सूत्र ३० में कहा गया है कि संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक तिर्यंच मिश्र होते हैं । इस सूत्रकी टीका करते हुए आचार्य प्रश्न उठाते हैं कि ‘ गतिमार्गणाकी प्ररूपणा करने पर इस गतिमें इतने गुणस्थान होते हैं, और इतने नहीं ’ इस प्रकारके निरूपणसे ही यह जाना जाता है कि इस गतिकी इस गतिके साथ गुणस्थानोंकी अपेक्षा

(८)

षट्खंडागमकी प्रस्तावना

समानता है, इसकी इसके साथ नहीं। अतः फिरसे इसका कथन करना निष्फल है। इस प्रश्नका आचार्य समाधान करते हैं कि—

‘न, तस्य दुर्भेधसामपि स्पष्टीकरणार्थत्वात्। प्रतिपाद्यस्य बुभुक्षितार्थविषयनिर्णयोत्पादनं वक्तृ-वचसः फलम् इति न्यायात्।

अर्थात्, पूर्वोक्त शंका ठीक नहीं, क्योंकि, दुर्भेध लोगोंको उसका भाव स्पष्ट हो जाने, यह उसका प्रयोजन है। न्याय यही कहता है कि जिज्ञासित अर्थका निर्णय करा देना ही वक्ताके वचनोंका फल है।

इसी प्रकार पृ. २७५ पर कहा है कि—

‘अनवगतस्य विस्मृतस्य वा शिष्यस्य प्रश्नवशादस्य सूत्रस्यावतारात्’ अर्थात् उसे जिस बातका अभी तक ज्ञान नहीं है, अथवा होकर विस्मृत हो गया है, ऐसे शिष्यके प्रश्न-वश इस सूत्रका अवतार हुआ है। पृ. ३२२ पर कहा है ‘द्रव्यार्थिकनयात् सत्त्वानुग्रहार्थं तत्प्रवृत्तेः। ... बुद्धीनां वैचित्र्यात्। ... अस्वार्थस्य त्रिकालगोचरानन्तप्राण्यपेक्षया प्रवृत्तत्वात्।

अर्थात् उक्त निरूपण द्रव्यार्थिक नयानुसार समस्त प्राणियोंके अनुग्रहके लिये प्रवृत्त हुआ है। भिन्न भिन्न मनुष्योंकी भिन्न भिन्न प्रकारकी बुद्धि होती है। और इस आर्ष-ग्रंथकी प्रवृत्ति तो त्रिकालवर्ती अनन्त प्राणियोंकी अपेक्षासे ही हुई है। पृ. ३२३ पर कहा है कि ‘जातरेकस्य भव्यस्यारैकानिरसनार्थमाह’

अर्थात्, अमुक बात किसी भी भव्य जीवकी शंकाके निवारणार्थ कही गई है। पृ. ३७० पर कहा है—

निशितबुद्धिजनानुग्रहार्थं द्रव्यार्थिकनयादेशना, मन्दधियामनुग्रहार्थं पर्यायार्थिकनयादेशना।

अर्थात्, तीक्ष्ण बुद्धिवाले मनुष्योंके लिये द्रव्यार्थिकनयका उपदेश दिया गया है, और मन्द बुद्धिवालोंके लिये पर्यायार्थिकनयका। तृतीय भाग पृ. २७७ पर कहा है—

ण पुणरुक्तदोसो वि जिणवयणे संभवइ, मंदबुद्धिसत्ताणुग्गहट्टदाए तस्स साफलादो।

अर्थात्, जिन भगवान्के वचनोंमें पुनरुक्त दोषकी संभावना भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि, मंदबुद्धि जीवोंका उससे उपकार होता है, यही उसका साफल्य है। पृ. ४५३ पर कहा है—
सुद्धमपरूवणमेव किण्ण बुद्धदे ? ण, मेहवि-मंदाइमंदमेहाविजणाणुग्गहकारणेण तहोवएसा।

अर्थात्, अमुक बातका सूक्ष्म प्ररूपणमात्र क्यों नहीं कर दिया, विस्तार क्यों किया? इसका उत्तर है कि मेधावी, मंदबुद्धि और अत्यंत मंदबुद्धि, इन सभी प्रकारके लोगोंका अनुग्रह करनेके लिये उस प्रकार उपदेश किया गया है।

इसी चतुर्थ भागके पृ. ९ पर कहा है—

किमट्टमुभयथा णिहेसो कीरदे ? न, उभयनयावस्थितसत्त्वानुग्रहार्थत्वात्। ण तहओ णिहेसो अत्थि, णयह्यसंट्ठियजीववादिरेत्तसोदारारणं असंभवादो।

अर्थात्, प्रश्न होता है कि ओघ और आदेश, ऐसा दो प्रकारसे ही क्यों निर्देश किया गया है?

इसका उत्तर है कि दोनों नयोंवाले जीवोंके उपकारके लिये । तीसरे प्रकारका कोई निर्देश ही नहीं है, क्योंकि, उक्त दो नयोंमें स्थित जीवोंके अतिरिक्त तीसरे प्रकारके श्रोता होना असंभव है । पुनः पृ. ११५ पर कहा है—

एदेण दध्वपज्जवद्वियणयपज्जायपरिणदजीवाणुगहकारिणो जिणा इदि जाणाविदं ।

अर्थात्, अमुक प्रकार कथनसे यह ज्ञात कराया गया है कि जिन भगवान् द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दोनों नयवर्ती जीवोंका अनुग्रह करनेवाले होते हैं ।

पृ. १२० पर कहा है—

‘ किमट्टं एदेसु तीसु सुत्तेसु पज्जयणयदेसणा ’ बहूणं जीवाणमणुगहट्टं । संगहरुद्धजीवोहितो बहूणं वित्थररुद्धजीवाणसुबलंभादो ।

अर्थात्, इन तीन सूत्रोंमें पर्यायार्थिकनयसे क्यों उपदेश दिया गया है ? इसका उत्तर है कि जिससे अधिक जीवोंका अनुग्रह हो सके । संक्षेपरुचिवाले जीवोंसे विस्ताररुचिवाले जीव बहुत पाये जाते हैं । पृ. २४६ पर पाया जाता है—

उत्तमेव किमिदि पुणो वि उच्चदे फलाभावा ? ण, मंदबुद्धिभवियजणसंभालणदुवारेण फलोवलंभादो ।

अर्थात्, एक बार कहीं हुई बात यहाँ पुनः क्यों दुहराई जा रही है, इसका तो कोई फल नहीं है ! इसका उत्तर आचार्य देते हैं— नहीं, मंदबुद्धि भव्यजनोंके संभालद्वारा उसका फल पाया जाता है ।

ये थोड़ेसे अवतरण धवलसिद्धान्तके प्रकाशित अंशोंमेंसे दिये गये हैं । समस्त धवल और जयधवलमेंसे दो चार नहीं, सैकड़ों अवतरण इस प्रकारके दिये जा सकते हैं जहाँ स्वयं धवलके रचयिता वीरसेनस्वामीने यह स्पष्टतः विना किसी भ्रान्तिके प्रकट किया है कि यह सूत्र-रचना और उनकी टीका प्राणिमात्रके उपयोगके लिये, समस्त भव्यजनोंके हितके लिये, मन्दसे मन्द बुद्धिवाले और महामेधावी शिष्योंके समाधानके लिये हुई है, और उनमें जो पुनरुक्ति व विस्तार पाया जाता है वह इसी उदार ध्येयकी पूर्तिके लिये है । स्वयं धवलाकारके ऐसे सुस्पष्ट आदेशके प्रकाशमें इन्द्रनन्दि आदि लेखकोंका आर्यिकाओं, गृहस्थों और अल्पमेधावी शिष्योंको सिद्धान्त-पुस्तकोंके न पढ़नेका आदेश आर्ष या आगमोक्त है, या अन्यथा, यह पाठक स्वयं विचार कर देख सकते हैं ।

अब हमारे सन्मुख रह जाता है पंडितप्रवर आशाधरजीका वाक्य, जो विक्रमकी १३ हवीं शताब्दिका है । उनका वह निषेधात्मक श्लोक सागारधर्माभूतके सप्तम अध्यायका ५० वां पद्य है । इससे पूर्वके ४९ वें श्लोकमें ऐलककी स्वपाणिपात्रादि क्रियाओंका विधानात्मक उल्लेख है । तथा आगेके ५१ वें श्लोकमें श्रावकोंको दान, शील, उपवासादिका विधानात्मक उपदेश दिया गया है । इन दोनोंके बीच केवल वही एक श्लोक निषेधात्मक दिया गया है । सौभाग्यसे आशाधरजीने

अपने श्लोकोंपर स्वयं टीका भी लिख दी है जिससे उनका श्लोकगत अभिप्राय खूब सुस्पष्ट हो जाय । उन्होंने अपने—

‘स्यान्नाधिकारी सिद्धान्तरहस्याध्ययनेऽपि च’ का अर्थ किया है ‘सिद्धान्तस्य परमागमस्य सूत्र-रूपस्य रहस्यस्य च प्रायश्चित्तशास्त्रस्य अध्ययने पाठे भावको नाधिकारी स्वयदिति संबन्धः ।

अर्थात्, सूत्ररूप परमागमके अध्ययनका अधिकार श्रावकको नहीं है । अब प्रश्न यह उपास्थित होता है कि सूत्ररूप परमागम किसे कहना चाहिये । क्या वीरसेन-जिनसेन रचित धवला जयधवला टीकाएं सूत्ररूप परमागम हैं, या यतिवृषभके चूर्णिसूत्र परमागम हैं, या भगवत् पुष्पदन्त और भूतबलि तथा गुणधर आचार्योंके रत्नै कर्मप्राभृत और कषायप्राभृतके सूत्र व सूत्र-गाथाएं सूत्ररूप परमागम हैं ? या ये सभी सूत्ररूप परमागम हैं ? सूत्रकी सामान्य परिभाषा तो यह है—

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद् गूढनिर्णयम् । अस्तोभमनवचं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥

इसके अनुसार तो पाणिनिके व्याकरणसूत्र और वात्स्यायनके कामसूत्र भी सूत्र हैं, और पुष्पदन्त-भूतबलिकृत कर्मप्राभृत या षट्खंडागम और उमास्वार्तिके तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रंथ सभी सूत्र कहे जाते हैं । किन्तु यदि जैन आगमानुसार सूत्रका विशेष अर्थ यहां अपेक्षित है तो उसकी एक परिभाषा हमें शिवकोटि आचार्यके भगवती आराधनामें मिलती है जहां कहा गया है कि—

सुत्तं गणहरकहिय तहेव पत्तेयबुद्धकहियं च । सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदसपुन्विकहियं च ॥ ३४ ॥

इस गाथाकी टीका विजयोदयामें कहा है कि तीर्थंकरोंके कहे हुए अर्थको जो प्रथित करते हैं वे गणधर हैं, जिन्हें विना परोपदेशके स्वयं ज्ञान उत्पन्न हो जाय, वे स्वयंबुद्ध हैं, समस्त श्रुतांगके धारक श्रुतकेवली हैं और जिन्होंने दशपूर्वोंका अध्ययन कर लिया है और विद्याओंसे चलायमान नहीं होते, वे अभिन्नदशपूर्वी हैं । इनमेंसे किसीके द्वारा भी प्रथित ग्रंथको सूत्र कहते हैं ।

अब यदि हम इस कसौटी पर षट्खंडागम सिद्धान्तको या अन्य उपलब्ध ग्रंथोंको कसैं तो ये ग्रंथ ‘सूत्र’ सिद्ध नहीं होते, क्योंकि, न तो इनके रचयिता तीर्थंकर हैं, न प्रत्येकबुद्ध, न श्रुतकेवली और न अभिन्नदशपूर्वी हैं । धरसेनाचार्यको तो केवल अंग-पूर्वोंका एकदेश ज्ञान आचार्यपरम्परासे मिला था । वह उन्होंने ग्रंथविच्छेदके भयसे पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्योंको सिखा दिया और उसके आधार पर कुछ ग्रंथरचना पुष्पदन्तने और कुछ भूतबलिने की, जो षट्खंडागमके नामसे उपलब्ध है और जिस पर विक्रमकी नौवीं शताब्दिमें वीरसेनाचार्यने धवला टीका लिखी । इस प्रकार यदि हम आशाधरजी द्वारा उक्त सूत्रको सामान्य अर्थमें लेते हैं तो षट्खंडागम सूत्रोंके अनुसार तत्त्वार्थाधिगमसूत्र भी सूत्र हैं, सर्वार्थसिद्धि भी सूत्र ही ठहरता है, क्योंकि, इसमें षट्खंडागमके सूत्रोंका संस्कृत रूपान्तर पाया जाता है, गोम्मटसार भी सूत्र है, क्योंकि, इसमें भी षट्खंडागमके प्रमेयाशका संग्रह, अर्थात् सूत्ररूपसे समुद्धार किया गया है, इत्यादि । पर यदि हम सूत्रका अर्थ भगवती आराधनाकी परिभाषानुसार लें, तो ये कोई भी ग्रन्थ सूत्र नहीं सिद्ध होते । इस स्थितिसे बचनेका कोई उपाय उपलब्ध नहीं है ।

अब इन्हीं आशाधरजीके इसी सागारधर्मामृतके प्रथम अध्यायके १० वें श्लोक और उन्हींके द्वारा लिखी गई उसकी टीकाको देखिये—

शलाकयेवाप्तगिराप्तसूत्रप्रवेशमार्गो मणिवच्च यः स्यात् ।

हीनोऽपि रुच्या रुचिमत्सु तद्वद् भायादसौ सांख्यवहारिकाणाम् ॥

अर्थात्, जिस प्रकार एक मोती जो कि कांति-रहित है, उसमें भी यदि सलाईके द्वारा छिद्र कर सूत (डोरा) पिरोने योग्य मार्ग कर दिया जाय और उसे कांतिवाले मोतियोंकी मालामें पिरो दिया जाय तो वह कांति-रहित मोती भी कांतिवाले मोतियोंके साथ वैसा ही, अर्थात् कांति-सहित ही सुशोभित होता है । इसी प्रकार जो पुरुष सम्यग्दृष्टि नहीं है वह भी यदि सद्गुरुके वचनोंके द्वारा अरंहतदेवके कहे हुये सूत्रोंमें प्रवेश करनेका मार्ग प्राप्त कर ले, तो वह सम्यक्त्व-रहित होकर भी सम्यग्दृष्टियोंमें नयोंके जाननेवाले व्यवहारी लोगोंको सम्यग्दृष्टिके समान ही सुशोभित होता है । सागारधर्मामृतकी टीका भी स्वयं आशाधरजीकी बनाई हुई है । उस श्लोककी टीकामें सूत्रका अर्थ परमागम और प्रवेशमार्गका अर्थ ' अन्तस्तत्त्वपरिच्छेदनेोपाय ' किया गया है, जिससे स्पष्ट है कि आशाधरजीके ही मतानुसार अवित्तसम्यग्दृष्टिकी तो बात क्या, सम्यक्त्वरहित व्यक्तिको भी परमागमके अन्तस्तत्त्वज्ञान करनेका पूर्ण अधिकार है । और भी सागारधर्मामृतके दूसरे अध्यायके २१ वें श्लोकमें आशाधरजी कहते हैं—

तत्त्वार्थ प्रतिपद्य तीर्थकथनादादाय देशव्रतं तदीक्षाप्रयत्नापराजितमहामन्त्रोऽस्तदुद्वैवतः ।

आंगं पौर्वमथार्थसंग्रहमधीत्याधीतशास्त्रान्तरः पर्वान्ते प्रतिमासमाधिसुपयन्धन्यो निहन्त्यंहसी ॥

अर्थात्, तीर्थ याने धर्माचार्य व गृहस्थाचार्यके कथनसे जीवादिक पदार्थोंको निश्चित करके, एक देशव्रतको धरके, दीक्षासे पूर्व अपराजित महामन्त्रका धारी और मिथ्या देवताओंका त्यागी तथा अंगों (द्वादशांग) व पूर्वों (चौदह पूर्वों) के अर्थसंग्रहका अध्ययन करके अन्य शास्त्रोंका भी अधीता पर्वके अन्तमें प्रतिमायोगको धारण करनेवाला पुण्यात्मा जीव पापोंको नष्ट करता है ।

इस पद्यमें आशाधरजीने अजैनसे जैन बननेके आठ संस्कारों, अर्थात् अवतार, वृत्तलाभ, स्थानलाभ, गणप्रद, पूजाराध्य, पुण्ययज्ञ, दृढचर्या और उपयोगिताका संक्षेपमें निरूपण किया है, जिसमें उन्होंने जैन बननेसे पूर्व ही अर्थात् अपनी अजैन अवस्थामें ही जैन श्रुतांगों अर्थात् बारह अंग और चौदह पूर्वके ' अर्थसंग्रह ' के अध्ययन कर लेनेका उपदेश दिया है । पूजाराध्य, पुण्ययज्ञ और दृढचर्या क्रियाओंका स्वरूप स्वयं वीरसेनस्वामीके शिष्य तथा जयधवलके उत्तरभागके रचयिता जितसेन स्वामीने महापुराणमें भी इस प्रकार बतलाया है —

पूजाराध्याख्यया कथायाऽस्य स्यादतः परा । पूजोपवाससम्पत्त्या गृह्णतोऽङ्गार्थसंग्रहम् ॥

सतोऽन्या पुण्ययज्ञाख्या क्रिया पुण्यानुबन्धिनी । शृण्वतः पूर्वविद्यानामर्थं सप्रज्ञाचारिणः ॥

तदास्य दृढचर्याख्या क्रिया स्वसमये श्रुतम् । निष्ठाप्य शृण्वतो ग्रंथान्बाह्यानन्यांश्च कांश्चन ॥

यहां भी जैन होनेसे पूर्व ही गृहस्थको अंगोंके अर्थसंग्रहका तथा पूर्वोंकी विद्याओंको सुन लेनेका पूरा अधिकार दिया गया है । यद्यपि मेधावीकृत धर्मसंग्रहश्रावकाचार इस समय हमारे सम्मुख नहीं

है तथापि यह तो सुविदित है कि पं. मेधावी या मीहा जिनचन्द्रभट्टारकके शिष्य थे और उन्होंने अपना यह ग्रन्थ वि. सं, १५४१ में हिसार (पंजाब) नगरमें वसुनन्दि, आशाधर और समन्तभद्रके ग्रन्थोंके आधारसे बनाया था। धर्मोपदेशपीयूषवर्षाकर श्रावकाचारका तो हमने नाम ही इसी समय प्रथम बार देखा है, और यहां भी न तो उसके कर्ताका कोई नाम-धाम बतलाया गया और न उसकी किसी प्रति मुद्रित या हस्तलिखितका उल्लेख किया गया। अतएव इस अज्ञात कुल-शील ग्रंथकी हम परीक्षा क्या करें? यह कोई प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथ तो ज्ञात नहीं होता। लेखकने एक वर्तमान रचयिता मुनि सुधर्मसागरजीके लिखे हुए 'सुधर्मश्रावकाचार' का मत भी उद्धृत किया है। किन्तु प्राचीन प्रमाणोंकी ऊहापोहमें उसे लेना हमने उचित नहीं समझा। वह तो पूर्वोक्त ग्रंथोंके आश्रयसे ही आजका उनका मत है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गृहस्थको सिद्धान्त-ग्रंथोंका निषेध करनेवाले ग्रंथोंमें जिन रचनाओंका समय निश्चयतः ज्ञात है वे १३ हवीं शताब्दिसे पूर्वकी नहीं हैं। उनमें सिद्धान्तका अर्थ भी स्पष्ट नहीं किया गया और जहां किया गया है वहां पूर्वापर-विरोध पाया जाता है। कोई उचित युक्ति या तर्क भी उनमें नहीं पाया जाता। यह तो सुज्ञात ही है कि जिन ग्रंथोंमें पूर्वापर-विरोध या विवेक वैपरीत्य पाया जावे वे प्रामाणिक आगम नहीं कहे जा सकते। इन्द्रनन्दिके वाक्योंका तो सीधे सिद्धान्त ग्रंथोंके ही वाक्योंसे विरोध पाया जाता है, अतः वह प्रामाणिक किस प्रकार गिना जा सकता है? यथार्थतः प्रामाणिक जैन शास्त्रोंकी रचना और शासनके प्रवर्तनका चरमोन्नत काल तो उक्त समस्त ग्रंथोंकी रचनासे पूर्ववर्ती ही है। तब क्या कारण है कि इससे पूर्वके ग्रंथोंमें हमें गृहस्थके सिद्धान्त ग्रंथोंके अध्ययनके सम्बन्धमें किसी नियंत्रणका उल्लेख नहीं मिलता? श्रावकाचारका सबसे प्रधान, प्राचीन, उत्तम और सुप्रसिद्ध ग्रंथ स्वामी समन्तभद्रकृत रत्नकरण्डश्रावकाचार है, जिसे बादिराजसूरिने 'अक्षयसुखावह' और प्रभाचन्द्रने 'अखिल सागारमार्गको प्रकाशित करनेवाला निर्मल सूर्य' कहा है। इस ग्रंथमें श्रावकोंके अध्ययनपर कोई नियंत्रण नहीं लगाया गया, किन्तु इसके विपरीत सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्रको सम्पादन करना ही गृहस्थका सच्चा धर्म कहा है, तथा ज्ञान-परिच्छेदमें, प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोगसम्बन्धी समस्त आगमका स्वरूप दिखाकर यह स्पष्ट कर दिया है कि इनका अध्ययन गृहस्थके लिये हितकारी है। द्रव्यानुयोगका अर्थ भी वहां टीकाकार प्रभाचन्द्रजीने 'द्रव्यानुयोग सिद्धान्तसूत्र' किया है, जिससे स्पष्ट है कि गृहस्थके सिद्धान्ताध्ययनमें उन्हें किसी प्रकारकी कैद अमीष्ट नहीं है। इस श्रावकाचारमें उपवासके दिन गृहस्थको 'ज्ञान-ध्यान परायण' होनेका विशेषरूपसे उपदेश है, तथा उत्कृष्ट श्रावकके लिये समय या आगमका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक बतलाया है—समयं यदि जानीते, श्रेयो ज्ञाता ध्रुवं भवति ॥ ५, २७. 'यदि समयं आगमं जानीते, आगमज्ञो यदि भवति, तदा ध्रुवं निश्चयेन श्रेयो ज्ञाता स भवति'

(प्रभाचन्द्रकृत टीका)

धर्मपरीक्षादि ग्रन्थोंके विद्वान् कर्ता अमितगति आचार्य विक्रमकी ११ हवीं शताब्दिमें हुए हैं। इनका बनाया हुआ श्रावकाचार भी खूब सुविस्तृत ग्रंथ है। इस ग्रंथमें उन्होंने 'जिन-प्रवचनका अभिज्ञ' होना उत्तम श्रावकका आवश्यक लक्षण माना है। यथा—

ऋजुभूतमनोबुद्धिर्गुरुशुश्रूषणोद्यतः । जिनप्रवचनाभिज्ञः श्रावकः सत्प्रोत्तमः ॥ १३, २.

आगे चलकर उन्होंने गृहस्थको आगमका अध्ययन करना भी आवश्यक बतलाया है—

आगमाध्ययनं कार्यं कृतकालादिशुद्धिना । विनयारूढचित्तेन बहुमानविधायिना ॥ १३, १०.

गृहस्थको स्वाध्यायके उपदेशमें स्वाध्यायके पांच प्रकारोंमें वाचना, आम्नाय और अनुप्रेक्षाका भी विधान है। यथा—

वाचना पृच्छनाऽऽम्नायानुप्रेक्षा धर्मदेशना । स्वाध्यायः पंचधा कृत्यः पंचमी गतिमिच्छता ॥ १३, ८१

गृहस्थोंको जहां तक हो सके स्वयं जिनभगवान्के वचनोंका पठन और ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि, उनके बिना वे कृत्याकृत्य-विवेककी प्राप्ति, व आत्म-अहितका त्याग नहीं कर सकते।

जानात्यकृत्यं न जनो न कृत्यं जैनेश्वरं वाक्यमबुद्धमानः ।

करोत्यकृत्यं विजहाति कृत्यं ततस्ततो गच्छति दुःखमुग्रम् ॥ १३, ८९

अनात्मनीनं परिहर्तुकामा ग्रहीतुकामाः पुनरात्मनीनम् ।

पठन्ति शशुजिन्ननाथवाक्यं समस्तकल्याणविधायि संतः ॥ १३, ९०

यथार्थतः वे मूढ़ हैं जो स्वयं जिनभगवान्के कहे हुए सूत्रोंको छोड़कर दूसरोंके वचनोंका आश्रय लेते हैं। जिनभगवान्के वाक्यके समान दूसरा अमृत नहीं है—

सुखाय ये सूत्रमपात्य जैनं मूढाः श्रयन्ते वचनं परेषाम् । १३, ९१

विहाय वाक्यं जिनचन्द्रदृष्टं परं न पीयूषमिहास्ति किञ्चित् ॥ १३, ९२ इत्यादि

यशःकीर्तिकृत प्रबोधसार' भी श्रावकाचारका उत्तम ग्रंथ है। इसमें गृहस्थोंको उपदेश दिया गया है कि श्रुतके अभावमें तो समस्त शासनका नाश हो जायगा, अतः सब प्रयत्न करके श्रुतके सारका उद्धार करना चाहिये। श्रुतसे ही तत्त्वोंका परामर्श होता है और श्रुतसे ही शासन की वृद्धि होती है। तीर्थंकरोंके अभावमें शासन श्रुतके ही आधीन है, इत्यादि।

नश्यत्येव ध्रुवं सर्वं श्रुताभावेऽत्र शासनम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रुतसारं समुद्धरेत् ॥

श्रुतात्तत्त्वपरामर्शः श्रुतात्ममयवर्द्धनम् । तीर्थेणाभावतः सर्वं श्रुताधीनं हि शासनम् ॥ ३, ६३-६४.

इस प्रकार प्राचीन श्रावकाचार-ग्रंथोंने गृहस्थोंके लिये न केवल सिद्धान्ताध्ययनका निषेध नहीं किया, किन्तु प्रबलतासे उसका उपदेश दिया है। हम ऊपर बतला ही आये हैं कि स्वयं भगवान् कुंदकुंदाचार्य अपने सूत्रपाण्डुडमें जिनभगवान्के कहे हुए सूत्रके अर्थके ज्ञानको सम्यग्दर्शनका अत्यन्त आवश्यक अंग कहते हैं, और सूत्रार्थसे जो च्युत हुआ उसे वे मिथ्यादृष्टि समझते हैं।

सिद्धान्त किसे कहना चाहिये, इस बातकी पुष्टिमें केवल इन्द्रनिदि और विबुधश्रीधरकृत

१ सखाराम नेमचंद ग्रंथमाला, सोलापुर, १९२८-

२ अनन्तकीर्ति जैनग्रंथमाला, बम्बई, १९७९.

श्रुतावतारोंके ऐसे अवतरण दिये गये हैं, जिनमें कर्मप्राभृत और कपायप्राभृतको ' सिद्धान्त ' कहा गया है, तथा अपभ्रंश कवि पुष्पदन्तका वह अवतरण दिया है जहां उन्होंने धवल और जयधवलको सिद्धान्त कहा है । किन्तु इन ग्रन्थोंके सिद्धान्त कहे जानेसे अन्य ग्रंथ सिद्धान्त नहीं रहे, यह कौनसे तर्कसे सिद्ध हुआ, यह समझमें नहीं आता । इस सिलसिलेमें गोम्मटसारको असिद्धान्त सिद्ध करनेके लिये गोम्मटसारकी टीकाके वे अंश उद्धृत किये गये हैं जिनमें कहा गया है कि षट्खंडागमका निरवशेष प्रमेयांश लेकर गोम्मटसारकी रचना की गई है । लेखकके अनुसार " इस कथनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गोम्मटसार सिद्धान्तग्रंथ नहीं है, किन्तु सिद्धान्तग्रंथोंसे सारे लेकर बनाया गया है । सिद्धान्त ग्रंथ दो ही हैं, यह बात भी इन पंक्तियोंसे सिद्ध हो जाती है । " किन्तु उन पंक्तियोंमें हमें ऐसा व्यक्छेदक भाव जरा भी दृष्टिगोचर नहीं होता । न तो लेखक सिद्धान्तकी कोई परिभाषा दे सके, जिससे केवल उक्त दो ही सिद्धान्त-ग्रंथ ठहर जायें और अन्य गोम्मटसारादि ग्रंथ सिद्धान्तश्रेणी के बाहर पड़ जायें । और न कोई ऐसा प्राचीन उल्लेख ही बता सके, जहां कहा गया हो कि सिद्धान्त-ग्रंथ केवल दो ही हैं, अन्य नहीं । यथार्थ बात तो यह है कि सिद्धान्त, आगम, प्रवचन ये सब शब्द एक ही अर्थके पर्यायवाची शब्द हैं । स्वयं धवलाकारने कहा है—' भाष्यो सिद्धतो पवचणमिदि ष्यट्टो ' (सत्प्र. १ पृ. २०)

अर्थात्, आगम, सिद्धान्त, प्रवचन, ये सब एक ही अर्थके बोधक शब्द हैं । लेखकने भी आगम और सिद्धान्तको एकार्थवाची स्वीकार किया है । यही नहीं, किन्तु गृहस्थोंको सिद्धान्ताध्ययनका निषेध करनेवाले पूर्वोक्त साधारण परस्पर-विरोधी कथन करनेवाले और युक्ति-हीन वाक्योंको भी वे ' आगम ' करके मानते हैं । किन्तु सिद्धान्तोंके निरवशेष प्रमेयांशका समुद्धार करनेवाले गोम्मटसारको सिद्धान्त माननेमें उन्हें ऐतराज है । षट्खंडागम भी तो महाकर्मप्रकृतिपाहुडका संक्षिप्त समुद्धार है । फिर यह कैसे सिद्धान्त बना रहता है, और गोम्मटसार कैसे सिद्धान्त-बाह्य हो जाता है; यह युक्ति समझमें नहीं आती । यदि किसीके किन्हीं ग्रंथोंको सिद्धान्त कहनेसे ही अन्य दूसरे ग्रंथ असिद्धान्त हो जाते हों, तो गोम्मटसारादि ग्रंथोंके भी सिद्धान्तरूपसे उल्लिखित किये जानेके प्रमाण दिये जा सकते हैं । उदाहरणार्थ, राजमल्लकृत लाटीसंहिता नामक श्रावकाचार ग्रंथमें उल्लेख है—

षट्खंडं गोम्मटसारे सिद्धान्ते सिद्धसाधने । तस्यै च यथाग्नायात् प्रतीत्यै जप्तिं साम्प्रतम् ॥ ५, १३४.

इस प्रकारके उल्लेखोंसे क्या गोम्मटसार सिद्धान्त ग्रंथ सिद्ध नहीं होता ? और क्या उसके सिद्धान्त ग्रंथ सिद्ध हो जानेसे शेष ग्रंथ सिद्धान्तबाह्य सिद्ध हो जाते हैं ?

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो समस्त जैनधर्म और सिद्धान्तका ध्येय जिनोक्त वाक्योंको सर्वव्यापी बनानेका रहा है । स्वयं तीर्थंकरके समवसरणमें मनुष्यमात्र ही नहीं, पशु-पक्षी आदि तक सम्मिलित होते थे, जो सभी भगवान्के उपदेशको सुन समझ सकते थे । जब द्वादशांग वाणीकी आधारभूत दिव्यध्वनि तकको सुननेका अधिकार समस्त प्राणियोंको है, तब उस वाणीके सारांशको ग्रथित करने-

वाले कोई भी सिद्धान्त ग्रंथ श्रावकोंके लिये क्यों निषिद्ध किये जायेंगे, यह समझमें नहीं आता । सम्यग्दर्शनको निर्मल बनानेके लिये सिद्धान्तका आश्रय अत्यंत वांछनीय है । समस्त शंकाओंका निवारण होकर निःशंकित-अंगकी उपलब्धिका सिद्धान्ताध्ययनसे बढ़कर दूसरा उपाय नहीं । जिन सैद्धान्तिक बातोंके तर्क-वितर्कमें विद्वानोंका और जिज्ञासुओंका न जाने कितना बहुमूल्य समय व्यय हुआ करता है और फिर भी वे ठीक निर्णय पर नहीं पहुंच पाते, ऐसी अनेक गुत्थियां इन सिद्धान्त ग्रंथोंमें सुलझी हुई पड़ी हैं । उनसे अपने ज्ञानको निर्मल और विकसित बनानेका सीधा मार्ग गृहस्थ जिज्ञासुओं और विद्यार्थियोंको क्यों न बताया जाय ? स्वयं ध्वलसिद्धान्तमें कहीं भी ऐसा नियंत्रण नहीं लगाया गया कि ये ग्रंथ मुनियोंको ही पढ़ना चाहिये, गृहस्थोंको नहीं । बल्कि, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, जगह जगह हमें आचार्यका यही संकेत मिलता है कि उन्होंने मनुष्यमात्रका ख्याल रखकर व्य.ख्यान किया है । उन्होंने जगह जगह कहा है कि 'जिन भगवान् सर्वसत्त्वोपकारी होते हैं, और इसलिये सबकी समझदारीके लिये अमुक बात अमुक रीतिसे कही गई है । यदि सिद्धान्तोंको पढ़नेका निषेध है, तो वह अर्थ या विषय की दृष्टिसे है कि भाषाकी दृष्टिसे, यह भी विचार कर लेना चाहिए । ध्वलादि सिद्धान्तग्रंथोंकी भाषा वही है जो कुंदकुंदाचार्यादि प्राकृत ग्रंथकारोंकी रचनाओंमें पाई जाती है, जिसके अनेक व्याकरण आदि भी हैं । अतएव भाषाकी दृष्टिसे नियंत्रण लगानेका कोई कारण नहीं दिखता । यदि विषयकी दृष्टिसे देखा जाय तो यहांकी तत्वचर्चा भी वही है जो हमें तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, गोम्मटसार आदि ग्रंथोंमें मिलती है । फिर उसी चर्चाको गृहस्थ इन ग्रंथोंमें पढ़ सकता है, लेकिन उन ग्रंथोंमें नहीं, यह कैसी बात है ? यदि सिद्धान्त-पठनका निषेध है तो ये सब ग्रंथ भी उस निषेध-कोटिमें आवेंगे । जब सिद्धान्ताध्ययनके निषेधवाले उपर्युक्त अत्यंत आधुनिक पुस्तकोंको सिद्धान्तके पर्यायवाची शब्द आगमसे उल्लिखित किया जा सकता है, तब एक अत्यन्त हीन दलीलके पोषण-निमित्त गोम्मटसार व सर्वार्थसिद्धि जैसे ग्रंथोंको सिद्धान्तबाह्य कह देना चरमसीमाका साहस और भारी अविनय है । यथार्थतः सर्वार्थसिद्धिमें तो कर्मप्राभृतके ही सूत्रोंका अक्षरशः उसी क्रमसे संस्कृत रूपान्तर पाया जाता है, जैसा कि ध्वलाके प्रकाशित भागोंके सूत्रों और उनके नीचे टिप्पणोंमें दिये गये सर्वार्थसिद्धिके अवतरणोंमें सहज ही देख सकते हैं । राजवार्तिक आदि ग्रंथोंको ध्वलाकारने स्वयं बड़े आदरसे अपने मतोंकी पुष्टिमें प्रस्तुत किया है । गोम्मटसार तो ध्वलादिका सारभूत ग्रंथ ही है, जिसकी गाथाएं की गाथाएं सीधी वहांसे ली गई हैं । उसके सिद्धान्तरूपसे उल्लेख किये जानेका एक प्रमाण भी ऊपर दिया जा चुका है । ऐसी अवस्थामें इन पूज्य ग्रंथोंको 'सिद्धान्त नहीं है' ऐसा कहना बड़ा ही अनुचित है ।

मैं इस विषयको विशेष बढ़ाना अनावश्यक समझता हूं, क्योंकि, उक्त निषेधके पक्षमें न प्राचीन ग्रंथोंका बल है और न सामान्य युक्ति या तर्कका । जान पड़ता है, जिस प्रकार वैदिक धर्मके इतिहासमें एक समय वेदके अध्ययनका द्विजोंके अतिरिक्त दूसरोंको निषेध किया गया था,

उसी प्रकार जैन समाजके गिरतीके समयमें किसी 'गुरु' ने अपने अज्ञानको छुपानेके लिये यह सार-हीन और जैन उदार-नीतिके विपरीत बात चला दी, जिसकी गतानुगतिक थोड़ीसी परम्परा चलकर आज तक सद्ज्ञानके प्रचारमें बाधा उत्पन्न कर रही है। सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र और चामुण्डरायजी के विषयमें जो कथा कही जाती है वह प्राचीन किसी भी ग्रंथमें नहीं पाई जाती और पीछेकी निराधार निरी कल्पना प्रतीत होती है। ऐसी ही निराधार कल्पनाओंका यह परिणाम हुआ कि गत सैकड़ों वर्षोंमें इन उत्तमोत्तम सिद्धान्त ग्रंथोंका पठन-पाठन नहीं हुआ और उनका जैन साहित्यके निर्माणमें जब जितना उपयोग होना चाहिये था, नहीं हुआ। यही नहीं, इनकी एक मात्र अवशिष्ट प्रतियां भी धीरे धीरे विनष्ट होने लगी थीं। महाधवलकी प्रतिमेंसे कितने ही पत्र अप्राप्य हैं और कितने ही छिद्रित आदि हो जानेसे उनमें पाठ-स्खलन उत्पन्न हो गये हैं। यह जो लिखा है कि इन सिद्धान्त ग्रंथोंकी कापियां करा कराके जगह जगह विराजमान करा दी जानी चाहिए, सो ये कापियां कौन करेगा? श्रावक ही तो? या मुनिजनोंको दिया जायगा, सो भी अल्पबुद्धि नहीं, विद्वान् मुनियोंको? यथार्थतः गृहस्थों द्वारा ही तो उनकी प्रतिलिपियां की गईं, और की जा सकती हैं, तथा गृहस्थों द्वारा ही उनका जो कुछ उद्धार संभव है, किया जा रहा है। इसमें न तो कोई दूषण है, न बिगाड़। अब तो जैन सिद्धान्तको समस्त संसारमें घोषित करनेका यही उपाय है। हाथ कंकनको आरसी क्या?

२. शंका-समाधान

पुस्तक १, पृष्ठ २३४

१. शंका—'तद्भ्रमणमंतरेणाशुभ्रमज्जीवानां भ्रमद्भूम्यादिदर्शनानुपपत्तेः इति'। इस वाक्यका अर्थ मुझे स्पष्ट नहीं हो सका। उसमें पृथ्वीके परिभ्रमणका उल्लेखसा प्रतीत होता है। उसका अर्थ खोलकर समझानेकी कृपा कीजिये। (नेमीचंदजी वकील, सहारनपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान—प्रस्तुत प्रकरणमें शंका यह उठाई गई है कि द्रव्येन्द्रियप्रमाण जीव-प्रदेशोंका भ्रमण नहीं होता, ऐसा क्यों न मान लिया जाय, क्योंकि, सर्व जीव-प्रदेशोंके भ्रमण माननेपर उनके शरीरके साथ सम्बन्ध-विच्छेदका प्रसंग आता है? इस शंकाको उत्तर आचार्य इस प्रकार देते हैं कि 'यदि द्रव्येन्द्रियप्रमाण जीव-प्रदेशोंका भ्रमण नहीं माना जावे, तो अत्यन्त द्रुतगतिसे भ्रमण करते हुए जीवोंको भ्रमण करती हुई पृथिवी आदिका ज्ञान नहीं हो सकता है।' इसका अभिप्राय यह है कि जब कोई व्यक्ति शीघ्रतासे चक्कर लेता है तो उसे कुछ क्षणके लिये अपने आस पास चारों ओरका समस्त भूमंडल पृथिवी, पर्वत, वृक्ष, गृहादि घूमता हुआ दिखाई देता है। इसका कारण उपर्युक्त समाधानमें यह सूचित किया गया है, कि उस व्यक्तिक शीघ्रतासे चक्कर लेनेकी

अवस्थामें उसके जीवप्रदेश भी शरीरके भीतर ही भीतर शीघ्रतासे भ्रमण करने लगते हैं, जिसके कारण उसे पृथिवी आदि सब घूमते हुए दिखाई देने लगते हैं। यदि द्रव्येन्द्रियप्रमाण जीवप्रदेशोंको स्थिर माना जाय तो उक्त अवस्थामें भूमंडलादिके घूमते हुए दिखनेका कोई कारण नहीं रह जाता। इसलिये आचार्य कहते हैं कि 'आत्मप्रदेशोंके भ्रमण करते समय द्रव्येन्द्रियप्रमाण आत्म-प्रदेशोंका भी भ्रमण स्वीकार कर लेना चाहिये'। आधुनिक मान्यतासम्बन्धी भूभ्रमणका तो दर्शन किसीको किसी अवस्थामें भी होता नहीं है। इसलिये यहां उस भूमिभ्रमणका कोई उल्लेख नहीं प्रतीत होता।

पुस्तक २, पृ. ४२३.

२ शंका—नकशा नं. २ में प्राणके खानेमें सयोगिकेवलीकी अपेक्षा २ प्राण भी होना चाहिये ? (रतनचंदजी मुख्तार, सहारनपुर. पत्र, ३-४-४१.)

समाधान—प्रस्तुत प्रकरणमें अपर्याप्त जीवोंके सामान्य आलाप बतलाए गए हैं, जिनमें क्रमशः संज्ञी पंचेन्द्रियसे लगाकर एकेन्द्रिय तकके समस्त जीवोंकी विवक्षा है, केवलिसमुद्रात जैसी विशेष अवस्थाओंकी यहां विवक्षा नहीं है। इसी कारण शंकाकार द्वारा बतलाये गये २ प्राण न मूल टीकामें कहे गये, न अनुवादमें लिये गये, और न उक्त नकशामें दिखाये गये। किन्तु पृष्ठ नं. ४४४ नकशा नं. २५ पर जहां सयोगिकेवलीके ही आलाप बतलाये गये हैं, वहांपर साधारण अवस्थामें होनेवाले चार प्राणोंका और विशेष अवस्थामें होनेवाले उक्त दो प्राणोंका उल्लेख किया ही गया है।

पुस्तक २, पृ. ४३२-४३५

३ शंका—अर्थमें तथा नकशा नं. १४, १५, १६ और १७ में वेदके आलापमें जो तीन वेद कहे हैं सो वहां ३ भाव वेद कहना चाहिये। (नानकचंदजी, खतौली, पत्र ता. १०-११-४१)

समाधान—नकशा नं. १४, १५, १६, १७ संबंधी आलापोंमें तथा इससे आगे पीछेके सभी आलापोंमें भाववेदकी ही विवक्षा की गई है। धवलाकारने लेश्या आलापमें जैसे द्रव्यलेश्या और भावलेश्याका विभाग कर पृथक् पृथक् वर्णन किया है, वैसा वेद आलापमें द्रव्यवेद और भाव-वेदका विभाग कर मूलमें कहीं वर्णन नहीं किया है। अतः उक्त नकशोंमें भी भाववेद लिखनेकी आवश्यकता नहीं समझी, यद्यपि तात्पर्य यहां तथा अन्यत्र भाववेदसे ही है।

पुस्तक २, पृ. ४३४

४ शंका—पृष्ठ ४३३ पर जो प्रमत्तसंयत पर्याप्त तथा अपर्याप्तका कथन है, उनके यंत्र क्यों नहीं बनाए गए ? (नानकचंदजी, खतौली, पत्र ता. १०-११-४१)

समाधान—प्रस्तुत ग्रंथभागमें उन्हीं यंत्रोंको बनाया गया है, जिनका वर्णन धवला टीकामें पाया जाता है। प्रमत्तसंयत पर्याप्त तथा अपर्याप्तके आलापोंका धवला टीकामें कथन नहीं है, अतः उनके पृथक् यंत्र भी नहीं बनाये गये। तो भी विषयके प्रसंगवश विशेषार्थके अन्तर्गत सर्व साधारण

पाठकोंके परिज्ञानार्थ पृ. ४३३ पर उनका कथन किया गया है ।

पुस्तक २, पृ. ४५१

५ शंका—पृ. ४५१, यंत्र ३१, में प्राणमें अ, लिखा है सो नहीं होना चाहिये ?

(नानकचंदजी खतौली, पत्र १०-११-४१)

समाधान—जिन गुणस्थानों या जीवसमासोंमें पर्याप्त और अपर्याप्त कालसम्बन्धी आलाप सम्भव हैं, उनके सामान्य आलाप कहते समय पाठकोंको भ्रम न हो, इसलिए पर्याप्त कालमें सम्भव प्राणों के आगे प लिखा गया है । तथा अपर्याप्त कालमें सम्भवित प्राणोंके आगे अ लिखा गया है । इसी नियमके अनुसार प्रस्तुत यंत्र नं. ३१ में नारक सामान्य मिथ्यादृष्टियोंके आलाप प्रकट करते समय पर्याप्त अवस्थामें होनेवाले १० प्राणोंके नीचे प और अपर्याप्त अवस्थामें सम्भव ७ प्राणोंके आगे अ लिखा गया है ।

पुस्तक २, पृ. ६२३

६ शंका—पृ. ६२३ के विशेषार्थमें यह और होना चाहिए कि चौदहवें गुणस्थानमें पर्याप्तका उदय रहता है, लेकिन नोकर्मवर्गणा नहीं आती ? (रतनचंदजी मुख्तार, सहारनपुर, पत्र ३-४-४१)

समाधान—उक्त विशेषार्थमें जो बात सयोगिकेवलीके लिये कही गई है, वह अयोगिकेवलीके लिये भी उपयुक्त होती है । अतएव वहां उक्त भावार्थको लेनेमें कोई आपत्ति नहीं ।

पुस्तक २, पृ. ६३८

७ शंका—यंत्र नं. २५३ के प्राणके खानेमें ३, २ भी होना चाहिए, क्योंकि, योगके खानेमें ६ योग लिखे हैं ? (रतनचंदजी मुख्तार, सहारनपुर, पत्र ३-४-४१)

समाधान—योगके खानेमें ६ योग लिखे जानेसे ३ और २ प्राण और भी कहनेकी आवश्यकता प्रतीत होना स्वाभाविक ही है । किन्तु, यहांपर ६ योगोंका उल्लेख विवक्षाभेदसे ही किया गया है, जैसा कि मूलके ' अथवा तीन योग ' इस कथन से स्पष्ट है, और जिसका कि अभिप्राय वहीं पर विशेषार्थमें स्पष्ट कर दिया गया है (देखो पृ. ६३८) । इसी कारण प्राणोंके खानेमें ३ और २ प्राणोंका उल्लेख नहीं किया गया है ।

पुस्तक २, पृ. ६४८

८ शंका—पृ. ६४८ पर काययोगी अप्रमत्तसंयत जीवोंके आलापमें वेद लिखा है सो यहां भाववेद होना चाहिए ? (नानकचंदजी खतौली, पत्र १०-११-४१)

समाधान—इसका उत्तर शंका नं. ३ में दे दिया गया है ।

पुस्तक २, पृ. ६५४, ६६०

९ शंका—पृष्ठ ६५४ पर समाधान जो पहला किया गया है, उसमें लिखा है कि ' अपर्याप्त योगमें वर्तमान कपाटसमुद्धातगत सयोगिकेवलीका पहलेके शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं

रहता है। यही पृष्ठ ६६० पर समाधान करते हुए लिखा है। यह किस अपेक्षासे कहा है ! क्या समुद्रातमें पूर्व मूलशरीरसे सम्बन्ध छूट जाता है ? (नानकचंदजी, खतौली, पत्र १०-११-४१)

समाधान—‘अपर्याप्त योगमें वर्तमान कपाटसमुद्रातगत सयोगकेवलीका पहलेके शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रहता,’ इसका अभिप्राय यह लेना चाहिये कि उक्त अवस्थामें जो आत्मप्रदेश शरीरसे बाहर फैल गए हैं, उनका शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रहता है। आत्मप्रदेशोंके बाहर निकलनेपर भी यदि शरीरके साथ सम्बन्ध माना जायगा, तो जिस परिमाणमें जीव-प्रदेश फैले हैं, उतने परिमाणवाला ही औदारिकशरीरको होना पड़ेगा। किन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं, अतः यह कहा गया है कि कपाटसमुद्रातगत सयोगकेवलीका पहलेके शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रहता। किन्तु जो आत्मप्रदेश उस समय शरीरके भीतर हैं, उनसे तो सम्बन्ध बना ही रहता है। इसी प्रकार किसी भी समुद्रातकी दशामें पूर्व मूलशरीरसे सम्बन्ध नहीं छूटता है। समुद्रातके लक्षणमें स्पष्ट ही कहा गया है कि मूलशरीरको न छोड़कर जीवके प्रदेशोंके बाहर निकलनेको समुद्रात कहते हैं।

पुस्तक २, पृ. ८०८

१० शंका—पृ. ८०८ पंक्ति १२ में सात प्राणके आगे दो प्राण और होना चाहिए, क्योंकि, सयोगीके अपर्याप्त अवस्थामें दो प्राण होते हैं। (रतनचंदजी मुस्तार, सहारनपुर, पत्र ३४-४-१)

यंत्र नं. ४७७ में प्राणमें ४-१ प्राण और लिखना चाहिए

(नानकचंदजी, खतौली, पत्र १०-११-४१)

समाधान—इसका उत्तर वही है जो कि शंका नं. २ में दिया गया है।

पुस्तक ३, पृ. २३

११ शंका— $२^{२अ}$ की वर्गशलाका अ होगी यह शुद्ध ज्ञात नहीं होता, क्योंकि $२^३ = २५६$ होता है, और २५६ की वर्गशलाका ३ है, ४ नहीं ?

(नेमीचंदजी बकौल, सहारनपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान— $२^{२अ}$ का अर्थ है २ का $२^अ$ के प्रमाण वर्ग। अब यदि हम अ को ४ के बराबर मान लें तो— $२^{२अ} = २^{२४} = २^{१६} = २५६ \times २५६ = ६५५३६$, जिसकी वर्गशलाका ४ होगी। शंकाकारने भूल यह की है कि $२^{२अ} = (२^२)^अ$ मान लिया है। किन्तु

ऐसा नहीं है। प्रचलित पद्धतिके अनुसार $२^{२अ} = २^{(२अ)}$ होता है। अतएव अनुवादमें उदाहरणरूपसे जो बात कही गई है उसमें कोई दोष नहीं है।

पुस्तक ३, पृ. ३०

१२ शंका—यहां सोलह राशिगत अल्पबहुत्व निरूपणमें जो अभव्योंसे सिद्धकालका गुणकार छह महिनोंके अष्टम भागमें एक मिला देनेपर उत्पन्न हुई समय-संख्यासे भाजित अतीत कालका अनन्तवां भाग कहा है वह अशुद्ध प्रतीत होता है। मेरी राय में अतीत कालको छह माह आठ समयसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसको ६०८ से गुणा करनेपर उत्पन्न हुई राशिका अनन्तवां भाग गुणकार होना चाहिये ? (नेमीचंदजी बक्रील, सहारनपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान—उक्त शंकामें शंकाकारकी दृष्टि उस प्रचलित मान्यता पर है जिसके अनुसार प्रत्येक छह माह आठ समयमें ६०८ जीव मोक्ष जाते हैं। किन्तु धवलामें उक्त स्थलपर दिये गये अल्पबहुत्वमें उक्त पाठ द्वारा उसकी सिद्धि नहीं होती, जब तक कि उस पाठको विशेषरूपसे परिवर्तित न किया जाय। उक्त स्थलका अर्थ करते समय हमारी भी दृष्टि इस बातपर थी। किन्तु उपलब्ध पाठ वैसा होने तथा मूडविद्रीकी ताड़पत्रीय प्रतियोंके मिलानसे भी उस पाठमें कोई परिवर्तन प्राप्त न होनेसे हम उस पाठको बदलने या मूलको छोड़कर अर्थ करने में असमर्थ रहे। यथार्थतः उक्त पाठसे आगे जो सिद्धोका गुणकार हमने 'रूपशतपृथक्त्व' ग्रहण कर लिया था वह उपर्युक्त दृष्टिसे ही केवल एक प्रतिके आधार पर किया था। किन्तु दो प्रतियोंमें उसके स्थानपर 'रूपदश-पृथक्त्व' पाठ था, और मूडविद्रीके प्रति-मिलानसे भी इसी पाठकी पुष्टि हुई है। अतः इससे वह संदर्भ और भी शंकास्पद और विचारणीय हो गया है। अतएव जब तक कोई स्पष्ट प्रमाण इस सम्बन्धका न मिल जाये तब तक उस सम्बन्धमें निर्णयात्मक कुछ नहीं कहा जा सकता।

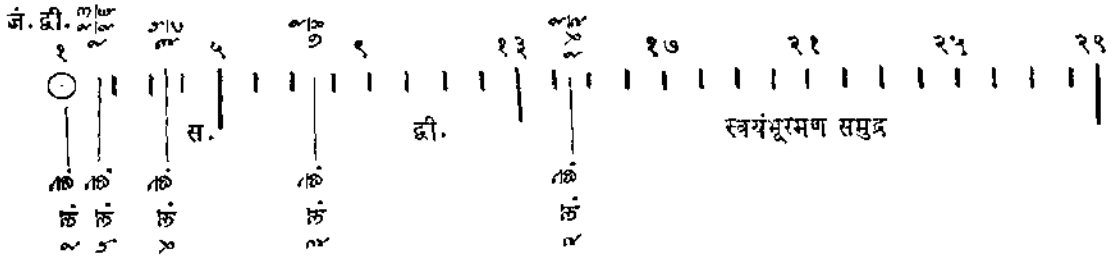
पुस्तक ३, पृ. ३५

१३ शंका—“रज्जुके अर्धच्छेद उत्तरोत्तर एक एक द्वीप और एक एक समुद्रमें पड़ते हैं, किन्तु लवणसमुद्रमें दो अर्धच्छेद पड़ेंगे।” यह बात समझमें नहीं आती। जब धातकी-खंडमें एक अर्धच्छेद पड़ेगा, और लवणसमुद्र उसका आधा है, तब उसमें दो अर्धच्छेद कैसे पड़ जायेंगे ? (नेमीचंदजी बक्रील, सहारनपुर, पत्र २३-११-४१.)

समाधान—उपर्युक्त शंकाका समाधान रज्जुके अर्धच्छेदोंकी व्यवस्थाको स्पष्टतः समझ लेनेसे सहज ही हो जाता है। समस्त तिर्यग्लोक एक रज्जुप्रमाण है। अतः रज्जुकी प्रथम वार आधा करनेसे प्रथम अर्धच्छेद जम्बूद्वीपके मध्यमें मेरुपर पड़ा। दूसरी वार जब हम रज्जुको आधा करेंगे तो यह दूसरा अर्धच्छेद स्वयंभूरमणद्वीपकी परिधिसे कुछ आगे चलकर स्वयंभूरमण-समुद्रमें पड़ेगा, क्योंकि, उक्त समुद्रका विस्तार भीतरके समस्त द्वीप-समुद्रोंके सम्मिलित विस्तारसे कुछ अधिक है। इसी प्रकार रज्जुको तीसरी वार आधा करनेपर तीसरा अर्धच्छेद स्वयंभूरमण-द्वीपमें उसकी प्रारम्भिक सीमासे कुछ और विशेष आगे चलकर पड़ेगा। इस प्रकार रज्जु उत्तरोत्तर छोटा होता जावेगा और उत्तरोत्तर अर्धच्छेद प्रत्येक द्वीप-समुद्रमें पड़ते जावेंगे, किन्तु उनका स्थान

उस उस द्वीप-समुद्रकी भीतरी परिधिसे उत्तरोत्तर आगेको बढ़ता जावेगा । इस प्रकार होते होते अन्तिम समुद्र लवणसागरमें एक अर्धच्छेद उसकी बाह्य सीमाके समीप और दूसरा उसकी भीतरी सीमाके समीप पड़ जावेगा । यही बात निम्न चित्रसे और भी स्पष्ट हो जावेगी ।

मान लो कि स्वयंभूरमणसमुद्र जम्बूद्वीपसे आगे तीसरे बलयपर है, और उसीकी बाह्य सीमापर रज्जुका अन्त होता है । रज्जुका प्रथम अर्धच्छेद तो जम्बूद्वीपके मध्यमें मेरुपर पड़ेगा ही । अब वहांसे आगेका विस्तार पचास हजार योजनको १ मान लेनपर केवल $१+४+८+१६=२९$ योजन रहा ।



अतएव रज्जुका दूसरा अर्धच्छेद $१४\frac{१}{२}$ योजन पर स्वयंभूरमणसमुद्रमें, तीसरा अर्धच्छेद $७\frac{१}{२}$ योजन पर उससे पूर्ववर्ती द्वीपमें, चौथा अर्धच्छेद $३\frac{१}{२}$ योजन पर लवणसमुद्रकी बाह्य सीमाके समीप, तथा पांचवां अर्धच्छेद $१\frac{१}{२}$ योजन पर लवणसमुद्रकी आन्तर सीमाके समीप पड़ेगा । इस प्रकार हम कितने ही द्वीप समुद्र आगे आगे मान लें तो भी लवणसमुद्रमें अन्ततः दो ही अर्धच्छेद पड़ेंगे । यही बात त्रिलोकसार की गाथा नं. ३५२-३५८ में कही गई है ।

पुस्तक ३, पृ. ४४

१४ शंका—पुस्तक ३ के पृ. ४४ पर क्षेत्राकारके द्वारा जो यह समझाया गया है कि संपूर्ण जीवराशिके वर्गको दूसरे भाग अधिक जीवराशिसे भाजित करनेपर तीसरा भागहीन जीवराशि प्राप्त होती है, सो यह बात वहां दिये गये आकारसे समझमें नहीं आती । कृपया समझाइये ?

(नेमीचंदजी बकूल, सहारनपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान—मान लीजिये, सर्व जीवराशि १६ है, इसका वर्ग हुआ $१६ \times १६ = २५६$. अब यदि हम इस जीवराशिके वर्ग (२५६) में जीवराशि (१६) का भाग देते हैं तो $\frac{२५६}{१६} = १६$ अर्थात् जीवराशि प्रमाण ही लब्धआता है । और यदि उसी जीवराशिके वर्गमें द्विभाग अधिक जीवराशि ($१६ + ८ = २४$) का भाग देते हैं तो त्रिभागहीन जीवराशिप्रमाण, अर्थात् $१६ - \frac{१६}{३} = १०\frac{२}{३}$ आता है; जैसे $\frac{२५६}{३} = १०\frac{२}{३}$.

इसी बातको ध्वलाकारने क्षेत्रमिति द्वारा भी समझाया है जिसका कि अनुवादके साथ चित्र भी दिया गया है । इस चित्रमें स ड जीवराशि (मानलो १६) है, उसको स ड' (१६) से वर्गित करनेपर प्रत्येक क्षेत्र स ड स' ड' बन जाता है जिसमें अंकप्रमाण दिखानेके लिये

३. विषय-परिचय

जीवस्थानकी पूर्व प्रकाशित दो प्ररूपणाओं— सत्प्ररूपणा और द्रव्यप्रमाणानुगममें क्रमशः जीवका स्वरूप, गुणस्थान व मार्गणास्थानानुसार भेद, तथा प्रत्येक गुणस्थान व मार्गणास्थानसंबंधी जीवोंका प्रमाण व संख्या बतलाई जा चुकी है। अब प्रस्तुत भागमें जीवस्थानसंबंधी आगेकी तीन प्ररूपणाएं प्रकाशित की जा रही हैं—क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम और कालानुगम।

१ क्षेत्रानुगम

क्षेत्रानुगममें जीवोंके निवास व विहारादिसंबंधी क्षेत्रका परिमाण बतलाया गया है। इस संबंधमें प्रथम प्रश्न यह उठता है कि यह क्षेत्र है कहां ? इसके उत्तरमें अनन्त आकाशके दो विभाग किये गये हैं। एक लोकाकाश और दूसरा अलोकाकाश। लोकाकाश समस्त आकाशके मध्यमें स्थित है, परिमित है और जीवादि पांच द्रव्योंका आधार है। उसके चारों तरफ शेष समस्त अनन्त आकाश अलोकाकाश है। उक्त लोकाकाशके स्वरूप और प्रमाणके संबंधमें दो मत हैं। एक मतके अनुसार यह लोकाकाश अपने तलभागमें सातराजु व्यासवाला गोलाकार है। पुनः ऊपरको क्रमसे घटता हुआ अपनी आधी उंचाई अर्थात् सात राजुपर एक राजु व्यासवाला रह जाता है। वहांसे पुनः ऊपरको क्रमसे बढ़ता हुआ साढ़े तीन राजु ऊपर जाकर पांच राजु व्यासप्रमाण हो जाता है और वहांसे पुनः साढ़े तीन राजु घटता हुआ अपने सर्वोपरि उच्च भागपर एक राजु व्यासवाला रह जाता है। इस मतके अनुसार लोकका आकार ठीक अधोभागमें, वेत्रासन, मध्यमें झल्लरी ओर ऊर्ध्वभागमें मृदंगके समान हो जाता है। किन्तु धवलाकारने इस मतको स्वीकार नहीं किया है, क्योंकि, ऐसे लोकमें जो प्रमाणलोकका घनफल जगश्रेणी अर्थात् सात राजुके घनप्रमाण कहा है, वह प्राप्त नहीं होता। यह बात स्पष्टतः दिखलानेके लिये उन्होंने अपने समयके गणितज्ञानकी विविध और अश्रुतपूर्व प्रक्रियाओं द्वारा इस प्रकारके लोकके अधोभाग व ऊर्ध्वभागका घनफल निकाला है जो कुल $१६४ \frac{३}{४} \frac{३}{४} \frac{३}{४}$ घनराजु होनेसे श्रेणीके घन अर्थात् ३४३ घनराजुसे बहुत हीन रह जाता है। इसलिये उन्होंने लोकका आकार पूर्व-पश्चिम दो दिशाओंमें तो ऊपरकी ओर पूर्वोक्त क्रमसे घटता बढ़ता हुआ, किन्तु उत्तर-दक्षिण दो दिशाओंमें सर्वत्र सात राजु ही माना है। इस प्रकार यह लोक गोलाकार न होकर समचतुरस्राकार हो जाता है और दो दिशाओंसे उसका आकार वेत्रासन, झल्लरी और मृदंगके सदृश भी दिखाई दे जाता है। ऐसे लोकका प्रमाण ठीक श्रेणीका घन $७^३ = ७ \times ७ \times ७ = ३४३$ घनराजु हो जाता है। यही लोक जीवादि पांचों द्रव्योंका क्षेत्र है।

यहां प्रश्न यह उपस्थित होता है कि उक्त ३४३ घनराजुप्रमाण केवल असंख्यात प्रदेशात्मक अत्यन्त परिमित क्षेत्रमें अनन्त जीव व अनन्त पुद्गल परमाणु कैसे रह सकते हैं ? इसका उत्तर यह है कि जीवों और पुद्गल-परमाणुओंमें अप्रतिघातरूपसे अन्योन्यावगाहन शक्ति विद्यमान है जिसके कारण अंगुलके असंख्यातवें भागमें भी अनन्तानन्त जीवोंका और जीवके भी प्रत्येक प्रदेशपर अनन्त औदारिकादि पुद्गल परमाणुओंका अस्तित्व बन जाता है ।

ओघ अर्थात् गुणस्थानोंकी अपेक्षा जीवोंका क्षेत्र ४ सूत्रोंमें बतला दिया गया है कि मिथ्यादृष्टी जीव सर्वलोकमें व अयोगिकवली और शेष सासादनसम्यग्दृष्टि आदि समस्त बारह गुणस्थानोंमेंसे प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव लोकके असंख्यातवें भागमें, और सयोगिकवली लोकके असंख्यातवें भागमें, असंख्यात बहु भागोंमें, तथा सर्वलोकमें रहते हैं । धवलाकारने इन सूत्र-वचनोंको एक ओर जीवोंकी नाना अवस्थाओंका विचार करके, और दूसरी ओर सूक्ष्मतर क्षेत्रमानके लिये लोकको पांच विभागोंमें बांटकर बड़े विस्तारसे समझाया है ।

क्षेत्रावगाहनाकी अपेक्षासे जीवोंकी तीन अवस्थाएं हो सकती है (१) स्वस्थान (२) समुद्धात और (३) उपपाद । स्वस्थान भी दो प्रकारका है—अपने स्थायी निवासके क्षेत्रको स्वस्थान-स्वस्थान, और अपने विहारके क्षेत्रको विहारवत्स्वस्थान कहते हैं । जीवके प्रदेशोंका उनके स्वाभाविक संगठनसे अधिक फैलना समुद्धात कहलाता है । वेदना और पीड़ाके कारण जीव-प्रदेशोंके फैलनेको वेदनासमुद्धात कहते हैं । क्रोधादि कषायोंके कारण जीव-प्रदेशोंके विस्तारको कषायसमुद्धात कहते हैं । इसी प्रकार अपने स्वाभाविक शरीरके आकारको छोड़कर अन्य शरीराकार परिवर्तनको वैक्रियिकसमुद्धात, मरनेके समय अपने पूर्व शरीरको न छोड़कर नवीन उत्पत्तिस्थान तक जीव-प्रदेशोंके विस्तारको मारणान्तिक, तैजसशरीरकी अप्रशस्त व प्रशस्त विक्रियाको तैजसमुद्धात, ऋद्धि-प्राप्त मुनियोंके शंका-निवारणार्थ जीवप्रदेशोंके प्रस्तारको आहारकसमुद्धात, और सर्वज्ञताप्राप्त केवलीके प्रदेशोंका शेष कर्मक्षय-निमित्त दंडाकार, कपाटाकार, प्रतराकार, व लोकपूरणरूप प्रस्तारको केवलिसमुद्धात कहते हैं—जीवका अपनी पूर्व पर्यायको छोड़कर तीरके समान सीधे, व एक, दो या तीन मोड़े लेकर अन्य पर्यायके ग्रहणक्षेत्र तक गमन करनेको उपपाद कहते हैं । इन्हीं दश—अर्थात् (१) स्वस्थानस्वस्थान (२) विहारवत्स्वस्थान (३) वेदनासमुद्धात (४) कषायसमुद्धात (५) वैक्रियिकसमुद्धात (६) मारणान्तिकसमुद्धात (७) तैजससमुद्धात (८) आहारकसमुद्धात (९) केवलि-समुद्धात और (१०) उपपाद अवस्थाओंकी अपेक्षासे यथासम्भव जीवके भिन्न भिन्न गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंका क्षेत्रप्रमाण इस क्षेत्ररूपणामें बतलाया गया है ।

सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम क्षेत्रमानके लिये धवलाकारने पांच प्रकारसे लोकका ग्रहण किया है (१) समस्त लोक या सामान्य लोक जो ७ राजुका घनप्रमाण है; (२) अधोलोक जो १९६ घनराजुप्रमाण है, (३) ऊर्ध्वलोक जो १४७ घनराजुप्रमाण है (४) तिर्यक्लोक या मध्यलोक

जो १ राजुके प्रतर या वर्गप्रमाण है; और (५) मनुष्यलोक जो अढ़ाई द्वीपप्रमाण, अर्थात् ४५ लाख व्यासवाला वर्तुलाकार क्षेत्र है। किसी भी एक प्रकारके जीवोंका क्षेत्रमान बतलानेके लिये ध्वलकारने उस उस जातिविशेषवाली प्रधान राशिको लेकर उसके क्षेत्रावगाहनका विचार किया है। उदाहरणार्थ—विहारवत्स्वस्थानवाले मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका विचार करते समय उन्होंने त्रस-पर्याप्तराशिको ही विहार करनेकी योग्यता रखनेवाली मानकर पहले यह निर्दिष्ट कर दिया कि किसी भी समयमें इस राशिका संख्यातवां भाग ही विहार करेगा। फिर उन्होंने इस विहार करनेवाली राशिमें स्वयंप्रभनागेन्द्र पर्वतके परभागवर्ती बड़े बड़े त्रस जीवोंका विचार किया, जिनमें द्वीन्द्रिय जीव शंख बारह योजनका, त्रीन्द्रिय गोम्ही तीन कोसकी, चतुरिन्द्रिय भ्रमर एक योजनका और पंचेन्द्रिय मच्छ एक हजार योजनका होता है। अतएव ऐसे प्रत्येक जीवका उन्होंने क्षेत्रमितिके सूत्र व विधान देकर प्रमाणांगुलोंमें घनफल निकाला, और फिर इस उक्त अवगाहनामें जघन्य अवगाहनाका अंगुलका असंख्यातवां भाग जोड़कर उसका आधा किया जिससे उस राशिके एक जीवकी मध्यम अर्थात् औसत अवगाहना संख्यात घनांगुल आगई। समस्त त्रस पर्याप्तराशि प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे भाजित जगप्रतरप्रमाण है और इसका केवल संख्यातवां भाग विहार करता है। अतः इस संख्यातवें भागको पूर्वोक्त घनफलसे गुणा करने पर विहारवत्स्वस्थान मिथ्यादृष्टिराशिका क्षेत्र संख्यात सूच्यंगुलगुणित जगप्रतरप्रमाण होता है, जो लोकका असंख्यातवां भाग, और उसी प्रकार अधोलोक और ऊर्ध्वलोकका भी असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक या अढ़ाईद्वीपसे असंख्यात गुणा होगा।

२ स्पर्शनानुगम

स्पर्शनप्ररूपणामें यह बतलाया गया है कि भिन्न भिन्न गुणस्थानवाले जीव, तथा गति आदि भिन्न भिन्न मार्गनास्थानवाले जीव तीनों कालोंमें पूर्वोक्त दश अवस्थाओंद्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श कर पाते हैं। इससे स्पष्ट है कि क्षेत्र और स्पर्शन प्ररूपणाओंमें विशेषता इतनी ही है कि क्षेत्रप्ररूपणा तो केवल वर्तमानकालकी ही अपेक्षा रखती है, किन्तु स्पर्शनप्ररूपणामें अतीत और अनागतकालका भी, अर्थात् तीनों कालोंका क्षेत्रमान ग्रहण किया जाता है।

उदाहरणार्थ—क्षेत्रप्ररूपणामें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग बताया गया है। यह क्षेत्र वर्तमानकालसे ही सम्बन्ध रखता है, अर्थात् वर्तमानमें इस समय स्वस्थानादि यथासंभव पदोंको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रको व्याप्त करके विद्यमान हैं। यही बात स्पर्शनप्ररूपणामें वर्तमानकालिक स्पर्शनको बताते समय कही है। उसके पश्चात् दूसरे सूत्रमें अतीतकालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र बतलाया गया है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें देशान आठ बटे चौदह ($\frac{16}{3}$) और बारह बटे चौदह ($\frac{16}{3}$) भाग स्पर्श किए हैं। इसका अभिप्राय जान लेना आवश्यक है। तीनसौ तेताडीस घनराजुप्रमित इस लोकाकाशके ठीक मध्य भागमें वृक्षमें सारके समान एक राजु लम्बी चौड़ी और

चौदह राजु ऊंची लोकनाली अवस्थित है। इसे त्रसनाली भी कहते हैं, क्योंकि, त्रसजीवोंका संचार इसके ही भीतर होता है। केवल कुछ अपवाद हैं, जिनमें कि इसके भी बाहर त्रसजीवोंका पाया जाना संभव है। इस त्रसनालीके एक एक राजु लम्बे, चौड़े और मोटे भाग बनाए जावें तो चौदह भाग होते हैं। उनमेंसे जो जीव जितने घनराजुप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श करता है, उसका उतना ही स्पर्शनक्षेत्र माना जाता है। जैसे प्रकृतमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र आठ बटे ($\frac{1}{8}$) या बारह बटे चौदह ($\frac{1}{2}$) भाग बताया गया है। इनमेंसे विहारवत्स्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने उक्त त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागोंको स्पर्श किया है, अर्थात् आठ घनराजुप्रमाण त्रसनालीके भीतर ऐसा एक भी प्रदेश नहीं है कि जिसे अतीतकालमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने (देव, मनुष्य, तिर्यच और नारकी, इन सभीने मिलकर) स्पर्श न किया हो। यह आठ घनराजुप्रमाण क्षेत्र त्रसनालीके भीतर जहां कहीं नहीं लेना चाहिए, किन्तु नीचे तीसरी वालुका पृथिवीसे लेकर ऊपर सोलहवें अच्युतकल्प तक लेना चाहिये। इसका कारण यह है कि भवनवासी देव स्वतः नीचे तीसरी पृथिवी तक विहार करते हैं, और ऊपर सौधर्मविमानके शिखरध्वजदंड तक। किन्तु उपरिम देवोंके प्रयोगसे ऊपर अच्युतकल्प तक भी विहार कर सकते हैं [देखो. पृ. २२९]। उनके इतने क्षेत्रमें विहार करनेके कारण उक्त क्षेत्रका मध्यवर्ती एक भी आकाश-प्रदेश ऐसा नहीं बचा है कि जिसे अतीत कालमें उक्त गुणस्थानवर्ती देवोंने स्पर्श न किया हो। इस प्रकार इस स्पर्श किये गये क्षेत्रको लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा उक्त गुणस्थानवर्ती जीवोंने लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे बारह भाग स्पर्श किये हैं। इसका अभिप्राय यह है कि छठी पृथिवीके सासादनगुणस्थानवर्ती नारकी मध्यलोक तक मारणान्तिकसमुद्घात कर सकते हैं, और सासादनसम्यग्दृष्टि भवनवासी आदि देव आठवीं पृथिवीके ऊपर विद्यमान पृथिवीकायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्घात कर सकते हैं, या करते हैं। इस प्रकार मेरुतलसे छठी पृथिवी तकके ५ राजु, और ऊपर लोकान्त तकके ७ राजु, दोनों मिलाकर १२ राजु हो जाते हैं। यही बारह घनराजुप्रमाण क्षेत्र त्रसनालीके बारह बटे चौदह ($\frac{1}{2}$) भाग, अथवा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे बारह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कहा जाता है।

इस उक्त प्रकारसे बतालाए गए स्पर्शनक्षेत्रको यथासंभव जान लेना चाहिए। ध्यान रखनेकी बात केवल इतनी ही है कि वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्र तो लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है, किन्तु अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे यथासंभव $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{4}$, को आदि लेकर $\frac{1}{2}$ तक होता है। तथा मिथ्यादृष्टि जीवोंका मारणान्तिक, वेदना, कषायसमुद्घात आदिकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्शनक्षेत्र होता है, क्योंकि, सारे लोकमें सर्वत्र ही एकेन्द्रिय जीव ठसाठस भरे हुए हैं और गमनागमन कर रहे हैं, अतएव उनके द्वारा समस्त लोकाकाश वर्तमानमें भी स्पर्श हो रहा है और अतीतकालमें भी स्पर्श किया जा चुका है।

मान्यता को भी 'एदेहि पल्लिदोवमभवहिरदि अंतोमुहुत्तेण कालेण' (द्रव्यप्र. सू. ६) इस सूत्रके आधारसे 'अन्तर्मुहूर्त' इस पदमें पड़े हुए अन्तर् शब्दको सामीप्यार्थक मानकर यह सिद्ध किया है कि अन्तर्मुहूर्तका अभिप्राय मुहूर्तसे अधिक कालका भी हो सकता है।

(२) दूसरी बात आयतचतुरस्र लोक-संस्थानके उपदेशकी है, जिसका अभिप्राय समझनेके लिये इसी भागके पृ. ११ से २२ तकका अंश देखिए। उससे ज्ञात होता है कि धक्काकारके सामने विद्यमान करणानुयोगसम्बन्धी साहित्यमें लोकके आयतचतुरस्राकार होनेका विधान या प्रतिषेध कुछ भी नहीं मिल रहा था, तो भी उन्होंने प्रतरसमुद्धातगत केवलीके क्षेत्रके साधनार्थ कही गई दो गाथाओंके (देखो इसी भागके पृ. २०-२१) आधारपर यही सिद्ध किया है कि लोकका आकार आयतचतुष्कोण है, न कि अन्य आचार्योंसे प्ररूपित १६४^{३३६} घनराजु प्रमाण मृदंगके आकार। साथ ही उनका दावा है कि यदि ऐसा न माना जायगा तो उक्त दोनों गाथाओंको अप्रमाणता और लोकमें ३४३ घनराजुओंका अभाव प्राप्त होगा। इसलिए लोकका आकार आयतचतुरस्र ही मानना चाहिए।

(३) तीसरी बात स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें पृथिवीके अस्तित्व सिद्ध करनेकी है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। (देखो पृ. १५५-१५८ तक)

इस प्रकार बड़े जोरदार शब्दोंमें उक्त तीनों बातोंका समर्थन करनेके पश्चात् भी उनकी निष्पक्षता दर्शनीय है। वे लिखते हैं - 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार एकान्त हठ पकड़ करके असद् आप्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि, परमगुरुओंकी परम्परासे आए हुए उपदेशको युक्तिके, बलसे अयथार्थ सिद्ध करना अशक्य है, तथा अतीन्द्रिय पदार्थोंमें लब्धस्थ जीवोंके द्वारा उठाए गए विकल्पोंके आविस्वादी होनेका नियम नहीं है। अत एव पुरातन आचार्योंके व्याख्यानका परित्याग न करके हेतुवाद (तर्कवाद) के अनुसरण करनेवाले व्युत्पन्न शिष्योंके अनुरोधसे तथा अव्युत्पन्न शिष्यजनोंके व्युत्पादनके लिये यह दिशा भी दिखाना चाहिए। (देखो. पृ. १५७-१५८)

तिर्यंचोंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रका निकालते हुए द्वीप और समुद्रोंका क्षेत्रफल अनेक करण-सूत्रोंद्वारा पृथक् पृथक् और सम्मिलित निकालनेकी प्रक्रियाएं दी गई हैं, और साथ ही यह भी सिद्ध किया गया है कि इस मध्यलोकमें कितना भाग समुद्रसे रुका हुआ है। (देखो. पृ. १९४-२०३)

कायमार्गणामें बादर पृथिवीकायिक जीवोंके स्पर्शन-क्षेत्रको बतलाते हुए रत्नप्रभादि सातों पृथिवियोंकी लम्बाई चौड़ाईका भी प्रमाण बतलाया गया है।

३. कालानुगम

उक्त प्ररूपणाओंके समान कालप्ररूपणामें भी ओष और आदेशकी अपेक्षा कालका निर्णय किया गया है, अर्थात् यह बतलाया गया है कि यह जीव किस गुणस्थान या मार्गणास्थानमें कमसे कम कितने काल तक रहता है, और अधिकसे अधिक कितने काल रहता है।

उदाहरणार्थ—मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वगुणस्थानमें कितने काल तक रहते हैं ? इस प्रश्नके

गुणस्थानोंकी अपेक्षा जीविके क्षेत्र, स्थान और कालका प्रमाण

गुणस्थान	क्षेत्र	स्थान		माना जीविके अपेक्षा	काल	एक जीविके अपेक्षा
		वर्तमानकालिक	अतीत अनागतकालिक			
१ विद्यादि	सर्वलोक	सर्वलोक	सर्वलोक	सर्वकाल	सर्वकाल	सर्वकाल
२ साक्षात्सम्बन्धदि	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देशान् २ और ३ राठ	अकृष्ट	(सा.मा.मि.) अत्सुद्धते	देशान् अर्धद्वयपरिवर्तन
३ सम्बन्धित्यादि	"	"	" २ राठ	"	एकसमय	बर् आवली
४ असंख्यासम्बन्धदि	"	"	" "	सर्वकाल	अत्सुद्धते	अत्सुद्धते
५ संघतासंघत	"	"	" ३ "	"	"	साधिक तेतीस सागापिस
६ प्रसक्तसंघत	"	"	लोकका असंख्यातवा भाग	"	एकसमय	देशान् पूर्ण होटी बने
७ असंघतसंघत	"	"	"	"	"	अत्सुद्धते
८ अपूर्णतय	"	"	"	अपन्य	"	"
९ अनिष्टसिक्तय	"	"	"	उप. एकसमय अत्सुद्धते	एकसमय	"
१० एकसंख्यापय	"	"	"	उप. एकसमय	अत्सुद्धते	"
११ उपकालकषाय	"	"	"	उप. एकसमय	अत्सुद्धते	"
१२ क्षणिकीह	"	"	"	एकसमय	एकसमय	"
१३ क्षणिकीकली	लोकका अंशव्यातवा भाग " असंख्यात बहु "	लोकका अंशव्यातवा भाग " असंख्यात बहु "	लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु "	अत्सुद्धते	अत्सुद्धते	देशान् पूर्ण होटी बने
१४ क्षणिकीकली	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	अत्सुद्धते	अत्सुद्धते	अत्सुद्धते

मार्गवा	मार्गवाके आधार श्रेय	क्षेत्र	स्वामी	स्वामी	नामाङ्गीकोंकी अपेक्षा	काल	एकजीवकी अपेक्षा
			वर्तमानकालिक	अतीत अनागतकालिक		जन्मकाल	उच्छेदकाल
६ कथासमार्गवा	सर्वलोक लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	सर्वलोक लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	सर्वलोक लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	सर्वलोक लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	सर्वकाल अतर्प्युद्दिर्त और सर्वकाल	पुरुषसमय पुरुषसमय, अतर्प्युद्दिर्त	अतर्प्युद्दिर्त अतर्प्युद्दिर्त, और देशीय पूर्वकोटी वर्ष
७ क्षान्तसमार्गवा	सर्वलोक लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	देशीय १/४ राहु सर्वलोक देशीय १/४ राहु लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	देशीय १/४ राहु सर्वलोक देशीय १/४ राहु लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	सर्वकाल " " " " " " " "	" " " " " " " "	देशीय अर्धपुरुषपरिवर्तित " तेतीस सातरोपस साधक " " देशीय पूर्वकोटी वर्ष " " " "
८ संवत्समार्गवा	सर्वलोक लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	जन्म्य पुरुषसमय " " अतर्प्युद्दिर्त	पुरुषसमय अतर्प्युद्दिर्त " " " "	अतर्प्युद्दिर्त " " देशीय पूर्वकोटी वर्ष देशीय पूर्वकोटी वर्ष अर्धपुरुषपरिवर्तित अनन्तकाल असंख्यात पुरुषपरिवर्तित दो हजार सातरोपस साधक तेतीस " देशीय पूर्वकोटी वर्ष
९ स्वर्णसमार्गवा	सर्वलोक लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग " असंख्यात बहु " सर्वलोक	सर्वकाल " " " "	" " " " " "	देशीय पूर्वकोटी वर्ष

मार्गणा	मार्गणके अवधार भेद	क्षेत्र	स्वराम		मासाजीवकी अवस्था	काल	एकजीवकी अवस्था	
			सर्वात्मकालिक	अतीत अनागतकालिक				
१० क्षेत्रामार्गणा	कृष्ण	{ सर्वलोक लोकका असंख्यातवा भाग	{ सर्वलोक देखोन रूपा राड	{ सर्वलोक देखोन रूपा राड	सर्वकाल	अन्तर्द्वैत	सांथिक तेतीस सागोपम	
	नील	" "	" "	" "	"	"	"	
	कापोत	" "	" "	" "	"	"	"	
	तेज	लोकका असंख्यातवा भाग	" "	" "	"	"	"	
	पद्म	" "	" "	" "	"	"	"	
	शुक्र	" "	" "	" "	"	"	"	
	अद्वैत	{ लोकका असंख्यातवा सर्वलोक	{ लोकका असंख्यातवा भाग असंख्यात बहु "	{ लोकका असंख्यातवा भाग असंख्यात बहु "	{ लोकका असंख्यातवा भाग असंख्यात बहु "	"	"	"
	सव्य	" "	" "	" "	" "	"	"	"
	असव्य	" "	" "	" "	" "	"	"	"
	११ त्रयमार्गणा	{ औपसहितस्वरूपकत्व शायोपसमिक "	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देखोन रूपा राड	सर्वकाल	{ अन्तर्द्वैत पुस्तमय अन्तर्द्वैत	अन्तर्द्वैत
सांथिक "		" "	" "	" "	"	"	"	
सम्यक्मिथ्यादि		{ लोकका असंख्यातवा भाग सर्वलोक	{ लोकका असंख्यातवा भाग सर्वलोक	{ लोकका असंख्यातवा भाग सर्वलोक	{ लोकका असंख्यातवा भाग सर्वलोक	"	"	"
मासतत्त्वस्वरूपदि मिथ्यादि		लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देखोन रूपा राड	सर्वकाल	"	"	
संज्ञा		लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देखोन रूपा राड	"	"	"	
असंज्ञा		सर्वलोक	सर्वलोक	" "	" "	"	"	"
आहारक		" "	" "	" "	" "	"	"	"
अनाहारक		" "	" "	" "	" "	"	"	"
१२ सव्यत्रयमार्गणा		{ लोकका असंख्यातवा भाग सर्वलोक	{ लोकका असंख्यातवा भाग सर्वलोक	{ लोकका असंख्यातवा भाग सर्वलोक	{ लोकका असंख्यातवा भाग सर्वलोक	"	"	"
		सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देखोन रूपा राड	"	"	"
	सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देखोन रूपा राड	"	"	"	
	सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देखोन रूपा राड	"	"	"	
	सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देखोन रूपा राड	"	"	"	
	सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देखोन रूपा राड	"	"	"	
	सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देखोन रूपा राड	"	"	"	
	सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देखोन रूपा राड	"	"	"	
	सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देखोन रूपा राड	"	"	"	
	सर्वलोक	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देखोन रूपा राड	"	"	"	

उत्तरमें बतलाया गया है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा तो मिथ्यादृष्टि जीव सर्वकाल ही मिथ्यात्व गुण-स्थानमें रहते हैं, अर्थात् तीनों कालोंमें ऐसा एक भी समय नहीं है, जब कि मिथ्यादृष्टि जीव न पाये जाते हों। किन्तु, एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका काल तीन प्रकारका होता है—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। जो अभव्य जीव हैं, अर्थात् त्रिकालमें भी जिनको सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं होना है, ऐसे जीवोंके मिथ्यात्वका काल अनादि-अनन्त होता है, क्योंकि, उनके मिथ्यात्वका न कभी आदि है, न अन्त। जो अनादिमिथ्यादृष्टि भव्य जीव हैं, उनके मिथ्यात्वका काल अनादि-सान्त है, अर्थात् अनादि कालसे आज तक सम्यक्त्वकी प्राप्ति न होनेसे तो उनका मिथ्यात्व अनादि है, किन्तु आगे जाकर सम्यक्त्वकी प्राप्ति और मिथ्यात्वका अन्त हो जानेसे वह मिथ्यात्व सान्त है। ध्वलाकारने इस प्रकारके जीवोंमेंसे वर्द्धनकुमारका दृष्टान्त दिया है, जो कि उस पर्यायमें सर्व प्रथम सम्यक्त्वी हुए थे। इस प्रकार सर्व प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवोंके सम्यक्त्वप्राप्तिके पूर्व समय तक उनके मिथ्यात्वका काल अनादि-सान्त समझना चाहिए। जिन जीवोंने एक बार सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया, तथापि परिणामोंके संकेशादि निमित्तसे जो फिर भी मिथ्यात्वको प्राप्त हो जाते हैं, उनके मिथ्यात्वका काल सादि-सान्त माना जाता है, क्योंकि, उनके मिथ्यात्वका आदि और अन्त, ये दोनों पाये जाते हैं। इस प्रकारके जीवोंमें भी श्रीकृष्णका दृष्टान्त ध्वलाकारने दिया है।

प्रकृतमें अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त मिथ्यात्वके कालको छोड़कर सादि-सान्त मिथ्यात्व-कालकी ही विवक्षा की गई है, और उसीकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाया गया है।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि यदि कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयत या प्रमत्तसंयत जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और मिथ्यात्वदशामें सबसे छोटे अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको, या असंयतसम्यक्त्वको, या संयमासंयम अथवा अप्रमत्तसंयमको प्राप्त हो गया, तो ऐसे जीवके मिथ्यात्वका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पाया जाता है। ऐसे मिथ्यात्वको सादि-सान्त कहते हैं, क्योंकि, उसका आदि और अन्त, दोनों पाये जाते हैं। इसी सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। इसका अभिप्राय यह है कि जब कोई जीव प्रथम बार सम्यक्त्वी होकर पुनः मिथ्यात्वी हो जाता है तो वह अधिकसे अधिक अर्धपुद्गल-परिवर्तनकालके भीतर अवश्य ही पुनः सम्यक्त्व प्राप्तकर मोक्ष चला जाता है। (अर्धपुद्गलपरिवर्तन-कालके लिये देखिये पृ. ३२५-३३२)

इसी प्रकार शेष गुणस्थानोंके भी जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाये गये हैं।

४ क्षेत्रानुगम-विषय-सूची

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
	१				
	विषयकी उत्थानिका	१-९			
१	घबलाकारका मंगलाचरण और प्रतिज्ञा	१	११	मृदंगाकार लोक घनलोकके संख्यातर्वे भाग है, यह बतलाकर घनलोकको ही प्रमाणलोक या द्रव्यलोक माननेमें युक्ति	१८-१९
२	क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश भेद-कथन	२	१२	लोकका आयाम, विष्कम्भ और उत्सेधका निरूपण	१९-२०
३	क्षेत्रानुयोगद्वारके अवतारकी उपयोगिता	"	१३	लोकका तीनसौ तेतालीस घनराजु न मानने पर दो सूत्रगाथाओंके अप्रमाणताका अनिष्टापादन	२०-२१
४	निक्षेपकी उपयोगिता, उसका स्वरूप और भेद, तथा निक्षेपोंका नयोंमें अन्तर्भाव	२-७	१४	असंख्यातप्रदेशी लोकमें अनन्त जीव कैसे रह सकते हैं, इस आशंकाका परिहार	२२-२४
५	क्षेत्रशब्दकी निरुक्ति, एकार्थ-वाचक नाम, तथा निर्देशादि छह अनुयोगद्वारोंसे क्षेत्रपदार्थ का निर्णय	७-८	१५	आकाशकी अवगाहना शक्तिका निरूपण	२४-२५
६	लोकशब्दकी निरुक्ति, भेद और उसका स्वरूप	९	१६	जीवोंकी स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद, इन तीन अवस्थाओंके भेद व स्वरूपका वर्णन	२६-३०
७	क्षेत्रानुगमका अर्थ तथा निर्देश का स्वरूप	"	१७	स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, सात समुद्घात और उपपाद, इन दश अवस्थाओंके द्वारा यथासंभव मिथ्यादृष्टि आदि चौदह जीवसमासोंके क्षेत्र-निरूपणकी प्रतिज्ञा, तथा स्वस्थानस्वस्थान आदि राशियोंका प्रमाण-निरूपण	३१
	२				
	ओषसे क्षेत्रानुगमनिर्देश	१०-५६			
८	मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र-निरूपण	१०	१८	अधोलोक और ऊर्ध्वलोकका प्रमाण	३२
९	लोक पदसे घनलोकका ही अभिप्राय है, इस बातका शंका-समाधानपूर्वक समर्थन	१०-११	१९	त्रसकायिक पर्याप्तराशिके संख्यातर्वे भाग-प्रमाण विहार-वत्स्वस्थानराशिका गुणकार संख्यात घनांगुल कैसे जाना ? इस शंकाका समाधान	३३
१०	अभ्य-आचार्य-प्ररूपित मृदंगाकार लोकके प्रमाणका निरूपण और तत्सम्बन्धी घनफल निकालनेके लिए सर्पाकार, आयतचतुरस्र, त्रिकोण आदि अनेक आकारोंकी कल्पना तथा उनके प्रमाणका निर्णय आदि	१२-१८	२०	अमरक्षेत्रके निकालनेका विधान	३४

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
२१	गोम्हिक्षेत्रके निकालनेका विधान	"	३		
२२	शंखक्षेत्रके निकालनेका विधान	३५	आदेशसे क्षेत्रप्रमाणनिर्देश		५६-१३८
२३	महामत्स्यक्षेत्रके निकालनेका विधान	३६	१ गतिमार्गणा		५६-८१
२४	तिर्यग्लोकका स्वरूप	३७	(नरकगति)		५६-६६
२५	वैक्रियिकसमुद्रातगत मिथ्या-दृष्टि जीवोंका क्षेत्र-निरूपण	३८	३९ सामान्य नारकियोंका क्षेत्र		५६
२६	देव अपने अवधिज्ञानके क्षेत्र-प्रमाण विक्रिया करते हैं, ऐसा कहनेवाले आचार्योंके कथनका निराकरण	"	४० नारकियोंकी अवगाहना		५७
२७	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान-तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंके क्षेत्रका वर्णन	३९-४७	४१ प्रथम पृथिवीके तेरहों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई		५८
२८	देव, मनुष्य और नारकियोंका उत्सेध क्रमशः दश, नौ और आठ तालके प्रमाणसे कहा गया है, इस बातका निरूपण	"	४२ द्वितीय पृथिवीके ग्यारहों पट-लोंके नारकोंकी ऊंचाई		५९
२९	ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोकका प्रमाण-वर्णन	"	४३ तृतीय पृथिवीके नौ पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई		६०
३०	सूक्ष्मपरिधि निकालनेका करण-सूत्र	"	४४ चतुर्थ पृथिवीके सातों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई		६१
३१	भरत, ऐरावत और विदेह-सम्बन्धी प्रमत्तसंयतादि संयमी जीवोंकी जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहनाके प्रमाणका निरूपण	"	४५ पंचम पृथिवीके पांचों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई		"
३२	तैजससमुद्रात क्षेत्रका प्रमाण	"	४६ छठी पृथिवीके तीनों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई		६२
३३	सयोगिकेवलीके क्षेत्रका निरूपण	"	४७ सातवीं पृथिवीके नारकोंकी ऊंचाई		"
३४	दंडसमुद्रातगत केवलीका क्षेत्र	"	४८ नारकियोंके क्षेत्रको निकालनेके लिए अर्थपदका निरूपण		६३
३५	कपाटसमुद्रातगत केवलीका क्षेत्र	"	४९ सातों पृथिवियोंके नारकियोंका क्षेत्रवर्णन		६५
३६	प्रतरसमुद्रातगत केवलीका क्षेत्र	"			
३७	लोकके चारों ओर स्थित तीनों वातवलियोंके क्षेत्रफलका निरूपण	५१-५५	तिर्यचगति		६६-७३
३८	लोकपूरणसमुद्रातगत केवलीका क्षेत्र	५६	५० तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र		६६
			५१ सासादनगुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तकके प्रत्येक गुणस्थानवर्ती तिर्यचोंका क्षेत्रप्रमाण		६७
			५२ पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तकके क्षेत्रका निरूपण		६९

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
५३	लब्ध्यपर्याप्तपंचेन्द्रियतिर्यचोंका क्षेत्र (मनुष्यगति)	७३ ७३-७७	६५	पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त- कोंके सभी गुणस्थानोंका क्षेत्र- निरूपण	८६
५४	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंके क्षेत्रका वर्णन	७३	६६	लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवोंके क्षेत्रका वर्णन	८७
५५	सयोगिकेवलीका क्षेत्र	७५	३ कायमार्गणा	८७-१०२	
५६	लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका क्षेत्र (देवगति)	७६ ७७-८१	६७	पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, तथा बादरपृथिवीकायिक, बादर- अप्कायिक, बादरतेजस्कायिक, बादरवायुकायिक, बादरवन- स्पतिकायिकप्रत्येकशरीर और इन पांच बादरोंके अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्म- अप्कायिक, सूक्ष्मतेजस्कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक, तथा इन चार सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्तक जीवोंके क्षेत्रका निरूपण	८७
५७	मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुण- स्थानवर्ती सामान्यदेवोंका क्षेत्र	७७	६८	रत्नप्रभादि सातों अधस्तन तथा उपरितन ईषत्प्राग्भार, इन आठों पृथिवियोंके आयाम, विष्कम्भ और बाहल्यका वर्णन	८८-९१
५८	भवनवासी देवोंसे लेकर नव त्रैवेयक तकके चारों गुणस्थान- वर्ती देवोंका क्षेत्र	"	६९	पृथिवियोंमें सर्वत्र जल नहीं पाया जाता है इस लिए जल- कायिक जीवोंका सर्वत्रपृथिवि- योंमें रहना संभव नहीं है, इस शंकाका समाधान	९२
५९	भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके शरीरकी ऊंचाईका वर्णन	७९	७०	बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्तक जीवोंका क्षेत्र-वर्णन	९३
६०	नव अनुदिश और पांच अनुत्तर विमानवासी देवोंका क्षेत्र २ इन्द्रियमार्गणा	८१ ८१-८७	७१	वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकी जघन्य अवगाहनासे द्वीन्द्रियपर्याप्तकी जघन्य अवगा- हना असंख्यातगुणी है, इस	
६१	सामान्य एकेन्द्रिय, बादर एके- न्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और इन तीनोंके पर्याप्त तथा अपर्याप्तक जीवोंके क्षेत्रोंका वर्णन				
६२	वैक्रियिकसमुद्रातगत एकेन्द्रिय जीवोंका प्रमाण, तथा उनका क्षेत्रनिरूपण				
६३	स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमु- द्रात और कषायसमुद्रातगत बादरएकेन्द्रिय और बादरएके- न्द्रियपर्याप्त जीवोंके क्षेत्रका निरूपण				
६४	सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त विकलत्रय जीवोंके स्वस्थानादि क्षेत्रोंका निर्णय				

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	बातकी सिद्धिके लिए वेदना-क्षेत्रविधानमें कहे गये अवगाहना-दंडकका अवतरण	९४-९८	८३	त्रसपर्यासराशिका कितना भाग संचार करता है, इस बातका निरूपण	"
७२	वादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्यास जीवोंके सूत्रमें नहीं कहनेका कारण	९९	८४	सासादनगुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली तकके औदारिक-काययोगी जीवोंका क्षेत्र	१०५
७३	वादरवायुकायिक पर्यास जीवोंके क्षेत्रका निर्णय	"	८५	औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्या-दृष्टियोंका क्षेत्र	"
७४	बादर, सूक्ष्म तथा पर्याप्तक और अपर्याप्तक वनस्पतिकायिक वा निगोद जीवोंके क्षेत्रका निरूपण	१००	८६	औदारिकमिश्रका वैक्रियिकसमुद्धात आदि पदोंके साथ भेद पाये जानेसे सूत्रोक्त ओघनिर्देश घटित नहीं होता है, इस शंकाका समाधान	१०६
७५	मिथ्यादृष्ट्यादि अयोगिकेवल्यन्त त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र-वर्णन	१०१	८७	औदारिक मिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयत-सम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवलीका क्षेत्र-निरूपण	"
७६	लब्धपर्याप्तक त्रसजीवोंका क्षेत्र-वर्णन	"	८८	औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपाद पद क्यों नहीं कहा, इस शंकाका समाधान	१०७
४ योगमार्गणा १०२-१११			८९	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तकके वैक्रियिककाययोगी जीवोंका क्षेत्र	१०८
७७	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके क्षेत्रका निरूपण	१०२	९०	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्या-दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र	१०९
७८	वैक्रियिकसमुद्धातगत, मारणान्तिकसमुद्धातगत, तथा मूर्च्छित जीवोंके मनोयोग और वचनयोग कैसे संभव हैं? इन शंकाओंका समाधान	"	९१	आहारककाययोगी और आहारक मिश्रकाययोगी प्रमत्त-संयतोंका क्षेत्र	"
७९	काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	१०३	९२	कर्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयत-सम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवलीका क्षेत्र	११०-१११
८०	सासादनगुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायगुणस्थान तकके काययोगी जीवोंका क्षेत्र	"			
८१	काययोगी सयोगिकेवलीका क्षेत्र	१०४			
८२	औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	"			

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	५ वेदमार्गणा	१११-११३		७ ज्ञानमार्गणा	११७-१२१
९३	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण तकके खीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंका क्षेत्र, तथा तत्सम्बन्धी विशेषताओंका वर्णन	१११	१०३	मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	११७
९४	मिथ्यादृष्ट्यादि नौ गुणस्थान-वर्ती नपुंसकवेदी जीवोंका क्षेत्र, तथा तत्सम्बन्धी विशेषताओंका वर्णन	११२	१०४	मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका क्षेत्र	११८
९५	अपगतवेदी जीवोंका क्षेत्र	११३	१०५	अचेतन और क्षणक्षयी शब्दकी अविनष्टरूपसे अनुवृत्ति कैसे हो सकती है, इस शंकाका समाधान	"
	६ कषायमार्गणा	११३-११७	१०६	विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र, तथा स्वस्थानादि पद-गत विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोकके संख्यातवै भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें ही क्यों रहते हैं, इस शंकाका समाधान	"
९६	क्रोध, मान, माया और लोभ-कषायी मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	११३	१०७	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक मति, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवोंका क्षेत्र	११९
९७	सासादनसम्यग्दृष्टि गुण-स्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके क्रोध, मान, माया और लोभकषायी जीवोंका क्षेत्र	११४	१०८	प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकषायान्त मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका क्षेत्र	"
९८	सूत्रमें ओघपद क्यों नहीं कहा, इस शंकाका समाधान	"	१०९	पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक-नयी देशनाओंके कहनेका प्रयोजन	१२०
९९	'लोकके असंख्यातवै भागमें' इतना ही पद सूत्रमें कहनेसे प्रकृतमें 'मानुषक्षेत्रके भी असं-ख्यातवै भागमें रहते हैं' यह अर्थ क्यों नहीं लेना चाहिए, इस शंकाका, तथा इसीके अन्तर्गत एक और भी शंकाका समाधान	११५	११०	केवलज्ञानी सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिनोंका क्षेत्र	"
१००	लोभकषायी सूक्ष्मसाम्प्रा-यिक शुद्धिसंयतोंका क्षेत्र	११६	१११	स्वस्थानस्वस्थान पदका स्वरूप बतलाकर क्षीणमोही अयोगिकेवलीमें उसकी असं-भवताका आपादन और समाधान	१२१
१०१	अकषायी जीवोंका क्षेत्र	"			
१०२	उपदान्तकषायी जीवको अक-षाय कैसे कहा, इस शंकाका तथा इसीके अन्तर्गत कुछ अन्य भी शंकाओंका समाधान	११७			

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	८ संयममार्गणा	१२१-१२५	१२३	उच्चपर्याप्तक जीवोंमें चक्षु-दर्शन पाया जाता है, या नहीं, इस शंकाका समाधान	१२६
११२	संयमी जीवोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र	१२१	१२४	अचक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकका क्षेत्र-निरूपण	१२७
११३	द्रव्यार्थिक नयदेशनाका प्रयोजन	१२२	१२५	अवाधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवोंका क्षेत्र	"
११४	सयोगिकेवलीका क्षेत्र और पृथक् सूत्र-निर्माणका प्रयोजन	"		१० लेइयामार्गणा	१२८-१३१
११५	सामायिक और छेदोपस्थापना संयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके संयत जीवोंका क्षेत्र	१२२-१२३	१२६	कृष्ण, नील और कापोत लेइयावाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् क्षेत्र-वर्णन	१२८
११६	परिहारविशुद्धिसंयत, सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयतोंसे पृथग्भूत क्यों नहीं, इस शंकाका समाधान	"	१२७	तेज और पद्मलेइयावालोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत तकके जीवोंका क्षेत्र	१२९
११७	परिहारविशुद्धिसंयमी प्रमत्त-और अप्रमत्त संयतोंका क्षेत्र	"	१२८	मारणान्तिक समुद्धातगत तेजोलेइयावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके क्षेत्रमें विशेषता का वर्णन	"
११८	सूक्ष्मसाम्पराय संयमवाले उपशामक और क्षपक जीवोंका क्षेत्र	"	१२९	वैक्रियिक, मारणान्तिक और उपपादपद्गत पद्मलेइयावाले जीवोंमें कौनसी राशि प्रधान है, इस बातका निरूपण	१३०
११९	यथाख्यातसंयमी, संयमासंयमी और असंयमी मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् क्षेत्र-निरूपण	१२४	१३०	शुक्लेइयावाले जीवोंमें मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय तकके जीवोंका क्षेत्र	"
१२०	ओघप्ररूपणाके भेद-प्रभेद और प्रकृतमें किस ओघसे प्रयोजन है, यह बताकर तत्सम्बन्धी शंका-समाधान	१२५	१३१	शुक्लेइयावाले सयोगिकेवली का क्षेत्र और अलेइय जीवोंका क्षेत्र नहीं कहनेका कारण	१३१
१२१	असंयमी सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र	"		११ मव्यमार्गणा	१३१-१३३
	९ दर्शनमार्गणा	१२६-१२८	१३२	भव्यासिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानमें जीवोंका क्षेत्र	१३१
१२२	चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक क्षेत्र-निरूपण	१२६			

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१३३	अभव्यसिद्धिक मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	१३२	१४१	उपशम श्रेणीसे उतरकर मरनेवाले उपशमसम्यक्त्वी जीवोंके सिवाय अन्य उपशमसम्यक्त्वी जीवोंका मरण क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान	१३५
१३४	विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत अभव्य जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, इस बातका सप्रमाण निरूपण	"	१४२	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् क्षेत्रनिरूपण	"
१३५	सादिबंध करनेवाले जीव पत्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं, इस बातका सशुक्तिक वर्णन	१३२-१३३	१३	संज्ञीमार्गणा	१३६
१३६	एकेन्द्रियोंमें संचित अनन्त सादिबंधकोंमेंसे जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण सादिबंधक जीव त्रसोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते, इस शंकाका समाधान	१३३	१४३	संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र	"
१३७	सामान्य सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र	१३३-१३६	१४४	असंज्ञी जीवोंका क्षेत्र	"
१३८	वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयत गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तगुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र	१३३	१४	आहारमार्गणा	१३७-१३८
१३९	उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतगुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र	१३४	१४५	आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टिगुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्रनिरूपण	१३७
१४०	मारणान्तिकसमुद्घात और उपादपद्गत असंयत उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंकी संख्याका निरूपण	१३५	१४६	अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	"
			१४७	अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और अयोगिकेवलीका क्षेत्र	१३८
			१४८	अनाहारक सयोगिकेवलीका क्षेत्र	"
			स्पर्शनानुगम		
			१		
			विषयकी उत्थानिका १४१-१४५		
			१	घबलाकारका मंगलाचरण और प्रतिज्ञा	१४१
			२	स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देशभेदकथन	"
			३	नामस्पर्शन, स्थापनास्पर्शन, द्रव्यस्पर्शन, क्षेत्रस्पर्शन, काल-	"

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	स्पर्शन और भावस्पर्शन, इन छह प्रकारके स्पर्शनोंका सभेद स्वरूप और नयोंमें अन्तर्भाव	१४१-१४४		स्वकीय निष्पक्ष मनोवृत्तिका परिचय	१५७-१५८
४	स्पर्शनशब्दकी निरुक्ति, ओघ-शब्दके एकार्थक नाम और प्रमाणवाक्यके अभावकी आशंकाका समाधान	१४४-१४५	१६	चन्द्रबिम्बशलाकाओंकी उत्पत्ति	१५९
	२		१७	ज्योतिषी देवोंके विमानोंका प्रमाण उत्सेधांगुलसे ही लेना चाहिये, प्रमाणांगुलसे नहीं, अन्यथा जम्बूद्वीप-सम्बन्धी तारे जम्बूद्वीपमें समा नहीं सकते, इस बातका पक्षान्तर स्वीकारके साथ उल्लेख	१६०
	ओघसे स्पर्शनानुगमनिर्देश	१४५-१७३	१८	सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर-देवोंका स्वस्थानक्षेत्र-निरूपण	१६१
५	मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र निरूपण	१४५	१९	सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं, या केवल मारणान्तिकसमुद्घात करते हैं, इस बातका सप्रमाण निर्णय	१६२-१६३
६	स्पर्शनानुयोगद्वारके अवतारकी आवश्यकताका प्रतिपादन	१४५-१४६	२०	जब कि सासादनसम्यग्दृष्टि देव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करते हैं, तो फिर सर्व-लोकवर्ती एकेन्द्रियोंमें क्यों नहीं करते, इस शंकाका सयुक्तिक समाधान	१६४
७	लोकका प्रमाण-निरूपण	१४६-१४७	२१	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कैसे घटित होता है, वे वायुकायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्घात क्यों नहीं करते, इन शंकाओंका समाधान	"
८	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१४८	२२	उपपाद्गत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके देशोन ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रकी सिद्धि	१६५
९	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१४९-१६५	२३	जिन आचार्योंका यह अभिमत है कि देव नियमसे मूलशरीरमें प्रविष्ट होकर ही मरण करते हैं, और इसी अपेक्षा उपपाद्गत सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका	
१०	सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्र	१४९			
११	सासादनसम्यग्दृष्टि ज्योतिष्क देवोंका स्वस्थानक्षेत्र	१५०-१६०			
१२	एक चन्द्रके परिवारका प्रमाण	१५१-१५२			
१३	ज्योतिष्कदेवोंके सर्व विमानोंका प्रमाण	१५२			
१४	स्वयम्भूरमण समुद्रके परभागमें राजुके अर्धच्छेदोंके अस्तित्वकी सिद्धि, तथा परिकर्मसूत्रके साथ उसका विरोध उद्घावन कर उसका परिहार	१५५-१५६			
१५	राजुके अर्धच्छेद सर्व द्वीप-सागरोंके प्रमाणसे तत्प्रायोग्य संख्यात रूपाधिक हैं, यह कथन केवल त्रिलोकप्रज्ञासूत्रके अनुसार है, यह बतलाते हुए असंख्यात आचलियोंके अवधारकालके तथा आयतचतुरस्र लोक-संस्थानके उपदेशका उल्लेख और				

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	स्पर्शनक्षेत्र देशोन दश बड़े चौबूह भागप्रमाण कहते हैं, उनके कथनका सममाण विरोध-निरूपण	"		मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्यों नहीं, इस शंकाका तथा इसीके अन्तर्गत और भी अनेकों शंकाओंका समाधान	१७४
२४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१६६	३१	विग्रहगतिमें जीवोंके विग्रह सहेतुक होते हैं, या अहेतुक, इस बातका निर्णय करते हुए नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव-गति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियोंके भेदोंका निरूपण और उनके क्षेत्र-विपाकित्वकी सिद्धि	१७५-१७६
२५	संयतासंयत जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१६७-१६८	३२	सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१७७
२६	स्वयम्भूरमणसमुद्र और स्वयम्प्रभपर्वतके परभागवर्ती क्षेत्रका विष्कम्भ बतलाते हुए संयता-संयत जीवोंके स्वस्थानक्षेत्रकी सममाण सिद्धि	१६८-१६९	३३	नारकावासोंके आकारोंका, तथा वर्तमानकालमें नारकियोंसे रोके हुए क्षेत्रका वर्णन	१७८
२७	प्रमत्तसंयत गुणस्थानले लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र, तथा विक्रियादि ऋद्धिसम्पन्न ऋषियोंने सर्व मनुष्यक्षेत्रका स्पर्श किया है, या नहीं; क्या मेरु-शिखर तक जाने आनेवाले ऋषि मनुष्यक्षेत्रमें सर्वत्र नहीं जा आ सकते; क्या तिर्यचोंका भी एक लाख योजन ऊपर तक जाना सम्भव नहीं है, इत्यादि अनेक शंकाओंका समाधान	१७०-१७२	३४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि नारकियोंका स्पर्शन-क्षेत्र बतलाते हुए एक नारका-वासका क्षेत्रफल, तथा मारणा-न्तिक समुद्रातगत असंयत-सम्यग्दृष्टि नारकियोंका स्पर्शन-क्षेत्र मनुष्यलोकसे असंख्यात-गुणा क्यों है, इस बातका अनेक युक्तियोंके साथ समर्थन	१७९-१८२
२८	सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र	"	३५	प्रथम पृथिवीके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती स्वस्थानादि-पदगत नारकियोंके स्पर्शन-क्षेत्रकी सयुक्तिक सिद्धि करते हुए प्रसंगागत मृदंगाकार लोकके अनुसार एक लाख योजन बाह्य और एक राजु गोल तिर्यग्लोकके प्रमाणका, जगधेणी जगप्रतर, धनलोकका परिकर्मके अवतरण पूर्वक स्वरूप-निरूपण	
	३ आदेशसे स्पर्शनक्षेत्र-निर्देश	१७३-३०९			
	१ गतिमार्गणा	" -२४०			
	(नरकगति)	" -१९२			
२९	नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१७३			
३०	अतीतकालकी अपेक्षा विहारव-स्वस्थानादि पदगत नारकी				

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	करते हुए अनेक युक्तियों और प्रमाणोंसे खंडन	१८२-१८७		कार शलाकाओंका निरूपण और उनसे विवक्षित द्वीप और समुद्रके क्षेत्रफल निकालनेका विधान	१९५-१९८
३६	द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१८८-१८९	४५	स्वयम्भूरमण समुद्रके क्षेत्रफल निकालनेका विधान	१९८
३७	उक्त पृथिवियोंके सम्याग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका स्पर्शनक्षेत्र	१८९-१९०	४६	सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफलका संकलन-निरूपण	१९९-२०१
३८	सातवीं पृथिवीके मिथ्यादृष्टि नारकियोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र तथा देशोन क्षेत्रका स्पर्शीकरण	१९०-१९१	४७	स्वयम्भूरमण समुद्रके अतिरिक्त शेष सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफलको निकालनेका विधान	२०२-२०३
३९	सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका स्पर्शनक्षेत्र (तिर्यचगति)	१९१-१९२ १९२-२१६	४८	सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच मेह. मूलसे नीचे मारणान्तिकसमुद्रात क्यों नहीं करते हैं, उनकी भवनवासी देवोंमें उत्पत्ति होती है, कि नहीं; इत्यादि अनेक शंकाओंका समाधान	२०४-२०६
४०	तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र, तथा असजीवरहित असंख्यात द्वीप और समुद्रोंमें विहारवत्स्वस्थान पदपरिणत तिर्यचोंका होना कैसे संभव है, इस शंकाका समाधान करते हुए अतीतकालमें विहार करनेवाले तिर्यचोंसे स्पर्श किये गये क्षेत्रके निकालनेका विधान	१९२-१९३	४९	सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यचोंका स्पर्शनक्षेत्र	२०६
४१	सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१९३-२०६	५०	असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यचोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२०७-२११
४२	जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल	१९४	५१	नवत्रैवेयकोंमें यदि मिथ्यादृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं तो असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यचोंकी उत्पत्ति क्यों नहीं होना चाहिये ? यदि कहा जाय कि मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्यलिंगसे उत्पन्न होते हैं, तो ये भी द्रव्यलिंगसे ही उत्पन्न होंगे ? इस शंकाका समाधान	२०८
४३	लघणसमुद्रका क्षेत्रफल	१९५	५२	उपपादपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंके स्पर्शनक्षेत्रके करणसूत्र द्वारा निकालनेका विधान	२०९-२१०
४४	धातकीखंड आदि द्वीपों और कालोदक आदि समुद्रोंके क्षेत्रफलके निकालनेके लिए गुण-		५३	विहारवत्स्वस्थानादि पदपरिणत संयतासंयत तिर्यचोंका स्पर्शनक्षेत्र	२१०-२१३

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
५४	मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-पर्याप्त और योनिमती तिर्य-चोका वर्तमान और अतीत-कालिक स्पर्शनक्षेत्र,	२११-२१२	६४	कुलाचल आदिके क्षेत्रकी 'मनुष्य क्षेत्र' यह संज्ञा कैसे है, इस शंकाका समाधान	२१८
५५	ब्रसनालीके बाहिर ब्रसकायिक जीवोंके अभाव होनेसे मार-णान्तिक और उपपाद्गत उक्त तिर्यचत्रिकोंका स्पर्शनक्षेत्र सर्व लोक कैसे सम्भव है, इस शंकाका समाधान	२१२	६५	मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले नारकी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्या-तवां भाग नहीं हो सकता, इस बातका सयुक्तिक आक्षेप और परिहार	२१८-२२०
५६	सासादनगुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक उक्त पंचेन्द्रियत्रिकोंका स्पर्शनक्षेत्र	२१३	६५	सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके मनुष्योंका स्पर्शनक्षेत्र	२२०-२२३
५७	पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्य-चोका वर्तमानकालिक स्पर्शन-क्षेत्र	"	६६	मारणान्तिक समुद्घातगत असं-यतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंने तिर्य-ग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे स्पर्श किया, इस शंकाका समाधान	२२१
५८	पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्य-चोका अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र तथा उसके निकालनेका विधान	२१४	६७	बद्धायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंके उपपादक्षेत्रके निकाल-नेका विधान	२२१-२२२
५९	अंगुलके असंख्यातवै भागमात्र अवगाहनावाले लब्धपर्याप्त जीवोंके संख्यात अंगुलप्रमाण उत्सेध कैसे संभव है, इस शंकाका समाधान	"	६८	सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म परिधिक्षेत्रके निकालनेका करणसूत्र	२२१
६०	महामच्छकी अवगाहनामें एक बन्धनसे बद्ध षट्कायिक जीवोंका अस्तित्व कैसे जाना जाता है, इस शंकाका समाधान	२१५	६९	सयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शन-क्षेत्र	२२३
	(मनुष्यगति)	२१६-२२४	७०	लब्धपर्याप्त मनुष्योंका वर्त-मानकालिक स्पर्शनक्षेत्र	"
६१	मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनु-ष्यनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्त-मान और अतीतकालिक स्पर्शन-क्षेत्र	२१६-२१७	७१	लब्धपर्याप्त मनुष्योंका अतीत-कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२२४
६२	उक्त तीनों प्रकारके सासादन-सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२१७-२२०		(देवगति)	२२४-२४०
६३	मनुष्योंसे अगम्य प्रदेशवाले		७२	मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि देवोंका वर्तमान-कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२२४
			७३	उक्त देवोंका अतीत और अना-गतकालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२२५
			७४	दिशा और विदिशाका स्वरूप, तथा घुटापक्रमनियमके होनेमें युक्ति	२२६

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
७५	भवनवासियोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यचोंका उपपाद् सम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र साधिक पांच राजु क्यो नहीं होता, इस शंकाका समाधान	२२६-२२७	८५	सौधर्म और ईशानकल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२३४-२३६
७६	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि देवोंके वर्तमान तथा अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२२७	८६	इन्द्रक, श्रेणीवज्र और प्रकीर्णक विमानोंके विस्तारका निरूपण	२३४
७७	मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंके वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रका समुक्तिक निरूपण	२२८-२२९	८७	सौधर्मादि सर्व कल्पोंके विमानोंकी संख्याका निरूपण	२३५-२३६
७८	उक्त देवोंके अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२२९-२३२	८८	सौधर्मकल्पवासी देवोंका स्पर्शनक्षेत्र देवोंके ओघस्पर्शनके समान क्यो है, इसका सोपपत्तिक निरूपण	२३६
७९	उपपाद्पद्गत मिथ्यादृष्टि भवनवासी देवोंके स्पर्शनक्षेत्रसम्बन्धी अनेक अपूर्व शंकाओंका समाधान	२३०	८९	सनत्कुमारकल्पसे लेकर सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२३७-२३८
८०	मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि व्यन्तरदेवोंके स्वस्थानादि पदोंके स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२३०-२३१	९०	भानतकल्पसे लेकर अद्भुतकल्प तकके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२३८-२३९
८१	उपपादकी अपेक्षा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें व्याप्त करके स्थित व्यन्तरदेव अतीतकालमें कैसे तिर्यग्लोकके संख्यातवै भागको स्पर्श करते हैं, इस शंकाका समुक्तिक समाधान	२३१	९१	नवत्रैवेयकोंके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२३९
८२	व्यन्तरोंके प्रसंगोपात्त आवासस्थानोंका निरूपण	२३२	९२	नव अनुदिश और पांच अनुत्तर विमानवासी असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४०
८३	उपपाद्गत ज्योतिष्क देवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२३२-२३३		२ (इन्द्रियमार्गणा)	२४०-२४६
८४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२३३-२३४	९३	बादर, सूक्ष्म और पर्याप्त अपर्याप्त एकेन्द्रिय जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४०-२४२
			९४	बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र सामान्य लोक आदि	

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	तीन लोकोंके संख्यातर्वे भाग क्यों है, इस शंकाका समाधान		१०२	बादर तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवोंके वैक्रियिक-समुद्घातसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक वर्णन	२४९-२५०
९५	सामान्य एवं पर्याप्त और अपर्याप्त विकलत्रय जीवोंका वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२४१	१०३	बादर पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका तथा तदन्तर्गत शंका-समाधानोंका सप्रमाण वर्णन	२५०-२५२
९६	उक्त तीनों प्रकारके विकलत्रय जीवोंके अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२४२	१०४	बादर वायुकायिकपर्याप्त जीवोंका वर्तमान तथा अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२५२-२५३
९७	पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंके वर्तमान तथा अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२४३	१०५	वनस्पतिकायिक, निगोद, तथा उनके बादर, सूक्ष्म और पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५३-२५४
९८	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४४	१०६	त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्त जीवोंके मिथ्यादृष्टि आदि चौदहों गुणस्थानों सम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रका निरूपण	२५४
९९	लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२४६	१०७	त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५४-२५५
	३ (कायमार्गणा)	२४७-२५५		४ योगमार्गणा	२५५-२७१
१००	सामान्य तथा बादर पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, तथा इन्हींके अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मअग्निकायिक, सूक्ष्मवायुकायिक और इन्हींके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४७	१०८	पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२५५-२५६
१०१	उक्त जीवोंने तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र कैसे स्पर्श किया है, यह बतलाते हुए आठों पृथिवियोंकी लम्बाई चौड़ाई और मोटाईका निरूपण	२४७-२४८	१०९	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५६-२५७
			११०	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायगुणस्थान तक	

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१११	काययोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र काययोगी सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र, तथा पृथक् सूत्र- द्वारा बतलानेका सयुक्तिक कारण-निरूपण	२५८-२५९	१२०	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्या- दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६८-२६९
११२	औदारिककाययोगी मिथ्या- दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५९-२६०	१२१	आहारककाययोगी और आहा- रकामिश्रकाययोगी प्रमत्तसंय- तोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६९
११३	औदारिककाययोगी सासादन- सम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शन- क्षेत्र	२६०-२६१	१२२	कर्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६९-२७०
११४	औदारिककाययोगी सम्य- ग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्य- ग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२६१-२६२	१२३	कर्मणकाययोगी सासादन- सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्य- ग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान तथा अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७०-२७१
११५	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके औदारिककाययोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६२-२६३	१२४	कर्मणकाययोगी सयोगि- केवलीका स्पर्शनक्षेत्र	२७१
११६	औदारिकमिश्रकाययोगी मि- थ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शन- क्षेत्र	२६३-२६४	५ वेदमार्गणा २७१-२७९		
११७	औदारिकमिश्रकाययोगी सा- सादनसम्यग्दृष्टि, असंयत- सम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रका तद- न्तर्गत शंका-समाधान पूर्वक सोपपत्तिक निरूपण	२६४-२६५	१२५	स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्या- दृष्टि जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सयुक्तिक निरूपण	२७१-२७२
११८	वैक्रियिककाययोगी मिथ्या- दृष्टि जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२६६	१२६	स्त्री और पुरुषवेदी सासादन- सम्यग्दृष्टि जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शन- क्षेत्रका तदन्तर्गत शंका-समा- धानके साथ निरूपण	२७२-२७४
११९	वैक्रियिककाययोगी सासादन- सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६७-२६८	१२७	स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी सम्य- ग्मिथ्यादृष्टि तथा असंयत- सम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शन- क्षेत्र	२७४
			१२८	स्त्री और पुरुषवेदी संयता- संयतोंका वर्तमान और अतीत- कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७४-२७५
			१२९	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक स्त्री और पुरुषवेदी जीवोंका तदन्तर्गत	

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१३०	विशेषताओंके साथ स्पर्शन-क्षेत्रका वर्णन	२७५-२७६	१३९	असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायगुणस्थान तकके मति, श्रुत और अवधि-ज्ञानी जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	२८३-२८४
१३१	नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंके तदन्तर्गत शंका-समाधानके साथ स्पर्शनक्षेत्रका निरूपण	२७६	१४०	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८४
१३२	नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७६-२७७	१४१	केवलज्ञानी सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८४-२८५
१३३	सम्यगिमिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके नपुंसकवेदी जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७७-२७९	८	संयममार्गणा	२८५-२८८
१३४	अपगतवेदी जीवोंका स्पर्शन-क्षेत्र	२७९	१४२	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके संयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८५-२८६
६ (कषायमार्गणा)	२८०-२८१	१४३	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके सामायिक और छेदोपस्थापना संयमी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८६	
१३४	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके चारों कषायवाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८०	१४४	प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुण-स्थानवर्ती परिहारविशुद्धि-संयतोंका स्पर्शनक्षेत्र	"
१३५	लोभकषायवाले सूक्ष्मसाम्प-रायगुणस्थानवर्ती उपशामक और क्षपक जीवोंका स्पर्शन-क्षेत्र	"	१४५	उपशामक और क्षपक सूक्ष्म-साम्परायसंयमी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८७
१३६	उपशान्तकषाय आदि अन्तिम चार गुणस्थानवाले अकषायी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८०-२८१	१४६	अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती यथाख्यातसंयमी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	"
७ (ज्ञानमार्गणा)	२८१-२८५	१४७	संयमासंयमवाले जीवोंका तद-न्तर्गत शंका-समाधानके साथ स्पर्शनक्षेत्र-निरूपण	"	
१३७	मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि मत्यज्ञानी तथा श्रुताज्ञानी जीवोंके स्पर्शन-क्षेत्रका तदन्तर्गत शंका-समा-धानपूर्वक निरूपण	२८१-२८२	१४८	मिथ्यादृष्टि आदि चार गुण-स्थानवर्ती असंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८८
१३८	विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	२८२-२८३			

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	९ दर्शनमार्गणा	२८८-२९०			
१४९	चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवों- का वर्तमान और अतीत- कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२८८		सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्योंका स्पर्शनक्षेत्र क्रमशः बारह बटे चौदह, ग्यारह बटे चौदह और नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्यों नहीं पाया जाता, इस शंकाका समाधान	२९२
१५०	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके चक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८९	१५८	तिर्यंचगतिमें उत्पन्न होनेवाले देवोंके तीनों अशुभलेश्याओंका उपपादपदसम्बन्धी क्रमशः ग्यारह बटे चौदह, दश बटे चौदह और आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता, इस शंकाका समाधान	२९२
१५१	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके अचक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शन- क्षेत्र	"	"		
१५२	अवधिदर्शनी जीवोंका स्पर्शन- क्षेत्र	"	"		
१५३	केवलदर्शनी जीवोंका स्पर्शन- क्षेत्र	२९०	१५९	उक्त तीनों अशुभलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत- सम्यग्दृष्टि जीवोंका सशुक्तिक स्पर्शनक्षेत्र	२९३-२९४
	१० लेश्यामार्गणा	२९०-३०१			
१५४	कृष्ण, नील और कापोत- लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका सोपपत्तिक स्पर्शनक्षेत्र	२९०	१६०	तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीत- कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९४-२९५
१५५	उक्त तीनों अशुभलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९१-२९३	१६१	तेजोलेश्यावाले सम्यग्मिथ्या- दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीत- कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९५-२९६
१५६	देवोंसे एकेन्द्रियोंमें मारणा- न्तिक समुद्रात करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका तीनों अशुभ लेश्यासम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र यथाक्रमसे बारह बटे चौदह भाग, ग्यारह बटे चौदह भाग और नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्यों नहीं पाया जाता, इस शंकाका समाधान	२९२	१६२	तेजोलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंका वर्तमान और अतीत- कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९६-२९७
१५७	कृष्ण, नील और कापोत लेश्या- वाले तथा एकेन्द्रियोंमें मार- णान्तिक समुद्रात करनेवाले		१६३	तेजोलेश्यावाले प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका स्पर्शनक्षेत्र	२९७
			१६४	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तकके पद्मलेश्यावाले जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९७-२९८

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१६५	पद्मलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंका वर्तमान और अतीत अनागतकालसंबंधी स्पर्शनक्षेत्र	२९८	१७५	वर्ती क्षायिकसम्यक्त्वी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०२
१६६	पद्मलेश्यावाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका स्पर्शनक्षेत्र	२९९	१७५	उपपादपद्मगत असंयत क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन-क्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कैसे है, इस शंकाका समाधान	३०२-३०३
१६७	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तकके शुक्लेश्यावाले जीवोंका वर्तमान और अतीत-अनागतकाल-संबंधी स्पर्शनक्षेत्र	२९९-३००	१७६	संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके क्षायिकसम्यक्त्वी जीवोंका सोपपत्तिक स्पर्शन-क्षेत्र-वर्णन	३०३-३०४
१६८	शुक्लेश्यावाले तिर्यंच, शुक्लेश्यावाले देवोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं, इस शंकाका समाधान	३००	१७७	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०४
१६९	उपपादपद्मपरिणत शुक्लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके तथा मारणान्तिकपद्मपरिणत शुक्लेश्यावाले संयतासंयत जीवोंके देशोन छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन क्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	"	१७८	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान-वर्ती औपशमिकसम्यक्त्वी जीवका स्पर्शनक्षेत्र, तथा उसके ओघके समान कहनेमें उपस्थित आपत्तिका परिहार	३०४-३०५
१७०	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके शुक्लेश्यावाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३००-३०१	१७९	संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय गुण-स्थान तकके उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०५
	११ भव्यमार्गणा	३०१	१८०	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् स्पर्शनक्षेत्र	३०६
१७१	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके भव्यजीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०१		१३ संज्ञिमार्गणा	३०६-३०७
१७२	अभव्य जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	"	१८१	संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	३०६-३०७
	१२ सम्यक्त्वमार्गणा	३०२-३०६	१८२	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुण-स्थान तकके संज्ञी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०७
१७३	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके सम्यक्त्वी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०२			
१७४	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान-				

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१८३	असंज्ञी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०७	७	व्यवहारकालके अस्तित्वकी पुष्टिमें पंचास्तिकायप्राभृतकी गाथाओंका उल्लेख	३१७
	१४ आहारमार्गणा	३०८-३०९			
१८४	आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०८	८	प्रकृतमें नोआगमभावकालका प्रयोजन और उसके समय, आवली, मुहूर्त, वर्ष आदि स्वरूप होनेका निरूपण	"
१८५	आहारमार्गणाकी अपेक्षा उपपादपदका राजुप्रमाण आयाम नहीं पाया जाता, अतः सर्वलोक प्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके अभाव होनेसे ओघपना नहीं बनता है, इस शंकाका समाधान	"	९	कालशब्दकी निरुक्ति और उसके पर्यायवाची नामोंका निरूपण	३१७-३१८
१८६	सासादनसम्यग्दृष्टि गुण-स्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकका स्पर्शनक्षेत्र	"	१०	समय, आवली, उश्वासनिःश्वास स्तोक, लव, नाली, मुहूर्त और दिवसके कालप्रमाणका सम्प्रमाण निरूपण	३१८
१८७	अनाहारक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०९	११	दिन और रात्रिसम्बन्धी तीस मुहूर्तोंके नाम	३१८-३१९
	कालानुगम		१२	पक्षका प्रमाण और दिवसोंके नाम	३१९
	१		१३	मास, वर्ष और युग आदिका स्वरूप	३२०
	विषयकी उत्थानिका	३१३-३२३	१४	निर्देश, स्वामित्व आदि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारोंसे कालका स्वरूप-निरूपण	३२०-३२२
१	ध्वलाकारका मंगलाचरण और प्रतिष्ठा	३१३	१५	यदि काल एकमात्र मनुष्यक्षेत्रके सूर्यमंडलमें ही अवस्थित है, तो उसके द्वारा छह द्रव्योंके परिणाम कैसे प्रकाशित किये जा सकते हैं, इस शंकाका समाधान	३२०
२	कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश-भेद-निरूपण	"	१६	देवलोकमें तो दिन-रात्रिरूप कालका अभाव है, फिर वहां पर कालका व्यवहार कैसे होता है, इत्यादि कालसम्बन्धी अनेकों शंकाओंके अपूर्व समाधान	३२१
३	नामकाल, स्थापनाकाल, द्रव्यकाल और भावकाल, इन चार प्रकारके कालनिक्षेपोंका सभेद स्वरूप-निरूपण	३१३-३१७	१७	निर्देशके पर्यायवाची नाम बतला कर दोनों प्रकारके निर्देशोंकी सार्थकताका निरूपण	३२२-३२३
४	तद्ध्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकालका स्वरूप और उसकी पुष्टिमें पंचास्तिकायप्राभृत, जीवसमास और आचारांगकी गाथाओंका उल्लेख	३१४-३१६			
५	द्रव्यकालके अस्तित्वको समर्थन करते हुए तत्त्वार्थसूत्रका सूत्रप्रमाण-निरूपण	३१६			
६	प्रकृत जीवस्थान आदिमें द्रव्यकालके न कहनेका कारण	"			

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	२				
	ओषसे कालानुगमनिर्देश	३२३-३५७	२६	पुद्गलपरिवर्तनके स्वरूपका बोधक यंत्र	३३०
१८	मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा कालनिरूपण	३२३	२७	अगृहीत, मिश्र और गृहीत संबंधी तीनों प्रकारके कालोंका सकारण अल्पबहुत्व-निरूपण	३३१
१९	एक जीवकी अपेक्षा कालके तीन भेदोंका सदृष्टान्त उल्लेख, और प्रकृतमें सादि-सान्त कालकी अपेक्षा जघन्यकालका निरूपण	३२४	२८	नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनके समान ही कर्मपुद्गलपरिवर्तनके स्वरूपका उल्लेख और तत्सम्बन्धी विशेषताओंका निरूपण	३३२
२०	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवको भी मिथ्यात्व गुणस्थानमें पहुंचा कर उसका जघन्यकाल क्यों नहीं बतलाया, इस शंकाका समाधान	३२५	२९	क्षेत्र, काल, भव और भाव-पुद्गलपरिवर्तनोंका सूत्रगाथाओं द्वारा स्वरूप-निरूपण	३३३-३३४
२१	एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट सादि-सान्त मिथ्यात्वकालका निरूपण	३२५	३०	एक जीवकी अपेक्षा पांचों परिवर्तनवारोंका अल्पबहुत्व	३३४
२२	अर्धपुद्गलपरिवर्तनका स्वरूप बतलाते हुए पांच प्रकारके परिवर्तनोंका नामोल्लेख कर द्रव्यपरिवर्तनका विशद स्वरूप-निरूपण	३२५-३३६	३१	पांचों परिवर्तनोंका कालसंबंधी अल्पबहुत्व	३३५
२३	यदि जीवने आज तक भी समस्त पुद्गल भोगकर नहीं छोड़े हैं, तो 'सब्वे त्रि पोगला खलु' इत्यादि सूत्र-गाथाके साथ विरोध क्यों नहीं होगा, इस शंकाका समाधान	३२६	३२	सादि-सान्त मिथ्यात्वके कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालका निर्दर्शन	३३५
२४	प्रथम समयमें गृहीत पुद्गल-पुंज द्वितीय समयमें निर्जाण हो, अकर्मरूप अवस्थाको धारण कर, पुनः तृतीय समयमें उसी जीवमें नोकर्मपर्यायसे परिणत हो जाता है, यह कैसे जाना, इस शंकाका समाधान	३२६	३३	सम्यक्त्वकी उत्पात्ति और मिथ्यात्वका विनाश, इन दोनों विभिन्न कार्योंका एक समय कैसे हो सकता है; इस शंकाका समाधान	३३५
२५	पुद्गलपरिवर्तनकालके तीन प्रकारोंका स्वरूप	३२७	३४	मिथ्यात्व नाम पर्यायका है, वह पर्याय उत्पाद्-विनाशात्मक है, क्योंकि, उसमें स्थितिका अभाव है। और यदि उसकी स्थिति भी मानते हैं, तो मिथ्यात्वके द्रव्यपना प्राप्त होता है, इस शंकाका समाधान	३३६-३३७
		३२८	३५	अनन्तका स्वरूप और उसके प्रमाणमें आर्षगाथाका उल्लेख	३३८
		३२८	३६	व्ययसहित अर्धपुद्गलपरिवर्तन आदि राशियोंके अनन्तपना किस अपेक्षासे है, इसका स्पष्टीकरण	३३९
		३२८	३७	अक्षय अनन्त राशिका विवेचन	३३९

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
३८	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नानाजीवोंकी अपेक्षा सोपपत्तिक जघन्य कालनिरूपण			तत्सम्बन्धी अनेकों शंकाओंका समाधान	३४५-३४६
३९	उक्त जीवोंके उत्कृष्ट कालका सयुक्तिक कालवर्णन	३३९	५०	एक जीवकी अपेक्षा असंयत-सम्यग्दृष्टियोंके जघन्य कालका सनिदर्शन निरूपण	३४६-३४७
४०	एक जीवकी अपेक्षा सासादन-सम्यग्दृष्टियोंके जघन्य कालका निरूपण		५१	एक जीवकी अपेक्षा असंयत-सम्यग्दृष्टियोंके जघन्य कालका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक सोपपत्तिक निरूपण	३४७-३४८
४१	उपशमसम्यक्त्वकालके अधिक माननेमें क्या दोष है, इस शंकाका समाधान करते हुए सासादनगुणस्थानके कालका सप्रमाण निरूपण		५२	संयतासंयत जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	३४८
४२	एकजीवकी अपेक्षा सासादन-सम्यग्दृष्टियोंके उत्कृष्ट कालका सप्रमाण निरूपण		५३	एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयतोंका जघन्य काल	३४९
४३	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल	३४२-३४३	५४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संयमासंयमको क्यों नहीं प्राप्त होता, इस शंकाका समाधान	"
४४	अप्रमत्तसंयत जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त होते, इस शंकाका समाधान	३४३	५५	एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयतोंका उत्कृष्ट काल	३५०
४५	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अपना काल पूरा कर पीछे संयमको, अथवा संयमासंयमको क्यों नहीं प्राप्त होता, इस शंकाका समाधान		५६	प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल-निरूपण	३५०
४६	नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट काल	३४४	५७	एक जीवकी अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंके जघन्य कालका सोपपत्तिक निरूपण	३५०-३५१
४७	एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके जघन्य कालका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण		५८	एक जीवकी अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका उत्कृष्ट काल	३५१
४८	एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके उत्कृष्ट कालका सोपपत्तिक प्रतिपादन	३४५	५९	चारों उपशामकोंका नाना जीवोंकी जघन्य काल	३५२
४९	असंयतसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, तथा		६०	अप्रमत्तसंयतको अपूर्वकरण गुणस्थानमें ले जाकर और द्वितीय समयमें मरण कराके अपूर्वकरण गुणस्थानके एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं की, इस शंकाका समाधान	"
			६१	नाना जीवोंकी अपेक्षा चारों उपशामकोंके उत्कृष्ट कालका सोपपत्तिक निरूपण	३५२-३५३

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	
६२	एक जीवकी अपेक्षा चारों उप- शामकोंका जघन्य काल	३५३-३५४		और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका सोपपत्तिक निरूपण	३६१-३६३	
६३	एक जीवकी अपेक्षा चारों उप- शामकोंका उत्कृष्ट काल	३५४		(तिर्यचगति)	३६३-७२	
६४	चारों क्षपक और अयोगि- केवलीका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्ट काल	३५४-३५५	७४	तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल वर्णन	३६३	
६५	उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३५५	७५	एक जीवकी अपेक्षा तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६३-३६४	
६६	सयोगिकेवली जिनका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल निरूपण	३५६-३५७	७६	'असंख्यात पुद्गलपीरर्वतन' इस वचनसे अनन्तताकी उपलब्धि होती है, अतः सूत्रमेंसे अनन्त पद क्यों न निकाल दिया जाय, इस शंकाका समाधान	३६४	
३ आदेशसे काल प्रमाण-निर्देश १ गतिमार्गणा (नरकगति)			३५७-३६३	७७	सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्य- ग्मिथ्यादृष्टि तिर्यचोंका काल प्रमाण	"
६७	नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नानाजीवोंकी अपेक्षा काल निरूपण	३५७	७८	असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६५-३६६	
६८	एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल	३५७-३५८	७९	संयतासंयत तिर्यचोंका नाना और एकजीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६६	
६९	सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्य- ग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका काल वर्णन	३५८	८०	पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त और योनिमती मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६७-३६९	
७०	असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल निरूपण	३५८-३५९	८१	पंचानवे पूर्वकोटियोंकी पूर्व- कोटीपृथक्त्वसंज्ञा कैसे हो सकती है, इस शंकाका समाधान	३६८	
७१	सातों पृथिवियोंके नारकियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका प्रतिपादन	३६०-३६१	८२	लब्धपर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदकी संभ- वता-असंभवताका विचार	३६९	
७२	सातों पृथिवियोंके सासादन- सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या- दृष्टि नारकियोंका काल वर्णन	३६१	८३	उक्त तीनों प्रकारके सासादन- सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या- दृष्टि तिर्यचोंका काल वर्णन	"	
७३	सातों पृथिवियोंके असंयत- सम्यग्दृष्टि नारकियोंका नाना					

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
८४	उक्त तीनों प्रकारके असंयत-सम्यग्दृष्टि तिर्यच्चोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोपपत्तिक जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६९-३७१	९४	सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका काल	३८१
८५	उक्त तीनों प्रकारके संयता-संयत तिर्यच्चोंका काल	३७१	९५	असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	"
८६	पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्यच्चोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७१-३७२	९६	भवनवासियोंसे लगाकर शतार सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८२-३८४
	(मनुष्यगति)	३७२-३८०	९७	घातायुष्क सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देवोंके कालमें विशेषता	३८३
८७	मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका सोपपत्तिक निरूपण	३७२-३७३	९८	उक्त देवोंकी स्थिति बतलाने-वाले कालसूत्रका और त्रिलोक प्रज्ञासिद्धका विरोध उद्गावन कर उसका परिहार	३८४
८८	उक्त तीनों प्रकारके सासादन-सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका नाना एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७४-३७५	९९	भवनवासियोंसे लेकर सहस्रारकल्प तकके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल	३८५
८९	उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७५-३७६	१००	आनतकल्पसे लेकर नवम्रैवेयकों तकके मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका निरूपण	३८५-३८६
९०	उक्त तीनों प्रकारके असंयत-सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७६-३७८	१०१	नौ अनुदिश और विजयादि चार अनुत्तर विमानोंके असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८६-३८७
९१	उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंका संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली तक काल निरूपण	३७८	१०२	सर्वार्थसिद्धि विमानवासी असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा काल निरूपण	३८७
९२	लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७९-३८०		२ इन्द्रियमार्गणा	३८८-४०१
	(देवगति)	३८०-३८७	१०३	एकेन्द्रिय जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८८
९३	मिथ्यादृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८०			

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१०४	बादर एकेन्द्रिय जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८८-३८९	११२	जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३९३-३९४
१०५	'कर्मस्थितिको आवलीके असंख्यातवै भागसे गुणा करने पर बादरस्थिति होती है,' इस परिकर्म-वचनके साथ बतलाये गये बादर एकेन्द्रियोंके एक जीवगत उत्कृष्ट कालका विरोध क्यों नहीं होगा, इस शंकाका समाधान	३९०	११३	सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका तदन्तर्गत शंका-समाधान पूर्वक निरूपण	३९४
१०६	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका नाना और एकजीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	"	११४	जब कि एक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके आयुर्कर्मकी स्थिति संख्यात आवली प्रमाण होती है, तब संख्यात वार उनमें ही पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाले जीवके दिवस, पक्ष, मास आदि प्रमाण स्थितिकाल क्यों नहीं पाया जाता, इस शंकाका समाधान	३९४-३९५
१०७	क्षुद्रभवग्रहणका काल संख्यात आवलीप्रमाण होता है, इस बातका सप्रमाण निरूपण	३९०-३९४	११५	सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका तदन्तर्गत अनेकों शंका-समाधानोंके साथ निरूपण	३९५
१०८	अन्तर्मुहूर्त भी संख्यात आवली-प्रमाण होता है, अतः अन्तर्-मुहूर्त और क्षुद्रभवके कालमें कोई भेद नहीं मानना चाहिए, इस शंकाका समाधान	३९२	११६	सामान्य विकलत्रय और पर्याप्तक विकलत्रय जीवोंके एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका तत्संबंधी अनेक शंका-समाधानोंके साथ निरूपण	३९६-३९७
१०९	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी भवस्थिति असंख्यात वर्षप्रमाण क्यों नहीं होती है, इस शंकाका समाधान	३९२	११७	लब्ध्यपर्याप्तक विकलत्रय जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल, वा तत्सम्बन्धी शंका-समाधान	३९७-३९८
११०	यदि कोई जीव बादर एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट संख्यात वार या उसके संख्यातवै भागप्रमाण वार उत्पन्न हो, तो असंख्यात वर्षप्रमाण बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी उत्कृष्ट भव-स्थिति क्यों नहीं हो जायगी, इस शंकाका समाधान	३९३	११८	पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना	३९८-३९९
१११	बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका नाना और एक				

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३९९-४००		कायिक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा काल	४०१-४०६
११९	सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय जीवोंका कालवर्णन	४००	१२७	वनस्पतिकायिक जीवोंका काल	४०६
१२०	पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीवोंका काल	४००-४०१	१२८	निगोदिया जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४०६-४०७
	३ कायमार्गणा	४०१-४०९	१२९	बादरनिगोद जीवोंका काल	४०७
१२१	पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका निरूपण	४०१-४०२	१३०	त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका तत्सम्बन्धी शंका-समाधान-पूर्वक निरूपण	४०७-४०८
१२२	बादरपृथिवीकायिक, बादर-जलकायिक, बादरअग्निकायिक बादरवायुकायिक और बादर-वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४०२-४०३	१३१	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान-से लगाकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंका काल	४०८
१२३	कर्मस्थितिसे किस कर्मकी स्थितिका अभिप्राय है, दर्शन-मोहनीयकर्मकी स्थितिको प्रधानता क्यों है, इन शंकाओंका समाधान	४०३	१३२	त्रसकायिक लब्धपर्याप्तक जीवोंका काल	४०८-४०९
१२४	उक्त पांचों प्रकारके पर्याप्त स्थावर जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका पृथक् पृथक् निरूपण	४०३-४०४		४ योगमार्गणा	४०९-४३७
१२५	उक्त पांचों प्रकारके लब्ध-पर्याप्त स्थावर जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४०५	१३३	पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवली गुणस्थानवर्ती जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल निरूपण	४०९
१२६	सूक्ष्म तथा पर्याप्तक और अपर्याप्तक पांचों स्थावर-		१३४	एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंके जघन्य कालका योग-परिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन मरण और व्याघात, इन चारके द्वारा सोदाहरण काल निरूपण	४०९-४१२
			१३५	उक्त जीवोंके उत्कृष्ट कालका वर्णन	४१२

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१३६	पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४१२-४१३	१४६	औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका सोदाहरण निरूपण	४२१-४२३
१३७	उक्त योगवाले सम्यग्मिथ्या-दृष्टि जीवोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४१३-४१४	१४७	औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवलीके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका तत्सम्बन्धी अनेकों शंकाओंके समाधान-पूर्वक निरूपण	४२३-४२४
१३८	पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी चारों उपशामकों और चारों क्षपकोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४१४-४१५	१४८	वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४२५-४२६
१३९	एक समयसम्बन्धी विकल्पोंका गाथासूत्रद्वारा निरूपण	४१५	१४९	वैक्रियिककाययोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-दृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल निरूपण	४२६
१४०	काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४१५-४१७	१५०	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका सोदाहरण तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	४२६-४२९
१४१	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान-से लेकर सयोगिकेवली गुण-स्थान तकके काययोगी जीवोंका काल	४१७	१५१	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासा-दनसम्यग्दृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका सोदाहरण निरूपण	४२९-४३०
१४२	औदारिककाययोगी मिथ्या-दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट काल	४१७-४१८	१५२	आहारककाययोगी प्रमत्त-संयतोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३१-४३२
१४३	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुण-स्थान तकके औदारिककाय-योगी जीवोंका काल	४१८	१५३	आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्त-संयतोंका नाना और एक	
१४४	औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४१८-४१९			
१४५	औदारिकमिश्रकाययोगी सासा-दनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४२०-४२१			

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३२-४३३	१६३	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके पुरुषवेदी जीवोंका काल	४४१
१५४	कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३३-४३५	१६४	नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४२
१५५	तीन विग्रहवाली गति किन जीवोंके होती है, यह बतलाकर तीन विग्रह करनेकी दिशाका निरूपण	४३४-४३५	१६५	नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल निरूपण	४४२
१५६	कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३५-४३६	१६६	नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४२-४४३
१५७	कार्मणकाययोगी सयोगिकेवलीका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३६-४३७	१६७	संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके नपुंसकवेदी जीवोंका काल	४४३
	५ वेदमार्गणा	४३७-४४४	१६८	अपगतवेदी जीवोंका काल	४४४
१५८	स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३७		६ कषायमार्गणा	४४४-४४८
१५९	स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल-निरूपण	४३८	१६९	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके चारों कषायवाले जीवोंके कालका कषायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरणकी अपेक्षा निरूपण	४४४-४४५
१६०	स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३८-४३९	१७०	किस कषायसे मरा हुआ जीव किस गतिमें उत्पन्न होता है, इस बातका विवेचन	४४५
१६१	संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके स्त्रीवेदी जीवोंका सोदाहरण काल	४३९-४४०	१७१	क्रोध, मान और माया, इन तीन कषायवाले आठवें और नवें गुणस्थानवर्ती उपशामकों का; तथा लोभकषायवाले आठवें, नवें और दशवें गुणस्थानवर्ती उपशामकोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४६-४४७
१६२	पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४०-४४१			

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१७२	उक्त कषाय तथा उक्त गुण-स्थानवाले क्षपक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४७-४४८	१८३	परिहारविशुद्धिसंयमी प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका काल	४५२
१७३	कषायरहित जीवोंका काल निरूपण	४४८	१८४	सूक्ष्मसाम्प्रायिक शुद्धिसंयतोंका काल	"
	७ ज्ञानमार्गणा	४४८-४५१	१८५	अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती यथाख्यातविहारविशुद्धिसंयतोंका काल	४५३
१७४	मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि तथा सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४४८-४४९	१८६	संयतासंयत जीवोंका काल	"
१७५	विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४९-४५०	१८७	असंयत जीवोंका काल	"
१७६	विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका काल	४५०		९ दर्शनमार्गणा	४५३-४५५
१७७	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंका काल	४५०-४५१	१८८	चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४५३-४५४
१७८	अवधिज्ञानी संयतासंयतोंके एक जीवसम्बन्धी उत्कृष्ट कालकी विशेषताका निरूपण	"	१८९	निर्वृत्यपर्याप्तकोंके समान लब्ध्यपर्याप्तकोंमें चक्षुदर्शन क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान	४५४
१७९	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका काल	४५१	१९०	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके चक्षुदर्शनी जीवोंका काल	"
१८०	केवलज्ञानियोंका काल निरूपण	"	१९१	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके अचक्षुदर्शनी जीवोंका काल	४५५
	८ संयममार्गणा	४५१-४५३	१९२	अवधिदर्शनी जीवोंका काल	"
१८१	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके संयतोंका काल	४५१-४५२	१९३	केवलदर्शनी जीवोंका काल	"
१८२	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक सामायिक और छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयतोंका काल	४५२		१० लेश्यामार्गणा	४५५-४७६
			१९४	कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल निरूपण, तथा तत्सम्बन्धी शंकाओंका सयुक्तिक समाधान	४५५-४५८
			१९५	तीनों अशुभ लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४५८

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१९६	तीनों अशुभ लेइयावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल	४५९		स्थानोंके तेज और पद्मलेइयावाले जीवोंकी लेइया और गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं कही, इस शंकाका समाधान	४६७-४६८
१९७	तीनों अशुभ लेइयावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल-निरूपण, तथा तदन्तर्गत अनेकों शंकाओंका सप्रमाण समाधान	४५९-४६२	२०५	तेज और पद्मलेइयाके समान कापोत और नील लेइयाओंका भी एक समय पाया जाता है, फिर उसे क्यों नहीं कहा, इस शंकाका समाधान	४६८
१९८	तेजोलेइया और पद्मलेइयावाले मिथ्यादृष्टि तथा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४६२-४६५	२०६	तेज या पद्मलेइयाके कालमें एक समय शेष रहनेपर जैसे नीचेके गुणस्थानवाले संयमासंयमको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकारसे प्रमत्तसंयत भी संयमासंयम गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त होता, इस शंकाका समाधान	४७०
१९९	मिथ्यादृष्टि जीवके तेजोलेइयाकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तसे कम अढ़ाई सागरोपम प्रमाण क्यों नहीं होती, इस शंकाका, तथा इसीसे सम्बन्धित अन्य कई शंकाओंका अपूर्व समाधान	४६३-४६५	२०७	पद्मलेइयाके कालमें विद्यमान कोई प्रमत्तसंयत उस लेइयाके कालक्षयसे तेजोलेइयासे परिणत होकर दूसरे समयमें अप्रमत्तसंयत क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान	४६९-४७०
२००	तेजोलेइया और पद्मलेइयावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४६५	२०८	उक्त प्रकारका जीव मिथ्यात्व आदिक नीचेके गुणस्थानोंको क्यों नहीं प्राप्त हो जाता, इस शंकाका समाधान	४७०
२०१	उक्त दोनों लेइयावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल	४६५-४६६	२०९	तेज और पद्मलेइयावाले संयतासंयतादि तीन गुणस्थानवाले जीवोंका उत्कृष्ट काल	४७१
२०२	उक्त दोनों लेइयावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	४६६	२१०	शुक्लेइयावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट कालका निरूपण	४७१-४७२
२०३	उक्त जीवोंके एक जीवकी अपेक्षा लेइयापरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरण, इन तीनोंके द्वारा जघन्य कालका निरूपण	४६६-४७१			
२०४	मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, इन दो गुण-				

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
२११	शुक्लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल निरूपण	४७२-४७३		केवली गुणस्थान तकके भव्य जीवोंका काल	४८०
२१२	शुक्लेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा लेश्यापरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरणकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका निरूपण	४७३-४७५		२१२ असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा काल निरूपण	"
२१३	तेज, पद्म और शुक्लेश्यासम्बन्धी एक एक समयके भंगोंका निरूपण	४७५		१२ सम्यक्त्वमार्गणा	४८१-४८५
२१४	शुक्लेश्यावाले चारों उपशामक, चारों क्षपक और सयोगिकेवलीका काल वर्णन	४७६		२२० सामान्य सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका काल	४८१
११ भव्यमार्गणा	४७६-४८०			२२१ असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	"
२१५	भव्यसिद्धिक मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	"		२२२ असंयत और संयतासंयत गुणस्थानवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८२
२१६	मिथ्यात्वके अनादि और अकृत्रिम होनेसे उसका विनाश नहीं होना चाहिए; कारण रहित वस्तुका विनाश नहीं होता. अतः अज्ञान या कर्मबन्धका विनाश नहीं होना चाहिए, इत्यादि अनेक अपूर्व शंकाओंका अद्वितीय समाधान	"		२२३ उक्त सम्यग्दृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८३
२१७	मोक्षको जानेके कारण निरन्तर व्ययशील भव्य राशिका विच्छेद क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान	४७८		२२४ प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय गुणस्थान तकके उपशामसम्यग्दृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका सोदाहरण निरूपण	४८३-४८४
२१८	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगि-			२२५ सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल-वर्णन	४८४-४८५
				१३ संज्ञिमार्गणा	४८५-४८६
				२२६ संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका	

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८५		नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८६-४८७
२२७	सासादनगुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके संज्ञी जीवोंका काल	"	२३०	सासादन गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके आहारक जीवोंका काल	४८७
२२८	असंज्ञी जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८६	२३१	अनाहारक मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवोंका काल	४८७-४८८
	१४ आहारमार्गणा		२३२	अनाहारक अयोगिकेवलीका काल	४८८
२२९	आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका				

शुद्धिपत्र

(पुस्तक १)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	(हिंदी)		
६३	७	ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके	ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मोंके
२६४	१६	कार्यमार्गणा	कायमार्गणा
३७६	१४	छेदोपस्थापना	सूक्ष्मसाम्पराय
"	१८	"	"
३८४	"	अवधिज्ञान	अवधिदर्शन

(पुस्तक २)

४४७	१२	क्षीण, संज्ञा	क्षीणसंज्ञा,
४५१	२०	और कार्मणकाययोग	और वैक्रियिककाययोग
४७३	१	सम्यक्त्व,	छह सम्यक्त्व,
४८१	८	आहारक, अनाहारक,	आहारक,
४८८	१४	द्रव्यसे कापोत—	आदिके दो दर्शन, द्रव्यसे कापोत—
५४०	१०	सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके अपर्याप्त कालसम्बन्धी आलाप	सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके आलाप

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५७७	६	संज्ञिक,	असंज्ञिक,
६३०	८	एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान,	एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान,
६४८	६	संज्ञिक,	औपशमिक आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक,
७१५	३	आदिके तीन दर्शन	आदिके दो दर्शन,
७२९	१३	तथा अक्रणायस्थान भी है,	तथा अक्रायस्थान भी है,
७३५	४	एगारह जोग,	एगारह जोग, अजोगो वि अत्थिः
"	१५	ग्यारह;	ग्यारह योग और अयोगरूप भी स्थान है;

(आलापौका)

पृष्ठ	यंत्र नं.	खाना नाम	अशुद्ध	शुद्ध, या जो होना चाहिए
४२१	१	संज्ञा	×	क्षीणसंज्ञा
		योग	×	अयोगी,
		लेश्या	×	अलेश्य
		संज्ञि०	×	अनुभय
४२९	१०	आहा०	१	२
"	११	"	२	१
४३१	१२	"	१	२
४३८	२१	गति	१	१ मनुष्यगति
"	"	कषाय	१	१ लोभ
४४७	२६	संज्ञा	१	० क्षीणसंज्ञा
४५२	३२	जीव०	१ स. अ.	१ स. प.
४५६	३८	लेश्या	भा. ३ अशु.	भा० १ कापोत
४५८	४०	ज्ञान	९	६
४६०	४४	पर्याप्ति	६	६ अप०
५०३	१०१	योग	×	अयोग
५१४	११४	"	×	"
५६९	१८३	संज्ञि०	१ सं०	१ असं०
५७२	१८७	काय	१ त्रस बिना.	५ त्रस बिना.
"	"	संज्ञि०	१ सं०	१ असं०
५८४	२०३	प्राण	७, ७,	७, ७, २.
६१२	२१४	योग	×	अयोग

पंक्ति	यंत्र नं.	खाना नाम	अशुद्ध	शुद्ध
६१७	२२८	दर्शन	१ चक्षु०	अचक्षु०
६२२	२३५	आहा०	१ आहा०	२ आहा० अना०
६२३	२३६	”	२ आहा० अना० अनु०	२ आहा० अना०
६३१	२४५	दर्शन	२ चक्षु०	२ चक्षु० अचक्षु०
६३४	२४९	संज्ञा	×	क्षीणसंज्ञा
६४०	२५५	उपयो०	२ साका० अना० यु० उ०	२ साका० अना०
६५५	२७४	”	२ साका० अना०	२ साका० अना० यु० उ०
७१९	३५८	जीव.	५ अ०	६ अ०
७३५	३७७	योग	×	अयोग
७४३	३८७	गुण०	९	१२
७५४	४००	गति	१	३
८०८	४७७	प्राण	१०	१०, ४, १
८०९	४७८	संयम०	४ असं० सामा० छेदो० परि०	४ असं० सामा० छेदो० यथा०
८३४	५१४	भव्य०	१ भ०	२ भ० अ०
”	”	संज्ञि०	१ सं०	१ असं०
८३५	५१६	”	”	”
८५१	५३९	प्राण	×	अतीतप्राण

(पुस्तक ३)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४९	३ (ख-क)		(क-ख)
१०९	अन्तिम	३२७६७ ३३३३९	२०४९६ ३३३३९
१५३	१२	१२८	१२८
”	”	”	”
२७७	२	-णुगहट्टडा पदस्स	-णुगहट्टडाप तस्स
२७८	८	सूयंगुलके प्रथम वर्गमूलको द्वितीय वर्गमूलसे	सूयंगुलको उसके प्रथम वर्गमूलसे
२९८	४	अप्रत्त	अप्रमत्त

(पुस्तक ४)

पंक्ति	पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
४	३	विषय है ।	विषय है । (२)
२९	४	वेउच्चिव्यओ	वेउच्चिव्यओ
३४	८	तीन भागोंमेंसे आठ भाग	आठ भागोंमेंसे तीन भाग
४२	७	व्यासं त्रिगुणितसहितं	व्यासत्रिगुणितसहितं
५५	२१	इ४४ + इ४४ +	इ४३ + इ४३ +
६३	५	विहारदि-	विहारदि-
७८	६	तदावासा	तदावासा
८८	५	लोगाणा-	लोगाण-
१०६	८	अजोगिकेवली	सजोगिकेवली
१३७	१६	संज्ञी जीव	आहारक जीव
१५७	३	-सुत्ताणुसारी जोदिसिय-	-सुत्ताणुसारिजोदिसिय-
१५९	३	सकलणाणं	संकलणाणं
१७६	१७	आकाशके प्रदेशके	आकाशके प्रदेश
१९१	४	-पवेसादो	पवेहदो
"	१८	योजन उस	योजन प्रवेध उस
३०२	२	सजोगिकेवलि	अयोगिकेवलि
३०३	२०	बन जाना	बन जाता
३०९	३	आहारपसु	अणाहारपसु
३२०	१-२	वर्षैर्युगः	वर्षैर्युगः
३२१	७	ण, एस दोसो,	ण एस दोसो,
३२८	२	अगहिदगहणद्धा	(तं) अगहिदगहणद्धा
३६०	२	णाणजीवं	णाणाजीवं
३६४	१७	इस प्रकारसे	इस प्रकारके
३९१	२	जिह्वाए	जिम्भाए
३९२	९	सुप्पसिद्ध-	सुत्तसिद्ध-
"	२६	सुप्रसिद्ध	सूत्रसिद्ध
४१४	२१	और क्षपक	और चारों क्षपक
४५६	६	-मंतोमच्छिय	मंतोमुद्धुत्तमच्छिय
४६१	१२	प्रस्तारके	प्रस्तारमें
४६३	२१	उद्धर्तनाघात	अपवर्तनाघात
		(प्रस्तावना)	
१६	११	या मुनिजनोंको	या यह कार्य मुनिजनोंको
२२	१	१६ × १२ =	१६ × १६ =

खेत्ताणुगमो



सिरि-भगवंत-पुष्कदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्टाणे

खेत्ताणुगमो

लोयालोयपयासं गोदमथेरं पुणो जिणं वीरं ।

णमिऊणं खेत्तसुत्तं जहोवएसं पयासेमो ॥

केवलज्ञानरूप सूर्यसे लोक और अलोकके प्रकाशक अर्थात् सध्वंश, गौतम अर्थात् उत्तमवाणीके स्थविर^१ अर्थात् विधाता (दिव्यध्वनिके प्रणेता), और जिन अर्थात् वीतराग, ऐसे त्रिविध विशेषणविशिष्ट श्रीवीर भगवान्को; अथवा, द्वादशांग ग्रन्थ-रचनासे प्रकाशित किया है लोक और अलोकको जिन्होंने ऐसे, तथा जिन अर्थात् काम क्रोधादि भाव शत्रुओंके जीतनेवाले, और वीर^२ अर्थात् विशेषरूपसे जो प्राणियोंको मोक्षके लिए प्रेरणा करते हैं, या मोक्षमार्गकी ओर चलाते हैं, ऐसे गौतमस्थविर श्रीइन्द्रभूति गणधरको नमस्कार करके क्षेत्रसूत्रको अर्थात् क्षेत्रानु-योगद्वारसम्बन्धी सूत्रोंके अर्थको जैसा उपदेश अर्थरूपसे दिव्यध्वनिके द्वारा श्रीवीर भगवान्ने दिया और ग्रन्थरूपसे श्री गौतम गणधरने दिया, उसीके अनुसार हम (वीरसेन) भी प्रका-शित करते हैं ।

१ म १ प्रती ' णमियूण ' इति पाठः ।

२ ' धेरो विही विरिंचो ' पा. ल. ना. २. धेरो के, धेरो ब्रह्मा. दे. ना. मा. ५, २५. स्थविरः..... धाता विधाता. है. को. २, १२५-१२६.

३ विशेषेण ईरयति_मोक्षं प्रति प्रेरयति गमयति वा प्राणिन इति वीरः । (अभि. रा. वीर.)

खेत्ताणुगमेण दुविहो णिहेसो, ओघेण आदेसेण यं ॥ १ ॥

किंफलो खेत्ताणिओगहारस्स अवयारो ? उच्चदे । तं जहाँ— संताणिओगहारारदो अत्थित्तेणावगयाणं दच्चाणिओगहारे अवगयपमाणणं चोहसजीवसमासाणं खेत्तपमाणा-वगमफलो । अधवा अणंतो जीवरासी असंखेज्जपएसिए लोगागासे किं सम्मादि, ण सम्मादि त्ति संदेहेण घुलंतस्स सिस्सस्स संदेहविणासणट्ठो वा खेत्ताणिओगहारस्स अवयारो । एत्थ खेत्तं णिक्खविद्वं । णिक्खेवो त्ति किं ? संशये विपर्यये अनध्यवसाये वा स्थितं तेभ्योऽपसार्य निश्चये क्षिपतीति निक्षेपः^१ । अथवा बाह्यार्थविकल्पो निक्षेपः । अप्रकृत-निराकरणद्वारेण प्रकृतप्ररूपको^२ वा । उक्तं च—

अपगयणिवारणं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च ।

संसयविणासणं तच्चत्थवधारणं च ॥ १ ॥

क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥१॥

शंका—यहां क्षेत्रानुयोगद्वारके अवतारका क्या फल है ?

समाधान—उक्त शंकाका उत्तर देते हैं । वह इस प्रकार है—सत्प्ररूपणा नामके अनुयोगद्वारसे जिनका अस्तित्व जान लिया है, तथा द्रव्यानुयोगद्वारमें जिनका संख्यारूप प्रमाण जाना है, ऐसे चौदह जीवसमासोंके (गुणस्थानोंके) क्षेत्रसंबंधी प्रमाणका जानना ही क्षेत्रानु-योगद्वारके अवतारका फल है । अथवा, असंख्यात प्रदेशवाले लोकाकाशमें अनन्त प्रमाणवाली जीवराशि क्या समाती है, या नहीं समाती है, इस प्रकारके संदेहसे घुलनेवाले शिष्यके संदेहके विनाश करनेके लिए इस क्षेत्रानुयोगद्वारका अवतार हुआ है ।

इस क्षेत्रानुयोगद्वारके प्रारम्भमें क्षेत्रका निक्षेप करना चाहिये ।

शंका—निक्षेप किसे कहते हैं ?

समाधान—संशय, विपर्यय और अनध्यवसायमें अवास्थित वस्तुको उनसे निकाल-कर जो निश्चयमें क्षेपण करता है, उसे निक्षेप कहते हैं । अथवा, बाहरी पदार्थके विकल्पको निक्षेप कहते हैं, अथवा, अप्रकृतका निराकरण करके प्रकृतका प्ररूपण करनेवाला निक्षेप है । कहा भी है—

अप्रकृतके निवारण करनेके लिये, प्रकृतके प्ररूपण करनेके लिये, और तत्त्वार्थके अव-धारण करनेके लिये निक्षेप किया जाता है ॥ १ ॥

१ क्षेत्रमुच्यते, तत् द्विविधम् । सामान्येन विशेषेण च ॥ स. सि. १, ८.

२ म २ प्रती ' जथा ' इति पाठः ।

३ उपायो न्यास इत्येते । लघीय. ३, ५२. तदधिगतानां वाच्यतामापन्नानां वाचकेषु भेदोपन्यासो न्यासः । लघीय. ३, ७४. विवृत्तिः ।

४ स किमर्थः ? अप्रकृतनिराकरणाय प्रकृतनिरूपणाय च । स. सि. १, ५. अप्रस्तुतार्थापाकरणात् प्रस्तुतार्थव्याकरणाच्च निक्षेपः फलवान् । लघीय. स्वी. वि. पृ. २६.

सो च एत्थ चउच्चिहो णिक्खेवो^१ णाम-डुवणा-दव्व-भावखेत्तभेएण । कंथं णिक्खेवस्स चउच्चिहत्तं ? दव्वड्डिय-पज्जवड्डियणयावलंबिवयणवावारादो । उत्तं च—

णामं ठवणा दवियं ति एस दव्वड्डियस्स णिक्खेवो ।

भावो दु पज्जवड्डियपरूवणा एस परमत्थो^२ ॥ २ ॥

जीवाजीवुभयकारणणिरवेक्खो अप्पाणभिह पयट्ठो^३ खेत्तसदो णामखेत्तं । सो च णामणिक्खेवो वयण-वत्तव्वणिच्चज्झवसायमंतरेण ण होदि त्ति, तव्वभव-सरिससामण्णणि-बंधणो त्ति वा, वाच्य-वाचकशक्तिद्वयात्मकैकशब्दस्य पर्यायार्थिकनये असंभवाद्वा दव्वड्डिय-

वह निक्षेप यहां पर नामक्षेत्र, स्थापनाक्षेत्र, द्रव्यक्षेत्र और भावक्षेत्रके भेदसे चार प्रकारका है ।

शंका—निक्षेप चार प्रकारका कैसे है ?

समाधान—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयके आश्रय करनेवाले वचनोंके व्यापारकी अपेक्षासे निक्षेप चार प्रकारका होता है । कहा भी है—

नाम, स्थापना और द्रव्य, ये तीन निक्षेप द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणाके विषय हैं और भावनिक्षेप पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणाका विषय है । यही परमार्थ सत्य है ॥ २ ॥

जीव, अजीव और उभयरूप कारणोंकी अपेक्षासे रहित होकर अपने आपमें प्रवृत्त हुआ 'क्षेत्र' यह शब्द नामक्षेत्रनिक्षेप है । वह नामनिक्षेप, वचन और वाच्यके नित्य अध्य-वसाय अर्थात् वाच्य-वाचक-सम्बन्धके सार्वकालिक निश्चयके बिना नहीं होता है इसलिये, अथवा तद्भव-सामान्य-निबन्धनक और सादृश्य-सामान्य-निमित्तक होता है इसलिये, अथवा, वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियोंवाला एक शब्द पर्यायार्थिक नयमें असंभव है इसलिये, द्रव्यार्थिकनयका विषय है, ऐसा कहा जाता है ।

विशेषार्थ—यहां पर नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय बतलानेके लिए तीन हेतु दिये हैं, जिनका अभिप्राय क्रमशः इस प्रकार है । (१) नामनिक्षेप वचन और वाच्यके नित्य अध्यवसायके बिना नहीं होता है, इसलिए यह द्रव्यार्थिकनयका विषय है, अर्थात्, 'इस शब्दसे यह पदार्थ जानना चाहिए' इस प्रकारका संकेत किये जानेसे शब्द अपने वाच्यका वाचक होता है । यदि यह संकेत या वाच्य-वाचकका सम्बन्ध नित्य न माना जाय, तो भिन्न देश या भिन्न कालमें उस शब्दसे उसके वाच्यरूप अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है । किन्तु 'देवदत्त' आदि जो नाम किसी व्यक्तिके वाच्यवस्थामें रखे गये थे, वह आज वृद्धावस्थामें भी समानरूपसे उस व्यक्तिके वाचक देखे जाते हैं, इससे सिद्ध होता है कि वचन और वाच्यके मध्यमें जो सम्बन्ध है, वह नित्य है । और नित्यताका द्रव्यके अतिरिक्त अन्यत्र पाया

१ म १ प्रती 'सो च' इत्यधिकः पाठः ।

२ स. त. १, ६.

३ प्रतिषु 'पयट्ठो' इति पाठः ।

णयस्सेत्ति बुद्धे । कट्ट-दंत-सिलादीणि सम्भावासम्भावसरूवाणि बुद्धीए इच्छिदस्सेत्तेणे-
यत्तमुवगयाणि ड्वणा णाम । सम्भावासम्भावसरूवेण सच्चदव्ववावि त्ति वा, पधाणापधाण-

जाना असंभव है, इससे सिद्ध होता है कि नामनिक्षेप द्रव्यार्थिकनयका विषय है। नाम-
निक्षेपको तद्भवसामान्य और सादृश्यसामान्य-निमित्तक कहा है, उसका अभिप्राय यह है कि,
विवक्षित सुवर्णादि वस्तुके पूर्वापर-कालभावी कटक, केयूरादि पर्यायोंमें विभिन्नता रहते हुए
भी उनमें एक ही सुवर्ण समानरूपसे सदा विद्यमान रहता है, इसलिए इस प्रकारकी समानताको
तद्भवसामान्य कहते हैं। तथा, किसी भी एक विवक्षित कालमें विद्यमान, किन्तु विभिन्न
प्रकारके सुवर्णोंसे निर्मित कटक, कुण्डल, केयूरादि पर्यायोंमें 'यह भी सुवर्ण है, यह भी
सुवर्ण है,' इत्यादि रूपसे सदृशता-बोधक जो समानता है, उसे सादृश्य-सामान्य कहते हैं।
इसी प्रकारसे नामनिक्षेपरूप शब्द भी पूर्वापर-कालभावी 'क्षेत्र, क्षेत्र' इत्यादि शब्दोंमें समान
प्रतीतिका उत्पादक होनेसे तद्भवसामान्यका निमित्त है। तथा, विवक्षित किसी भी एक कालमें
विभिन्न देशवर्ती मथुरा, काशी इत्यादि क्षेत्रोंमें 'यह भी क्षेत्र है, यह भी क्षेत्र है' इत्यादि
रूपसे उच्चारण किये जानेवाला शब्द सदृश-प्रत्ययका उत्पादक होनेसे सादृश्यसामान्यका भी
निमित्त होता है। और सामान्यको विषय करना ही द्रव्यार्थिकनयका विषय है; इसलिए
नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय कहना युक्ति-संगत ही है। (३) नामनिक्षेपको द्रव्या-
र्थिकनयका विषय बतानेके लिए तीसरी युक्ति यह दी है कि वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियों-
वाला एक शब्द पर्यायार्थिकनयमें असंभव है, अर्थात् पर्यायार्थिकनयका विषय नहीं हो सकता।
इसका अभिप्राय यह है कि शब्दमें वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियां एक साथ ही पाई जाती हैं;
अर्थात् शब्द अपने वाच्यरूप अर्थका प्रतिपादक होता है, इसलिए तो उसमें सदा वाचकशक्ति
विद्यमान है। और स्वयं भी अपने स्वरूपका विषय होता है, इसलिए वाच्यशक्ति भी उसमें
सर्वदा पाई जाती है। इस प्रकार किसी भी विवक्षित समयमें वह उक्त दोनों अर्थात् वाच्य-
वाचकरूप शक्तियोंसे युक्त रहेगा। और इसी कारणसे वह पर्यायार्थिकनयका विषय नहीं हो
सकता, क्योंकि, यद्यपि आगममें शब्दको पुद्गलद्रव्यकी पर्याय कहा है तथापि जब वही शब्द
वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियोंवाला विवक्षित किया जाता है, तब वह द्रव्य कहलाने लगता है।
चूंकि शक्ति, गुण या धर्मको कहते हैं, इसलिए 'गुणसमुदायो द्ध्वं' के नियमानुसार
शक्तियोंवालेको द्रव्य ही कहा जायगा, पर्याय नहीं। इस प्रकार जब शब्द पुद्गलद्रव्य सिद्ध हो
जाता है, तब वह द्रव्यार्थिकनयका ही विषय हो सकता है, पर्यायार्थिकनयका नहीं। इसलिए
भी नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय कहना सर्वथा युक्ति-युक्त ही है।

बुद्धिके द्वारा इच्छित क्षेत्रके साथ एकत्वको प्राप्त हुए, अर्थात् जिनमें बुद्धिके द्वारा
इच्छित क्षेत्रकी स्थापना की गई है ऐसे सद्भाव और असद्भाव स्वरूप काष्ठ, दन्त और शिला
आदि स्थापनाक्षेत्रनिक्षेप है। यह स्थापनानिक्षेप, तदाकार और अतदाकार स्वरूपसे सर्व

दव्वाणमेगत्तणिबंधणेत्ति वा दव्वाणिकखेवो दव्वद्वियणयवुल्लीणो' । दव्वखेत्तं दुविहं आगमदो णोआगमदो य । तत्थ आगमदो खेत्तपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो । कधमेदस्स जीवदवियस्स सुदणाणावरणीयक्खओवसमविसिद्धस्स दव्व-भावखेत्तागमवदिरित्तस्स आगमदव्वखेत्तववएसो ? ण एस दोसो, आधारे आधेयोवयारेण कारणे कज्जुवयारेण

द्रव्योंमें व्याप्त होनेके कारण, अथवा, प्रधान और अप्रधान द्रव्योंकी एकताका कारण होनेसे द्रव्यार्थिकनयके अन्तर्गत है, ऐसा समझना चाहिए।

विशेषार्थ— स्थापनानिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय सिद्ध करनेके लिए दो हेतु दिये गये हैं, जिनका अभिप्राय क्रमशः इसप्रकार है। (१) स्थापनानिक्षेप सद्भाव और असद्भावरूपसे सर्व द्रव्योंमें व्याप्त है, इसका अर्थ यह है कि त्रिलोकवर्ती सभी द्रव्य यद्यपि स्वतंत्र एवं निश्चित आकारवाले हैं; तथापि व्यवहारके योग्य एवं विशेष अपेक्षासे विशिष्ट आकारसे परिकल्पित द्रव्यको साकार, सद्भावरूप या तदाकार कहा जाता है, और उससे भिन्न आकारवाली वस्तुको अनाकार, असद्भाव या अतदाकार कहा जाता है। काष्ठ या दांत वगैरह यद्यपि अपने स्वतंत्र आकारवाले हैं, तथापि उन्हींको हाथी, घोड़ा आदि किसी एक विवक्षित या निश्चित आकारसे घटित कर दिये जाने पर उन्हें तदाकार कहा जाता है, और निश्चित आकारसे घटित नहीं होने पर भी जो संकेतद्वारा किसी वस्तुस्वरूपकी परिकल्पनाकी जाती है, उसे अतदाकार कहते हैं। इसप्रकार यह स्थापनाका व्यवहार तदाकार और अतदाकाररूपसे सर्व द्रव्योंमें पाया जाता है, अर्थात् सभी द्रव्योंमें दोनों प्रकारका स्थापनानिक्षेप किया जा सकता है, जो कि क्षेत्रभेद या कालभेद होने पर भी तदवस्थ रहता है। इस कारणसे स्थापनानिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय कहा है। (२) प्रधान और अप्रधान द्रव्योंकी एकताका कारण कहनेका अभिप्राय यह है कि जिस वस्तुकी स्थापना की जाती है, वह प्रधान द्रव्य, तथा जिस वस्तुमें स्थापना की जाती है, वह अप्रधान द्रव्य कहलाता है। 'यह सिद्ध है' इस प्रकारसे स्थापनानिक्षेप असली सिंहरूप प्रधानद्रव्य और मट्टी आदिके खिलौनेमें स्थापित सिंहरूप आकारवाले अप्रधान द्रव्यमें एकताका कारण अर्थात् एकत्वप्रतीतिका निमित्त होता है, इसलिए भी स्थापनानिक्षेप द्रव्यार्थिकनयका विषय है।

आगमद्रव्यक्षेत्र और नोआगमद्रव्यक्षेत्रके भेदसे द्रव्यक्षेत्र दो प्रकारका है। उनमेंसे क्षेत्रविषयक शास्त्रका ज्ञाता, किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यक्षेत्र निक्षेप है।

शंका— श्रुतज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे विशिष्ट, तथा द्रव्य और भावरूप क्षेत्रागमसे रहित इस जीवद्रव्यके आगमद्रव्यक्षेत्ररूप संज्ञा कैसे प्राप्त हो सकती है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है; क्योंकि, आधाररूप आत्मामें आधेयभूत क्षयोपशम-स्वरूप आगमके उपचारसे; अथवा, कारणरूप आत्मामें कार्यरूप क्षयोपशमके उपचारसे,

लद्दागमववएसखओवसमविसिद्धजीवदव्वावलंबणेण वा तस्स तदविरोहा । णोआगमदो दव्वक्खेत्तं तिविहं, जाणुगसरीरं भवियं तव्वदिरित्तं चेदि । तत्थ जाणुगसरीरं तिविहं, भवियं वट्टमाणं समुज्झादमिदि । समुज्झादं पि तिविहं चुदं चइदं चत्तेहमिदि । भवदु पुव्विल्लस्स दव्वखेत्तागमत्तादो खेत्तववएसो, एदस्स पुण सरीरस्स अणागमस्स खेत्तववएसो ण घडदि त्ति ? एत्थ परिहारो बुच्चदे । तं जधा— क्षियत्यक्षैपीत्क्षेप्यत्यस्मिन् द्रव्यागमो भावागमो वेति त्रिविधमपि शरीरं क्षेत्रम्, आधारे आधेयोपचाराद्वा । तत्थ भवियं खेत्तयाहुडजाणगभावी जीवो णिदिस्सदे । कथं जीवस्स खेत्तागमखओवसमरहिदत्तादो अणागमस्स खेत्तववएसो ? न, क्षेप्यत्यस्मिन् भावक्षेत्रागम इति जीवद्रव्यस्य पुरैव क्षेत्रत्वसिद्धेः । जाणुगसरीर-भवियवदिरित्तदव्वक्खेत्तं दुविहं, कम्मदव्वक्खेत्तं णोकम्मदव्वक्खेत्तं चेदि । तत्थ कम्मदव्वक्खेत्तं णाणावरणादिअड्ढविहकम्मदव्वं । कथं कम्मस्स खेत्तववएसो ?

अथवा, प्राप्त हुई है आगमसंज्ञा जिसको ऐसे क्षयोपशमसे युक्त जीवद्रव्यके अवलम्बनसे जीवके आगमद्रव्यक्षेत्ररूप संज्ञाके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

ज्ञायकशरीर, भव्य और तदव्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यक्षेत्र तीन प्रकारका है । उनमेंसे ज्ञायकशरीर तीन प्रकारका है; भावी ज्ञायकशरीर, वर्तमान ज्ञायकशरीर और अतीत ज्ञायकशरीर । इनमेंसे अतीत ज्ञायकशरीर भी च्युत, उपावित और त्यक्तके भेदसे तीन प्रकारका है ।

शंका—द्रव्यक्षेत्रागमके निमित्तसे पूर्वके शरीरको क्षेत्रसंज्ञा भले ही रही आवे, किन्तु इस अनागमशरीरके क्षेत्रसंज्ञा घटित नहीं होती है ?

समाधान—उक्त शंकाका यहां परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है—जिसमें द्रव्यरूप आगम अथवा भावरूपआगम वर्तमानकालमें निवास करता है, भूतकालमें निवास करता था, और आगामी कालमें निवास करेगा; इस अपेक्षा तीनों ही प्रकारका शरीर क्षेत्र कहलाता है । अथवा, आधाररूप शरीरमें आधेयरूप क्षेत्रागमका उपचार करनेसे भी क्षेत्रसंज्ञा बन जाती है ।

नोआगम द्रव्यक्षेत्रके तीन भेदोंमेंसे जो आगामी कालमें क्षेत्रविषयक शास्त्रको जानेगा, ऐसे जीवको भावी नोआगमद्रव्यक्षेत्र कहते हैं ।

शंका—जो जीव क्षेत्रागमरूप क्षयोपशमसे रहित होनेके कारण अनागम है, उस जीवके क्षेत्रसंज्ञा कैसे बन सकती है ?

समाधान—नहीं; क्योंकि, ' भावक्षेत्ररूप आगम जिसमें निवास करेगा ' इस प्रकारकी निरुक्तिके बलसे जीवद्रव्यके क्षेत्रागमरूप क्षयोपशम होनेके पूर्व ही क्षेत्रपना सिद्ध है ।

ज्ञायकशरीर और भावीसे भिन्न जो तदव्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है, वह कर्मद्रव्यक्षेत्र और नोकर्मद्रव्यक्षेत्रके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मद्रव्यको कर्मद्रव्यक्षेत्र कहते हैं ।

शंका—कर्मद्रव्यको क्षेत्रसंज्ञा कैसे प्राप्त हुई ?

न, क्षियन्ति' निवसन्त्यस्मिन् जीवा इति कर्मणां क्षेत्रत्वसिद्धेः । (जं) णोकम्मदव्वखेत्तं तं दुविहं, ओवयारियं पारमत्थियं चेदि । तत्थ ओवयारियं णोकम्मदव्वखेत्तं लोगपसिद्धं सालिखेत्तं वीहिखेत्तमेवमादि । पारमत्थियं णोकम्मदव्वखेत्तं आगासदव्वं । उत्तं च—

खेत्तं खल्ल आगासं तव्वदिरित्तं च होदि णोखेत्तं ।

जीवा य पोगगला वि य धम्माधम्मत्थिया कालो ॥ ३ ॥

आगासं सपदेसं तु उड्डाधो तिरिओ वि य ।

खेत्तलोगं वियाणाहि अणंत जिण-देसिदं ॥ ४ ॥

एसो वि णिकखेवो दव्वट्टियस्स, दव्वेण विणा एदस्स संभवाभावादो । जं तं भावखेत्तं तं दुविहं, आगमदो णोआगमदो भावखेत्तं चेदि । आगमदो भावखेत्तं खेत्त-पाहुडजाणुगो उवजुत्तो । णोआगमदो भावखेत्तं आगमेण विणा अत्थोवजुत्तो ओदइयादि-

समाधान— नहीं; क्योंकि, जिसमें जीव 'क्षियन्ति' अर्थात् निवास करते हैं, इस प्रकारकी निरुक्तिके बलसे कर्मोंके क्षेत्रपना सिद्ध है ।

तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यका दूसरा भेद जो नोकर्मद्रव्यक्षेत्र है, वह औपचारिक और पारमार्थिकके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे लोकमें प्रसिद्ध शालिक्षेत्र, व्रीहि-(धाम्य-) क्षेत्र इत्यादि औपचारिक नोकर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र कहलाता है । आकाशद्रव्य पारमार्थिक नोकर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है । कहा भी है—

आकाशद्रव्य नियमसे तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है, और आकाशद्रव्यके अतिरिक्त जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा कालद्रव्य नोक्षेत्र कहलाते हैं ॥ ३ ॥

आकाश सप्रवेशी है और वह ऊपर, नीचे और तिरछे सर्वत्र फैला हुआ है । उसे ही क्षेत्रलोक जानना चाहिए । उसे जिन भगवान्ने अनन्त कहा है ॥ ४ ॥

यह आगम और नोआगम भेदरूप द्रव्यक्षेत्रनिक्षेप भी द्रव्यार्थिकनयका विषय है । क्योंकि, द्रव्य अर्थात् सामान्यके विना यह निक्षेप संभव नहीं है ।

जो भावरूप क्षेत्रनिक्षेप है, वह आगमभावक्षेत्र और नोआगमभावक्षेत्रके भेदसे दो प्रकारका है । क्षेत्रविषयक प्राभृतके ज्ञाता और वर्तमानकालमें उपयुक्त जीवको आगमभावक्षेत्रनिक्षेप कहते हैं । जो आगमके अर्थात् क्षेत्रविषयक शास्त्रके उपयोगके विना अन्य पदार्थमें उपयुक्त हो उस जीवको; अथवा, औद्यिक आदि पांच प्रकारके भावोंको नोआगमभावक्षेत्रनिक्षेप कहते हैं ।

१ क्षि निवासगतयोः ।

२ आगासस्स पएसा उड्डं च अहे य तिरियलोए य । जाणाहि खित्तलोगं अणंत जिणदेसिअं सम्मं ॥ १९७ ॥

(अभि. रा. लोक.)

पंचविधभावो वा । एदेसु खेत्तेसु केण खेत्तेण पयदं ? गोआगमदो दव्वखेत्तेण पयदं । गोआगमदो दव्वखेत्तं णाम किं ? आगासं गगणं देवपथं गोज्जगाचरिदं अवगाहणलक्खणं आधेयं वियापगमाधारो भूमि ति एयद्वो । कस्स खेत्तं ? सुण्णोयं भंगो । केण खेत्तं ? पारिणामिण भावेण । कम्हि खेत्तं ? अप्पाणम्हि चेव । कधमेगत्थ आधाराधेयभावो ? ण, सारे त्थंभं इदि एगत्थ वि आधाराधेयभावदंसणादो । केवचिरं खेत्तं ? अणादिय-मपज्जवसिदं । कदिविधं खेत्तं ? दव्वद्वियणयं च पडुच्च एगविधं । अधवा पओजणमभि-

शंका—ऊपर बतलाये गये इन क्षेत्रोंमेंसे यहाँ पर कौनसे क्षेत्रसे प्रयोजन है ?

समाधान—यहाँ पर नोआगमद्रव्यक्षेत्रसे प्रयोजन है ।

शंका—नोआगमद्रव्यक्षेत्र किसे कहते हैं ?

समाधान—आकाश, गगन, देवपथ, गुह्यकाचरित (यक्षोंके विचरणका स्थान) अवगाहनलक्षण, आधेय, व्यापक, आधार और भूमि, ये सब नोआगमद्रव्यक्षेत्रके एकार्थक नाम हैं ।

विशेषार्थ—अब धवलाकार क्षेत्रका विचार, निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान, इन प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारोंसे क्रमशः करते हैं । इनमेंसे ऊपर जो निक्षेप या एकार्थ द्वारा क्षेत्रका विचार किया गया है, वह सब निर्देशके अन्तर्गत समझना चाहिए ।

शंका—क्षेत्र किसका है, अर्थात् इसका स्वामी कौन है ?

समाधान—यह भंग शून्य है, अर्थात् क्षेत्रका स्वामी कोई नहीं है ।

शंका—किससे क्षेत्र होता है, अर्थात् क्षेत्रका साधन या करण क्या है ?

समाधान—पारिणामिक भावसे क्षेत्र होता है, अर्थात् क्षेत्रकी उत्पत्तिमें कोई दूसरा निमित्त न होकर वह स्वभावसे है ।

शंका—किसमें क्षेत्र रहता है, अर्थात् इसका अधिकरण क्या है ?

समाधान—अपने आपमें ही यह रहता है, अर्थात् क्षेत्रका अधिकरण क्षेत्र ही है ।

शंका—एक ही आकाशमें आधार-आधेय भाव कैसे संभव है ?

समाधान—नहीं; क्योंकि, ' सारमें स्तम्भ है ' इस प्रकार एक वस्तुमें भी आधार आधेयभाव देखा जाता है ।

शंका—कितने कालपर्यन्त क्षेत्र रहता है, अर्थात् क्षेत्रकी स्थिति कितनी है ?

समाधान—क्षेत्र अनादि और अनन्त है ।

१ ओदहए ओवसमिए खइए अ तथा खओवसमिए अ । परिणामि सच्चिवाए अ उव्विहो भावलोपो व ॥ २०० ॥ (अभि. रा. लोक.)

२ म २ प्रती ' सारत्थंभ ' इति पाठः ।

समिच्च दुविहं, लोगागासमलोगागासं चेदि । लोक्यन्ते उपलभ्यन्ते यस्मिन् जीवादि-
द्रव्याणि स लोकः । तद्विपरीतोऽलोकः । अधवा देसभेण तिविहो, मंदरचूलियादो
उवरिमुड्डुलोगो, मंदरमूलादो हेट्टा अधोलोगो, मंदरपरिच्छिण्णो मज्जलोगो ति । जधा
दव्याणि द्विदाणि तधावबोधो अणुगमो । खेत्तस्स अणुगमो खेत्ताणुगमो, तेण खेत्ताणु-
गमेण सरीरस्सेव दुविहो णिद्देशो । णिद्देशो पदुप्पायणं कहणमिदि एयड्डो । ओघेण
द्रव्यार्थिकनयावलम्बनेन, आदेसेण पर्यायार्थिकनयावलम्बनेन चेदि द्विविधो निर्देशः ।
किमड्डुमुभयथा णिद्देशो कीरदे ? न, उभयनयावस्थितसत्त्वानुग्रहार्थत्वात् । ण तद्दो णिद्देशो
अत्थि, णयद्दयसंख्खियजीववदिरित्तसोदारणं असंभवादो ।

शंका— क्षेत्र कितने प्रकारका है ?

समाधान— द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा क्षेत्र एक प्रकारका है । अथवा, प्रयोजनके
आश्रयसे क्षेत्र दो प्रकारका है, लोकाकाश और अलोकाकाश । जिसमें जीवादि द्रव्य अवलोकन
किये जाते हैं, पाये जाते हैं, उसे लोक कहते हैं । इसके विपरीत जहाँ जीवादि द्रव्य नहीं
देखे जाते हैं, उसे अलोक कहते हैं । अथवा, देशके भेदसे क्षेत्र तीन प्रकारका है । मंदराचल
(सुमेरुपर्वत) की चूलिकासे ऊपरका क्षेत्र ऊर्ध्वलोक है । मंदराचलके मूलसे नीचेका क्षेत्र
अधोलोक है । मंदराचलसे परिच्छिन्न अर्थात् तत्प्रमाण मध्यलोक है ।

जिस प्रकारसे द्रव्य अवस्थित हैं, उस प्रकारसे उनको जानना अनुगम कहलाता है ।
क्षेत्रके अनुगमको क्षेत्रानुगम कहते हैं । उससे अर्थात् क्षेत्रानुगमसे शरीरके (शरीर सामान्य
और मुखादि अंगोपांग विशेष) निर्देशके समान दो प्रकारका निर्देश किया गया है । निर्देश,
प्रतिपादन और कथन, ये सब एकार्थक हैं । ओघसे अर्थात् द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बनसे, और
आदेशसे अर्थात् पर्यायार्थिकनयके अवलम्बनसे निर्देश दो प्रकारका है ।

शंका— दोनों नयोंकी अपेक्षासे निर्देश किसलिये किया जाता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिकनयमें अवस्थित शिष्योंके अनुग्रहके लिये ओघ-
निर्देश किया गया है । तथा पर्यायार्थिकनयमें अवस्थित शिष्योंके अनुग्रहके लिये आदेशनिर्देश
किया गया है ।

इन दोनों निर्देशोंके अतिरिक्त और कोई तीसरा निर्देश नहीं पाया जाता है, क्योंकि,
दोनों प्रकारके नयोंमें अवस्थित जीवोंके अतिरिक्त अन्य प्रकारके श्रोताओंका अभाव है, अत-
एव दोनों ही प्रकारसे निर्देश किया गया है ।

१ मेहरयं त्रयाणां लोकानां मानदंडः । अस्याधस्तलादधोलोकः । चूलिकामूलादूर्ध्वमूर्ध्वलोकः । मध्यम-
प्रमाणस्तिर्यग्स्थितोऽस्तिर्यग्लोकः । त. रा. वा. ३, १०. इह च बहुसमभूमिभागे रत्नप्रभाभागे मेरुमध्ये अष्टप्रदेशो
रुचको भवति, तस्योपरितनप्रस्तरस्योपरिष्ठाश्रव योजनशतानि यावज्जोतिश्चक्रस्योपरितलस्तावत् तिर्यग्लोकस्ततः
परत ऊर्ध्वभागस्थितत्वात् ऊर्ध्वलोको देशोनसप्तत्रज्जुप्रमाणो रुचकस्याधस्तनप्रस्तरस्याधो नव योजनशतानि यावत्ताव-
व
स्तिर्यग्लोकः, ततः परतोऽधोभागस्थितत्वादधोलोकः सातिरेकसप्तत्रज्जुप्रमाणः, अधोलोकोर्ध्वलोकयोर्भ्ये अष्टादश-
योजनशतप्रमाणस्तिर्यग्भागस्थितत्वात् तिर्यग्लोक इति । स्थानां. ३, २. टीका.

‘ जहा उद्देशो तथा णिद्देशो ’ चि कट्टु ओघणिद्देशद्वमुत्तरसुत्तं भणदि—

ओघेण मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ॥ २ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा— ओघणिद्देशो आदेसवुदासट्ठो । मिच्छा-
इट्ठिणिद्देशो सेसगुणट्ठाणपडिसेहट्ठो । केवडि खेत्ते इदि पुच्छा सुत्तस्स पमाणत्तप्पदुप्पायण-
फला । सव्वलोगे इदि खेत्तपमाणणिद्देशो । एत्थ लोगे चि वुत्ते सत्तरज्जूणं घणो घेतव्वो ।
कुदो ? एत्थ खेत्तपमाणाधियारे—

पल्लो सायर सूई पदरो य घणंगुलो य जगसेट्ठी ।

लोयपदरो य लोगे अट्ट दु माणा मुणेयव्वा ॥ ५ ॥

‘ जिस प्रकारसे उद्देश किया जाता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है ’ इस न्यायके अनुसार ओघनिर्देशके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

ओघनिर्देशकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इसप्रकार है— सूत्रमें ‘ ओघ ’ इस पदका निर्देश, आदेश प्ररूपणाके निराकरणके लिए है । ‘ मिथ्यादृष्टि ’ इस पदका निर्देश, शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेधके लिए है । ‘ कितने क्षेत्रमें रहते हैं ’ इस पृच्छाका फल सूत्रकी प्रमाणता प्रतिपादन करना है । ‘ सर्वलोकमें ’ इस पदसे क्षेत्रके प्रमाणका निर्देश किया है । यहां सूत्रमें ‘ लोक ’ ऐसा सामान्य पद कहनेपर सात राजुओंका घनात्मक लोक ग्रहण करना चाहिए । क्योंकि, यहाँ क्षेत्रप्रमाणाधिकारमें—

पल्योपम, सागरोपम, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगश्रेणी, लोकप्रतर और लोक, ये आठ मान जानना चाहिए ॥ ५ ॥

१ विवक्षित...जिवैर्वर्तमानकाले विवक्षितपदविशिष्टत्वेनावष्टधाकाशः क्षेत्रं । गो. जी. जी. प्र. टी. ५४३.

२ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टानां सर्वलोकः । स. सि. १, ८. मिच्छा उ सव्वलोए ॥ पच्चसं. २, २६.

३ प्रतिषु ‘ केवडिया ’ इति पाठः ।

४ म प्रत्योः ‘ सुत्तसुपमाणत्तं पदुप्पायण ’ इति पाठः ; ‘ अ-आ-क ’ प्रतिषु ‘ सुत्तस्स पमाणत्तं पदुप्पायण ’ इति पाठः ।

५ जगसेट्ठीए सत्तमभागो रज्जू पभासते । ति. प. १, १३२.

६ जगसेद्विषणपमाणो लोयायासो सपंचद्ववट्ठिदो । ति. प. १, ९१. चउदस रज्जू लोओ बुद्धिकओ होइ सत्तरज्जुवणो । कर्म. ५ कर्म. ९७.

७ ति. प. १, ९३. चि. सा. ९२. पल्योपमस्य सागरोपमस्य च स्वरूपं ति. प. १, ९३-१३०; स. सि. ३, ३८; त. रा. वा. ३०, ३८. अद्धापल्यस्यार्धच्छेदेन शलाका विरलीकृत्य प्रत्येकमद्धापल्यप्रदानं कृत्वा अन्योन्यशुणिते यावंतच्छेदास्तावद्विराकाशप्रदेशैर्धुक्तावली

इदि एत्थ वुत्तलोगगहणादो । जदि एसो लोगो वेप्पदि, तो पंचदव्वाहारआगासस्स गहणं ण पावदे । कुदो ? तम्हि सत्तरज्जुघणपमाणमेत्तखेत्तस्साभावा । भावे वा —

हेट्ठा मज्जे उवरिं वेत्तासण-झल्लरी-मुद्दंगणिहो ।

मज्झिमवित्थारेण य चोदसगुणमायदो लोगो ॥ ६ ॥

लोगो अकृत्तिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो ।

जीवाजीवेहि फुटो णिच्चो तलरुक्खसंठाणो ॥ ७ ॥

लोगस्स य विक्खंभो चउप्पयारो य होइ णायव्वो ।

सत्तेक्कगो य पंचेक्कगो य रज्जू मुणेयव्वा ॥ ८ ॥

इस गाथामें जो लोकका ग्रहण किया गया है उससे जाना जाता है कि यहाँपर सात राजुके घनप्रमाण लोकका ग्रहण अभीष्ट है ।

विशेषार्थ—एक प्रदेशवाली सात राजु लम्बी आकाश-प्रदेशपंक्तिको जगश्रेणी कहते हैं । तथा जगश्रेणीके वर्गको जगप्रतर और घनको घनलोक कहते हैं । गाथामें इसी क्रमसे जगश्रेणी, जगप्रतर और लोक पदका ग्रहण किया है । इससे यह ज्ञात होता है कि यहाँपर लोकसे घनलोकका अभिप्राय है ।

शंका — यदि यहाँपर इसी घनलोकका ग्रहण किया जाता है, तो पांच द्रव्योंके आधारभूत आकाशका ग्रहण नहीं प्राप्त होता है; क्योंकि, उस लोकमें सात राजुके घनप्रमाणवाले क्षेत्रका अभाव है । और, यदि सद्भाव माना जावे तो—

नीचे वेत्तासन (बेंतके मूंडा) के समान, मध्यमें झल्लरीके समान, और ऊपर मृदंगके समान आकारवाला; तथा मध्यमविस्तारसे अर्थात् एक राजुसे चौदह गुणा आयत (लम्बा) लोक है ॥ ६ ॥

यह लोक निश्चयतः अकृत्रिम है, अनादि-निधन है, स्वभावसे निर्मित है, जीव और अजीव द्रव्योंसे व्याप्त है, नित्य है, तथा तालवृक्षके आकारवाला है ॥ ७ ॥

लोकका विष्कम्भ (विस्तार) चार प्रकारका है, ऐसा जानना चाहिये । जिसमेंसे अधोलोकके अन्तमें सात राजु, मध्यमलोकके पास एक राजु, ब्रह्मलोकके पास पांच राजु और ऊर्ध्वलोकके अन्तमें एक राजु विस्तार जानना चाहिये ॥ ८ ॥

कृता सूर्यगुलमित्थुच्यते । तदवीपरण सूर्यगुलेन गुणितं प्रतरागुलं । तत्रतरीगुलमपरेण सूर्यगुलेनाभ्यस्तं घनागुलं । असंख्येयानां वर्षाणां यावंतः समयास्तावरखंडमद्भापर्यं कृतं, ततोऽसंख्येयान् खंडानपनीयासंख्येयमेकं मार्गं बुद्ध्या विरलीकृत्य एकैकस्मिन् घनागुलं दत्त्वा परस्परेण गुणिता जगच्छ्रेणी । सा अपरया जगच्छ्रेण्याभ्यस्ता प्रतरलोकः । स एवापरया जगच्छ्रेण्या संवर्गितो घनलोकः । त. रा. वा. ३, ३-८.

१ प्रतिष्ठु 'खेत्तस्सभावा' इति पाठः ।

२ जंबू. प. ११, १०६.

३ त्रि. सा. ४ तत्र चतुर्थचरणे 'सव्वागासावयवो णिच्चो' इति पाठः ।

४ जंबू. प. ११, १०७.

एदाओ सुत्तगाहाओ अप्पमाणत्तं पावेति त्ति ?

एत्थ परिहारो बुच्चदे । एत्थ लोगे त्ति बुत्ते पंचदव्वाहारआगासस्सेव गहणं, ण अण्णस्स । ' लोमपूरणगदो केवली केवडि खेत्ते, सब्वलोगे ' इदि वयणादो । जदि लोगो सत्तरज्जुघणपमाणो ण' होदि तो ' लोमपूरणगदो केवली लोमस्स संखेज्जदि भागे ' इदि भणेज्ज । ण च अण्णाइरियपरूविदमुदिगायारलोमस्स पमाणं पेक्खिउण संखेज्जदिभागत्त-मसिद्धं, गणिज्जमाणे तहोवलंभादो । तं जहा— मुदिगायारलोयस्स स्रुं चोइसरज्जुआयदं एगरज्जुविक्खंभं वट्टं लोमादो अवणिय पुध इवेदव्वं । एवं ठविय तस्स फलाणयण-विहाणं भणिस्सामो । तं जहा— एदस्स मुहतिरियवट्टस्स एगागासपदेसवाहल्लस्स परिठओ एत्तिओ होदि ३६३ । इममद्वेऊण विक्खंभद्वेण गुणिदे एत्तियं होदि ३६३ । अधोलोम-भागमिच्छामो त्ति सत्तहि रज्जुहि गुणिदे खायफलमेत्तियं होदि ५३३ । पुणो णिस्सई-खेत्तं चोइसरज्जुआयदं दो खंडाणि करिय तत्थ हेट्ठिमखंडं घेत्तूण उट्ठं पाटिय पसारिदे

ये ऊपर कहीं गईं सूत्रगाथाएं अप्रमाणताको प्राप्त होती हैं ?

समाधान—अब यहाँ ऊपरकी शंकाका परिहार कहते हैं । इस प्रकृत सूत्रमें ' लोक ' ऐसा पद कहनेपर पांच द्रव्योंके आधारभूत आकाशका ही ग्रहण किया है, अन्यका नहीं, क्योंकि, ' लोकपूरणसमुद्धातगत केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ' इसप्रकारका सूत्रवचन है । यदि लोक सात राजुके घनप्रमाण नहीं है, तो ' लोकपूरणसमुद्धातगत केवली लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ' इसप्रकार कहना चाहिये । और अन्य आचार्योंके द्वारा प्ररूपित मृदंगाकार लोकके प्रमाणको देखकर अर्थात् उसकी अपेक्षासे, लोकपूरण समुद्धातगत केवलीका घनलोकके संख्यातवें भागमें रहना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, गणना करनेपर मृदंगाकार लोकका प्रमाण घनलोकके संख्यातवें भाग पाया जाता है । वह इसप्रकार है— चौदह राजुप्रमाण आयत, एक राजुप्रमाण विस्तृत और गोल आकारवाली, ऐसी मृदंगाकार लोककी सूचीको लोकके मध्यसे निकाल करके पृथक् स्थापन करना चाहिये । इसप्रकारसे स्थापित करके अब उसके फल अर्थात् घनफलको निकालनेका विधान कहते हैं । वह इसप्रकार है— सुक्ष्ममें तिर्यकरूपसे गोल और आकाशके एक प्रदेशप्रमाण बाह्यवाली इस पूर्वोक्त सूचीकी परिधि ३६३ इतनी होती है । (देखो आगे गाथा नं. १४) इस परिधिके प्रमाणको आधा करके, पुनः उसे एक राजुविष्कम्भके आधेसे गुणा करनेपर, उसके क्षेत्रफल का प्रमाण ३६३ इतना होता है । अब हमें लोकके अधोभागका घनफल लाना इष्ट है, इसलिये उस क्षेत्रफलको सात राजुओंसे गुणा करने पर सात राजुप्रमाण लम्बी और एक राजुप्रमाण चौड़ी उक्त गोलसूचीका घनफल ५३३ इतना होता है । फिर सूचीरहित चौदह राजु लम्बे लोकरूप क्षेत्रके मध्यलोकके पाससे दो खंड करके उनमेंसे नीचेके अर्थात् अधोलोकसम्बन्धी

१ प्रतिषु ' पमाणेण ' इति पाठः ।

२ म प्रत्योः ' इक्कयव्वं ' इति पाठः ।

सुपखेत्तं होऊण चेद्वदि । तस्स मुहवित्थारो एत्तिओ होदि' $\frac{३०३}{३३३}$ । तलवित्थारो एत्तिओ होदि $\frac{२२११}{३३३}$ । एत्थ मुहवित्थारेण सत्तरज्जुआयामेण छिंदिदे दो तिकोणखेत्ताणि एयमायदचउरस्सखेत्तं च होइ । तत्थ ताव मज्झिमखेत्तफलमाणिज्जेदे । एदस्स उस्सेहो सत्त रज्जुओ । विक्खंभो पुण एत्तिओ होदि $\frac{३०३}{३३३}$ । मुहम्मि एगागासपदेसबाहल्लं, तलम्मि तिण्णि रज्जुबाहल्लो त्ति सत्तहि रज्जुहि मुहवित्थारं गुणिय तलबाहल्लद्वेण गुणिदे मज्झिमखेत्तफलमेत्तियं होइ $\frac{३४३३३}{३३३}$ । संपहि सेसदोखेत्ताणि सत्तरज्जुअवलंबयाणि तेरसुत्तरसदेण

खंडको ग्रहण कर उसे (एक ओरसे) ऊपरसे (लगाकर नीचेतक) काटकर पसारने पर सूर्य (सूपा) के आकारवाला क्षेत्र हो जाता है ।

विशेषार्थ—यहांपर शंकाकार, अन्य आंचार्योंसे प्ररूपित जिस, मूर्दंगाकार लोकको दृष्टिमें रखकर यह कथन कर रहा है, उसका भाव यह है कि कितने ही आचार्य अधोलोकका आकार चारों ओरसे गोल पेसे वेत्रासनके समान मानते हैं । जो नीचे गोल आकारवाला तथा सात राजु चौड़ा है, और ऊपर क्रमशः घटता हुआ मध्यलोकमें गोल आकारवाला तथा एक राजु चौड़ा है । इसके ठीक मध्यमें ऊपरसे नीचेतक स्थित सात राजु लम्बी एक राजु चौड़ी गोल आकारवाली त्रसनाली है । उसको यदि वेत्रासनाकार अधोलोकके बीचमेंसे निकालकर बचे हुए अधोलोकको एक ओरसे ऊपरसे नीचेतक काटकर पसार दिया जाय, तो उसका आकार ठीक सूपाके समान हो जाता है ।

इस सूर्याकार क्षेत्रके मुखका विस्तार $\frac{३०३}{३३३}$ इतना है, और तलका विस्तार $\frac{२२११}{३३३}$ राजुप्रमाण है । इसे मुखविस्तारसे (अर्थात् मुखविस्तारके अन्तसे लगाकर दोनों ओर) सात राजु लम्बा नीचेकी ओर छेदनेपर दो त्रिकोण क्षेत्र और एक आयतचतुरस्रक्षेत्र, इसप्रकार तीन क्षेत्र हो जाते हैं ।

उक्त प्रकारसे बने हुए इन तीन क्षेत्रोंमेंसे पहले आयतचतुरस्र आकारवाले मध्यवर्ती क्षेत्रका घनफल निकालते हैं । इस आयतचतुरस्र क्षेत्रका उत्सेध (ऊंचाई) सात राजु है । और विष्कम्भ $\frac{३०३}{३३३}$ इतने राजु है । मुखमें एक प्रदेश-प्रमाण बाह्व्य (मोटाई) है और तल-भागमें तीन राजुप्रमाण बाह्व्य है, इसलिए उत्सेधका प्रमाण जो सात राजु है उससे मुखके प्रमाणको गुणा करके तलभागका बाह्व्य जो तीन राजु है उसके आधेसे अर्थात् डेढ़ राजुसे गुणा करने पर मध्यम क्षेत्रका अर्थात् आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल $\frac{३०३}{३३३} \times \frac{३०३}{३३३} \times ३ = \frac{३४३३३}{३३३}$ इतना होता है ।

अब शेष जो दो त्रिकोण क्षेत्र हैं वे सात राजु लम्बे हैं, और एकसौ तेरहसे एक राजुको खंडित कर उनमेंसे अड़तालीस खंड अधिक नौ राजु भुजावाले हैं अर्थात् उनका

१ अ-क प्रत्योः ' एत्तिओ होदि ' इति पाठो नास्ति ।

एगरज्जुं खंडिय तत्थ अट्टेतालीसखंडम्भहिय-णवरज्जुभुजाणि भुजकोडिपाओग्गकण्णाणि कर्णभूमिए आलिहिय दोसु वि दिसासु मज्झम्मि फालिदे तिण्णि तिण्णि खेत्ताणि होंति । तत्थ दो खेत्ताणि अद्दुट्टरज्जुस्सेहाणि छव्वीसुत्तर-वेसदेहि एगरज्जुं खंडिय तत्थ एगट्टि-खंडम्भहियखंडसदेण सादिरेयत्तारिरज्जुविकखंभाणि दक्खिण-वामहेट्टिमकोणे तिण्णि रज्जुबाहल्लाणि, दक्खिण-वामकोणेषु जहाकमेण उवरिम-हेट्टिमेसु दिवड्डुरज्जुबाहल्लाणि, अवसेसदोकोणेषु एगागासबाहल्लाणि, अण्णत्थ कम-वड्डिगदबाहल्लाणि वेत्तूण तत्थ एग-खेत्तसुवरि विदियखेत्ते त्रिवज्जासं काऊण ट्टुविदे सव्वत्थ तिण्णि रज्जुबाहल्लखेत्तं होइ । एदस्स वित्थारमुस्सेहेण गुणिय वेहेण गुणिदे खायफलमेत्तियं होइ ४९३३३ । अवसेस-त्तारि खेत्ताणि अद्दुट्टरज्जुस्सेहाणि छव्वीसुत्तरवेसदेहि एगरज्जुं खंडिय तत्थ एगट्टि-

अधोविस्तार $९\frac{३३}{३}$ है । इसी विस्तारको यहां त्रिकोण क्षेत्रकी अपेक्षासे ' भुजा ' कहा है । तथा उन दोनों त्रिकोण क्षेत्रोंका भुजा और कोटिके यथायोग्य संभवित कर्णका प्रमाण है । इन दोनों त्रिकोण क्षेत्रोंको कर्णभूमिसे लेकर दोनों ही दिशाओंमें बीचमेंसे काटनेपर तीन तीन क्षेत्र हो जाते हैं ।

विशेषार्थ— यहाँपर त्रिकोण क्षेत्रके भुजा और कोटिका प्रमाण तो दिया है, पर कर्णका प्रमाण नहीं दिया है । उसके निकालनेकी प्रक्रिया यह है कि भुजाके प्रमाणका वर्ग और कोटिके प्रमाणका वर्ग जितना हो, उन्हें जोड़कर उसका वर्गमूल निकालना चाहिये, जो वर्गमूलका प्रमाण आवे, वही कर्णरेखाका प्रमाण समझना चाहिए ।

उक्त प्रकारसे उत्पन्न हुए इन तीन तीन क्षेत्रोंमें एक एक आयतचतुरस्रक्षेत्र और दो दो त्रिकोणक्षेत्र जानना चाहिये । उनमें सात राजु उत्सेधवाले आयतचतुरस्र क्षेत्रके दायें बायें दोनों ओर जो दो आयतचतुरस्रक्षेत्र हैं, उनमें प्रत्येकका साढ़े तीन राजु उत्सेध है । तथा दो सौ छव्वीससे एक राजुको खंडित कर उनमें एकसौ इकसठ खंडोंसे अधिक चार राजु अर्थात् $४३३\frac{३}{३}$ प्रमाण विष्कम्भ है । तथा दक्षिण और वाम (दायें बायें) अवस्तन कोन पर तीन राजु बाहल्य है । अन्य दक्षिण वामकोणोंपर यथाक्रमसे ऊपर और नीचे डेढ़ राजु बाहल्य है । अवशिष्ट दो कोनोंपर एक आकाशप्रदेश-प्रमाण बाहल्य है । और अन्यत्र अर्थात् बीचमें क्रमसे वृद्धिको प्राप्त बाहल्य है । इसप्रकारके इन दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंको लेकर (उठाकर) उनमें एक क्षेत्रके ऊपर दूसरे क्षेत्रको विपर्यास अर्थात् उलटा करके स्थापित करनेपर सर्वत्र तीन राजु बाहल्यवाला क्षेत्र हो जाता है । इसके विस्तारको उत्सेधसे गुणाकर पुनः वेध (मोटाई) से गुणा करने पर घनफल $४३३\frac{३}{३} \times ३\frac{३}{३} \times ३ = ४९३३३$ इतना हो जाता है । अब अवशिष्ट जो चार त्रिकोण क्षेत्र हैं, वे साढ़े तीन राजु उत्सेधवाले हैं, तथा दोसौ छव्वीससे एक राजुको खंडितकर उनमेंसे एकसौ इकसठ खंडोंसे अधिक चार राजु अर्थात्

१ प्रतिषु ' कम्भ— ' इति पाठः ।

२ इष्टो बाहुर्यः स्यात् तत्स्पर्धिन्व्या दिशीतरो बाहुः । ध्ये चतुरसे वा सा कोटिः कीर्तिता तज्जैः ॥ तत्कृत्यो-
योगपदं कर्णः । लीलावती क्षेत्रव्य. १.

सदखंडेहि सादिरेयचत्तारिरज्जुभुजाणि कर्णंखेत्ते आलिहिय दोसु वि पासेसु मज्झम्मि छिण्णेसु चत्तारि आयदचउरंसखेत्ताणि अट्ट तिकोणखेत्ताणि च हंति । एत्थ चदुण्ह-मायदचउरंसखेत्ताणं फलं पुब्बिल्लदोखेत्तफलस्स चउबभागमेत्तं होदि । चदुसु वि खेत्तेसु बाहल्लाविरोहेण एगड्ढं कदेसु तिण्णिरज्जुबाहल्लं, पुब्बिल्लखेत्तविकखंभायामेहिंतो अट्टमेत्त-विकखंभायामपमाणखेत्तुवलंभादो । किमड्ढं चदुण्हं पि मिलिदाणं तिण्णि रज्जुबाहल्लत्तं ? पुब्बिल्लखेत्तबाहल्लादो संपहियखेत्ताणमट्टमेत्तबाहल्लं होदूण तदुस्सेहं पेक्खिदूण अट्ट-मेत्तुस्सेहदंसणादो । संपहि सेसअट्टखेत्ताणि पुब्बं व खंडिय तत्थ सोलस तिकोणखेत्ताणि अणंतरादीदखेत्ताणमुस्सेहादो विकखंभादो बाहल्लादो च अट्टमेत्ताणि अवणिय अट्टण्ह-मायदचउरंसखेत्ताणं फलमणंतराइकंतचदुखेत्तफलस्स चउबभागमेत्तं होदि । एवं सोलस-बत्तीस-चउसट्टिआदिकमेण आयदचउरंसखेत्ताणि पुब्बिल्लखेत्तफलादो चउबभागमेत्त-फलाणि होदूण गच्छंति जाव अविभागपलिच्छेदं पत्तं ति । एवमुप्पण्णासेसखेत्तफलमेला-

४३३६ राजु प्रमाण भुजावाले हैं। उन्हें कर्णक्षेत्रसे लगाकर दोनों ही पार्श्वभागोंमें बीचसे छिन्न करनेपर चार आयतचतुरस्रक्षेत्र और आठ त्रिकोणक्षेत्र हो जाते हैं।

यहाँपर चारों ही आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका घनफल पहलेके दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंके घनफलके चतुर्थभाग मात्र होता है, क्योंकि, चारों ही क्षेत्रोंको बाहल्यके अविरोधसे इकट्ठा करनेपर अर्थात् यथाक्रमसे विपर्यास कर उलटा रखने पर तीन राजु बाहल्य और पहलेके क्षेत्रके विष्कम्भ और आयामसे अर्धमात्र विष्कम्भ और आयाम प्रमाणवाला क्षेत्र पाया जाता है।

शंका — इन चार आयतचतुरस्र क्षेत्रोंके मिलाने पर तीन राजु बाहल्य कैसे होता है?

समाधान — क्योंकि, पहले बताये हुये आयतचतुरस्र क्षेत्रके बाहल्यसे इस समयके आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका बाहल्य आधा ही है। और पहलेके उनके उत्सेधकी ओक्षा अबके इनका उत्सेध भी आधा ही दिखाई देता है।

अब शेष रहे आठ त्रिकोण क्षेत्रोंको पूर्वके समान ही खंडित करनेपर उनमें सोलह त्रिकोणक्षेत्र और आठ आयतचतुरस्रक्षेत्र हो जाते हैं।

पहले बताये गये चार आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका उत्सेधसे, विष्कम्भसे और बाहल्यसे अर्धप्रमाण निकालकर आठों ही आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका घनफल अभी बताये गये चार आयत-चतुरस्र क्षेत्रोंके घनफलके चतुर्थ भागमात्र होता है। इसीप्रकार सोलह, बत्तीस, चौसठ आदिक्रमसे आयतचतुरस्रक्षेत्र पहले पहलेके आयतचतुरस्रक्षेत्रके घनफलोंके चतुर्थ भागमात्र घनफलवाले होते हुए तब तक चले जायेंगे जबतक कि अविभागप्रतिच्छेद अर्थात् एक परमाणु (प्रदेश) नहीं प्राप्त हो जायगा। इसप्रकारसे उत्पन्न हुए समस्त क्षेत्रोंके घनफलोंके जोड़नेका

१ प्रतिपु 'कम्म' इति पाठः ।

२ अ-आ-क प्रतिपु 'चउत्थ' इति पाठः ।

वणविहाणं वुच्चदे । तं जहा- सव्वखेत्तफलाणि चउगुणकमेण अवट्टिदाणि ति कादूण
तत्थ अंतिमखेत्तफलं चउहि' गुणिय रूवूणं काऊण तिगुणिदछेदेण ओवट्टिदे एत्तियं होइ
६५^१/_३^३/_३ । अधोलोगस्स सव्वखेत्तफलसमासो १०६^२/_३^३/_३ ।

संपहि उड्डुलोगखेत्तफलमाणेमो । तत्थ सूईखेत्तफलं पुव्वविहाणेण आणिदे एत्तियं
होइ ५^३/_३^३/_३ । संपहि उवरिममद्धं पंचरज्जुविकखंभुदेसे खंडियं तत्थ एगखंडं पुध डुविय
मज्झम्मि सेसखंडं उड्डुं फालिय पसारिदे सुप्पखेत्तं होदि । तस्स मुहवित्थारो एत्तिओ होदि
३^३/_३^३/_३ । तलवित्थारो एत्तिओ होदि १५^१/_३^३/_३ । मुहम्मि एगागासवाहल्लं, तलम्मि मुहप्प-
माणमज्झम्मि वेरज्जुवाहल्लं, पुणो कमहाणीए गंतूण हेट्टिमदोकोणेषु एगागासवाहल्लं
होदि । एदम्मि खेत्ते मुहवित्थारविकखंभेण खंडिदे दोण्णि तिकोणखेत्ताणि एगमायद-

विधान कहते हैं । वह इसप्रकार है- सभी क्षेत्रोंका घनफल चतुर्गुणितक्रमसे अवस्थित है, इसलिये
उनमें अन्तिम क्षेत्रफलको चारसे गुणा करके और चारमेंसे एक कम अर्थात् तीनसे भाग देने
पर घनफल ६५^१/_३^३/_३ इतना होता है । और अधोलोकके सभी क्षेत्रोंका घनफल १०६^२/_३^३/_३
होता है ।

अब चारों ओरसे मृदंगाकार ऊर्ध्वलोकरूप क्षेत्रका घनफल निकालते हैं । उसमें
एक राजु चौड़े, सात राजु लम्बे और गोल आकारवाले सूचीरूप क्षेत्रका घनफल पहले अधो-
लोकमें कहे गये विधानसे निकालनेपर ५^३/_३^३/_३ राजु इतना होता है । (इस सूचीको उर्ध्व-
लोकके मध्यभागसे निकालकर पृथक् स्थापन कर देना चाहिये ।) अब, लोकको मध्यलोकसे
काटनेपर जो दो भाग पहले हुए थे उसमेंके ऊपरी अर्ध भागको, पांच राजु है विष्कम्भ
जहाँपर ऐसे ब्रह्मलोकके अन्तस्थित प्रदेशपर बीचसे खंडितकर उसमेंसे एक खंडको पृथक् स्थापन-
कर बचे हुए खंडको मध्यमें ऊपरसे नीचेतक फाड़कर पसारनेसे सूपाके आकारवाला क्षेत्र
हो जाता है । उसके मुखका विस्तार ३^३/_३^३/_३ इतना होता है । तथा तलविस्तार १५^१/_३^३/_३
इतना होता है । इस सूर्पक्षेत्रके मुखमें मोटाई आकाशके एक प्रदेश प्रमाण है, और तलके
मुख-प्रमाण मध्यभागमें दो राजु मोटाई है, पुनः क्रमसे हानिको प्राप्त होती-हुई अर्थात् कम होती
हुई इसी तलभागके दोनों कोनों पर आकाशके एक प्रदेश प्रमाण मोटाई है । इस सूर्पक्षेत्रको,
मुखविस्तार-प्रमाण विष्कम्भसे खंडित करनेपर दो त्रिकोण क्षेत्र और एक आयतचतुरस्र

१ म प्रती ' चउ ' इत्यपि पाठः ।

२ म प्रत्योः ' उवरिमधम्मद्वपंच- ', ' उवरिमधम्म पंच- ' ; अ-आ-क प्रतिषु ' उवरिममद्धपंच- '
इति पाठः ।

३ म २ प्रतीः ' खंडियं ' इति पाठः ।

४ म प्रत्योः ' बाहिद्ध ' इति पाठः ।

चउरंसखेत्तं च हेई । आयदचउरंसखेत्तस्स अद्दुद्धरज्जुदीहस्स सादिरेयतिणिरज्जुविकखं-
भस्स तलम्मि वे रज्जु मुहम्मि एगागामबाहल्लस्स फलमाणेमो । तं जहा— विकखंभेणुस्सेहं
गुणेऊण ओवेहेणगरज्जुणा गुणिदे मज्झिल्लखेत्तफलं होइ । तस्स पमाणमेदं ११३३३ ।^१ सेस-
दो तिकोणखेत्ताणि अद्दुद्धरज्जुस्सेहाणि एगरज्जुं तेरसुत्तरसदेण खंडिय तत्थ बत्तीसखंडब्भहिय-
छरज्जुविकखंभाणि पुव्वं व मज्झम्मि खंडिय तत्थुप्पणाणि चत्तारि तिकोणखेत्ताणि
ओसारिय दोण्हमायदचउरंसखेत्ताणं पाऊणदोरज्जुस्सेहाणं तेरसुत्तरसदेण एगरज्जुं खंडिय
तत्थ सोलसखंडब्भहिय तिणिरज्जुविकखंभाणं दो-एक-सुण्णेकरज्जुबाहल्लाणं फल-
माणेमो । तं जहा— एगखेत्तस्सुत्तरि विदियखेत्तं विवज्जासं काऊण डुविदे वेरज्जुबाहल्लमेगं
खेत्तं होइ । पुणो विकखंभुस्सेहाणं संवर्गं काऊण ओवेहेण गुणिदे खेत्तफलं होदि । तस्स

क्षेत्र हो जाते हैं । उनमेंसे पहले आयतचतुरस्र क्षेत्रका जो साढ़े तीन राजु लम्बा है, तीन
राजुसे कुछ अधिक अर्थात् ३ $\frac{३३}{३३}$ राजु चौड़ा है, तलमें दो राजु और मुखमें एक आकाश
प्रदेश प्रमाण मोटा है, ऐसे उस आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल निकालते हैं । वह इसप्रकार
है— विष्कम्भ $\frac{३३}{३३}$ से उतलेध $\frac{३}{३}$ को गुणाकर पुनः उसे मोटाईके प्रमाण एक राजुसे गुणा
करने पर मध्यम अर्थात् आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल आ जाता है । उसका प्रमाण
 $\frac{३३}{३३} \times \frac{३}{३} \times \frac{३}{३} = ११\frac{३३}{३३}$ इतना होता है । शेष जो दो त्रिकोण क्षेत्र हैं, जो कि साढ़े तीन
राजु ऊंचे तथा एक राजुको एक सौ तेरहसे खंडित कर उनमें बत्तीस खंडसे अधिक छह राजु
अर्थात् ६ $\frac{३३}{३३}$ राजु चौड़े हैं, उन्हें पहलेके समान ही मध्यमेंसे खंडित कर उनमें उत्पन्न हुए
चार त्रिकोण क्षेत्रोंको दूर रख कर दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका, जो कि पौने दो राजु ऊंचाईवाले,
तथा एकसौ तेरहसे एक राजुको खंडित कर उनमें सोलह खंडोंसे अधिक तीन राजु अर्थात्
३ $\frac{३३}{३३}$ राजु प्रमाण चौड़े, तथा क्रमशः दो, एक, शून्य और एक राजु मोटे हैं, उनके
घनफलको निकालते हैं ।

विशेषार्थ— यहाँ पर जो आयतचतुरस्रक्षेत्रकी मोटाई क्रमशः दो, एक, शून्य और
एक राजु प्रमाण कही है, उसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मलोकके पासवाले भीतरी भागकी
मोटाई दो राजु है । उसीके बाहरी भागकी मोटाई एक राजु है । कर्णरेखावाले क्षेत्रकी मोटाई
शून्य या एक प्रदेश है और कोटिरेखाके भागवाले ऊपरी क्षेत्रकी मोटाई एक राजु है ।

वह इसप्रकार है— एक आयतचतुरस्रक्षेत्रके ऊपर दूसरे आयतचतुरस्रक्षेत्रको उलटा
करके रखने पर दो राजुकी मोटाईवाला एक क्षेत्र हो जाता है । पुनः विष्कम्भ और उतलेधका
संवर्ग अर्थात् परस्पर गुणन करके घेधसे गुणा करने पर उक्त क्षेत्रका घनफल होता है,

- १ म प्रत्योः $\frac{३३}{३३}$ इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' तत्थुप्पणा ' इति पाठः ।

पमाणमेदं $१०\frac{३३६}{६}$ । पुणो सेसचउण्हं खेत्ताणं फलमेदस्स चउव्भागमेत्तं होदि । कारणं सुगमं, अधोलोगपरूवणाए परूविदत्तादो । जेणेवं सव्वखेत्तफलाणि अणंतराइकंतखेत्तफलादो चउव्भागक्रमेणावट्टिदाणि, तेण तेसिं फले एत्थ मेलाविदे एत्तियं होदि $१४\frac{४४६}{६}$ । उड्डुलोग-खेत्तस्स सव्वफलसमासो एत्तिओ होइ $५८\frac{६६६}{६}$ । उड्डुधोलोगखेत्तफलसमासो एत्तिओ होदि $१६४\frac{३३६}{६}$ । तदो सिद्धं घणलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं । ण च एदव्वदिरित्तमणं सत्तरज्जुघणपमाणं लोसण्णिदं खेत्तमत्थि, जेण पमाणलोगो छदव्वसमुदयलोगादो अण्णो होज्ज । ण च लोसण्णो दोसु वि द्विदसत्तरज्जुघणमेत्तागासपदेसाणं पमाणघण-लोगववएसो, लोसण्णाए जादिच्छियत्तप्पसंगा । होदु चे ण, सव्वागास-सेदि-पदर-घणाणं

जिसका प्रमाण $\frac{१०}{६} \times \frac{३३६}{६} \times \frac{२}{६} = १०\frac{३३६}{६}$ इतना होता है । पुनः जो शेष चार त्रिकोण क्षेत्र हैं, उनका घनफल इस आयतचतुरस्रक्षेत्रके चतुर्थभागमात्र होता है । इसका कारण सुगम है, क्योंकि, अधोलोककी प्ररूपणामें कह आये हैं (पृ. १६) । चूंकि इसप्रकार सर्व त्रिकोण क्षेत्रोंके घनफल अनन्तर अतिक्रान्त अर्थात् अभी पहले बताये गये क्षेत्रोंके घनफलसे चतुर्भागके क्रमसे अवस्थित हैं, इसलिए उनके घनफलको यहां अर्थात् $१०\frac{३३६}{६}$ में मिलानेपर $१४\frac{४४६}{६}$ इतना प्रमाण हो जाता है । उर्ध्वलोकका समस्त घनफल $५८\frac{६६६}{६}$ इतना होता है ।

विशेषार्थ— ऊर्ध्वलोकका यह घनफल इसप्रकार आता है— ऊपर जो प्रमाण बतलाया गया है, वह प्रमाण ऊर्ध्वलोकके विभक्त किये गये दो भागोंमेंसे एक भागका है, इसलिए दोनों खंडोंका घनफल लानेके लिए आयतचतुरस्रक्षेत्रके घनफलको दूना किया, तब $११\frac{३३६}{६} \times \frac{२}{६} = २२\frac{३३६}{६}$ हुआ । तथा त्रिकोणक्षेत्रोंका भी घनफल दूना किया, तब $१४\frac{४४६}{६} \times \frac{२}{६} = २९\frac{४४६}{६}$ हुआ । इसप्रकार ऊर्ध्वलोककी सूचीका, आयतचतुरस्र और त्रिकोण-क्षेत्रोंका समस्त घनफल जोड़ देने पर $५८\frac{६६६}{६} + २२\frac{३३६}{६} + २९\frac{४४६}{६} = ५८\frac{६६६}{६}$ होता है ।

ऊर्ध्वलोक और अधोलोकका घनफल जोड़ देनेपर $१०\frac{३३६}{६} + ५८\frac{६६६}{६} = १६४\frac{३३६}{६}$ इतना प्रमाण होता है । इसलिए अन्य आचार्योंके द्वारा माना हुआ लोक घनलोकके संख्यातर्वे भागप्रमाण सिद्ध हुआ । और, इस लोकके अतिरिक्त सात राजुके घनप्रमाण लोकसंज्ञक अन्य कोई क्षेत्र है नहीं, जिससे कि प्रमाणलोक छह द्रव्योंके समुदायरूपलोकसे भिन्न माना जावे । और न लोकाकाश तथा अलाकाकाश, इन दोनोंमें ही स्थित सात राजुके घनमात्र आकाश-प्रदेशोंके प्रमाणकी घनलोकसंज्ञा है, क्योंकि, ऐसा माननेपर लोकसंज्ञाके यादच्छिकपनेका प्रसंग प्राप्त होता है ।

शंका— यदि लोकसंज्ञाको यादच्छिकपनेका प्रसंग प्राप्त होता है तो हो जाओ ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, संपूर्ण आकाश, जगश्रेणी, जगप्रतर और घनलोक, इन

१ म २ प्रती $\frac{५८}{७७}$ म २ प्रती $\frac{५८}{६७}$ इति पाठः ।
१३६६ १३५६

२ + भागत्तं । ण च ' इति स्थाने क प्रती ' भागत्तं गणयवए ', आ प्रती ' भागत्तं गणिय ', म प्रत्योः ' -भागत्तं_व ' इति पाठः ।

वि जादिच्छियसण्णापसंगादो । किं च ' पदरगदो केवली केवडि खेते, लोगे असंखेज्जदि-
भागूणे' । उड्डलोगेण दुवे उड्डलोगा उड्डलोगस्स तिभागेण देसूणेण सादिरेगा ' इच्चेदस्स
सादिरेयदुगुणत्तस्स उड्डलोगादो कहणणहाणुववत्तीदो सिद्धं दोण्हं लोगाणमेगत्तमिदि ।
तम्हा पमाणलोगो छदव्वसमुदयलोगादो आगासपदेसगणणाए समाणो ति घेत्तव्वो ।
कथं लोगो पिंडिज्जमाणो सत्तरज्जुघणपमाणो होज्ज ? वुच्चदे- लोगो णाम सव्वागास-
मज्झत्थो चौदसरज्जुआयामो दोसु वि दिसासु मूलद्व-तिणि-चउब्भाग-चरिमेसु सत्तेक्क-
पंचेक्करज्जुरुदो सव्वत्थ सत्तरज्जुवाहल्लो वड्ढि-हाणीहि डिददोपेरंतो, चौदसरज्जुआयद-

सभी संज्ञाओंको भी यादच्छिकपनेका प्रसंग आजायगा ।

दूसरी बात यह है कि 'प्रतरसमुद्धातगत केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागसे न्यून सर्व लोकमें रहते हैं । लोकके असंख्यातवें भागसे न्यून सर्व लोकका प्रमाण ऊर्ध्वलोकके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक दो ऊर्ध्वलोकप्रमाण है ।' इसप्रकार ऊर्ध्वलोककी अपेक्षा इस साधिक दुगुणताका कथन अन्यथा बन नहीं सकता था, अतएव प्रमाणलोक और द्रव्यलोक इन दोनों लोकोंका एकत्व सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—यहां पर प्रतरसमुद्धातगत केवलीके क्षेत्रका प्रमाण जो ऊर्ध्वलोककी अपेक्षा दो ऊर्ध्वलोक और उसीके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक बताया है, उसका अभिप्राय यह है कि ऊर्ध्वलोकका प्रमाण १४७ घनराजु है, इसे दुना करनेपर २९४ घनराजु हुए । इसमें १४७ का त्रिभाग ४९ घनराजुके जोड़ देनेपर ३४३ घनराजु होते हैं जो कि घनलोकका प्रमाण है । प्रतरसमुद्धातगत केवली लोकान्तमें स्थित वातवलयोंसे रुद्ध क्षेत्रको छोड़कर शेष संपूर्ण क्षेत्रको व्याप्त कर लेते हैं, इसलिये ३४३ घनराजुमेंसे वातवलयोंसे रुद्ध क्षेत्रको कम कर देना चाहिये । यही यहां पर देशोन क्षेत्रका अभिप्राय है ।

इसलिये, उक्तप्रकारसे प्रमाणलोक और द्रव्यलोकके एक सिद्ध हो जानेपर, प्रमाण-लोक छह द्रव्योंके समुदायवाले लोकसे आकाशके प्रदेशगणनाकी अपेक्षा समान है, ऐसा अर्थ स्वीकार करना चाहिये ।

शंका—पिंडरूपसे एकत्रित करनेपर, अर्थात् घनरूप किया गया, यह लोक सात राजुके घनप्रमाण कैसे हो जाता है ?

समाधान—उक्त शंकाका उत्तर कहते हैं— जो सर्व आकाशके मध्य भागमें स्थित है, चौदह राजु आयामवाला है, दोनों दिशाओंके अर्थात् पूर्व और पश्चिम दिशाके मूल, अर्धभाग, त्रि-चतुर्भाग और चरमभागमें यथाक्रमसे सात, एक, पांच और एक राजु विस्तार-वाला है, तथा सर्वत्र सात राजु मोटा है, वृद्धि और हानिक द्वारा जिसके दोनों प्रान्तभाग

१ म प्रयोः ' लोगो असंखेज्जदिभागूणा ' इति पाठः ।

२ उदयदलं आयाम वास पुब्बात्रेण भूमिमुदे । रुद्धे रूपेण एक य रज्जु मज्झमिह हाणिचयं ॥ त्रि. सा. ११३.

रज्जुवग्गसुहलोगणालिगग्गभो' । एसो पिंडिज्जमाणो सत्तरज्जुघणपमाणो होदि' । जदि लोगो एरिसो ण घेप्पदि तो पदरग्गदेक्खलिखेत्तमाहणं वुत्त दो-गाहाओ गिरस्थियाओ होज्ज, तत्थ वुत्तफलस्स अण्णहा संभवाभावा । काओ ताओ दो गाहाओ ति वुत्ते वुच्चदे—

मुह-तलसमास-अद्धं वुत्सेधगुणं गुणं च वेधेण ।

घणगणिदं जाणेज्जो वेत्तासणसंठिये खेत्ते' ॥ ९ ॥

स्थित है, चौदह राजु लम्बी एक राजुके वर्गप्रमाण मुखवाली लोकनाली जिसके गर्भमें है, ऐसा यह पिंडरूप किया गया लोक सात राजुके घनप्रमाण अर्थात् $७ \times ७ \times ७ = ३४३$ राजु है ।

विशेषार्थ—लोकका उपर्युक्त विस्तार इसप्रकार है—लोक सर्व आकाशके मध्यमें स्थित है । उसका आयाम चौदह राजु है । पूर्व-पश्चिम तलभाग सात राजु, लोकके आधे अर्थात् सात राजु ऊपर जाकर मध्यलोकमें एक राजु, लोकके पौनभाग अर्थात् साढ़े दस राजु ऊपर जाकर ब्रह्मलोकमें पांच राजु, और पूरे चौदह राजु ऊपर जाकर लोकके अन्तिम भागमें एक राजु विस्तार है । लोकका उत्तर-दक्षिण विस्तार सर्वत्र सात राजु है । इसप्रकारके लोकके बीच एक राजु चौड़ी चतुष्कोण और चौदह राजु ऊंची त्रसनाड़ी है । पूर्व-पश्चिम भागमें लोक घट-बढ़ विस्तारवाला है । इसप्रकार लोक सात राजुके घनप्रमाण होता है ।

यदि इसप्रकारका लोक ग्रहण नहीं किया जायगा, तो प्रतरसमुद्घातगत केवलीके क्षेत्रके साधनार्थ कही गई दो गाथाएं निरर्थक हो जायेंगी, क्योंकि, उन गाथाओंमें कहा गया घनफल लोकको अन्य प्रकारसे माननेपर संभव नहीं है ।

शंका—वे दोनों गाथाएं कौनसी हैं ?

समाधान—ऐसी शंका करनेपर कहते हैं—

मुखभाग और तलभागके प्रमाणको जोड़कर आधा करो, पुनः उसे उत्सेधसे गुणा करो, पुनः मोटाईसे गुणा करो । ऐसा करनेपर वेत्तासन आकारसे स्थित अधोलोकरूप क्षेत्रका घनफल जानना चाहिये ॥ ९ ॥

विशेषार्थ—वेत्तासन आकारवाले अधोलोकके मुखविस्तारका प्रमाण एक राजु है और तलविस्तारका प्रमाण सात राजु है । इन दोनोंको जोड़नेपर आठ हुए । उसे आधा कर अधोलोककी ऊंचाईके प्रमाण सात राजुसे गुणा करनेपर अट्ठाईस हुए । इस संख्याको अधोलोककी उत्तर-दक्षिण दिशाकी मोटाई सात राजुसे गुणा करनेपर एकसौ छयानवे राजु हुए । यही अधोलोकका घनफल है । जैसे— $७ + १ = ८$; $८ \div २ = ४$; $४ \times ७ = २८$; $२८ \times ७ = १९६$ घनराजु ।

१ लोयबहुमज्झदेसे क्खे सारव्व रज्जुपदरज्जुदा । चौदसरज्जुत्तुंगा तसणाली होदि गुणणामा ॥ त्रि. सा. १४३.

२ सव्वागासमणंतं तस्स य बहुमज्झदेसभागग्धि । लोगोऽसंखपदेसो जगसेदिघणपमाणो हु ॥ त्रि. सा. ३.

३ ति. प. १, १६५. जंजू. प. ११, १०८.

मूलं मञ्जेण गुणं मूहसहिदद्धमुस्सेधकदिगुणिदं ।

घणगणिदं जाणेञ्जो मुइंगसंठाणखेत्तग्धि' ॥ १० ॥

ण च एदस्स लोगस्स पढमगाहाए सह विरोहो, एगदिसाए वेत्तासण-मुदिंगसंठाण-दंसणादो । ण च एत्थ झल्लरीसंठाणं णत्थि, मज्झग्धि सयंभुरमणोदहिपरिक्खित्तदेसेण चंदमंडलमिव समंतदो असंखेज्जजोयणरुंदेण जोयणलक्खवाहल्लेण झल्लरीसमाणत्तादो' । ण च दिट्ठंतो दारिट्ठंतिएण सब्बहां समाणो, दोण्हं पि अभावप्पसंगादो । ण च ताल-रुक्खसंठाणमेत्थं ण संभवइ, एगदिसाए तालरुक्खसंठाणदंसणादो । ण च तइयाए गाहाए

मूलके प्रमाणको मध्यके प्रमाणसे गुणा करो, पुनः मुखसहित अर्ध भागको उत्सेधकी कृति अर्थात् वर्गसे गुणा करो । ऐसा करनेपर मृदंगके आकारवाले क्षेत्रमें प्राप्त घनफल जानना चाहिये ॥ १० ॥

विशेषार्थ-- ऊर्ध्वलोक, बीचमें मोटा और ऊपर नीचे सकड़ा होनेसे मृदंगाकारक्षेत्र कहलाता है । इस मृदंगाकार ऊर्ध्वलोकका मूलभागसम्बन्धी विस्तार एक राजुसे मध्यभागके विस्तार पांच राजुको गुणा करनेपर $१ \times ५ = ५$ हुए । उसमें मुखविस्तार एक राजुको जोड़कर $५ + १ = ६$ आधा करनेपर $६ \div २ = ३$ रहे । इसे ऊंचाई सातके वर्गसे $७ \times ७ = ४९$ गुणा करनेपर $४९ \times ३ = १४७$ हुए । यही एकसौ तेतालीस राजु ऊर्ध्वलोकका घनफल है । इसप्रकार अधोलोक और ऊर्ध्वलोकके घनफलोंको जोड़ देनेपर $१९६ + १४७ = ३४३$ तीनसौ तेतालीस राजु सर्व लोकका घनफल होता है ।

और, उक्त प्रकारके इस लोकका 'हेट्टा मञ्जे उवरिं वेत्तासण-झल्लरी-मुइंगणिभो' इत्यादि इस प्रथम गाथाके साथ भी विरोध नहीं है, क्योंकि, एक दिशामें वेत्तासन और मृदंगका आकार दिखाई देता है । यदि कहा जाय कि अभी बताये गए लोकमें (मध्य भागपर) झल्लरीका आकार नहीं है, सो भी नहीं, क्योंकि, मध्यलोकमें स्वयम्भूरमणसमुद्रसे परिक्षिप्त, तथा चारों ओरसे असंख्यात योजन विस्तारवाला और एक लाख योजन मोटाईवाला यह मध्यवर्ती प्रदेश चन्द्रमंडलकी तरह झल्लरीके समान दिखाई देता है । और दृष्टान्त सर्वथा दार्ष्टान्तके समान नहीं होता है, अन्यथा दोनोंके ही अभावका प्रसंग आ जायगा । यदि कहा जाय कि ऊपर बताये गए इस लोकके आकारमें तालवृक्षके समान आकार संभव नहीं है, सो भी नहीं, क्योंकि, एक दिशासे देखने पर तालवृक्षके समान संस्थान दिखाई देता है । और 'लोगस्स य विकखमभो चउप्पयारो य होइ णायब्बो' इत्यादि इस

१ जंबू. प. ११, ११०.

२ पुत्रवाचरेण लोगो मूले मञ्जे तहेव उवरिग्धि । वरवेत्तासण-झल्लरि-मुदिंगसंठाणपरिणामो ॥ उत्तर दक्षिण-पासे संठाणो टंकलिण्णगिरिसरिसो । अहवा कुलगिरिसरिसो आयदचउरंसदरणमिओ ॥ जंबू. प. ४, ४-५.

३ म प्रत्योः 'सस्सहा' इति पाठः ।

४ प्रतिष्ठु 'मेत्त' इति पाठः ।

सह विरोहो, एत्थ वि दोसु दिसासु चउच्चिहविकखंभदंसणादो । ण च सत्तरज्जुवाहल्लं करणाणिओगसुचविरुद्धं, तस्स तत्थ विधिप्पडिसेधाभावादो । तम्हा एरिसो चैव लोगो ति वेत्तव्वो ।

एत्थ चोदगो भणदि— कधमणंता जीवा असंखेज्जपदेसिए लोए अच्छंति । जदि एक्कम्मिह आगासपदेसे एक्को चैव जीवो अच्छदि तो असंखेज्जजीवाणं थत्तीं होदूण अवरेसिं जीवाणमलोगे अच्छणं पावेदि, तेसिमभावो वा । ण च तेसिमभावो अत्थि, 'अणंता जीवा' ति अणेण सुत्तेण सह विरोधा । ण च अलोगागासे वि सेसाणमच्छणमत्थि, लोगालोगविहायस्स अभाववत्तीदो । ण च एगागासपदेसे एगो जीवो अच्छदि, 'एगज्जिस्स जहण्णोगाहणा वि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता' ति वेदणाखेत्तविधाने परूविदत्तादो । तम्हा लोगमज्झम्मिह जदि होंति, तो लोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेहि चैव जीवेहि होदव्वमिदि ?

एत्थ परिहारो बुच्चदे— णेदं घडदे, पोग्गलाणं पि असंखेज्जत्तप्पसंगादो । कधं ?

तीसरी गाथाके साथ भी विरोध नहीं आता है, क्योंकि, यहांपर भी पूर्व और पश्चिम इन दोनों ही दिशाओंमें गाथोक्त चारों ही प्रकारके विष्कम्भ देखे जाते हैं । तथा लोकके उत्तर-दक्षिणभागमें सर्वत्र सात राजुका बाहल्य भी करणानुयोगसूत्रके विरुद्ध नहीं है, क्योंकि, करणानुयोगसूत्रमें सात राजुके बाहल्यके विधान व प्रतिषेधका अभाव है । इसलिए अभी कहे गए आकारवाला ही लोक है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए ।

शंका—यहांपर शंकाकार कहता है कि असंख्यात प्रदेशवाले लोकमें अनन्त संख्यावाले जीव कैसे रह सकते हैं ? यदि एक आकाशके प्रदेशमें एक ही जीव रहे, तो भी सर्व लोकमें असंख्यात जीवोंकी स्थिति होकर अवशिष्ट अन्य जीवोंका अलोकाकाशमें रहना प्राप्त होता है, अथवा उन शेष जीवोंका अभाव प्राप्त होता है । किन्तु उनका अभाव है नहीं, क्योंकि, उक्त कथनका 'जीव अनन्त है' इस सूत्रके साथ विरोध आता है । और न अलोकाकाशमें भी शेष जीवोंका रहना बनता है, क्योंकि ऐसा माननेपर, लोक और अलोकके विभागका अभाव प्राप्त होता है । दूसरी बात यह भी है कि आकाशके एक प्रदेशमें एक जीव रहता भी नहीं है, क्योंकि, 'एक जीवकी जघन्य अवगाहना भी अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र होती है' ऐसा वेदनाखंडके वेदनाक्षेत्रविधान नामक अनुयोगद्वारमें प्रतिपादन किया गया है । इसलिये यदि लोकके मध्यमें जीव रहते हैं, तो वे लोकके असंख्यातवें भागमात्र ही होना चाहिए ?

समाधान—अब यहांपर इस शंकाका परिहार कहते हैं— शंकाकारका उक्त कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, उक्त कथनके मान लेनेपर पुद्गलोंके भी असंख्यातपनेका प्रसंग आ जाता है ।

शंका—पुद्गलोंके असंख्यात होनेका प्रसंग कैसे आ जावेगा ?

१ म प्रता 'च्छती', अ प्रती 'वती', क प्रती 'वती' इति पाठः ।

एगेगलोगागासपदेये एककेवको जदि परमाणू अच्छदि, तो लोगमेत्ता परमाणू भवंति, सेसपोग्गलणमभावो चैव, अणवगासाणमत्थित्तविरोधा । ण च तेहि लोगमेत्तपरमाणूहि कम्म-सरीर-घट-पड-त्थंभादिसु एगो वि णिप्पज्जदे, अणंताणंतपरमाणुसमुदयसमागमेण विणा एक्किस्से ओसण्णासणियाए' वि संभवाभावा । होदु चे ण, सयलपोग्गलदव्वस्स अणुवलद्विप्पसंगादो, सच्चंजीवाणमक्कमेण केवलणाणुप्पत्तिप्पसंगादो च । एवमइप्पसंगो मा होदि त्ति अवगेज्झमाणजीवाजीवसत्तण्णहाणुववत्तीदो अवगाहणधम्मिओ लोगागासो त्ति

समाधान— इस शंकाका परिहार इसप्रकार है— लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें यदि एक एक ही परमाणु रहे, तो लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण ही परमाणु होंगे, और शेष पुद्गलोंका अभाव हो जायगा, क्योंकि, जिन पुद्गलोंको अवकाश नहीं मिला, उनका अस्तित्व माननेमें विरोध आता है । तथा उन लोकमात्र परमाणुओंके द्वारा कर्म, शरीर, घट, पट और स्तम्भ आदिकोंमेंसे एक भी वस्तु निष्पन्न नहीं हो सकती है, क्योंकि, अनन्तानन्त परमाणुओंके समुदायका समगम हुए विना एक अवसन्नासन्न संज्ञक भी स्कंधका होना संभव नहीं है ।

शंका— एक भी वस्तु निष्पन्न नहीं होवे, तो भी क्या हानि है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर समस्त पुद्गल द्रव्यकी अनुपलब्धिका प्रसंग आता है, तथा सर्व जीवोंके एक साथ ही केवलज्ञानकी उत्पत्तिका भी प्रसंग प्राप्त होता है ।

विशेषार्थ— यहाँपर समस्त पुद्गलद्रव्यकी अनुपलब्धिका जो दूषण दिया है, उसका अभिप्राय यह है कि घट, पटादि कार्यों के देखनेसे ही कारणरूप पुद्गलपरमाणुओंके अस्तित्वका अनुमान होता है । शंकाकारके कथनानुसार जब किसी भी वस्तुकी निष्पत्ति न होगी, तो उन कार्योंके निष्पादक कारणधर्मवाले परमाणु हैं, यह कैसे जाना जा सकेगा ? अतएव घट, पटादि कार्योंकी निष्पत्तिके अभावमें पुद्गलद्रव्यके अभावका प्रसंग आता है । तथा, सर्व जीवोंके एक साथ केवलज्ञानकी उत्पत्तिके प्रसंग प्राप्त होनेका जो दूषण दिया गया है, उसका अभिप्राय यह है कि जब लोकाकाशके प्रदेश प्रमाण असंख्यात ही परमाणु होंगे, तो उनसे प्रथम तो एक कर्मणशरीरकी उत्पत्ति ही नहीं होगी । यदि थोड़ी देरके लिए यह कल्पना कर भी ली जाय कि असंख्यात परमाणुओंसे एक कर्मणशरीर या कर्मपिंड बन भी जाता हो, जो कि जीवके ज्ञानादिक गुणोंके आवरण करनेमें समर्थ है, तो भी वह किसी एक ही जीवके गुणोंका आवरण कर सकेगा, अनन्त जीवोंका नहीं । इस प्रकारसे भी सभी जीवोंके आवरक कर्मका अभाव होनेसे केवलज्ञानकी उत्पत्तिका प्रसंग प्राप्त होता है । अथवा, किसी एक जीवके द्वारा उस कर्मणशरीरका शुक्लध्यानाग्निसे विनाश किये जानेपर समस्त ही जीवोंके केवलज्ञानकी उत्पत्ति का प्रसंग आता है ।

इस प्रकार का अतिप्रसंग दोष न होवे, इस लिए अवगाह्यमान जीव और अजीव

१ परमाणूहि अणंताणंतहि बहुविहेहि दव्वेहि । ओसण्णासणो षि ॥ ति. प. १, १०२. अनन्तानन्तपरमाणु-संघासपरिमाणादाविर्भूता उत्संज्ञासंज्ञैका । त. रा. वा. ३, ३८.

इच्छिदव्वो खीरकुम्भस्स मधुकुंभो च ।

तम्हा ओगाहणलक्खणेण सिद्धलोगागासस्स ओगाहणमाहप्पमाइरियपरंपरागदोवदे-
सेण भणिससामो । तं जहा— उस्सेहघणंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ते खेत्ते सुद्धमणिगोदजीवस्स
जहण्णोगाहणा भवदि^१ । तम्हि द्विदघणलोगमेत्तजीवपदेसेसु पडिपदेसमभवसिद्धिएहि
अणंतगुणा, सिद्धाणमणंतभागमेत्ता होदूण द्विदओरालियसरीरपरमाणूणं तं चेव खेत्त-
मोगासं जादि^२ । पुणो ओरालियसरीरपरमाणूहिंतो अणंतगुणाणं तेजइयसरीरपरमाणूणं पि
तम्हि चेव खेत्ते ओगाहणा भवदि । पुच्चमणिदत्तेजइयपरमाणूहिंतो अणंतगुणा कम्मइय-
परमाणू तेणेव जीवेण मिच्छत्तादिकारणेहि संचिदा पडिपदेसमभवसिद्धिएहि अणंतगुणा
सिद्धाणमणंतभागमेत्ता तत्थ भवंति^३, तेसिं पि तम्हि चेव खेत्ते ओगाहणा भवीद । पुणो

द्रव्योंकी सत्ता अन्यथा न बन सकनेसे क्षीरकुंभका मधुकुंभके समान अवगाहन धर्मवाला
लोकाकाश है, ऐसा मान लेना चाहिए ।

विशेषार्थ—जैसे क्षीरकुम्भका मधुकुम्भमें अवगाहन हो जाता है, अर्थात् मधुसे भरे
हुए कलशमें तत्प्रमाणवाले दूधसे भरे हुए कलशका यदि दूध डाल दिया जाय, तो समस्त दूध
उसीमें समा जाता है, ऐसी अवगाहन शक्ति देखी जाती है । उसीके समान आकाशकी भी
ऐसी अवगाहना शक्ति है कि असंख्य प्रदेशों होते हुए भी उसमें अनन्त जीव और अनन्तान्त
पुद्गलोंका अवगाहन हो जाता है ।

इसलिए अब हम अवगाहन लक्षणसे प्रसिद्ध लोकाकाशके अवगाहन माहात्म्यको
आचार्य-परम्परागत उपदेशके अनुसार कहते हैं । वह इस प्रकार है— उस्सेघघनांगुलके
असंख्यातवें माग मात्र क्षेत्रमें सूक्ष्म निगादिया जीवकी जघन्य अवगाहना है । उस क्षेत्रमें स्थित
घनलोक मात्र जीवके प्रदेशोंमेंसे प्रत्येक प्रदेशपर अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके
अनन्तवें भागमात्र होकरके स्थित औदारिकशरीरके परमाणुओंका वही क्षेत्र अवकाशपनेको
प्राप्त होता है । पुनः औदारिकशरीरके परमाणुओंसे अनन्तगुणे तैजस्कशरीरके
परमाणुओंकी भी उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना होती है । तथा पूर्वमें कहे
गए तैजस परमाणुओंसे अनन्तगुणे, उसी ही जीवके द्वारा मिथ्यात्व, अधिरति
आदि कारणोंसे संचित और प्रत्येक प्रदेशपर अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणे तथा सिद्धोंके अनन्तवें
भाग मात्र कर्मपरमाणु उस क्षेत्रमें रहते हैं, इसलिए उन कर्मपरमाणुओंकी भी उसी ही क्षेत्रमें

१ सुद्धमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयात्ति । अंगुलअसंखभागं जहण्णयं । गो. जी. ९५.

२ प्रातिषु 'जदि' इति पाठः ।

३ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् । अनन्तगुणे परे । त. सू. २, ३८-३९ । परमाणूहि अणंतहिं वगण-
सण्णा हु होदि सका हु । ताहि अणंतहिं णियमा समयपबद्धो हवे एक्को ॥ ताणं समयपबद्धा सेदिअसंखेज्जभाग-
शुण्णिकमा । णतेण य तेजदुगा परं परं होदि सुद्धमं खु ॥ गो. जी. २४५, २४६.

ओरालिय-तेजा-कम्मइयविस्ससोवचयाणं पादेकं सच्चजीवेहि अणंतगुणाणं पडिपरमाणुमिह तत्तियमेत्ताणं तमिह चैव खेत्ते ओगाहणा भवदि । एवमेगजीवेणच्छिदअंगुलस्स असंखेज्जदि-भागमेत्ते जहण्णखेत्तामिह समाणोगाहणो होदूण विदिओ जीवो तत्थेव अच्छदि । एवमणंतणंतणं समाणोगाहणाणं जीवाणं तमिह चैव खेत्ते ओगाहणा भवदि । तदो अवरो जीवो तमिह चैव मज्झिमपदेसमंतिमं काळण उववण्णो । एदस्स वि ओगाहणाए अणंता-णंतजीवा समाणोगाहणा अच्छंति ति पुव्वं व परूवेदव्वं । एवमेगपदेसा सच्चदिसासु वड्ढुवेदव्वा जाव लोगो आवुण्णो ति । एत्थ एकेकोगाहणाए ठिदजीवाणमप्पावहुगं मणिससामो । तं जहा— तेउक्काइया जीवा असंखेज्जा लोगा । तत्तो पुढविकाइया विसेसाहिया । आउक्काइया जीवा विसेसाहिया । वाउक्काइया जीवा विसेसाहिया । तत्तो वणप्फदिकाइया अणंतगुणा ति । अणेण पयारेण सच्चजीवरासिणा लोगो आवुण्णो ति सँदहेदव्वं, अण्णहा पुव्वुत्तदोसप्पसंगादो ।

अवगाहना होती है। पुनः औदारिकशरीर, तैजस्कशरीर और कर्मणशरीरके विस्त्रसोपचयोंका, जो कि प्रत्येकसर्व जीवोंसे अनन्तगुणे हैं, और प्रत्येक परमाणुपर उतने ही प्रमाण हैं, उनकी भी उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना होती है। इसप्रकार एक जीवसे व्याप्त अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र उसी जघन्य क्षेत्रमें समान अवगाहनावाला होकरके दूसरा जीव भी रहता है। इसीप्रकार समान अवगाहनावाले अनन्तानन्त जीवोंकी उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना होती है। तत्पश्चात् दूसरा कोई जीव, उसी ही क्षेत्रमें उसके मध्यवर्ती प्रदेशको अपनी अवगाहनाका अन्तिम प्रदेश करके उत्पन्न हुआ। इस जीवकी भी अवगाहनामें, समान अवगाहनावाले अनन्तानन्त जीव रहते हैं, इसप्रकार यहां भी पूर्वके समान प्ररूपण करना चाहिये। अर्थात्, उस क्षेत्रमें स्थित घनलोकमात्र जीवके प्रदेशोंमेंसे प्रत्येक प्रदेशपर अनन्त औदारिकशरीरके परमाणु, औदारिकशरीरसे अनन्तगुणे तैजस्कशरीरके और इससे अनन्तगुणे कर्मणशरीरके परमाणु भी हैं। पुनः इन तीनों शरीरोंके सर्व जीवोंसे अनन्त गुणित विस्त्रसोपचय भी उसी प्रदेशपर विद्यमान हैं। इसप्रकार समान अवगाहनावाले अनन्तानन्त जीव उसी क्षेत्रमें रहते हैं। इसप्रकारसे लोकके परिपूर्ण होनेतक सभी दिशाओंमें लोकका एक एक प्रदेश बढ़ाते जाना चाहिये। अब यहांपर उत्सेध घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण एक एक अवगाहनामें स्थित जीवोंका अल्पबहुत्व कहते हैं। वह इसप्रकार है— तैजस्कायिक जीव असंख्यात लोकप्रमाण हैं। तैजस्कायिक जीवोंसे पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक हैं। पृथिवीकायिक जीवोंसे जलकायिक जीव विशेष अधिक हैं। जलकायिक जीवोंसे वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं। वायुकायिक जीवोंसे वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे हैं। इसप्रकारसे सर्व जीवराशिके द्वारा यह लोकाकाश परिपूर्ण है, ऐसा श्रद्धान करना चाहिए, अन्यथा पूर्वोक्त दोषोंका प्रसंग प्राप्त होता है।

१ जीवादी णंतगुणा पडिपरमाणुमिह विस्ससोवचया । जीवेण य समवेदा एकेकं पडि सभाणा हु ॥
गो. जी. २४९.

सव्वजीवाणमवत्था तिविहा भवदि, सत्थाण-समुग्घादुववादभेदेण । तत्थ सत्थाणं दुविहं, सत्थाणसत्थाणं विहारवदिसत्थाणं चेदि । तत्थ सत्थाणसत्थाणं णाम अप्पणो उप्पण्णगामे णयरे रण्णे वा सयण-णिसीयण-चंक्रमणादिवावारजुत्तेणच्छणं । विहारवदि-सत्थाणं णाम अप्पणो उप्पण्णगाम-णयर-रण्णादीणि छड्डिय अण्णत्थ सयण-णिसीयण-चंक्रमणादिवावारेणच्छणं । समुग्घादो सत्तविधो, वेदणसमुग्घादो कसायसमुग्घादो वेउच्चिय-समुग्घादो मारणंतियसमुग्घादो तेजासरीरसमुग्घादो आहारसमुग्घादो केवलिसमुग्घादो चेदि । तत्थ वेदणसमुग्घादो णाम अक्खि-सिरो-वेदणादीहि जीवाणमुक्कस्सेण सरीरतिगुण-विप्फुज्जणं । कसायसमुग्घादो णाम क्रोध-भयादीहि सरीरतिगुणविप्फुज्जणं । वेउच्चिय-समुग्घादो णाम देव-णेरइयाणं वेउच्चियसरीरोदइल्लणं साभावियमागारं छड्डिय अण्णागारेण-च्छणं । मारणंतियसमुग्घादो णाम अप्पणो वट्टमाणसरीरमछड्डिय रिजुगईए विग्गहगईए

स्वस्थान, समुद्धात और उपपादके भेदसे सर्व जीवोंकी अवस्था तीन प्रकारकी है । उनमें स्वस्थान दो प्रकारका है— स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान । उनमेंसे अपने उत्पन्न होनेके ग्राममें, नगरमें अथवा अरण्यमें सोना, बैठना, चलना आदि व्यापारसे युक्त होकर रहनेका नाम स्वस्थानस्वस्थान है । अपने उत्पन्न होनेके ग्राम, नगर अथवा अरण्य आदिको छोड़कर अन्यत्र शयन, निषीदन और परिभ्रमण आदि व्यापारसे युक्त होकर रहनेका नाम विहारवत्स्वस्थान है । समुद्धात सात प्रकारका है— १ वेदनासमुद्धात, २ कषायसमुद्धात, ३ वैक्रियिकसमुद्धात, ४ मारणान्तिकसमुद्धात, ५ तैजस्कशरीरसमुद्धात, ६ आहारकशरीर-समुद्धात, और ७ केवलिसमुद्धात । उनमेंसे नेत्रवेदना, शिरोवेदना आदिके द्वारा जीवोंके प्रदेशोंका उत्कृष्टतः शरीरसे तिगुणे प्रमाण विसर्पणका नाम वेदनासमुद्धात है । क्रोध, भय आदिके द्वारा जीवके प्रदेशोंका शरीरसे तिगुणे प्रमाण प्रसर्पणका नाम कषायसमुद्धात है । वैक्रियिकशरीरके उदयवाले देव और नारकी जीवोंका अपने स्वाभाविक आकारको छोड़कर अन्य आकारसे रहनेका नाम वैक्रियिकसमुद्धात है । अपने वर्तमानशरीरको नहीं छोड़कर

१ तत्र तावत् उत्पन्नपुरग्रामादिक्षेत्रं तत् स्वस्थानस्वस्थानम् । गो. जी. जी. प्र. ५४३.

२ विवक्षितपर्यायपरिणतेन परिभ्रमितुमुचितक्षेत्रं तद्विहारवत्स्वस्थानमिति । गो. जी. जी. प्र. ५४३.

३ हंतेर्गामिक्रियात्वात्संभूयात्मप्रदेशानां बहिरुद्गमनं समुद्धातः । स सत्तविधः । त. रा. वा. १, २०. मूल-सरीरमच्छडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स । णिग्गमणं देहादो होदि समुग्घादणामं तु ॥ गो. जी. ६६८. वेदनादिवशेन निजशरीराज्जीवप्रदेशानां बहिःप्रदेशे तत्प्रायोग्यविसर्पणं समुद्धातः । गो. जी. जी. प्र. ५४३.

४ तत्र वातिकादिरोगविषादिद्रव्यसंबंधः संतापापादितवेदनाकृतो वेदनासमुद्धातः । त. रा. वा. १, २०.

५ द्वितयप्रत्ययप्रकर्षोत्पादितकोधादिकृतः कषायसमुद्धातः । त. रा. वा. १, २०.

६ एकत्वपृथक्त्वानाविधविक्रियशरीरवाक्प्रचारप्रहरणादिविक्रियाप्रयोजनो वैक्रियिकसमुद्धातः । त. रा. वा. १, २०.

वा जावुप्पज्जमाणखेतं ताव गंतूण सरीरतिगुणबाहल्लेण अण्णहा वा अंतोमुहुत्तमच्छणं' । वेदण-कसायसमुग्घादा मारणंतियसमुग्घादे किण्ण पदंति च्चि बुत्ते ण पदंति । मारणंतिय-समुग्घादो णाम बद्धपरभवियाउआणं चेव होदि । वेदण-कसायसमुग्घादा पुण बद्धाउआणम-बद्धाउआणं च हंति । मारणंतियसमुग्घादो णिच्छएण उप्पज्जमाणदिसाहिमुहो होदि, ण चेअराणमेगदिसाए गमणणियमो, दससु वि दिसासु गमणे पडिबद्धत्तादो' । मारणंतिय-समुग्घादस्स आयामो उक्कस्सेण अप्पणो उप्पज्जमाणखेतपज्जवसाणो, ण चेअराणमेस णियमो च्चि । तेजासरीरसमुग्घादो णाम तेजइयसरीरविउच्चणं । तं दुविहं णिस्सरणप्पयं अणिस्सरणप्पयं चेदि' । तत्थ जं तं णिस्सरणप्पगं तेजइयसरीरविउच्चणं तं पि दुविहं,

ऋजुगतिद्वारा अथवा विग्रहगतिद्वारा आगे जिसमें उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्रतक जाकर, शरीरसे तिगुणे विस्तारसे अथवा अन्यप्रकारसे अन्तर्मुहूर्त तक रहनेका नाम मारणान्तिक समुद्धात है ।

शंका—वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धात ये दोनों मारणान्तिकसमुद्धातमें अन्तर्भूत क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातका मारणान्तिकसमुद्धातमें अन्तर्भाव नहीं होता है, क्योंकि, जिन्होंने परभवकी आयु बांध ली है, ऐसे जीवोंके ही मारणान्तिकसमुद्धात होता है । किन्तु वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धात, बद्धायुष्क जीवोंके भी होते हैं और अवद्धायुष्क जीवोंके भी होते हैं । मारणान्तिकसमुद्धात निश्चयसे आगे जहाँ उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्रकी दिशाके अभिमुख होता है । किन्तु अन्य समुद्धातोंके इसप्रकार एक दिशामें गमनका नियम नहीं है, क्योंकि, उनका दर्शो दिशाओंमें भी गमन पाया जाता है । मारणान्तिकसमुद्धातकी लम्बाई उत्कृष्टतः अपने उत्पद्यमान क्षेत्रके अन्त तक है, किन्तु इतर समुद्धातोंका यह नियम नहीं है ।

तैजस्कशरीरके विसर्पणका नाम तैजस्कशरीरसमुद्धात है । वह दो प्रकारका होता है, निस्सरणात्मक और अनिस्सरणात्मक । उनमें जो निस्सरणात्मक तैजस्कशरीरविसर्पण है वह

१ औपक्रमिकानुपक्रमायुःक्षयाविभूतमरणातप्रयोजनो मारणान्तिकसमुद्धातः । त. रा. वा. १, २०.

२ आहारमारणान्तिकसमुद्धातावेकदिक्कौ × × सेषाः पंच समुद्धाताः षड्दिकाः । त. रा. वा. १, २०. आहारमारणंतियदुगं पि णियमेण एगदिसिगं तु । दस दिसिगधा हु सेसा पंच समुग्घादया हंति ॥ गो. जी. ६६९.

३ जीवानुग्रहोपघातप्रवणतेजःशरीरनिर्वर्तनार्थस्तेजःसमुद्धातः । त. रा. वा. १, २०.

४ तद् द्विविधं निःसरणात्मकमितरश्च । औदारिकवैकियिकाहारकदेहाभ्यंतरस्थं देहस्य दासिहेतुरनिःसरणात्मकं । यत्तेहप्रचारितस्यातिकुद्धस्य जीवप्रदेशसंपृक्तं बहिर्भिष्कम्य दाहं परित्युत्थावतिष्ठमानं निष्पावकहरितपरिपूर्णस्थाढीमभिरिव पचति पक्त्वा च निवर्तते । अथ चिरमवतिष्ठते अभिसाहाहोर्धो भवति तदेतन्निःसरणात्मकं । त. रा. वा. २, ४९.

पसत्थमप्पसत्थं चेदि । तत्थ अप्पसत्थं वारहजोयणायामं णवजोयणवित्थारं सूचिअंगुलस्स संखेज्जदिभागवाहल्लं जासवणकुसुमसंकासं भूमिपव्वदादिदहणक्खमं, पडिवक्खरहियं रोसिंधणं वामंसप्पभवं इच्छियखेत्तमेत्तविसप्पणं । जं तं पसत्थं तं पि एरिसं चव, णवरि हंसधवलं दक्खिणंससंभवं अणुकंपाणिमित्तं मारि-रोगादिपसमणक्खमं । जं तमणिस्सरणप्पयं तेजइयसरीरं तेणेत्थ अणधियारो । आहारसमुग्घादो णामपत्तिट्ठीणं महारिसीणं होदिं । तं च हत्थुस्सेधं हंसधवलं सव्वंगसुंदरं खणमेत्तेण अणेयजोयणलक्खगमणक्खमं अप्पडिहयगमणं उत्तमंगसंभवं, आणाकणिट्ठदाए असंजमबहुलदाए च लद्धप्पसरुवं । केवलिसमुग्घादो^१ णाम दंड-कवाड-पदर-लोगपूरणभेएण चउव्विहो । तत्थ दंड-समुग्घादो णाम पुव्वसरीरवाहल्लेण तत्तिगुणवाहल्लेण वा सविवक्खंभादो सादिरेयतिगुण परिट्ठएण केवलिजीवपदेसाणं दंडागारेण देसूणचोदसरउज्जुविसप्पणं । कवाडसमुग्घादो णाम

भी दो प्रकारका है, प्रशस्ततैजस और अप्रशस्ततैजस । उनमें अप्रशस्तनिस्सरणात्मक तैजस्क-शरीरसमुद्धात, वारह योजन लम्बा, नौ योजन विस्तारवाला, सूर्यंगुलके संख्यातवें भाग मोटाईवाला, जपाकुसुमके सदृश लालवर्णवाला, भूमि और पर्वतादिके जलानेमें समर्थ, प्रति-पक्षरहित, रोषरूप इन्धनवाला, बायें कंधेसे उत्पन्न होनेवाला और इच्छित क्षेत्रप्रमाण विस-र्पण करनेवाला होता है । तथा जो प्रशस्तनिस्सरणात्मक तैजस्कशरीरसमुद्धात है, वह भी विस्तार आदिमें तो अप्रशस्ततैजसके ही समान है, किन्तु इतनी विशेषता है कि वह हंसके समान धवलवर्णवाला है, दाहिने कंधेसे उत्पन्न होता है प्राणियोंकी अनुकरणाके निमित्तसे उत्पन्न होता है और मारी, रोग आदिके प्रशमन करनेमें समर्थ होता है । इनमेंसे जो अनिस्सरणात्मक तैजसशरीरसमुद्धात है, उसका यहांपर अधिकार नहीं है ।

जिनको ऋद्धि प्राप्त नहीं हुई है, ऐसे महर्षियोंके आहारकसमुद्धात होता है । वह एक हाथ ऊंचा, हंसके समान धवल वर्णवाला, सर्वांगसुन्दर, क्षणमात्रमें कई लाख योजन गमन करनेमें समर्थ, अप्रतिहत गमनवाला, उत्तमांग अर्थात् मस्तकसे उत्पन्न होनेवाला तथा जो आन्नाकी अर्थात् श्रुतज्ञानकी कनिष्ठता अर्थात् हीनताके होनेपर और असंयमकी बहुलताके होनेपर जिसने अपना स्वरूप प्राप्त किया है, ऐसा है ।

इंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरणके भेदसे केवलिसमुद्धात चार प्रकारका है । उनमें जिसकी अपने विष्कंभसे कुछ अधिक तिगुनी परिधि है ऐसे पूर्वशरीरके बाह्यरूप अथवा पूर्वशरीरसे तिगुने बाह्यरूप दंडाकारसे केवलीके जीवप्रदेशोंका कुछ कम चौदह राजु

१ सं. प. सूत्र ५९ (प्र. भाग. पृ. २९७; तृ. भाग प्रस्तावनां शंका १८, पृ. २७.)

२ अथोक्तविधिनाड्यपसावयसूक्ष्मार्थमहणप्रयोजनाऽऽहारकशरीरनिर्वच्यर्थे आहारकसमुद्धातः । त. रा. वा. १, २०. गो. जी. २३६, २३७.

३ वेदनीयस्य बहुत्वादल्पत्वाच्चायुषोऽनामोगपूर्वकमायुःसमकरणार्थं ऋष्यस्वभावत्वान् सुरादिव्यस्य फेनवेग-बुदबुदाविर्भावोपशमदेहस्थाऽऽमप्रदेशानां बहिःसमुद्धातनं केवलिसमुद्धातः । त. रा. वा. १, २०

पुञ्जिल्लबाहल्लायामेण वादवलयवदिरित्तिसञ्चखेत्तावूरणं । पदरसमुग्घादो णाम केवलि-
जीवपदेसाणं वादवलयरुद्धलोगखेत्तं मोत्तूण सच्चलोगावूरणं । लोणपूरणसमुग्घादो णाम
केवलिजीवपदेसाणं घणलोगमेत्ताणं सच्चलोगावूरणं । वुत्तं च —

वेदण-कसाय-वेउव्वियओ य मरणंतिओ समुग्घादो ।

तेजाहारो छ्ठो सत्तमओ केवलीणं तुं ॥ ११ ॥

उववादो एयविहो । सो वि उप्पण्णपट्टमसमए चैव होदि^१ । तत्थ उज्जुवगदीए
उप्पण्णणं खेत्तं बहुवं ण लब्भदि, संकोचिदासेसजीवपदेसादो । विग्गहो तिविहो, पाणि-
मुद्दा लांगलिओ गोमुत्तिओ चेदि । तत्थ पाणिमुद्दा एगविग्गहा^२ । विग्गहो वक्को कुटिलो

कैलनेका नाम दंडसमुद्धात है । दंडसमुद्धातमें वताये गये बाहल्य और आयामके द्वारा
वातवलयसे रहित संपूर्ण क्षेत्रके व्याप्त करनेका नाम कपाटसमुद्धात है । केवली भगवान् के
जीवप्रदेशोंका वातवलयसे रुके हुए लोकक्षेत्रको छोड़कर संपूर्ण लोकमें व्याप्त होनेका नाम
प्रतरसमुद्धात है । घनलोकप्रमाण केवली भगवान् के जीवप्रदेशोंका सर्व लोकके व्याप्त करनेको
केवलिसमुद्धात कहते हैं । कहा भी है—

विशेषार्थ — पूर्वशरीरके बाहल्यरूप अथवा पूर्वशरीरसे तिगुने बाहल्यरूप दंडाकारसे,
ऐसा कहनेका अभिप्राय यह है कि जब स्वप्नासनसे विराजमान केवली भगवान् समुद्धात
करते हैं उस अवस्थामें पूर्वशरीरके बाहल्यसे कुछ अधिक तिगुनी परिधिवाले दंडाकार आत्म-
प्रदेश होते हैं । तथा जब पञ्चासनस्थ केवली भगवान् समुद्धात करते हैं, तब पूर्वशरीरसे
तिगुने बाहल्यकी कुछ अधिक तिगुनी परिधिवाले दंडाकार आत्मप्रदेश निकलते हैं, इसलिए
घबलाकारने 'पुव्वशरीरबाहल्लेण तत्तिगुणबाहल्लेण वा' ऐसा विशेषण दिया है ।

वेदनासमुद्धात, कषायरुमुद्धात, वैक्रियिकसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात, तैजस-
समुद्धात, छटा आहारकसमुद्धात और सातवां केवलिसमुद्धात इसप्रकार समुद्धात सात
प्रकारका है ॥ ११ ॥

उपपाद् एकप्रकारका है और वह भी उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही होता है । उपपाद्में
अजुगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंका क्षेत्र बहुत नहीं पाया जाता है, क्योंकि, इसमें जीवके समस्त
प्रदेशोंका संकोच हो जाता है । विग्रह तीन प्रकारका है, पाणिमुक्ता, लांगलिक और गोमूत्रिक ।
इनमेंसे पाणिमुक्ता गति एक विग्रहवाली होती है । विग्रह, वक् और कुटिल, ये सब एकार्थ-

१ गो. जी. ६६७.

२ परित्यक्तपूर्वभवस्य उत्तरभवप्रथमसमये प्रवर्तनमुपपादः । गो. जी. जी. प्र. ५४३.

३ एकविग्रहा गतिः पाणिमुक्ता । त. रा. वा. २, २८.

त्ति एगद्धो^१ । लांगलिओ^२ दुविग्गहो^३ । गोमुत्तिओ तिविग्गहो^४ । तत्थ मारणंतिण्ण विणा विग्गहगदीए उप्पण्णाणं उज्जुगदीए उप्पणपढमसमयओगाहणाए समाणा चैव ओगाहणा भवदि । णवरि दोण्हमोगाहणाणं संठाणे समाणत्तणियमो णत्थि । कुदो ? आणुपुच्चि-संठाणणामकम्महि जाणिदसंठाणणमेगत्तविरोधा । विग्गहगदीए मारणंतियं कादूणुप्पण्णाणं पढमसमए असंखेज्जजोयणमेत्ता ओगाहणा होदि, पुच्चं पसरिदएग-दो-तिदंडाणं पढम-समए उवसंधाराभावादो ।

बाची नाम हैं । लांगलिका गति दो विग्रहवाली होती है । और गोमूत्रिका गति तीन विग्रह-वाली होती है । इनमेंसे मारणांतिक समुद्धातके विना विग्रहगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंके ऋजुगतिसे उत्पन्न जीवोंके प्रथम समयमें होनेवाली अवगाहनाके समान ही अवगाहना होती है । विशेषता केवल इतनी है कि दोनों अवगाहनाओंके आकारमें समानता का नियम नहीं है, क्योंकि, आनुपूर्वी नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले और संस्थान नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले संस्थानोंके एकत्वका विरोध है ।

विशेषार्थ—यहांपर जो आनुपूर्वी और संस्थान नामकर्मसे जनित आकारोंमें एकत्वका विरोध बताया है उसका अभिप्राय यह है कि विग्रहगतिमें जीवका आकार आनुपूर्वी नामकर्मके उदयसे होता है, क्योंकि, वहांपर संस्थाननामकर्मका उदय नहीं होता है^५ । किन्तु ऋजुगतिमें आनुपूर्वी नामकर्मका उदय नहीं है, क्योंकि, आनुपूर्वी नामकर्मका उदय कार्मणकाय-योगवाली विग्रहगतिमें ही होता है । ऋजुगतिमें तो कार्मणकाययोग न होकर औदारिकमिश्र या वैक्रियिकमिश्रकाययोग ही होता है और गो. कर्मकांड आदिमें इन दोनों मिश्रयोगोंमें संस्थान नामकर्मका उदय बताया गया है, आनुपूर्वीका नहीं । इससे सिद्ध है कि ऋजुगतिसे उत्पन्न होनेवाले जीवके प्रथम समयमें ही विवक्षित क्षेत्रमें उत्पत्ति हो जानेसे संस्थान नामकर्मका उदय हो जाता है । इसलिए आनुपूर्वी और संस्थान नामकर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले आकारभिन्न ही होंगे, एकसे नहीं । विग्रहगतिमें आनुपूर्वीके उदयसे जीवके पूर्व शरीरका आकार रहता है, किन्तु संस्थान-नामकर्मके उदयसे वर्तमान पर्यायका आकार हो जाता है ।

मारणांतिक समुद्धात करके विग्रहगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंके पहले समयमें असंख्यात योजनप्रमाण अवगाहना होती है, क्योंकि, पहले फैलाये गये एक, दो और तीन वृद्धोंका प्रथम समयमें संकोच नहीं होता है ।

१ विग्रहो व्याघातः कौटिल्यमित्यर्थः । स. सि. २, २७. विग्रहो व्याघातः कौटिल्यमित्यनर्थान्तरम् त. रा. वा. २, २७.

२ स प्रयोः ' लांगलिओ ' इति पाठः ।

३ द्विविग्रहा गतिर्लांगलिका । त. रा. वा. २, २८.

४ त्रिविग्रहा गतिर्गोमूत्रिका । त. रा. वा. २, २८.

५ ओषं कम्मे सरगविपत्तेयाहाकराळुदुग मिसं । उवघादपणविशुध्वदुधीणति-संठाणसंहदी णत्थि ॥
गी. क. ३१८.

एदेहि दसहि विसैसणेहि जहासंभवं विसैसिदमिच्छाइडिआदि-चोइसजीवसमासाणं खेत्तपरुवणं कस्सामो । सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि मिच्छाइड्डी केवडि खेत्ते, सव्वलोगे । कुदो ? जेण सव्वजीवरासिस्स संखेज्जदिभागणूणो सव्वो जीवपुंजो सत्थाणसत्थाणरासी वट्टदे । वेदण-कसायसमुग्घादगदजीवा वि सव्वजीवरासिस्स संखेज्जदि-भागमेत्ता । मारणंतियसमुग्घादगदजीवा वि सव्वजीवरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्ता । कुदो ? एदेसिं तिण्हं रासीणं अप्पणो जीविदस्स संखेज्जदिभागमेत्तसमुग्घादकालत्तादो । उववादरासी पुण सव्वजीवरासिस्स असंखेज्जदिभागो, एगसमयसंचयादो । तेणेदे पंच वि रासिणो अणंता, तदो सव्वलोगे भवंति । विहारवदिसत्थाणमिच्छाइड्डी केवडि खेत्ते, लोगस्स

इसप्रकार स्वस्थानके दो भेद, समुद्धातके सात भेद और एक उपपाद, इन दश विशेषणोंसे यथासंभव विशेषताको प्राप्त मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानोंके क्षेत्रका निरूपण करते हैं । स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात, और उपपादकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं ।

शंका — किस कारणसे ?

समाधान — चूंकि, सर्व जीवराशिके संख्यातवें भागसे न्यून शेष सर्व जीवसमूह स्वस्थानस्वस्थान राशिरूप रहता है । तथा वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातको प्राप्त हुए जीव भी सर्व जीवराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं । मारणान्तिकसमुद्धातको प्राप्त हुए जीव भी सर्व जीवराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं, क्योंकि, उक्त तीन राशियोंके समुद्धातका काल अपने जीवनकालके संख्यातवें भागप्रमाण है । उपपादराशि तो सर्व जीवराशिके असंख्यातवें भाग है, क्योंकि, उपपादराशिका संचय एक समयमें होता है । अतः स्वस्थानस्वस्थान आदि उक्त पांचों जीवराशियां अनन्त हैं, और इसीलिये वे सर्व लोकमें पाई जाती हैं ।

विशेषार्थ— आगे मिथ्यादृष्ट्यादि चौदह गुणस्थानोंसे तथा मार्गणास्थानोंसे जीवोंके क्षेत्र सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक और मनुष्यलोक, इन पांच प्रकारके लोकोंकी अपेक्षा बतलाया गया है । तीनसौ तेतालीस घनराजुप्रमाण सर्वलोकको सामान्यलोक कहते हैं । एकसौ छयानवे घनराजुप्रमाण या चार राजु मोटे जगप्रतरप्रमाण लोकके अधो-भागको अधोलोक कहते हैं । एकसौ सैंतालीस घनराजु या तीन राजु मोटे जगप्रतरप्रमाण लोकके ऊर्ध्वभागको ऊर्ध्वलोक कहते हैं । ऊर्ध्वलोक और अधोलोकके मध्यमें स्थित, पूर्व-पश्चिम दिशामें एक राजु चौड़े, उत्तर-दक्षिण दिशामें सात राजु लम्बे और एक लाख योजन ऊंचे क्षेत्रको तिर्यक्लोक या मध्यलोक कहते हैं । ढाई द्वीपप्रमाण विस्तृत अर्थात् पैतालीस

१ सामान्याधऊर्ध्वतिर्यग्मनुष्यलोकान् पंच संस्थाप्यालापः क्रियते । गो. जी. जी. प्र. टी. ५४३.

२ मरदि असंखेज्जदिमं तस्सासंखा य विग्गहे होति । तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु अससं ॥ गो. जी. ५४४.

असंखेज्जदिभागे । कुदो ? ण ताव तसपज्जत्तरासी विहरदि, तत्थ विहायगदिणामकम्मस्स उदयाभावा । तसपज्जत्तरासिस्स वि संखेज्जदिभागो चेव विहरमाणरासी होदि । कुदो ? ममेदं बुद्धीए पडिगहिदखेत्तं सत्थाणं णाम । तत्तो बाहिं गंतूणच्छणं विहारवदिसत्थाणं । तत्थच्छणकालो सगावासे अवट्टाणकालस्स संखेज्जदिभागो त्ति । दोण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागे । कुदो ? चत्तारि रज्जुबाहल्लं जगपदरं अधोलोणपमाणं होदि । तिण्णि रज्जुबाहल्लं जगपदरमुल्लोणपमाणं होदि । एदं दोण्णि वि लोणे तसपज्जत्तरासिस्स संखेज्जदिभागेण संखेज्जघणंगुलगुणितेण ओवट्टिदे सेठीए असंखेज्जदिभागो आगच्छदि त्ति । संखेज्ज-

लाख योजन चौड़े और एकलाख योजन ऊंचे क्षेत्रको मनुष्यलोक कहते हैं । एक लोक-सामान्यके पांच भेद करनेका अभिप्राय यह है कि विवक्षित जीवके बताये गए क्षेत्रका ठीक परिमाण समझमें आजावे । जहां जिन जीवोंका क्षेत्र सर्वलोक बताया जावे, वहां सामान्य-लोकका ग्रहण करना चाहिए । जहां 'दो लोकोंका निर्देश किया जावे वहां अधोलोक और ऊर्ध्वलोक इन दो लोकोंका ग्रहण करना, जहां तीन लोकोंका निर्देश किया जाय, वहां अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और तिर्यक्लोकका ग्रहण करना, तथा, जहां चार लोकका निर्देश किया जाय, वहां मनुष्यलोकको छोड़कर शेष चारों लोकोंका ग्रहण करना चाहिए ।

विहारवत्स्वस्थान मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । चूंकि त्रसकायिक अपर्याप्तराशि तो विहार करती नहीं हैं, क्योंकि, त्रसकायिक अपर्याप्तोंमें विहायोगति नामकर्मका उदय नहीं होता है । त्रसकायिक पर्याप्तोंके भी संख्यातवें भागप्रमाण राशि ही विहार करनेवाली होती है, क्योंकि, 'यह मेरा है' इसप्रकारकी बुद्धिसे स्वीकार किया गया क्षेत्र स्वस्थान है । और उससे बाहर जाकर रहनेका नाम विहारवत्स्वस्थान है । उस विहारवत्स्वस्थान क्षेत्रमें रहनेका काल अपने आवासमें (स्वस्थानमें) रहनेके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिये विहारवत्स्वस्थान मिथ्या दृष्टि जीव दोनों लोकोंके अर्थात् अधोलोक और ऊर्ध्वलोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसका कारण यह है कि अधोलोकका प्रमाण चार राजु मोटा जगप्रतर है और ऊर्ध्वलोकका प्रमाण तीन राजु मोटा जगप्रतर है । संख्यात घनांगुलगुणित त्रसकायिक पर्याप्तराशिके संख्यातवें भागसे इन दोनों ही लोकोंके भाजित करने पर जगश्रेणीका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है ।

विशेषार्थ--त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंका प्रमाण क्षेत्रकी अपेक्षा सूच्यंगुलके संख्यातवें भागके वर्गरूप भागहारसे भाजित जगप्रतर प्रमाण बताया गया है । इस प्रमाणवाली त्रसपर्याप्तराशिके भी संख्यातवें भाग प्रमाण ही विहारकरनेवाली राशि होती है । अब यदि एक त्रसपर्याप्तक जीवकी मध्यम अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण मानकर उससे विहारकरने वाली राशिके प्रमाणको गुणित भी किया जाय, तो भी उसका जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहना सिद्ध होता है, इसलिये यह सिद्ध होता है कि विहारकरनेवाली त्रसराशि ऊर्ध्वलोक और अधोलोकके असंख्यातवें भागमें रहती है, क्योंकि, इन दोनों लोकोंका प्रमाण जगच्छ्रेणीके वर्गसे भी बहुत अधिक है ।

घणंगुलगुणगारो कधमवगम्मदे ? वुच्चदे— सयंपहणगिंदपव्वयपरभागट्टियतसपञ्जत्तरासी पहाणो इयक्कम्मभूमिर्जावेहिंतो दीहाउवो महल्लोगाहणो य । भोगभूमीसु पुण विगल्लिंदिया गत्थि । पंचिंदिया वि तत्थ सुट्ठु थोवा, सुहकम्माहियजीवाणं बहुवाणमसंभवादो । सयंपहपव्वयपरभागट्टियजीवाणमोगाहणा महल्लेत्ति जाणावणमुत्तमेदं—

सं ो पुण बारह जोयणाणि गोम्ही भव तिकोसं तु ।

भमरो जोयणमेगं मल्लो पुण जोयणसहस्सो ॥ १२ ॥

एदाओ ओगाहणाओ घणंगुलपमाणेण कीरमाणे संखेज्जाणि घणंगुलाणि हवंति, तेण संखेज्जघणंगुलगुणगारो विहारवदिसत्थाणरासिस्स ठविदो । सयंपहणगिंदपव्वदस्स परदो जहणोगाहणा वि जीवा अत्थि त्ति चे ण, मूलग्गसमासं काऊण अट्ठं कदे वि संखेज्जघणंगुलदंसणादो । तं कथं ? तत्थ ताव भमरखेत्ताणयणविधानं भणिस्सामो ।

शंका—असकायिक पर्याप्तराशिके संख्यातर्धे भागप्रमाण विहारवत्स्वस्थान राशिकार गुणकार संख्यात घनांगुल है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान— प्रकृतमें स्वयंप्रभनगेन्द्र पर्वतके परभागमें स्थित असकायिक पर्याप्त जीवराशि प्रधान है, क्योंकि, यह राशि इतर कर्मभूमिज जीवोंकी अपेक्षा दीर्घायु और बड़ी अवगाहनावाली है । भोगभूमिमें तो विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते हैं और वहांपर पंचेन्द्रिय जीव भी स्वरूप होते हैं, क्योंकि, शुभ कर्मके उदयकी अधिकतावाले बहुत जीवोंका होना असंभव है ।

स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें स्थित जीवोंकी अवगाहना सबसे बड़ी होती है, इस बातका ज्ञान करानेके लिये यह गाथासूत्र है—

शंख नामक द्वीन्द्रिय जीव बारह योजनकी लम्बी अवगाहनावाला होता है । गोम्ही नामक त्रिन्द्रिय जीव तीन कोसकी लम्बी अवगाहनावाला होता है । भ्रमर नामक चतुरिन्द्रिय जीव एक योजनकी लम्बी अवगाहनावाला होता है, और महामत्स्य नामक पंचेन्द्रिय जीव एक हजार योजनकी लम्बी अवगाहनाव ला जाता है । १२ ॥

योजनों और कोसोंमें कही गई इन अवगाहनाओंको घनांगुलप्रमाणसे करनेपर संख्यात घनांगुल होते हैं, इसलिये विहारवत्स्वस्थानराशिका गुणकार संख्यात घनांगुल स्थापित किया है ।

शंका—स्वयंप्रभनगेन्द्र पर्वतके उस ओर जघन्य अवगाहनावाले भी जीव पाये जाते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, जघन्य अवगाहनारूप मूल अर्थात् आदि और उत्कृष्ट अवगाहनारूप अन्त, इन दोनोंको जोड़कर आधा करनेपर भी संख्यात घनांगुल देखे जाते हैं । उत्कृष्ट और जघन्य अवगाहनाओंको जोड़कर आधा करने पर संख्यात घनांगुल कैसे आते हैं, अगे इसका स्पष्टीकरण करनेके लिये उन द्वीन्द्रियादिकोंकी अवगाहनाओंमेंसे पहले भ्रमर-क्षेत्रके घनफलके निकालनेका विधान कहते हैं—

भमरखेत्तं' पुण जोयणायामं अद्धजोयणुस्सेहं जोयणद्धपरिहिविक्खंभं ठविय विक्खंभद्ध-
मुस्सेहगुणमायामेण गुणिदे उस्सेहजोयणस्स तिण्णि-अद्धभागो भवंति । ते घणंगुलाणि
कीरमाणे पण्णरहसद-छत्तीसरूवेहि घणीकदेहि तिण्णिसय-वासट्टिकोडीहि अद्धहत्तरि-
सहस्साहिय-अद्धत्तीसलक्खेहि छस्सद-छप्पण्णेहि य उस्सेधघणजोयणाणि गुणिदे पमाण-
घणंगुलाणि हवंति । गोम्हि-आयामो उस्सेधजोयणतिण्णि चउवभागो, तदद्धभागो विक्खंभो,

एक योजन लम्बे, आधे योजन ऊंचे और आधे योजनकी परिधिप्रमाण विष्कंभवाले
भ्रमरक्षेत्रको स्थापित करके, विष्कंभके आधेको उत्सेधसे गुणा करके, जो लब्ध आवे उसे
आयामसे गुणित करनेपर एक योजनके तीन भागोंमेंसे आठ भाग लब्ध आते हैं । और यही
भ्रमरक्षेत्रका घनफल है ।

उदाहरण—भ्रमरका आयाम १ योजन, उत्सेध ३ योजन, विष्कंभ ३ योजनकी परिधि-
प्रमाण । ३ योजनकी स्थूल परिधि १३ योजन । $\frac{3}{2} \div 2 = \frac{3}{4}$; $\frac{3}{4} \times 1 = \frac{3}{4}$; $\frac{3}{4} \times 1 = \frac{3}{4}$
भ्रमरक्षेत्रका योजनोंमें घनफल ।

भ्रमरक्षेत्रके योजनमें आये हुए घनफलके घनांगुल करनेपर इस उत्सेध घनयोजनमें
आये हुए घनफलको पन्द्रहसौ छत्तीसके घन तीनसौ बासठ करोड़, अड़तीस लाख, अठहत्तर
हजार, छहसौ छप्पनसे गुणित करनेपर प्रमाणघनांगुल होते हैं ।

उदाहरण—भ्रमरक्षेत्रका उत्सेध घनयोजनमें घनफल $\frac{3}{4}$; एक उत्सेध घनयोजनके
प्रमाण घनांगुल $1536^3 = 362370656$; $\frac{3}{4} \times 362370656 = 271777992$
प्रमाण घनांगुलोंमें भ्रमरक्षेत्रका घनफल ।

विशेषार्थ — एक उत्सेध योजनमें सात लाख अडसठ हजार उत्सेधसूच्यंगुल होते
हैं । इस नियमसे एक उत्सेधघनयोजनके घनांगुल करनेपर उसमें सात लाख अडसठ हजार
को तीनवार रखकर परस्पर गुणा करनेसे जितना लब्ध आयगा उतने उत्सेधघनांगुलोंके
उत्सेधयोजनसे प्रमाणयोजन पांचसौ गुणा बड़ा होता है, अतएव इन उत्सेधघनांगुलोंके
प्रमाणघनांगुल करनेके लिये उक्त अंगुलोंके प्रमाणमें पांचसौके घनका भाग देनेपर
 362370656 घनांगुल आ जाते हैं, और वह राशि १५३६ के घनप्रमाण पड़ती है ।

गोम्हीका आयाम उत्सेधयोजनके चार भागोंमेंसे तीन भाग प्रमाण है । विष्कंभ
उत्सेधके आठवें भागप्रमाण है, और बाह्य विष्कंभसे आधा है । गोम्ही क्षेत्रका घनफल

१ सयंपहाचलपरमाणट्टियखेत्ते उप्पणभमरस्स उक्कस्सोगाहणं $\times \times \times$ जोयणायामं अद्धजोयणुस्सेहं
जोयणद्धपरिहिविक्खंभं ठविय विक्खंभद्धमुस्सेहगुणमायामेण गुणिदे उस्सेहजोयणस्स तिण्णिअद्धभागो भवंति । तं
चेदं $\frac{3}{4}$ । ते पमाणघणंगुला कीरमाणे एकसयंपचत्तीसकोडीए उणणउदिलक्ख-चउवणणसहस्स चउसय-छण्णउदि-
रूवेहि गुणिदघणंगुलाणि हवंति । तं चेदं १३५८९५४४९६ । ति. प. प. १९५,

२ स प्रत्यो: ' अद्ध ' इति पाठः ।

विक्रमं भद्रं बाहल्लं । एदे तिणिण वि परोप्परं गुणिदे उस्सेधजोयणघणस्स संखेज्जदिभागो आगच्छदि । तं पण्णरहसदल्लत्तीसरूवेहि घणीकदेहि गुणिदे पमाणघणंगुलाणि हँति । बारहजोयणायाम-चदुजोयणमुहसंखखेत्तफलं—

व्यासं तावत्कृत्वा वदनदलोनं मुखार्धवर्गयुतम् ।

द्विगुणं चतुर्विभक्तं सनाभिकेऽरिमन् गणितमाहुः ॥ १३ ॥

एदेण सुत्तेण आणिय मुहहीणुस्सेहसहिदुस्सेहचदुब्भागेण गुणिय उस्सेहघणजोयणणि आणिय पुव्वुत्तगुणगारेण गुणिदे पमाणघणंगुलाणि हँति । जोयणसहस्सायाम-

लानेके लिये इन तीनोंके परस्पर गुणित करनेपर उत्सेधयोजनके घनका संख्यातर्था भाग लब्ध आता है । इसे पन्द्रहसौ छत्तीसके घनसे गुणित करनेपर गोम्हीके घनरूप क्षेत्रके प्रमाण-घनांगुल आ जाते हैं ।

उदाहरण— गोम्हीका आयाम $\frac{3}{4}$ योजन; विष्कंभ $\frac{3}{4}$ योजन; बाहल्य $\frac{3}{4}$ योजन; $\frac{3}{4} \times \frac{3}{4} = \frac{9}{16}$; $\frac{9}{16} \times \frac{3}{4} = \frac{27}{64}$ उत्सेध घनयोजनमें गोम्हीक्षेत्रका घनफल । $\frac{27}{64} \times ३६२३८७८६५६ = ११९४३९३६$ प्रमाण घनांगुलोंमें गोम्हीक्षेत्रका घनफल ।

बारह योजन आयामवाले और चार योजन मुखवाले शंखक्षेत्रका क्षेत्रफल—

व्यासको उतनी ही बार करके अर्थात् व्यासका जितना प्रमाण है उतनीवार व्यासको रक्षकर जोड़नेपर जो लब्ध आवे उसमेंसे मुखके आधे प्रमाणको घटाकर, मुखके आधे प्रमाणके वर्गको जोड़ दे । इसप्रकार जो संख्या आवे उसे द्विगुणित करके पश्चात् चारका भाग दे । इसप्रकार जो लब्ध आवे, उसे शंखका क्षेत्रफल कहते हैं ॥ १३ ॥

इस सूत्रसे लाकर उस क्षेत्रफलको मुखसे हीन उत्सेधसहित उत्सेधके चौथे भागसे गुणित करके उत्सेध घनयोजन लाकर और पूर्वोक्त गुणकारसे गुणित करनेपर घनरूप शंखक्षेत्रके प्रमाणघनांगुल हो जाते हैं ।

१ सयंपहाचलपरभागट्टियखेत्ते उप्पण्णगोहीए उक्कस्सोगाहणं × × उस्सेहजोयणस्स तिणिणचउम्भागो आयामो, तदह्मभागो विक्रमंभो, विक्रमंभद्रं बाहल्लं । एदे तिणिण वि परोप्परं गुणिय पमाणघणंगुले कदे एवके कोडीए उणकीस लक्खा तेवालसहस्सणवसयज्जत्तीसरूवेहि गुणिदघणंगुला हँति । ११९४३९३६ । ति. प. प. १९५.

२ आयामकदी मुहदलहीणा मुहवासअद्धवग्गज्जदा । विगुणा वेहेण हदा संखावत्तस्स खेत्तफलं ॥ ति. सा. ३२७.

३ सयंपहाचलपरभागट्टियखेत्ते उप्पण्णवीहंदियस्स उक्कस्सोगाहणा × × वारसजोयणायाम-चउजोयणमुह-संखखेत्तफलं व्यासं तावत्कृत्वा वदनदलोनं मुखार्धवर्गयुतं । द्विगुणं चतुर्विभक्तं सनाभिकेरिमन् गणितमाहुः ॥ एदेण सुत्तेण खेत्तफलमाणिदे तेहत्तरि उस्सेहजोयणणि भवन्ति ७३ । आयामे मुहं सोहिय पुणरवि आयामसहिदप्रहमाजियं बाहल्लं णायव्वं संखायारट्टिये खेत्ते ॥ एदेण सुत्तेण बाहल्लं आणिदे पंच जोयणपमाणं होदि ५ । पुव्वमाणिद-

पंचसदुस्सेह-तदद्विवित्थार-महामच्छखेत्तं-पिट्टिसंखेज्जाणि पमाणघणंगुलाणि होंति । एत्थ घणंगुलस्स संखेज्जदिभागं पक्खिखविय अद्वेण छिण्णे वि संखेज्जाणि पमाणघणंगुलाणि होंति चि सिद्धं । किं च विहारवदिसत्थाणे ण तिरिक्खखेत्तस्स पमाणत्तं, किंतु देवखेत्तस्सेव, पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्तमुहेण संखेज्जजोयणसहस्सं विहरमाणदेवोगाहणाए संखेज्ज-घणंगुलत्तुवलभादो । तेण संखेज्जघणंगुलोगाहणाए गुणेयव्वमिदि । असंखेज्जजोयणाणि

उदाहरण— शंखक्षेत्रका आयाम १२ योजन; मुख ४ योजन ।

$१२ \times १२ = १४४$; $१४४ - \frac{४}{२} = १४२$; $१४२ + (\frac{४}{२})^२ = १४२ + ४ = १४६$;
 $१४६ \times २ = २९२$; $२९२ \div ४ = ७३$;

$१२ - ४ = ८$; $१२ + ८ = २०$; $२० \div ४ = ५$; $७३ \times ५ = ३६५$
 उत्सेध घनयोजनोंमें शंखक्षेत्रका घनफल । $३६५ \times ३६२३८७८६५६ = १३२२७१५७०९४४०$
 प्रमाण घनांगुलोंमें शंखक्षेत्रका घनफल ।

एक हजार योजन आयाम, पांचसौ योजन उत्सेध और उत्सेधके आधे अर्थात् ढाईसौ योजन विस्तारवाले महामत्स्यका क्षेत्र भी घनफलरूप करनेपर संख्यात प्रमाणघनांगुल होता है ।

उदाहरण—महामत्स्यका आयाम १००० योजन; उत्सेध ५०० योजन; विष्कंभ २५० ।
 $१००० \times ५०० = ५०००००$; $५००००० \times २५० = १२५००००००$ योजनोंमें घनफल । $१२५०००००० \times ३६२३८७८६५६ = ४५२९८४८३२०००००००००$ प्रमाण घनांगुलोंमें महामत्स्यका घनफल ।

इसप्रकार उत्कृष्ट अवगाहनारूपसे आये हुए इन प्रमाणघनांगुलोंमें घनांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण जघन्य अवगाहनाको प्रक्षिप्त करके जो जोड़ हो उसे आधेसे छिन्न करनेपर भी संख्यात प्रमाण घनांगुल ही रहते हैं, यह सिद्ध हुआ ।

दूसरी बात यह है कि विहारवत्स्वस्थानमें तिर्यंचोंके क्षेत्रकी प्रमाणता (प्रधानता) नहीं है, किन्तु देवक्षेत्रकी ही प्रधानता है, क्योंकि, प्रतरांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण मुक्करूपसे अर्थात् विष्कंभ और उत्सेधरूपसे विहार करनेवाले देवोंकी संख्यात हजार योजन प्रमाण अवगाहनामें घनफलरूपसे संख्यात घनांगुल पाये जाते हैं, इसलिये विहारवत्स्वस्थान राशिकी संख्यात घनांगुलरूप अवगाहनासे गुणित करना चाहिये ।

तेहसग्गिभूदखेत्तफलं पंचजोयणब्रह्मलेण गुणिदे घणजोयणाणि तिणिसयपण्णट्ठी होंति ३६५ । एदं घणपमाणंगुलाणि रुदे एकलक्ख-वत्तीससहस्स-दोणिसय-एककइत्तरि कोडीओ सत्तावण्णलक्खणवसहस्सचउसयचालीसरुवेहि गुणिद-घणंगुलमेत्त होदि । तं चेदं १३२२७१५७०९४४० । ति. प. प. १९५.

१ सयंपहाचलपरभागट्टियखेत्ते उप्पण्णसम्मुच्छिममहामच्छस्स सव्वुककस्सोगाहणा $\times \times$ उस्सेहजोयणेण एककसहस्सायामं पंचसदत्रिकखंमं तदद्वउस्सेहं तं पमाणंगुले कीरमाणे चउसहस्स-पंचसय-एउणतीसकोडीओ चुलसीदि-लक्ख-तेसीदिसहस्स-दुसयकाडिरुवेहि गुणिदपमाणघणंगुलाणि भवति । तं चेदं ४५२९८४८३२०००००००००० । ति. प. प. १९६.

विहरंता वि देवा अत्थि चि चे ण, तेसिं देवाणमसंखेज्जदिभागत्तेण पढाणत्ताभावादो । तं कुदो णव्वदे ? 'तिरियलोगस्स संखेज्जदिभाए' चि वक्खाणादो । तिरियलोगस्स संखेज्जदि-
भागत्तं कथं ? तिरियलोगो णाम जोयणलक्खसत्तभागमेत्तसुत्तिअंगुलवाहल्लजगपदरमेत्तो ।
तं पुव्विल्लविहारवदिसत्थाणखेत्तेणोवट्टिदे संखेज्जरूवाणि लब्धंति । तेण तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागे चि वुत्तं । अट्ठाइज्जखेत्तादो विहारवदिसत्थाणजीवखेत्तमसंखेज्जगुणं । कुदो ?

शंका — असंख्यात योजनप्रमाण विहार करनेवाले भी देव होते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, असंख्यात योजनप्रमाण विहार करनेवाले देव सर्व
देवराशिके असंख्यातवें भागमात्र हैं, अतः उनकी यहाँपर प्रधानता नहीं है ।

शंका— यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान— मिथ्यादृष्टि विहारवत्स्वस्थान राशि 'तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण
क्षेत्रमें रहती है' इसप्रकारके व्याख्यानसे उक्त बात जानी जाती है ।

शंका— मिथ्यादृष्टि विहारवत्स्वस्थान राशिके रहनेका क्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें
भागमात्र कैसे है ?

समाधान— एक लाख योजनमें सातका भाग देनेसे जितने सूच्यंगुल लब्ध आधे
तत्प्रमाण बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण तिर्यग्लोक है । इसे पूर्वोक्त विहारवत्स्वस्थानरूप क्षेत्रसे
भाजित करनेपर संख्यात रूप लब्ध आते हैं, इसीलिये तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें
मिथ्यादृष्टि विहारवत्स्वस्थानराशि रहती है, ऐसा कहा है ।

विशेषार्थ— तिर्यग्लोक पूर्व-पश्चिम एक राजु चौड़ा, उत्तर-दक्षिण सात राजु लम्बा,
और एक लाख योजन ऊंचा है । इसे जगप्रतररूपसे करनेके लिये एक लाख योजनमें सातका
भाग देना चाहिये, क्योंकि, तिर्यग्लोक भी उत्तर-दक्षिण सात राजु तो है ही, किन्तु पूर्व-पश्चिम
जो एक राजुमात्र है उसे सात राजुप्रमाण प्रकल्पित करनेके लिये उत्सेधमें सातका भाग
द देनेसे उत्सेध एक लाख योजनका सातवां भाग रह जाता है, और पूर्व-पश्चिममें सात राजु-
प्रमाण क्षेत्र हो जाता है । इसप्रकार एक लाख योजनके सातवें भागमें जितने सूच्यंगुल होंगे
तत्प्रमाण बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण तिर्यग्लोक आ जाता है । एक योजनमें ७६८००० सूच्यंगुल
होते हैं, इसलिये एक लाख योजनके सातवें भागमें १०९७१४२८५७१^३/_८ सूच्यंगुल होंगे ।
अतएव १०९७१४२८५७१^३/_८ सूच्यंगुलप्रमाण जगप्रतर तिर्यग्लोक जानना चाहिये । प्रतरांगुलके
संख्यातवें भागका जगप्रतरमें भाग देनेसे ब्रह्मपर्यातराशिका प्रमाण आता है, और इसके
संख्यात एक भागप्रमाण विहारवत्स्वस्थानराशि है । विहारवत्स्वस्थानराशिमें एक जीवकी
मध्यम अधगाहना संख्यात घनांगुल है तो उपर्युक्त राशिका कितना क्षेत्र होगा, इसप्रकार
त्रैराशिक करनेपर विहारवत्स्वस्थानराशिका क्षेत्र संख्यात सूच्यंगुल गुणित जगप्रतरप्रमाण
आ जाता है जो तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है ।

विहारवत्स्वस्थान जीवोंका क्षेत्र द्वाँ द्वीपसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि, अद्वार

अड्डाइज्जम्मि संखेज्जपमाणघणंगुलदंसणादो ।

वेउव्वियसमुग्घादगदमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि भागे, दोण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ पुव्वं व ओवट्टणा कायव्वा । णवरि वेउव्वियसमुग्घादस्स जोदिसियरासी सत्तदंडुस्सेहो पहाणो, तेण जोइसियदेवाणं संखेज्जदिभागस्स संखेज्जघणंगुलाणि गुणमारो ठवेयव्वो । कुदो ? संखेज्जजोयणसहस्सं विउव्वमाणदेवाणमुवलंभादो । असंखेज्जजोयणाणि णिरुंमिय विउव्वंता देवा अत्थि त्ति चे ण, तेसिं देवाणमसंखेज्जदिभागत्तादो । सगोहिखेत्तमेत्तं सव्वे देवा विउव्वंति त्ति के वि भणंति, तं ण घडदे, ' तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे ' त्ति वक्खाणादो । मिच्छाइट्ठिस्स सेस-तिणिणि विसेसणाणि ण संभवंति, तकारणसंजमादिगुणाणमभावादो । मिच्छाइट्ठिस्स सत्थाणादी सत्त विसेसा सुत्तेण अणुदिट्ठा

द्वीपमें संख्यात प्रमाण घनांगुल ही देखे जाते हैं ।

वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सूर्य लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, ऊर्ध्वलोक और अधोलोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्य. ग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तथा अड्डाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहां पर अपवर्तना पहलेके समान कर लेना चाहिये। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकसमुद्धातमें सात धनुष उत्सेधरूप अवगाहनसे युक्त ज्योतिष्कदेवराशि प्रधान है, इसलिये ज्योतिष्क देवोंके संख्यातवें भागप्रमाण वैक्रियिकसमुद्धातयुक्त राशिका क्षेत्र लानेके लिये संख्यात घनांगुल गुणकार स्थापित करना चाहिये, क्योंकि, संख्यात हजार योजनप्रमाण विक्रिया करनेवाले देव पाये जाते हैं।

शंका— असंख्यात योजन क्षेत्रको रोककर विक्रिया करनेवाले भी देव पाये जाते हैं?

समाधान— नहीं, क्योंकि, असंख्यात योजनप्रमाण विक्रिया करनेवाले देव सामान्य देवोंके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं। कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि सभी देव अपने अवधिज्ञानके क्षेत्रप्रमाण विक्रिया करते हैं। परन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त हुई राशि ' तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है ' ऐसा व्याख्यान देखा जाता है।

मिथ्यादृष्टि जीवराशिके शेष तीन विशेषण अर्थात् आहारकसमुद्धात, तैजससमुद्धात और केवलिसमुद्धात संभव नहीं हैं, क्योंकि, इनके कारणभूत संयमादि गुणोंका मिथ्यादृष्टिके अभाव है।

शंका— स्वस्थानादि सात विशेषण सूत्रमें नहीं कहे गये हैं, फिर भी वे मिथ्यादृष्टि

१ णियणियओद्विखेत्तं णाणारूवाणि तह विकुव्वंता । पूरंति असुरपट्टदी भावणदेवा दस वियप्पा ॥
ति. प. ३, १८२.

अस्थि त्ति कथं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुवदेसादो । किं च 'मिच्छादिट्ठी' इदि सामण्यवयणेण एदे सत्त वि मिच्छाइट्ठिविसेसा सूचिदा चेव, एदव्वदिरित्तमिच्छाइट्ठीणम-भावादो । मेस चत्तारि वि लंगा सुत्तेण सूचिदा चेव, सेसचदुण्हं लोमाणं लोणपुधभूराण-मणुवलंभादो । तम्हा सुत्तसंबद्धमेवेदं वक्खाणमिदि ।

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोणस्स असंखेज्जदिभाणं ॥ ३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थं भणिस्सामो । जदि वि सव्वगुणट्ठाणाणं पहुडिमहस्स ववत्थावाइस्स संगहणमंभवो अस्थि, तो वि सजोगिगुणट्ठाणं णो गेण्हदि । कुदो ? पुरदो भण्णमाणवाधगसुत्तदंसणादो । सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउन्वियसमुग्घादपरिणदा केवडि खेत्ते, लोणस्स असंखेज्जदिभाणे, तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभाणे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे

जीवके पाये जाते हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — मिथ्यादृष्टि जीवके स्वस्थान आदि सात विशेषण पाये जाते हैं, यह बात आचार्यपरंपरासे आये हुए उपदेशसे जानी जाती है ।

दूसरी यह बात है कि सूत्रमें आये हुए 'मिथ्यादृष्टि' इस सामान्य वचनसे स्वस्थान आदि सात विशेषण भी मिथ्यादृष्टिके विशेष हैं, यह सूचित हो ही जाना है, क्योंकि, इनको छोड़कर मिथ्यादृष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं । इसीप्रकार घनलोकके अतिरिक्त ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक और अड़ाई द्वीपसम्बन्धी लोक, ये चार लोक भी सूत्रसे सूचित हो ही जाते हैं, क्योंकि, घनलोकसे पृथग्भूत उपर्युक्त शेष चार लोक नहीं पाये जाते हैं । इसलिये स्वस्थानस्वस्थानराशि आदिका व्याख्यान सूत्रसे संबद्ध ही है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानके जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ३ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । यद्यपि व्यवस्थावाची प्रभृति शब्दके बलसे सभी गुणस्थानोंका संग्रह संभव है, तो भी यहाँपर सयोगिकेवली गुणस्थानका ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि, आगे कहा जानेवाला इसका बाधक सूत्र देखा जाता है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवन्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातरूपसे परिणत हुए सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, ऊर्ध्वलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण

१ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनामयोगिकेवत्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८. सासायणाइ सव्वे लोयस्स असंखयम्मि भागांम्मि । पच्चस. २, २६.

अच्छंति । तं कथं ? एदेसिं तिहं गुणद्वाणाणं सोधम्मिणाणरासी पहणो । तेसिमोगाहणा सत्तहत्थुस्सेहा, अंगुलगणणाए अट्टसट्टिसदुस्सेधंगुलपमाणा, एदस्स दसभागविक्खंभा । कुदो ? जदो देव-मणुस्स-णेरइयाणमुस्सेधो दस-णव-अट्टतालपमाणेण भणिदो । पुणो वासव्वं वग्गिय विगुणिय अट्टसट्टिमदुस्सेधंगुलेहि गुणिय घणीकदपंचसदंगुलेहि ओवट्टिदे पमाणघणंगुलस्स संखेज्जदिभागो आगच्छदि । एदेण तिहं गुणद्वाणाणं सत्थाणादिरासिं ओघरासिस्स संखेज्जभागं संखेज्जदिभागं च गुणिदे तिहं गुणद्वाणाणं सत्थाणादिखेत्ताणि होति ।

क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—यह कैसे ?

समाधान—इन तीन गुणस्थानोंमें सौधर्म और पेशानकरूपसंबन्धी देवराशि प्रधान है । उनकी अवगाहना सात हाथ उत्सेधरूप है, और अंगुलकी अपेक्षा गणना करनेपर एकसौ अड़सठ अंगुलप्रमाण है । इसके दशवें भागप्रमाण उस अवगाहनाका विष्कंभ है ।

शंका—यहाँपर उत्सेधके दशवें भागप्रमाण विष्कंभ क्यों लिया है ?

समाधान—चूंकि देव, मनुष्य और नारकियोंका उत्सेध दश, नौ और आठ तालके प्रमाणसे कहा गया है, इसलिये यहाँपर उत्सेधके दशवें भागप्रमाण विष्कंभ लिया है ।

पुनः व्यासके आधेका वर्ग करके और उसे दूना करके अनन्तर एकसौ अड़सठ उत्सेधके अंगुलोंसे गुणित करके पांचसौ अंगुलोंके घनसे अपवर्तित करनेपर प्रमाण घनांगुलका संख्यातघां भाग लब्ध आता है । इससे सासादनसम्यग्दृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंकी स्वस्थानस्वस्थान आदि राशियां जो कि सासादनसम्यग्दृष्टि आदि ओघराशिके उत्तरोत्तर संख्यातघे संख्यातघे भागप्रमाण हैं, उन्हें गुणित करनेपर तीन गुणस्थानोंकी स्वस्थानस्वस्थान आदि राशियोंके क्षेत्र हो जाते हैं ।

विशेषार्थ—यहां स्वस्थानादि पदपरिणत सासादनादि तीन गुणस्थानवर्ती जीवोंके अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी उपपत्ति बतलाई गई है । प्रकृतमें सौधर्म-पेशान देवराशि प्रधान है । इन स्वर्गोंके एक देवकी अवगाहना ७ हाथ = १६८ उत्सेधअंगुल ऊंची तथा इसके दशमांश विष्कंभरूप होती है । तदनुसार एक देवकी अवगाहनाका घनफल इसप्रकार आता है—

उत्सेध १६८ अंगुल, विष्कंभ $\frac{१६८}{१०}$ अंगुल ।

$\left(\frac{१६८}{१०} \div \frac{१}{२}\right)^3 \times २ \times १६८$ एक देवकी अवगाहनाके उत्सेध घनांगुल ।

१ प्रतिपु 'पहाणा' इति पाठः ।

२ प्रतिपु 'वासव्वं' इति पाठः ।

३ आ प्रतौ 'संखेज्जभागमसंखेज्जदिभागं च' इति पाठः ।

णवरि वेदण-कसायखेत्ताणि णवहि गुणेयव्वाणि, सरीरतिगुणविकखंभादो । विहार-वेउच्चियपदानं संखेज्जाणि घणंगुलाणि । अधवा वेदणादिणा सरीरतिगुणसमुग्घादं करेता सुट्टु थोवा त्ति मज्झिमगुणगारो णवद्धरूपपमाणो होदि त्ति । एदेहि लोमे भागे हिदे लद्धं विरलेदूण एकेकस्स रूवस्स लोमं समखंडं कादूण दिण्णे एगभागो एदेहि रुद्धखेत्तं होदि । उद्धलोगपमाणं तिण्णि रज्जुवाहल्लं जगपदरं । एत्थ वि ओवट्टणा पुवं व कादव्वा । अधो-लोगपमाणं चत्तारि रज्जुवाहल्लं जगपदरं । तथा चैव ओवट्टणा । तिरियलोगपमाणं जोयणलक्ख-सत्तभागवाहल्लं जगपदरं । एत्थ वि ओवट्टणा पुवं व कायव्वा । एत्थ तिरियलोगपमाणे आणिज्जमाणे विकखंभायामेहि एगरज्जुपमाणमेव तिण्हं लोमाणम-

$$\text{इसके प्रमाणांगुल हुए } \frac{१६८}{२०} \times २ \times १६८ = \frac{९४८३२६४}{५००} = \frac{९२६१}{१९५३१२५}$$

यह राशि प्रमाणघनांगुलके संख्यातवें भाग हुई । इसे सौधर्म ईशान स्वर्गोंकी सासा-दनादि तीन गुणस्थानवर्ती राशियोंसे गुणा करनेपर तीनों गुणस्थानोंके स्वस्थानादि पदोंके क्षेत्रोंका प्रमाण आता है, जो तीनों लोकोंके असंख्यातवें भाग तथा अढ़ाई द्वीपसे नसंख्यात-गुणा होता है ।

इतनी विशेषता है कि वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातका क्षेत्र लानेके लिये मूल अध-गाहनाको नौसे गुणित करना चाहिये, क्योंकि, वेदना और कषाय समुद्धातमें उत्कृष्टरूपसे शरीरसे तिगुना विस्तार पाया जाता है । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्धातका क्षेत्र लानेके लिये संख्यात घनांगुल गुणकार होते हैं । अथवा, वेदनासमुद्धात आदिके द्वारा शरीरसे तिगुने समुद्धातको करनेवाले जीव स्वरूप हैं, इसलिये मध्यम गुणकार नौके आधेरूप अर्थात् साढ़े चार होता है । इन उपर्युक्त गुणकारोंसे लोकके भाजित करनेपर जो लब्ध आवे उसे विरलित करके और उस विरलित राशिके प्रत्येक एकके प्रति लोकको समान खंड करके देयरूपसे दे देनेपर प्रत्येक विरलनके प्रति जो एक भाग प्राप्त होता है उतना इन गुणकारोंसे रुद्ध क्षेत्र होता है । तीन राजुवाहल्यसे युक्त जगप्रतरप्रमाण ऊर्ध्वलोक है । यहाँपर भी अप-वर्तना पहलेके समान करना चाहिये । चार राजु मोटा और जगप्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा अधो-लोक है । यहाँपर भी पूर्वके समान अपवर्तना करना चाहिये । एक लाख योजनमें सातका भाग देनेसे जितना लब्ध आवे उतना मोटा और जगप्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा तिर्यग्लोक है । यहाँपर भी अपवर्तना पहलेके समान करना चाहिये । यहाँ तिर्यग्लोकका प्रमाण लानेपर विष्कंभ और आयामसे एक राजुप्रमाण होते हुए भी घनलोक, ऊर्ध्वलोक और

१ अ-क-प्रश्नोः 'तत्था' आ प्रतौ 'तत्थ' इति पाठः ।

संखेज्जदिभागे तिरियलोगो होदि ति के वि आइरिया भणंति, तं ण घडदे, पुव्वब्भुव-
गमेण सह विरोधा । को सो पुव्वब्भुवगमो ? चत्तारि-तिण्णि-रज्जुबाहल्लजगपदरपमाणा
अध-उड्डुलोगा, सत्तरज्जुबाहल्लजगपदरपमाणो सव्वलोगो ति । माणुसलोगपमाणं
पणदालीसजोयणसदसहस्सविकखंभं जोयणसदसहस्सुस्सेधं । पुणो विकखंभुस्सेधे अंगु-
लाणि करिय—

व्यासं षोडशगुणितं षोडशसहितं त्रिरूपरूपैर्मत्तम् ।

व्यासं त्रिगुणितसहितं सूक्ष्मादपि तद्भवेत्सूक्ष्मम् ॥ १४ ॥

अधोलोक, इन तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तिर्यग्लोक है, ऐसा कितने ही
आचार्य कहते हैं, परंतु उनका इसप्रकारका कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, इस कथनका
पूर्वमें स्वीकार किये गये कथनके साथ विरोध आता है ।

शंका— वह पहले स्वीकार किया गया कथन कौनसा है ?

समाधान—चार राजु मोटा और जगप्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा अधोलोक है । तीन
राजु मोटा और जगप्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा ऊर्ध्वलोक है । सात राजु मोटा और जगप्रतर-
प्रमाण लंबा चौड़ा सर्वलोक है, यही वह पूर्व स्वीकार किया गया कथन है ।

पैंतालीस लाख योजन विष्कंभरूप और एक लाख योजन ऊंचा मानुषलोक है । पुनः
पूर्वोक्त गुणकाररूप क्षेत्रसंबन्धी विष्कंभ और उत्सेधके अंगुल करके—

व्यासको सोलहसे गुणा करे, पुनः सोलह जोड़े, पुनः तीन एक और एक अर्थात् एकसौ
तेरहका भाग देवे और व्यासका तिगुना जोड़ देवे, तो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म परिधिका प्रमाण आ
जाता है ॥ १४ ॥

विशेषार्थ—यहांपर मंडलाकार क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण लानेकी प्रक्रिया बतलाई गई
है । स्थूल मानसे तो परिधिका विस्तार व्याससे तिगुना ले लिया जाता है, यथा-वासो
तिगुणो परिही (त्रि. सा. १७) इससे भी सूक्ष्मप्रमाण दशका वर्गमूल बतलाया गया है ।
यथा-विकखंभवग्गद्वगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होदि (त्रि. सा २६) । किन्तु प्रस्तुत गाथामें इस
सूक्ष्मप्रमाणसे भी सूक्ष्मतर प्रमाण निकालनेकी प्रक्रिया बतलाई गई है, जो इसप्रकार है—

उदाहरण—१ राजु व्यासके वृत्तक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण निम्न प्रकारसे होगा—

$$\frac{१ \times १६ + १६}{११३} + \frac{१ \times ३}{१} = \frac{३७१}{११३} = ३ \frac{३२}{११३} \text{ राजु ।}$$

उसीप्रकार ७ राजु वृत्तक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण इसप्रकार होगा—

$$\frac{७ \times १६ + १६}{११३} + \frac{७ \times ३}{१} = \frac{२५०१}{११३} = २२ \frac{१५}{११३} \text{ राजु ।}$$

१ तसणालीबहुमज्जे चित्ताय खिदीय उवरिमे भागे । अइवट्ठो मणुवजगो जोयणपणदाललक्खविंससमो ।
ति. प. ४, ६.

एदेण सुत्तेण परिट्ठयं कादूण विक्खंभचउडभागेण गुणिदे जादाणि पदरंगुलाणि । पुणरवि उस्सेधेण गुणिदे संखेज्जाणि घणंगुलाणि जादाणि । पुवं व ओवट्टणा एत्थ कायव्वा । मारणंतिय-उववाद्गद-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमेवं चेव वत्तव्वं । णवरि ओघरासिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडेदूणेगभागो उववादं करेदि । तस्स वि असंखेज्जा भागा विग्गह्गदीए उववादं करेति त्ति ओघरासिस्स दो आवलियाए असंखेज्जदि-भागा भागहारं ठवेदव्वा । पुणो रूवूणावलियाए असंखेज्जदिभागो उवरि गुणगारो ठवेदव्वो । सेटीए संखेज्जदिभागायामविदियदंडट्ठियजीवे इच्छिय अवरो आवलियाए असं-खेज्जदिभागो भागहारो ठवेयव्वो । उवरि घणंगुलस्स संखेज्जदिभागमवणिय पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागं संखेज्जपदरंगुलाणि च गुणगारं ठविय किंचूणदिवड्डुरज्जूहि गुणिय ओवट्टे-यव्वं । मारणंतियस्स एवं चेव वत्तव्वं । णवरि अप्पणो रासिस्स असंखेज्जदिभागो मार-णंतियं करेदि । मारणंतियकालादो गुणकालस्स संखेज्जगुणत्तादो मारणंतियजीवा सगसव्व-जीवेहिंतो संखेज्जगुणहीणा किण्ण होंति ? ण, मरंतदेवजीवेहिंतो तम्मिह चेव भवे मिच्छत्तं

इस सूत्रके नियमानुसार परिधि करके व्यासके चौथे भागसे गुणित करनेपर प्रतरांगुल हो जाते हैं । पुनः इन प्रतरांगुलोंको उत्सेधसे गुणित करनेपर संख्यात घनांगुल हो जाते हैं । यहांपर भी पहलेके समान अपवर्तना करना चाहिये । अर्थात् इन घनांगुलोंके प्रमाण-घनांगुल करनेके लिये पांचसौके घनका भाग देना चाहिये ।

मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद्गत सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि-योंका इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि ओघ सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि राशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे खंडित करके जो एक भाग लब्ध आवे उतनी राशि उपपाद् करती है । तथा इस उपपाद्दराशिके असंख्यात बहुभाग प्रमाण जीव विग्रहगतिसे उपपाद् करते हैं, इसलिये दो वार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण ओघ-राशिका भागहार स्थापित करना चाहिये । तथा एक कम आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण ऊपर गुणकार स्थापित करना चाहिये । जगश्रेणीके संख्यातवें भाग लंबे दूसरे दंडमें स्थित जीवोंकी अपेक्षा फिर भी आवलीका असंख्यातवां भाग भागहार स्थापित करे और ऊपर घनांगुलके संख्यातवें भागको निकालकर उसके स्थानमें प्रतरांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण और संख्यात प्रतरांगुलप्रमाण गुणकारको स्थापित करके, कुछ कम डेढ़ राजुसे गुणित करके अपवर्तित करना चाहिये, क्योंकि, मध्यलोकसे सौधर्मकल्प डेढ़ राजु ऊंचा है । मारणान्तिक-समुद्धातका भी इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अपने अपने गुण-स्थानसंबन्धी राशिके असंख्यातवें भागप्रमाण राशि मारणान्तिकसमुद्धात करती है ।

शंका— मारणान्तिकसमुद्धातके कालसे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा है, इसलिये मारणान्तिकजीव अपने अपने गुणस्थानके सर्व जीवोंसे संख्यातगुणे हीन क्यों नहीं होते हैं ?

पडिवज्जमाणजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो, उवसमसम्मत्तद्वावसेसे आउए उवसमसम्मत्तगुणं पडिवज्जंताण बहुवाणमभावादो, ततो तस्स संखेज्जगुणणियमाभावादो च । एत्थ उव-
रिमरासिस्स गुणगारो पुव्वुत्तो चेव होदि, देवरासिस्स पहाणत्तादो । उववादे पुण तिरिक्ख-
रासी पहाणो । णवरि असंजदसम्माइड्ढि-उववादे देवा पहाणा, मारणंतिए तिरिक्खा पहाणा ।
सम्मामिच्छाइड्ढिस्स मारणंतिय-उववादा णत्थि, तग्गुणस्स तदुहयविरोहित्तादो ।

एवं संजदासंजदाणं । णवरि उववादे णत्थि, अपज्जत्तकाले संजमासंजमगुणस्स
अभावादो । संजदासंजदाणमोगाहणगुणगारो घणंगुलं । मारणंतिए पदरंगुलं दादव्वं ।
वेगुव्वियपदेण सगरासिस्स असंखेज्जदिभागो आवलियाए असंखेज्जदिभागपडिभागेण ।
संजदासंजदाणं कथं वेउव्वियसमुग्घादस्स संभवो ? ण, ओरालियसरीरस्स विउव्वणप्पयस्स
विण्हुकुमारादिसु दंसणादो । संजदासंजदेसु वि मारणंतियरासी ओवरासिस्स असंखेज्जदि-

समाधान—नहीं, क्योंकि, मरण करनेवाले देवगतिसंबन्धी जीवोंसे उसी भवमें
मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणे होते हैं । अथवा, उपशमसम्यक्त्वके काल-
प्रमाण आयुके अवशिष्ट रहनेपर उपशमसम्यक्त्व गुणको प्राप्त होनेवाले बहुत जीव नहीं पाये
जाते हैं । और मारणान्तिकसमुद्घातके कालसे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा होता है, ऐसा
कोई नियम नहीं है ।

यहांपर उपरिम राशिका गुणकार पूर्वोक्त ही है, क्योंकि, यहां देवराशिकी
प्रधानता है । उपपादमें तो तिर्यंचराशि प्रधान है । इतनी विशेषता है कि असंयतसम्य-
वृष्टि गुणस्थानसंबन्धी उपपादमें देव प्रधान हैं । तथा असंयतगुणस्थानसंबन्धी मारणान्तिक
समुद्घातमें तिर्यंच प्रधान हैं । सम्यग्मिथ्यावृष्टि गुणस्थानमें मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद
नहीं होते हैं, क्योंकि, इस गुणस्थानका इन दोनों प्रकारकी अवस्थाओंके साथ विरोध है ।

इसीप्रकार संयतासंयतोंका क्षेत्र जानना चाहिये । इतना विशेष है कि संयतासंयतोंके
उपपाद नहीं होता है, क्योंकि, अपर्याप्त कालमें संयतासंयत गुणस्थान नहीं पाया जाता
है । संयतासंयतोंकी अवगाहनाका गुणकार घनांगुल है । मारणान्तिकसमुद्घातमें प्रतरांगुलरूप
गुणकार देना चाहिये । वैक्रियिकपदसे आवलीके असंख्यातवै भागरूप प्रतिभागके द्वारा
अपनी राशिका असंख्यातवां भाग लेना चाहिये ।

शंका—संयतासंयतोंके वैक्रियिकसमुद्घात कैसे संभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विण्हुकुमार आदिमें विक्रियात्मक औदारिकशरीर देखा

१ आह चेदेकः जीवस्थाने योगभंगे सप्तविधकाययोगस्वामिप्ररूपणायार्मादारिककाययोगः औदारिकमि-
श्रकाययोगश्च तिर्यङ्मनुष्याणां, वैक्रियिककाययोगो वैक्रियिकमिश्रकाययोगश्च देवनारकाणामुक्तः, इह तिर्यङ्मनुष्याणा-
मपीत्युच्यते, तदिदमार्शविरुद्धं, इत्यत्रोच्यते— न, अन्यत्रोपदेशात् । व्याख्याप्रकृतिदंडकेषु शरीरभंगे वायोरौदारिकवै-
क्रियिकतैजसकार्मणानि चत्वारि शरीराण्युक्तानि, मनुष्याणां च । एवमप्यार्षयोस्तयोर्विरोधः ? न विरोधः आभिप्रायकत्वात् ।
जीवस्थाने सर्वदेवनारकाणां सर्वकालवैक्रियिकदर्शनात् तद्योगविधिरिवाभिप्रायः । नैवं तिर्यङ्मनुष्याणां लब्धिवप्रसंय
वैक्रियिकं सर्वेषां सर्वकालमस्ति कादाचित्कत्वाद् व्याख्याप्रकृतिदंडकेष्वस्तित्वमात्रमभिप्रेत्योक्तं । त. रा. वा. २, ४९.

भागो । कारणं पुत्रं परूविदं ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति जहणिया ओगाहणा आहुडुरयणीओ, उक्कस्सिया पंचसद-पणवीसुत्तरधणूणि । एदाओ दो वि ओगाहणाओ भरह-इरावएसु चेव होंति, ण विदेहेसु, तत्थ पंचधणुस्सदुस्सेधणियमा । ततो थोवूणुस्सेधो वा विदेहसंजदरासी जदो सव्वुक्कस्सो होदि, सो पधाणो, पंचधणुस्सदुस्सेहाविणाभावित्तादो । एत्थ अंगुलाणि कदे उस्सेहणवमभागो विक्खंभो त्ति कट्टु परिट्टयमदं करिय विक्खंभद्वेण गुणिय उस्सेहेण गुणिदे संखेज्जाणि घणंगुलाणि जादाणि । एदेहि संखेज्जघणंगुलेहि अप्पप्पणो रासिं गुणिदे इच्छिदखेत्तं होदि । णवरि आहारसरीरस्स उस्सेधो एया रयणी, उस्सेहदसमभागो तस्म विक्खंभो, दिव्वत्तादो । विहारे सत्थाण-समाणोगाहणमुहमच्छिण्णपउमणालसुत्तसंतानं व मूलाहारसरीराणमंतरे जीवपदेसाणमवट्टाणादो । ण च सरीरादो-गदजीवपदेसाणं पुणो तत्थ पवेसाभावो, समुग्घादगदकेवलिजीव-

जाता है ।

संयतासंयतोंमें भी मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त जीवराशि ओघसंयतासंयत राशिके असेख्यातवै भागप्रमाण होती है । इसके कारणका प्ररूपण पहले कर आये हैं । प्रमत्त-संयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक जीवोंकी जघन्य अवगाहना साढ़े तीन रत्तिप्रमाण है और उन्कृष्ट अवगाहना पांचसौ पञ्चवीस धनुष है । ये दोनों ही अवगाहनाएं भरत और ऐरावत क्षेत्रमें ही होती हैं, विदेहमें नहीं, क्योंकि, विदेहमें पांचसौ धनुषके उत्सेधका नियम है । अतः पांचसौ पञ्चवीस धनुषसे कुछ कम उत्सेधवाली विदेहक्षेत्रस्थ संयतराशि चूंकि सबसे अधिक होती है, इसलिये यहाँपर वह राशि प्रधान है, क्योंकि, विदेहस्थ संयतराशिका पांचसौ धनुषकी ऊंचाईके साथ अविनाभावसंबन्ध पाया जाता है । यहाँपर अंगुलोंमें घनफल लानेके लिये मनुष्योंके उत्सेधका नौवां भाग विष्कंभ होता है, ऐसा समझकर विष्कंभकी परिधिको आधा करके और विष्कंभके आधेसे गुणित करके उत्सेधसे गुणित करनेपर संख्यात घनांगुल हो जाते हैं । इन संख्यात घनांगुलोंसे अपनी अपनी राशिके गुणित करनेपर इच्छित गुणस्थानसंबन्धी क्षेत्र होता है । इतनी विशेषता है कि आहारकशरीरका उत्सेध एक रत्तिप्रमाण है । तथा उत्सेधके दशवें भागप्रमाण उसका विष्कंभ है, क्योंकि, यह शरीर दिव्यस्वरूप है । विहारमें इस शरीरका मुख अर्थात् विष्कंभ और उत्सेध स्वस्थानस्वस्थानके समान अवगाहनाप्रमाण है, क्योंकि, मूल और आहारक शरीरके अन्तरालमें पञ्चनालके अच्छिन्न सूत्रसंतानके समान जीवप्रदेशोंका अवस्थान पाया जाता है । शरीरसे निकले हुए जीवप्रदेशोंका फिरसे शरीरमें प्रवेश नहीं होता है, सो भी

१ मध्यांगुलीकूर्परयोर्मध्ये प्राप्ताणिकः करः । बद्धमुष्टिकरो रत्तिरत्तिः सकनिष्ठिका । इलायु. कांष.

२ आहुडुहत्थपहुदी पणुवीसव्वहियपणसयधणूणि ॥ ति. प. १, २२.

३ पंचसयचावतुंगा × × ति. प. ४, ५८.

४ प्रतिवृ 'जदा' इति पाठः ।

५ प्रतिवृ 'अंगुलकद' इति पाठः ।

पदेसेहि वियहियारादो । एदाणि खेत्ताणि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जादिभागो त्ति पमत्तादओ चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जादिभागे अच्छंति, माणुसखेत्तस्स संखेज्जादिभागे । मारणंतियस्स सत्तरज्जूहि संखेज्जपदरंगुलगुणिदइच्छिदसंजदरासी गुणेदब्बो । तेण मारणंतियसमुग्घादगद-संजदा माणुसलोगादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छंति । एदं सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-

बात नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर समुद्रातगत केवलीके जीवप्रदेशोंके साथ व्यभिचार आ जाता है । ये सब क्षेत्र सामान्य आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, इसलिये प्रमत्तसंयत आदि राशियां चार लोकोंके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहती हैं, तथा मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती हैं । मारणान्तिकसमुद्रातका क्षेत्र लानेके लिये जिस अभीष्ट संयतराशिका क्षेत्र लाना हो उसे संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित करके जो लब्ध आवे उसे सात राजुओंसे गुणित करना चाहिये । इस कारण मारणान्तिकसमुद्रातको प्राप्त हुए संयतजीव मानुषलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

विशेषार्थ— यहां प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानवर्ती जीवोंका मारणान्तिकसमुद्रातसम्बन्धी क्षेत्र लानेके लिए अभीष्ट राशिको संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित करके पुनः सात राजुओंसे गुणित करनेका विधान कहा है । इसका अभिप्राय यह है कि संयत जीव सौधर्मकल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उत्पन्न होते हैं, और इसीलिए वे वहांतक मारणान्तिकसमुद्रात भी कर सकते हैं । सर्वार्थसिद्धि मध्यलोकसे लगाकर कुछ कम ७ राजु ऊंची है । तथा एक संयतकी उत्कृष्ट अवगाहना भी संख्यात प्रतरांगुल प्रमाण ही होती है । अतः उत्कृष्ट मारणान्तिकसमुद्रातक्षेत्रकी अपेक्षा सात राजुओंसे संख्यात प्रतरांगुलोंके गुणित करनेका विधान किया गया है । एक संयतकी उत्कृष्ट अवगाहनाके प्रतरांगुल निम्न प्रकार आते हैं—

उत्सेध ५०० धनुष; विष्कम्भ $\frac{५००}{२}$ धनुष;

$$\text{परिधि } \frac{५००}{२} \times १६ + १६ + \frac{५००}{२} \times \frac{३}{२} = \frac{१७७६४४}{१०१७}$$

$$\text{क्षेत्रफल } \frac{१७७६४४}{१०१७} \times \left(\frac{५००}{२} \times \frac{१}{४} \right) = \frac{८८८१२०००}{३६६१२} \text{ धनुष ।}$$

$$= \frac{८८८१२०००}{३६६१२} \times \frac{९६}{१} = \frac{८५२५९५२०००}{३६६१२} \text{ प्रतरांगुल ।}$$

सर्व संयतराशिका प्रमाण ८९९९९९९७ इतना है । इसमेंसे प्रमत्तादि गुणस्थानोंकी यथायोग्य राशिके संख्यातवें भागप्रमाण राशि ही मारणान्तिकसमुद्रात करती है । अतएव उससे ऊपर निकाले गये एक अवगाहनाके प्रतरांगुलोंसे गुणित करनेपर भी संख्यात प्रतरांगुल ही होते हैं । इस प्रकार मारणान्तिकसमुद्रातको प्राप्त समस्त संयतोंका क्षेत्र संख्यात

वेदण-कसाय-वेउव्वियाहार-मारणांतियसमुग्घादाणं उच्चं । णवरि तेजासमुग्घादस्स विक्खंभा-
यामे णव-चारहजोयणपमाणे कदंमुले अण्णोणं गुणिय बाहल्लेण गुणिदे तेजासमुग्घादखेत्तं
होदि । एदं तप्पाओग्गसंखेज्जरूवेहि गुणिदे सव्वखेत्तसमासो होदि । ओवट्टणा पुच्चं व ।

अप्पमत्तसंजदा सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणत्था केवडि खेत्ते, चदुण्हं लोमाणम-
संखेज्जादिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जादिभागे । मारणांतिय-अप्पमत्ताणं पमत्तसंजदभंगो ।
अप्पमत्ते सेसपदा णत्थि । चदुण्हमुवसमा सत्थाणसत्थाण-मारणांतियपदेसु पमत्तसमा ।
चदुण्हं खवगाणं अजोगिकेवलीणं च सत्थाणसत्थाणं पमत्तसमं । खवगुवसामगाणं णत्थि
बुत्तसेसपदाणि । खवगुवसामगाणं ममेदंभावविरहिदाणं कथं सत्थाणसत्थाणपदस्स संभवो ?
ण एस दोसो, ममेदंभावसमणिदगुणेसु तहा गहणादो । एत्थ पुण अवट्टाणमेत्तगहणादो ।

प्रतरांगुल गुणित सात राजु होता है, जब कि तिर्यक्लोक एक लाख योजनके सातवें
भागप्रमाण मोटे जगप्रतरप्रमाण है । अतः उक्त मारणान्तिक समुद्धातका क्षेत्र चारों लोकोंके
असंख्यातवें भागप्रमाण होता है । तथा मनुष्यलोक ४५ लाख चौड़ा और १ लाख योजन
ही ऊंचा है । अतः संयतोंका मारणान्तिकक्षेत्र मनुष्यलोकसे असंख्यात गुणा सिद्ध होता है ।

इसप्रकार उक्त क्षेत्र स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक,
आहारक और मारणान्तिकसमुद्धातवाले जीवोंका कदा । इतनी विशेषता है कि तैजससमु-
द्धातके नौ योजनप्रमाण विष्कंभ और बारह योजनप्रमाण आयाम क्षेत्रके किये हुए अंगुलोंका
परस्पर गुणा करके सूर्यंगुलके संख्यातवें भागप्रमाण बाहल्यसे गुणित करनेपर तैजस-
समुद्धातका क्षेत्र होता है । इसे इसके योग्य संख्यातसे गुणित करनेपर तैजससमुद्धातके
सर्वक्षेत्रका जोड़ होता है । यहांपर अपवर्तना पदके समान जानना चाहिये ।

स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानरूपसे परिणत अप्रमत्तसंयत जीव कितने
क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते
हैं, और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्धातको
प्राप्त हुए अप्रमत्तसंयतोंका क्षेत्र मारणान्तिक समुद्धातको प्राप्त हुए प्रमत्तसंयतोंके
क्षेत्रके समान होता है । अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उक्त तीन स्थानोंको छोड़-
कर शेष स्थान नहीं होते हैं । उपशमश्रेणीके चारों गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव
स्वस्थानस्वस्थान और मारणान्तिकसमुद्धात, इन दोनों पदोंमें स्वस्थानस्वस्थान और मारणा-
न्तिकसमुद्धातगत प्रमत्तसंयतोंके समान होते हैं । क्षपकश्रेणीके चार गुणस्थानवर्ती क्षपक
और अयोगिकेवली जीवोंका स्वस्थानस्वस्थान प्रमत्तसंयतोंके स्वस्थानस्वस्थानके समान
होता है । क्षपक और उपशामक जीवोंके उक्त स्थानोंके अतिरिक्त शेष स्थान नहीं होते हैं ।

शुंका—यह मेरा है, इसप्रकारके भावसे रहित क्षपक और उपशामक जीवोंके
स्वस्थानस्वस्थान नामका पद कैसे संभव है ?

समाधान—यह कोई शेष नहीं, क्योंकि, जिन गुणस्थानोंमें ' यह मेरा है '

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे, असंखे-
ज्जेसु वा भागेषु, सव्वलोगे वा ॥ ४ ॥

एत्थ सजोगिकेवलिसस सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणाणं पमत्तभंगो । दंडगदो
केवली केवडि खेत्ते, चउण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । तं कथं ?
अट्टुत्तरसदपमाणंगुलाणि उस्सेधो उक्कस्सोगाहणकेवलीणं होदि । तस्स णवमभागो
विक्खंभो १२ एत्तिओ होदि । तस्स परिट्टुओ सत्ततीस अंगुलाणि पंचाणउदि-तेरससदभागा
३७^{११}/_{१३} । इमं विक्खंभचउब्भागेण गुण्णिदे मुहपदरंगुलाणि होति । एदाणि देख्ण-
चौदसरज्जुहि गुण्णिदे दंडखेत्तं होदि । एदं संखेज्जरूवगुणं तेरासियकमेण चदुहि लोगेहि

इसप्रकारका भाव पाया जाता है वहां वैसा ग्रहण किया है । परन्तु यहांपर अर्थात् क्षपक
और उपशामक गुणस्थानोंमें अवस्थानमात्रका ग्रहण किया गया है ।

सयोगिकेवली जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण
क्षेत्रमें, अथवा लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रमें, अथवा सर्वलोकमें रहते हैं ॥४॥

यहांपर सयोगिकेवलीका स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्र प्रमत्त-
संयतोंके स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्रके समान होता है । दंडसमुद्धातको
प्राप्त हुए केवली जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें
भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसंबन्धी लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका — दंडसमुद्धातको प्राप्त हुए केवलियोंका उक्त क्षेत्र कैसे संभव है ?

समाधान — उत्कृष्ट अवगाहनासे युक्त केवलियोंका उत्सेध एकसौ आठ प्रमाणांगुल
होता है, और उसका नौवा भाग अर्थात् बारह १२ प्रमाणांगुल विक्कंभ होता है । इसकी
परिधि सैंतीस अंगुल और एक अंगुलके एकसौ तेरह भागोंमेंसे पंचानवे भाग प्रमाण ३७^{११}/_{१३}
होती है । इसे विक्कंभ बारह अंगुलके चौथे भाग तीन अंगुलोंसे गुणित करनेपर मुखरूप बारह
अंगुल लंबे और बारह अंगुल चौड़े गोल क्षेत्रके प्रतरांगुल होते हैं । इन्हें कुछ कम चौदह
राजुओंसे गुणित करनेपर दंडक्षेत्रका प्रमाण आता है । यह एक केवलीके दंडक्षेत्रका
प्रमाण हुआ ।

उदाहरण—व्यास १२ अंगुल; अतएव गाथा नं. १४ के अनुसार उसकी परिधिका

$$\text{प्रमाण—} \frac{१२ \times १६ + १६}{११३} + \frac{३६}{१} = \frac{४२७६}{११३} = ३७ \frac{९५}{११३} \text{ अंगुल ।}$$

$$\text{क्षेत्रफल} = \frac{४२७६}{११३} \times \frac{१२}{४} \text{ (व्यासका चतुर्थांश)} = \frac{१२८२८}{११३} \text{ प्रतरांगुल ।}$$

$$\text{अतएव दंडसमुद्धातगत केवलीका क्षेत्रप्रमाण} = \frac{१२८२८}{११३} \times \text{देशोन } १४ \text{ राजु ।}$$

भागे हिदे तैसिं लोमाणमसंखेज्जदिभागो आगच्छदि । माणुसलोगेण भागे हिदे असंखेज्जाणि माणुसखेत्ताणि आगच्छंति । णवरि पलियंकेण दंडसमुग्घादगदकेवल्लिस्स विक्खंभो पुब्ब-विक्खंभादो तिगुणो होदि । तस्स पमाणमेदं ३६ । एदस्स परिट्ठओ तेरहुत्तरसदंगुलाणि सत्तावीस-तेरहुत्तरसदभागो ११३ $\frac{२७}{३}$ । सेसं पुब्बं व ।

कवाडगदो केवली केवडि खेत्ते, तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, (तिरियलोगस्स संखे-ज्जदिभागो,) अङ्काइजादो असंखेज्जगुणे । एत्थ कवाडगदकेवल्लिस्स खेत्ताणयणविहाणं बुच्चदे-

विशेषार्थ— यहांपर दंडसमुद्धात क्षेत्रका प्रमाण केवलीकी उत्कृष्ट अवगाहना १०८ प्रमाणांगुल लेकर बतलाया है । किन्तु इससे पूर्व ही केवलीकी उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ धनुष प्रमाण कही गई है । चूंकि उत्सेधांगुलसे प्रमाणांगुल ५०० गुणा होता है, इसलिए ५२५ धनुषके प्रमाणांगुल $\frac{५२५ \times ९६}{५००} = १०० \frac{४}{५}$ होते हैं । वर्तमान प्रकरणमें विदेहक्षेत्रकी संयतराशि प्रधान है । अतएव यदि विदेहसम्बन्धी अवगाहना ली जाय, तो वह $\frac{५०० \times ९६}{५००} = ९६$ प्रमाणांगुल ही होती है । १०८ प्रमाणांगुलके धनुष $\frac{१०८ + ५००}{९६} = ५६२ \frac{१}{२}$ होते हैं जो उक्त ५२५ धनुषके प्रमाणसे बड़ जाते हैं । इस वैषम्यका कारण विचारणीय है ।

एक साथ समुद्धात करनेवाले संख्यात केवलियोंके दंडक्षेत्रका प्रमाण लानेके लिये इसे संख्यातसे गुणित करे । इसप्रकार जो क्षेत्र उत्पन्न हो उसे त्रैराशिकके क्रमसे सामान्यलोक आदि चार लोकोंसे भाजित करनेपर उन चार लोकोंमेंसे प्रत्येक लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण दंडक्षेत्र आता है । तथा उक्त दंडक्षेत्रको मानुषलोकसे भाजित करने पर असंख्यात मानुषक्षेत्र लब्ध आते हैं । इतनी विशेषता है कि पल्यकासनसे दंडसमुद्धातको प्राप्त हुए केवलीका विष्कंभ पहले कहे हुए बारह अंगुलप्रमाण विष्कंभसे तिगुना होता है । उसका प्रमाण ३६ अंगुल है । इसकी परिधि एकसौ तेरह अंगुल और एक अंगुलके एकसौ तेरह भागोंमेंसे सत्ताईस भागप्रमाण $११३ \frac{२७}{३}$ है ।

उदाहरण—व्यास ३६; अतएव गाथा नं. १४ के अनुसार परिधिका प्रमाण—

$$\frac{३६ \times १६ + १६}{११३} + \frac{१०८}{१} = ११३ \frac{२७}{११३}$$

शेष कथन पूर्वके समान है ।

कपाटसमुद्धातको प्राप्त हुए केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईहत्तीपसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । अब यहांपर कपाटसमुद्धातको प्राप्त हुए केवलीका क्षेत्र लानेका विधान कहते हैं—

केवली पुव्वाहिमुहो वा उत्तराहिमुहो वा समुग्घादं करेतो जदि पलियंकेण समुग्घादं करेदि, तो कवाडवाहल्लं छत्तीसंगुलाणि होति। अह जइ काउस्सग्गेण कवाडं करेदि, तो वारहंगुल-वाहल्लं कवाडं होदि। तत्थ ताव पुव्वाहिमुहकेवलिस्स कवाडखेत्ताणयणं भण्णमाणे चोइसरज्जुआयामं सत्तरज्जुविकखंभं छत्तीसंगुलवाहल्लं खेत्तं ठविय मज्झे छेत्तूण एकखेत्तस्सुवरि विदियखेत्तं ठविदे वाहत्तरिअंगुलवाहल्लं जगपदरं होदि। काउस्सग्गेण द्विदकेवलिकवाडखेत्तं चउव्वीसंगुलवाहल्लं होदि। उत्तराहिमुहो होदूण पलियंकेण समुग्घादग्घादकेवलिकवाडखेत्तं छत्तीसंगुलवाहल्लं जगपदरं होदि। इयरस्स १२ वारहंगुलवाहल्लं, वेयणाए विणा तिगुणत्ताभावा। एदं खंत्तं तेरासियकमेण तिण्हं लोगाणं पमाणेण कीरमाणे तेसिं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स पुण संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणं होदि।

पदरग्घो केवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु भागेषु। लोगस्स असंखेज्जदिभागं वादवलयरुद्धखेत्तं मोत्तूण सेसबहुभागेषु अच्छदि त्ति जं वुत्तं होदि। घणलोगपमाणं तेदालीसुत्तरतिसद ३४३ घणरज्जुओ। अधोलोगपमाणं छण्णवुदिसदघणरज्जुओ

केवली जिन पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर समुद्धातको करते हुए यदि पल्यंकासनसे समुद्धातको करते हैं तो कपाटक्षेत्रका बाह्य अंगुल होता है। और यदि कायोत्सर्गसे कपाटसमुद्धात करते हैं तो बारह अंगुलप्रमाण बाह्यवाला कपाटसमुद्धात होता है। इनमेंसे पहले पूर्वाभिमुख केवलीके कपाटक्षेत्रके लानेकी विधिका कथन करनेपर चौदह राजु लंबे, सात राजु चौड़े और छत्तीस अंगुल मोटे क्षेत्रको स्थापित करके उसे चौदह राजु लंबाईमेंसे बीचमें सात राजुके ऊपर छिन्न करके एक क्षेत्रके ऊपर दूसरे क्षेत्रको स्थापित कर देनेपर बहत्तर अंगुल मोटा जगप्रतर हो जाता है। और कायोत्सर्गसे पूर्वाभिमुख स्थित हुए केवलीका कपाटक्षेत्र चौबीस अंगुल मोटा जगप्रतर होता है। उत्तराभिमुख होकर पल्यंकासनसे समुद्धातको प्राप्त हुए केवलीका कपाटक्षेत्र छत्तीस अंगुल मोटा जगप्रतरप्रमाण होता है। तथा इतरका अर्थात् उत्तराभिमुख होकर कायोत्सर्गसे समुद्धातको करनेवाले केवलीका कपाटक्षेत्र बारह अंगुल मोटा जगप्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा होता है, क्योंकि, वेदनासमुद्धातको छोड़कर जीवके प्रदेश तिगुने नहीं होते हैं। यह उपर्युक्त कपाटसमुद्धातगत केवलीका क्षेत्र त्रैराशिकक्रमसे सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके प्रमाणरूपसे करनेपर उन तीन लोकोंमेंसे प्रत्येक लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा है।

प्रतरसमुद्धातको प्राप्त हुए केवली जिन कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण वातवलयसे रुके हुए क्षेत्रको छोड़कर लोकके शेष बहुभागोंमें रहते हैं, यह इस कथनका अभिप्राय है। घनलोकका प्रमाण तानिसौ तेतालीस ३४३ घनराजु है। अधोलोकका प्रमाण एकसौ छ्यात्रवे १९६ घनराजु है।

१९६। उड्डलोगपमाणं सत्तेत्तालीससदघणरज्जुओ १४७। उड्डलोगपमाणायणे सुत्तगाहा—
मूलं मज्जेण गुणं मुहसहिदद्धमुस्सेधकदिगुणिदं ।

घणगणिदं जाणेज्जो मुदिंगसंठाणखेत्तग्धि ॥ १५ ॥

एदिस्से गाहाए अत्थो बुच्चदे— मूलं मुदिंगखेत्तस्स बुंधवित्थारं, मज्जेण मुदिंग-
मज्जपंचरज्जुहि सह, गुणं जुदं कादव्वं । मुहं मुदिंगमुहरुंधपमाणं, सहिदं मुदिंगमज्जेण
जुदं कादूण, अद्धं अद्धं करिय समीकदं, उस्सेधकदिगुणिदं उस्सेधवग्गेण गुणिदे कदे, मुदिंग-
खेत्तफलं होदि ।

मुह-तलसमासअद्धं उस्सेधगुणं गुणं च वेहेण ।

घणगणिदं^१ जाणेज्जा वेत्तासणसंठिए खेत्ते ॥ १६ ॥

एदीए गाहाए अधोलोगघणगणिदमाणेज्जो ।

संपदि लोणेपरंतद्धिदवादवलयरुद्धखेत्ताणयणविधाणं बुच्चदे— लोणस्स तले तिण्हं
वादाणं बाहल्लं पादेवकं वीससहस्सजोयणमेत्तं । तं सव्वमेगद्धं कदे सद्धिजोयणसहस्सबाहल्लं

ऊर्ध्वलोकका प्रमाण एकसौ सेंतालीस १४७ घनराजु है । अब ऊर्ध्वलोकके प्रमाणको लानेके
लिये नीचे सूत्रगाथा दी जाती है—

मूलके प्रमाणको मध्यके प्रमाणसे गुणित करके जो लब्ध आवे उसमें मुखका प्रमाण
जोड़कर आधा करो । पुनः इसे उत्सेधके वर्गसे गुणित करो । यह मृदंगाकार क्षेत्रमें घनफल
लानेका गणित जानना चाहिये ॥ १५ ॥

अब इस गाथाका अर्थ कहते हैं—मूल अर्थात् मृदंगक्षेत्रके बुंधविस्तारको मृदंगक्षेत्रके
मध्यविस्तार पांच राजुओंके साथ गुणित करके जोड़ दे । इसका तात्पर्य यह हुआ कि मुखको
अर्थात् मृदंगाकार क्षेत्रके मुखविस्तारके प्रमाणको मृदंगके मध्यविस्तार पांच राजुओंसे सहित
अर्थात् युक्त करके, आधा आधा करके समीकरण कर ले । अनन्तर उसे उत्सेधके वर्गसे
गुणित करनेपर मृदंगक्षेत्रका घनफल होता है । (देखो विशेषार्थ पृष्ठ २१)

मुखके प्रमाण और तलभागके प्रमाणको जोड़कर आधा करो । पुनः इसे उत्सेधसे
गुणित करके वेधसे गुणित करो । यह वेत्तासनके आकारवाले क्षेत्रमें घनफल लानेकी
प्रक्रिया जानना चाहिये ॥ १६ ॥

इस गाथासे अधोलोकका घनगणित ले आना चाहिये ।

अब लोकके पर्यन्त भागमें स्थित वातवलयसे रुके हुए क्षेत्रके लानेकी विधिकी
बतलाते हैं— लोकके तलभागमें तीनों वायुओंमेंसे प्रत्येक वायुका बाहल्य वीस हजार योजन

१ प्रतिगु ' गुणिदं ' इति पाठः ।

२ इत आरभ्यामेततो वातवलयप्ररूपकः प्रबन्धल्लिलोकप्ररूपतेः प्रथमाधिकारगतेन अनेन प्रकरणेन शब्दशः
समानः ।

जगपदरं होइ' । णवरि दोसु वि अंतिसु सट्टिसहस्सजोयणुस्सेहपरिहाणिखेत्तेण ऊणं एदमजोए-
दूण सट्टिसहस्सबाहल्लं जगपदरमिदि संकप्पिय तच्छेदूण पुध डुवेदव्वं ६०००० । पुणो
एगरज्जुस्सेधेण सत्तरज्जुआयामेण सट्टिजोयणसहस्सबाहल्लेण दोसु वि पासेसु ट्टिदवाद-
खेत्तं बुद्धीए पुध करिय जगपदरपमाणेणावद्धे वीससहस्साहियजोयणलक्खस्स सत्तभाग-
बाहल्लं जगपदरं होदि १२०००० ।^१ तं पुव्विल्लखेत्तस्सुवरि डुविदे चालीसजोयणसहस्सा-

प्रमाण है। उस सब बाहल्यको एकत्रित करनेपर साठ हजार योजन बाहल्यप्रमाण जगप्रतर
होता है। इतनी विशेषता है कि पूर्व और पश्चिमके दोनों ही पार्श्वभागोंमें साठ हजार योजन
ऊंचाईतक हानिरूप क्षेत्रकी अपेक्षा उपर्युक्त क्षेत्र हानिरूप है। फिर भी इस ऊन क्षेत्रकी
गणना न करके और उसे साठ हजार योजन मोटा जगप्रतरप्रमाण संकल्प कर उसे छिन्न
करके पृथक् स्थापित कर देना चाहिये।

उदाहरण—अधोलोकका तलभाग ७ राजु लम्बा और ७ राजु चौड़ा है, अतएव
उसका क्षेत्रफल जगप्रतरप्रमाण होगा। तलभागमें प्रत्येक वातवलय २०००० हजार योजन
मोटा है, इसलिये तीनों वातवलयोंकी मोटाई ६०००० योजन होती है। इसे जगप्रतरसे गुणित
कर देनेपर साठ हजार योजनोंके जितने प्रदेश होंगे उतने जगप्रतर लब्ध आते हैं। यही
तलभागके वातरुद्ध क्षेत्रका घनफल है।

पुनः एक राजु उत्सेधरूप, सात राजु आयामरूप और साठ हजार योजन बाहल्य-
रूपसे उत्तर और दक्षिणसम्बन्धी दोनों ही पार्श्वभागोंमें स्थित वातक्षेत्रको बुद्धिसे पृथक्
करके उसे जगप्रतरप्रमाणसे करनेपर एक लाख बीस हजार योजनोंके सातवें भाग बाहल्य-
प्रमाण जगप्रतर होता है।

उदाहरण—अधोलोकके तलभागसे ऊपर एक राजुप्रमाण वातवलयसे रुके हुए क्षेत्रका
घनफल—उत्तर और दक्षिणमें पूर्वसे पश्चिमतक प्रत्येक दिशामें जगश्रेणीप्रमाण लंबा; १ राजु
ऊंचा; तीनों वातवलयोंका बाहल्य ६०००० योजन; दोनों दिशाओंके वायुरुद्ध क्षेत्र १२००००
योजनोंके प्रमाणमें सातका भाग देनेपर १७१४२^६ योजन लब्ध आते हैं, और ऊंचाईमें
राजुके स्थानमें जगश्रेणीका प्रमाण हो जाता है। अतएव १७१४२^६ योजनोंके जितने
प्रदेश हों उतने जगप्रतरप्रमाण उत्तर और दक्षिणमें अधोलोकके तलभागसे एक राजु ऊंचे
क्षेत्रतक वातवलयरुद्ध क्षेत्रका घनफल होता है।

१ लोयतले वादतये बाहल्लं सट्टिजोयणसहस्सं । सट्टिमुजकोहिगुणिदं किंचूर्णं वाउल्लेत्तफलं ॥ त्रि. सा. १२७.

२ किंचूर्णरज्जुवासो जगसेदीदीहरं इवे वेही । जोयणसट्टिसहस्सं सत्तमखिदिपुञ्ज अवरे य ॥ जगपदरसत्तभागं
सट्टिसहस्सेहि जोयणेहि गुणं । विगुणिदमुमयपासे वादफलं पुञ्ज अवरे य ॥ त्रि. सा. १२८, १२९.

हिय पंचहं लकखाणं सत्तभागवाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{५४००००}{७}$ । पुणो अवरसु दोसु दिसासु एगरज्जुस्सेधेण तले सत्तरज्जुआयामेण मुहे सत्तभागाहियछरज्जुरुंदत्तेण सट्ठि-जोयणसहस्सबाहल्लेण ट्ठिद्वादवलयखेत्ते जगपदरपमाणेण कदे वीसजोयणसहस्साहिय-पंचवंचासजोयणलकखाणं तेदालीस-तिसदभागवाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{५५२००००}{३४३}$ । एदं पुट्टिवल्लखेत्तस्सुवरि पक्खिस्से एगूणवीसलकख-असीदिसहस्सजोयणाहिय-तिण्हं कोडीणं तेदालीस-तिसदभागवाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{३१९८००००}{३४३}$ । पुणो सत्तरज्जुविकखंभ-तेरह-

इस घनफलको पहले तलभागके घनफलरूपसे आये हुए क्षेत्रमें मिला देनेपर पांच लाख चालीस हजार योजनोंके सातवें भागप्रमाण बाह्यरूप जगप्रतर होता है ।

$$\text{उदाहरण—} ६०००० + \frac{१२००००}{७} = \frac{५४००००}{७} \text{ योजन मोटा जगप्रतर ।}$$

पुनः दूसरी दो अर्थात् पूर्व और पश्चिम दिशाओंमें तलभागसे एक राजु ऊंचे, तल-भागमें सात राजु लंबे, एक राजु ऊपर आकर मुखमें एक राजुके सातवें भाग अधिक छह राजु लंबे, और साठ हजार योजन बाह्यरूपसे स्थित वातवलयक्षेत्रको जगप्रतरप्रमाणसे करनेपर पचवन लाख वीस हजार योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाह्यरूप जगप्रतर होता है ।

$$\text{उदाहरण—} \frac{४९}{७} + \frac{४३}{७} = \frac{९२}{७} ; \frac{९२}{७} \div \frac{२}{१} = \frac{९२}{१४} ; \frac{९२}{१४} \times \frac{२}{१} = \frac{९२}{७} ;$$

$$\frac{९२}{७} \times ६०००० = \frac{५५२००००}{७} \text{ । इसे जगप्रतरप्रमाणसे करनेके लिए ४९ का भाग देनेपर}$$

$\frac{५५२००००}{३४३}$ योजनोंके जितने प्रदेश होंगे उतने जगप्रतर लब्ध आ जाते हैं । पूर्व और पश्चिममें तलभागसे एक राजुतक वातरुद्ध क्षेत्रका यही घनफल है ।

इसे पूर्वाक्त घनफलरूपसे आये हुए क्षेत्रमें मिला देनेपर तीन करोड़ उन्नीस लाख अस्सी हजार योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाह्यरूप जगप्रतर होता है ।

$$\text{उदाहरण—} \frac{५४००००}{७} + \frac{५५२००००}{३४३} = \frac{३१९८००००}{३४३} \text{ योजन मोटा जगप्रतर ।}$$

१ उदयमुद्गभूमिष्वेहो रज्जुसत्तमछरज्जुसेठी य । जोयणसट्ठिसहस्सं सत्तमखिदिदक्खिणुत्तरदो ॥ तस्स फलं जगपदरो सट्ठिसहस्सेहि जोयणेहि हदो । वाणउदिगुणो सगघणसंभजिदे उभयपासम्हि ॥ त्रि. सा. १३०, १३१.

२ सेठी छरज्जु चोदसजोयणमायामवासमुस्सेहे । पुव्वधरपासजुगले सत्तमदो तिरियलोगो ति ॥ तव्वादवद्ध-खेत्तं जोयणचउवीसगुणिदजगपदरं । उभयदिसासंजणिदं णादव्वं गणिदकुसलेहिं ॥ त्रि. सा. १३२, १३३.

रज्जुआयाम-सोलहवारह-सोलहवारहजोयणबाहल्लेण दोसु वि पासेसु द्विदवादखेत्ते जग-
पदरपमाणेण कदे चउसट्टिसदजोयणूण-अट्टारहसहस्सजोयणाणं तेदालीस-तिसदभागबाहल्लं
जगपदरं उप्पज्जदि १७८३६ । पुणो सत्तभागाहिय-छरज्जुमूलविकखंभेण छरज्जुउस्सेधेण
एगरज्जुमुहेण सोलह-वारहजोयणबाहल्लेण दोसु वि पासेसु द्विदवादखेत्तं जगपदरपमाणेण
कदे वादालीसजोयणसदस्स तेदालीस-तिसदभागबाहल्लं जगपदरं होदि ४२०० । पुणो एग-
पंच-एगरज्जुविकखंभेण सत्तरज्जुउस्सेधेण वारह-सोलह-वारहजोयणबाहल्लेण उवरिमदोसु

पुनः उत्तर और दक्षिणमें पूर्वसे पश्चिमतक सात राजु विष्कंभरूपसे, सातवीं पृथि-
वीके तलभागसे लोकान्ततक तेरह राजु आयामरूपसे और अधोलोककी अपेक्षा सोलह, बारह
और ऊर्ध्वलोककी अपेक्षा सोलह बारह योजन बाहल्यरूपसे दोनों ही पार्श्वभागोंमें स्थित
वातक्षेत्रको जगप्रतररूपसे करनेपर एकसौ चौसठ योजन कम अठारह हजार योजनोंके
तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाहल्यरूप जगप्रतर होता है ।

उदाहरण— $१३ \times ७ = ९१$; $९१ \times १४ = १२७४$; $१२७४ \times २ = २५४८$ । इसे
जगप्रतररूपसे करनेके लिये सातसे गुणा करे और तीनसौ तेतालीस का भाग दे, तब
 $\frac{१७८३६}{३४३}$ योजन मोटा जगप्रतर आता है । यह उत्तर और दक्षिणमें सातवीं पृथिवीसे
लेकर लोकान्ततक वातरुद्ध क्षेत्रका घनफल होता है ।

पुनः पूर्व और पश्चिम दिशामें सातवीं पृथिवीके पास एक राजुके सातवें भाग
अधिक छह राजुप्रमाण मूलमें विष्कंभरूपसे छह राजु उत्सेधरूपसे, मध्यलोकके पास एकराजु
मुखरूप से और सोलह, बारह योजनप्रमाण बाहल्यरूपसे दोनों ही पार्श्वोंमें स्थित वात-
क्षेत्रको जगप्रतरप्रमाणसे करनेपर ब्यालीससौ योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण
बाहल्यरूप जगप्रतर होता है ।

उदाहरण— $\frac{४३}{७} + \frac{७}{७} = \frac{५०}{७}$; $\frac{५०}{७} \div १ = \frac{५०}{१४}$; $\frac{५०}{१४} \times २ = \frac{५०}{७}$;
 $\frac{५०}{७} \times १४ = \frac{७००}{७}$; $\frac{७००}{७} \times ६ = \frac{४२००}{७}$; इसे जगप्रतररूपसे करनेपर ४२ का
भाग देनेसे $\frac{४२००}{३४३}$ योजनोंके जितने प्रदेश हों उतने जगप्रतर लब्ध आ जाते हैं । पूर्व और
पश्चिममें सातवीं पृथिवीसे मध्यलोकतक वायुरुद्ध क्षेत्रका यही घनफल है ।

पुनः मध्यलोकके पास एकराजु । ग्रहलोकके पास पांचराजु और लोकान्तमें एक राजु
विष्कंभरूपसे, सात राजु उत्सेधरूपसे तथा, बारह, सोलह और बारह योजनप्रमाण बाहल्य-

१ उदयं भूमिह बेही छरज्जु सत्तमछरज्जु रज्जु य । जोयण चौइस सत्तमतिरियो ति हु दक्खिणुत्तरदा ॥
तथाणिलखेत्तफलं उभये पासग्गि होइ जगपदरं । छस्सयजोयणगुणिदं पविमत्तं सत्तवग्गे ग वि. सा. १३४, १३५.

त्रि पासेसु द्विदवादखेत्तं जगपदरपमाणेण कदे अट्टासीदिसमहिय-पंचजोयणसदाणं एगूण-
वंचासभागवाहल्लं जगपदरं होदि ५८८ । उवरि रज्जुविकखंभेण सत्तरज्जुआयामेण
किंचूणजोयणवाहल्लेण द्विदवादखेत्तं जगपदरपमाणेण कदे ति-उत्तर-तिसदाणं वेसहस्स-
विसद-चालीसभागवाहल्लं जगपदरं होदि ३३३३ । एदं सव्वमेगत्थ मेलाविदे चउवीस-
कोडिसमहियसहस्सकोडीओ एगूणवीसलक्ख-तेसीदिसहस्स-चदुसद-सत्तासीदिजोयणाणं णव-
सहस्स-सत्तसय-सट्ठिरूवाहियलक्खाए अवहिदेगभागवाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$ ।

रूप से ऊर्ध्वलोकके पूर्व और पश्चिम दोनों ही पार्श्वोंमें स्थित वातक्षेत्रको जगप्रतरप्रमाणसे करने पर पांचसौ अट्टासी योजनोंके उनचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतर होता है ।

उदाहरण— $५ + १ = ६$; $६ ÷ २ = ३$; $३ × ७ = २१$; $२१ × २ = ४२$;

$४२ × १४ = ५८८$ इसे जगप्रतरप्रमाणसे करने पर ४९ का भाग देनेसे $\frac{५८८}{४९}$ योजनोंके जितने प्रदेश हों उतने जगप्रतर लब्ध आते हैं । यही ऊर्ध्वलोकके पूर्व और पश्चिम दो दिशाओंके वातरुद्ध क्षेत्रका घनफल है ।

लोकके उपरिम भागमें एक राजु विष्कंभरूपसे, सात राजु आयामरूपसे, कुछ कम एक योजन बाहल्यरूपसे स्थित वातक्षेत्रको जगप्रतरप्रमाणसे करने पर तीससौ तीन योजनोंके दो हजार दोसौ चालीसवें भागप्रमाण बाहल्यरूप जगप्रतर होता है ।

उदाहरण— $१ × ७ × \frac{३३३३}{४} ÷ \frac{५}{४} = ३३३३$ यही लोकके अप्रभागके वातरुद्धक्षेत्रका घनफल है ।

इस सर्व घनफलको एकत्रित करनेपर एक हजार चौबीस करोड़, उन्नीस लाख तेरासी हजार चारसौ सत्तासी योजनोंमें एक लाख नौ हजार सातसौ साठका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतने योजनप्रमाण बाहल्यरूप जगप्रतर होता है ।

उदाहरण— $\frac{३१९८००००}{३४४} + \frac{१७८३६}{३४४} + \frac{४२००}{३४३} + \frac{५८८}{४९} + \frac{३०३}{२२४०} = \frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$

योजन बाहल्यरूप जगप्रतर लोकके चारों ओर वातरुद्धक्षेत्रका घनफल होता है ।

१ आउडूरज्जुसेदां जोयण चौदस य वासभुजवेहो । बम्हो ति पुव्व-अवरं फलमेदं चदुगुणं सव्वं ॥ पंचा-
हुट्ठिगिरिज्जु भूतुंगप्रहं विसत्तजोयणयं । वेहो तं चउयणिदं खेत्तफलं दक्खिणुत्तरदो ॥ त्रि. सा. १३६, १३७.

२ वासुदयमुजं रज्जु इगिजोयणवीसतिसदखंडेसु । सतितिसदं सेदां फलमीसिपभावरि दंबवाऊणं ॥
त्रि. सा. १३८.

३ सत्तासीदिचदुसदसहस्सतेसीदिलक्खउणवासं । चउवीसहियं कोडिसहस्सगुणियं तु जगपदरं ॥ सट्ठी-
सत्तसएहि णवयसहस्सैगलक्खभजियं तु । सव्वं वादारुद्धं गणियं भणियं समासेण ॥ त्रि. सा. १३९-१४०.

एत्थ 'आदेसेण' ग्रहणं ओघपडिसेधफलं । गदिग्रहणमिंदियादिपडिसेधफलं । अणुवादग्रहणं सुत्तस्स अकट्टिवुत्तपरूवणफलं । णिरयगदिणिहेसो देवगदियादिपडिसेधफलो । णेरइएसु त्ति वयणं तत्थतणपुठविकाइयादिपडिसेधफलं । लोगस्स असंखेज्जदिभागे इदि वुत्ते सेसलोगाणं कधं ग्रहणं होदि ? ण, खेत्त-फोसणसुत्ताणं देसामासिगत्तादो ।

संपदि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगद-मिच्छा-इट्ठी केवडि खेत्ते, चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एदस्स अत्थपरूवणडुमेत्थोगाहणा वुत्ते । तं जहा— पढमाए पुठवीए पढमपत्थडम्हि णेरइयाण-मुस्सेधो तिणिण हत्था । तेरहमपत्थडे सत्त धणू तिणिण हत्था छ अंगुलाणि णेरइयाण-मुस्सेधो होदि ।

मुह-भूमिविसेसम्हि दु उच्छेहभजिदम्हि सा हवे वड्डी ।

वड्डी इच्छागुणिदा मुहसहिदा सा फलं होदि ॥ १७ ॥

इस सूत्रमें आदेश पदके ग्रहण करनेका फल ओघका प्रतिषेध करना है । गति पदके ग्रहण करनेका फल इन्द्रियादिका प्रतिषेध करना है । अनुवाद पदके ग्रहण करनेका फल सूत्रके अकर्तृकत्वका प्ररूपण करना है । नरकगति पदके निर्देश करनेका फल देवगति आदिका प्रतिषेध करना है । नारकियोंमें इसप्रकारके वचनके देनेका फल वहाँके क्षेत्रमें रहनेवाले पृथिवीकायिक आदिका प्रतिषेध करना है ।

शंका— लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, केवल इतना कहनेपर शेष लोकोंका ग्रहण कैसे हो सकता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, क्षेत्र और स्पर्शन अनुयोगद्वारके सूत्र देशामर्शक हैं, इसलिये 'लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं' इतने पदके कहनेसे शेष लोकोंका भी ग्रहण हो जाता है ।

अब विशेष पदोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि नारकियोंका क्षेत्र कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए मिथ्या-दृष्टि नारकी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं और अट्ठाईसप्रमाण मानुषलोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । अब इसके अर्थके प्ररूपण करनेके लिये यहाँपर नारकियोंकी अवगाहना कहते हैं । वह इसप्रकार है— पहली पृथिवीके पहले पाथड़ेमें नारकियोंका उत्सेध तीन हाथ है । तेरहवें पाथड़ेमें सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगुल नारकियोंका उत्सेध है ।

भूमिमेंसे मुखको घटाकर उत्सेधका भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह वृद्धिका प्रमाण होता है । अब जिस पटलके नारकियोंके उत्सेधका प्रमाण लाना हो उसे इच्छा मानकर उससे

१ सत्त-त्ति-उदंड-हत्थंगुलाणि कमसो हवंति घम्माए । चरिमिंदयम्मि उदओ । ति. प. २, २१७. रयणप्पमाए पुठवीए णेरइयाणं ×× सररीगाहणा ××× उक्कोसेणं सत्त धणूइ तिणिण रयणीओ छ अंगुलाइ । जीवामि. ३, २, १२.

एदीए गाहाए सेसएक्कारसपत्थडणेइयाणमुस्सेधा आणेयव्वा । तेसिं पमाणमेदं—

प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
धनुष	०	१	१	२	३	३	४	४	५	६	६	७	७
हस्त	३	१	२	२	०	२	१	३	१	०	२	०	३
अंगुल	०	८ $\frac{१}{३}$	१७	१ $\frac{१}{३}$	१०	१८ $\frac{२}{३}$	३	११ $\frac{२}{३}$	२०	४ $\frac{२}{३}$	१३	२१ $\frac{२}{३}$	६

वृद्धिको गुणित कर दो, और मुखका प्रमाण जोड़ दो । इसका जो फल होगा वही इच्छित पाथड़ेके नारकियोंका उत्सेध समझना चाहिये ॥ १७ ॥

विशेषार्थ—यद्यपि द्वितीयादि नरकोंमें प्रथमादि नरकोंके अन्तिम पटलके नारकियोंका उत्सेध मुख हो जाता है, परन्तु प्रथम नरकमें पहले पाथड़ेके ही नारकियोंका उत्सेध मुख रहेगा । अतएव उक्त गाथाके नियमानुसार पहले नरकके पहले पाथड़ेके नारकियोंका उत्सेध नहीं निकाला जा सकता है । पहले नरकमें पदका प्रमाण १२ और शेष नरकोंमें जहां जितने पाथड़े होंगे वहां उतना पदका प्रमाण रहेगा । पहले नरकमें दूसरा पाथड़ा पहला और अन्तिम पाथड़ा बारहवां गिना जायगा ।

उदाहरण—प्रथम नरकमें मुखका प्रमाण ३ हाथ और भूमिका प्रमाण ७ धनुष ३ हाथ, ६ अंगुल होता है । एक धनुषमें ४ हाथ, और १ हाथमें २४ अंगुल होते हैं । इस प्रमाणके अनुसार मुखके अंगुल $३ \times २४ = ७२$ तथा भूमिके अंगुल $७ \times ४ + ३ \times २४ + ६ = ७५०$ हुए । उक्त गाथानुसार इसकी प्रक्रिया करनेपर $७५० - ७२ = ६७८ = ५६\frac{२}{३}$ अं. = $\frac{११३}{३}$ = २हाथ $८\frac{१}{३}$ अंगुल होते हैं, यह प्रथम पृथिवीके प्रति-पटलमें वृद्धिका प्रमाण है ।

अब यदि हमें प्रथम नरकके पांचवें पटलका उत्सेधप्रमाण निकालना है तो पूर्वोक्त नियमानुसार $५६\frac{२}{३}$ अंगुलको ४ से गुणितकर प्रथम पटलके उत्सेधका प्रमाण उसमें जोड़ देना चाहिये । $\frac{११३}{३} \times ४ + ७२ = २२६ + ७२ = २९८$ अं. = १२ हा. १० अं. = ३ ध. १० अं. यही प्रथम पृथिवीके पांचवें पटलके नारकियोंके उत्सेधका प्रमाण है ।

इस उपर्युक्त गाथाके नियमानुसार पहले नरकके पहले और तेरहवें पाथड़ेके अतिरिक्त शेष ग्यारह पाथड़ेके नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये । उन अवगाहनाओंका प्रमाण यह है—(देखो मूलका नकशा) ।

१ प्रतिशु केवलमङ्का एव निहिताः न प्रस्तारादिपदानि । तानि तु सुबोधार्थमस्माभिः सर्वत्र योजितानि ।

२ रयणप्पहपुत्थीए उदओ सीमंतणामपडलाम्मि । जीवाणं हत्थतियं सेसेहुं हाणिवड्डीओ ॥ आदी अंते

सोहिय रुऊणद्धाहिदाम्मि हाणिचया । सुहसहिदे खिदिक्षद्धे गियणियपदोसु उच्छेहो ॥ हाणिचयाण पमाणं घम्माए होंति दोणिण हत्थाई । अट्टगुलाणि अंगुलमाणो दोहिं विहत्तो य ॥ एकधणुमेकहत्थो सत्तरसंगुलदलं च गिरयाम्मि । इगिदंबो तियहत्थो सत्तरसं अंगुलाणि रोरुगए ॥ दो दंडा दो हत्था मंतम्मि दिवड्ढुमंगुलं होदि । उम्मते दंडतियं दहंगुलाणि च उच्छेहो ॥ तिय दंडा दो हत्था अट्टारहं अंगुलाणि पव्वद्धं । संमंतणामईदयच्छेहो पटमपुदवीए ॥

विदियपुढविष्कारसपत्थडे गेरइयाणमुस्सेधो पण्णरह धणूणि वे हत्था बारह अंगुलाणि । सेसदसपत्थडेगेरइयाणमुस्सेधो पुच्चिल्लगाहाए आणेद्वो । तेसिं पमाणमेदं—

प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
धनुष	८	९	९	१०	११	१२	१२	१३	१४	१४	१५
हस्त	२	०	३	२	१	०	३	१	०	३	२
अंगुल	२ $\frac{३}{४}$	२ $\frac{४}{४}$	१ $\frac{८}{४}$	१ $\frac{४}{४}$	१ $\frac{०}{४}$	७ $\frac{१}{४}$	३ $\frac{३}{४}$	२ $\frac{२}{४}$	१ $\frac{९}{४}$	१ $\frac{५}{४}$	१२

दूसरी पृथिवीके ग्यारहवें पाथडेमें नारकियोंका उत्सेध पन्द्रह धनुष, दो हाथ, बारह अंगुल है। प्रथमादि शेष दश पाथडोंके नारकियोंका उत्सेध पूर्वोक्त गाथाके नियमानुसार ले आना चाहिये। उन अचगाहनाओंका प्रमाण यह है— (देखो मूलका नकशा)।

विशेषार्थ—इस दूसरी पृथिवीमें मुखका प्रमाण ७ धनुष, ३ हाथ, ६ अंगुल और भूमिका प्रमाण १५ धनुष, २ हाथ, १२ अंगुल है। तथा, प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण २ हाथ, २० $\frac{३}{४}$ अंगुल है।

चत्तारो चावाणि सत्तावीसं च अंगुलाणि पि । होदि असंमतिदियउदओ पढमाह पुढवीए ॥ चत्तारो कोदंडा तिय हत्था अंगुलाणि तेवीसं । दलिदाणि होदि उदओ विम्भंतयणाभि पडलम्मि ॥ पंच चिय कोदंडा एको हत्थो य बीस पच्चाणि । तर्दिदयम्मि उदओ पण्णत्तो पढमखोणीए ॥ छ चिय कोदंडाणि चत्तारो अंगुलाणि पच्चदं । उच्छेहो णाद्वो पडलम्मि य तसिदणामम्मि ॥ वाणासणाणि छ चिय दो हत्था तेरसंगुलाणि पि । वकंतणामपडले उच्छेहो पढमपुढवीए ॥ सत्त य सरासणाणि अंगुलया एकवीस पच्चदं । पडलम्मि य उच्छेहो होदि अवकंतणामम्मि ॥ सत्त विसिखासणाणि हत्थाई तिण्णि छ अंगुलयं । चरदिदयम्मि उदओ विकंते पढमपुढवीए ॥ ति. प. २, २१८-२३०.

१ दोच्चाए × × उकोसेणं पण्णरस धणूहं अड्डाज्जातो रयणीओ । जीवामि. ३, २, १२.

२ दो हत्थावीसंगुल एकारसमजिद दो वि पच्चाइं । एयाइं वड्डीओ सुहसहिदे होंति उच्छेहो ॥ अट्ट वि-सिहासणाणि दो हत्था अंगुलाणि चउवीसं । एकारसमजिदाइं उदवी पुण विदियवसुहाए ॥ णव दंडा नावीसंगुलाणि एकारसम्मि चउपच्चं । मजिदाओ सो भागो विदिए वसुहाय उच्छेहो ॥ णव दंडा तिय हत्थं चउरुत्तरदोसयाणि पच्चाणि । एकारसमजिदाइं उदओ मणइंदयम्मि जीवाणं ॥ दस दंडा दो हत्था चौदस पच्चाणि अट्ट भागा य । एकारसेहिं मजिदा उदओ तणादिदयम्मि विदियाए ॥ एकारस चावाणि एको हत्थो दसंगुलाणि पि । एकारसहिददससा उदओ घादिदयम्मि विदियाए ॥ बारस सरासणाणि पच्चाणि अट्टहत्तरी होंति । एकारस मजिदाणि संघादे णारयाण उच्छेहो ॥ बारस सरासणाणि तिय हत्था तिण्णि अंगुलाणि च । एकारसहियतिभाया उदओ जिन्दिदअम्मि विदियाए ॥ तेवण्णाण य हत्था तेवीसा अंगुलाणि पणमागा । एकारसेहिं मजिदा जिम्भगपडलम्मि उच्छेहो । चौदस दंडा सोलसजुत्ताणि दोसयाणि पच्चाणि । एकारसमजिदाहिं लोलयणामम्मि उच्छेहो ॥ एकोणसट्ठे हत्था पणरस अंगुलाणि णव भागा । एकारसेहिं मजिदा लोलयणामम्मि उच्छेहो ॥ पण्णरसं कोदंडा दो हत्था बारसंगुलाणि च । अतिमपडले णलोलगम्मि विदियाय उच्छेहो ॥ ति. प. २, २३१-२४२.

तदियपुढविणवमपत्थडम्हि णेरइयाणमुस्सेधो एकत्तीस धणूणि एगो हत्थो य' । सेसद्वपत्थडणेरइयाणमुस्सेधो पुव्विल्लगाहाए आणेदव्वो । णवरि एत्थ एकत्तीस धणूणि सहत्थाणि भूमी होदि । पण्णरस धणूणि वे हत्था वारह अंगुलाणि मुहं होदि । भूमीदो मुहं सोहिय उस्सेधेण णवहि भागे हिदे वड्ढी होदि । तं वड्ढिं णवसु ठाणेसु ठविय एगादि-एगुचरेहि गुणगारेहि गुणिय मुहम्मि पक्खित्ते इच्छिदउस्सेधो होदि । तस्स पमाणमेदं—

प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७	८	९
धनुष	१७	१९	२०	२२	२४	२६	२७	२९	३१
हस्त	१	०	३	२	१	०	३	२	१
अंगुल	१० $\frac{२}{३}$	९ $\frac{१}{३}$	८	६ $\frac{२}{३}$	५ $\frac{१}{३}$	४	२ $\frac{२}{३}$	१ $\frac{१}{३}$	०

चउत्थपुढविसत्तमपत्थडणेरइयाणमुस्सेधो वासट्ठी धणूणि वे हत्था य' । एदं भूमिं

तीसरी पृथिवीके नौवें पाथड़ेमें नारकियोंका उत्सेध इकतीस धनुष और एक हाथ है । शेष आठ पाथड़ोंके नारकियोंका उत्सेध पूर्व गाथाके नियमानुसार ले आना चाहिये । इतनी विशेषता है कि यहाँपर इकतीस धनुष और एक हाथ भूमि है । पन्द्रह धनुष, दो हाथ और बारह अंगुल मुख है । भूमिमेंसे मुखको घटाकर उत्सेध (पद) नौ का भाग देनेपर वृद्धिका प्रमाण आता है । (तीसरी पृथिवीमें प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण १ धनुष, २ हाथ और २२ $\frac{२}{३}$ अंगुल है ।) इस वृद्धिको नौ स्थानोंमें स्थापित करके एक आदि एकोत्तर गुणकारोंसे गुणित करके मुखमें मिला देनेपर इच्छित पाथड़ेके नारकियोंका उत्सेध आता है । उसका प्रमाण यह है— (देखो मूलका नकशा) ।

चौथी पृथिवीके सातवें पाथड़ेमें नारकियोंका उत्सेध वासठ धनुष और दो हाथ है ।

१ तच्चाए × × उक्कोसेणं एकत्तीस धणूइं एकका रयणी । जीवामि. ३, २, १२.

२ एक धणू दो हत्था बावीस अंगुलाणि दो मागा । तियमजिदं णायव्वा मेघाए हाणिवुड्ढीओ ॥ सत्तरसं चावाणि चोत्तीस अंगुलाणि दो मागा । तियमजिदा मेघाए उदओ तत्तिदयम्मि जीवाणं ॥ एककोणवसि दंडा अट्ठावीसंगुलाणि तिहिदाणि । तसिदिंदयम्मि तदियक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ॥ वीसस्स दंडसहियं सांदीए अंगुलाणि होदि तदा । तदियं चिय पुढवीए तवणिदयणारयम्मि उच्छेहो ॥ णउदिपमाणा हत्था तियविहत्ताणि वीस पव्वाणि । मेघाए तंवणिदयठिदाण जीवाण उच्छेहो ॥ सत्ताणउदी हत्था सोलस पव्वाणि तियविहत्ताणि । उदओ णिदावणामाए पडले णारया जीवा ॥ उव्वीसं चावाणि चत्तरी अंगुलाणि मेघाए । पज्जलिदणामपडले ठिदाण जीवाण उच्छेहो ॥ सत्तावीसं दंडा तिय हत्था अट्ठ अंगुलाणि च । तियमजिदाइं उदओ उज्जलिदे णारयाण णादव्वो ॥ एकोणत्तीस दंडा दो हत्था अंगुलाणि चत्तारिं । तियमजिदाइं उदओ संजलिदे तदियपुढवीए ॥ इकत्तीसं दंडाए एक्को हत्थो अ तदिय. पुढवीए । संपज्जलिदे चरिमिदयणारयाण होदि उच्छेहो ॥ ति. प. २, २४३-२५२.

३ चउत्थीए × वासट्ठी धणूइं दोण्ण रयणीओ । जीवामि. ३, २, १२.

करिय सेस-छ-पत्थडणेइयाणमुस्सेधो आणेदव्वो । तस्स पमाणमेदं—

प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७
धनुष	३५	४०	४४	४९	५३	५८	६२
हस्त	२	०	२	०	२	०	२
अंगुल	२० ^४ / _७	१७ ^३ / _७	१३ ^४ / _७	१० ^२ / _७	६ ^६ / _७	३ ^३ / _७	०

पंचमपुढविपंचमपत्थडणेइयाणमुस्सेधो पणुवीसुत्तरसदधणुणि । एदं भूमिं करिय सेसचदुण्हं पत्थडणमुस्सेधो आणेदव्वो । तेसिं पमाणमेदं—

प्रस्तार	१	२	३	४	५
धनुष	७५	८७	१००	११२	१२५
हस्त	०	२	०	२	०

इसे भूमिरूपसे स्थापित करके शेष छह पाथडोंमें नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये । उसका प्रमाण यह है— (देखो मूलका नकशा) ।

विशेषार्थ—इस पृथिवीमें मुख का प्रमाण ३१ धनुष, १ हाथ और भूमिका प्रमाण ६२ धनुष, २ हाथ है । तथा, प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण ४ धनुष, १ हाथ और २०^४/_७ अंगुल है ।

पांचवीं पृथिवीके पांचवें पाथडोंमें नारकियोंका उत्सेध एकसौ पच्चीस धनुष है । इसे भूमिरूपसे स्थापित करके शेष चार पाथडोंके नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये । उसका प्रमाण यह है— (देखो मूलका नकशा) ।

विशेषार्थ—पांचवीं पृथिवीमें मुखका प्रमाण ६२ धनुष, २ हाथ और भूमिका प्रमाण १२५ धनुष है । तथा प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण १२ धनुष और २ हाथ है ।

१ चउ दंडा इमि हत्थो पव्वाणि वीस सत्त पाडिहता । चउ भागा तुरिमाए पुढवीए हाणिवड्डीओ ॥ पणतीसं दंडाए हत्थाइं दोण्णि वीस पव्वाणि । सत्तहिदा चउभागा उदओ आरट्टिदाण जीवाणं ॥ चालीसं कोदंडा वीसम्भहिअं सयं च पव्वाणि । सत्तहिदं उच्छेहो तुरिमाए मारपडलजीवाणं । चउदालं चावाणि दो हत्था अंगुलाणि णणउद्धी । सत्तहिदो उच्छेहो तारिंदियसंठिदाण जीवाणं ॥ एक्कोणवण्ण दंडा नाहत्तरि अंगुला य सत्तहिदा । चरिंदियम्मि तुरिमक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ॥ तेवण्णा चावाणि दो हत्था अट्टताल पव्वाणि । सत्तहिदाणि उदओ दममिंदिय-संठिदाण जीवाणं ॥ अट्टावण्णा दंडा सत्तहिदा अंगुला य चउवीसं । चादिंदियम्मि तुरिमक्खोणीए णारयाण उच्छेहा ॥ वासट्ठी कोदंडा हत्थाइं दोण्णि तुरिमपुढवीए । चरिमिंदियम्मि खलखलणामाए णारयाण उच्छेहो ॥ ति. प. २, २५३-२६०

२ पंचमीए × पणवीसं धणुसयं । जीवामि. ३. २, १२.

३ भारत सरासणाणि दो हत्था पंचमीय पुढवीए । खयवड्डीए पमाणं णिदिठं वीयराएदि ॥ पणहत्तरिपरिमाणं कोदंडा पंचमीए पुढवीए । पदमिंदियम्मि उदओ तमणामे संठिदाण जीवाणं ॥ सत्तासीदी दंडा दो हत्था पंचमीए कोणीए । पडलम्मि य भमणामे णारयजीवाण उच्छेहो ॥ एक्कं कोदंडाय सप्तणामे णारयाण उच्छेहो । चावाणि

छट्टीए पुठवीए तदियपत्थडणेइयाणमुस्सेधो अड्डाइज्जसदधणूणि' । एदं भूमिं करिय सेसदोणं पत्थडाणमुस्सेधो आणेदच्चो । तस्स पमाणमेदं--

प्रस्तार	१	२	३
धनुष	१६६	२०८	२५०
हस्त	२	१	०
अंगुल	१६	८	०

सत्तमाए पुठवीए णेरइयाणमुस्सेधो पंचसदधणूणि' ।
तेसिं पमाणमेदं--

प्रस्तार	१
धनुष	५००

एत्थ णेरइएसु उस्सेधअड्डमभागो विक्खंभो त्ति कड्डु परिट्टयमद्वं करिय विक्खंभद्वेण गुणियुस्सेहेण गुणिदे णेरइयाणमोगाहणा होदि । ओगाहणं पडि सत्तमपुठवी

छठवीं पृथिवीके तीसरे पाथड़ेमें नारकियोंका उत्सेध ढाईसौ धनुष है । इसे भूमि-रूपसे स्थापित करके शेष दो पाथड़ोंके नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये । उसका प्रमाण यह है—(देखो मूलका नकशा) ।

विशेषार्थ-- छठी पृथिवीमें मुखका प्रमाण १२५ धनुष और भूमिका प्रमाण २५० धनुष है । तथा प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण ४१ धनुष, २ हाथ और १६ अंगुल है ।

सातवीं पृथिवीके नारकियोंका उत्सेध पांचसौ धनुष है । उसका प्रमाण यह है—(देखो मूलका नकशा) ।

यहां नारकियोंमें उत्सेधके आठवें भागप्रमाण विष्कम्भ होता है । ऐसा समझकर, विष्कम्भकी परिधिको आधा करके, और विष्कम्भके आधेसे गुणित करके उत्सेधसे गुणित करनेपर नारकियोंकी अवगाहना होती है । अवगाहनाकी अपेक्षा सातवीं पृथिवी प्रधान है,

वारसुत्तरसयमेवकं अंधयम्मि दो हत्था ॥ एवके कोदंडसयं अम्महियं पंचवीसरूवेहिं । धूमप्पहाए चरिमिदयम्मि तिमिसयम्मि उच्छेहो ॥ ति. प. २, २६१-२६५.

१ छट्टीए × अड्डाइज्जाइं धणुसयाइं । जीवामि. ३, २, १२.

२ एवकत्तालं दंडा हत्थाइं दोण्णि सोलसंगुलया । छट्टीए वसुहाए परिमाणं हाणिवट्टीए ॥ ज्ञासट्टी अधियसयं कोदंडा दोण्णि होति हत्था य । सोलस पट्ठा य पुटं हिमपडलगादाण उच्छेहो ॥ दोण्णि सयाणि अड्डाउत्त दंडाणि अंगुलाणं च । नत्तीसं छट्टीए वंदलठिदजीवउच्छेहो ॥ पण्णासम्महियाणि दोण्णि सयाणि सरासणाणि च । लल्लंकाणामहंदयठिदाण जीवाण उच्छेहो ॥ ति. प. २, २६६-२६९.

३ सत्तमाए × पंचधणुसयाइं । जीवामि. ३, २, १२.

४ पंचसयाइं धणूणि सत्तमअवणीइ अवधिठाणम्मि । सव्वेसिं णिरयाणं काउच्छेहो जिणादेसो ॥ ति. प. २, २७०.

पधाणा, पढमपुढविओगाहणादो सत्तमपुढविओगाहणाए संखेज्जगुणत्तुवलंभादो । दव्वं पडि पढमपुढवी पहाणा, सेसपुढविदव्वादो पढमपुढविदव्वस्स असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो । ओगाहणगुणगारादो दव्वगुणगारो बहुगो त्ति पढमपुढवी पहाणा कायव्वा ।

सामण्णेण एत्थ अत्थपदं वुच्चदे । सत्थाणसत्थाणरासी मूलरासिस्स संखेज्जा भागा होदि । विहारदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादरासीओ मूलरासिस्स संखेज्जदि-भागो । एदमत्थपदं सव्वत्थ जोजेदव्वं । पुगो अप्पणो रासीओ ठविय अंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्तोगाहणाए गुणिय चट्ठुहि लोभेहि ओवट्ठिदे चट्ठुहं लोभाणमसंखेज्जदि-भागो आगच्छदि । माणुमखेत्तेणोवट्ठिदे असंखेज्जाणि माणुसखेत्ताणि होंति । णवरि वेयण-कसायेसु णवगुणां, वेउव्वियसमुग्घादे संखेज्जगुणा ओगाहणा सव्वत्थ कायव्वां । एवं मारणंतियपदस्स । णवरि ओवट्ठणं ठविज्जमाणे पढमपुढविदव्वं पहाणं कायव्वं । कुदो ? मारणतिएहि परिणदजीवस्स तत्थ विग्गहगईए रज्जुअसंखेज्जदिभागमेत्तदीहत्तस्स वि

क्योंकि, पहली पृथिवीकी अवगाहनासे सातवीं पृथिवीकी अवगाहना संख्यातगुणी पाई जाती है । तथा, द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा पहली पृथिवी प्रधान है, क्योंकि, द्वितीयादि शेष छह पृथिवियोंके द्रव्यप्रमाणसे पहली पृथिवीका द्रव्य असंख्यातगुणा पाया जाता है । इसप्रकार सातवीं पृथिवीके अवगाहनाके गुणकारसे पहली पृथिवीके द्रव्यप्रमाणका गुणकार बहुत बड़ा है, इसलिये यहांपर पहली पृथिवीको प्रधान करना चाहिये ।

अब सामान्यरूपसे यहांपर अर्थपदका निरूपण करते हैं— स्वस्थानस्वस्थानराशि मूल नारकराशिके संख्यात बहुभागप्रमाण है । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषाय-समुद्धात, और वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त राशियां मूलराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं । यह अर्थपद सर्वत्र जोड़ लेना चाहिये । पुनः अपनी अपनी राशियोंको स्थापित करके, उन्हें अंगुलके संख्यातवें भागप्रमाण अवगाहनासे गुणित करके जो लब्ध आवे उसे सामान्य आदि चार लोकोंसे पृथक् पृथक् भाजित करनेपर, अर्थात् सामान्य आदि चार लोकोंके, तत्प्रमाण खंड करनेपर, चार लोकोंका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है । तथा उक्त प्रमाणको मानुषलोकसे अपवर्तित करनेपर अर्थात् उक्त प्रमाणके मानुषक्षेत्रप्रमाण खंड करनेपर असंख्यात मानुषक्षेत्र आते हैं । इतनी विशेषता है कि वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातमें सर्वत्र अवगाहनाको नौगुणी और वैक्रियिकसमुद्धातमें अवगाहनाको सर्वत्र संख्यात-गुणी कर लेना चाहिये । मारणान्तिकसमुद्धातका कथन इसीप्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अपवर्तनाके स्थापित करनेपर पहली पृथिवीके द्रव्यको प्रधान करना चाहिये, क्योंकि, मारणान्तिक समुद्धातसे परिणत हुए जीवके यहां विग्रहगतिमें राजुके

१ वेदनासमुग्घाएणं समोहते ×× सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खंभवाहल्लेणं नियमा ळुद्धिसिं ×× प्रज्ञा. ३६, १७. एवं कसायसमुग्घातोवि भाणितव्वो । प्रज्ञा. ३६, १८.

२ वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहते ×× सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खंभवाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जतिभागं उक्कोसेणं संखिज्जातिं जीयणातिं एगदिसिं विदिसिं वा एवइए खित्ते ×× प्रज्ञा. ३६, १९.

उवलंभादो । तेण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपढमपुढविउवक्कमणकालेण ओवट्टिय लद्धस्स असंखेज्जा भागा विग्गहं करेति । तेसिं पि असंखेज्जा भागा मारणंतियं करेति त्ति । पुणो तमावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तमारणंतियउवक्कमणकालेण गुणिदे मारणंतियरासी आगच्छदि । पुणो णेरइयमुहवित्थारेण णवगुणरज्जुअसंखेज्जदिभागेण मारणंतियरासिं गुणिदे तक्खेत्तं होदि । उववादस्सोवट्टणं ठविज्जमाणे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण विदियपुढविद्वे भागे हिदे तिरिक्खेहिंतो विदियपुढवीए उप्पज्जमाणमिच्छाइट्ठिणो होंति । पुणो अवरेगं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहारं ठविय रूवूणेण गुणिदे विग्गहगईए मारणंतिण उप्पज्जमाणतिरिक्खमिच्छाइट्ठिणो होंति । पुणो अवरेगं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहारं ठविदे तिरिक्खेहिंतो विग्गहमदीए रज्जुपडिभागेण मारणंतियं करिय उप्पज्जमाणतिरिक्खमिच्छाइट्ठिणो होंति त्ति वत्तवं । सव्वत्थ रज्जुमेत्तायामविदियदंडुवलंभादो । पुणो एदं दवं तिरिक्खोगाहणमुहवित्थारेण णवरज्जुगुणिदेण गुणेदवं । ओवट्टणा पुवं व कादव्वा । एवं सासणस्स । णवरि उववादो णत्थि ।

असंख्यातवें भागप्रमाण दीर्घता भी पाई जाती है । इसलिये आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पहली पृथिवीके उपक्रमणकालसे प्रतिसमयमें भरनेवाली राशिको भाजित करके जो लब्ध आवे उसके असंख्यात बहुभागप्रमाण जीव विग्रहको करते हैं । तथा इनके भी असंख्यात बहुभागप्रमाण जीव प्रति समयमें मारणान्तिकसमुद्घातको करते हैं । पुनः इसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र मारणान्तिकसमुद्घातके उपक्रमणकालसे गुणित करनेपर मारणान्तिकसमुद्घातराशि होती है । पुनः नारकियोंके मुखविस्तारसे नौ गुणे राजुके असंख्यातवें भागसे मारणान्तिकराशिको गुणित करनेपर मारणान्तिकसमुद्घातक्षेत्र होता है । उपपादकी अपवर्तनाके स्थापित करनेपर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे दूसरी पृथिवीसंबन्धी द्रव्यके भाजित करनेपर तिर्यचोंमेंसे दूसरी पृथिवीमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं । पुनः पल्योपमके असंख्यातवें भागरूप एक दूसरा भागद्वार स्थापित करके एक कमसे गुणित करनेपर विग्रहगतिमें मारणान्तिकसमुद्घातसे उत्पन्न होनेवाले तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं । पुनः एक दूसरे पल्योपमके असंख्यातवें भागको भागहाररूपसे स्थापित करनेपर तिर्यचोंमेंसे विग्रहगतिमें राजुके प्रतिभागरूपसे मारणान्तिक समुद्घात करके उत्पन्न होनेवाले तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं, ऐसा कथन करना चाहिये, क्योंकि, सर्वत्र राजुमात्र आयामसे युक्त दूसरा दंड पाया जाता है । पुनः इस द्रव्यको नौ गुणी राजुसे गुणित तिर्यचोंकी अवगाहनाके मुखविस्तारसे करना चाहिये । यहां पर अपवर्तना पहलेके समान करना चाहिये ।

इसीप्रकार सासादनसभ्यदृष्टि नारकियोंके भी स्वस्थानस्वस्थान आदि समझना

मारणंतियरासिभिच्छिय दो आवलियाए असंखेज्जदिभागे अण्णोण्णगुणे करिय पुव्वरासिस्स भागहारं ठविय तप्पाओग्गेण आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे मारणंतियरासी होदि । सेसविधी पुव्वं व । एवं सम्मामिच्छाइड्डिस्स । णवरि मारणंतियं पि णत्थि । असंजदसम्माइड्डिस्स सासणभंगो । णवरि उववादो अत्थि । मारणंतिय-उववादेसु णेरइया सम्माइड्डिणो संखेज्जा चेव होंति । सेसं जाणिय वत्तव्वं ।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ६ ॥

दव्वट्टियणयमवलंबिय सुत्तं जदो द्विदं' तदो सत्तहं पुढवीणं परूवणा ओघपरूवणाए तुल्लेत्ति घडदे । पज्जवट्टियणए पुण अवलंबिज्जमाणे पढमपुढविपरूवणा ओघपरूवणाए तुल्ला, सव्वगुणाणं सव्वपदेहि सरिसत्तुवलंभादो । ण विदियादिपंचपुढवीणं परूवणा ओघपरूवणाए पदं पडि तुल्ला, तत्थ असंजदसम्माइड्डिणं उववादाभावादो । ण सत्तमपुढविपरूवणा वि णिरओघपरूवणाए तुल्ला, सासणसम्माइड्डिमारणंतियपदस्स असं-

चाहिये । इतनी विशेषता है कि उनके उपपाद नहीं पाया जाता है । जब मारणान्तिक समुद्धातको प्राप्त राशिके लानेकी इच्छा हो तब दो वार आवर्त्ताके असंख्यातवें भागको परस्पर गुणित करके और उसे पूर्वराशिका भागहार स्थापित करके उसके योग्य आवर्त्ताके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर मारणान्तिकसमुद्धातको प्राप्त राशि होती है । शेष विधि पहलेके समान है । इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंके भी स्वस्थानस्वस्थान आदि जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके मारणान्तिकसमुद्धात भी नहीं होता है । असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंके स्वस्थानस्वस्थान आदि सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंके स्वस्थानस्वस्थान आदिके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके उपपाद पाया जाता है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादमें सम्यग्दृष्टि नारकी संख्यात ही पाये जाते हैं । शेष कथन जानकर करना चाहिये ।

इसीप्रकार सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ६ ॥

चूंकि यह सूत्र द्रव्यार्थिक नयका अवलंबन लेकर स्थित है, इसलिये सातों पृथिवियोंकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके तुल्य है, यह कथन घटित हो जाता है । पर्यायार्थिक नयका अवलंबन करनेपर तो पहली पृथिवीकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके तुल्य है, क्योंकि, पहली पृथिवीमें सामान्यप्ररूपणासे सर्व गुणस्थानोंकी सर्वपदोंकी अपेक्षा समानता पाई जाती है । किंतु स्वस्थानस्वस्थान आदि पदोंकी अपेक्षा द्वितीयादि पांच पृथिवियोंकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके समान नहीं है, क्योंकि, उन पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं होता है । इसीप्रकार सातवीं पृथिवीकी प्ररूपणा भी नारक सामान्यप्ररूपणाके तुल्य नहीं है, क्योंकि, सातवीं पृथिवीमें सासादनसम्यग्दृष्टिसंबन्धी मारणान्तिकपदका और असंयतसम्य-

१ प्रातिपु ' जदो द्विदं तदो द्विदं ' इति पाठः ।

जदसम्माइड्ढिमारणंतिय-उववादपदानं च तत्थ अभावादो । सत्तहं पुढवीणं ओगाहणाभेदो मारणंतिय-उववादानं ठविज्जमाणरज्जुभेदो दच्चविसेसो च वत्तव्वो । पढमपुढविमिच्छाइड्ढि-मारणंतियखेत्तं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं । कुदो ? पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागगुणितदत्तव्वे सेढीए संखेज्जदिभागेण गुणिते तिरियलोगादो असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो त्ति' एगपदेसमादिं कादूण जा उक्कस्सेण सगुप्पत्तिपदेसो त्ति मारणंतियखेत्तायामस्सुवलंभादो' । ण चेदम-सिद्धं, महामच्छखेत्तद्वाणपरूवणणहाणुववत्तीदो । तत्थ जेण सेढीए असंखेज्जदिभागायामेण मारणंतियं करिय मरंता बहुवा, तेण तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तं घडदे ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते, सब्व-
लोए ॥ ७ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा ओघमिच्छादिट्ठिपरूवणाए तुल्ला । णवरि वेउव्विय-समुग्घादगदजीवा तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे, तिरिक्खेसु विउव्वमाणरासी पलि-

दृष्टिसंबन्धी मारणान्तिक और उपपाद पदका अभाव है । यहांपर सातों पृथिवियोंकी अव-गाहनाका भेद, और मारणान्तिक तथा उपपादका स्थापित होनेवाला राजुभेद और द्रव्यविशेषका कथन करना चाहिये । पहली पृथिवीके मिथ्यादृष्टियोंका मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्धातको प्राप्त राशिको प्रतरंगुलके संख्यातवें भागसे गुणित करके पुनः जगश्रेणीके संख्यातवें भागसे गुणित करनेपर तिर्यग्लो-कसे असंख्यातगुणा क्षेत्र पाया जाता है । तथा एकप्रदेशसे लेकर उत्कृष्टरूपसे अपनी उत्पात्तिके प्रदेशतक मारणान्तिकक्षेत्रका आयाम पाया जाता है, इसलिये भी पहली पृथिवीके मिथ्यादृष्टियोंका मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा है । और यह कथन असिद्ध भी नहीं है; क्योंकि, महामत्स्यके क्षेत्रस्थानकी प्ररूपणा अन्यथा बन नहीं सकती है । वहांपर चूंकि जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग आयामरूपसे मारणान्तिकसमुद्धातको करके मरनेवाले जीव बहुत हैं, इसलिये तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग बन जाता है ।

तिर्यचगतिमें तिर्यचोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७ ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा ओघमिथ्यादृष्टि प्ररूपणाके समान है । इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त तिर्यच जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, तिर्यचोंमें विक्रिया करनेवाली राशि पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र घनांगुलोंसे

१ प्रतिषु ' ति ण ' इति पाठः ।

२ मारणंतियसमुग्घातेण × × तरीप्पमाणमेत्ते विक्खम्भवाइहेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जति-भागं उक्कोसेण असंखेज्जातिं जोयणातिं एगदिसिं एवतित्ते खेत्ते × × प्रह्णा. ३६, १८.

दोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तंघणंगुलेहि गुणिदसेट्ठिमेत्तो त्ति गुरुवदेसादो ।

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति केवडि खेत्ते,
लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८ ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सूचिद-अत्थो वुच्चदे- सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विण्हि परिणदसासणसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते ? चटुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । रासिपमाणं भण्णमाणे सत्थाण-सत्थाणरासी मूलरासिस्स संखेज्जा भागा । सेसरासीओ मूलरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्तीओ । णवरि वेउव्वियसमुग्घादरासी मूलरासिस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो ? तिरिक्खेसु विउव्वमाणजीवाणं पउरं संभवाभावादो । एत्थ ओगाहणगुणगारो संखेज्जघणंगुलमेत्तो, एगघणंगुलं वा ।

गुणित जगभ्रेणीप्रमाण है, ऐसा गुरुका उपदेश है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थानतकके तिर्यंच जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ८ ॥

अब इस देशामर्शक सूत्रसे सूचित अर्थको कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहार-वत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिकसमुद्धातरूपासे परिणत सासादन-सम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । स्वस्थानस्वस्थान आदि उक्त राशियोंके प्रमाणका कथन करने पर स्वस्थानस्वस्थान जीवराशि मूलराशिके संख्यात बहुभागप्रमाण है । तथा शेष राशियां मूलराशिके संख्यातवें भाग मात्र हैं । इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त राशि मूलराशिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि, तिर्यंचोंमें विक्रिया करनेवाले जीव प्रचुर संभव नहीं हैं । यहां पर अवगाहनाका गुणकार संख्यात घनांगुलप्रमाण अथवा एक घनांगुल है ।

विशेषार्थ—यहां पर अवगाहनाका गुणकार जो संख्यात घनांगुल अथवा एक घनांगुल कहा है उसका यह भाव प्रतीत होता है कि पंचेन्द्रियपर्याप्त तिर्यंचोंकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण होती है, अतः उसका घनफल लानेके लिए अवगाहनाका गुणकार भी संख्यात घनांगुल ही होगा । किन्तु त्रसपर्याप्त तिर्यंचोंकी जघम्य अवगाहना घनांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण ही है । यद्यपि इनकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाईका पृथक् पृथक् उपदेश आज नहीं पाया जाता है, ऐसा स्पष्ट उल्लेख गोममटसारकी जी. प्र. टीकाकारने

१ बादरपुण्णा तेजु सगरासीए असंखमागमिदा । विविकरियसत्तिजुत्ता पल्लासंखेज्जया वाजु ॥ पल्ला-संखेज्जाहयविंदगुलगुणिदसेट्ठिमेत्ता हु । वेगुभियपंचक्खा भोगभुमा पुह विगुव्वंति गो. जी. २५८-२५९.

१ गो. जी. ९६.

एवं सम्मामिच्छाइड्ढि-असंजदसम्माइड्ढि-संजदासंजदाणं । मारणंतियसमुग्घादगद-सासणसम्मादिड्ढी केवडि खेत्ते ? चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्ज-गुणे अच्छंति । ओघरासिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे मरंतसासणसम्मा-इड्ढिरासी होदि । पुणो वि आवलियाए असंखेज्जदिभागेण हरिय रूवूणेण गुणिदे मारणं-तियसमुग्घादगदरासी होदि । पुणो वि आवलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे रज्जु-मेत्तायामेण मारणंतियसमुग्घादगद-एगसमयसंचिदरासी होदि । तमावलियाए असंखे-ज्जदिभागेण गुणिदे तक्कालसंचिदरासी होदि । एदं संखेज्जपदरंगुलगुणिदरज्जुए गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि । एवमसंजद-संजदासंजदाणं । सम्मामिच्छाइड्ढीणं मारणंतियं णत्थि ।

उववादगदसासणसम्माइड्ढी केवडि खेत्ते, चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइ-ज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ रासिपमाणमाणिज्जमाणे मूलरासिमावलियाए असंखेज्जदि-

किया है, तो भी उनके घनांगुलका प्रमाण उत्तरोत्तर संख्यातगुणा कहा है । वहांपर पंचेन्द्रिय पर्याप्तजीवोंकी जघन्य अवगाहना एकचार संख्यातसे भाजित घनांगुल प्रमाण कही है । संभवतः धवलाकारने उसी जघन्य अवगाहनाके घनफलको दृष्टिमें रखकर ' एक घनांगुल ' गुणाकारका प्रमाण कहा है ।

इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंके भी स्वस्थानस्वस्थान आदिके विषयमें समझना चाहिये । मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्टाईड्ढीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । ओघराशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करने पर मरनेवाली सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचराशि होती है । फिर भी आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करके एक कम उससे गुणित करने पर मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त राशि होती है । फिर भी आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करने पर रज्जुमात्र आयामकी अपेक्षा मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त एक समयमें संचित जीवराशि होती है । इसे आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करने पर मारणान्तिक समुद्घातके कालमें संचित हुई राशि होती है । इसे संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित राजुसे गुणा करने पर मारणान्तिकक्षेत्र होता है । इसीप्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंके मारणान्तिकसमुद्घातके विषयमें कहना चाहिये । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके मारणान्तिकसमुद्घात नहीं होता है ।

उपपादको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्टाईड्ढीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां पर सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंकी उपपादराशिका प्रमाण लाने पर मूलराशिको

१ प्रतिपु ' भागं ' इति पाठः ।

भाएण भागे हिदे उप्पज्जमाणसासणसम्माइट्टिरासी होदि । पुगो अवरेण आवलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे रूवूणेण गुणिदे विग्गहगईए मारणंतिएण उप्पज्जमाणरासी होदि । संखेज्जा भागा मारणंतियं कादूणुप्पज्जंति त्ति के वि भणंति, एदं जाणिय वत्तच्चं । णत्थि एत्थ मज्झणियमो । तमावलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे उज्जुदो' आगच्छमाणरासी होदि । एदस्स पदरंगुलस्स संखेज्जदिभाएण गुणिदरज्जुं गुणगारं ठविदे उववादखेत्तं होदि । एत्थ ओवट्टणा पुच्चं व । एवमसंजदसम्मादिट्टिस्स । गवरि उववादे संखेज्जा होंति, पुच्चं बद्धायुगमणुस्ससम्मादिट्टीहि विणा अण्णेसिं तत्थ उववादा-भावादो । ओगाहणगुणगारो वि संखेज्जपदरंगुलमेत्तो, एगपदरंगुलमेत्तो वा । सम्मा-मिच्छाइट्टि-संजदासंजदाणं उववादं णत्थि ।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणि-णीसु मिच्छाइट्टिप्पहुडि जाव संजदासंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९ ॥

आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर उत्पन्न होनेवाली सासादनसम्यग्दृष्टि राशि होती है । पुनः एक दूसरे आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर और एक कम उक्त भागहारसे गुणित करनेपर विग्रहगतिमें मारणान्तिकसमुद्धातसे उत्पन्न होनेवाली जीवराशि है । उत्पन्न होनेवाली राशिके संख्यात बहुभाग प्रमाण जीव मारणान्तिकसमुद्धात करके उत्पन्न होते हैं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, इसलिये इसको जानकर कथन करना चाहिये । किन्तु इस विषयमें कोई मध्यम नियम नहीं है । इसे आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर कजुगतिसे आनेवाली राशिका प्रमाण होता है । प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे राजुको गुणित करके जो लब्ध आवे उसे इस राशिका गुणकार स्थापित करने पर उपपादक्षेत्र होता है । यहां पर अपवर्तना पहलेके समान जानना चाहिये । इसीप्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोका उपपाद जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि उपपादमें असं-यतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच संख्यात ही होते हैं, क्योंकि, जिन मनुष्योंने सम्यग्दर्शनके पहले तिर्यंचायुका बंध कर लिया है ऐसे मनुष्य सम्यग्दृष्टियोंके विना दूसरे सम्यग्दृष्टियोंका तिर्यंचोमें उपपाद नहीं होता है । इनकी अवगाहनाका गुणकार भी संख्यात प्रतरांगुलप्रमाण अथवा एक प्रतरांगुलमात्र है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोके उपपाद नहीं होता है ।

पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानके तिर्यंच कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ९ ॥

१ प्रतिषु ' रज्जुदो ' इति पाठः ।

एदं पि देसामासियं सुत्तमेव, संगहिदाणेगसुत्तत्थादो । तं जहा- सत्थाण-सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदपंचिदियतिरिक्खमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । एत्थ पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तरासिं मोत्तूण पंचिदियतिरिक्ख-पज्जत्तरासी चेव घेत्तव्वो, अपज्जत्तोगाहणादो पज्जत्तोगाहणाए असंखेज्जगुणत्तुवलं-भादो । एत्थ सत्थाणसत्थाणरासी मूलरासिस्स संखेज्जभागमेत्ता होदि । सेसरासीओ तस्स संखेज्जदिभागमेत्तीओ । एत्थ ओगाहणगुणगारो संखेज्जघणंगुलमेत्तो । ओवट्ठणं जाणिदूण कादव्वं । एवं पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीमिच्छाइट्ठीणं । वेउव्विय-समुग्घादगदमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । एवं पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीमिच्छाइट्ठीणं । मारणंतिय-समुग्घादगदपंचिदियतिरिक्खमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । कुदो ? पंचिदियतिरिक्खपज्जत्तरासिस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तभागहारस्स

यह भी सूत्र देशामर्शक ही है, क्योंकि, इसमें अनेक सूत्रोंका अर्थ संग्रहीत है उसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, घेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातको प्राप्त पंचेन्द्रियतिर्थच मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्य-लोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक, इन तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्थलोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्ठाईपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहाँपर पंचेन्द्रिय तिर्थच अपर्याप्त जीवराशिको छोड़कर पंचेन्द्रिय तिर्थच पर्याप्त राशिका ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, अपर्याप्तोंकी अवगाहनासे पर्याप्तोंकी अवगाहना असंख्यातगुणी पाई जाती है । यहाँपर स्वस्थानस्वस्थानराशि मूलराशिके संख्यात बहुभाग-प्रमाण होती है । शेष राशियां मूलराशिके संख्यातवें भागमात्र होती हैं । यहाँपर अवगाहनाका गुणकार संख्यात घनांगुलप्रमाण है । अपवर्तनाका कथन जानकर करना चाहिये । इसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्थच पर्याप्त तथा योनिमती तिर्थच मिथ्यादृष्टियोंकी स्वस्थानस्वस्थानराशि आवि समझना चाहिये । वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्थच मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्ठाईपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्थच पर्याप्त तथा योनिमती तिर्थच मिथ्यादृष्टियोंका वैक्रियिकसमुद्धातगत क्षेत्र जानना चाहिये । मारणा-तिकसमुद्धातको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्थच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक इन तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, पंचेन्द्रियतिर्थच पर्याप्तराशिका भागहार पर्योपमके असंख्यातवें भागमात्र पाया जाता है ।

१ मप्रती ' एम ' इति पाठः

सत्तादो । तं कथं ? संखेज्जवस्साउअतिरिक्खोवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदि-
भाएण तेरासियकमेण भागे हिदे मरंतपंचिदियतिरिक्खमिच्छाइडिपमाणं होदि । एत्थ
उवक्कमणकालागमणविधी वुच्चदे—संखेज्जावलियासु जदि आवलियाए असंखेज्जदि-
भागो गिरंतरुवक्कमणकालो लब्भदि, तो उवक्कमणाणुवक्कमणप्पयम्मि आयुड्ढिदिम्हि
केत्तियमुवक्कमणकालं लभामो त्ति पमाणेण फलगुणिदमिच्छमोवट्ठिदे आवलियाए असंखे-
ज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालो लब्भदि । एवं संखेज्जवस्साउअरासीणं सांतराणमुवक्कमण-
कालो अण्णेसिं पि आणेदच्चो' । पुणो मारणंतियरासिमिच्छिय अवरं पलिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागं भागहारं ठविय रूवूणेण गुणिय रज्जुआयामेण ड्ढिदरासिमिच्छिय अण्णेण
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागहारो ठवेयच्चो । पुणो एत्थतणसंचयमिच्छिय
मारणंतियउवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिय पुणो एदं रज्जुगुणिद-
संखेज्जपदरंगुलेहि गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि । एदेण तिण्णि वि लोगे भागे हिदे

शंका — यह कैसे ?

समाधान — संख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंचोंके उपक्रमणकालरूप आवलीके
असंख्यातवें भागसे त्रैराशिक क्रमसे भाजित करने पर प्रत्येक समयमें मरनेवाले पंचेन्द्रिय
तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण होता है ।

अब यहां पर उपक्रमणकालके लानेकी विधिकी कहते हैं—संख्यात आवलियोंके
भीतर यदि आवलीका असंख्यातवां भागप्रमाण निरन्तर उपक्रमणकाल प्राप्त होता है, तो
उपक्रमण और अनुपक्रमणरूप आयुकी स्थितिके भीतर कितने उपक्रमणकाल प्राप्त होंगे,
इसप्रकार आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण फलराशिसे उपक्रमण और अनुपक्रमणात्मक
आयुकी स्थितिरूप इच्छाराशिको गुणित करके और संख्यात आवलीप्रमाण प्रमाणराशिका
भाग देने पर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकाल प्राप्त होता है । इसीप्रकार
संख्यात वर्षकी आयुवाली अन्य सान्तर राशियोंका भी उपक्रमणकाल ले आना चाहिये । पुनः
यहां मारणान्तिक राशिका प्रमाण लाना है, इसलिये एक दूसरा पल्योपमके असंख्यातवें
भागप्रमाण भागद्वार स्थापित करके और एक कम उसीसे गुणित करके राजुप्रमाण आयामकी
अपेक्षा स्थित राशि लाना इच्छित है, इसलिये एक दूसरे पल्योपमके असंख्यातवें भागरूपसे
भागद्वार स्थापित करना चाहिये । पुनः यहांपर मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त जीवराशिका
संचय इच्छित है, इसलिये मारणान्तिकसंबन्धी उपक्रमणकाल आवलीके असंख्यातवें भागसे
गुणित करके पुनः क्षेत्र लानेके लिये इस राशिको राजुसे गुणित संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित
करने पर मारणान्तिकक्षेत्रका प्रमाण होता है । इस क्षेत्रके प्रमाणसे सामान्यलोक आदि

१ सोत्रकमाणुवक्कमणकालो संखेज्जवासड्ढिदिवाणे । आवलिअसंखमागो संखेज्जावलिपमा कमसो ॥

गो. जी. २६५

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो आगच्छदि त्ति तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो अच्छंति त्ति सिद्धं । तिरिय-णरलोगेहितो असंखेज्जगुणे । एवं पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीणं वत्तच्चं । उववादगदपंचिदियतिरिक्खमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो । एत्थ उववादखेत्तमाणिज्जमाणे मारणंतियभंगो । णवरि पढमं उवसंहरिय विदियदंडड्डिय-जीवे इच्छिय अण्णेगो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो, असंखेज्ज-जोयणविदियदंडायामजीवाणं बहूणमणुवलंभादो । एसो एगसमयसंचिदो त्ति आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणगारं अवणिदे रज्जुगुणिदसंखेज्जपदरंगुलाणि गुणगारो होदि । एवं पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीणं वत्तच्चं । सेसगुणद्वयणं तिरिक्खोघभंगो । णवरि जोणिणीसु असंजदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि ।

तीनों ही लोकोंके भाजित करने पर पल्योपमका असंख्यातवां भाग आता है, इसलिये सामान्य लोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें मारणान्तिकसमुद्धातगत पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीव रहते हैं, यह बात सिद्ध हुई। तथा मारणान्तिकसमुद्धातगत पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीव तिर्यंग्लोक और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। इसीप्रकार मारणान्तिकसमुद्धातको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और योनिमतियोंका कथन करना चाहिये।

उपपादको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। यहां पर उपपाद-क्षेत्रके लाते समय मारणान्तिकक्षेत्रके समान कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि प्रथम दंडका उपसंहार करके दूसरे दंडमें स्थित जीवोंका प्रमाण लाना इच्छित है, इसलिये पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण एक दूसरा भागहार स्थापित करना चाहिये, क्योंकि, असंख्यात योजन आयामवाले दूसरे दंडमें स्थित जीव बहुत नहीं पाये जाते हैं। यह एक समयमें संचित जीवराशि हुई, इसलिये आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणकारके अपनीत करने पर राजुसे गुणित संख्यात प्रतरांगुल गुणकार होता है। इसीप्रकार उपपादको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और योनिमतियोंका कथन करना चाहिये। उपपादकी अपेक्षा शेष गुणस्थानोंका कथन तिर्यंच ओघके कथनके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं होता है।

विशेषार्थ— यहांपर जो प्रथम दंड आदिका कथन किया गया है, उसका अभिप्राय यह है कि विग्रहगतिमें मरणक्षेत्रसे लगाकर प्रथम मोड़े तक जीवका जो सीधा गमन होता है वह प्रथम दंड है। तथा प्रथम मोड़ेसे लगाकर द्वितीय मोड़े तक जीवका जो सीधा गमन होता है वह द्वितीय दंड है। इसीप्रकारसे तीसरा दंड भी समझना चाहिए।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागे ॥ १० ॥

एदस्स देसामासियसुत्तस्स अत्थो वुच्चदे— सत्थाण-वेदण-कप्पायसमुग्घादगदा
केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे । कुदो ? उस्सेधघणंगुलं पलिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागेण खंडिदमेत्तोगाहणत्तादो । अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । विहार-
वदिसत्थाणं वेउच्चियसमुग्घादो य णत्थि । मारणंतिय-उववादगदा केवडि खेत्ते ? तिण्हं
लोगणमसंखेज्जदिभागे । कुदो ? रासिस्स भागहारभूदा होदूण जहाकमेण दोण्णि तिण्णि
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागा लब्भंति त्ति । तिरिय-माणुसलोगादो असंखेज्जगुणे
अच्छंति । सुगममेदं ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि
जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें
भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १० ॥

अब इस देशामर्शक सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात और
कषायसमुद्धातको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ?
सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, उस्सेध
घनांगुलको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे खंडित करके जो एक भाग लब्ध आवे
तत्प्रमाण पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवकी अवगाहना है । तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच
अपर्याप्त जीव अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त
जीवोंके विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्धात नहीं पाया जाता है । मारणान्तिकसमुद्धात
और उपपादको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्य-
लोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, राशिके भागहार-
रूप होकर यथाक्रमसे अर्थात् मारणान्तिकसमुद्धातकी अपेक्षा दो वार पल्योपमके असंख्यातवें
भाग और उपपादकी अपेक्षा तीन वार पल्योपमका असंख्यातवां भाग पाया जाता है । तथा
तिर्यंचलोक और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादके
प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव रहते हैं । इसप्रकार इसका व्याख्यान सुगम है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे
लेकर अजोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानमें जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ?
लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ११ ॥

१ मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवत्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स अत्थो बुच्चदे— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घादगदमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुस-खेत्तस्स संखेज्जदिभागे । कुदो ? मणुसपज्जत्तमिच्छाइट्ठिखेत्तग्गहणादो । सेढीए असंखे-ज्जदिभागमेत्तमणुसअपज्जत्ताणं खेत्तस्स गहणं किण्ण कीरदे ? ण, तस्स अंगुलस्स संखेज्जदिभागे संखेज्जंगुलेसु वा अवट्टाणादो । मारणंतिय-उववादगदमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरिय-णरलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । कुदो ? पहाणी-कदमणुसअपज्जत्तरासीदो । एवमुववादस्स वि । णवरि एगो आवलियाए असंखेज्जदिभागो दोणिण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागा च मणुसअपज्जत्तरासिस्स भागहारा ड्वेदच्चा ।

सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घादेहि परिणदा केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुस-खेत्तस्स संखेज्जदिभागे । मारणंतिय-उववादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अट्टाइजादो

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और योनिमती मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर मनुष्य पर्याप्त मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका ग्रहण किया है ।

शंका—अपर्याप्त मनुष्य जगत्क्षेत्रीके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, अतएव यहां उनके क्षेत्रका ग्रहण क्यों नहीं किया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पर्याप्त मनुष्यका अवस्थान अंगुलके संख्यातवें भागमें अथवा संख्यात अंगुलोंमें पाया जाता है, इसलिये यहांपर अपर्याप्त मनुष्योंके क्षेत्रका ग्रहण नहीं किया है ।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और योनि-मती मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर मनुष्य अपर्याप्तराशिकी प्रधानता है । इसीप्रकार उपपादका भी कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तराशिके एकवार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण और दो वार पश्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण भागहार स्थापित करना चाहिये ।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातसे परिणत हुए सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए

असंखेज्जगुणे । सम्मामिच्छाइट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-समुग्घादपरिणदा केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । संजदासंजदा सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घादपरिणदा केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । मारणंतियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति मूलोघभंगो । एवं मणुसपञ्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि मिच्छाइट्ठीणं सासणसम्माइट्ठिभंगो । मणुसिणीसु असंजदसम्मादिट्ठीणं उववादो णत्थि । पमत्ते तेजाहारसमुग्घादा णत्थि ।

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, ओघं ॥ १२ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो मूलोघमवधारिय लोगस्स असंखेज्जदिभागे, असंखेज्जेसु वा भागेषु, सव्वलोगे वा त्ति वत्तव्वो ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातरूपसे परिणत हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। स्वस्थानस्वस्थान विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात इन पदोंसे परिणत हुए संयतासंयत मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए संयतासंयत मनुष्य सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक मनुष्योंके यथासंभव स्वस्थानस्वस्थान आदि पदोंका क्षेत्र मूलोघप्ररूपणके समान जानना चाहिये। इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मिथ्यादृष्टियोंके सासादनसम्यग्दृष्टियोंके समान कथन है। मनुष्यनियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंके उपपाद नहीं पाया जाता है। इसीप्रकार उन्हींके प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात नहीं पाया जाता है।

सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ओघप्ररूपणामें सयोगिजिनोंका जो क्षेत्र कह आये हैं, तत्प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १२ ॥

इस सूत्रका अर्थ, मूलोघ सूत्रका निश्चय करके सयोगिकेवली जीव लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें, लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रमें अथवा सर्व लोकमें रहते हैं, इसप्रकार कहना चाहिये ।

१ सयोगिकेवलिना सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

मणुसअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥१३॥

सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादेहि परिणदा चट्ठण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, माणुस-खेत्तस्स संखेज्जदिभागे णिचिदकमेण । विण्णासकमेण पुण असंखेज्जाणि माणुसखेत्ताणि । मारणंतियसमुग्घादो माणुसोघतुल्लो । मारणंतियखेत्तं ठविज्जमाणे सूचिअंगुलपढम-तदिय-वग्गमूले गुणेदूण सेट्ठिभिह भागे हिदे दव्वं होदि । तम्हि आवलियाए असंखेज्जदिभाग-मेत्त-उवक्कमणकालेण भागे हिदे एगसमयम्हि मरंतरासी होदि । तं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ओवट्टिय रूवूणेण गुणिदे एगसमयसंचिदमारणंतियरासी होदि । पुणो तमावलियाए असंखेज्जदिभाएण मारणंतियउवक्कमणकालेण गुणिदे मारणंतियकालब्भंतरे संचिदरासी होदि । पुणो अवरेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे रज्जुआया-मेण मुक्कमारणंतियरासी होदि । रज्जुआयदस्स विक्खंभो पदरंगुले पलिदोवमस्स असंखे-ज्जदिभागेण ओवट्टिदे होदि । एवमुववादस्स वि । णवरि एगसमयसंचिदो त्ति आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणगारो अवणेदव्वो । विदियदंडे सेठीए संखेज्जदिभागायामेण मुक्क-

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातसे परिणत हुए लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य निश्चितक्रमसे सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । विन्यासक्रमसे तो असंख्यात मनुष्यक्षेत्र लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका क्षेत्र है । मारणान्तिकसमुद्धातको प्राप्त हुए लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका क्षेत्र ओघमनुष्यप्ररूपणाके समान है । मारणान्तिकक्षेत्रके स्थापित करनेपर सूच्यंगुलके प्रथम और तृतीय वर्गमूलको परस्पर गुणित करके जो राशि आवे उसका जगश्रेणीमें भाग देनेपर लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका द्रव्यप्रमाण होता है । इसमें आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालका भाग देनेपर एक समयमें मरनेवाले लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंकी राशिका प्रमाण होता है । इसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करके और एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर एक समयमें संचित हुई मारणान्तिकसमुद्धातको प्राप्त लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यराशि होती है । पुनः इस राशिको आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण मारणान्तिक उपक्रमणकालसे गुणित करनेपर मारणान्तिककालके भीतर संचित जीवराशिका प्रमाण होता है । पुनः इसे एक दूसरे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर राजुप्रमाण आयामरूपसे किया है मारणान्तिकसमुद्धात जिन्होंने, ऐसे लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंकी राशि होती है । प्रतरांगुलको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर राजुप्रमाण आयतक्षेत्रका विस्तार होता है । इसीप्रकार उपपादका भी क्षेत्र सम-झना चाहिये । इतनी विशेषता है कि उपपादराशि एक समयमें संचित होती है, इसलिये ऊपर जो आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार कह आये हैं वह निकाल देना चाहिये । अब दूसरे ढंडमें जगश्रेणीके संख्यातवें भाग आयामरूपसे किया है मारणान्तिकसमुद्धात जिन्होंने, ऐसे

मारणंतियजीवे इच्छामो त्ति अण्णेगो पल्लिदोवमस्स असंखेज्जादिभागो भागहारो ठवेदव्वो ।

देवगदीए देवेषु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्भादिट्ठि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जादिभागो ॥ १४ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घादग्गददेवमिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जादिभागो, तिरियल्लोयस्स संखेज्जादिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? पधाणीकदजोइसियरासित्तादो । मारणंतिय-उववादपरिणदमिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जादिभागो णर-तिरियल्लोमेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ खेत्तपमाणं जाणिय द्वेदव्वं । सेसगुणट्ठाणाणमोवभंगो ।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जविमाणवासिय-देवा त्ति ॥ १५ ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सूच्चिद-अत्थो बुच्चदे । तं जहा—सत्थाणसत्थाण-विहार-वदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-उववादपरिणदभवणवासियमिच्छादिट्ठी चटुण्हं लोग-

जीवोंको लाना इष्ट है, इसलिये एक दूसरा पत्योपमका असंख्यातवां भाग भागहार स्थापित करना चाहिये ।

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानके देव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिक-समुद्धातको प्राप्त हुए देव मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग-प्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहाँपर ज्योतिष्क देवराशि प्रधान है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादरूपसे परिणत हुए मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग-प्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहाँपर क्षेत्रके प्रमाणको जानकर स्थापित करना चाहिये । देवोंके शेष गुणस्थानोंकी प्ररूपणा ओघ-प्ररूपणाके समान है ।

भवनवासी देवोंसे लेकर उपरिम-उपरिम प्रैवेयकके विमानवासी देवों तकका क्षेत्र इसीप्रकार होता है ॥ १५ ॥

अब इस देशामर्शक सूत्रसे सूचित हुए अर्थको कहते हैं । वह इसप्रकार है—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, वैक्रियिकसमुद्धात और उपपादरूपसे परिणत हुए भवनवासी मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके

१ देवगतौ देवाना सर्वेषां चतुर्षु गुणस्थानेषु लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

णमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । तिरिक्ख-मणुसमिच्छादिड्डिणो कण्णागारेण
 द्विदभवणवासियखेत्तेसु उप्पज्जमाणा वे विग्गहे कादूण सेठीए संखेज्जदिभागायामेण
 उप्पज्जंता संभवन्ति, तदो तिरियलोगादो असंखेज्जगुणेण उववादखेत्तेण होदव्वमिदि ?
 सच्चमेदं जइ सेठीए संखेज्जदिभागमेत्तायामो उववादखेत्तस्स लब्भइ । किंतु संखेज्ज-
 सुचिअंगुलमेत्तो चेव । एत्तो संखेज्जजोयणाणि हेट्ठा गंतूण भवणवासियविमाणाणमव-
 द्ढाणाणुवलंभादो । ण च तिरियलोगे सव्वत्थ तदवासा, तिरियलोगस्स मज्झिमासंखेज्जदि-
 भागे चेव तेसिमत्थित्तदंसणादो । ण च उवरिमदेवेसुप्पज्जमाणतिरिक्खाणं व भवणवासिए-
 सुप्पज्जमाणतिरिक्ख-मणुस्साणं सगुप्पत्तिदिसं मुच्चा तिरिच्छेण गमणमत्थि, कंडुज्जुवाए
 गर्हए भवणवासियजगपणिधिमागंतूण हेट्ठावलिए भवणवासिएसुप्पत्तिदंसणादो । एदं कुदो
 णव्वदे ? भवणवासियाणमुववादखेत्तस्स तिरियलोगासंखेज्जदिभागत्तण्णाणुववत्तीदो ।
 सगच्छिदद्दुणादो हेट्ठा ओयरिय भवणवासिएसुप्पज्जमाणाणमुववादखेत्तायामो सेठीए
 संखेज्जदिभागो लब्भदि त्ति तग्गहणं जुत्तं, तहा तत्थुप्पज्जमाणं सुट्ठु थोवत्तादो । एदं

असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—कर्णरेखाके आकारसे स्थित भवनवासियोंके क्षेत्रोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच
 और मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव दो विग्रह करके जगश्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण आयामरूपसे
 उत्पन्न होते हुए पाये जाना संभव है, इसलिये भवनवासियोंका उपपादक्षेत्र तिर्यंग्लोकसे
 असंख्यातगुणा होना चाहिए ?

समाधान— यदि उपपादक्षेत्रका आयाम जगश्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता,
 तो यह उक्त कथन सत्य होता । किन्तु, उपपादक्षेत्रका आयाम संख्यात सूत्रंगुलमात्र ही है,
 क्योंकि, इससे संख्यात योजन नीचे जाकर भवनवासियोंके विमानोंका अवस्थान नहीं पाया
 जाता है, तथा तिर्यंग्लोकमें भी सर्वत्र भवनवासियोंके आवास नहीं हैं, क्योंकि, तिर्यंग्लोकके
 मध्यवर्ती असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें ही भवनवासी देवोंका अस्तित्व देखा जाता है । दूसरे,
 उपरिम देवोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंचोंके समान भवनवासियोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच और
 मनुष्योंका अपनी उत्पात्तिकी दिशाको छोड़कर तिरछा गमन होता हो, ऐसा भी नहीं है,
 क्योंकि, मनुष्य और तिर्यंचोंकी बाणके समान सीधी गतिसे भवनवासी लोकके समीप आकर
 अधस्तनश्रेणीमें स्थित भवनवासी देवोंमें उत्पत्ति देखी जाती है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान— भवनवासियोंका उपपादक्षेत्र तिर्यंग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण
 अन्यथा बन नहीं सकता है, इससे उक्त कथन जाना जाता है ।

अपने रहनेके स्थानसे नीचे जाकर भवनवासी देवोंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य तिर्यंचोंके
 उपपादक्षेत्रका आयाम जगश्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है, इसलिये उसका
 ग्रहण उपयुक्त है, किन्तु, उक्त प्रकारसे उनमें उत्पन्न होनेवाले जीव स्वरूप होते हैं ।

कुदो णव्वदे ? तिरियलोगस्सासंखेज्जदिभागे त्ति वक्खाणादो । मारणंतियसमुग्घादग्गद-
मिच्छाइट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे, अड्डाइज्जादो वि
असंखेज्जगुणे । सेसमोघं । णवरि असंजदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि । वाणवेंतर-जोइसियाणं
देवोघभंगो । णवरि असंजदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि ।

पणुत्रीसं अनुराणं सेसकुमाराण दस धणू धिय ।

वेंतर-जोइसियाणं दस सत्त धणू मुणेयव्वा' ॥ १८ ॥

पदम्हादो उस्सेहादो एत्थ ओगाहणखेत्तमाणेदव्वं । सोधम्मसीसाणे सत्थाणसत्थाण-
विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घादग्गदमिच्छादिट्ठी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-
भागे माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे । एत्थ सगलखेत्तपरिक्खा भवणवासिय भंगो । अप्पणो
ओहिखेत्तमेत्तं देवा विउव्वंति त्ति जं आइरियवयणं तण्ण घडदे, लोगस्स असं-

शंका— यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान— उपपादपरिणत भवनवासी देव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण
क्षेत्रमें रहते हैं, इसप्रकारके व्याख्यानसे उक्त कथन जाना जाता है ।

मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि भवनवासी देव सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें और अट्ठाई-
ट्ठीपसे भी असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । शेष कथन ओघप्ररूपणाके समान है । इतनी
विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टियोंका भवनवासियोंमें उपपाद नहीं होता है । वानव्यन्तर और
ज्योतिषी देवोंका क्षेत्र देवसामान्यके क्षेत्रके समान है । इतनी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टि-
योंका वानव्यन्तर और ज्योतिषियोंमें उपपाद नहीं होता है ।

भवनवासियोंके दश भेदोंमेंसे प्रथम भेद असुरकुमारोंके शरीरकी ऊंचाई पच्चीस धनुष
और शेष नौ कुमारोंके शरीरकी ऊंचाई दश धनुष है । तथा व्यन्तर देवोंके शरीरकी ऊंचाई दश
धनुष और ज्योतिषी देवोंके शरीरकी ऊंचाई सात धनुष जानना चाहिये ॥ १८ ॥

इस उपर्युक्त उत्सेधसे यहाँ अवगाहनाक्षेत्र ले आना चाहिये । सौधर्म और ईशान
कल्पमें स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-
समुद्घातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भाग-
प्रमाण क्षेत्रमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहाँपर सर्व पदगत क्षेत्रोंकी
परीक्षा भवनवासियोंके क्षेत्रके समान करना चाहिये । देव अपने अपने अधिज्ञानके क्षेत्र-
प्रमाण विक्रिया करते हैं, इसप्रकार जो अन्य आचार्योंका वचन है वह घटित नहीं होता है,

१ त्रि. सा. २४९. तत्र चतुर्थचरणे ' दस सत्त सरिरउदओ दु ' इति पाठः ।

२ सेसा वेंतरदेवा णिय-णिय-ओहीण जेत्थियं खेत्तं । पूरंति तेत्थियं पि हु पत्तेकं विकरणबलेण । त्रि. प. ५, ९६.

खेज्जदिभागमेत्तवेउच्चियखेत्तस्सप्पसंगादो । मारणंतिय-उववादाणं देवोघभंगो । उव-
 वादखेत्तं ठविज्जमाणे विक्खंभसूचीगुणिदसेट्ठिं ठविय पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाएण
 सोहम्मीसाणउवक्कमणकालेण ओवट्ठिदे उप्पज्जमाणजीवा होंति । असंखेज्जजोयणविदिय-
 दंडेण उप्पज्जमाणजीवे इच्छिय अत्रो पलिदोममस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो ।
 एकपदरंगुलविक्खंभेण सेट्ठीए संखेज्जदिभागायामेण खेत्तं पुसंति त्ति पदरंगुलगुणिद-
 सेट्ठीए संखेज्जदिभागो गुणगारो ठवेदव्वो । सव्वत्थ उज्जुगदीए उप्पज्जमाणजीवेहिंतो
 विग्गहगदीए उप्पज्जमाणजीवा असंखेज्जगुणा । कुदो ? सेट्ठीदो उस्सेट्ठीए बहुत्तुवलंभादो ।
 भवणवासियउववादखेत्तं व तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो किं ण होदि त्ति बुत्ते ण
 होदि, पभापत्थडे उप्पज्जमाणं तिरिक्खाणं सव्वेसिं पि सेट्ठीए संखेज्जदिभागायामो
 विदियदंडस्स लब्भदे, तेणेदमुववादखेत्तं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं त्ति । सेसगुणद्वानाणं
 देवभंगो । सणक्कुमारप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छादिट्ठी ओघभंगो ।

क्योंकि, ऐसा माननेपर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण वैक्रियिकसमुद्धातगत क्षेत्रके माननेका प्रसंग आ जाता है । सौधर्म और ईशानकल्पमें देवमिथ्यादृष्टियोंके मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादसम्बन्धी क्षेत्र देवसामान्यके मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादगतके समान जानना चाहिये । उपपादक्षेत्रके स्थापित करते समय सौधर्म-पेशान देवमिथ्यादृष्टियोंकी विष्कम्भसूचीसे गुणित जगश्रेणीको स्थापित करके पल्योपमके असंख्यातवें भागरूप सौधर्म और पेशानसम्बन्धी उपक्रमणकालसे अपवर्तित करनेपर उत्पन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है । पुनः असंख्यात योजनरूप दूसरे दंडसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंको लाना इष्ट है, ऐसा समझकर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण एक दूसरा भागद्वार स्थापित करना चाहिये । तथा एक प्रतरांगुल-प्रमाण विष्कम्भसे और जगश्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण आयामसे क्षेत्रके स्पर्श करते हैं, इसलिये प्रतरांगुलगुणित जगश्रेणीका संख्यातवां भागप्रमाण गुणकार स्थापित करना चाहिये । सर्वत्र ऋजुगतिसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा विग्रहगतिसे उत्पन्न होनेवाले जीव असंख्यातगुणे होते हैं, क्योंकि, श्रेणीकी अपेक्षा उच्छ्रेणियां बहुत पारं जाती हैं ।

शंका—सौधर्म और ईशान कल्पके देवोंका उपपादक्षेत्र भवनवासी देवोंके उपपाद-क्षेत्रके समान तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सौधर्म ईशान कल्पके इकतीसवें प्रभापटलमें उत्पन्न होनेवाले सभी तिर्यग्लोकके दूसरे दंडका आयाम जगश्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है । इसलिये सौधर्म और ईशानकल्पके देवोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा होता है, यह सिद्ध हुआ । सौधर्म और ईशानकल्पके देवोंके शेष गुणस्थानोंके स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रका कथन देवसामान्यके स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रके समान जानना चाहिये । सनत्कुमार-कल्पसे लेकर उपरिम-उपरिमत्रैवेयक तक मिथ्यादृष्टि देवोंका स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्र ओघ मिथ्यादृष्टिके स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्रके समान है । तथा उन्हींके सासादन-

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं ओघभंगो ।

अणुदिसादि जाव सव्वट्ठिसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्मा-
दिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-मारणंतिय-उववादगद-
असंजदसम्माइट्ठिणो चदुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति
त्ति वत्तव्वं । णवरि सव्वट्ठे सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियपदेसु
माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । कथं ? सव्वट्ठे वेदण-कसायसमुग्घादाणं तेहिंतो समुप्पज्ज
माणथोवविप्फुज्जणं पडुच्च तधोवदेसादो, कारणे कज्जेवयारादो वा ।

एवं गदिमगणा समत्ता ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता
केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ॥ १७ ॥

सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंके स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्र ओघ-
सासादनसम्यग्दृष्टि आदिके स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्रोंके समान होते हैं ।

नौ अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिविमान तकके असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने
क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, वैक्रियिकसमु-
द्धात मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादको प्राप्त हुए उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देव सामान्यलोक
आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईट्ठीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं, ऐसा यहां कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें स्वस्थान-
स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिकसमुद्धात इन
स्थानोंमें देव मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, सर्वार्थसिद्धिमें
वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातगत देवोंके उनके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाला स्तोत्र
विस्फूर्जन होता है, अर्थात् उक्त दोनों समुद्धातोंमें आत्मप्रवेशोंका बाह्य विस्तार बहुत कम
होता है, इस अपेक्षा उक्त प्रकारका उपदेश दिया है । अथवा, कारणमें कार्यके उपचारसे
उक्त प्रकारका उपदेश दिया है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियजीव, बादर एकेन्द्रियजीव, सूक्ष्म एकेन्द्रिय-
जीव, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म एकेन्द्रिय
पर्याप्त जीव और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें
रहते हैं ॥ १७ ॥

१ इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियार्णा क्षेत्रं सर्वलोकः । स. सि. १, ८.

एत्थ लोणणिदेसेण पंचण्हं लोणाणं गहणं, देशामर्शकत्वाल्लोकस्य । बादर-सुहु-
मादिवयणेण सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउच्चिय-मारणंतिय-उववादपरिणदजीवाणं गहणं,
छच्चिहावत्थावदिरिच्चवादरादीणमभावादो । तदो सव्वसुत्ताणि देसामासिगाणि चेव ? ण
एस णियमो वि, उभयगुणोवलंभा । सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा एइंदिया
केवाडि खेत्ते ? सव्वलोगे । वेउच्चियसमुग्घादगदा चटुण्हं लोणाणमसंखेज्जदिभागे ।
माणुसखेत्तं ण विण्णायदे, संपहियकाले विस्सिद्धुवएसाभावा । तं जहा- वेउच्चियमुट्ठावेत्त-
रासी पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अहवा तस्स ओगाहणा उस्सेहघणं गुलस्स असंखे-
ज्जदिभागो । तस्स को पडिभागो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । विउच्चमाण-एइं-

इस सूत्रमें लोक पदके निर्देशसे पांचों लोकोंका ग्रहण किया है, क्योंकि, यहां लोक पदका निर्देश देशामर्शक है । सूत्रमें बादर और सूक्ष्म आदि वचनसे स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, वैक्रियिकसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदसे परिणत हुए जीवोंका ग्रहण किया है, क्योंकि, उक्त छह प्रकारकी अवस्थाओंके अतिरिक्त बादर आदि जीव नहीं पाये जाते हैं ।

शंका—यदि ऐसा है, तो सर्व सूत्र देशामर्शक ही हैं ?

समाधान —सर्व सूत्र देशामर्शक ही हैं, यह नियम भी नहीं है, क्योंकि, सूत्रोंमें दोनों प्रकारके धर्म पाये जाते हैं । अर्थात् कुछ सूत्र देशामर्शक हैं और कुछ नहीं, इसलिये सभी सूत्र देशामर्शक ही हैं, यह नियम नहीं किया जा सकता है ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात, और उपपादको प्राप्त हुए एकेन्द्रिय जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं । वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त हुए एकेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । किन्तु मानुषक्षेत्रके सम्बन्धमें नहीं जाना जाता है कि उसके कितने भागमें रहते हैं, क्योंकि, वर्तमानकालमें इसप्रकारका विशिष्ट उपदेश नहीं पाया जाता है । आगे इसी विषयका स्पष्टीकरण करते हैं—विक्रियाको उत्पन्न करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अथवा, विक्रियात्मक एकेन्द्रिय जीवोंके शरीरकी अवगाहना उत्सेधघनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण होती है ।

शंका — उत्सेधघनांगुलमें जिसका भाग देनेसे उत्सेधघनांगुलका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है, उस असंख्यातवें भागका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—पत्योपमका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, अर्थात् पत्योपमके असंख्यातवें भागका उत्सेधघनांगुलमें भाग देनेसे उत्सेधघनांगुलका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है जो विक्रियात्मक एकेन्द्रिय जीवके शरीरकी अवगाहना है ।

ऊपर विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि भी पत्योपमके असंख्यातवें भाग-

दियरासीदो घणंगुलस्स भागहारो कियप्पो बहुमो समो वा इदि ण' णव्वदे ? जदि वेउव्वियरासीदो घणंगुलभागहारो संखेज्जगुणो होदि, तो माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । अह असंखेज्जगुणो, तो असंखेज्जदिभागे । अह सरित्तो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । ण च एत्थ एदं चेव होदि त्ति णिच्छओ अत्थि, तदो माणुसखेत्तं ण णव्वदि त्ति सिद्धं ।

बादरेहंदिय-बादरेहंदियपज्जत्ता सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादग्गा तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोएहितो असंखेज्जगुणे । तं जहा— मंदरमूलादो उवरि जाव सदर-सहस्सारकप्पो त्ति पंचरज्जु-उस्सेधेण लोगणाली समचउरंसा वादेण आउण्णा, तं जगपदरं कस्सामो । एककुणवंचासरज्जुपदराणं जदि एगं जगपदरं लब्भदि, तो पंचरज्जु-पदराणं किं लभामो त्ति फलगुणिदमिच्छं पमाणेणोवड्ढिदे' वे-पंचभागूण-एगूणसत्तरिरूवेहि

प्रमाण बतलाई है और उत्सेधघनांगुलका भागहार भी पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है, इसलिये विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिसे उत्सेधघनांगुलका भागहार क्या छोटा है, या बड़ा है, या समान है, यह कुछ नहीं जाना जाता है । अब यदि एकेन्द्रिय विक्रियिकराशिसे उत्सेधघनांगुलका भागहार संख्यातगुणा है, ऐसा लेते हैं तो विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है, ऐसा अभिप्राय निकलता है । अथवा, विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिसे उत्सेधघनांगुलका भागहार असंख्यातगुणा लेते हैं तो वह राशि मानुषक्षेत्रके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है, यह अभिप्राय होता है । और यदि विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिसे उत्सेधघनांगुलका भागहार समान है, ऐसा लेते हैं तो वह राशि मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है यह अभिप्राय होता है । परंतु यहाँपर मानुषक्षेत्रका इतना ही भाग लिया गया है, ऐसा कुछ भी निश्चय नहीं है, इसलिये मानुषक्षेत्रके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जाना जाता है कि विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि उसके कितने भागमें रहती है, यह सिद्ध हुआ ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है—मन्दराचलके मूल भागसे लेकर ऊपर शतार और सहस्सारकरूप तक पांच राजु उत्सेधरूपसे समचतुरस्र लोकनाली वायुसे परिपूर्ण है । अब उसे जगप्रतरके प्रमाणस्वरूप करते हैं— यदि अनंचास प्रतरराजुओंके एक पटलका एक जगप्रतर प्राप्त होता है, तो पांच प्रतरराजुओंका क्या प्राप्त होगा, इसप्रकार त्रैराशिक करके एक जगप्रतरप्रमाण फल-राशिसे पांच प्रतरराजुप्रमाण इच्छाराशिको गुणित करके अनंचास प्रतरराजुप्रमाण प्रमाण-

२ प्रतिषु ' ण ' इति पाठी नास्ति ।

२ प्रतिषु ' -दी चे ' इति पाठः ।

घणलोगे भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । लोगपेरंतवादखेत्तं संखेज्जजोयणबाहल्लं जगपदरं पुव्वपरूविदमाणेदूण एत्थेव पक्खिविय अट्टपुढविखेत्तं तेसिं हेट्ठा द्विदवादजग-पदरं संखेज्जजोयणबाहल्लमाणेदूण पक्खित्ते जेण लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्ताणं खेत्तं जादं, तेण बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तां लोगस्स संखेज्जदि-भागो होंति त्ति सिद्धं । वेउव्वियसमुग्घादगदाणं एइंदिओधभंगो । मारणंतिय-उववादगदा सव्वलोगे । बादरेइंदियअपज्जत्ताणं बादरेइंदियभंगो । णवरि वेउव्वियपदं णत्थि । सुहुमे-इंदिया तेसिं चैव पज्जत्तापज्जत्ता य सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा सव्व-लोगे, सुहुमाणं सव्वत्थ अच्छणं पडि विरोहाभावादो ।

वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८ ॥

राशिसे भाजित करनेपर, दो बटे पांच कम उनहत्तरसे घनलोकके भाजित करनेपर जो एक भाग होता है उतना लब्ध आता है, जो कि ५ घनराजु प्रमाण है ।

उदाहरण— $1 \times 5 = 5$, $5 \div 89 = \frac{5}{89}$ जगप्रतर । चूंकि यह वातपरिपूर्ण क्षेत्र १ राजु मोटा है, अतएव ५ घनराजु हुआ, जो कि $\frac{3 \times 3 \times 3}{89} \div 6 \times 6 = \frac{3 \times 3 \times 3}{89 \times 6 \times 6}$ घनलोक प्रमाण होता है ।

तथा पहले प्ररूपित किये गये लोकके चारों ओर प्रान्तभागमें संख्यात योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण वातक्षेत्रको लाकर इसी पूर्वोक्त वातक्षेत्रमें मिलाकर तथा आठों पृथिवियोंके क्षेत्र और उनके नीचे स्थित वायुक्षेत्र, जो कि संख्यात योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण हैं, उनको उसी पूर्वोक्त क्षेत्रमें मिला देनेपर चूंकि लोकके संख्यातवें भागप्रमाण बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र होता है, इसलिये बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, यह सिद्ध हुआ । वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त हुए बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र वैक्रियिकसमुद्धातगत सामान्य एकेन्द्रियोंके क्षेत्रके समान होता है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादको प्राप्त हुए बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं । बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंका क्षेत्र बादर एकेन्द्रियोंके समान होता है । इतनी विशेषता है कि बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंके वैक्रियिकसमुद्धातपद नहीं होता है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादको प्राप्त हुए सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव और उन्हींके पर्याप्त अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, सूक्ष्म जीवोंके सर्व लोकमें पाये जानेमें कोई विरोध नहीं है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव और उन्हींके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव

१ प्रतिषु ' बादरेइंदिय० खेत्तं जादं । तेण बादरेइंदियपज्जत्ताणं ' इति पाठः ।

२ विकलेन्द्रियाणां लोकस्यासंख्येयमागः । स. सि. १, ८.

एदस्स अत्थो बुच्चदे- सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घाद-परिणदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे । णवरि तिण्हमपज्जत्ता चट्ठण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । मारणंतिय-उववाद्गदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे, अट्ठाइज्जादो वि असंखेज्जगुणे । एत्थ मारणंतियखेत्तमाणिज्जमाणे वीइंदिय-तीइंदिय-चट्ठिंदिया तेसिं पज्जत्त-अपज्जत्तदव्वं ठविय आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्त-उवक्कमणकालेण खंडिय तस्स असंखेज्जदिभागो वा संखेज्जदिभागो वा मारणंतिएण विणा मरदि त्ति एदस्स असंखेज्जा भागा संखेज्जा भागा वा घेत्तूण मारणंतिय-उवक्कमणकालेण आवलियाए असंखे-ज्जदिभाएण गुणिदे मारणंतियरासी होदि । रज्जुमेत्तायामेण ट्ठिदरासिमिच्छामो त्ति पलि-दोवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहारं ठविय अप्पप्पणो विक्खंभवग्गगुणिदरज्जूए गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि । उववाद्दखेत्तं ठविज्जमाणे एदं चैव ठविय मारणंतिय-उवक्कमण-

कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १८ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात. इन पदोंसे परिणत हुए उक्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इतनी विशेषता है कि तीनों ही विकलेन्द्रियोंके अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । मारणातिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए तीनों विकलेन्द्रिय और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें तथा अट्ठाईद्वीपसे भी असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहाँपर मारणान्तिकक्षेत्रके लाने समय द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा उनकी पर्याप्त और अपर्याप्त जीवराशिको स्थापित कर उसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालसे खंडित करके उसका जो असंख्यातवां भाग अथवा संख्यातवां भाग लब्ध आवे, उतनी राशि मारणान्तिकसमुद्घातके विना मरण करती है । इसलिये इस राशिके असंख्यात बहुभाग अथवा संख्यात बहुभागप्रमाण राशिको ग्रहण करके उसे मारणान्तिकसमुद्घातके उपक्रमण कालरूप आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करने पर मारणान्तिक जीवराशि होती है । यहाँ एक राजुमात्र आयामसे स्थित मारणान्तिक जीवराशि इच्छित है, इसलिये उक्त राशिके नीचे भागहारके स्थानमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र भागहारको स्थापित करके और अपने अपने विष्कंभके वर्गसे गुणित राजुसे उक्त राशिके गुणित करने पर मारणान्तिकसमुद्घातगत विकलत्रय और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंका मारणान्तिकक्षेत्र होता है । उपपाद-क्षेत्रके लाने समय इसी मारणान्तिक जीवराशिको स्थापित करके और उसमेंसे मारणा-

१ प्रतिपु ' असंखेज्जा भागं संखेज्जा भागं ' इति पाठः ।

कालगुणगारमवणिदे एगसमयसंचिदो मारणंतियरासी होदि । तस्स असंखेज्जा भागा विग्गहगदीए उप्पज्जंति त्ति तस्स असंखेज्जे भागे घेत्तूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-
भागेण ओवड्ढिदे सेढीए संखेज्जदिभागायामेण विदियदंडड्ढिरासी होदि ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि-
केवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १९ ॥

एदस्स अत्थो-सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घादगद-
पंचिंदियमिच्छाइट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे अड्ढाइ-
ज्जादो असंखेज्जगुणे । मारणंतिय-उववादगदमिच्छाइट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे,
णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एदाणं खेत्ताणमाणयणं पुच्चं व कादच्चं । सासणादीण-
मोघभंगो । एवं पज्जत्ताणं पि वत्तच्चं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ २० ॥

न्तिक उपक्रमणकालके गुणकारको निकाल लेने पर एक समयमें संचित हुई मारणान्तिक
जीवराशि होती है । एक समयमें संचित हुई इस मारणान्तिक जीवराशिके असंख्यात
बहुभाग जीव विग्रहगतिसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये उसके असंख्यात भागको ग्रहण करके
पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करने पर जगश्रेणीके संख्यातवें भाग आयामरूपसे
दूसरे दंडमें स्थित जीवराशि होती है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगि-
केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानके जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असं-
ख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १९ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना-
समुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तिर्यग्लोकके संख्यातवें
भागप्रमाण क्षेत्रमें और अर्द्धाईपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्धात
और उपपादको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके
असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं । इन क्षेत्रोंको पहलेके समान ले आना चाहिये । सासादनसम्यग्दृष्टि आदिका
स्वस्थानस्वस्थान आदि पदगत क्षेत्र ओघसासादनसम्यग्दृष्टि आदिके स्वस्थानस्वस्थान
आदि पदगत क्षेत्रके समान जानना चाहिये । इसीप्रकार पर्याप्तोंके क्षेत्रका भी कथन
करना चाहिये ।

सजोगिकेवलियोंका क्षेत्र सामान्यप्ररूपणाके समान है ॥ २० ॥

१ पंचेन्द्रियाणां मनुष्यवत् । स. ति. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स अत्थो पुव्वं परूविदो त्ति ण वुच्चदे ।

पंचिंदियअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥२१॥

सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदपंचिंदियअपज्जत्ता चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्त-ओगाहणादो । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे ।

एवमिंदियमग्गणा गदा ।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया, वादरपुढविकाइया वादरआउकाइया वादरतेउकाइया वादरवाउकाइया वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता, सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ॥ २२ ॥

इस सूत्रके अर्थकी प्ररूपणा पहले कर आये हैं, इसलिये यहां पर पुनः उसका कथन नहीं करते हैं ।

लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ २१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातको प्राप्त हुए लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्टाई-द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रियोंकी अवगाहना अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादको प्राप्त हुए लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तथा मनुष्य-लोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तैजस्कायिक वायुकायिक जीव तथा वादर पृथिवीकायिक, वादर अप्कायिक, वादर तैजस्कायिक, वादर वायु-कायिक और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीव तथा इन्हीं पांच वादर काय-सम्बन्धी अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तैजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २२ ॥

१ कायाणुवादेण पृथिवीकायादिवनस्पतिकायिकान्तानां सर्वलोकः । स. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा— पुढविकाइया सुहुमपुढविकाइया तेसिं पज्जत्ता अपज्जत्ता, आउकाइया सुहुमआउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता, तेउकाइया सुहुमतेउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता, वाउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता च सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववाद्गदा सव्वलोए, असंखेज्जलोगमेत्त-परिमाणो । णवरि तेउकाइया वेउच्चियसमुग्घाद्गदा पंचण्हं लोगाणामसंखेज्जदिभागे, वाउकाइया वेउच्चियसमुग्घाद्गदा चट्ठण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । माणुसखेत्तं ण णव्वदे । बादरपुढविकाइया तेसिं चैव अपज्जत्ता सत्थाण-वेदण कसायसमुग्घाद्गदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगादो संखेज्जगुणे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । तं जहा— जेण बादरपुढविकाइया सापज्जत्ता पुढवीओ चैव असिदूण अच्छंति, तेण पुढवीओ जगपदरपमाणेण कस्सामो । तत्थ पढमपुढवी एगरज्जुविकखंभा सत्तरज्जुदीहा वीस-सहरसूण-वे-जोयणलक्खवाहल्ला, एसा अप्पणो वाहल्लस्स सत्तमभागवाहल्लं जगपदरं होदि ।

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इसप्रकार है—स्वस्थानस्वस्थान, वेदना-समुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए पृथिवी-कायिक और सूक्ष्म पृथिवीकायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव, अण्कायिक और सूक्ष्म अण्कायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव, तैजस्कायिक और सूक्ष्म तैजस्कायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव, वायुकायिक और सूक्ष्म वायु-कायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, उक्त राशियोंका परिमाण असंख्यात लोकप्रमाण है । इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकसमु-द्घातको प्राप्त हुई तैजस्कायिकराशि पांचों लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है । वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुई वायुकायिकराशि सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है । वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुई वायुकायिकराशि मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहती है, यह नहीं जाना जाता है । स्वस्थान-स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—चूंकि बादर पृथिवीकायिक जीव और उन्हींके अपर्याप्त जीव पृथिवीका आश्रय लेकर ही रहते हैं, इसलिये पृथिवियोंको जगप्रतरके प्रमाणसे करते हैं । उनमेंसे एक राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और बीस हजार योजन कम दो लाख योजन मोटी पहली पृथिवी है । यह घनफलकी अपेक्षा अपने बाह्यरूपके अर्थात् एक लाख अस्सी हजार योजनके सातवें भाग बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण है ।

१ प्रतिपु ' असंखेज्जगुणे ' इति पाठः ।

२ इत्त आरभ्याष्टपृथिवीप्ररूपकोऽधस्तनो गद्यभागल्लिकप्रज्ञतेः प्रथमाधिकारस्यान्तिमभागेन सह शब्दशः समानः ।

विदियपुढवी सत्तमभागूण-वे-रज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा बत्तीसजोयणसहस्सबाहल्ला सोलहसहस्साहियचदुण्हं लक्खणं एगुणवंचासभागवाहल्लं जगपदरं होदि । तदियपुढवी वे-सत्तभागहीण-तिण्णिरज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा अट्टावीसजोयणसहस्सबाहल्ला बत्तीससहस्साहियं पंचलक्खजोयणाणं एगुणवंचासभागवाहल्लं जगपदरं होदि । चउत्थपुढवी तिण्णि-सत्तभागूण-चत्तारिरज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा चउवीसजोयण-सहस्सबाहल्ला छजोयणलक्खणमेगुणवंचासभागवाहल्लं जगपदरं होदि । पंचमपुढवी

उदाहरण—पहली पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु, पूर्वसे पश्चिमतक एक राजु और एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है, अतएव १८०००० योजनोंके प्रमाणमें ७ का भाग देनेसे २५७१४४ योजन लब्ध आते हैं और एक राजुके स्थानमें जगश्रेणीका प्रमाण हो जाता है। इसप्रकार २५७१४४ योजनोंके जितने प्रदेश हों उतने जगप्रतरप्रमाण पहली पृथिवीका घनफल होता है।

दूसरी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे एक भाग कम दो राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और बत्तीस हजार योजन मोटी है। यह घनफलकी अपेक्षा चार लाख सोलह हजार योजनोंके अनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है।

उदाहरण—दूसरी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु; पूर्वसे पश्चिमतक १३ राजु और ३२००० योजन मोटी;

$$\frac{१३}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{१३}{१}; \quad \frac{१३}{१} \times \frac{३२०००}{१} = \frac{४१६०००}{१}; \quad \frac{४१६०००}{१} \div \frac{४९}{१} = \frac{४१६०००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण.

तीसरी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे दो भाग कम तीन राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और अट्टाईस हजार योजन मोटी है। यह घनफलकी अपेक्षा पांच लाख बत्तीस हजार योजनोंके अनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है।

उदाहरण—तीसरी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक ७ राजु लम्बी, पूर्वसे पश्चिमतक १३ राजु चौड़ी; और २८००० योजन मोटी है।

$$\frac{१३}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{१३}{१}; \quad \frac{१३}{१} \times \frac{२८०००}{१} = \frac{५३२०००}{१}; \quad \frac{५३२०००}{१} \div \frac{४९}{१} = \frac{५३२०००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगप्रतर.

चौथी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे तीन भाग कम चार राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और चौवीस हजार योजन मोटी है। यह घनफलकी अपेक्षा छह लाख योजनोंके अनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है।

उदाहरण—चौथी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु, पूर्वसे पश्चिमतक १५ राजु

चत्तारि-सत्तभागूणपंचरज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा वीसजोयणसहस्सबाहल्ला वीस-सहस्साहियछण्हं लक्खाणमेगूणवंचासभागवाहल्लं जगपदरं होदि । छट्ठपुढवी पंच-सत्त-भागूण-छरज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा सोलहजोयणसहस्सबाहल्ला वाणउदिसहस्साहिय-पंचण्हं लक्खाणमेगूणवंचासभागवाहल्लं जगपदरं होदि । सत्तमपुढवी छ-सत्तभागूण-सत्तरज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा अट्ठजोयणसहस्सबाहल्ला चउदालसहस्साहियतिण्हं लक्खाणमेगूणवंचासभागवाहल्लं जगपदरं होदि । अट्ठमपुढवी सत्तरज्जुआयदा एगरज्जु-

और मोटी २४००० योजन है ।

$$\frac{२५}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{२५}{१}; \quad \frac{२५}{१} \times \frac{२४०००}{१} = \frac{६०००००}{१}; \quad \frac{६०००००}{१} \div \frac{४९}{१} = \frac{६०००००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण.

पांचवी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे चार भाग कम पांच राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और वीस हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा छह लाख बीस हजार योजनोंके उन्चासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है ।

उदाहरण--पांचवी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु; पूर्वसे पश्चिमतक $\frac{३१}{७}$ राजु और मोटी २०००० योजन है ।

$$\frac{३१}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{३१}{१}; \quad \frac{३१}{१} \times \frac{२००००}{१} = \frac{६२००००}{१}; \quad \frac{६२००००}{१} \div \frac{४९}{१} = \frac{६२००००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण.

छठी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे पांच भाग कम छह राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और सोलह हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा पांच लाख चानवे हजार योजनोंके उन्चासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है ।

उदाहरण—छठी पृथिवी उत्तरसे दक्षिण तक सात राजु; पूर्वसे पश्चिम तक $\frac{३७}{७}$ राजु और मोटी १६००० योजन है ।

$$\frac{३७}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{३७}{१}; \quad \frac{३७}{१} \times \frac{१६०००}{१} = \frac{५९२०००}{१}; \quad \frac{५९२०००}{१} \div \frac{४९}{१} = \frac{५९२०००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण.

सातवीं पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे छह भाग कम सात राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और आठ हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा तीन लाख चवालीस हजार योजनोंके उन्चासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है ।

उदाहरण—सातवीं पृथिवी उत्तरसे दक्षिण तक सात राजु; पूर्वसे पश्चिम तक $\frac{४३}{७}$ राजु और मोटी ८००० योजन है ।

रून्दा अद्भुजोयणवाहल्ला सत्तमभागाहिय-एकजोयणवाहल्लं जगपदरं होदि । एदाणि सव्वाणि एगडे कदे तिरियलोगवाहल्लादो संखेज्जगुणवाहल्लं जगपदरं होदि । एत्थ असंखेज्जा लोगमेत्ता पुढविकाइया चिद्धंति, तेण तिरियलोगादो संखेज्जगुणो त्ति सिद्धं । एदेहि पदेहि लोगस्स असंखेज्जादिभागे चिद्धंता बादरपुढविकाइया सुत्तेण सव्वलोगे चिद्धंति त्ति बुत्ता, तं कधं घडदे ? ण, मारणंतिय-उववादपदे पडुच्च तधोवदेसादो । मारणंतिय-उववाद्गदा सव्वलोगे । एवं बादरआउकाइयाणं तेसिमपज्जत्ताणं च । पुढवीसु सव्वत्थ ण जलमुवलं-

$$\frac{४३}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{४३}{१}; \quad \frac{४३}{१} \times \frac{८०००}{१} = \frac{३४४०००}{१}; \quad \frac{३४४०००}{१} \div \frac{४२}{१} = \frac{३४४०००}{४२}$$

योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण.

आठवीं पृथिवी सात राजु लम्बी, एक राजु चौड़ी और आठ योजन मोटी है। यह घनफलकी अपेक्षा एक योजनके सात भाग करनेपर उनमेंसे सातवां भाग अर्थात् एक भाग अधिक एक योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है।

उदाहरण—आठवीं पृथिवी उत्तरसे दक्षिण तक सात राजु; पूर्वसे पश्चिम तक एक राजु और आठ योजन मोटी है।

$$१ \times ७ = ७; \quad ८ \div ७ = ९ \text{ योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण.}$$

इन सबको एकत्रित करनेपर तिर्यग्लोकके बाहल्यसे संख्यातगुणे बाहल्यरूप जगप्रतर होता है। इन पृथिवियोंमें असंख्यात लोकप्रमाण पृथिवीकायिक जीव रहते हैं, इसलिये वे तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ—तिर्यग्लोकका प्रमाण घनफलकी अपेक्षा १४२८५९ योजन बाहल्यरूप जगप्रतर है और आठों पृथिवियोंका घनफल ६२३४३६९ योजन बाहल्यरूप जगप्रतर है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि तिर्यग्लोकके प्रमाणसे आठों पृथिवियोंका क्षेत्र संख्यातगुणा है। बादर पृथिवीकायिक जीव इन आठों पृथिवियोंमें सर्वत्र पाये जाते हैं, इसलिये वे तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, यह सिद्ध हो जाता है।

शंका—उपर्युक्त स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात, इन पदोंकी अपेक्षा बादर पृथिवीकायिक जीव जब कि लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, तो वे 'सर्व लोकमें रहते हैं' ऐसा जो सूत्रद्वारा कहा गया है वह कैसे घटित होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादकी अपेक्षा 'बादर पृथिवीकायिक जीव सर्व लोकमें रहते हैं,' इसप्रकारका उपदेश दिया गया है।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक और बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं। इसीप्रकार बादर अण्कायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंका भी कथन करना चाहिये। अर्थात् पृथिवीकायिक और अपर्याप्त पृथिवी-

भदि त्ति आउकाइया सव्वत्थ पुढवीसु ण होंति त्ति णासंक्रणिज्जं, बादरकम्मोदएण बादरत्तमुवगयाणं अणुवलंममाणं पि सव्वपुढवीसु अत्थित्तविरोधाभावादे । एवं बादर-तेउकाइयाणं तस्सेव अपज्जत्ताणं च । णवरि वेउव्वियपदमत्थि, ते च पंचण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे । तेउकाइया बादरा सव्वपुढवीसु होंति त्ति कथं णव्वदे ? आगमादो । एवं बादरवाउकाइयाणं तेसिमपज्जत्ताणं च । णवरि सत्थाण-वेयण-कसाय-समुग्घादगदा तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, दो-लोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । वेउव्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । माणुसखेत्तं ण विण्णायदे । सव्वअपज्जत्तेसु वेउव्वियपदं णत्थि ।

कायिक जीवोंके समान स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कपायसमुद्घातको प्राप्त हुए बादरजलकायिक और बादरजलकायिक अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें, तथा मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए बादर जलकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं ।

शंका—पृथिवियोंमें सर्वत्र जल नहीं पाया जाता है, इसलिये जलकायिक जीव पृथिवियोंमें सर्वत्र नहीं रहते हैं ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि, बादरनामक नाम-कर्मके उदयसे बादरत्वको प्राप्त हुए जलकायिक जीव यद्यपि पृथिवियोंमें सर्वत्र नहीं पाये जाते हैं, तो भी उनका सर्व पृथिवियोंमें अस्तित्व होनेमें कोई विशेष नहीं आता है ।

इसीप्रकार अर्थात् बादर जलकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंके समान बादर तैजस्कायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंका स्वस्थानस्वस्थान आदि पूर्वोक्त पदोंमें कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि बादर तैजस्कायिक जीवोंके वैक्रियिकसमुद्घातपद भी होता है और वे पांचों लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—बादर तैजस्कायिक जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आगमसे यह जाना जाता है कि बादर तैजस्कायिक जीव सर्व पृथिवियोंमें रहते हैं ।

इसीप्रकार बादर वायुकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंके पदोंका कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, और कपायसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर वायुकायिक और बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोक इन दो लोकोंसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर वायुकायिक जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । किन्तु यहां मनुष्यक्षेत्र नहीं जाना जाता है कि उसके कितने भागमें रहते हैं । सभी अपर्याप्त जीवोंमें वैक्रियिकसमुद्घातपद नहीं होता

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता बादरणिगोदपदिट्ठिदा तस्सेव अपज्जत्ता च बादरपुढवितुल्ला ।

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवण-
प्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागे ॥ २३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा — बादरपुढविपज्जत्ता सत्थाण-वेदण-
कसायसमुग्घादगदा चट्ठुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अट्ठुण्हज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ
ओवट्ठणं ठविय जोएदच्चं । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-
तिरियलोगेहितो असंखेज्जगुणे । एवं बादरआउकाइयपज्जत्ता । बादरवणप्फदिकाइयपत्तेय-
सरीर-बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ताणमेवं चैव । णवरि बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता
वेदण-कसाय-सत्थाणेषु तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे । एदेसिं रासीणं पल्लिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागमेत्ता जगपदराणि पदरंगुलेण खंडिदेयखंडमेत्तपमाणं होदि । ओगाहणा पुण

है । बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और उन्हींके अपर्याप्त जीव तथा बादर निगोद-
प्रतिष्ठित और उन्हींके अपर्याप्त जीव, बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान हैं ।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव, बादर अप्कायिक पर्याप्त जीव, बादर तैजस्का-
यिक पर्याप्त जीव और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें
रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ २३ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इसप्रकार है — स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात
और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार
लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।
यहांपर अपवर्तनाकी स्थापना करके योजना कर लेना चाहिये । मारणाभित्तकसमुद्घात और
उपपादको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके
असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तथा मनुष्य और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते
हैं । बादर अप्कायिक पर्याप्त जीव भी स्वस्थानस्वस्थान आदि पदोंमें इसीप्रकार रहते हैं ।
बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त और बादर निगोद प्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंके पदोंका
इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और
स्वस्थान पदगत बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव तिर्यग्लोकके संख्यातवें
भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण जगप्रतरोको प्रतरांगुलसे खंडित
करके जो एक भाग लब्ध आवे उतना इन राशियोंका प्रमाण है । तथा अवगाहना घनांगुलके

घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो । तस्स को पडिभागो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तओगाहणा वि घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता, अण्णहा तदो बीइंदियपज्जत्तओगाहणा असंखेज्जगुणा ण होज्ज । तदो पत्तेयसरीरपज्जत्तरासी तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागेण होज्ज ? ण एस दोसो, घणंगुलभागहारो पदरंगुलभागहारादो संखेज्जगुणो चि । पत्तेयसरीरपज्जत्तजहण्णोगाहणादो बीइंदियपज्जत्तजहण्णोगाहणा असंखेज्जगुणा चि कुदो णव्वदे ? वेदणाखेत्तविहाणमिह वुत्तवोगाहणदंडयादो । तं जहा— सव्वत्थोवा सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा । सुहुमवाउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । सुहुमतेउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । सुहुमआउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । सुहुमपुढविकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादर-

असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

शंका— उसका क्या प्रतिभाग है, अर्थात् जिसका भाग घनांगुलमें देनेसे उसका विवक्षित असंख्यातवां भाग आता है, वह प्रतिभाग क्या है ?

समाधान— पल्योपमका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

शंका— बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवकी अवगाहना भी घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है, यदि पेसा न माना जावे तो इससे द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंकी अवगाहना असंख्यातगुणी नहीं हो सकती है, इसलिये प्रत्येकशरीर पर्याप्तराशि तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण होना चाहिये ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, घनांगुलका भागद्वार प्रतरांगुलके भागद्वारसे संख्यातगुणा है ।

शंका— वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्तकी जघन्य अवगाहनासे द्वीन्द्रिय पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान— वेदनाक्षेत्रविधानमें कहे गये अवगाहनादंडकसे यह जाना जाता है कि प्रत्येकशरीरकी जघन्य अवगाहनासे द्वीन्द्रिय पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ।

आगे इसीका स्पष्टीकरण करते हैं— सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना सबसे स्तोका है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म तैजस्कायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर

वाउकाइयअपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरतेउकाइयअपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरआउकाइयअपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरपुढविकाइयअपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । णिगोदपदिट्ठिद-अपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरीरअप-ज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । वेइंदियअपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तेइंदियअपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । चउरिदिय-अपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । पंचिदियअपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । सुहुमणिगोदजीवणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । सुहुमवाउकाइय-णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्क-स्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । सुहुमतेउकाइयाणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव अप-

वायुकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर तैज-स्कायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर जलकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर निगोद अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे निगोद प्रतिष्ठित अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यात-गुणी है । इससे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म निगोद निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे सूक्ष्म निगोद निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्या अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे सूक्ष्म तैजस्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ।

जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । बादरणिगोदणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । (णिगोदपदिट्ठिदपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ।) बादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । वेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्य जहणिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । पंचिदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । तेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । चउरिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । वेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । बादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ।

जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर पृथिवीकायिक निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे बादर पृथिवीकायिक निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे बादर निगोद निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर निगोद निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे बादर निगोद निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । (इससे निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे निगोदप्रतिष्ठित निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ।) इससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट

१ प्रतिषु कोष्टकान्तर्गतपाठो नास्ति, वेदनाखंडादत्र योजितः ।

पंचिदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । तेइंदियणिव्वत्ति-
पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्क-
स्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । वेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा
संखेज्जगुणा । बादरवणप्फइपत्तेयसरीरणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखे-
ज्जगुणा । पंचिदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । सुहुमादो
सुहुमस्स ओगाहणागुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सुहुमादो बादरस्स ओगा-
हणागुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । बादरादो सुहुमस्स ओगाहणागुणगारो
आवलियाए असंखेज्जदिभागो । बादरादो बादरस्स ओगाहणागुणगारो पलिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागो । बादरादो बादरस्स ओगाहणागुणगारो संखेज्जा समया । एत्थ
बादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा घणंगुलस्स असंखेज्जदि-
भागो इदि बुत्ते होदु णामेदं, पदरंगुलभागहारादो घणंगुलभागहारो संखेज्जगुणो त्ति कुदो
णव्वदे ? तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे त्ति गुरुवएसादो । एदम्हादो चेव एदिस्से ओगा-

अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे बादर वनस्पति-
कायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है ।

एक सूक्ष्मजीवसे दूसरे सूक्ष्मजीवकी अवगाहनाका गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है । सूक्ष्मजीवसे बादर जीवकी अवगाहनाका गुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । बादरजीवसे सूक्ष्मजीवकी अवगाहनाका गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है । बादरजीवसे अन्य बादरजीवकी अवगाहनाका गुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । बादरसे बादरकी अवगाहनाका गुणकार संख्यात समय है, अर्थात् बादर पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवकी अधन्य अवगाहनासे बादर पर्याप्त त्रीन्द्रिय आदि जीवोंकी अवगाहनाका गुणकार संख्यात समय है ।

शंका — यहाँ पर बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकी अधन्य अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भाग कही है, सो वह भले ही रही आवे, किन्तु प्रतरांगुलके भाग-
हारसे घनांगुलका भागहार संख्यातगुणा होता है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव वेदनासमुदात्त, कषाय-
समुदात्त और स्वस्थानपदोंकी अपेक्षा 'तिर्यक्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं' इस प्रकारके
गुरूपदेशसे जाना जाता है कि प्रतरांगुलके भागहारसे घनांगुलका भागहार संख्यातगुणा है ।

हणाए जीवबहुत्तं च णायच्चं । बादरणिगोदपादिद्विदपज्जत्ता किमिदि सुत्तमिह ण वुत्ता ? ण, तेसि पत्तेयसरीरेसु अंतम्भावादो । बादरतेउकाइयपज्जत्ता सत्थाण-वेदण-कसाय-वैउम्भिय-समुग्घादगदा पंचण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । मारणंतिय-उववादगदा चदुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे ।

बादरवाउकाइयपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स संखेज्जदि-भागे ॥ २४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे— सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा बादरवाउपज्जत्ता तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । बादरवाउ-पज्जत्तरासी लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तो मारणंतिय-उववादगदो सच्चलोगे किण्ण होदि त्ति वुत्ते ण होदि, रज्जुपदरमुहेण पंचरज्जुआयामेण' द्विदखेत्ते चैव पाएण तेसिमुप्पत्तीदो ।

तथा, उक्त इसी गुरुपदेशसे बादरवनस्पतिकाधिक प्रत्येकशरीरकी अवगाहनामें जीवोंकी आधिकता भी जानना चाहिए ।

शंका—सूत्रमें बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव क्यों नहीं कहे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंका प्रत्येकशरीर पर्याप्त घनस्पतिकायिक जीवोंमें अन्तर्भाव हो जाता है ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत बादर-तैजस्कायिक पर्याप्त जीव पाँचों लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिक-समुद्घात और उपपादगत वे ही बादर तैजस्कायिक जीव चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिक-समुद्घात और उपपाद पदगत बादरवायुकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोक इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—बादर वायुकायिक पर्याप्तराशि लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है, जब वह मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंको प्राप्त हो तब वह सर्व लोकमें क्यों नहीं रहती है ?

समाधान—नहीं रहती है, क्योंकि, राजुप्रतरप्रमाण मुखसे और पाँच राजु आयामसे स्थित क्षेत्रमें ही प्रायः करके उन बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंकी उत्पत्ति होती है ।

१ बादरवातकायिकाना विकुर्वणाद् रज्जुन्यासायाम-पंचरज्जुदयक्षेत्रफलं लोकसंख्यातभागमात्रं भवति ।
गो. जी. जी. प्र. गा. ५४५.

अण्णखेत्तंतरं गंतूणुप्पज्जमाणजीवाणमइथोवत्तं कधमवगम्मदे ? वादरवाउक्काइयपज्जत्ता लोगस्स संखेज्जदिभागे इदि सुत्तादो । अण्णहा सुत्तस्स पुध आरंभो णिरत्थओ होज्ज, वादरवाउअपज्जत्तेसु अंतंभावादो । वेउव्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । अट्टाइज्जं ण विण्णायदे ।

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा वादरा सुहुमा पज्जत्तापज्जत्ता केवडि खेत्ते, सब्वलोगे ॥ २५ ॥

सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा वणप्फदिकाइया सुहुमवणप्फइ-काइया तेसिं पज्जत्ता अपज्जत्ता च सत्थाण-वेदणसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगादो संखेज्जगुणे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे । मारणंतिय-उववादगदा सब्वलोए । वादरा पुढवीओ चैव असिस्सदूण अच्छंति त्तिं लोगस्स असंखेज्जदिभागे होंति ।

शंका—अन्य क्षेत्रान्तरको जाकर उत्पन्न होनेवाले वादर वायुकायिक पर्याप्त जीव अत्यन्त थोड़े हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—‘वादर वायुकायिक पर्याप्त जीव लोकके संख्यातर्वे भागमें रहते हैं,’ इस सूत्रसे जाना जाता है कि राजुप्रतरप्रमाण मुखवाले और पांच राजु आयामवाले क्षेत्रके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रमें जाकर उत्पन्न होनेवाले वादर वायुकायिक पर्याप्त जीव बहुत कम होते हैं । यदि पेसा न माना जावे, तो इस सूत्रका पृथक् आरंभ निरर्थक हो जायगा, क्योंकि, फिर तो उनका वादर वायुकायिक अपर्याप्तोंमें अन्तर्भाव हो जायगा ।

वैकियायिकसमुद्घातगत वादर वायुकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातर्वे भागमें रहते हैं । अट्टाईद्वीपसे अधिक क्षेत्रमें रहते हैं या कममें, यह जाना नहीं जाता ।

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक वादर जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक वादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक वादर अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, निगोद वादर पर्याप्त जीव, निगोद वादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २५ ॥

स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत वनस्पतिकायिक, स्वस्थान और वेदनासमुद्घातगत सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातर्वे भागमें, तिरिय-लोकसे संख्यातगुणे और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिक-समुद्घात और उपपादगत उपर्युक्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं । वादर वनस्पतिकायिक जीव पृथिवियोंका ही आश्रय लेकर रहते हैं, इसलिये वे लोकके असंख्यातर्वे भागमें रहते हैं ।

१ आधारे थूला ओ । गो. जी. १८४.

एदं कथं णव्वदे ? गुरुवणसादो ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि-
केवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २६ ॥

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तमिच्छाइट्ठी सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउ-
न्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अङ्काइ-
जादो असंखेज्जगुणे । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरिय-
लोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्ठणा जाणिय कायव्वा । सेसगुणट्ठाणाणं पंचिंदियभंगो ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ २७ ॥

सुगममेदं ।

तसकाइयअपज्जत्ता पंचिंदियअपज्जत्ताणं भंगो ॥ २८ ॥

शंका — यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—गुरुके उपदेशसे जाना जाता है कि बादर वनस्पतिकार्यिक जीव
पृथिवियोंके ही आश्रयसे रहते हैं ।

त्रसकार्यिक और त्रसकार्यिक पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर
अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रि-
यिकसमुद्धातगत त्रसकार्यिक और त्रसकार्यिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अट्टाईपसे
असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादगत त्रसकार्यिक और
त्रसकार्यिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव तीनों लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक और
तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहाँपर अपवर्तना जानकरके करना चाहिये ।
सासादनादि शेष गुणस्थानवर्ती त्रसकार्यिक और त्रसकार्यिक पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र पंचेन्द्रिय
जीवोंके क्षेत्रोंके समान जानना चाहिए ।

सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघनिरूपित सयोगिकेवलीके क्षेत्रके समान है ॥ २७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

त्रसकार्यिक लब्धपर्याप्त जीवोंका क्षेत्र पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकोंके क्षेत्रके
समान है ॥ २८ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं, पुब्बं परुविदत्तादो ।

एवं कायमग्गणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि
जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो बुच्चदे- पंचमणजोगि-पंचवचिजोगिमिच्छादिट्ठी सत्थाण-
सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-
भागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे । वेउव्वियसमुग्घाद-
गदाणं कधं मणजोग-वचिजोगाणं संभवो ? ण, तेसिं पि णिप्पण्णुत्तरसरीराणं मणजोग-
वचिजोगाणं परावत्तिसंभवादो । मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे,
णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । मारणंतियसमुग्घादगदाणं असंखेज्जजोयणायामेण
ठिदाणं मुच्छिदाणं कधं मण-वचिजोगसंभवो ? ण, वारणामावादो अवत्ताणं णिभरसुत्त-

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, इसका पहले प्ररूपण किया जा चुका है ।

इसप्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियोंमें मिथ्या-
दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने
क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २९ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात,
कषायसमुद्घात और वैकियिकसमुद्घातगत पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि
जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें
और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—वैकियिकसमुद्घातको प्राप्त जीवोंके मनोयोग और वचनयोग कैसे संभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, निष्पन्न हुआ है विक्रियात्मक उत्तरशरीर जिनके, ऐसे
जीवोंके मनोयोग और वचनयोगोंका परिवर्तन संभव है ।

मारणान्तिकसमुद्घातगत पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असं-
ख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त, असंख्यात योजन आयामसे स्थित और
मूर्च्छित हुए संबन्धी जीवोंके मनोयोग और वचनयोग कैसे संभव हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, बाधक कारणके अभाव होनेसे निर्भर (भरपूर) सोते

१ योगाणुवादेण वाइमानसयोगिना मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगिकेवत्यन्तानां लोकस्यासंख्येभागः । स. सि. १, ८.

जीवाणं व तेसिं तत्थ संभवं पडि विरोहाभावादो । मण-वच्चिजोगेसु उववादो णत्थि । सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव असमुग्घादसजोगिकेवलि त्ति मूलोघभंगो । णवरि सासण-असंजदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि ।

कायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं ॥ ३० ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंति-उववादगदा कायजोगिमिच्छाइट्ठी सच्च-लोए । विहारवदिसत्थाण-वेउक्खियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्ठणा जाणिय कायव्वा ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछट्टुमत्था केवदि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३१ ॥

जोगाभावादो एत्थ अजोगीणमगहणं । सेसं सुगमं ।

हुए जीवोंके समान अव्यक्त मनोयोग और वचनयोग मारणान्तिकसमुद्धातगत मूर्च्छित-अवस्थामें भी संभव हैं, इसमें कोई विरोध नहीं है ।

मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंमें उपपादपद नहीं होता है । सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर समुद्धातरहित सयोगिकेवली गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती मनो-योगी और वचनयोगी जीवोंका क्षेत्र मूलोघ क्षेत्रके समान है । विशेष बात यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंके उपपादपद नहीं होता है ।

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ३० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात और उप-पादगत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं । विहारवत्स्वस्थान और वैकृतिक-समुद्धातगत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यल्लोकके संख्यातवें भागमें और अट्ठाईट्ठीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहाँपर अपवर्तना जान करके करना चाहिए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछट्टुमत्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती काययोगी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३१ ॥

योगका अभाव होनेसे इस सूत्रमें अयोगिकेवलियोंका ग्रहण नहीं किया गया है । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

१ काययोगिना मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिना च सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३२ ॥

गुणपडिवण्णाणमेगजोगो किण्ण कदो ? ण, सजोगिग्घि लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा इदि विसेसुवलंभादो ।

ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं ॥ ३३ ॥

एदे सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतियसमुग्घादगदा सव्वलोए, सुहुमपज्जत्ताणं सव्व-लोगखेत्तेसु संभवादो । उववादो णत्थि, गिरुद्धोरालियकायजोगादो । विहारवदिसत्थाणगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, तसपज्जत्तरासिस्स संखेज्जदि-भागस्स संचारो होदि त्ति गुरूवएसादो । अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । वेउव्वियसमुग्घाद-गदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे, ओरालियकायजोगे गिरुद्धे वेउव्वियकायजोगिसहगदवेउव्वियसमुग्घादस्स असंभवादो ।

काययोगवाले सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघसयोगिकेवलीके क्षेत्रके समान है ॥३२॥

शंका—सासादनादि गुणस्थानप्रतिपन्न सभी जीवोंका एक योग क्यों नहीं किया ? अर्थात् पूर्वोक्त 'सासणसम्मदिट्ठिप्पहुडि' इत्यादि सूत्रका और इस 'सजोगिकेवली ओघं' सूत्रका एक समास क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सयोगिकेवलीके क्षेत्रमें, 'सयोगिकेवली लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और सर्व लोकमें रहते हैं' इस प्रकारका विशेष कथन पाया जाता है, इसलिए उक्त दोनों सूत्रोंका एक योग नहीं किया ।

औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥३३॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घातगत ये औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, सूक्ष्म पर्याप्त एकेन्द्रिय जीव सर्व लोकवर्ती क्षेत्रोंमें संभव हैं । किन्तु उक्त जीवोंके उपपादपद नहीं होता है, क्योंकि, यहां पर औदारिककाययोगसे निरुद्ध जीवोंका क्षेत्र बताया जा रहा है । विहारवत्स्वस्थान-वाले औदारिककाययोगी जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, और तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, समस्त त्रसपर्यायराशिके संख्यातवें भागका ही संचार (विहार) होता है, ऐसा गुरुका उपदेश है । उक्त औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव अद्वाइट्ठीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । वैक्रियिकसमुद्घातगत औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अद्वाइट्ठीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, औदारिककाययोगसे निरुद्ध क्षेत्रका वर्णन करते समय वैक्रियिककाययोगी जीवोंके होनेवाला वैक्रियिकसमुद्घात असंभव है ।

विशेषार्थ—इस उक्त कथनका अभिप्राय यह है कि अभी ऊपर वैक्रियिकसमु-

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली लोगस्स असंखे-
ज्जदिभागे ॥ ३४ ॥

कथं सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जदिभागे ? ण एस दोसो, ओरालियकाय-
जोगे णिरुद्धे ओरालियमिस्स-कम्मइयकायजोगसहगदकवाड-पदर-लोगपूरणाणमसंभवादो ।
सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमुववादो णत्थि । पमत्ते आहारसमुग्घादो णत्थि । सेसं
जाणिय वत्तच्चं ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३५ ॥

द्वातको प्राप्त औदारिककाययोगी जीवोंका क्षेत्र तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग बताया है,
तब शंका की जा सकती है कि वैक्रियिकशरीरवाले जीवोंके वैक्रियिकसमुद्घातका क्षेत्र तो
तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग बतलाया गया है, फिर यहां उसका क्षेत्र तिर्यग्लोकका असं-
ख्यातवां भाग क्यों कहा ? इस आशंकाका समाधान करते हुए ध्रुवलाकार कहते हैं कि यहां
पर औदारिककाययोगका प्रकरण है, अतएव औदारिकशरीरवाले मनुष्य और तिर्यग्लोकके जो
वैक्रियिकसमुद्घात होता है, उसका क्षेत्र तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही हो सकता
है, अधिक नहीं । हां, वैक्रियिकशरीरवाले देवादिकोंके जो वैक्रियिकसमुद्घात होता है उसका
क्षेत्र अवश्य तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है । किन्तु उसका यहां प्रकरण नहीं है,
क्योंकि, औदारिककाययोगका क्षेत्र-कथन करते समय वैक्रियिककाययोगिसहगत वैक्रियिक-
समुद्घातका क्षेत्र कहना असंभव है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-
स्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३४ ॥

शंका— सयोगिकेवली भगवान् लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, इतना ही
क्यों कहा ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, औदारिककाययोगसे निरुद्ध क्षेत्रका
वर्णन करते समय औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोगके साथमें होनेवाले कपाट,
प्रतर और लोकपूरण समुद्घातोंका होना संभव नहीं है । इसलिए औदारिककाययोगी सयोगि
केवली लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, ऐसा कहा है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि औदारिककाययोगी जीवोंके उपपादपद
नहीं होता है । प्रमत्तगुणस्थानमें आहारकसमुद्घातपद भी नहीं है, क्योंकि, यहांपर औदारिक-
काययोगियोंका क्षेत्र बताया जा रहा है । शेष गुणस्थानोंमें यथासंभव पद जानकर कहना
चाहिए ।

- औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्वलोकमें रहते
हैं ॥ ३५ ॥

बहुसु कधमेगवयणणिद्दसो ? ण एस दोसो, बहूणं पि जादीए एगत्तुवलंभादो । अधवा मिच्छाइट्ठी इदि एसो बहुवयणणिद्दसो चव । कधं पुण एत्थ विहत्ती गोवल्लभदे ? 'आइ-मज्झंतवण्णसरलोवो' इदि विहत्तिलोवादो । सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववाद-गदा ओरालियमिस्सकायजोगिमिच्छाइट्ठी सच्चलोगे । विहारवदिसत्थाण-वेउच्चियसमुग्घादा णत्थि, तेण तेसिं विरोहादो । ओरालियमिस्सस्स वेउच्चियादिपदेहि भेदसंभवादो ओघ-णिद्दसो ण घडदे ? ण एस दोसो, एत्थ विज्जमाणपदानं परूवणा ओघपरूवणाए तुल्लेत्ति ओघत्तविरोधाभावादो ।

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३६ ॥

एत्थ पुव्वसुत्तादो ओरालियमिस्सकायजोगो अणुवट्ठदे । तेणेवं संबंधो भवदि-

शंका—मिथ्यादृष्टियोंके बहुत होने पर भी यहां सूत्रमें एक वचनका निर्देश कैसे किया गया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि संख्याकी अपेक्षा बहुतसे भी जीवोंके जातिकी विवक्षासे एकत्व पाया जाता है । अथवा, 'मिच्छाइट्ठी' यह पद बहुवचनका ही निर्देश समझना चाहिए ।

शंका—तो फिर यहां बहुवचनकी विभक्ति क्यों नहीं पाई जाती है ?

समाधान—'आदि, मध्य और अन्तके वर्ण और स्वरका लोप हो जाता है,' इस प्राकृतव्याकरणके सूत्रानुसार बहुवचनकी विभक्तिका लोप हो गया है ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्दात, कषायसमुद्दात, मारणान्तिकसमुद्दात और उपपाद् पदगत औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं । यहांपर विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्दात ये दो पद नहीं होते हैं, क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगके साथ इन दोनों पदोंका विरोध है ।

शंका—औदारिकमिश्रकाययोगका वैक्रियिकसमुद्दात आदि पदोंके साथ भेद पाया पाया जाता है, अतएव सूत्रमें 'ओघ' पदका निर्देश घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यहां औदारिकमिश्रकाययोगमें विद्यमान स्वस्थान आदि पदोंकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके तुल्य है, इसलिए ओघपना विरोधको प्राप्त नहीं होता है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३६ ॥

इस सूत्रमें पूर्व सूत्रसे 'औदारिकमिश्रकाययोग' इस पदकी अनुवृत्ति होती है ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली केवडि खेत्ते इदि । सासणसम्मादिट्ठी सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागे अङ्काइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? ओरालियमिस्सम्हि पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागमेत्तसासणसम्मादिट्ठिरासिस्स संभवादो । एत्थ सेसपदाणि णत्थि, तेण तेसिं तत्थ विरोधादो । असंजदसम्माइट्ठी सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखे-ज्जदिभागे माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे, संखेज्जपरिमाणादो । सासणसम्मादिट्ठि-असंजद-सम्मादिट्ठीणमुववादो किमट्ठं ण उत्तो ? ण, ओरालियमिस्सम्हि ट्ठिदाणमोरालियमिस्सकाय-जोगेसु उववादाभावादो । अथवा उववादो अत्थि, गुणेण सह अक्कमेण उपात्तभवसरीर-पढमसमए उवलंभादो, पंचावत्थावदिरित्तओरालियमिस्सजीवाणमभावादो च । सजोगि-

इसलिए सूत्रके अर्थका इसप्रकार सम्बन्ध होता है— औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सासादन-सम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगमें पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी राशिका पाया जाना संभव है । यहाँपर शेष विहारवत्स्वस्थान आदि पद नहीं होते हैं, क्योंकि, सासादन गुणस्थानके साथ उन पदोंका यहाँपर विरोध है ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातगत औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्य-क्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, वे संख्यात राशिप्रमाण होते हैं ।

शंका—औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपादपद क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगमें स्थित जीवोंका पुनः औदा-रिकमिश्रकाययोगियोंमें उपपाद नहीं होता है । अथवा, उपपाद होता है, क्योंकि, सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके साथ अक्रमसे उपात्त भव-शरीरके प्रथम समयमें उसका सद्भाव पाया जाता है । दूसरी बात यह है कि स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषाय-समुद्घात, केवलिसमुद्घात और उपपाद इन पांच अवस्थाओंके अतिरिक्त औदारिकमिश्रकाय-योगी जीवोंका अभाव है ।

विशेषार्थ—यहाँपर प्रथम तो औदारिकमिश्रकाययोगियोंका औदारिकमिश्रकाय-योगियोंमें उपपादका अभाव बतलाया गया । पुनः, अथवा करके औदारिकमिश्रकाययोगि-योंमें उपपादका सद्भाव भी बतला दिया गया । ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध ही प्रतीत होती हैं । किन्तु यथार्थतः उनमें कोई विरोध नहीं है । भेद केवल कथन-शैलीका है । जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—प्रथम जो औदारिकमिश्रकाययोगियोंका

केवली कवाडगदो तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे ।

वेउच्चियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३७ ॥

एदस्सत्थो— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घादगदा मिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उपपादका अभाव बतलाया, उसका अभिप्राय यह है कि औदारिकमिश्रकाययोग तिर्यंच और मनुष्योंकी अपर्याप्त दशामें ही होता है । और, अपर्याप्तदशाको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मरणको प्राप्त नहीं होता है, जिससे कि वह पुनः औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच या मनुष्योंमें उत्पन्न हो सके । अतएव उसमें सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके उपपादका अभाव बतलाना सर्वथा युक्तिसंगत ही है । पुनः, अथवा करके जो औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उनके उपपादका सद्भाव बतलाया गया, उसका अभिप्राय यह है कि पूर्वभवके शरीरको छोड़कर उत्तरभवके प्रथम समयमें प्रवर्तनको उपपाद् कहा गया है । वह उपपाद् उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही होता है, अतएव यदि कोई औदारिककाययोगी या वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मरकर मनुष्य तिर्यंचोंमें उत्पन्न होता है, तो उसके उत्पात्तिके प्रथम समयमें औदारिकमिश्रकाययोगका सद्भाव पाया जायगा । इसीलिए कहा गया है कि सासादनसम्यग्दृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके साथ युगपत् धारण किये गये आगामी भवसम्बन्धी शरीरके प्रथम समयमें औदारिकमिश्रकाययोगियोंके उपपादका सद्भाव पाया जाता है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उक्त दोनों कथनोंमें कोई पारस्परिक विरोध नहीं है, भेद केवल कथन-शैली व विवक्षाका ही है ।

कपाटसमुद्धातगत औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली भगवान् सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यंग्लोकके संख्यातवें भागमें और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिध्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३७ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात ओर वैक्रियिकसमुद्धातगत वैक्रियिककाययोगी मिध्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यंग्लोकके संख्यातवें भागमें और अट्टाईट्ठीपसे

असंखेज्जगुणे, पहाणीकयजोइसियरासिच्चादो । मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोमाणम-
संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्टिय दडुव्वं । सासणादि-
परूवणा ओघपरूवणाए तुल्ला, णवरि सव्वत्थ उववादो णत्थि ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असं-
जदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३८ ॥

एदस्सत्थो- वेउव्वियमिस्सकायजोगी मिच्छादिट्ठी सत्थाण-वेदण कसायसमुग्घाद-
गदा तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे अट्ठाइज्जादो असंखेज्ज-
गुणे । सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्माइट्ठी सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं
लोमाणमसंखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे ।

आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवडि
खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३९ ॥

असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां वैक्रियिककाययोगके प्रकरणमें ज्योतिष्क
देवराशिकी प्रधानता है । मारणान्तिकसमुद्घातगत वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों
लोकोंसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर अपवर्तना स्वयं जान लेना चाहिए । सासादन-
सम्यग्दृष्टि आदि शेष तीन गुणस्थानवर्ती वैक्रियिककाययोगी जीवोंके स्वस्थानादि पदोंकी
क्षेत्रप्ररूपणा ओघक्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है । विशेषता केवल यह है कि इन सभी गुणस्थानोंमें
उपपादपद नहीं होता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्य-
ग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते
हैं ॥ ३८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातगत वैक्रि-
यिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें,
तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अट्ठाईट्ठीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । स्वस्थान,
वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव
सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्ठाईट्ठीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं ।

आहारकाययोगियोंमें और आहारमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती
जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३९ ॥

एदस्स अत्थो— सत्थाण-विहारवदिसत्थाणपरिणदपमत्तसंजदा चदुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । मारणंतियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे, अङ्काइज्जादो असंखेज्जगुणे । सेसपदाणि णत्थि । आहारमिस्सकाय-जोगिणो पमत्तसंजदा सत्थाणगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखे-ज्जदिभागे ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छाहट्ठी ओघं ॥ ४० ॥

सत्थाण-वेदण-कसाय-उववादगदा कम्मइयकायजोगिमिच्छादिट्ठिणो जेण सच्चत्थ सच्चद्धं होंति, तेण सच्चलोगे वुत्ता ।

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्माइट्ठी ओघं ॥ ४१ ॥

एदे दो वि रासीओ जेण चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अङ्काइज्जादो असंखेज्ज-गुणे खेत्ते अच्छंति, तेण सुत्ते ओघमिदि वुत्तं ।

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान इन दोनों पदोंसे परिणत आहारकाययोगी प्रमत्तसंयत सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घातगत आहारकाय-योगी सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। आहारकाययोगी प्रमत्तसंयतके उक्त तीन पदोंके सिवाय शेष सात पद नहीं होते हैं। स्वस्थानगत आहारकमिथ्रकाययोगी प्रमत्तसंयत सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं।

कर्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघमिथ्यादृष्टिके समान सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ४० ॥

स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंको प्राप्त कर्मण-काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव चूंकि सर्वत्र सर्वकालमें पाये जाते हैं, इसलिये वे सर्वलोकमें रहते हैं, ऐसा कहा गया है।

कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४१ ॥

इन दोनों गुणस्थानोंको प्राप्त कर्मणकाययोगी राशियां चूंकि सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहती हैं, इसलिये सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा गया है।

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु भागेषु सब्ब-
लोगे वा ॥ ४२ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एवं जोगमार्गणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणिय-
यट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४३ ॥

एदस्स अत्थो—सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घाद-
गदा इत्थिवेदमिच्छाइट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे,
अङ्गाइज्जादो असंखेज्जगुणे, पहाणीकददेवित्थिवेदरासित्तादो । मारणंतिय-उववाद्गदा तिण्हं
लोगाणमसंखेज्जदिभागे णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्ठणा देवोघत्तुल्ला ।
सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओघमंगो । णवरि असंजदसम्मादिट्ठिम्हि उववादो
णत्थि । पमत्तसंजदे ण होंति तेजाहारा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
असंख्यात बहु भागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ४२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इसप्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर
अनिवृत्तिगुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात,
कषायसमुद्घात और वैकियिकसमुद्घातगत स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अर्द्धाईट्ठीपसे असं-
ख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर देवगतिसम्बन्धी स्त्रीवेदराशिकी प्रधानता है ।
मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि सामान्यलोक आदि तीन
लोकोंके असंख्यातवें भागमें और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणे
क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर अपवर्तना देवोंके ओघक्षेत्रके समान है । सासादनसम्यग्दृष्टि
गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानतकके स्त्रीवेदी जीवोंका क्षेत्र ओघके
समान लोकका असंख्यातवां भाग है । विशेष बात यह है कि असंयतसम्य-
ग्दृष्टि गुणस्थानमें स्त्रीवेदियोंके उपपादपद नहीं होता है । तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें

१ वेदानुवादेण स्त्रीपुंवेदानां मिथ्यादृष्ट्याधानिवृत्तिनादरान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. ति. १, ८.

वेउच्चियसमुग्धादगदा पुरिसवेद-मिच्छादिद्वी तिहं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागे, अङ्काइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अचञ्चंति । मारणंतिय-उववाद-
गदा तिहं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । सासणसम्मादिद्वि-
प्पहुडि जाव अणियद्वि उवसामग-खवगा ति ओघभंगो ।

णवुंसयवेदेसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अणियद्वि ति ओघं ॥४४॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदणवुंसयवेदमिच्छादिद्वी सच्च-
लोए । विहारवदिसत्थाण-वेउच्चियसमुग्धादगदा तिहं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागे । णवरि वेउच्चियसमुग्धादगदा तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे ।
अङ्काइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते जेण अचञ्चंति तेण ओघमिदि घडदे । सासणसम्मा-
दिद्विप्पहुडि जाव अणियद्वी ति एदेसिं पि परूवणा ओघतुल्ला ति ओघमिदि वुत्तं ।

तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात नहीं होते हैं । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान,
वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और
अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, नरलोक
और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर
अनिवृत्तिकरण उपशामक और अनिवृत्तिकरण क्षपक गुणस्थान तक पुरुषवेदी जीवोंके
स्वस्थानादि पदोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ।

नपुंसकवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान
तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ॥ ४४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और
उपपाद, इन पदोंको प्राप्त नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं । विहारवत्स्व-
स्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत वे ही जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें
भागमें और तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं । विशेष बात यह है कि वैक्रियिकसमुद्घात
गत नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । तथा उक्त दोनों
पदोंको प्राप्त नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव, चूंकि अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं,
इसलिए सूत्रमें कहा गया 'ओघ' यह पद घटित हो जाता है । सासादनसम्यग्दृष्टि गुण-
स्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भी इन नपुंसकवेदी जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा
ओघवर्णित क्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है, इससे भी सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा गया है ।

१ नपुंसकवेदानां मिथ्यादृष्ट्याधनिवृत्तिबादरास्तानां ×× सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

णवरि पमत्ते तेजाहारपदं णत्थि ।

अपगदवेदएसु अणियट्ठिण्णहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते,
लोगस्स असंखेज्जदिभागे' ॥ ४५ ॥

एदस्स अत्थो— चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे
सत्थाणत्था अच्छंति । मारणंतियसमुग्घादगदा उवसामगा चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदि-
भागे, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति त्ति वुत्तं होदि ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ४६ ॥

पुव्वं परुविदत्थमिदं सुत्तमिदि एत्थ एदस्स अत्थो ण वुच्चदे ।

एवं वेदमग्गणां समत्ता ।

कसायाणुवादेण क्रोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु
मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ४७ ॥

चदुकसाइमिच्छाइट्ठिणो सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववाद्गदा ओघ-

विशेष बात यह है कि प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें नपुंसकवेदियोंके तैजससमुद्घात और
आहारकसमुद्घात, ये दो पद नहीं होते हैं ।

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अवेदभागसे लेकर अयोगि-
केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानपद्गत अपगतवेदी जीव सामान्यलोक आदि
चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिक-
समुद्घातको प्राप्त उपशामक जीव सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और
अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहा गया है ।

अपगतवेदी सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ४६ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए यहाँ पर इसका अर्थ पुनः नहीं
कहा जाता है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभ-
कषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ४७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद

मिच्छादिद्वीहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदेहि सव्वलोगग्ग्हि अच्छणेण अपुहरंति । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादगदा वि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छणं पडि अपुहरंति । तदो चदुकसायमिच्छादिद्विणो दव्वद्वियणएण ओघत्तमुवलमंते ।

सासणसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अणियट्टि ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४८ ॥

एत्थ सुत्ते ओघमिदि किण्ण वुत्तं ? ण एस दोसो, दव्वद्वियणयावलंबणाभावादो । सो वि किमिदि णावलंबिदो ? पज्जवद्वियसिस्साणुग्गहट्ठं । जदि एवं, तो दव्वद्वियसिस्सा अणणुग्गहिदा होंति ? ण, पुव्वुत्तसुत्तेण मिच्छादिद्विप्पडिबद्धेण दव्वद्वियसिस्साणमणु-

पदगत चारों कषायवाले मिथ्यादृष्टि जीव, स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद पदगत ओघमिथ्यादृष्टियोंके साथ सर्व लोकमें अवस्थानके द्वारा अनुकरण करते हैं । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्धातगत चारों कषायवाले मिथ्यादृष्टि जीव भी सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अर्द्धाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी अपेक्षा, विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्धातगत ओघमिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका अनुकरण करते हैं, इसलिए चारों कषायवाले मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा ओघक्षेत्रताको प्राप्त होते हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती चारों कषायवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४८ ॥

शंका—इस सूत्रमें 'लोकके असंख्यातवें भागमें' इतनेके स्थानपर 'ओघ' इतना ही पद क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यहाँपर द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन नहीं किया गया है ।

शंका—उस द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—पर्यायार्थिकनयी शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिए यहाँ द्रव्यार्थिकनयका ग्रहण नहीं किया गया ।

शंका—यदि ऐसा है, तो द्रव्यार्थिकनयी शिष्य इस सूत्रसे अनुग्रहीत नहीं किये गये हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रसे प्रतिषेद्ध पूर्वोक्त सूत्रसे द्रव्यार्थिक-

१ कषायानुवादेन कोधमानमायाकषायानां लोभकषायानां च मिथ्यादृष्ट्याघनिवृत्तिबादान्तानां × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १. ८.

ग्गहकरणा । एदेण दव्व-पज्जवट्टियणयपज्जायपरिणदजीवाणुग्गहकारिणो जिणा इदि जाणाविदं । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववाद्दगद-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिणो चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागे, अट्ठुइज्जादो असंखेज्ज-गुणे खेत्ते अच्छंति । ‘ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ’ इदि सुत्ते वुत्तं, तेण माणुसखेत्तस्स वि असंखेज्जदिभागे एदेहि होदव्वं, लोगतं पडि विसेसाभावादो ? ण एस दोसो । होदि एस दोसो, जदि पज्जवट्टियमस्सिदूण एस लोगसदो ट्ठिरो । किंतु दव्वट्टियणयमवलंबिऊण ट्ठिदत्तादो सव्वलोगसमूहस्स अखंडस्स वाचगो, तेण ‘ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ’ इदि सुत्तवयणं ण विरुज्जदे । जदि एवं, तो पज्जवट्टियणयमवलंबिऊण ट्ठिदवक्खाणवयणं सुत्तेण असंबद्धं होदि त्ति ? ण, विसेसवदिरित्तजादीए अभावादो । विसेसालिंघिदसामण-लोगो जेण सुत्तम्मि वुत्तो तेण लोगस्स अवयवभूदत्तारि लोगे अस्सिदूण जं वक्खाणं तण्ण सुत्तविरुज्जमिदि । एवं सम्मामिच्छाइट्ठीणं । णवरि मारणंतिय-उववाद्दपदं णत्थि ।

नयी शिष्योंका अनुग्रह कर ही दिया गया है ।

इस विवेचनसे यह बात बतलाई गई कि जिन भगवान् द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दोनों नयस्वरूप पर्यायोंसे परिणत जीवोंके अनुग्रह करनेवाले होते हैं ।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिक-समुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उरुपाद, इन पदोंको प्राप्त चारों कषायवाले सासादन-सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका — ‘ लोकके असंख्यातवें भागमें ’ इतना ही पद सूत्रमें कहा है, इसलिए ‘ मानुषक्षेत्रके भी असंख्यातवें भागमें रहते हैं ’ ऐसा अर्थ होना चाहिए, क्योंकि, लोकत्वकी अपेक्षा सामान्यलोक, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक और मनुष्यलोक, इन पांचों ही लोकोंमें विशेषताका अभाव है, अर्थात् समानता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है । यह दोष होता, यदि केवल पर्यायार्थिकनयका ही आश्रय लेकर यह लोकशब्द स्थित होता । किन्तु यह लोकशब्द द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करके स्थित है, अतएव अखंड सर्वलोकके समूहका वाचक है, इसलिए ‘ लोकके असंख्यातवें भागमें ’ इस प्रकारका यह सूत्र-वचन विरोधको प्राप्त नहीं होता है ।

शंका—यदि ऐसा है, तो पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करके स्थित व्याख्यान-वचन सूत्रके साथ असंबद्ध होगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विशेषसे ध्यातिरिक्त जातिका अभाव पाया जाता है । चूंकि, विशेषसे आलिंघित सामान्यलोक सूत्रमें कहा है, इसलिए लोकके अवयवभूत ऊर्ध्वलोक आदि चार लोकोंका आश्रय करके जो व्याख्यान किया गया है, वह सूत्रसे विरुद्ध नहीं है, अपि तु संबद्ध है ।

एवं संजदासंजदाणं । णवरि उववादपदं णत्थि । सेसगुणट्टाणाणि चदुण्हं लोमाणमसंखे-
ज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । णवरि मारणंतियसमुग्घादगदा माणुसखेत्तादो
असंखेज्जगुणे होति ।

लोभकसायविसेसपदुप्पायणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

णवरि विसेसो, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा
खवा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो ।

अकसाईसु चदुट्टाणमोधं ॥ ५० ॥

एत्थ ट्टाणसदो गुणट्टाणवाचगो, 'अवयवेषु प्रवृत्ताः शब्दाः समुदायेऽपि वर्तन्ते'
इति न्यायात् । यथा सत्यभामा भामा, बलदेवो देवः, भीमसेनः सेन इति । कथमुवसंत-

इसीप्रकारसे चारों कषायवाले सम्यग्मिध्यादृष्टियोंका क्षेत्र जानना चाहिए । विशेष
बात यह है कि यहांपर मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं । इसी
प्रकार चारों कषायवाले संयतासंयतोंका क्षेत्र होता है । विशेषता यह है कि इनके उपपाद
पद नहीं है । शेष गुणस्थानवर्ती चारों कषायवाले जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके
असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं । विशेषता यह है कि
मारणान्तिकसमुद्धातगत चारों कषायवाले संयत जीव मानुषक्षेत्रले असंख्यातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं ।

अब लोभकषायकी विशेषता बतलानेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि लोभकषायी जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत उपशमक
और क्षपक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४९ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषाय आदि चारों गुणस्थानोंका क्षेत्र ओष-क्षेत्रके
समान है ॥ ५० ॥

यहांपर 'स्थान' शब्द गुणस्थानका वाचक है, क्योंकि, 'अवयवोंमें प्रवृत्त हुए
शब्द समुदायोंमें भी रहते हैं' ऐसा न्याय है । जैसे 'भामा' कहनेसे सत्यभामा, 'देव'
कहनेसे बलदेव और 'सेन' कहनेसे भीमसेनका ज्ञान होता है, इसी प्रकार यहां भी 'स्थान'
शब्दसे गुणस्थानका बोध होता है ।

शंका — जहां कषायोंका उपशमन ही है, ऐसे उपशान्तकषाय गुणस्थानको अक-

१ × × सूक्ष्मसाम्परायाणां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

२ × × अकषायानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

कसाओ अकसाओ ? ण, भावकसायाभावं पेक्खिदूण तस्स वि अकसायत्तसिद्धीदो । बहु-
व्वीहिसमासं कादूण 'अकसाएसु' त्ति णिहेसो किण्ण कदो ? ण, पज्जयपडिसेधे कदे कसाय-
विरहिदर्थंभादीणं पि अकसायत्तप्पसंगादो । दव्वपडिसेहे कदे सो दोसो ण पावदे, एदेण
णावएण ओसारिदपसज्जपडिसेहत्तादो । कस्स णयस्स एस ववहारो ? सद्दुसंबंधस्स
णिच्चत्तमिच्छंतमद्दणयस्स । 'अवगदवेदएसु' त्ति दव्वणिहेसो वि एवं चेव वक्खणे-
दव्वो । सेसं सुगमं ।

एवं कसायमग्गणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिद्वी
ओघं ॥ ५१ ॥

एसा णिद्धारणे सत्तमी, मदि-सुदअण्णाणीणं मिच्छादिद्विवदिरित्ताणं सासणाणं पि

पाय कैसे कहा ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, यहांपर भावकषायके अभावकी विवक्षासे उपशान्तकषाय
गुणस्थानके भी अकषायपनेकी सिद्धि हो जाती है ।

शंका— 'नहीं हैं कषाय जिनके' ऐसा बहुव्रीहि समास करके 'अकषायोंमें' इस
प्रकारका निर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, पर्यायिके प्रतिषेध कर देनेपर कषायसे विरहित स्तम्भा-
दिकोंके भी अन्यथा अकषायताका प्रसंग प्राप्त हो जायगा । किन्तु, द्रव्यके प्रतिषेध करनेपर
वह अतिप्रसंग दोष नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, इसी ज्ञापक (न्याय) के द्वारा आप हुए
दोषप्रसंगका प्रतिषेध कर दिया गया ।

शंका— यह उक्त व्यवहार किस नयका है ?

समाधान— शब्द और अर्थके वाच्यवाचकसम्बन्धको नित्य माननेवाले शब्दनयका
यह व्यवहार है ।

वेदमार्गणाके अन्तमें दिथे हुए (नं. ४५ वें) सूत्रके 'अपगतवेदियोंमें' इस पदके
द्रव्यनिर्देशका भी इसी प्रकारसे व्याख्यान करना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार कषायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र
ओघके समान सर्वलोक है ॥ ५१ ॥

यहां पर 'मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें' यह सप्तमी विभक्ति निर्धारणके अर्थमें
है, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे व्यतिरिक्त सासादनगुणस्थानवर्ती भी मत्यज्ञानी और

१ ज्ञानानुवादेण मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिना मिथ्यादृष्टिसादानसम्यग्दृष्टीना सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८,

संभवादो । सेसं पुवं पदुप्पादिदमिदि पुव्वुत्तद्वावधारिदसिस्साणुरोहेण ण वुच्चदे ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ५२ ॥

एत्थ पुव्वसुत्तादो मदि-सुदअण्णाणीसु त्ति अणुवट्ठे ? कधं णिच्चेयणस्स खण-
खणो सहस्स अविणट्ठरूवेण अणुवत्ती ? ण एस दोसो, एदस्स सुत्तस्स अवयवभावेण
ट्ठिदअण्णसहस्स पुव्वसहेण समाणत्तमवेक्खिय सो चेव एसो इदि पच्चयहिण्णाण-
पच्चयणिमित्तस्स अणुवत्तिविरोहाभावादो । सेसो गदट्ठो ।

**विभंगण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते,
लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ५३ ॥**

एदस्सत्थो— विभंगण्णाणी मिच्छादिट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-
कसाय-वेउच्चियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदि-
भागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो एदं ? पहाणीकदपज्जत्तदेवरासित्तादो । मारणंतिय-

श्रुताज्ञानी पाये जाते हैं । शेष व्याख्यान पहले कर आए हैं, अतः पूर्वोक्त अर्थके अवधारण
करनेवाले शिष्योंके अनुरोधसे पुनः नहीं कहते हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती मत्त्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंका क्षेत्र ओघ-
सासादनसम्यग्दृष्टिके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ५२ ॥

यहां पर पूर्वसूत्रसे ' मति-श्रुताज्ञानियोंमें ' इतने पदकी अनुवृत्ति होती है ।

शंका — अचेतन और क्षण-क्षयी शब्दकी अविनष्टरूपसे अनुवृत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इस सूत्रके अवयवरूपसे स्थित अन्य
शब्दकी पूर्व शब्दके साथ समानता देखकर ' यह वही है ' इस प्रकारके प्रत्यभिज्ञानकी
प्रतीतिके निमित्तभूत शब्दकी अनुवृत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

शेष सूत्रका अर्थ पहले किया जा चुका है ।

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीव कितने
क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात,
कषायसमुद्घात और वैकृतिकसमुद्घातको प्राप्त विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अट्ठाईद्वीपसे
असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—स्वस्थानादि पद्गत विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें
और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें क्यों रहते हैं ?

१ विभङ्गज्ञानिना मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिना लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

समुग्घादगदा एवं चेव । णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं । उववादपदं णत्थि । सासणसम्मादिही सव्वेहि वि पदेहि चटुहं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अट्टाइजादो असंखेज्जगुणे । एत्थ वि उववादो णत्थि ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्टिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछट्टुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि-भागे ॥ ५४ ॥

एदं सुत्तं वुत्तत्थमिदि पुणो ण एदस्स अत्थो वुत्तदे ।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छट्टुमत्था लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ५५ ॥

समाधान—चूंकि, यहाँपर पर्याप्त देवराशिकी प्रधानता है, इसलिए स्वस्थानादि पदोंको प्राप्त वे देव तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

मारणान्तिकसमुद्भूतगत विभंगज्ञानियोंका क्षेत्र भी इसी प्रकार ही है । विशेषता केवल इतनी कहना चाहिए कि वे तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । विभंग-ज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंके उपपादपद नहीं होता है, (क्योंकि, पर्याप्तावस्थामें ही विभंग-ज्ञान उत्पन्न होता है) । विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थानादि सभी संभव पदोंकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्टाईझोपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहाँपर भी उपपाद पद नहीं है । (कारण भी उपर्युक्त ही समझना चाहिए) ।

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागडुबन्ध गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५४ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कह दिया गया है, इसलिए पुनः इसका अर्थ नहीं कहते हैं ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागडुबन्ध गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५५ ॥

१ आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानिनामसंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणकषायान्तानां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

२ × × मनःपर्ययज्ञानिनां च प्रमत्तादीनां क्षीणकषायान्तानां × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

किमदं एदेसु तीसु सुत्तेसु पञ्जयणयदेसणा ? बहूणं जीवाणमणुग्गहट्टं । दव्वट्टि-
एहिंतो पज्जवट्टियजीवाणं बहुत्तं कधमवगम्मदे ? ण, संगहरुइजीवेहिंतो बहूणं वित्थर-
रुइजीवाणमुवलंभादो । सेसमवगदट्टं ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ॥ ५६ ॥

एत्थ किमदं दव्वट्टियणओ अवलंबिदो ? ण, पज्जवट्टियणयावलंबणे कारणाभावा ।
पज्जवट्टियणओ अवलंबिज्जेदे विसेसपट्ठुप्पायणट्टं, ण च एत्थ को वि विसेसो अत्थि । ण
च पुव्वसुत्तेहि वियहिचारो, पादेकं गुणद्वानेसु तत्थ णाणभेदोवलंभादो । सेसं सुगमं ।

अजोगिकेवली ओघं ॥ ५७ ॥

एसो णवसु पदेसु कत्थ वट्टेदे ? सेसपदसंभवाभावादो सत्थाणे पदे ।

शंका—इन अभी कहे गए तीनों सूत्रोंमें पर्यायार्थिकनयका उपदेश किस लिए
दिया गया है ?

समाधान—बहुतसे जीवोंके अनुग्रह करनेके लिए पर्यायार्थिकनयका उपदेश दिया
गया है ।

शंका—द्रव्यार्थिकनयी जीवोंसे पर्यायार्थिकनयवाले जीव बहुत हैं, यह कैसे
जाना जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, संक्षेपरुचिवाले जीवोंसे विस्ताररुचिवाले जीव बहुत
पाये जाते हैं ।

शेष सूत्रका अर्थ तो अवगत ही है ।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ॥ ५६ ॥

शंका—इस सूत्रमें किसलिए द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पर्यायार्थिकनयके अवलम्बन करनेका यहां कोई कारण
नहीं है । पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन विशेष प्रतिपादनके लिए किया जाता है । किन्तु
बड़ापर कोई भी विशेषता नहीं है, (जिसके कि बतलानेके लिए पर्यायार्थिकनयका अव-
लम्बन किया जाय) । और न यहांपर पूर्व सूत्रसे (जो कि पर्यायार्थिकनयी है) व्यभिचार
दोष ही आता है, क्योंकि, इन गुणस्थानोंमेंसे प्रत्येक गुणस्थानमें ज्ञानभेद पाया जाता है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अयोगिकेवली भगवान् ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥५७॥

शंका—ये अयोगिकेवली भगवान् स्वस्थानादि नौ पदोंमेंसे किस पदमें रहते हैं ?

समाधान—अयोगिकेवलीके विहारवत्स्वस्थानादि शेष अशेष पद संभव न होनेसे
वे स्वस्थानस्वस्थान पदमें रहते हैं ।

१ x x केवलज्ञानिनां सयोगिनां x सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

२ x x केवलज्ञानिनां x अयोगिनां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

उप्पणपदेसो घरं गामो देसो वा सत्थाणं, तस्स वि उवथारदंसणादो । ण च ममेदंबुद्धीए पडिगहिदपदेसो सत्थाणं, अजोगिम्हि खीणमोहम्हि ममेदंबुद्धीए अभावादो त्ति ? ण एस दोसो, वीदरागाणं अप्पणो अच्छिदपदेसस्सेव सत्थाणववएसादो । ण सरागाणमेस णाओ, तत्थ ममेदंभावसंभवादो । अथवा एस चेव णाओ सच्चत्थ घेप्पउ, विरोहाभावादो । जदि एवं सत्थाणस्स अत्थो बुच्चदि, तो सासणसत्थाणफोसणस्स अट्ट चोइसभागा पावंति त्ति चे ण, फोसणे ममेदंबुद्धिपडिगहिदस्स सस्सामिसंबंधेण वारिदस्स चेव सत्थाणववदेसादो । सेसं सुगमं ।

एवं णाणमग्गणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ॥ ५८ ॥

शंका— अपने उत्पन्न होनेके प्रदेश, घर, ग्राम अथवा देशको स्वस्थान कहते हैं । इस प्रकारका यह स्वस्थानपद भी अयोगिकेवलीमें केवल उपचारसे ही देखा जाता है, (न कि यथार्थतः) । तथा 'यह मेरा है' इस प्रकारकी बुद्धिसे प्रतिगृहीत प्रदेशको स्वस्थान कहते हैं, किन्तु क्षीणमोही अयोगी भगवान्में ममेदंबुद्धिका अभाव है, इसलिए (किसी भी प्रकारसे) अयोगिकेवलीके स्वस्थानपद नहीं बनता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, वीतरागियोंके अपने रहनेके प्रदेशको ही स्वस्थान नामसे कहा गया है । किन्तु सरागियोंके लिए यह न्याय नहीं है, क्योंकि, इनमें ममेदंभाव संभव है । अथवा, 'अपने रहनेके प्रदेशको स्वस्थान कहते हैं' यही न्याय सर्वत्र ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, उसके माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका— यदि इस प्रकार स्वस्थानका अर्थ कहते हैं, तो सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके स्वस्थानस्वस्थानपदके स्पर्शनका क्षेत्र आठ बटे चौदह $\frac{1}{4}$ राजु प्रमाण प्राप्त होता है, (जो कि आगे स्पर्शनानुयोगद्वारमें बताया नहीं गया है) ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, स्पर्शनानुयोगद्वारमें, ममेदंबुद्धिसे प्रतिगृहीत और अपने स्वामित्वके सम्बन्धसे रोके हुए क्षेत्रको ही स्वस्थान संज्ञा प्राप्त है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम ही है ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संयत जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५८ ॥

एत्थ किमट्ठं दब्बट्ठियणयदेसणा कीरदे ? ण, संजमसामण्णे पहाणीकदे ओघं पडि विसेसाभावादो । पज्जवट्ठियणयपरूवणा एत्थ जाणिय वत्तव्वा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ५९ ॥

एगजोगो किण्ण कदो ? ण, खेचं पडि सेसगुणट्ठाणेहिंतो सजोगिस्स विसेसोवलं-
भादो । जदि एवं, तो सेसगुणट्ठाणाणं पि णाणाविहभेयमिण्णाणं पुध पुध सुत्तकरणं पावेदि
त्ति चे ण, तेसिं पहाणीकयखेत्तजणिदविसेसाभावादो । एत्थ सेसा पज्जवट्ठियणय-
परूवणा सव्वा वत्तव्वा ।

**सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव आणि-
यट्ठि ति ओघं ॥ ६० ॥**

शंका— इस सूत्रमें द्रव्यार्थिकनयकी देशना किस लिए जा रही है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, संयमसामान्यके प्रधान करनेपर ओषक्षेत्रप्ररूपणाकी
अपेक्षा संयममार्गणाके अनुवादसे क्षेत्रप्ररूपणामें कोई विशेषता नहीं है ।

यहांपर पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणा जान करके करना चाहिए ।

सयोगिकेवली भगवान् ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें, लोकके
असंख्यात बहुभागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ५९ ॥

शंका— इन दोनों सूत्रोंका एक समास क्यों नहीं किया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, क्षेत्रकी अपेक्षा शेष गुणस्थानोंसे सयोगिकेवलीके क्षेत्रमें
विशेषता पाई जाती है ।

शंका— यदि ऐसा है, तो नाना प्रकारके भेदोंसे भिन्नताको प्राप्त शेष गुणस्थानोंके
भी पृथक् पृथक् सूत्रोंकी रचना प्राप्त होती है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, शेष गुणस्थानोंकी पृथक् पृथक् प्रधानता करनेपर भी
क्षेत्र-जनित विशेषताका अभाव है, इसलिए पृथक् पृथक् सूत्र-रचनाका प्रसंग नहीं प्राप्त
होता है ।

यहांपर सभी गुणस्थानसम्बन्धी शेष सर्व पर्यायार्थिकनयकी क्षेत्रप्ररूपणा कहना
चाहिए ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनि-
ष्टुत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत
ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६० ॥

१ × सामायिकच्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतानां चतुर्णां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

ओघपमत्तादिरासीदो सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदपमत्तादओ समाणा त्ति एदेसिं परूवणा ओघं भवदि । ण च सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेहिंतो पुधभावभूदा परिहार-सुद्धिसंजदा अत्थि, जेण तदो भेदो होज्ज । किमिदि पुधभूदा णत्थि ? दुणयंवेदिरित्त-छदुमत्थजीवाभावादो । सेसं सुगमं ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ६१ ॥

एदस्स वि सुत्तस्स अत्थो पुवं परूविदो त्ति संपहि ण वुच्चदे । णवरि पमत्त-संजदे तेजाहारं णत्थि ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदउवसमा खवगा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ६२ ॥

ओघमें कही गई प्रमत्तसंयतादिराशिसे सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमवाले प्रमत्तसंयतादिक समान हैं, इसलिए इनके क्षेत्रकी प्ररूपणा ओघोक्त क्षेत्रके समान बन जाती है । और, सामायिक तथा छेदोपरस्थापनाशुद्धिसंयतोंसे परिहारविशुद्धिसंयत पृथग्भावरूप हैं नहीं, जिससे कि उनसे उनका भेद हो जाय ।

शंका— परिहारविशुद्धिसंयत, सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंसे पृथग्भूत क्यों नहीं है ?

समाधान— क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंसे भिन्न छद्मस्थ जीवोंका अभाव है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

परिहारविशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६१ ॥

इस सूत्रका भी अर्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए अब नहीं कहते हैं । विशेष बात यह है कि प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती परिहारविशुद्धिसंयतके तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात ये दो पद नहीं होते हैं ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत उपशमक और क्षपक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६२ ॥

१ प्रतिशु ' दुणय ' इति पाठः

१ × × × परिहारविशुद्धिसंयतानां प्रमत्ताप्रमत्तानां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८८

३ × × × सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतानां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८८

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु त्ति आधारणिदेसो । तत्थ सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदो दुविधा होति उवसामगा खवगा चेदि । ते अप्पणो पदेसु वट्टमाणा चटुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे होति । णवरि मारणंतियपदे माणुस-खेत्तादो असंखेज्जगुणे होति ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चटुट्टाणमोघं ॥ ६३ ॥

एत्थ ट्टाणसदो पुव्वुत्तणाएण गुणट्टाणवाची । चटुण्हं टाणाणं समाहारो चटुट्टाणी, सा ओघं होदि । उवसंतकसाय-खीणकसाय-सजोगि-अजोगिजिणाणं जहाक्खादविहारसुद्धि-संजदाणं अप्पणो ओघपरूवणं होदि त्ति जं बुत्तं होदि ।

संजदासंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ६४ ॥

एदस्स अत्थो पुव्वं परूविदो ।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ६५ ॥

‘सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें’ इस पदसे आधारका निर्देश किया गया । इस गुणस्थानमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत दो प्रकारके होते हैं, उपशामक और क्षपक । वे दोनों ही प्रकारके सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत अपने यथासंभव पदोंमें रहते हुए सामान्यलोक भादि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं । विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुद्धातपदमें उपशामक जीव मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें उपशान्तकषाय गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक चारों गुणस्थानवाले संयतोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ६३ ॥

इस सूत्रमें आया हुआ ‘स्थान’ शब्द पूर्वोक्त न्यायसे गुणस्थानका वाचक है । चार गुणस्थानोंके समुदायको ‘चतुःस्थानी’ कहते हैं । उनका क्षेत्र ओघके समान है । अर्थात्, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय, सयोगिजिन और अयोगिजिन गुणस्थानचर्त्ती यथाख्यातविहार-विशुद्धिसंयतोंका क्षेत्र अपने ओघक्षेत्रके समान होता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

संयतासंयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है ।

असंयतोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ६५ ॥

१ × × × यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां चतुर्णां × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

२ × × × संयतासंयतानां × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

३ × × असंयतानां च चतुर्णां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

ओघपरूणा गुणट्टाणाणमभेदेण भेदेण च जा कदा, सा अत्थोघ-आदेशोघेहि दुविधा होदि । आदेशोघो वि गुणट्टाणभेदेण चोदसविहो होदि । एत्थ ओघमिदि बुत्ते कदमस्स ओघस्स गहणं ? आदेशोघस्स अवयवभूदमिच्छादिट्टीणमोघस्स । कधमेदं लब्भदे ? पच्चासत्तीदो । अण्णेहि वि ओघेहि सह कथंचि पच्चासत्ती अत्थि त्ति भणिदे ण, अण्णेहि सह मिच्छादिट्टीहि जेम पयसिसेण पच्चासत्तीए अभावादो । एदमत्थपदं सच्चत्थ जोजेयच्चं । असंजदचदुगुणट्टाणाणमेगजोपो किण्ण कदो ? ण, मिच्छादिट्टीणं सेसगुणट्टाणेहि सह खेत्तेण पयसिपच्चासत्तीए अभावादो ।

सासणसम्मादिट्टी सम्मामिच्छादिट्टी असंजदसम्मादिट्टी ओघं

॥ ६६ ॥

एदेसिं तिण्हं गुणट्टाणाणं चदुण्हं लोणाणमसंखेज्जदिभागत्तणेण माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तणेण पच्चासत्ती अत्थि त्ति एगजोपो कदो ।

एवं संजममगणा समत्ता ।

शंका—ओघप्ररूपणा गुणस्थानोंके अभेदसे और भेदसे जो की गई है, वह अर्थ-ओघ और आदेश-ओघके भेदसे दो प्रकारकी होती है । आदेश-ओघ भी गुणस्थानोंके भेदसे चौदह प्रकारका होता है । सो यहां 'ओघ' ऐसा सामान्यपद कहनेपर किस ओघका ग्रहण किया गया है ?

समाधान—आदेश-ओघके अवयवभूत मिथ्यादृष्टियोंके ओघका ग्रहण किया गया है ।

शंका—यह अर्थ कैसे प्राप्त होता है ?

समाधान—प्रत्यासत्तिसे, अर्थात् सामीप्यसे, आदेश-ओघका ग्रहण किया गया है, यह जाना जाता है ।

शंका—प्रत्यासत्ति तो कथंचित् अन्य भी ओघोंके साथ हो सकती है ?

समाधान—ऐसी शंकापर उत्तर देते हैं कि नहीं, क्योंकि, अन्य ओघोंके साथ मिथ्यादृष्टियोंके समान प्रकर्षतासे प्रत्यासत्तिका अभाव है ।

यह अर्थपद सर्वत्र लगाना चाहिए ।

शंका—असंयत चारों गुणस्थानोंका एक योग (समास) क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंकी शेष सासदनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंके साथ क्षेत्रकी अपेक्षा प्रकर्षतम प्रत्यासत्तिका अभाव है ।

असंयतोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६६ ॥

इन सूत्रोक्त तीनों ही गुणस्थानोंका सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागके साथ और मानुस्क्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रके साथ प्रत्यासत्ति पाई जाती है, इसलिये उक्त तीनों गुणस्थानोंका एक योग इस सूत्रमें किया गया है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्टिप्पहुडि जाव खीण-
कसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥६७॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा चक्खु-
दंसणी मिच्छादिट्टी तिहं लोगणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो
असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्टणा जाणिय कादव्वा । एवं मारणंतियसमुग्घादगदा । णवरि
तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं । एवं चैव उववादगदाणं पि वत्तव्वं । अपज्जत्त-
काले चक्खुदंसणाभावादो उववादो णत्थि त्ति णासंक्कणिज्जं, अपज्जत्तकाले वि खओवसमं
पडुच्च चक्खुदंसणुवलंभादो । जदि एवं, तो लद्धिअपज्जत्ताणं पि चक्खुदंसणित्तं पसज्जदे ।
तं च णत्थि, चक्खुदंसणिअवहारकालस्स पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तपमाण-
प्पसंगादो ? ण एस दोसो, णिव्वत्तिअपज्जत्ताणं चक्खुदंसणमत्थि; उत्तरकाले णिच्छएण
चक्खुदंसणोवजोगसमुप्पत्तीए अविणाभाविचक्खुदंसणखओवसमदंसणादो । चउरिदिंय-

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीण-
कषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानतीं जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ?
लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान विहारवत्स्वस्थान वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिक-
समुद्धातगत चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें
तिर्यंग्लोकके संख्यातवें भागमें और अद्वाइद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर
अपवर्तना जानकर करना चाहिए । इसी प्रकार मारणान्तिकसमुद्धातगत चक्षुदर्शनियोंका
क्षेत्र है । विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुद्धातगत चक्षुदर्शनी जीव तिर्यंग्लोकसे असं-
ख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिए । इसी प्रकारसे उपपादगत चक्षुदर्शनियोंका
भी क्षेत्र कहना चाहिए । अपर्याप्तकालमें चक्षुदर्शनका अभाव होनेसे यहांपर उपपादपद
नहीं है, ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, अपर्याप्तकालमें भी क्षयोपशमकी
अपेक्षा चक्षुदर्शन पाया जाता है ।

शंका—यदि ऐसा है, तो लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके भी चक्षुदर्शनीपनेका प्रसंग प्राप्त
होता है । किन्तु लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन होता नहीं है । यदि लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके
भी चक्षुदर्शनका सद्भाव माना जायगा, तो चक्षुदर्शनी जीवोंके अवहारकालको प्रतरांगुलके
असंख्यातवें भागमात्र प्रमाणपनेका प्रसंग प्राप्त होगा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, निर्वृत्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन होता
है, इसका कारण यह है कि उत्तरकालमें, अर्थात् अपर्याप्तकाल समाप्त होनेके पश्चात्
निश्चयसे चक्षुदर्शनीपयोगकी समुत्पत्तिका अविनाभावी चक्षुदर्शनका क्षयोपशम देखा जाता

१ दर्शनावुवादेण चक्षुदर्शनिना मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्य असंख्येयभागः । स. वि. १, ८.

पंचिदियलद्विअपज्जत्ताणं चवखुदंसणं णत्थि, तत्थ चवखुदंसणोवओगसमुप्पत्तीए अविणा-
भाविचवखुदंसणक्खओवसमाभावादो । सेसगुणट्टाणाणं पज्जवद्वियपरूवणा जाणिय वत्तच्चा ।

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ६८ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ति
ओघं ॥ ६९ ॥

एदेसिमणंतरदोसुत्ताणमेगत्तं किण्ण कदं ? ण, मिच्छादिट्ठीहि सेसगुणट्टाणाणं
पच्चासत्तीए अभावादो ।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ ७० ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ ७१ ॥

है । हां, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन नहीं होता है, क्योंकि,
उनमें चक्षुदर्शनोपयोगकी समुत्पत्तिका अविनाभावी चक्षुदर्शनावरणकर्मके क्षयोपशमका
अभाव है ।

इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानोंकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी
प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए ।

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछदुमत्थ गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें
रहते हैं ॥ ६९ ॥

शंका—इन अनन्तरोक्त दोनों सूत्रोंका एकत्व क्यों नहीं किया, अर्थात् एक सूत्र
क्यों नहीं बनाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि अचक्षुदर्शनी जीवोंके साथ शेष गुणस्थान-
वर्ती अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्रत्यासत्तिका अभाव है ।

अवधिदर्शनी जीवोंका क्षेत्र अवधिज्ञानियोंके समान लोकका असंख्यातवां
भाग है ॥ ७० ॥

केवलदर्शनी जीवोंका क्षेत्र केवलज्ञानियोंके समान लोकका असंख्यातवां भाग,
लोकका असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है ॥ ७१ ॥

१ अचक्षुदर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १. ८.

२ अवधिदर्शनिनामवधिज्ञानिवत् । स. सि. १, ८.

३ केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत् । स. सि. १, ८.

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि त्ति पज्जवड्डियपरूवणा ण कीरदे ।

एवं दंसणमग्गणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छा-
दिट्ठी ओघं ॥ ७२ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपदेहि सच्चलोगच्छणेण, विहारवदि-
सत्थाणवेउच्चियपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे,
अद्धाइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छणेण च सरिसत्तमत्थि त्ति ओघमिदि भणिदं ।
णवरि वेउच्चियसमुग्घादगदा तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं
॥ ७३ ॥

चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तणेण माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तणेण च

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं, इसलिए पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणा नहीं की जाती है ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले
जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ७२ ॥

रवस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद,
इन पदोंकी अपेक्षा सर्वलोकमें रहनेसे, विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकपदकी अपेक्षा
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और
अद्धाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी अपेक्षा तीनों अशुभ लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि
जीवोंके क्षेत्रके सदृशता है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' यह पद कहा । विशेष बात यह है कि
वैक्रियिकसमुद्घातगत तीनों अशुभलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें
भागमें रहते हैं ।

तीनों अशुभलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-
सम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७३ ॥

तीनों अशुभलेश्यावाले उक्त तीनों गुणस्थानवर्ती जीवोंके स्वसंभव पदोंकी अपेक्षा
सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहनेसे और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे

१ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्यानी मिथ्यादृष्टिबाधसंयतसम्यग्दृष्टयन्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् ।
स. सि. १, ८.

सरिसत्तुवलंभादो त्तिद्धमोघत्तं । विसेसदो पुण मारणांतिय-उववादगदा किण्ह-णील-काउ-लेस्सियअसंजदसम्मादिट्ठिणो संखेज्जा वि होदूण माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे खेत्ते-अच्छंति, असंखेज्जओयणायामत्तादो ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमतसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ७४ ॥

तेउलेस्सियमिच्छादिट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउब्बिय-समुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । मारणांतियसमुग्घादगदा एवं चेव । णवरि तिरियलोगादो असंखे-ज्जगुणे ति वत्तव्वं । एवं चेव उववादगदाणं । एत्थ ओवट्ठणं ठविज्जमाणे सुधम्मरासि ठविय अप्पणो उवक्कमणकालेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे एगसमएण तत्थुववज्जमाणजीवा हंति । पुणो अवरमेगं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहार-सरूवेण ट्ठविदे रज्जुआयामेण उववादगदरासी होदि । पुणो संखेज्जपदरंगुलमेत्तरज्जुहि

क्षेत्रमें रहनेसे सदृशता पाई जाती है, इसलिए उनके क्षेत्रके ओघपना सिद्ध हुआ । किन्तु विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद् पदगत कृष्ण, नील और कापोत-लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यात होकरके भी मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, उनके मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद् पदगत दंडका आयाम असंख्यात योजन पाया जाता है ।

तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कपायसमुद्धात और वैक्रियिकसमुद्धातगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्धातगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र भी इसी प्रकार है । विशेष बात यह कहना चाहिए कि वे तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार उपपाद् पदगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र जानना चाहिए । यहाँपर अपवर्तनाके स्थापित करते समय सौधर्मकरूपकी जीवराशिको स्थापित कर पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अपने उपक्रमणकालसे भाग देनेपर एक समयमें उनमें उत्पन्न होनेवाले जीव होते हैं । पुनः एक दूसरा पत्योपमका असंख्यातवां भाग भागहारस्वरूपसे स्थापित कर एक राजुप्रमाण आयामवाली उपपाद्पदको प्राप्त जीवराशिका प्रमाण होता

गुणिदे उववादखेत्तं होदि । ओवट्टणा जाणिय कायच्चा । तेउलेस्सियगुणपडिवण्णाणं ओघभंगो । पम्मलेस्सियमिच्छादिट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादग्घादा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति, पहाणीभूदतिरिक्खरासित्तादो । वेउव्विय-मारणंतिय-उववादग्घादा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणे, पहाणीकदसणक्कुमार-माहिंद-रासीदो । सासणादिगुणपडिवण्णाणं अप्पमत्तसंजदंताणं ओघभंगो ।

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव स्खीणकसायवीदराग-छदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ७५ ॥

सुक्कलेस्सियमिच्छादिट्ठिणो जेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता, तेण सत्थाण-सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणे । सेसगुणट्टाणाणमोघभंगो । णवरि

है । पुनः संख्यात प्रतरांशुलप्रमाण राजुओंसे गुणित करनेपर उपपादक्षेत्रका प्रमाण होता है । यहांपर अपवर्तना जान करके करना चाहिए । गुणस्थानप्रतिपन्न तेजोलेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातगत पद्म-लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर तिर्यं-राशिकी प्रधानता है । वैकियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदको प्राप्त पद्म-लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर सानत्कुमार-माहेन्द्र देवराशिकी प्रधानता है । सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानप्रतिपन्न जीवोंसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पद्मलेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ।

शुक्कलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्य गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती शुक्कलेश्यावाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७५ ॥

चूंकि, शुक्कलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव पत्थोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, इस-लिए वे स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैकियिकसमु-द्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानवर्ती शुक्कलेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है । विशेष बात यह है

१ शुक्कलेश्यानां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

मिच्छादिद्विप्पहुडि सव्वगुणट्ठाणेषु मारणंतिथ-उववादपदेसु जीवा संखेआ चव ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ७६ ॥

एदं सुत्तं सुगमं । जघा कसायमग्गणाए अकसाइया वुत्ता, तथा एत्थ लेस्सा-
मग्गणाए अलेस्सिया किण्ण वुत्ता त्ति भणिदे वुच्चदे- जत्थ दव्वं पहाणीभूदं, तत्थ
भणिदं होदि । जत्थ पुण पज्जवो पहाणो, तत्थ ण होदि । लेस्सामग्गणा पुण पज्जयपहाणा
एत्थ कदा, तेण अलेस्सिया ण परूविदा ।

एवं लेस्सामग्गणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अजोगि-
केवली ओघं ॥ ७७ ॥

एदं सुत्तं सव्वं पि मूलोघादो अविसिद्धमिदि मूलोघपज्जवद्वियपरूवणं लभदे ।

कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक शेष सभी गुणस्थानोंमें मार-
णान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन दोनों पदोंमें शुक्ललेश्यावाले जीव संख्यात ही होते हैं ।

शुक्ललेश्यावाले सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ७६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शंका—जिस प्रकार कषायमार्गणामें अकषायी जीवोंका क्षेत्र बतलाया गया, उसी
प्रकार यहां लेश्यामार्गणामें अलेश्य जीवोंका क्षेत्र क्यों नहीं कहा ?

समाधान—पेसी आशंका करने पर कहते हैं—जिस मार्गणामें द्रव्य प्रधानतासे
ग्रहण किया गया है, उस मार्गणामें तो प्रतिपक्षी 'अकषायी' आदिका क्षेत्र आदि कहा गया
है । किन्तु जिस मार्गणामें पर्याय प्रधान है, उस मार्गणामें प्रतिपक्षी 'अलेश्य' आदिका
क्षेत्र-निरूपण नहीं किया गया है । यहां पर लेश्यामार्गणा पर्याय-प्रधान कही गई है,
इसलिए अलेश्य जीवोंका क्षेत्र नहीं कहा गया है ।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर
अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान
है ॥ ७७ ॥

यह सम्पूर्ण ही सूत्र मूल-ओघसे अविशिष्ट है, इसलिए मूल-ओघ-पर्यायार्थिकनयकी
प्ररूपणाको प्राप्त होता है, अर्थात्, भव्यजीवोंका क्षेत्र ओघमें कहे गये क्षेत्रके समान ही है ।

१ सयोगिकेवलिनामलेश्यानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

२ भव्यानुवादेन भव्यानां चतुर्दशानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ६.

अभवसिद्धिएसु मिच्छादिद्वी केवडि खेत्ते, सव्वलोए ॥ ७८ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणांतिय-उववाद्गदा अभवसिद्धिया सव्वलोगे । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदद्विदा चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? तसरासिमस्सिदूण वुत्तबंधप्पाबहुगसुत्तादो गज्जदे । तं जधा— सव्वत्थोवा धुवबंधगा । सादियबंधगा असंखेज्जगुणा । अणादियबंधगा असंखेज्जगुणा । अद्दुवबंधगा विसेसाहिया । केत्तियमेत्तेण ? धुवबंधगेणूणसादियबंधगमेत्तेण । तसेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता चेव अभवसिद्धिया होंति ति एदं कुदो गव्वदे ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तासादियबंधगेहितो असंखेज्जगुणहीणत्तण्णहाणुववत्तीदो । सादियबंधगा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता ति कुदो गव्वदे ? जुत्तीदो । का जुत्ती ? वुच्चदे—

अभव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद् पदको प्राप्त अभव्यसिद्धिक जीव सर्व लोकमें रहते हैं । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक पदस्थित अभव्यसिद्धिक जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अर्द्धद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका— यह कैसे जाना कि विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्धातगत अभव्यजीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ?

समाधान— त्रसराशिका आश्रय करके कहे गये बंधसम्बन्धी अल्पबहुत्वानुयोग-द्वारके सूत्रोंसे यह जाना जाता है । वह इस प्रकार है— 'धुवबंधक सबसे कम हैं । धुवबंधकोंसे सादिवंधक असंख्यातगुणे हैं । सादिवंधकोंसे अनादिवंधक असंख्यातगुणे हैं । अनादिवंधकोंसे अधुवबंधक विशेष अधिक हैं । कितने मात्र विशेषसे अधिक हैं ? धुवबंधकोंसे हीन सादिवंधकोंकी राशिके प्रमाणसे अधिक हैं ।

शंका— त्रसजीवोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही अभव्यसिद्धिक जीव होते हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान— पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सादिवंधकोंसे धुवबंधकोंके असंख्यातगुणहीनता अन्यथा वन नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि त्रसराशिमें अभव्यसिद्धिक जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं ।

शंका— सादिवंध करनेवाले जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं, यह कैसे जाना ?

१ अभव्यानां सर्वलोकः । स. सि. १, ६.

तसेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता सादियबंधगा वासपुधत्तंतरेण तसद्धिदीए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालुवलंभादो । एइंदिएसु संचिदअणंतसादिय-बंधगेहिंतो पदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता सादियबंधगा तसेसु किण्ण उप्पज्जंति ? ण, सच्चगुण-मग्गणट्टाणेसु आयाणुसारि-वओवलंभादो । जेण एइंदिएसु आओ संखेज्जो, तेण तेसि वएण वि तत्तिएण चेव होदच्चं । तदो सिद्धं सादियबंधगा पलिदोवमस्स असंखे-ज्जदिभागमेत्ता ति ।

एवं भवियमग्गणा समत्ता ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि-प्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ॥ ७९ ॥

दच्चट्ठियपरूवणं पडि विसेसो णत्थि ति ओघमिदि वुत्तं । पज्जवट्ठियपरूवणाए वि णत्थि कोइ विसेसो । णवरि खइयसम्मादिट्ठीसु संजदासंजदाणं मणुसपज्जत्तसंजदा-

समाधान — युक्तिसे ।

शंका— वह युक्ति कौनसी है ?

समाधान—वह युक्ति इस प्रकार है— ब्रसजीवोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सादिवंधक जीव होते हैं, क्योंकि, वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे ब्रसकायकी स्थितिका पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकाल पाया जाता है ।

शंका— एकेन्द्रिय जीवोंमें संचयको प्राप्त अनन्त सादिवंधकोंमेंसे जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण सादिवंधक जीव ब्रसजीवोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सभी गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें आयके अनुसार ही व्यय पाया जाता है । चूंकि, एकेन्द्रियोंमें आयका प्रमाण संख्यात ही है, इसलिए उनका व्यय भी उतना अर्थात् संख्यात ही होना चाहिए । इसलिए सिद्ध हुआ कि ब्रसराशिमें सादिवंधक जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अजोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ७९ ॥

द्रव्यार्थिकनयके प्ररूपणकी अपेक्षा सूत्र-प्रतिपादित जीवोंके क्षेत्रमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा है । पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणामें भी कोई विशेषता नहीं है । केवल क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयत-संयत गुणस्थानवर्ती जीवोंके मनुष्य-

१ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

संजदपरूवणा कादव्वा । असंजदसम्मादिट्ठी वि मारणंतिय-उववादपदेसु वड्डमाणा संखेज्जा ।
सेसं सुगमं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ८० ॥

पुठ्ठिल्लेहि सह खेत्तं पडि पयरिसेग पच्चासत्तीए अभावादो पुध सुत्तारंभो ।
सेसं सुगमं ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्तसंजदा
केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८१ ॥

एत्थ ओघपज्जवट्ठियपरूवणा णिरवयवा सव्वगुणट्ठाणेसु परूवेदव्वा, विसेसा-
भावादो ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-
वीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८२ ॥

पर्याप्त संयतासंयतोंमें संभव पदोंकी अपेक्षा ही क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिए । मारणान्तिक-
समुद्घात और उपपाद, इन दो पदोंमें वर्तमान असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्य-
ग्दृष्टि जीव संख्यात ही होते हैं । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

सजोगिकेवली भगवान्का क्षेत्र ओघ-कथित क्षेत्रके समान है ॥ ८० ॥

सजोगिकेवली गुणस्थानकी पूर्ववर्ती गुणस्थानोंके साथ क्षेत्रकी अपेक्षा प्रकर्षतासे
प्रत्यासत्तिका अभाव है, इसलिए यह पृथक् सूत्र बनाया गया है । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान
तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असं-
ख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८१ ॥

यहांपर ओघमें कही गई पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा सम्पूर्ण पदोंकी
अपेक्षा सर्व गुणस्थानोंमें प्ररूपण करना चाहिए, क्योंकि, उससे इसमें कोई विशेषता
नहीं है ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय-
वीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें
रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८२ ॥

१ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तकषायान्तानां ××× सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

२ औपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तकषायान्तानां ×× सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा असंजद-सम्माइट्ठी चटुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे अचलंति । मारण-तिय-उववादपदेसु एसो चैव आलावो । णवरि तेसु पदेसु^१ द्विदजीवा संखेज्जा चैव होति, उवसमसेट्ठीदो ओदरिय उवसमसम्मत्तेण सह असंजमं पडिवण्णजीवाणं संखेज्जचुवलंभादो । सेसउवसमसम्मादिट्ठीणं किण्ण मरणमत्थि ति बुते सभावो । एवं संजदासंजदाणं पि^२ । णवरि उववादपदं णत्थि । सेसाणमोघं । णवरि पमत्तसंजदस्स उवसमसम्मत्तेण तेजा-हारं णत्थि ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं^३ ॥ ८३ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८४ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८५ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातको प्राप्त असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणा-न्तिकसमुद्घात और उपपाद इन दोनों पदोंमें भी यही उक्त क्षेत्र-आलाप जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि उन दोनों पदोंमें वर्तमान जीव संख्यात ही होते हैं, क्योंकि, उपशम-श्रेणिसे उतर कर उपशमसम्यक्त्वके साथ असंयमभावको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी संख्या संख्यात ही पाई जाती है ।

शंका—उपशमश्रेणीसे उतर कर मरनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके अतिरिक्त शेष अन्य उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण क्यों नहीं होता है ?

समाधान—स्वभावसे ही नहीं होता है ।

इसी प्रकारसे संयतासंयत गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र भी जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि उनके उपपादपद नहीं होता है । शेष गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघ-वर्णित क्षेत्रके समान है । विशेषता केवल इतनी है कि प्रमत्तसंयतके उपशमसम्यक्त्वके साथ तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात नहीं होते हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८३ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८४ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८५ ॥

१ प्रतिषु 'पदेसेसु' इति पाठः ।

२ प्रतिषु 'हि' इति पाठः ।

३ × × × सासादनसम्यग्दृष्टीनां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां मिथ्यादृष्टीनां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि त्ति एदेसिं परूवणा ण कीरदे ।

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-
वीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा सण्णि-
मिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो
असंखेज्जगुणे अच्छंति । एवं मारणंतिय-उववादपदेसु वि वत्तव्वं । णवरि तिरियलोगादो
असंखेज्जगुणे इदि भाणिदव्वं । सेसगुणट्ठाणाणमोघभंगो, तदो विसेसाभावादो ।

असण्णी केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ॥ ८७ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो ।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता ।

ये उक्त तीनों ही सूत्र सुगम हैं, इसलिए उनकी प्ररूपणा नहीं की जाती है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीण-
कषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते
हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-
समुद्घात, इन पांच पदोंको प्राप्त संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके
असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अद्वैतपक्षे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं । इसीप्रकार मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन दो पदोंमें वर्तमान संज्ञी मिथ्या-
दृष्टि जीवोंका भी क्षेत्र कहना चाहिए । केवल इतनी बात विशेष कहना चाहिए कि ये
तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । सासादनादि शेष गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र
ओघ-क्षेत्रके समान है, क्योंकि, ओघके क्षेत्रसे सासादनादि गुणस्थानोंके संज्ञी जीवोंके क्षेत्रमें
कोई विशेषता नहीं है ।

असंज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ८७ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

इस प्रकार संज्ञिमार्गणा समाप्त हुई ।

१ संज्ञानुवादेन संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत् । स. सि. १, ८.

२ असंज्ञिनां सर्वलोकः । स. सि. १, ८.

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८८ ॥

सव्वपदेहि ओघपरूवणादो विसेसो णत्थि त्ति ओघत्तं जुज्जदे ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८९ ॥

एदस्स सुत्तस्स पज्जवट्ठियपरूवणा ओघपरूवणाए तुल्ला । णवरि उववादो सरीरगहिदपढमसमए वत्तव्वो । सजोगिकेवलिस्स वि पदर-लोगपूरणसमुग्घादा वि णत्थि, आहारित्ताभावादो ।

अणाहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९० ॥

दव्वट्ठियपरूवणाए ओघं होदि । पज्जवट्ठियपरूवणाए पुण उववादपदमेक्कं चैव अत्थि । सेसं णत्थि । सेसं सुगमं ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥ ८८ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंके स्वस्थान आदि सभी पदोंके साथ क्षेत्रसम्बन्धी ओघप्ररूपणासे विशेषता नहीं है, इसलिए उनके क्षेत्रके ओघपना धन जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-स्थानवर्ती संज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८९ ॥

इस सूत्रकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा ओघक्षेत्रप्ररूपणाके समान है । विशेष बात यह है कि आहारक जीवोंके उपपादपद शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयमें कहना चाहिए, (क्योंकि, तभी जीव आहारक होता है) । आहारक सयोगिकेवलीके भी प्रतर और लोकपूरणसमुद्घात नहीं होते हैं, क्योंकि, इन दोनों अवस्थाओंमें केवलीके आहारकपनेका अभाव है, अर्थात् प्रतर और लोकपूरणसमुद्घातकी अवस्थामें सयोगिकेवली भगवान् अनाहारक रहते हैं ।

अनाहारकोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ९० ॥

द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणासे अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान होता है । किन्तु पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणाकी अपेक्षा तो एक उपपादपद ही होता है । शेष पद नहीं होते हैं, (क्योंकि, अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंमें स्वस्थानादि शेष सभी पद असंभव हैं) । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

१ आहाराणुवादिण आहारकाणा मिथ्यादृष्ट्यादिकीणकवायान्ताना सामान्योक्तं क्षेत्रम् । सयोगिकेवलिनो लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९१ ॥

पज्जवट्ठियणएण उववादग्गदा सासणसम्मादिट्ठी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे अचञ्छंति । असंजदसम्मादिट्ठीणं परूवणा एवं चेव । अजोगिकेवली चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे ।

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु वा भागेषु, सच्चलोगे वा ॥ ९२ ॥

पदरग्गदो सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जेसु भागेषु वा होदि, लोगपेरंतट्ठिद-वाद्दवलयवदिरित्तसयललोगखेत्तं समावूरिय ट्ठिदत्तादो । लोगपूरणे पुण सच्चलोगे भवदि, सच्चलोगमावूरिय ट्ठिदत्तादो ।

(एवं आहारमग्गणा समत्ता)

एवं खेत्ताणिओग्गहारं समत्तं ।

अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और अयोगिकेवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ९१ ॥

पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणाकी अपेक्षा उपपादको प्राप्त अनाहारक सासादन-सम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्ठाईट्ठीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । अनाहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा भी इसी प्रकार जानना चाहिए । अनाहारक अयोगिकेवली भगवान् सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं ।

अनाहारक सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ९२ ॥

प्रतरसमुद्दातगत सयोगिकेवली जिन लोकके असंख्यात बहुभागोंमें रहते हैं, क्योंकि, वे लोकके चारों ओर स्थित वातवलय-व्यतिरिक्त सकल लोकके क्षेत्रको समापूरित करके स्थित होते हैं । पुनः लोकपूरणसमुद्दातमें वे ही सयोगिकेवली जिन सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, उस समय वे सर्व लोकको आपूरण करके स्थित होते हैं ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार क्षेत्रानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

१ अनाहारकर्णा मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टसंयतसम्यग्दृष्टवयोगिकेवलिना सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

२ सयोगिकेवलिना लोकस्यासंख्येयभागाः सर्वलोको वा । स. सि. १, ८.

३ क्षेत्रनिर्णयः कृतः । स. सि. १, ८.

फ़ोसणाणुगमो



सिरि-भगवंत-पुष्पदंत-भूदबलि-पणीदो

छत्रखंडागमो

सिरि-वीरसेणाहरिय-विरइय-धवल-टीका-समण्णिदो

तस्स

पहमखंडे जीवहाणे

फोसणाणुगमो

णमिऊणेलाइरिए तिहुवणभवणेक्कमंगलप्पईवे ।

कलिकलुसफुसणवसणे सुत्तं फोसासियं वोच्छं ॥

पोसणाणुगमेण दुविहो णिहेसो, ओघेण आदेसेण यं ॥ १ ॥

णामफोसणं ठवणफोसणं दच्चफोसणं खेत्तफोसणं कालफोसणं भावफोसणं चेदि
छव्विहं फोसणं । तत्थ णामफोसणं फोसणसदो । एसो दच्चड्डियस्स णिक्खेवो, धुवत्तेण

त्रिभुवनरूपी भवनके प्रकाशित करनेके लिए अद्वितीय मंगलप्रदीप, और कलि-
कालकी कलुपताके संमार्जनके लिए चक्रस्वरूप श्री एलाचार्यको नमस्कार करके स्पर्शनानु-
गमाश्रित सूत्रोंके अर्थको कहता हूँ ॥

स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेश-
निर्देश ॥ १ ॥

नामस्पर्शन, स्थापनास्पर्शन, द्रव्यस्पर्शन, क्षेत्रस्पर्शन कालस्पर्शन और भावस्पर्शनके
भेदसे स्पर्शन छह प्रकारका है। उनमें 'स्पर्शन' यह शब्द नामस्पर्शन निक्षेप है। यह
निक्षेप द्रव्यार्थिकनयका विषय है, क्योंकि ध्रुवपनेके बिना वाच्य-वाचकभावरूप सम्बन्ध

१ स्पर्शनपुच्यते-तद् द्विविधम् । सामान्येन विशेषेण च ॥ स. सि. १, ८.

विणा वाचिय-वाचयभावाणुववत्तीदो । सोयमिदि बुद्धीए अण्णदब्बेण अण्णदब्बस्स एयत्त-
करणं ठवणफोसणं णाम । जहा, घट-पिट्ठरादिसु एसो उसहो अजीवो अहिणंदणो त्ति ।
एसो वि दब्बट्टियस्स णिवखेवो, दोण्हमेयत्त-धुवत्तेहि विणा ठवणापवुत्तीए असंभवादो ।
आगम-णोआगमभेदेण दुविहं दब्बफोसणं । तत्थ फोसणपाहुडजाणगो अणुवजुतो खओव-
समसहिओ आगमदो दब्बफोसणं णाम । णोआगमदब्बफोसणं जाणुगसरीर-भविय-तत्त्वदि-
रिक्तदब्बफोसणमेएण तिविहं । तत्थ जाणुगसरीरदब्बफोसणं भविय-वट्टमाण-समुज्झाद-
भेएण तिविहं । कधमेदस्स तिविहसररीरस्स फोसणववदेसो ? फोसणपाहुडसहचारादो ।
जहा, असिसहचरिदो असी, धणुसहचरिदो धणुहमिदि । भवियदब्बफोसणं भविस्सकाले
फोसणपाहुडजाणओ । कधमेदस्स दब्बफोसणववएसो ? पुवुत्तरावत्थाणं दब्बेण एगत्तादो ।
जहा, इंदट्टमाणिककट्टस्स इंदो त्ति ववदेसो । तत्त्वदिरिक्तदब्बफोसणं सचित्त-अचित्त-

नहीं बन सकता है । 'यह वही है' इस प्रकारकी बुद्धिसे अन्य द्रव्यके साथ अन्य द्रव्यका एकत्व स्थापित करना स्थापना निक्षेप है । जैसे, घट, पिट्टर (पात्रविशेष) आदिकमें ' यह ऋषभ है, यह अजीव है, यह अभिनन्दन है ' इत्यादि । यह स्थापनानिक्षेप भी द्रव्यार्थिक-
नयका विषय है, क्योंकि, दो पदार्थोंकी एकता और भुवताके विना स्थापनानिक्षेपकी प्रवृत्ति असंभव है । आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यस्पर्शननिक्षेप दो प्रकारका है । उनमें स्पर्शनविषयक शास्त्रका ज्ञायक, किन्तु वर्तमानमें अनुपयोगी और क्षयोपशमसहित जीव आगमद्रव्यस्पर्शननिक्षेप है । नोआगमद्रव्यस्पर्शननिक्षेप ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्द्रव्यति-
रिक्तद्रव्यस्पर्शनके भेदसे तीन प्रकारका है । उनमें ज्ञायकशरीर द्रव्यस्पर्शन भावी, वर्तमान और समुज्झित (त्यक्त) के भेदसे तीन प्रकारका है ।

शंका—इस तीन प्रकारके शरीरको 'स्पर्शन' यह व्यपदेश (संज्ञा) कैसे प्राप्त हो सकता है ?

समाधान—स्पर्शनप्राप्तके साहचर्यसे उक्त तीन प्रकारके शरीरको भी स्पर्शनसंज्ञा प्राप्त हो जाती है । जैसे, असि (तलवार) से सहचरित पुरुषको असि और धनुषसे सहचरित पुरुषको धनुष संज्ञा प्राप्त हो जाती है ।

भविष्यकालमें स्पर्शनविषयक शास्त्रके ज्ञायकको भव्यद्रव्यस्पर्शन कहते हैं ।

शंका—इस भव्यशरीरघालेके ' द्रव्यस्पर्शन ' यह संज्ञा कैसे है ?

समाधान—विवक्षित द्रव्यकी पूर्ण अवस्था और उत्तर अवस्थाका उस द्रव्यके साथ एकत्व पाया जाता है । जैसे, इन्द्र बनानेके लिये लाए गए काष्ठकी ' इन्द्र ' यह संज्ञा देखी जाती है ।

मिस्सयभेदेण तिविहं । सच्चित्ताणं दव्वाणं जो संजोओ सो सच्चित्तदव्वफोसणं । अचित्ताणं दव्वाणं जो अण्णोण्णेण संजोओ सो अचित्तदव्वफोसणं । मिस्सयदव्वफोसणं छुण्हं दव्वाणं संजोएण एगूणसद्धिभेयभिण्णं । सेसदव्वाणमागासेण सह संजोओ खेत्तफोसणं । अमुत्तेण आगासेण सह सेसदव्वाणं मुत्ताणममुत्ताणं वा कथं पोसो ? ण एस दोसो, अवगेज्झाव-

तद्व्यतिरिक्तद्रव्यस्पर्शनं सच्चित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है । जो सच्चित्त द्रव्योंका संयोग होता है, वह सच्चित्तद्रव्यस्पर्शनं कहलाता है । अचित्त द्रव्योंका जो परस्परमें संयोग होता है, वह अचित्तद्रव्यस्पर्शनं कहलाता है । मिश्रद्रव्यस्पर्शनं चेतन-अचेतनस्वरूप छहों द्रव्योंके संयोगसे उनसठ भेदवाला होता है ।

विशेषार्थ — किसी विवक्षित राशिके द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भंग निकालनेके लिए विवक्षित राशिप्रमाणसे लेकर एक एक कम करते हुए एकके अंक तक अंक स्थापित करना चाहिए । पुनः दूसरी पंक्तिमें उनके नीचे एकसे लेकर विवक्षित राशि तक अंक लिखना चाहिए । पहली पंक्तिके अंकोंको अंश या भाज्य और दूसरी पंक्तिके अंकोंको हार या भागद्वार कहते हैं । यहां पहले भाज्योंके साथ अगले भाज्योंका और पहले भागद्वारोंके साथ अगले भागद्वारोंका गुणा करना चाहिए । पुनः भाज्योंके गुणनफलमें भागद्वारोंके गुणनफलका भाग देना चाहिए जो इस प्रकार प्रमाण आवे, उतने ही विवक्षित स्थानके भंग समझना चाहिए । इस करणसूत्र (गो. कर्मकांड गाथा नं. ७९९) के नियमानुसार छह द्रव्योंके संयोगी भंग इस प्रकार होंगे — द्विसंयोगी — $\frac{६ \times ५}{१ \times २} = १५$ । त्रिसंयोगी

$$\frac{६ \times ५ \times ४}{१ \times २ \times ३} = २० । चतुःसंयोगी \frac{६ \times ५ \times ४ \times ३}{१ \times २ \times ३ \times ४} = १५ । पंचसंयोगी \frac{६ \times ५ \times ४ \times ३ \times २}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५} = ६ ।$$

$$\text{षट्संयोगी} \frac{६ \times ५ \times ४ \times ३ \times २ \times १}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५ \times ६} = १ । \text{इन सब संयोगी भंगोंका योग } १५ + २० + १५ + ६ + १ = ५७$$

सत्तावन होता है । इन ५७ भंगोंके अतिरिक्त जीवका जीवके साथ, तथा पुद्गलका पुद्गलके साथ, इस प्रकार दो भंग और भी संभव हैं, जिन्हें मिलाकर ५९ संयोगी भंग हो जाते हैं । धर्मास्तिकाय आदि शेष चार द्रव्य अखंड एक एक ही होते हैं, अतः उनके इस प्रकारके एक ही द्रव्यके भीतर संयोगी भंग संभव नहीं हैं । जीव आदि छहों द्रव्योंके पृथक् पृथक् छह भंग और होते हैं, जो असंयोगी (एक संयोगी) होनेसे यहां ग्रहण नहीं किये गये ।

शेष द्रव्योंका आकाशद्रव्यके साथ जो संयोग है, वह क्षेत्रस्पर्शनं कहलाता है ।

शंका — अमूर्त्त आकाशके साथ शेष अमूर्त्त और मूर्त्त द्रव्योंका स्पर्श कैसे संभव है ?

गाहगभावस्सेव उवयारेण फांसववएसादो, सत्त-पमेयत्तादिणा अण्णोणसमाणत्तणेण वा । कालद्वस्स अण्णद्वेहि जो संजोओ सो कालफोसणं णाम । एत्थ अमुत्तेण कालद्वेण सेसद्व्वाणं जदि वि पासो णत्थि, परिणामिज्जमाणाणि सेसद्व्वाणि परिणामत्तेण कालेण पुसिदाणि त्ति उवयारेण कालफोसणं बुच्चदे । खेत्त-कालफोसणाणि द्व्वफोसणमिह किण्ण पदंति त्ति बुत्ते ण पदंति, दव्वादो दव्वेगदेसस्स कथंचि भेदुवलंभादो । भावफोसणं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । फोसणपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगमदो भावफोसणं । पासगुण-परिणदपोग्गलद्व्वं णोआगमभावफोसणं ।

एदेसु फोसणेसु जीवखेत्तफोसणेण पयदं । अस्पर्शिं स्पृश्यत इति स्पर्शनम् । फोसणस्स अणुगमो फोसणाणुगमो, तेण फोसणाणुगमेण । णिदेसो कहणं वक्खाणमिदि एयट्ठो । सो दुविहो, जहा पयई । ओवेण पिंडेण अभेदेणेत्ति एयट्ठो । आदेसेण भेदेण

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, अवगाह्य-अवगाहकभावको ही उपचारसे स्पर्शसंज्ञा प्राप्त है, अथवा, सत्त्व, प्रमेयत्व आदिके द्वारा मूर्त्त द्रव्यके साथ अमूर्त्त द्रव्योंकी परस्पर समानता होनेसे भी स्पर्शका व्यवहार बन जाता है ।

कालद्रव्यका अन्य द्रव्योंके साथ जो संयोग है, उसका नाम कालस्पर्शन है । यहाँ यद्यपि अमूर्त्त कालद्रव्यके साथ शेष द्रव्योंका स्पर्शन नहीं है, तथापि परिणमित होने वाले शेष द्रव्य परिणामत्वकी अपेक्षा कालसे स्पर्शित हैं, इस प्रकारके उपचारसे कालस्पर्शन कहा जाता है ।

शंका—क्षेत्रस्पर्शन और कालस्पर्शन ये दोनों स्पर्शन, द्रव्यस्पर्शनमें क्यों नहीं अन्तर्भूत होते हैं ?

समाधान—ऐसी शंकापर उत्तर देते हैं कि क्षेत्रस्पर्शन और कालस्पर्शन द्रव्यस्पर्शनमें अन्तर्भूत नहीं होते हैं, क्योंकि, द्रव्यसे द्रव्यके एक देशका कथंचित् भेद पाया जाता है ।

भावस्पर्शन आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । स्पर्शनिषेधक शास्त्रके ज्ञायक और वर्तमानमें उसमें उपयुक्त जीवको आगमभावस्पर्शन कहते हैं । स्पर्शगुणसे परिणत पुद्गलद्रव्यको नोआगमभावस्पर्शन कहते हैं ।

इन उक्त छह प्रकारके स्पर्शनोंमेंसे यहाँपर जीवद्रव्यसम्बन्धी क्षेत्रस्पर्शनसे प्रयोजन है । जो भूतकालमें स्पर्श किया गया और वर्तमानमें स्पर्श किया जा रहा है, वह स्पर्शन कहलाता है । स्पर्शनके अनुगमको स्पर्शानुगम कहते हैं, उससे, अर्थात् स्पर्शानुगमसे । निर्देश, कथन और व्याख्यान, ये तीनों एकार्थक नाम हैं । वह निर्देश प्रकृतिके निर्देशके समान दो प्रकारका होता है । ओघ, पिंड और अभेद, ये सब एकार्थक नाम हैं । आदेश, भेद

विसेसेणेत्ति समाणद्धो । ओघणिहेसो आदेसणिहेसो त्ति दुविहो चैव णिहेसो होदि, दव्व-
पज्जवट्ठियण्ण अणवलंबिय कहणोवायाभावादो । जदि एवं, तो पमाणवक्कस्स अभावो
पसज्जदे इदि वुत्ते, होदु णाम अभावो, गुणप्पहाणभावमंतरेण कहणोवायाभावादो ।
अधवा, पमाणुप्पाइदं वयणं पमाणवक्कमुवयारेण वुच्चदे ।

ओघेण मिच्छादिद्विहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ॥ २ ॥

‘जहा उद्देशो तथा णिहेसो’ त्ति णायादो ताव ओघेणेत्ति वयणं । सेसगुणट्ठाण-
पडिसेहट्ठं मिच्छादिद्विहिं त्ति वयणं । केवडियं खेत्तं फोसिदमिदि पुच्छासुत्तं सत्थस्स
पमाणत्तपदुप्पायणफलं । खेत्ताणिओगहारे सव्वमग्गणट्ठाणाणि अस्सिदूण सव्वगुणट्ठाणाणं
वट्टमाणकालविसिट्ठं खेत्तं पदुप्पादिदं, संपदि पोसणाणिओगहारेण किं परुविज्जदे ? चोइस
मग्गणट्ठाणाणि अस्सिदूण सव्वगुणट्ठाणाणं अदीदकालविसेसिदखेत्तं फोसणं वुच्चदे । एत्थ

और विशेष ये सब समानार्थक नाम हैं । ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश इस प्रकारसे
निर्देश दो ही प्रकारका होता है, क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनयोंके अवलम्बन किये
बिना वस्तुस्वरूपके कथन करनेके उपायका अभाव है ।

शंका— यदि ऐसा है तो प्रमाणवाक्यका अभाव प्राप्त होता है ?

समाधान— उक्त शंकापर धवलाकार कहते हैं कि भले ही प्रमाणवाक्यका अभाव
हो जावे, क्योंकि, गौणता और प्रधानताके बिना वस्तुस्वरूपके कथन करनेके उपायका भी
अभाव है । अथवा, प्रमाणसे उत्पादित वचनको उपचारसे प्रमाणवाक्य कहते हैं ।

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श
किया है ॥ २ ॥

‘जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है’ इस न्यायके अनुसार
सूत्रमें पहले ‘ओघसे’ ऐसा वचन कहा । सासादनादि शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेध करनेके
लिए ‘मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा’ यह वचन कहा । ‘कितना क्षेत्र स्पर्श किया है’ यह पृच्छा-
सूत्र शास्त्रके प्रमाणता-प्रतिपादन करनेके लिए कहा गया है ।

शंका— क्षेत्रानुयोगद्वारमें सर्व मार्गणास्थानोंका आश्रय लेकर सभी गुणस्थानोंके
वर्तमानकालविशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन कर दिया गया है । अब पुनः इस स्पर्शानुयोगद्वारसे
क्या प्ररूपण किया जाता है ?

समाधान— चौदह मार्गणास्थानोंका आश्रय लेकरके सभी गुणस्थानोंके अतीत
(भूत) काल विशिष्ट क्षेत्रको स्पर्शन कहा गया है । (अतएव यहाँ उसीका प्ररूपण किया
जाता है ।)

१ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टिमिः सर्वलोकः स्पृष्टः । स. सि. १, ८.

२ प्रतिपु ‘ताव ओवं च णामित्ति त्ति ओघेणेत्ति’ इति पाठः ।

वट्टमाणखेत्तपरुवणं पि सुत्तणिबद्धमेव दीसदि । तदो ण पोसणमदीदकालविसिद्धखेत्त-
पदुप्पाइयं, किंतु वट्टमाणादीदकालविसेसिदखेत्तपदुप्पाइयमिदि ? एत्थ ण खेत्तपरुवणं,
तं तं पुव्वं खेत्ताणिओगहारपरुविदवट्टमाणखेत्तं संभराविय अदीदकालविसिद्धखेत्तपदु-
प्पायणद्धं तस्सुवादाणा । तदो फोसणमदीदकालविसेसिदखेत्ते पदुप्पाइयमेवेत्ति सिद्धं ।
सव्वलोगो, सव्वो लोगो मिच्छादिट्ठीहि च्छुत्तो त्ति जं बुत्तं होदि । एत्थ लोणपमाणं पुव्वं
व आणेदव्वं । अधवा—

मुहसद्धिदमूलमद्धं छेत्तूणद्धेण सत्तवग्गेण ।

हंतूणेगद्धकदे घणरज्जू होंति लोणग्ग्हि ॥ १ ॥

एदीए गाहाए आणेदव्वो । अधवा सत्तरज्जुविकखंभ-चोइसरज्जुआयदखेत्तं ठविय

शंका—यहां स्पर्शनानुयोगद्वारमें वर्तमानकालसम्बन्धी क्षेत्रकी प्ररूपणा भी सूत्र-
तिबद्ध ही देखी जाती है, इसलिये स्पर्शन अतीतकालविशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला
नहीं है, किन्तु वर्तमान और अतीतकालसे विशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला है ?

समाधान—यहां स्पर्शनानुयोगद्वारमें वर्तमानक्षेत्रकी प्ररूपणा नहीं की जा रही है,
किन्तु, पहले क्षेत्रानुयोगद्वारमें प्ररूपित उस उस वर्तमानक्षेत्रको स्मरण कराकर अतीतकाल-
विशिष्ट क्षेत्रके प्रतिपादनार्थ उसका ग्रहण किया गया है । अतएव स्पर्शनानुयोगद्वार
अतीतकालसे विशिष्ट क्षेत्रका ही प्रतिपादन करनेवाला है, यह सिद्ध हुआ ।

‘सर्वलोक’ अर्थात् सम्पूर्ण लोक मिथ्यादृष्टि जीवोंके द्वारा स्पर्श किया गया है, ऐसा
कहा गया है । यहांपर लोकका प्रमाण पहले क्षेत्रप्ररूपणामें बताये गये नियमके अनुसार
निकाल लेना चाहिए । अधवा—

लोकको अर्धभागसे छेदकर अर्थात् मध्यलोकसे दो विभाग कर, दोनों विभागोंके
पृथक् पृथक् मुखसहित मूलके विस्तारको आधा करके, पुनः सातके वर्गसे गुणा करके, उन दोनों
राशियोंको जोड़ देनेपर, लोकसम्बन्धी घनराजु उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

इस गाथाके अनुसार लोकका प्रमाण निकालना चाहिए ।

विशेषार्थ—लोकको मध्यसे विभक्त करनेपर दो भाग हो जाते हैं, ऊर्ध्वलोक और
अधोलोक । इनमेंसे अधोलोकका मुख १ राजु और मूल ७ राजुप्रमाण है । अतएव इन
दोनोंका योग ८ राजु हुआ । इसके आधे ४ को ७ के वर्ग (७ × ७ = ४९) से गुणा करनेपर
(४ × ४९ =) १९६ राजु आते हैं । यही अधोलोकके घनराजुओंका प्रमाण है । इसी प्रकारसे
ऊर्ध्वलोकका मुख १ राजु और मूल ५ राजुप्रमाण है, दोनोंका योग ६ राजु हुआ । इसके आधे
३ को ७ के वर्गसे गुणा करनेपर (३ × ४९ =) १४७ राजु आते हैं । यही ऊर्ध्वलोकके
घनराजुओंका प्रमाण है । उक्त दोनों प्रमाणोंको एकत्रित करनेपर (१९६ + १४७ =) ३४३
लोकसम्बन्धी घनराजुओंका प्रमाण होता है ।

आयामं चोदसखंडाईं कादूण विक्खंभेण सत्त खंडे करिय लौगपमाणादो अधियखेत्तं फुसिय फेलिदे सगल-विगलावयवसहिदलोगखेत्तं परिप्फुडं होदूण दीसदि । तत्थ ड्ढिद-सुत्तवसेण सव्वाणि खेत्तखंडाणि आणिय मेलविदे वि तं चेव लौगपमाणं होदि ।

अथवा, सात राजुप्रमाण चौड़े और चौदह राजुप्रमाण लम्बे क्षेत्रको स्थापन करके आयामकी अपेक्षा चौदह खंड करके और विष्कम्भकी अपेक्षा सात खंड करके, पुनः लोकके प्रमाणमेंसे अधिक क्षेत्रको लेकर राजुके प्रमाणसे खंडित करनेपर, अपने सकल और विकल अवयवोंसे सहित लोकरूप क्षेत्र परिस्फुट होकर दिखाई देता है। पुनः वहांपर बताये गए सूत्रके अनुसार समस्त क्षेत्रखंडोंको निकाल करके मिलानेपर भी वही तीन सौ तेतालीस घनराजु लोकका प्रमाण हो जाता है।

विशेषार्थ— उक्त कथनका अभिप्राय यह है कि पुरुषाकार लोकके आकारमें त्रसनाली तथा उसके आगे पीछे त्रसनालीके समान ही जो क्षेत्र है वह सब पूर्व-पश्चिम एक राजु चौड़ा, उत्तर-दक्षिण सात राजु मोटा और ऊपर-नीचे चौदह राजु लम्बा है। इस कपाटाकार आयत-चतुरस्र क्षेत्रको लम्बाईकी ओरसे एक एक राजु प्रमाणसे खंडित करके पुनः मोटाईकी ओरसे भी एक राजुप्रमाणसे खंडित करना चाहिए। इस प्रकारसे उक्त कपाटाकार आयत-चतुरस्रक्षेत्रके एक राजुप्रमाण लम्बे, चौड़े और मोटे अर्थात् घनात्मक खंड $१४ \times ७ = ९८$) अठ्यानवे होते हैं। पुनः लोकप्रमाणमेंसे इस क्षेत्रके (इन खंडोंके) अतिरिक्त जो अवशिष्ट क्षेत्र बचा है, उसे लेकर सम विभागोंको ऊपर-नीचे स्थापनकर पूर्वोक्त प्रमाणसे ही एक एक राजुप्रमाणके खंड करना चाहिए, जिसका क्रम इस प्रकार है—मध्यलोकसे नीचे अधोभागके जो शेष दोनों पार्श्ववर्ती दो भाग हैं, उन्हें एकके ऊपर दूसरेको विपर्यासक्रमसे रखना चाहिए। ऐसा करने पर वह सात राजुप्रमाण लम्बा, चौड़ा समचतुरस्र क्षेत्र बन जाता है, जिसकी कि मोटाई सर्वत्र तीन राजुप्रमाण हो जाती है। इसके भी एक एक घनराजुप्रमाण खंड करने पर $(७ \times ७ \times ३ = १४७)$ एकसौ तेतालीस खंड होते हैं। इसी प्रकारसे ऊर्ध्व-लोकके अवशिष्ट क्षेत्रको ब्रह्मलोकके पाससे छिन्न कर देनेपर समान मापवाले चार भाग हो जाते हैं। इन्हें क्रमशः विपर्यासक्रमसे स्थापित करने पर सात राजु लम्बे, साढ़े तीन राजु चौड़े और दो राजु मोटे, ऐसे दो आयत-चतुरस्र क्षेत्र हो जाते हैं। यदि इन दोनों भागोंको भी चौड़ाईकी ओरसे मिला दिया जाय, तो सात राजुप्रमाण लम्बा-चौड़ा एक समचतुरस्र क्षेत्र बन जाता है, जिसकी कि मोटाई सर्वत्र दो राजु होगी। इसके भी एक एक घनराजुप्रमाण खंड करने पर $(७ \times ७ \times २ = ९८)$ अठ्यानवे खंड होते हैं। इस प्रकारसे उत्पन्न हुए इन समस्त खंडोंको जोड़ देने पर $(९८ + १४७ + ९८ = ३४३)$ तीन सौ तेतालीस खंड हो जाते हैं, जो कि प्रत्येक एक एक घनराजुप्रमाण हैं। अतएव इस प्रकारसे भी लोकका प्रमाण ३४३ घनराजु निकल आता है।

एत्थ पज्जवट्ठियपरूवणा बुच्चदे । सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदमिच्छादिट्ठीहि अदीदेण वट्टमाणेण च सव्वलोगो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि वट्टमाणे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणं खेत्तं फोसिदं । एत्थ ओवट्टणाए खेत्तभंगो । अदीदेण अट्ट चोदसभागा देसूणा । तं जघा- लोगणालिं चोदस खंडे करिय मेरूमूलदो हेट्टिम-दो-खंडाणि उवरिम-छ-खंडाणि च एगट्टे कदे अट्ट चोदसभागा होंति । ते च हेट्टिमजोयणसहस्सेणूणा होंति ।

सासणसम्मादिट्ठीहिं केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो' ॥ ३ ॥

एदं सुत्तं मंदबुद्धिसिस्ससंभालणट्ठं खेत्ताणिओगदारे उत्तमेव पुणरवि उत्तं, अदी-दाणागदवट्टमाणकालविसिट्ठुखेत्तेसु चोदसगुणट्ठाणणिवद्वेसु पुच्छिदेसु तस्सिस्ससंदेहविणा-सणट्ठं वा दु-कालविसिट्ठुखेत्तपरूवणं कीरदे । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-

अब यहाँपर पर्यायार्थिक नयसम्बन्धी प्ररूपणा कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, वेदना-समुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद् पदगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकाल और वर्तमानकालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है; तथा अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहाँपर अपवर्तना क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा देशोन (कुछ कम) आठ बटे चौदह (१४) राजु क्षेत्र स्पर्श किया है, वइ इस प्रकारसे है—लोकनालीके चौदह खंड करके मेरुपर्वतके मूलभागसे नीचेके दो खंडोंको और ऊपरके छह खंडोंको एकत्रित करने पर आठ बटे चौदह (१४) भाग हो जाते हैं । ये आठ बटे चौदह राजु तीसरी पृथिवीके नीचेके एक हजार योजनोंसे हीन प्रमाण होते हैं, इसीलिए इन्हें 'देशोन' कहा है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३ ॥

क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा गया ही यह सूत्र मंदबुद्धि शिष्योंके संभालनेके लिए फिर भी कहा गया है । अथवा, भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमानकाल विशिष्ट तथा चौदह गुण-स्थानोंसम्बन्धी क्षेत्रोंके पूछने पर उस शिष्यके संदेह-विनाशनार्थ भूतकाल और भविष्यकाल, इन दो कालोंसे विशिष्ट वर्तमानक्षेत्रकी प्ररूपणा की जा रही है । स्वस्थानस्वस्थान, विहार-

१ सासादनसम्यग्दृष्टिमिलोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ द्वादश वा चतुर्दशभागा देशोनाः । त. सि. १, ८.

कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववाद्गदेहि चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो फोसिदो ।
माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणं खेत्तं फोसिदं । एत्थ कारणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

अट्ट वारह चौदसभागा वा देसूणा ॥ ४ ॥

सासणसम्मादिङ्गीहिं ति पुव्वसुत्तादो अणुवट्ठे । अदीदकालखेत्तपदुप्पायणडुमिदं
सुत्तमागदं । तं कथं णव्वदे ? अट्ट वारह चौदसभागणहाणुववत्तीदो । जेणेदं देसामासिग-
सुत्तं, तेणेदस्स पज्जवट्ठियपरूवणा पज्जवट्ठियजणाणुग्गहट्ठं कीरदे । तं जहा- सत्थाण-
सत्थाणगदेहिं तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो ।
अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणं । अदीदसत्थाणखेत्तस्साणयणविधानं वुच्चदे । तं जधा- तत्थ
ताव तिरिक्खसासणसत्थाणखेत्तं भणिस्सामो । तसजीवा लोगणालीए अब्भंतरे चेव होंति,
णो बहिद्धां । तं कुदो णव्वदे ? ' अट्ट चौदसभागा देसूणा ' ति वयणादो । तदो रज्जु-

वत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और
उपपाद, इन पदोंको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका
असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है । तथा मानुपक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया
है । यहांपर कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग
तथा कुछ कम बारह बटे चौदह भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है ॥ ४ ॥

इस सूत्रमें ' सासादनसम्यग्दृष्टियोंने ' इस पदकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति होती है । यह
सूत्र अतीतकालसम्बन्धी क्षेत्रके प्रतिपादन करनेके लिए आया है ।

शंका— यह सूत्र अतीतकालसम्बन्धी क्षेत्रकी प्ररूपणाके लिए आया है, यह कैसे
जाना ?

समाधान— आठ बटे चौदह और बारह बटे चौदह भागोंकी प्ररूपणा अन्यथा बन
बन नहीं सकती है, अतः इस अन्वथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि यहां पर अतीतकाल-
सम्बन्धी क्षेत्रका प्रतिपादन करना अभीष्ट है ।

चूंकि यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिए इसकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी प्ररू-
पणा पर्यायार्थिकनयवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिए की जाती है । वह इस प्रकार है—
स्वस्थानस्वस्थानपदको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टियोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन
लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है, तथा अट्टाई-
द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अब अतीतकालसम्बन्धी स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रके
निकालनेका विधान कहते हैं । वह इस प्रकार है—उसमेंसे पहले तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि-
योंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको कहते हैं । तसजीव लोकनालीके भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं ।

शंका— यह कैसे जाना ?

१ प्रतिपु ' बहिष्मा ' इति पाठः ।

पदरम्भंतरे सव्वत्थ सासणा संभवन्ति । तसजीवविरहिदेसु असंखेज्जेसु समुदेसु णवरिं सासणा णत्थिं । वेरियवेंतरदेवेहि घित्ताणमत्थि संभवो, णवरि ते सत्थाणत्थां ण होंति, विहारेण परिणत्तादो । तं खेत्तं तिरियलोगपमाणेण कीरमाणे एगं जगपदरं पुरदो भण्ण-माणपमाणेहि संखेज्जरूवेहि खंडिय लद्धं रज्जूपदरमिह अवणिय संखेज्जंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगसस संखेज्जदिभागं होदूण संखेज्जंगुलबाहल्लं जगपदरं होदि ।

संपहि जोइसियसासणसम्माइद्धिसत्थाणखेत्तं भणिस्सामो । तं जहा— जंबूदीवे वे चंदा, वे सूर्रा । लवणसमुदे चत्तारि चंदा, चत्तारि सूर्रा । धादइखंडे पुथ पुथ वारह चंदाइच्चा । कालोदयसमुदे बादाल चंदाइच्चा । पोक्खरदीवद्धे बाहत्तरि चंदाइच्चा । माणुसोत्तरसेलादो बाहिरपंतीए चोहालसदमेत्ता । तदो चत्तारि रूपक्खेवं कादूण णेदस्वं

समाधान— 'सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें देशोन आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है' इस सूत्र-वचनसे जाना जाता है कि त्रसजीव लोकनालीके भीतर ही रहते हैं, बाहर नहीं ।

इसलिए राजुप्रतरके भीतर सर्वत्र सासादनसम्यग्दृष्टि जीव संभव हैं । विशेषता केवल यह है कि त्रसजीवोंसे विरहित (मानुषोत्तर और स्वयंप्रभ पर्वतके मध्यवर्ती) असंख्यात समुद्रोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नहीं होते हैं । यद्यपि वैरभाव रखनेवाले ध्यन्तर देवोंके द्वारा हरण करके ले जाये गये जीवोंकी वहां संभावना है, किन्तु वे वहांपर स्वस्थानस्वस्थानस्थ नहीं कहलाते हैं, क्योंकि, उस समय वे विहाररूपसे परिणत हो रहे हैं । इस क्षेत्रको तिर्यग्लोकके प्रमाणसे करनेपर, एक जगप्रतरको आगे कहे जानेवाले संख्यातरूप प्रमाणसे खंडित करके जो लब्ध आवे, उसे राजुप्रतरमेंसे निकाल करके पुनः संख्यात अंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होकर संख्यात अंगुल बाहल्यवाला जगप्रतर होता है ।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि ज्योतिषी देवोंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको कहते हैं । वह इस प्रकार है— जम्बूद्वीपमें दो चन्द्र और दो सूर्य हैं । लवणसमुद्रमें चार चन्द्र और चार सूर्य हैं । घातकीखंडमें पृथक् पृथक् बारह चन्द्र और बारह सूर्य हैं । कालोदकसमुद्रमें ब्यालीस चन्द्र और ब्यालीस सूर्य हैं । पुष्करद्वीपार्धमें बहत्तर चन्द्र और बहत्तर सूर्य हैं । मानुषोत्तर-

१ लवणोदे कालोदे जीवा अंतिमसयंपुरमणम्मि । कम्ममहीसंबद्धे जलयरया होंति ण हु सेसे ॥ ति. प. ५, ३१. जलयरजाणा लवणे कालेयंतिमसयंपुरमणे य । कम्ममहीपडिबद्धे न हि सेसे जलयरा जीवा ॥ त्रि. सा. ३२०.

२ प्रतिपु 'सव्वाणत्था', म प्रती 'सव्वाणत्था' इति पाठः ।

३ चत्तारो लवणज्जे धादइदीवम्मि वारस मियंका । बादाल कालसल्लिडे बाहत्तरि पुक्खरत्थम्मि । ति. प. पत्र २२१-२२२. दो दीवर्गं वारस नादाल बहत्तरिदुइणसंखा । पुक्खरदलो ति परदो अवद्धिया सव्वजोइगणा ॥ त्रि. सा. ३४६.

जाव बाहिरमद्दु पंतीओ गदाओ चि । तदो समुद्दुभंतरपढमपंतीए वेसद-अट्टासीदिमेत्ता । तदो चदुरुवब्भहियं कादूण णेदव्वं जाव एत्थतणबाहिरपंति चि' । एवं णेदव्वं जाव सयंभूरमणसमुद्दो चि । वुत्तं च-

चंदाइच्च-गहेहिं चेंवं णक्खत्त-ताररूवेहिं ।

दुगुण-दुगुणेहिं णारंतरेहि दुव्वगो तिरियल्लोगो' ॥ २ ॥

एदाणि सव्वविमाणाणि मेलाविदे संखेज्जपदरंगुलेहि जगपदरग्ग्हि भागे हिदे एग-भागमेत्ताणि विमाणाणि होंति' । पुणो ताणि-

शैलसे बाहिरी पंक्ति (वलय) में एकसौ चवालीस चन्द्र और इतने ही सूर्य हैं । इससे आगे चार संख्याको प्रक्षेप करके, अर्थात् चार चार बढ़ाते हुए बाहरी आठवीं पंक्ति आने तक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ— पुष्करार्धद्वीपसे ५० हजार योजन आगे जाकर ज्योतिर्मंडलकी प्रथम पंक्ति या वलय है, वहांपर चन्द्र और सूर्य की संख्या १४४, १४४ है । उससे आगे एक एक लाख योजन आगे जाकर सात वलय और हैं, जिनपर कि चन्द्र और सूर्योंकी संख्या ४, ४ बढ़ती जाती है, अर्थात् वहांपर क्रमशः १४८, १५२, १५६, १६०, १६४, १६८, १७२ चन्द्र वा इतने ही सूर्योंकी संख्या हो जाती है । इस प्रकारके वलय स्वयम्भूरमणसमुद्र तक अवस्थित हैं ।

इससे आगेके समुद्रकी भीतरी पंक्तिमें दो सौ अठाली चन्द्र वा इतने ही सूर्य हैं । इससे आगे प्रत्येक वलयपर चार चार चन्द्र और सूर्यकी संख्या यहांकी बाहरी पंक्ति आने तक बढ़ाते हुए ले जाना चाहिए । इस प्रकारसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक चन्द्र और सूर्यकी संख्या बढ़ाते हुए ले जाना चाहिए । कहा भी है—

चन्द्र, भादित्य (सूर्य), ग्रह, नक्षत्र और ताराओंकी दूनी दूनी संख्याओंसे निरन्तर तिर्यग्लोक द्विवर्गात्मक है ॥ २ ॥

ये सर्व (चन्द्र या सूर्य) विमान एकट्टे मिलाने पर संख्यात प्रतरांगुल्लोसे जगप्रतरमें भाग देने पर एक भागप्रमाण विमान होते हैं । पुनः वे सब—

१ मणुसुत्तरगिरिंदादो पण्णाससहस्सजोयणाणं गंतूण पढमवल्लयं होदि । ततो परं पत्तकमेकलवखजोयणाणि गंतूण विदियादिवल्लयाओ होंति नाव सयंभुरमणसमुद्दो चि । णवरि सयंभुरमणसमुद्दस्स वेदीए पण्णाससहस्स-जोयणाणिमपाविय तम्मि पदेसे चरिमवल्लयं होदि । ति. प. पत्र २२४. मणुसुत्तरसेलादो वेदियमूलाद्दु रीवउवईणं । पण्णाससहस्सेहि य लवखे लवखे तदो वल्लयं ॥ दीवद्धपढमवल्लये चउदालसयं तु वल्लयवल्लयेसु । चउ चउ वड्ढा आदी आदीदो दुगुणदुगुणकमा ॥ त्रि. सा ३४९-३५०. २ द्रव्यप्र. पृ. ३६.

३ अट्ट चउ दु ति ति सत्ता सत्त य ठाणेसु णवसु सुण्णाणि । छत्तीस सत्त दु णव अट्टा तिचउवका होंति अंककमा ॥ एदेहिं युण्णिसंखेज्जरूपपदरंगुलेहिं मज्झिदाए । सेदिकदीए लद्धं माणं चंदाण जोरसिंदाणं ॥ ति. प. ७, ११, १२.

(अट्टासीति च गहा अट्टावीसं तु इति नक्खत्ता ।

एगससीपरिवारो इत्तो ताराण बोच्छामिं ॥)

छावट्ठिं च सहस्सं णववसदं पंचसत्तरि य होंति ।

एयससीपरिवारो ताराणं कोडिकोडीओं ॥ ३ ॥

एदाहि ताराहि चंदाइच्च गह-णक्खत्तेहि य पंचट्टाणट्ठिदं परिवाडीए गुणिय मेला-
विदे जोदिसियसव्वविमाणणि होंति । तिरियलीगावट्ठिदसयलचंदाणं सपरिवाराणमाण-
यणविहाणं वत्तइस्सामो । तं जहा— जंबूदीवादिपंचदीवसमुदे मोत्तूण तदियसमुद्दमादि
कादूण जाव सयंभूरमणसमुदो ति एदासिमाणयणकिरिया ताव उच्चदे— तदियसमुद्दम्मि

(एक चन्द्रके परिवारमें (एक सूर्यके अतिरिक्त) अट्टासी ग्रह और अट्टाईस नक्षत्र
होते हैं, तथा तारोंका परिमाण आगे कहते हैं ॥)

एक चन्द्रके परिवारमें छयासठ हजार नौ सौ पचहत्तर कोड़ाकोडी
६६९७५००००००००००००००००० तारे होते हैं ॥ ३ ॥

इन ताराओंसे, तथा चन्द्र, सूर्य, ग्रह और नक्षत्रोंसे पांच स्थानपर अवस्थित
उपर्युक्त चन्द्र विमानसंख्याको परिपाटी-क्रमसे गुणितकर मिला देनेपर ज्योतिषी देवोंके
सर्व विमान हो जाते हैं ।

विशेषार्थ—अभी ऊपर जो चन्द्र-विम्बोंकी संख्या निकाल आए हैं, उसे पांच
स्थानोंपर स्थापित करना चाहिए । पुनः चूंकि एक चन्द्रके परिवारमें एक सूर्य, अट्टासी ग्रह,
अट्टाईस नक्षत्र और ऊपर बताये गए प्रमाणवाले तारे होते हैं, इसलिए इनसे क्रमशः पांच
स्थानोंपर अवस्थित चन्द्र-संख्याको गुणित करनेपर उनका प्रमाण इस प्रकार आ जाता है—

चन्द्रसंख्या, सूर्यसंख्या, ग्रहसंख्या, नक्षत्रसंख्या, तारासंख्या

च × १; च × १; च × ८८; च × २८; च × ६६९७५००००००००००००००

अब तिर्यग्लोकमें अवस्थित सपरिवार सकल चन्द्रोंके प्रमाणको निकालनेका विधान
कहते हैं । वह इस प्रकार है— जम्बूद्वीपादि तीन द्वीप और लवणसमुद्रादि दो समुद्र, इन
पांच द्वीप समुद्रोंको छोड़कर तृतीय समुद्रको आदि करके स्वयंभूरमणसमुद्र आते तक

१ गाथेयं प्रतिषु नोपलभ्यते, किन्तुतरगाथया सहास्या अविनाभावित्वादत्रोद्धृता । इयं गाथोत्तरगाथया
सह सूर्यप्रकृतावुपलभ्यते । (अभि. रा. कोष, चन्द्रशब्दे)

२ अट्टासीदट्टावीसा गहरिक्खा तार कोडकाडीणं । छावट्ठिं सहस्साणि य णववसयपणत्तरिगे चंदे ॥
त्रि. सा. ३६२.

३ आणिय गुणसंकलिदं किंचूणं पंचटाणसठविदं । चंदादिगुणं मिलिदे जोइसबिंवाणि सव्वाणि ॥
त्रि. सा. ३६१

४ इत आरभ्यामेतनः संदर्भः अमतन-रूपोनमादिसगुणेत्यादि आर्याभूवखंडात्प्राक् तिलोपपणत्ति ज्योति-
ल्लोकाधिकारगतेनानेन प्रकरणेन प्रायः शब्दसः समानः

गच्छो वत्तीस, चउत्थदीवे गच्छो चउसट्ठी, उवरिमसमुद्दे गच्छो अट्ठावीसुत्तरसयं । एवं दुगुणकमेण गच्छा गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुद्दं ति । संपहि एदेहिं गच्छेहिं पुध गुणिज्जमाणरासिपरूवणा कीरदे । तदियसमुद्दे वेसदमट्ठासीदं, उवरिमदीवे तत्तो दुगुणं । एवं दुगुण दुगुणकमेण गुणिज्जमाणरासीओ गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुद्दं पत्ताओ ति । संपहि अट्ठासीदि-वेसदेहि सव्वगुणिज्जमाणरासीओ ओवट्ठिय लद्धेण सग-सगगच्छे गुणिय अट्ठासीदि-वेसदमेव सव्वगच्छाणं गुणिज्जमाणं कायव्वं । एवं कदे सव्वगच्छा अण्णोण्णं पेक्खिदूण चदुग्गुणकमेण अवट्ठिदा जादा । संपहि चत्तारिमादिं कादूण चदुरुत्तरकमेण गदसंक्कलणाए आणयणे कीरमाणे पुक्खिल्लगच्छेहिंतो संपहियगच्छा रूऊणा होंति, दुगुण-जादट्ठाणे चत्तारिरूववट्ठीए अभावादो । एदेहि गच्छेहि गुणिज्जमाणमज्झिमधणाणि चउ-सट्ठिमादिं काऊण दुगुण-दुगुणकमेण गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुद्दं ति । पुणो गच्छसमी-

इनके विमानोंकी संख्या निकालनेकी प्रक्रिया पहले कहते हैं— तृतीय समुद्रमें गच्छका प्रमाण वत्तीस, चतुर्थ द्वीपमें गच्छका प्रमाण चौंसठ, इससे आगेके समुद्रमें गच्छका प्रमाण एकसौ अट्ठाईस होता है। इस प्रकार दूने दूने क्रमसे गच्छ स्वयम्भूरमणसमुद्र तक बढ़ते हुए चले जाते हैं। अब इन गच्छोंसे पृथक् पृथक् गुण्यमान (गुणा की जानेवाली) राशियोंकी प्ररूपणा करते हैं। तृतीय समुद्रमें गुण्यमानराशि दो सौ अठासी है, उससे उपरिम द्वीपमें गुण्यमानराशि इससे दूनी (२८८ × २ = ५७६) है। इस प्रकार दूने दूने क्रमसे गुण्यमान राशियां स्वयम्भूरमणसमुद्र प्राप्त होने तक दूनी होती हुई चली जाती हैं।

उदाहरण—२८८, ५७६, ११५२, २३०४, ४६०८, ९२१६, १८४३२ इत्यादि। (गुण्यमानराशियां)

अब दो सौ अठासीसे सभी गुण्यमान राशिओंको अपवर्तितकर लब्धराशिसे अपने अपने गच्छोंको गुणित करके दो सौ अठासीको ही सर्व गच्छोंकी गुण्यमानराशि करना चाहिए। ऐसा करनेपर सर्व गच्छ परस्परकी अपेक्षासे चतुर्गुण-क्रमसे अवस्थित हो जाते हैं।

उदाहरण—(१) $\frac{२२८}{२२८} = १$; $१ \times ३२ = ३२$; (२) $\frac{५७६}{२२८} = २$; $२ \times ६४ = १२८$; इत्यादि। यहांपर प्रथम गच्छ ३२ से द्वितीय गच्छ १२८ चौगुणा हो गया है।

अब चारको आदि करके चार चारके उत्तरक्रमसे वृद्धिगत संकलनके निकालनेपर पहलेके गच्छोंसे इस समयके गच्छ एक कम होते हैं, क्योंकि, दुगुणे हुए स्थानपर चार रूपकी वृद्धिका अभाव है। इन गच्छोंसे गुणा किये जानेवाले मध्यमधन, चौंसठको आदि करके दुगुण दुगुणक्रमसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक बढ़ते हुए चले जाते हैं।

करणट्टं सव्वगच्छेसु एगेगरूवपक्खूणो' कायव्वो । एवं कादूण चउसट्टिरूवेहिं मज्झिम-
धणाणि ओवट्टिय लट्टेण सग-सगगच्छे गुणिय सव्वगच्छाणं चउसट्टिरूवाणि गुणिज्ज-
माणत्तणेण ठवेदव्वाणि । एवं कदे वड्ढिदरासिस्स पमाणं बुच्चदे- एगरूवमादिं कादूण
गच्छं पडि दुगुण-दुगुणकमेण सयंभूरमणसमुदो ति गच्छरासी वड्ढिदो होदि । संपहि

विशेषार्थ—गच्छकी मध्यसंख्यापर जो वृद्धिका प्रमाण आता है, उसे मध्यमधन कहते हैं । यह धन उत्तरोत्तर दुगुणरूपसे बढ़नेवाले गच्छोंमें दुगुणा होता जाता है । तृतीय समुद्रका गच्छ ३२ है । प्रथम स्थानपर तो चारकी वृद्धि होती नहीं है, अतएव उसे छोड़कर जो शेष ३१ स्थान बचते हैं, उनमें सोलहवां स्थान मध्यम रहता है और उसकी वृद्धिका प्रमाण ६४ होता है । जैसे—

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५,
४, ८, १२, १६, २०, २४, २८, ३२, ३६, ४०, ४४, ४८, ५२, ५६, ६०, १६
१२४, १२०, ११६, ११२, १०८, १०४, १००, ९६, ९२, ८८, ८४, ८०, ७६, ७२, ६८, ६४
३२, ३०, २९, २८, २७, २६, २५, २४, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १७,

इस क्रमसे गच्छके मध्यवर्ती सोलहवें स्थानपर वृद्धिका प्रमाण ६४ आता है । इसलिए तृतीय समुद्रसम्बन्धी मध्यमधन ६४ है । इसी प्रकार आगेके द्वीपका गच्छ ६४ होनेसे उसका मध्यमधन १२८ होगा, जो अपने पूर्ववर्ती मध्यमधन ६४ के प्रमाणसे दुगुणा होता है । इस प्रकार आगे आगेके द्वीप और समुद्रोंका मध्यमधन दुगुण-प्रमाणसे बढ़ता जाता है ।

पुनः गच्छोंके समीकरणके लिए सभी गच्छोंमें एक एक रूपकी हानि (कमी) करना चाहिए । ऐसा करके चौंसठ रूपोंसे मध्यम धनोंको अपवर्तित कर लब्धराशिसे अपने अपने गच्छोंको गुणा करके चौंसठ संख्याको सर्व गच्छोंकी गुण्यमान राशिरूपसे स्थापित करना चाहिए । ऐसा करने पर बढ़ी हुई राशिका प्रमाण कहते हैं—एक रूपको आदि करके, एक एक गच्छपर दुगुण दुगुण-क्रमसे स्वयंभूरमणसमुद्र तक गच्छराशि बढ़ती हुई चली जाती है ।

उदाहरण—मध्यमधन ६४;

(१) $\frac{६४}{३१} \times ३१ \times ६४ = १९८४$ उत्तरधन, अर्थात् कुल वृद्धिका प्रमाण । इस उत्तर-
धनको $२८८ \times ३२ = ९२१६$ में मिला देनेसे तृतीय समुद्रसम्बन्धी समस्त चन्द्रोंका प्रमाण
हो जाता है— $(९२१६ + १९८४ = ११२००$ सर्वधन)

१ प्रतिषु 'पक्खेण' इति पाठः ।

२ त्रिलोकप्रज्ञप्तौ अत्र अग्रतोऽपि च 'वड्ढिद' स्थाने 'रिण' इति पाठः ।

एवं द्विदसंकलणमाणयणं वुच्चदे— छरुवाहियजंबूदीवच्छेदणएहिं परिहीणरज्जुच्छेदणाओ गच्छं कादूण जदि संकलणा आणिज्जदि तो जोदिसियजीवरासी ण उत्पज्जदि, जगपदरस्स वेच्छप्पणंगुलसदवग्गभागहाराणुववत्तीदो । तेण रज्जुच्छेदणासु अण्णेसिं पि तप्पाओग्गणं संखेज्जरूवाणं हाणिं काऊण गच्छो ठवेद्वो । एवं कदे तदियसमुदो आदी ण होदि त्ति णासंकणिज्जं; सो चैव आदी होदि, सयंभूरमणसमुदस्स परभागसमुप्पणरज्जुच्छेदणय-सलागाणमाणयणकारणादो ।

सयंभूरमणसमुदस्स परदो रज्जुच्छेदणया अत्थि त्ति कुदो णव्वदेः? वेच्छप्पणं-

(२) $\frac{१२८}{४३} \times ६३ \times ६४ = ८०६४$ उत्तरधन । इस उत्तरधनको $५७६ \times ६४ = ३६८६४$ में मिला देनेसे चतुर्थ द्वीपसम्बन्धी समस्त चन्द्रोंका प्रमाण हो जाता है—

$$(३६८६४ + ८०६४ = ४४९२८ \text{ सर्वधन})$$

(३) $\frac{२५६}{४३} \times १२७ \times ६४ = ३२५१२$ उत्तरधन । इस उत्तरधनको $११५२ \times १२८ = १४७४५६$ में मिला देनेसे चतुर्थ समुद्रसम्बन्धी समस्त चन्द्रोंका प्रमाण हो जाता है—

$$(१४७४५६ + ३२५१२ = १७९९६८ \text{ सर्वधन})$$

इसी क्रमसे आगेके प्रत्येक द्वीप और समुद्रका स्वयंभूरमणसमुद्र तक उत्तरधन एवं सर्वधन निकालते जाना चाहिए ।

अब इस प्रकारसे अवस्थित संकलनोंके निकालनेके प्रकारको कहते हैं—छह रूप अधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंसे परिहीन राजुके अर्धच्छेदोंको गच्छराशि बना करके यदि संकलनराशि निकाली जाती है, तो ज्योतिष्क जीवराशि नहीं उत्पन्न होती है, क्योंकि, ऐसा करनेपर जगप्रतरका दो सौ छपन सूच्यंगुलोंके वर्गप्रमाण भागहार नहीं उत्पन्न होता है । इसलिए राजुके अर्धच्छेदोंमें तत्प्रायोग्य अन्य भी संख्यात रूपोंकी हानि (कमी) करके गच्छ स्थापित करना चाहिए । ऐसा करनेपर तृतीय समुद्र आदि नहीं होता है, ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, किन्तु वही, अर्थात् तृतीय समुद्र ही, आदि होता है, क्योंकि, इसका कारण स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें उत्पन्न होनेवाले राजुके अर्धच्छेदसम्बन्धी शलाकाओंका आना है ।

शंका—स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें राजुके अर्धच्छेद होते हैं, यह कैसे जाना ?

समाधान—ज्योतिष्कदेवोंका प्रमाण निकालनेके लिए दो सौ छपन सूच्यंगुलके

१ लवणे दु पाडेदेक्कं जंबूए द्वैज्जभादिमा पंच । दीउदही मेरुसला पयदुवजोगी ण वुच्चदे ॥ तियहीण सेदिछेदणमेत्तो रज्जुच्छिदी ह्वे गच्छो । जंबूदीवच्छिदिणा छरुवजुत्तेण परिहाणा ॥ त्रि. सा. ३५८-३५९.

२ म प्रती 'सलागाणमरणवयणकारणादो' अन्यप्रतिष्ठा 'सलागाणमरणकरणादो' इति पाठः ।

गुलसदवग्गसुत्तादो' । ' जत्तियाणि दीव-सागररूवाणि जंबूदीवच्छेदणाणि च रूवाहियाणि तत्तियाणि रज्जुच्छेदणाणि ' त्ति परियम्मण एदं वक्खणं किण्ण विरुज्झदे ? एदेण सह विरुज्झदि, किंतु सुत्तेण सह ण विरुज्झदि । तेणेदस्स वक्खणस्स गहणं कायच्चं, ण परियम्मस्स; तस्स सुत्तविरुद्धत्तादो । ण सुत्तविरुद्धं वक्खणं होदि, अइप्पसंगादो । तत्थ

वर्गप्रमाण जगप्रतरका भागहार बतानेवाले सूत्रसे जाना जाता है कि स्वयम्भूरमणसमुद्रके परभागमें भी राजुके अर्धच्छेद होते हैं ।

शंका—' जितनी द्वीप और सागरोंकी संख्या है, तथा जितने जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद होते हैं, एक अधिक उतने ही राजुके अर्धच्छेद होते हैं ' इस प्रकारके परिकर्म-सूत्रके साथ यह उपर्युक्त व्याख्यान क्यों नहीं विरोधको प्राप्त होगा ?

समाधान—भले ही परिकर्म-सूत्रके साथ उक्त व्याख्यान विरोधको प्राप्त होवे, किन्तु प्रस्तुत सूत्रके साथ तो विरोधको प्राप्त नहीं होता है । इसलिए इस ग्रन्थके व्याख्यानको ग्रहण करना चाहिए, परिकर्मके व्याख्यानको नहीं, क्योंकि, वह व्याख्यान सूत्रसे विरुद्ध है । और, जो सूत्र-विरुद्ध हो, उसे व्याख्यान नहीं माना जा सकता है, अन्यथा अतिप्रसंग दोष प्राप्त होता है ।

विशेषार्थ — प्रकृतमें ज्योतिषी देवोंकी संख्या निकालनेके लिए द्वीप-सागरोंकी संख्या ज्ञात करना धवलाकारको आवश्यक प्रतीत हुआ । द्वीप-सागरोंकी संख्या अन्य आचार्योंके उपदेशानुसार राजुके अर्धच्छेदोंमेंसे ६ तथा जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद कम करनेसे प्राप्त होती है, मेरु व जम्बूद्वीप आदि प्रथम पांच द्वीप-समुद्रोंमें जो राजुके छह अर्धच्छेद पड़ते हैं वे यहां सम्मिलित नहीं किये गये, क्योंकि, इन द्वीप-समुद्रोंकी चन्द्रगणना पृथक् की गई है । किन्तु धवलाकारका मत है कि यदि इनना ही द्वीप-सागरोंका प्रमाण लिया जावे, तो उसके आधारसे निकाली हुई ज्योतिषी देवोंकी संख्या २५६ के भागहारसे निकाली हुई संख्यासे विषम पड़ती है । उसके वैषम्यको दूर करनेके लिए धवलाकारको यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि द्वीप-सागरोंकी संख्या निकालनेके लिए राजुके अर्धच्छेदोंमेंसे जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंके अतिरिक्त ६ ही नहीं, किन्तु छहसे अधिक संख्यात अंक और कम करना चाहिए । इसपरसे ज्ञात होता है कि केवल ६ अंक कम करनेसे द्वीप-सागरोंकी संख्याद्वारा ज्योतिषीदेवोंका जो प्रमाण निकलेगा, वह २५६ के भागहारद्वारा प्राप्त संख्यासे बड़ जाता है ।

छहसे अधिक संख्यात अंकोंके कम करनेमें धवलाकारने हेतु यह दिया है कि स्वयम्भूरमणसमुद्रसे परे जो पृथिवी है, वहां भी राजुके अर्धच्छेद पड़ते हैं, किन्तु वहां ज्योतिषी देव नहीं है । इसलिए वहांके संख्यात अर्धच्छेद भी उक्त गणनामें कम करना

१ खेतेण पदरस्स वेळ्पण्णगुलसयवग्गपडिमाणे । जी. द. सू. ५५, मज्झिमि सेट्ठिवग्गे वेसयळ्पण्ण-अंगुलकदीए । जं उद्धं सो रासी जोदिसियसुराण सव्वाणं ॥ ति. प. ७, १०.

जोइसिया णत्थि च्चि कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो । एसा तप्पाओग्गसंखेज्ज-
रूवाहियजंबूदीवच्छेदणयसहिददीवसायररूवमेत्तरज्जुच्छेदपमाणपरिकखाविही ण अण्णाइरि-
ओव्वदेसपरंपराणुसारिणी, केवलं तु तिलोयपण्णत्तिसुत्ताणुसारी जोदिसियदेवभाणहारपदु-
प्पाइयसुत्तावलंबिजुत्तिलेण पयदग्गच्छसाहण्डमम्हेहि परुविदा, प्रतिनियतसुत्तावष्टम्भवल-
विजुंभितगुणप्रतिपन्नप्रतिबद्धासंख्येयावलिकावहारकालोपदेशवत् आयतचतुरसलोकसंस्थानो-
पदेशवद्वा । तदो ण एत्थ इदमित्थमेवेत्ति एयंतपरिग्गहेण असग्गाहो कायव्वो, परमगुरु-

आवश्यक है । इस विधानसे परिकर्मके ' जत्तियाणि दीवसागररूवाणि ' आदि कथनमें जो विरोध पड़ता है, उसके विषयमें ध्वलाकारने यहां स्पष्ट कहा है कि उक्त कथन सूत्र-विरुद्ध होनेसे ग्राह्य नहीं है । किन्तु द्रव्यप्रमाणानुगममें उस विरोधका भी एक प्रकारसे परिहार किया है । (देखो तृ. भाग, सूत्र ४, पृ. ३३-३६)

शंका — वहां, अर्थात् स्वयम्भूरमणसमुद्रके परभागमें ज्योतिष्क देव नहीं है, यह कैसे जाना ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है ।

यह तत्प्रयोग्य संख्यात रूपाधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंसे सहित द्वीप-सागरोंके रूपप्रमाण राजुसम्बन्धी अर्धच्छेदोंके प्रमाणकी परीक्षा-विधि अन्य आचार्योंकी उपदेश-परम्पराकी अनुसरण करनेवाली नहीं है, किन्तु केवल त्रिलोकप्रकृतिसूत्रकी अनुसरण करनेवाली है, जो कि ज्योतिष्क देवोंके भाणहारको उत्पन्न करनेवाले सूत्रसे अवलम्बित युक्तिके बलसे प्रकृत गच्छके साधनार्थ, प्रतिनियत सूत्रके अवष्टम्भ-बलसे विजुंभित अर्थात् तत्प्रतिपादक सूत्रके आश्रयसे गुणस्थान-प्रतिपन्न सासादनसम्यग्दाष्टि आदि जीवोंसे प्रतिबद्ध असंख्यात आवलियोंके अवहारकालके उपदेशके समान, तथा आयत-चतुष्कोण पुरुषाकार लोक-संस्थानके उपदेशके समान हमने निरूपण की है ।

विशेषार्थ — यहां ध्वलाकारने दृष्टान्तपूर्वक दार्ष्टान्तको सिद्ध करनेके लिए जिन विशेषताओंका उल्लेख किया है, उनके कहनेका अभिप्राय क्रमशः निम्न प्रकार है —

(१) पहला दृष्टान्त प्रतिनियत सूत्राश्रयसे सासादनादि गुणस्थानवर्ती जीवोंके असंख्यात आवलिकात्मक अन्तर्मुहूर्तप्रमाण भाणहारके उपदेशका दिया है, जिसका अभिप्राय समझनेके लिए द्रव्यप्रमाणानुगम तृतीय भाग पृ. ६९ के मूल पाठ और विशेषार्थको देखिए । यहांपर उल्लेख करनेका प्रयोजन यह है कि ' संख्यात आवलियोंका एक अन्तर्मुहूर्त होता है ' इस प्रचलित एवं सर्व-मान्य मान्यताको भी ' एदेहि पलिदोवममवाहिरदि अंतोमुहुत्तेण कालेण ' (द्रव्यप्र. सू. ६) इस सूत्रके आधारसे ' अन्तर्मुहूर्त ' इस पदमें पड़े हुए ' अन्तर ' शब्दको सामीप्यार्थक मानकर यह सिद्ध किया है कि अन्तर्मुहूर्तका अभिप्राय मुहूर्तसे अधिक कालका भी हो सकता है, और इसलिए प्रकृतमें ' अन्तर्मुहूर्त ' का अर्थ मुहूर्तसे अधिक कालका ही लेना चाहिए ।

परंपरागओवएसस्स जुत्तिबलेण विदधावेदुंमसक्कियत्तादो, अदिंदिएसु पदत्थेसु छदुमत्थविय-
प्पाणमविसंवादनियमाभावादो । तम्हा चिरंतणाइरियक्खणापरिच्चाएण एसा वि दिसा
हेदुवांदाणुसारिउप्पणसिस्साणुरोहेण अउप्पणजणउप्पायणदुं च दरिसेदव्वा । तदो ण एत्थ
संपदायविरोहासंका कायव्वा ति ।

(२) दूसरा दृष्टान्त आयत-चतुरस्र लोकसंस्थानके उपदेशका दिया है, जिसका
अभिप्राय समझनेके लिए क्षेत्रानुगम (इसी चतुर्थ भाग) के पृष्ठ ११ से २२ तकका अंश
देखिए । यहांपर उल्लेख करनेका प्रयोजन यह है कि धवलाकारके सामने विद्यमान करणा-
नुयोगसम्बन्धी साहित्यमें आयत-चतुरस्र लोकके आकारका विधान या प्रतिषेध कुछ भी
नहीं मिल रहा था, तो भी उन्होंने प्रतरसमुद्धातगत केवलीके क्षेत्रके साधनार्थ कही गई दो
गाथाओंके (देखो क्षेत्रप्र. पृष्ठ २०, २१) आधारपर यह सिद्ध किया है कि लोकका आकार
आयत-चतुष्कोण है, न कि अन्य आचार्योंसे प्ररूपित १६४^{३३} घनराजुप्रमाण सृदंगके
समान । यदि ऐसा न माना जायगा, तो उक्त दोनों गाथाओंको अप्रमाणता और लोकमें
३४३ घनराजुओंका अभाव प्राप्त होगा । इसलिए लोकका आकार आयत-चतुरस्र ही मानना
चाहिए ।

(३) धवलाकारने जिस प्रकार उक्त दोनों बातोंको तात्कालिक करणानुयोगसम्बन्धी
शास्त्रोंमें उल्लेख अथवा, आचार्योंकी उपदेश-परम्पराके नहीं मिलनेपर भी उक्त प्रकारकी
सुभावलम्बित युक्तियोंके बलसे उन्हें सिद्ध किया है, उसी प्रकारसे यहांपर भी करणानुयोगके
ग्रन्थोंमें या आचार्य-उपदेशपरम्परामें उपलब्ध नहीं होनेपर भी प्रतिनियत सूत्राश्रित तर्कके
बलसे वे यह सिद्ध कर रहे हैं कि स्वप्नभूरमणसमुद्रके परभ गमें भी असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके
व्यास-रुद्ध योजनोंसे संख्यात हजारगुने योजन आगे जाकर तिर्यग्लोककी समाप्ति होती है,
अर्थात् स्वयम्भूरमणसमुद्रकी बाह्यवेदिकाके परे भी पृथिवीका अस्तित्व है; वहां भी राजुके
अर्धच्छेद उपलब्ध होते हैं, किन्तु वहांपर ज्योतिषी देवोंके विमान नहीं हैं ।

इसलिए यहांपर 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार एकान्त हठ पकड़ करके असद् आग्रह
नहीं करना चाहिए, क्योंकि, परम गुरुओंकी परम्परासे आये हुए उपदेशको युक्तिके बलसे
अर्थार्थ सिद्ध करना अशक्य है, तथा अतीन्द्रिय पदार्थोंमें छद्मस्थ जीवोंके द्वारा उठाये गए
शिकल्पोंके अविस्वादी होनेका नियम नहीं है । अतएव पुरातन आचार्योंके व्याख्यानका
परित्याग न करके यह भी दिशा हेतुवाद (तर्कवाद) के अनुसरण करनेवाले व्युत्पन्न शिष्योंके
अनुरोधसे तथा अब्युत्पन्न शिष्य जनोंके व्युत्पादनके लिए दिखाना चाहिए । इसलिए यहांपर
सम्प्रदायके विरोधकी आशंका नहीं करना चाहिए ।

१ प्रतिपु 'विहदाविदु', म प्रती 'विहदावेदु' इति पाठः ।

एदेण विहाणेण परुविदगच्छं विरलिय रूवं पडि चत्तारि रूवाणि दादूण अण्णोण्णम्भत्थं करिय 'रूपोनमादिसंगुणमेकोनगुणोन्मथितमिच्छा' एदेण गाहाखंडेण संकलणाओ आणिय दोण्हं सकलणाणं धणं कादूण तदियसंकलणे अवणिदे चंदबिंबसला-गाओ उप्पज्जंति । ताओ अट्टारससयसमहियताराहि गुणिदे जोदिसियाणं सयलबिंब-सलागाओ होंति । ताओ संखेज्जघणंगुलेहि गुणिदाओ सत्थाणखेत्तं होदि । सत्थाणखेत्तं

ऊपर बताये गए इस विधानसे प्ररूपित गच्छको विरलन करके प्रत्येक एकके ऊपर चार चारको देयरूपसे देकर परस्पर गुणा करके 'उनमेंसे एक कम करे, पुनः आदिधनसे संगुणित करे, पुनः एक कम गुणकारका भाग दे, तब इच्छित राशि उत्पन्न होती है' इस गाथाखंडरूप सूत्रसे संकलनराशियोंको निकालकर दोनों संकलनराशियोंका धन (जोड़) करके इस राशिमेंसे तीसरी संकलनराशिको घटा देने पर चन्द्रबिम्बकी शलाकार्ण उत्पन्न हो जाती हैं।

उदाहरण—गच्छ ३२; आदिधन ११२०० (तृतीय समुद्रका सर्वसंकलन), सर्व द्वीपसमुद्रोंकी संख्या असंख्यात = ३ (काल्पनिक)।

$$\text{प्रथम संकलन—} \frac{४}{१} \times \frac{४}{१} \times \frac{४}{१} = ६४; \quad ६४ - १ = ६३; \quad \frac{६३ \times ११२००}{४ - १} = २३५२००।$$

$$\text{द्वितीय संकलन—} \frac{४}{१} \times \frac{४}{१} \times \frac{४}{१} = ६४; \quad ६४ - १ = ६३; \quad \frac{६३ \times ६४}{४ - १} = १३४४।$$

$$\text{तृतीय संकलन—} \frac{२}{१} \times \frac{२}{१} \times \frac{२}{१} = ८; \quad ८ - १ = ७; \quad \frac{७ \times ६४}{२ - १} = ४४८।$$

$$\text{प्रथम संकलन} \quad \text{द्वितीय संकलन} \quad \text{तृतीय संकलन} \quad \text{समस्त चन्द्र-शलाकार्ण।}$$

$$२३५२०० + १३४४ - ४४८ = २३६०९६$$

इस प्रमाणमें पहले बताई हुई प्रथम पांच-द्वीप समुद्रोंसंबन्धी चंद्रोंकी संख्या सम्मिलित नहीं है।

ठीक यही संख्या प्रथम पांच द्वीप-समुद्रोंको छोड़कर आगेके तीन समुद्र वा द्वीपोंके पृथक् पृथक् निकाले हुए चंद्रोंकी संख्याके योगसे आती है—

$$\frac{१}{११२००} + \frac{२}{४४९२८} + \frac{३}{१७९९६८} = २३६०९६ \text{ (देखो पृ. १५४-१५५.)}$$

उक्त प्रकारसे उत्पन्न हुई चन्द्रबिम्बकी शलाकार्णोंको एक सौ अठारहसे अधिक ताराओंके प्रमाणसे गुणा कर देनेपर ज्योतिष्क देवोंके सकल बिम्बोंकी शलाकार्ण उत्पन्न हो जाती हैं।

विशेषार्थ—अभी पहले जो एक चन्द्रका परिवार बताया गया है, उसमेंसे एक चन्द्र, एक सूर्य, अठ्यासी ग्रह और अट्ठाईस नक्षत्र, इनको जोड़ देनेपर (१+१+८८+२८=११८)

१ पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणिय रूवपरिहीणे । रूऊणगुणेणहिपु मुहेण गुणियम्मि गुणगणियं ॥
त्रि. सा २३१. २ ति. प. पत्र २२६.

संखेज्जरूवेहिं गुणिय संखेज्जघणंगुलेहि ओवद्धिदे जोइसियरासी होदि । एदाणि जोदिसिय-
देवुस्सेधगुणिदविमाणभंंतरपदंगुलेहि गुणिदे जोइसियसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स संखे-
ज्जदिभागमेत्तं होदि । णवरि देवुस्सेधगुणिदविमाणभंंतरपदंगुलाणि उस्सेहंगुलाणि त्ति
कड्डु पमाणंगुलाणि कायव्वाणि । उस्सेहंगुलाणि त्ति कथं णव्वदे ? अण्णहा जंबूदीवभंतेरे
जंबूदीवताराणमोगासाभावादो । अधवा एदाणि पमाणंगुलाणि चेव । कथं पुण सम्मांति ?
ण, जंबूदीव-लवणसमुद्देदि वे' अस्सिदूण अवट्ठाणादो ।

एक सौ अठारह होते हैं । इसमें ताराओंका प्रमाण जोड़कर उत्पन्न हुई राशिका चन्द्र-
बिम्बकी शलाकाओंसे गुणा कर देनेपर समस्त ज्योतिषी देवोंके विमानोंकी शलाकाएं निकल
आती है ।

उन्हें संख्यात घनांगुलोंसे गुणित करनेपर सर्व ज्योतिषी देवोंके विमानोंका स्वस्थान-
क्षेत्र हो जाता है । स्वस्थानक्षेत्रको संख्यातरूपोंसे गुणा करके संख्यात घनांगुलोंसे अपवर्तित
करनेपर ज्योतिष्क देवोंकी राशि हो जाती है । इस राशिको ज्योतिष्क देवोंके शरीरोंसेधसे
गुणित विमानोंके भीतरी प्रतरांगुलोंसे गुणा करनेपर ज्योतिष्क देवोंका स्वस्थानक्षेत्र हो
जाता है, जो कि तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र होता है । विशेष बात यह है कि देवोंके
शरीरके उत्सेधसे गुणित विमानोंके भीतरी प्रतरांगुल, उत्सेधांगुल हैं, ऐसा समझ करके
उनके प्रमाणांगुल करना चाहिए ।

शंका—वे प्रतरांगुल उत्सेधांगुल हैं, यह कैसे जाना ?

समाधान—यदि उन प्रतरांगुलोंको उत्सेधांगुल न माना जायगा, तो जम्बूद्वीपके
भीतर जम्बूद्वीपस्थ तारागणोंके रहनेको अवकाश न मिल सकेगा ।

अथवा, ये प्रतरांगुल प्रमाणांगुल ही हैं ।

शंका—तो फिर ये जम्बूद्वीपमें कैसे समाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र, इन दोनोंको ही आश्रय
करके वे ज्योतिष्क विमान अवस्थित हैं । अर्थात्, जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र, इन दोनों
क्षेत्रोंमें जम्बूद्वीपसम्बन्धी ज्योतिष्क-विमान रहते हैं ।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपसम्बन्धी दोनों चन्द्रोंके परिवारमें तारोंकी संख्या एक लाख
तेतीस हजार नौ सौ पचास कोड़ाकोड़ी है । एक तारेका जघन्य विष्कंभ ३ कोशका और
उत्कृष्ट १ कोशका कहा गया है, तथा उत्सेध विष्कंभसे आधा तथा आकार उत्तान गोलार्थ
सदृश है । (त्रिलोकसार गाथा ३३७, ३३८) । तदनुसार मध्यम विष्कंभ ३ कोश लेकर एक

१ प्रतिषु 'समुद्देहि वि' इति पाठः ।

वेंतरदेवसासणसम्माइडिसत्थाणखेत्तं पि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि ।
तं कथं ? वेंतरदेवरासिं डुविय एकेकम्हि वेंतरावासे संखेज्जा चव वेंतरदेवा होंति चि

तारेका स्थूल घनफल— $\frac{2}{3} \times \frac{3}{1} \times \frac{2}{12} \times \frac{2}{2} = \frac{2}{27}$; तथा जम्बूद्वीपके समस्त तारोंका घनफल
स्थूल रूपसे $13294 \times 10^{10} \times \frac{2}{27} = 9922$ कोड़ाकोड़ी घनकोश हुआ ।

तारागण पृथिवीसे ७९० योजन ऊपरसे लगाकर ९०० योजन तक अर्थात् ११० योजन-बाह्य आकाशमें रहते हैं । (देखो त्रिलोकसार गाथा ३३२-३३४) । अतः एक लाख योजन व्यासवाले जम्बूद्वीपके ऊपर ११० योजन क्षेत्रका घनफल निकालनेसे—
 $12 \times 10^6 \times 10^6 \times 880 = 420 \times 10^{12}$ घनकोश हुए । इस प्रकार तारोंके घनफलमें १८ अंक हैं, किन्तु जम्बूद्वीपसम्बन्धी उक्त क्षेत्रमें केवल १४ अंक आते हैं । इस प्रकार वे सब तारे उक्त क्षेत्रमें नहीं समा सकते । किन्तु यदि तारोंमें उल्लेखांगुलोंका प्रमाण स्वीकार किया जाय और उक्त क्षेत्रमें प्रमाणांगुलोंका, तो उक्त क्षेत्रके प्रमाणको 500^3 से गुणा कर देने पर वह क्षेत्र $420 \times 129 \times 10^{10} = 66 \times 10^{10}$ अर्थात् २२ अंक प्रमाण हो जाता है, जिससे उक्त तारोंको उस क्षेत्रके भीतर आवकाश रहनेके लिए स्थान मिल जाता है । इसीलिये धवलाकारने कहा है कि विमानोंके प्रमाणमें उल्लेखांगुल ही ग्रहण करना चाहिए, और यही बात त्रिलोकप्रज्ञप्ति आदि ग्रंथोंसे भी सिद्ध है ।

धवलाकारने जो दूसरे प्रकारसे उक्त वैषम्यका समाधान किया है कि विमानोंके प्रमाणमें प्रमाणांगुल ग्रहण करके भी जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र, दोनोंके आश्रयसे उन विमानोंके अवस्थानके योग्य क्षेत्र बन जाता है, सो यह बात गणितमें ठीक नहीं उतरती, क्योंकि, जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र दोनोंके ऊपरका ११० योजन-बाह्य क्षेत्र केवल—
 $6 \times 10^6 \times 4 \times 10^6 \times 880 = 132 \times 10^{12}$ घनकोश आता है । यह क्षेत्र केवल १६ अंकप्रमाण होनेसे केवल जम्बूद्वीपके तारोंके लिए भी पर्याप्त अवकाश नहीं प्रदान कर सकता । तिसपर लवणसमुद्रसम्बन्धी चार चन्द्रोंके परिवारके तारोंको भी वहां अवकाश प्राप्त होना है । इस प्रकार तारोंके विमानोंको प्रमाणांगुलोंके मापमें लेकर धवलाकारने उनको किस प्रकार अवकाश प्राप्त कराया है, यह समझमें नहीं आता ।

सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंका स्वस्थानक्षेत्र भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग-मात्र होता है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—व्यन्तर देवोंकी राशिको स्थापित करके एक एक व्यन्तरावासमें संख्यात

संखेज्जखेहि भागे हिदे वेंतरावासा होंति । ण एस कमो भवणवासिय-सोधम्मादीणं, तत्थ संखेज्जेसु भवणविमाणेसु असंखेज्जजोयणायामेसु असंखेज्जा देवा देवीओ होंति । कुदो ? तेसिमसंखेज्जत्तण्णहाणुववत्तीदो । पुणो वेंतरावासे अप्पणो विमाणभंतरसंखेज्जघणंभुलेहि भुण्णिदे वेंतरदेवसासणसम्माइड्डिसत्थाणखेचं होदि । एदाणि तिण्णि वि खेत्ताणि एगड्डु मेलिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । विहारवदिसत्थाण-वेदण कसाय-वेउन्विय-समुग्घादगदेहि अड्डु चोदसभागा देसणा फोसिदा । केत्तियमेत्तेणूणा ? तदियपुढवीए हेड्डिल्लजोयणसहस्सेण । मारणंतियसमुग्घादगदेहि बारह चोदसभागा देसणा फोसिदा । तं जहा- मेरुमूलादो उवरि जावीसिपवभारपुढवि ति सत्त रज्जू, हेड्डा जाव छट्ठी पुढवि ति पंच रज्जू । एदाओ मेलिदे सासणमारणंतियखेत्तायामो होदि । णवरि हेड्डिमजोयण-सहस्सेण ऊणो ति वत्तव्वो । जदि सासणा एइदिएसु उप्पज्जंति, तो तत्थ दो गुणद्वानाणि

ही व्यन्तर देव होते हैं, इसलिए संख्यात रूपोंसे भाग देनेपर व्यन्तर देवोंके आवासोंकी संख्या हो जाती है । किन्तु यह क्रम भवनवासी और सौधर्मादि कल्पवासी देवोंके नहीं हैं, क्योंकि, उनमें असंख्यात योजन आयामवाले संख्यात भवनों और विमानोंमें असंख्यात देव और देवियां रहती हैं । कारण, यदि ऐसा न माना जाय, तो उनकी राशिके असंख्यातपना नहीं बन सकता है । पुनः व्यन्तरोंके आवासक्षेत्रको अपने विमानोंके भीतरी संख्यात घनांगुलोंसे गुणित करनेपर सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है । इन तीनों ही क्षेत्रोंको अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंके स्वस्थानक्षेत्रको, सासादनसम्यग्दृष्टि ज्योतिष्क देवोंके स्वस्थानक्षेत्रको और सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंके स्वस्थानक्षेत्रको इकट्ठे मिलानेपर तिर्यंग्लोकका असंख्यातवां भाग होता है । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्रात, कषायसमुद्रात और वैक्रियिकसमुद्रातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे देशोन आठ भागप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है ।

शंका— यहाँ देशोनसे तात्पर्य कितने प्रमाण क्षेत्रसे न्यून है ?

समाधान— तीसरी पृथिवीके नीचेके एक हजार योजनप्रमाण क्षेत्रसे न्यून क्षेत्र देशोनसे अभीष्ट है ।

मारणान्तिकसमुद्रातगत सासादनसम्यग्दृष्टियोंने लोकनालीके चौदह राजुओंमेंसे देशोन बारह भागप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है । वह इस प्रकारसे जानना चाहिए— सुमेरुपर्वतके मूलभागसे लेकर ऊपर ईषत्प्राग्भारपृथिवी तक सात राजु होते हैं, और नीचे छठी पृथिवी तक पांच राजु होते हैं । इन दोनोंको मिला देनेपर सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मारणान्तिकक्षेत्रकी लम्बाई हो जाती है । विशेष बात यह है कि छठी पृथिवीके नीचेके एक हजार योजनसे न्यून क्षेत्र यहाँपर भी कहना चाहिए ।

होति । ण च एवं, संताणिओगदारे तत्थ एकमिच्छादिद्विगुणप्पदुप्पायणादो^१ दब्वाणिओगदारे वि तत्थ एगगुणद्वाणदव्वस्स पमाणपरूवणादो च^२ । को एवं भणदि जघा सासणा एइंदिए-सुप्पज्जंति ति । किंतु ते तत्थ मारणंतियं मेल्लंति ति अम्हाणं णिच्छओ । ण पुण ते तत्थ उप्पज्जंति ति, छिण्णाउअकाले तत्थ सासणगुणाणुवलंभादो । जत्थ सासणाणमुववादो णस्थि, तत्थ वि जदि सासणा मारणंतियं मेल्लंति, तो सत्तमपुढविणेरइया वि सासणगुणेण सह पंचिदियतिरिक्खेसु मारणंतियं मेल्लंतु^३, सासणत्तं पडि विसेसाभावादो ? ण एस दोसो, भिण्णजादितादो । एदे सत्तमपुढविणेरइया पंचिदियतिरिक्खेसु गम्भोवक्कंतिएसु चेव उप्पज्जणसहावा, ते पुण देवा पंचिदिएसु एइंदिएसु य उप्पज्जणसहावा, तदो ण समाण-जादीया । जं जाए जादीए पडिवणं, तं ताए चेव जादीए होदि ति पडिवज्जेदव्वं, अण्णहा अणवत्थापसंगादो । तम्हा सत्तमपढविणेरइया सासणगुणेण सह देवा इव मारणंतियं

शंका—यदि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं तो उनमें (वहांपर) दो गुणस्थान प्राप्त होते हैं । किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि, सत्प्ररूपणा अनुयोगद्वारमें, एकेन्द्रियोंमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही बताया गया है, तथा द्रव्यानुयोगद्वारमें भी उनमें एक ही गुणस्थानके द्रव्यका प्रमाण-प्ररूपण किया गया है ।

समाधान—कौन ऐसा कहता है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं ? किन्तु वे उस गुणस्थानमें मारणान्तिकसमुद्घातको करते हैं, ऐसा हमारा निश्चय है । न कि वे उस गुणस्थानमें, अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें उत्पन्न होते हैं; क्योंकि, उनमें आयुष्यके छिन्न होनेके समय सासादनगुणस्थान नहीं पाया जाता है ।

शंका—जहां पर सासादनसम्यग्दृष्टियोंका उत्पाद नहीं है, वहां पर भी यदि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मारणान्तिकसमुद्घातको करते हैं, तो सातवीं पृथिवीके नारकियोंको सासादनगुणस्थानके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करना चाहिए, क्योंकि, सासादनगुणस्थानत्वकी अपेक्षा दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है, अर्थात् समानता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, देव और नारकी इन दोनोंकी भिन्न जाति है । ये सातवीं पृथिवीके नारकी गर्भजन्मवाले पंचेन्द्रियोंमें ही उपजनेके स्वभाववाले हैं, और वे देव पंचेन्द्रियोंमें तथा एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेरूप स्वभाववाले हैं, इसलिए दोनों समान जातीय नहीं हैं । जो जिस जातिमें प्रतिपन्न है, अर्थात् स्वीकृत है, वह उसी ही जातिका माना जाता है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए, अन्यथा अनवस्थादोषका प्रसंग आ जायगा । इसलिए सातवीं पृथिवीके नारकी सासादनगुणस्थानके साथ देवोंके समान मार-

१ एइंदिया नीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया अण्णिणपंचिदिया एककम्मि चेव मिग्गाइडिद्वारे ।
जी. सं. सू. ३६.

२ जी. द. सू. ७४-७६.

३ प्रतिपु ' मेल्लंति ' इति पाठः ।

ण करेति त्ति सिद्धं । देवसासणा एइंदिएसु मारणंतियं करेमाणा सव्वलोगेइंदिएसु किण्ण मारणंतियं करेति त्ति ? ण, तेसिं सासणगुणपाहम्मणेण लोगणालीए बाहिरमुप्पज्जणसहावा-
भावादो । लोगणालीए अब्भंतरे मारणंतियं करेता वि भवणवासियजगमूलादोवरिं चेव
देव-तिरिक्खसासणसम्मादिट्ठिणो मारणंतियं करेति, णो हेट्ठा । कुदो ? सासणगुणपाहम्मादो
चेव । रज्जुपदरमेत्तपुढवी उवरि णत्थि । देवा वि सुहुमेइंदिएसु ण उप्पज्जंति । ण च
बादेरेइंदिया वाउक्काइयवदिरित्ता पुढवीए विणा अण्णत्थ अच्छंति । तदो सासणमारणंतिय-
खेत्तस्स वारह चौदसभागोवदेसो ण घडदि त्ति ? ण एस दोसो, ईभिपब्भारपुढवीदो
उवरि सासणाणमाउक्काइएसु मारणंतियसंभवादो, अट्टमपुढवीए एगरज्जुपदरब्भंतरं सव्व-
मावूरिय ट्ठिदाए तेसिं मारणंतियकरणं पडि विरोहाभावादो च । वाउक्काइएसु सासणा
मारणंतियं किण्ण करेति ? ण, सयलसासणाणं देवाणं व तेउ-वाउक्काइएसु मारणंतियाभावादो,

.....
णान्तिकसमुद्धात नहीं करते हैं, यह बात सिद्ध हुई।

शंका—सासादनसम्यग्दृष्टि देव, जबकि एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्धात करते हुए पाए जाते हैं, तो फिर सर्वलोकवर्ती एकेन्द्रियोंमें क्यों नहीं मारणान्तिकसमुद्धात करते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनके सासादनगुणस्थानकी प्रधानतासे लोकनालीके बाहर उत्पन्न होनेके स्वभावका अभाव है। और लोकनालीके भीतर मारणान्तिकसमुद्धातको करते हुए भी भवनवासी लोकके मूलभागसे ऊपर ही देव या तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मारणान्तिकसमुद्धातको करते हैं, उससे नीचे नहीं, क्योंकि, उनमें सासादनगुणस्थानकी ही प्रधानता है।

शंका—राजुप्रतरप्रमाण पृथिवी ऊपर नहीं है। देव भी सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें नहीं उत्पन्न होते हैं, और वादर एकेन्द्रिय जीव वायुकायिक जीवोंको छोड़कर पृथिवीके विना अन्यत्र रहते नहीं हैं। इसलिए सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मारणान्तिकक्षेत्रका वारह षटे चौदह (१३) भागका उपदेश घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, ईषत्प्राग्भार पृथिवीसे ऊपर सासादन-सम्यग्दृष्टियोंका अप्कायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्धात संभव है, तथा एक राजुप्रतरके भीतर सर्वक्षेत्रको व्याप्त करके स्थित आठवीं पृथिवीमें उन जीवोंके मारणान्तिकसमुद्धात करनेके प्रति कोई विरोध भी नहीं है।

शंका—सासादनसम्यग्दृष्टि जीव, वायुकायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्धातको क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सकल सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका देवोंके समान

पुढविपरिणाम-विमाण-तल-सिला-थंभ-धुंभेतल-उब्भसालहंजिया-कुड्ड-तोरणादीणं तदुप्पत्ति-जोगाणं दंसणादो च । उववादगदेहि देसूणेक्कारह चोदसभागा फोसिदा । तं जहा- हेड्डा जाव छट्ठी पुढवि त्ति पंच रज्जू, उवरि जाव आरण-अच्चुदकप्पो त्ति छ रज्जू, आयामो वित्थारो च एगरज्जू, एदं उववादखेत्तपमाणं । के वि आइरिया ' देवा णियमेण मूल-सरीरं पविसिय मरंति ' त्ति भणंति, तेसिमभिप्पाएण दस-चोदसभागा देसूणा । एदं वक्खाणमेत्थेव कम्मइयसरीरसासणउववादफोसणस्स एक्कारह-चोदसभागपरुवयसुत्तेण विरुद्धं ति ण घेत्तव्वं । जे पुण देवसासणा एइंदिएसुप्पज्जंति त्ति भणंति, तेसिमभिप्पाएण वारह चोदसभागा देसूणा उववादफोसणं होदि', एदं पि वक्खाणं संत-दव्वसुत्तविरुद्धं ति ण घेत्तव्वं ।

तैजसकायिक और वायुकायिक जीवोंमें मारणान्तकसमुद्धातका अभाव माना गया है । और पृथिवीके विकाररूप विमान, शय्या, शिला, स्तम्भ और स्तूप, इनके तलभाग, तथा खड़ी हुई शालभंजिका (मिट्टी आदिकी पुतली) भित्ति और तोरणादिक उनकी उत्पत्तिके योग्य देखे जाते हैं ।

उपपादगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने लोकके कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग ($\frac{1}{12}$) स्पर्श किए है । वह इसप्रकार हैं—मेरुतलसे नीचे छठी पृथिवी तक पांच राजु होते हैं, ऊपर आरण-अच्युतकल्प तक छह राजु होते हैं और आयाम तथा विस्तार एक राजु है । इस प्रकार ग्यारह राजु उपपादक्षेत्रका प्रमाण है ।

कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि देव नियमसे मूलशरीरमें प्रवेश करके ही मरते हैं । उनके अभिप्रायसे सासादनगुणस्थानवर्ती देवोंका उपपादसम्यग्धी स्पर्शनक्षेत्र कुछ कम दस बटे चौदह भाग ($\frac{1}{12}$) प्रमाण होता है । किन्तु यह व्याख्यान यहींपर विग्रह-गतिको प्राप्त कार्मणशरीरवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपाद-स्पर्शनके ग्यारह बटे चौदह ($\frac{1}{12}$) भागके प्ररूपक सूत्रके साथ विरोधको प्राप्त होता है, इसलिए उसे नहीं ग्रहण करना चाहिए । और जो ऐसा कहते हैं कि सासादनसम्यग्दृष्टि देव, एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं, उनके अभिप्रायसे कुछ कम बारह बटे चौदह ($\frac{1}{12}$) भाग उपपादपदका स्पर्शन होता है ; किन्तु यह भी व्याख्यान सत्प्ररूपणा और द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रोंके विरुद्ध पड़ता है, इसलिए उसे नहीं ग्रहण करना चाहिए ।

१ प्रतिपु ' थूलतलंउम ' इति पाठः ।

२ अथवा येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादश भागा न दत्ताः ।

३ जी. सं. सू. ३६. । जी. द. सू. ७४-७६.

सम्मामिच्छाइट्टि-असंजदसम्माइट्टीहि केवडियं खेतं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । सम्मामिच्छाइट्टीहि सत्थाणसत्थाण-विहारवदि-
सत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घादग्देहि चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो फोसिदो ।
माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो । कारणं खेत्तमंगो । असंजदसम्माइट्टीणं सत्थाणसत्थाण-
विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-मारणंतिय-उववादग्दाण खेत्तमिह वुत्तत्थो संभ-
रियं वत्तव्वो ।

अट्ट चोदसभागा वा देसूणा ॥ ६ ॥

पुव्वसुत्तादो सम्मामिच्छादिट्टि-असंजदसम्मादिट्टीहि केवडियं खेतं फोसिदमिदि
अणुवट्टे । अदीदकालेणेत्ति वयणस्स अज्झाहारो कायव्वो । कुदो ? एदेसिं दोण्हं
गुणट्टाणणं वट्टमाणकालविसिद्धखेत्तस्स पुव्वं परूविदत्तादो । सम्मामिच्छादिट्टीहि सत्था-
णेण तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, तिरियलोगस्स

सम्यग्मिध्यादष्टि और असंयतसम्यग्दष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात,
कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत सम्यग्मिध्यादष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि
चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।
इसका कारण क्षेत्रप्ररूपणाके समान ही जानना चाहिए । स्वस्थानस्थान, विहारवत्स्वस्थान,
वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदको
प्राप्त असंयतसम्यग्दष्टि जीवोंका स्पर्शम क्षेत्रप्ररूपणामें कहे गये अर्थको स्मरण करके कहना
चाहिए ।

सम्यग्मिध्यादष्टि और असंयतसम्यग्दष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम
आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ६ ॥

यहांपर पूर्वसूत्रसे 'सम्यग्मिध्यादष्टि और असंयतसम्यग्दष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र
स्पर्श किया है' इतने पदकी अनुवृत्ति होती है । तथा 'अतीतकालसे' इस वचन का भी
अध्याहार करना चाहिए; क्योंकि, दोनों गुणस्थानोंके वर्तमानकालविशिष्ट क्षेत्रका पहले
प्ररूपण किया जा चुका है । सम्यग्मिध्यादष्टि जीवोंने स्वस्थानकी अपेक्षा सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, अट्टाईट्टीपसे असंख्यातगुणा तथा तिर्यग्लोकका

१ सम्यग्मिध्यादष्टिसंयतसम्यग्दष्टिमिलोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ वा चतुर्दशभागा देशोनाः । स. सि. १, ८.

२ प्रतिपु 'संभारिय' इति पाठः ।

संखेज्जदिभागो । एत्थ सत्थाणखेत्तमेलावणविहाणं पुव्वं व कायव्वं । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घादगदेहि अट्ट चोदसभागा देसूणा फोसिदा । एत्थ देसूण-विधाणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

असंजदसम्माइट्ठीहि सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइजादो असंखेज्ज-गुणो फोसिदो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो । तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागखेत्तुप्पायणे सासणभंगो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-मारणंतियसमुग्घादगदेहि अट्ट चोदसभागा देसूणा फोसिदा, उवरि छ रज्जू, हेट्ठा दो रज्जु ति । उववादगदेहि छ चोदसभागा देसूणा फोसिदा, हेट्ठा असंजदसम्माइट्ठीणं उववादखेत्ताणुवलंभादो ।

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ७ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-मारणंतियपदाणं पज्जव-

संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । यहांपर स्वरथानक्षेत्रके मिलानेका विधान पूर्ववत् ही करना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत सम्यग्भिध्यादृष्टि जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{1}{4}$) भाग स्पर्श किये हैं । यहांपर देशानका विधान पूर्वके समान ही कहना चाहिए ।

असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वरथानकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागरूप क्षेत्रके उत्पन्न करनेमें सासादनगुणस्थानके स्पर्शनके समान ही वर्णन जानना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घातगत उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{1}{4}$) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि मेरुके मूलसे ऊपर छह राजु और नीचे दो राजुप्रमाण हैं । उपपादपदको प्राप्त उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{1}{4}$) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, इससे नीचे असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपादक्षेत्र नहीं पाया जाता है ।

संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिक-समुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदगत संयतासंयतोंकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी स्पर्शन-

द्वियपरूवणा खेत्तुल्ला ।

छ चौदसभागा वा देसूणा ॥ ८ ॥

पुवं वडुमाणकालविसिद्धखेत्तं परूविदमिदि कुट्टु इदं सुत्तमदीदकालसंबंधीदि अवगम्मदे । अणागदकालसंबंधी ण होदि, तेण व्यवहाराभावादो । अधवा अदीदाणागद-कालविसिद्धखेत्ताणं परूवयाणि पच्छिमसव्वसुत्ताणि त्ति णिच्छओ कायव्वो, उभयत्थ विसेसाभावादो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घादगदेहि संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ सत्थाणसत्थाणखेत्ताणयणविधानं वुच्चे-

सयंभूरमणसमुद्धविकखंभो दोहि वि पासेहि सादिरेगमेगरज्जुअद्धपमाणं होदि । सयंपहपव्वदपरभागखेत्तं पि दोहि वि पासेहि एगरज्जुअद्धमभागमेतविकखंभो होदि । ते दो वि मेलिदे पंचडुभागा होति । एदे रज्जुविकखंभमिह अवणिदे तिणिण अट्टभागा होति । एदमिह खेत्ते सुज्जमंडलागारेण संद्धिदे भोगभूमिपडिभागे णत्थि संजदासंजदा । बाहि-

प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है ।

संयतासंयत जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ८ ॥

पूर्वमें वर्तमानकालविशिष्ट क्षेत्रका प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिये यह सूत्र अतीतकालसम्बन्धी है, यह बात जानी जाती है । किन्तु यह अनागत (भविष्य) काल सम्बन्धी नहीं है, क्योंकि, उसके साथ व्यवहारका अभाव है । अथवा, पीछेके सभी सूत्र अर्थात् और अनागतकाल विशिष्ट क्षेत्रोंकी प्ररूपणा करनेवाले हैं, ऐसा निश्चय करना चाहिए, क्योंकि, भूतकाल और भविष्यकालमें स्पर्शनकी अपेक्षा कोई विशेषता नहीं है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिकसमुद्धात-गत संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अद्वाइद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अब यहांपर संयता-संयत जीवोंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रके निकालनेका विधान है—

स्वयंभूरमणसमुद्धका विष्कम्भ दोनों ही पार्श्व भागोंसे साधिक एक राजुके अर्धप्रमाण है । स्वयंप्रभर्पवतका परभागवर्ती क्षेत्र भी दोनों ही पार्श्व भागोंकी अपेक्षा एक राजुके अष्टमभागमात्र विष्कम्भवाला है । ये दोनों ही विष्कम्भ मिला देनेपर एक राजुके आठ भागोंमेंसे पांच भाग प्रमाण ($\frac{5}{8}$) क्षेत्र हो जाता है । ये पांच बटे आठ ($\frac{5}{8}$) भाग राजुके विष्कम्भमेंसे निकाल देनेपर तीन बटे आठ ($\frac{3}{8}$) भाग अवशिष्ट रहते हैं । इस तीन बटे आठ ($\frac{3}{8}$) भागवाले सूर्यमंडलके आकारसे संस्थित और भोगभूमिसे प्रतिबद्ध क्षेत्रमें संयतासंयत जीव नहीं होते हैं । किन्तु बाहरी पांच बटे आठ ($\frac{5}{8}$) भागोंमें जम्बूद्वीप

रिल्लएसु पंचसु अट्टभागेसु अट्टाहजदीवेषु दोसु समुद्देशु च अत्थि, कम्मभूमित्तादो ।
 ' व्यासार्धकृतित्रिकं समस्तफलितमिति ' एदेण सुत्तेण मज्झिम्बल्लखेत्तफलमाणिदे सोलस-
 सत्तावीसभागम्भहियचदुसट्ठि-चदुसदरूवेहि जगपदरे भागे हिदे एगभागो आगच्छदि ।
 तं रज्जुपदरम्हि अवणिय संखेज्जंगुलेहि गुणिदे संजदासंजदसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स
 संखेज्जदिभागमेत्तं होदि । सेसपदानं खेत्तमाणिज्जमाणे एगं जगपदरं ठविय संखेज्ज-
 सत्तावीसभागमेत्तं होदि । सेसपदानं खेत्तमाणिज्जमाणे एगं जगपदरं ठविय संखेज्ज-
 सत्तावीसभागमेत्तं होदि । कधं संजदासंजदाणं सेसदीव-समुद्देशु संभवो ? ण, पुब्बवेरिय-
 देवेहि तत्थ धित्ताणं संभवं पडि विरोधाभावा । कधमेसो अत्थो सुत्तेण अकहिदो अव-
 गम्मदे ? ण एस दोसो, सुत्तट्ठिएण ' वा ' सहेण अबुत्तसमुच्चयट्ठेण सत्तिदत्तादो ।

धातकीखंड और पुष्करार्ध इन अट्टाई द्वीपोंमें और लवणोदधि वा कालोदधि इन दो समुद्रोंमें संयतासंयत जीव रहते हैं; क्योंकि, वहां पर कर्मभूमि है । ' व्यासके आधेका वर्ग करके उसका तिगुना कर देनेसे विवक्षित क्षेत्रका समस्त क्षेत्रफल निकल आता है ' इस करण-सूत्रसे मध्यवर्ती अर्थात् भोगभूमि-प्रतिषेद्ध क्षेत्रका क्षेत्रफल निकालनेपर जो प्रमाण आता है वह सोलह बटे सत्ताईस भागसे अधिक चारसौ चौसठ (४६४ $\frac{१६}{८}$) रूपोंसे जगप्रतरमें भाग देनेपर उपलब्ध एक भागके बराबर होता है ।

उदाहरण—मध्यम क्षेत्रफलका व्यास $\frac{३}{२}$; $३ \left(\frac{३}{२} \times \frac{३}{२} \right)^२ = ३२४$

$$\text{वा } \frac{७^३}{४६४\frac{१६}{८}} = \frac{१३२३}{१२५४४} = \frac{२७}{२५६}$$

यह स्वयंप्रभाचलके आभ्यन्तर भागवर्ती मध्यमक्षेत्रका क्षेत्रफल है ।

इसे एक राजुप्रतरमेंसे निकालकर संख्यात अंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यंग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण संयतासंयतोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है । विहारवत्स्वस्थानादि शेष पदोंका क्षेत्र निकालनेपर—एक जगप्रतरको स्थापित करके संयतासंयत जीवोंके शरीरकी ऊंचाईके अनंवास भागमात्र संख्यात सूच्यंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यंग्लोकके संख्यातवें भागमात्र क्षेत्र होता है ।

शंका—मानुषोत्तरपर्वतसे परभागवर्ती और स्वयंप्रभाचलसे पूर्वभागवर्ती शेष द्वीप-समुद्रोंमें संयतासंयत जीवोंकी संभावना कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पूर्वभक्के वैरी देवोंके द्वारा वहां ले जाये गये तिर्यंच संयतासंयत जीवोंकी संभावनाकी अपेक्षा कोई विरोध नहीं है ।

शंका—सूत्रसे नहीं कहा गया यह अर्थ कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सूत्रमें स्थित और अनुक्तका अर्थात् नहीं कहे गये अर्थका समुच्चय करनेवाले ' वा ' शब्दसे उक्त अकथित अर्थ सूचित किया गया है ।

मारणंतियसमुग्घादग्देहिं छ चोद्दसभागा देख्णा पोसिदा । कुदो ? सच्चत्थ लोगणालीए अब्भंतरे अच्चिय मारणंतियकरणं पडि विरोहाभावादो । केण ऊणा छ चोद्दसभागा ? हेट्ठिमेण जोयणसहस्सेण आरणच्चुदविमाणणमुवरिमभागेण च ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९ ॥

द्ववट्टियणयमस्सिदूण भण्णमाणे अदीद-वट्टमाणकालेसु 'लोगस्स असंखेज्जदिभागो' इदि होदि । पज्जवट्टियणए पुण अवलंबिज्जमाणे अत्थि विसेसो । वट्टमाणकालमस्सिदूण पज्जवट्टियणयपरूवणाए खेत्तभंगो । संपदि अदीदकालमस्सिदूण पज्जवट्टियणयपरूवणा कीरदे । तं जघा—सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियतेजाहारसमुग्घाद-ग्देहि चदुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो पोसिदो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो । विउव्वणादिइड्डिपत्तेहि माणुसखेत्तब्भंतरे अप्पडिहयगमणेहि रिसीहि अदीदकाले सच्चं पि माणुसखेत्तं पुसिज्जदि ति 'माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो' इदि वयणं ण घडदे ? ण

मारणान्तिकसमुद्धातगत संयतासंयत जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{14}{1}$) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, लोकनालीके भीतर सर्वत्र रहकर मारणान्तिकसमुद्धात करनेके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

शंका — यहाँपर यह छह बटे चौदह ($\frac{14}{1}$) भाग किस क्षेत्रसे कम करना चाहिए ?

समाधान—सुमेरुसे नीचेके एक हजार योजनसे और आरण-अच्युत विमानोंके उपरिम भागसे कम करना चाहिए ।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९ ॥

द्रव्यार्थिकनयका आश्रय लेकर स्पर्शनक्षेत्रके कहनेपर अतीत और वर्तमानकालमें लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही स्पर्शनका क्षेत्र होता है । किन्तु पर्यायार्थिकनयके अवलम्बन करनेपर कुछ विशेषता है । उसमेंसे वर्तमानकालका आश्रय करके पर्यायार्थिकनय-सम्बन्धी स्पर्शनप्ररूपणा करनेपर क्षेत्रप्ररूपणके समान ही स्पर्शनका क्षेत्र है । अब अतीतकालका आश्रय लेकर पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी स्पर्शनकी प्ररूपणा की जाती है । यह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, वैक्रियिकसमुद्धात, तैजससमुद्धात और आहारकसमुद्धातगत प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानवर्ती जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है और मनुष्य-क्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

शंका—विक्रियादि ऋद्धिप्राप्त और मानुषक्षेत्रके भीतर अप्रतिहत गमनशील ऋषियोंने अतीतकालमें सम्पूर्ण मानुषक्षेत्र स्पर्श किया है, इसलिए 'मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है' यह वचन घटित नहीं होता है ?

१ प्रमत्तसंयतादीनामयोगकेवल्यन्तानां क्षेत्रवत्स्पर्शनम् । स. वि. १, ८.

एस दोसो, उवरि जोयणलक्खुप्पायणेण जोयणलक्खमेत्तगमणे संभवाभावादो । मेरुमत्थय-
चढणसमत्थाणमिसीणं किमिदि जोयणलक्खुप्पायणे ण संभवो ? होदु णाम मेरुपव्वदुद्देसे'
सा सत्ती, ण सव्वत्थ, 'माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे' इदि आइरियवयणण्णहाणु-
ववत्तीदो । अधवा अदीदकाले लद्धिसंपण्णमुणिवरेहिं सव्वं पि माणुसखेत्तं पुसिज्जदि,
तस्स माणुसखेत्तववएसण्णहाणुववत्तीदो । सत्थाणे पुण माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो चेव
पोसिदो । जदि एवं, तो पंचिदियतिरिक्खाणं पि पुव्ववेरियदेवाणं पयोगादो जोयण-
लक्खुप्पायणं पावदि ? होदु, ण को वि' दोसो । मारणंतियसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणम-
संखेज्जदिभागो पोसिदो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो । मारणंतियखेत्तं तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागो, तदो संखेज्जगुणमसंखेज्जगुणं वा किण्ण होदि त्ति बुत्ते ण होदि । ण

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, एक लाख योजन ऊपर उड़नेकी अपेक्षा एक लाख योजन प्रमाण गमन करनेकी उनमें संभावना नहीं है ।

शंका — सुमेरुपर्वतके मस्तक (शिखर) पर चढ़नेमें समर्थ ऋषियोंके क्या एक लाख योजन ऊपर उड़कर गमन करनेकी संभावना नहीं है ?

समाधान — भले ही सुमेरुपर्वतके ऊर्ध्वप्रदेशमें ऋषियोंके गमन करनेकी शक्ति रही आवे, किन्तु मनुष्यक्षेत्रके ऊपर एक लाख योजन उड़कर सर्वत्र गमन करनेकी शक्ति नहीं है, अन्यथा 'मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवां भागमें' ऐसा आचार्योंका वचन नहीं बन सकता है ।

अथवा, अतीतकालमें विक्रियादि लब्धिसम्पन्न मुनिवरोंने सर्व ही मनुष्यक्षेत्र स्पर्श किया है, अन्यथा उसका 'मनुष्यक्षेत्र' यह नाम नहीं बन सकता है ।

स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षा उक्त प्रमत्तादि संयतोंने मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग ही स्पर्श किया है ।

शंका — यदि ऐसा है, तो पंचेन्द्रिय तिर्यच्चोंका भी पूर्वभवके वैरी देवोंके प्रयोगसे एक लाख योजन ऊपर तक जाना प्राप्त होता है ?

समाधान — यदि तिर्यच्चोंका ऊपर एक लाख योजन तक जाना प्राप्त होता है, तो होवे, उसमें भी कोई दोष नहीं है ।

मारणान्तिकसमुद्धातगत उन्हीं प्रमत्तसंयतादिकोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका — मारणान्तिकसमुद्धातको प्राप्त प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानवर्ती जीवोंका मारणान्तिक क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा अथवा असंख्यातगुणा क्यों नहीं होता है ?

१ म २ प्रती ' -दुद्धेसणसत्ती ', म २ प्रती अन्यप्रतिषु च ' -दुद्धेसे सा सत्ती ' इति पाठः ।

२ म प्रती ' को छि ', अन्यप्रतिषु ' को त्थि ' इति पाठः ।

ताव उड्डवद्वानं^१ पणदालीसजोयणलक्खविकखंभाणं^२ समपरिमंडलसंद्धिदानं^३ सत्तरज्जु-
आयदानं^४ खेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, संखेज्जपदरंगुलमेत्तसेट्ठिपमाणत्तादो ।
ण च पणदालीसजोयणलक्खविकखंभसंखेज्जंगुलबाहल्लं संखेज्जरज्जुआयदकप्पवासिय-
विमाणमेत्ततिरिच्छवद्वानं खेत्तं पि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, एदस्स पुव्व-
खेत्तादो संखेज्जगुणहीणस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तविरोधा । विमाणप्पट्ठिट्ठिद-
असंखेज्जुववादभवणसम्मूहवद्वखेत्तेसु समुदिदेसु किण्णं तं होइ ? ण, सेट्ठीए असंखेज्जदि-
भागासंखेज्जजोयणरुंदर्यंखेत्तेसु गहिदेसु वि तदसंभवादो ।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो, असंखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा ॥ १० ॥

एदस्स सुत्तस्स वड्डमाणकालमस्सिदूण पज्जवद्वियपरूवणाए खेत्तभंगो । अदीद-

समाधान — नहीं होता है, क्योंकि, ऊपरकी ओर प्रवर्तमान, पैतालीस लाख योजन विष्कम्भवाले, समपरिमंडल आकारसे संस्थित, और सात राजु आयत, ऐसे मारणान्तिक-समुद्रात करनेवाले प्रमत्तसंयतादि जीवोंका क्षेत्र तिर्यंग्लोकका असंख्यातवां भाग नहीं होता है, क्योंकि, वह क्षेत्र संख्यात प्रतरांगुलमात्र जगश्रेणीके प्रमाण ही होता है । और न संख्यात राजु आयत, तथा कल्पवासी विमानोंके प्रमाण तिर्यंग्रूपसे प्रवर्तमान उक्त जीवोंका पैतालीस लाख योजन विस्तार और संख्यात अंगुल बाह्यवाला मारणान्तिकक्षेत्र भी तिर्यंग्लोकका संख्यातवां भाग होता है, क्योंकि, पूर्वोक्त क्षेत्रसे संख्यातगुणे हीन इस क्षेत्रको तिर्यंग्लोकका संख्यातवां भाग माननेमें विरोध आता है ।

शंका—विमानोंमें प्रतिष्ठित असंख्यात उपपादशय्यावाले भवनोंके सम्मुख प्रवर्तमान उक्त जीवोंके समस्त मारणान्तिकक्षेत्र संयुक्त करने पर तिर्यंग्लोकका संख्यातवां भाग क्यों नहीं हो जाता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, श्रेणीके असंख्यातवें भाग तथा असंख्यात योजन विस्तृत क्षेत्रोंके ग्रहण करने पर भी तिर्यंग्लोकका संख्यातवां भाग प्राप्त होना असंभव है ।

सयोगिकेवली भगवन्तोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १० ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालको आश्रय करके पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है । अतीतकालको आश्रय करके पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी प्ररूपणा भी क्षेत्रके समान ही है । विशेष बात यह है कि कपाटसमुद्रातगत केवलीका स्पर्शनक्षेत्र

१ प्रतिपु ' ञ ' स्थाने ' ए ' इति पाठः ।

२ प्रतिपु ' वंदपंथ ' इति पाठः ।

कालमस्सिदूण पज्जवट्ठियपरूवणाए खेत्तभंगो चैव । णवरि कवाडगदस्स पणदालीस-
जोयणसदसहस्सबाहल्लं जगपदरमेगं कवाडखेत्तं होदि । अवरं णवदिजोयणसदसहस्स-
बाहल्लं जगपदरं होदि । एवं दोष्णि कवाडखेत्ताणि मेलिदे तिरियलोगादो संखेज्जगुणाणि ।

(एवमोघपरूवणा समत्ता)

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि
केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-मारणंतिय-उववादगदेहि
मिच्छादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो वट्टमाणकाले पोसिदो, माणुसखेत्तादो
असंखेज्जगुणो । सेसं खेत्तभंगो ।

छ चोदसभागा वा देसूणा ॥ १२ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घादगदेहि मिच्छा-
दिट्ठीहि अदीदकाले णेरइएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्ज-
गुणो फोसिदो । एसो अत्थो सुत्ते अवुत्तो कधं परूविज्जदे ? ण, सुत्तत्थेण ' वा ' सदेण

पैंतालीस लाख योजन बाहल्यवाला एक जगप्रतरप्रमाण कपाटक्षेत्र होता है। (यह कायोत्सर्गस्थ
केवलीकी अपेक्षा जानना) । और दूसरा अर्थात् समुपविष्ट केवलीके कपाटसमुद्रातका क्षेत्र
नव्वै लाख योजन बाहल्यवाले जगप्रतरप्रमाण कपाटसमुद्रातसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र होता है ।
इस प्रकार दोनों कपाटक्षेत्रोंको मिला देनेपर तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र हो जाता है ।

(इस प्रकार ओघपरूपणा समाप्त हुई ।)

आदेशसे गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने
कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्रात, कषायसमुद्रात, बैक्रियिक-
समुद्रात, मारणान्तिकसमुद्रात और उपपादपदगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि
चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें
स्पर्श किया है । शेष कथन क्षेत्रपरूपणाके समान जानना चाहिए ।

नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह
भाग स्पर्श किये हैं ॥ १२ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्रात, कषायसमुद्रात और बैक्रियिक-
समुद्रातगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका
असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका—सूत्रमें नहीं कहा गया यह अर्थ कैसे कहा जा रहा है ?

१ विधेयेण गल्लनुवादेन नरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारकैश्चतुर्गुणस्थानैर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृहः ।
स. सि. १, ८.

समुच्चयद्वेण सूचिदत्तादो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय वेउच्चिय-खेत्ताणि अदीदकाले तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्ताणि किण्ण होंति त्ति वुत्ते ण होंति, इंदयं-सेठीबद्ध-पइण्णएहि रुद्धसच्च्वखेत्तस्स तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तादो । इंदयं-सेठीबद्ध-पइण्णएसु संचरंतेहि णेरइयमिच्छाहट्ठीहि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो किण्ण पुसिज्जदि त्ति वुत्ते ण पुसिज्जदि, णेरइयाणं परखेत्तगमणाभावादो । परखेत्तगमणाभावे विहारवदिसत्थाणस्स अभावो पसज्जदि त्ति वुत्ते ण पसिज्जे, एककम्मिह इंदए सेठीबद्ध-पइण्णए च संट्ठिदगामागार-बहुविधविलगमणसंभवादो । असंखेज्जजोयणमेत्तायामसेठीबद्ध-पइण्णया अत्थि त्ति तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागो होदि त्ति णासंकणिज्जं, असंखेज्जजोयणायामसेठीबद्ध-पइण्णयाणं पि तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तादो । मारणंतिय-उववादपदेहि णेरइयमिच्छादिट्ठीहि

समाधान—नहीं, क्योंकि, सूत्रमें स्थित और समुच्चयार्थक 'वा' शब्दसे उक्त अर्थ सूचित किया गया है ।

शंका—अतीतकालकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टियोंके विहारवत्स्वस्थान, वेदना-समुद्घात, कषायसमुद्घात और वैकियिकसमुद्घातसम्बन्धी क्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं होते हैं, क्योंकि, इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरकविलोंसे रुद्ध भी सर्वक्षेत्र तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भागमात्र ही होता है ।

शंका—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरकोंमें संचार करनेवाले नारकी मिथ्या-दृष्टियोंने तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग क्यों नहीं स्पर्श किया ?

समाधान—नहीं स्पर्श किया है, क्योंकि, नारकियोंका स्वक्षेत्रको छोड़कर परक्षेत्रमें गमन नहीं होता है ।

शंका—परक्षेत्रमें गमनका अभाव माननेपर विहारवत्स्वस्थानका अभाव प्राप्त होता है ?

समाधान—विहारवत्स्वस्थानका अभाव नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, एक ही इन्द्रक, श्रेणीबद्ध या प्रकीर्णक नरकमें विद्यमान ग्राम, घर और बहुत प्रकारके विलोंमें गमन सम्भव होनेसे विहारवत्स्वस्थानपद बन जाता है ।

शंका—असंख्यात योजनप्रमाण आयामवाले श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरक होते हैं, इसलिए तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग विहारवत्स्वस्थानका क्षेत्र बन जाता है ?

समाधान—ऐसी भी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, असंख्यात योजन आयामवाले श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरक भी तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं ।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदवाले नारकी मिथ्यादृष्टियोंने अतीतकालमें

१ प्रतिषु ' इंदिय ' इति पाठः ।

अदीदकाले छ चोइसभागा देसूणा पोसिदा । ऊणपमाणं देसूणतिण्णिजोयणसहस्सं । तिरिक्ख-
णेरइयाणं सव्वदिसासु गमणागमणसंभवो अत्थि त्ति छ चोइसभागा होंति, कथं देसूणत्तं ?
बुच्चदे— विग्गहो जीवाण किं सहेउओ, आहो अहेउओ त्ति ? ण ताव अहेउओ. णिकारण-
कज्जाणुवलंभादो । विदिये कारणं वत्तव्वमिदि । कम्मं तक्कारणं, संसारिजीवसव्वावत्थाणं
कम्मवादिरत्तिकारणाणुवलंभादो । तत्थ वि आणुपुव्विणामं चैव कारणं, अण्णासिं सव्व-
पयडीणं पुध पुध कज्जाणमुवलंभादो, पुव्वुत्तरसरीराणमंतरालखेत्ते आणुपुव्वीए विवागो
होदि त्ति गुरूवदेसादो वा । आणुपुव्विउदयाभावे वि मुक्कमारणंतियजीवाणं वक्कत्तुवलंभादो
णाणुपुव्विफलं विग्गहो त्ति णासंक्कणिज्जं, तस्स तित्थयरस्सेव पच्चासण्णविवागाणुपुव्वि-
फलत्तादो । अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवाहल्लतिरियपदरम्हि सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्त-
ओगाहणवियप्पेहि गुणिदे तत्थ जत्तिओ रासी तत्तियमेत्ताओ णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीए

कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{1}{4}$) भाग स्पर्श किये हैं । यहांपर कुछ कमका प्रमाण देशोन
तीन हजार योजन है ।

शंका— तिर्यंच और नारकियोंका सर्व दिशाओंमें गमनागमन सम्भव है, इसलिए
पूरे छह बटे चौदह ($\frac{1}{4}$) भाग ही स्पर्शन क्षेत्र होना चाहिए, फिर कुछ कम कैसे कहा ?

समाधान— विग्रहगतिमें जीवोंके विग्रह क्या सहेतुक होते हैं, अथवा अहेतुक ?
अहेतुक तो माने नहीं जा सकते हैं, क्योंकि, बिना कारणके कार्य पाया नहीं जाता । यदि
दूसरा पक्ष ग्रहण किया जाता है, अर्थात् विग्रह सहेतुक होते हैं, तो उसमें कारण कहना
चाहिए ? विग्रहका कारण कर्म है, क्योंकि, संसारी जीवोंकी सर्व अवस्थाओंका कर्मको
छोड़कर और कोई कारण पाया नहीं जाता है । उसमें भी आनुपूर्वीनामक नामकर्म ही
विग्रहका कारण है; क्योंकि, अन्य सभी प्रकृतियोंके पृथक् पृथक् कार्य पाये जाते हैं, तथा
पूर्वशरीरको छोड़नेके पश्चात् और उत्तरशरीरको ग्रहण करनेके पूर्व अन्तरालवर्ती क्षेत्रमें
आनुपूर्वीनामकर्मका विपाक (उदय) होता है, ऐसा गुरुका उपदेश है ।

शंका— आनुपूर्वीनामकर्मके उदयके नहीं होनेपर भी मारणान्तिकसमुद्रघात करने-
वाले जीवोंके विग्रह पाये जाते हैं, इसलिए विग्रह आनुपूर्वीनामकर्मका फल है, ऐसा नहीं
माना जा सकता है ?

समाधान— ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, वह विग्रह तीर्थंकरप्रकृतिके
समान निकट भविष्यमें उदय होनेवाले आनुपूर्वीनामकर्मका फल है ।

शंका— सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र बाह्यवाले तिर्यंग्रतरमें अर्थात् राजुके
वर्गमें जगध्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अंगगाहनाके चिकल्लोंसे गुणा करनेपर वहां जो राशि
अर्थात् आकाश प्रदेशोंकी संख्या आती है उतने प्रमाण नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वीकी प्रकृतियां

पयडीओ । लोगे सेठीए असंखेज्जदिभागमेत्तओगाहणवियप्पेहि गुणिदे तिरिक्खगइपा-
ओग्गाणुपुञ्चीए पयडिवियप्पा होंति । पणदालीसजोयणलक्खवाहल्ले तिरियपदरे उड्डं
कवाडल्लेदणयणिप्पण्णे' सेठीए असंखेज्जदिभागमेत्तओगाहणवियप्पेहि गुणिदे मणुसगदि-
पाओग्गाणुपुञ्चीए पयडिवियप्पा होंति । णवजोयणसदवाहल्लतिरियपदरे सेठीए
असंखेज्जदिभागमेत्तओगाहणवियप्पेहि गुणिदे देवगदिपाओग्गाणुपुञ्चीए पयडिवियप्पा
होंति त्ति वग्गणसुत्तादो आणुपुञ्चिणामं संट्टाणविवाइ चेवेत्ति णासंकाणिज्जं, तिस्से
खेत्त-संट्टाणेसु वावादाए एकत्थेव वावारविरोहादो । ते च आगासपदेसा एत्थ चैव अच्छंति

होती हैं । घनलोकमें जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनाके विकल्पोंसे गुणा करने-
पर तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीके प्रकृति-विकल्प होते हैं । पैतालीस लाख योजन बाहल्यवाले
तिर्यग्प्रतरमें ऊर्ध्वकपाटके छेदनेसे निष्पन्न क्षेत्रको जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र
अवगाहन-विकल्पोंसे गुणा करनेपर मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वीके प्रकृति-विकल्प होते हैं ।
नौ सौ योजन बाहल्यवाले तिर्यग्प्रतरमें जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहन-विकल्पोंसे
गुणा करनेपर देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके प्रकृति-विकल्प होते हैं । इन वर्गणाखंडके सूत्रोंके
अनुसार आनुपूर्वीनामा नामकर्मकी प्रकृति संस्थान अर्थात् पुद्गल विपाकी ही है ।

समाधान — ऐसी भी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि, क्षेत्र और संस्थानोंमें
व्यापृत अर्थात् क्षेत्रविपाकी और पुद्गलविपाकी होते हुए भी उस आनुपूर्वीप्रकृतिका एक
ही अर्थमें व्यापार मान लेनेमें विरोध है। दूसरी बात यह भी है कि वे आकाशके प्रदेशके इसी

१ एदाणि पणदालीसजोयणसदसहस्सवाहल्लाणि तिरियपदराणि कथमुप्पण्णाणि त्ति मणिदे वुच्चदे- उड्डं
कवाडल्लेदणयिप्पण्णाणि त्ति इदरे'मिमाणुपुञ्चिकम्माणं तिरियपदराणं घणलोगस्स य उप्पात्तिमपरुविय एदेसिं चेव
तिरियपदराणमुप्पत्तां किमड्डं परुविज्जदे ? लोगसंठाणपरुवणट्ठं । उड्डकवाडमिदि एदेण लोगो णिदिट्ठो । कथमेसा
लोगस्स सण्णा ? वुच्चदे- ऊर्ध्वं च तत् कपाटं च ऊर्ध्वकपाटमिव लोकः । ऊर्ध्वकपाटं जेण लोगो चोदसरज्जुउस्सेहो
सत्त(ज्जुत्तंदो मज्जे उवरिमपेरंतो च एगरज्जुवाहल्लो उवरि वल्लोगुत्तंदेसे पंचरज्जुवाहल्लो मूले सत्तरज्जुवाहल्लो; अण्णत्थ
अहाणुवट्ठां वाहल्लो । तेण उड्डट्ठियकवाडोवमो । उड्डकवाडस्स छेदणं उड्डकवाडल्लेदणं तेण उड्डकवाडल्लेदणेण णिप्पण्णाणि
एदाणि पणदालीसजोयणसदसहस्सवाहल्लतिरियपदराणि । संपहि एत्थ उड्डकवाडल्लेदणविहाणं वुच्चदे । तं जहा—
सत्तरज्जुत्तंदत्तम्मि दोसु वि पासेसु तिण्णि-तिण्णरज्जुआयामेण एगरज्जुविवखंमेण उड्डकवाडं छेत्तव्वं । पुणो पणदालीस-
जोयणलक्खुस्सेहं मोत्तूण हेट्ठा उवरि च मज्झिमपदेसे उड्डकवाडं छिदिदव्वं । पुणो पुह १ भूमि ५ विसेसा च उच्छेह
इ मज्झिदो वड्डिपमाणं होदि ङ् । एदीए वड्डीए पणदालीसजोयणलक्खेसु वड्ढिदखेत्तं दोसु वि पासेसु अवणेदव्वं ।
एवमुड्डकवाडल्लेदणेण पणदालीसजोयणसदसहस्सवाहल्लाणि तिरियपदराणि णिप्पण्णाणि । धवला अ. प्र. पत्र
१२०६ (वर्गणाखंड)

त्ति ण णियमो अत्थि, समयाविरोहेण तेसिमवट्टाणादो । तदो आणुपुच्चिविवागापाओग्ग-
खेत्ते अवट्टाणं उप्पण्णपढम-विदिय-तदियवकैसु णत्थि त्ति देसूणत्तं घड्दे । एसो अत्थो
उवरि सव्वत्थ जहावसरं परूवेदव्वो ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ १३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्ताणिओगदारे जो वुत्तो, सो वत्तव्वो ।

पंच चौदसभागा वा देसूणा ॥ १४ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घादगदेहि सासण-
सम्मादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो । तं जधा-
णेरइयाणं बिलाणि संखेज्जजोयणवित्थडाणि वि अत्थि, असंखेज्जजोयणावित्थडाणि वि ।
तत्थ जदि वि चदुरासीदिलक्खणेरइयावासा असंखेज्जजोयणवित्थडा होंति, तो वि सव्व-
खेत्तसमासो तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो चेव जधा होदि, तथा वत्तइस्सामो-

स्थान विशेषपर ही रहते हैं, ऐसा नियम नहीं है; क्योंकि, उनका अवस्थान परमागमके
अविरोधसे माना गया है ।

इसलिए अनुपूर्वनामकर्मके उदयके अप्रायोग्य क्षेत्रमें अवस्थान उत्पन्न होनेके प्रथम,
द्वितीय और तृतीय विग्रहोंमें नहीं है, अतः देशानता घटित हो जाती है । यह अर्थ ऊपर
भी सर्वत्र यथावसर प्ररूपण करना चाहिए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्या-
तवां भाग स्पर्श किया है ॥ १३ ॥

इस सूत्रका अर्थ जो क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा है वही यहांपर कहना चाहिए ।

उन्हीं सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे
चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, और वैक्रि-
यिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असं-
ख्यातवां भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वह इस प्रकारसे है—
नारकियोंके बिल संख्यात योजन विस्तृत भी हैं और असंख्यात योजन विस्तृत भी हैं ।
उनमें यद्यपि चौरासी लाख नारकियोंके आवास असंख्यात योजन विस्तृत होते हैं, तो भी
उन समस्त नारकावासोंका क्षेत्र-समास अर्थात् क्षेत्रोंका जोड़ तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग
जिस प्रकारसे होता है, उस प्रकारसे कहते हैं—

णिरयावासा के वि परिमंडलायारा, के वि तंसा, के वि चउरंसा, के वि पंचंसा, के वि छंसा । एदे सव्वे वि समीकरणे कदे चउरंसा असंखेज्जजोयणवित्थडा होंति । सयल-
णेरइयरासिणा घणंगुलस्स संखेज्जदिभागे गुणिदे वट्टमाणकाले णेरइएहि रुद्धखेत्तं होदि ।
वट्टमाणे णेरइयरुद्धणिरयविलभागादो अरुद्धभागो संखेज्जगुणो च्चि संखेज्जरुवेहि गुणिदे
णेरइयाणमदीदसत्थाणखेत्तं होदि । तेण तिरियलोमस्स असंखेज्जदिभागत्तं ण विरुज्जदे ।
एवं ' वा ' सदसूचिदस्स अत्थस्म परूवणा कदा होदि । सासणस्स णिरयगदीए उववादो
णत्थि, सुत्तपडिसिद्धत्तादो । मारणंतियसमुग्वादगदेहि पंच चोइसभागा पोसिदा । कुदो ?
सत्तमपुट्टवीदो सासणाणं मारणंतियकरणसंभवाभावा । तं कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव
सुत्तादो णव्वदे ।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५ ॥

नारकियोंके आवास कितने ही तो गोल आकारवाले होते हैं, कितने ही त्रिकोण,
कितने ही चतुष्कोण, कितने ही पंचकोण और कितने ही नारकावास षट्कोण होते हैं । इन
सभी आकारोंवाले नारकावासोंके समीकरण करनेपर वे चतुरस्र और असंख्यात योजन
विस्तृत हो जाते हैं । सम्पूर्ण नारकराशिसे घनांगुलके संख्यातर्धे भागको गुणा करनेपर
वर्तमानकालमें नारकियोंसे रुद्धक्षेत्र होता है । वर्तमानकालमें नारकोंद्वारा रोके हुए नरकोंके
विल-भागसे अरुद्धभाग संख्यातगुणा होता है, इसलिए संख्यात रूपोंसे गुणा करनेपर नार-
कोंका अतीतकालसम्बन्धी स्वस्थानक्षेत्रका प्रमाण हो जाता है । अतः तिर्यग्लोकका असं-
ख्यातर्वा भाग (जो ऊपर स्पर्शन-क्षेत्र बताया गया है, वह) विरोधको नहीं प्राप्त होता है ।
इस प्रकार ' वा ' शब्दसे सूचित अर्थकी प्ररूपणा की गई है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका नरकगतिमें उद्यपाद नहीं होता है, क्योंकि, उसका
सूत्रमें प्रतिषेध किया गया है । मारणान्तिकसमुद्धातगत सासादनसम्यग्दृष्टियोंने पांच बड़े
चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, सातवीं पृथिवीसे सासादनसम्यग्दृष्टियोंका
मारणान्तिकसमुद्धात करना संभव नहीं है ।

शंका — यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी ही सूत्रसे जाना जाता है कि सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि
नारकी मारणान्तिकसमुद्धात नहीं करते । (यदि करते होते, तो सूत्रमें छह बड़े चौदह (१६)
भागके स्पर्शका उल्लेख होता) ।

सम्यग्मिध्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ? लोकका असंख्यातर्वा भाग स्पर्श किया है ॥ १५ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउवियसमुग्घादग्देहि सम्मा-
मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि वट्टमाणकाले चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, माणुस-
खेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । कारणं खेत्तसिद्धं । अदीदकाले वि एदेहि दोहि वि गुण-
ट्ठणेहि एदेहि पदेहि चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो चेव पोसिदो, 'असंखेज्जजोयणवित्थडा
णेरइयसन्वावासा' इदि मणेण संकप्पिय एगावासखेत्तफलं चउरासीदिलक्खरूवेहि गुणिदे
तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तखेत्तफलोवलंभादो । सम्मामिच्छाइट्ठीणं मारणंतिय-उववाद्-
पदा णत्थि । असंजदसम्माइट्ठीहि मारणंतिय-उववाद्गदेहि चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो,
माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो वट्टमाणकाले पोसिदो । कारणं खेत्तसिद्धं । अदीदकाले
मारणंतियसमुग्घादग्देहि असंजदसम्मादिट्ठीहि चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, माणुस-
खेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । कुदो ? सव्वजीवाणं अवक्कमच्छक्कणियमदंसणादो, उट्ठुं
गच्छमाणजीवाणं पि अप्पणो उप्पत्तिखेत्तमपावेदूण अंतरकाले चेव दिस-विदिसाणं
गमणाभावादो । ण च उप्पत्तिखेत्तसमाणखेत्तंतरट्ठियाणं पि जीवाणमणियदग्गमणमत्थि,

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रि-
धिकसमुद्घातगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवों के वर्तमानकालमें
सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र
स्पर्श किया है । इसका कारण क्षेत्रप्ररूपणासे सिद्ध है । अतीतकालमें भी इन दोनों ही
गुणस्थानवर्ती नारकी जीवोंने इन्हीं दोनों पदोंकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चार लोकोंका
असंख्यातवां भाग ही स्पर्श किया है, क्योंकि, 'असंख्यात योजन विस्तृत नारकियोंके सर्व
आवास होते हैं' इस प्रकार मनसे संकल्प करके एक नारकावासका क्षेत्रफल चौरासी लाख
रूपोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भागमात्र क्षेत्रफल पाया जाता है । सम्य-
ग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद्, ये दो पद नहीं होते हैं ।
मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद्गत असंयतसम्यग्दृष्टि नारकोंने सामान्यलोक आदि चार
लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श
किया है । इसका कारण क्षेत्रप्ररूपणासे सिद्ध है ।

अतीतकालमें मारणान्तिकसमुद्घातगत असंयतसम्यग्दृष्टियोंने सामान्यलोक आदि
चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है,
क्योंकि, सर्व जीवोंके अपक्रमपट्टका नियम देखा जाता है (देखो प्रथम भा. पृ. १००) । तथा
ऊपर जानेवाले जीवोंके भी अपने उत्पत्ति क्षेत्रको नहीं प्राप्त करके अंतरालकालमें ही निश्चित
दिशाको छोड़कर अन्य दिशा या विदिशामें गमन करनेका अभाव है । और न उत्पत्तिक्षेत्रके
समान अर्थात् समतल अन्य क्षेत्र पर स्थित जीवोंके भी अनियत गमन होता है, क्योंकि,

एगदिसाए णियदग्गमादो; तिरिच्छं गच्छमाणानं पि जीवाणमप्पणो उप्पज्जमाणदिसं मोचूण
अण्णदिसाणं गमणाभावादो, उप्पज्जमाणदिसं गच्छंताणं पि जीवाणं अप्पणो उप्पज्ज-
माणखेत्तसमाणद्वानमपावेदूण अंतराले सव्वत्थ उज्ज्वलणाभावादो। तदो सव्वणिरयावासे-
हिंतो माणुसखेत्तमागच्छंताणं सम्मादिट्ठीणं णिरयावासप्पडिड्ढिदपडिणियदवद्वानं पोसणं
चदुहं लोगाणमसंखेज्जदिभागो चैव। अधवा णेरइयसम्मादिट्ठीणं तत्थतणमिच्छाड्ढीणं
(व) घणेरज्जुपदरसव्वागासपदेसेहिंतो (ण) णिग्गमणमत्थि, मणुसोववादियत्तादो,
णेरइयपडिवद्वानं मणुसगइपाओग्गानुपुव्वीणं तिरिक्खगइपाओग्गानुपुव्वीणं व पडिवद्वान-
गासपदेसाणं रज्जुपदरमिह सव्वत्थाभावादो। किं तदभावलिंमम ? एदं चैव पोसणसुत्तं।
समीकरणे कदे जदि एकणेरइयावासविकखंभो एगसेट्ठिं सेट्ठिविदियवग्गमूलेण खंडियमेत्तो
होदि, तो तस्स खेत्तफलं जगपदरं सेट्ठिषट्ठमवग्गमूलेण खंडियमेत्तं होदि। पुणो अदीद-
काले तत्थ द्वाइदूण उद्धं मारणंतियं मेल्लंताणं एदं खेत्तफलं मुहं होदि, संखेज्जरज्जु-

उनका गमन एक दिशामें ही, अर्थात् उत्पत्तिक्षेत्रकी ओर ही, नियत हो चुका है। तिरछे
गमन करनेवाले भी जीवोंके अपनी उत्पन्न होनेवाली दिशाको छोड़कर अन्य दिशाको गमन
नहीं होता है। उत्पन्न होनेकी दिशाको जाते हुए भी जीवोंके अपने उत्पन्न होनेके क्षेत्रके
समान अन्य स्थानको नहीं प्राप्त करके अन्तरालमें सर्वत्र क्रजुवलन अर्थात् सरलगतिसे
वक्रगति होनेका अभाव है। इसलिए सभी नारकावासोंसे मनुष्यक्षेत्रको आनेवाले और
नारकावासमें प्रतिष्ठित होते हुए नियत क्षेत्रकी ओर प्रवर्तमान सम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन
सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातत्रां भाग ही है।

अथवा, मनुष्योंमें उत्पन्न होनेके कारण नारकी सम्यग्दृष्टियोंका वहांके मिथ्यादृष्टियोंके
समान घनराजुप्रतरके सर्व आकाशप्रदेशोंसे निर्गमन नहीं होता है, क्योंकि, नरकगतिसे
प्रतिबद्ध मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीवाले जीवोंके तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीवाले जीवोंके समान
प्रतिबद्ध आकाश-प्रदेशोंका राजुप्रतरमें सर्वत्र अभाव है।

शंका—इस सर्वत्र अभावका लिंम क्या है, अर्थात् यह किस आधारसे जाना ?

समाधान—उक्त बातका बतानेवाला यही स्पर्शन-सूत्र है।

समीकरण करनेपर यदि एक नारकावासका विक्रमभ एक जगश्रेणीको जगश्रेणीके
द्वितीय वर्गमूलसे खंडित करनेपर एक खंड मात्र होता है, तो उसका क्षेत्रफल जगश्रेणीके
प्रथम वर्गमूलसे जगप्रतरको खंडित करनेपर एक खंड मात्र होता है। पुनः अतीतकालमें
घट्टा रहकर ऊपरकी ओर मारणान्तिकसमुद्रात करनेवालोंका यह क्षेत्रफल मुखरूप हो
जाता है और संख्यात राजुप्रमाण आधाम होता है।

१ प्रतिपु 'उद्धवलणा' म. प्रती 'उद्धलेणा' इति पाठः।

२ प्रतिपु कोष्कान्तर्गतपाठी नास्ति।

आयामो होदि । एत्थ उस्सेधेण खेत्तफलं गुणिदे तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं मारणंतियखेत्तं होदि त्ति वुत्ते ण होदि, णिरयावासो ण एक्को वि एरिसविकखंभसहिओ अत्थि । कधमेदं परिच्छिज्जदे ? ' णेरइया असंजदसम्मादिट्ठी सब्बपदेहि अदीदकाले तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागं पुसंति ' त्ति सुत्तवयणादो । केत्तिओ पुण णेरइयावासाणं विकखंभो होदि त्ति वुत्ते असंखेज्जजोयणमेत्तो होदि । तं जहा— सग-सगसत्थाणखेत्तं द्विविय सग-सगविल-संखाए ओवट्ठिदे एगविलेण रुद्धखेत्तमसंखेज्जजोयणविकखंभायामं होदि । तं संखेज्जरज्जहि गुणिदे एगविलमस्सिदूण मारणंतियखेत्तं होदि । एदं विलसंखाए गुणिदे सयलं मारणंतियखेत्तं होदि । एदं तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागं होदि । सब्बणिरया-वासाणं खादफलमसंखेज्जजोयणमेत्तं हेदूण एगरज्जुपदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं चेव होदि । कुदो ? ' असंजदसम्मादिट्ठिमारणंतियपोसणं तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो ' त्ति वयणादो । जदि कहिं पि एकस्स विलस्स खेत्तफलं रज्जुपदरस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि,

शंका—यहांपर अर्थात् उक्त क्षेत्रमें उत्सेधसे क्षेत्रफलको गुणा करने पर तो तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा मारणान्तिकक्षेत्र हो जाता है ?

समाधान— नहीं होता है, क्योंकि, इस प्रकारके विष्कम्भसे सहित एक भी नारकावास नहीं है ।

शंका— यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — ' नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि सर्वपदोंकी अपेक्षा अतीतकालमें तिर्यग्लोकके असंख्यातवै भागमात्र क्षेत्रको स्पर्श करते हैं ' इस प्रकारके सूत्र-वचनसे उक्त बात जानी जाती है ।

शंका— नारकोंके आवासोंका विष्कम्भ कितना होता है ?

समाधान— असंख्यात योजन प्रमाण होता है । वह इस प्रकारसे है— अपना अपना स्वस्थानक्षेत्र स्थापित करके अपने अपने बिलोंकी संख्याओंसे अपवर्तन करनेपर एक बिलसे रुद्धक्षेत्र असंख्यात योजन विष्कम्भ और आयामवाला हो जाता है । उसे संख्यात राजुओंसे गुणा करनेपर एक बिलका आश्रय करके मारणान्तिकसमुद्धातगत क्षेत्र हो जाता है । इस प्रमाणको बिलोंकी संख्यासे गुणा करनेपर सकल मारणान्तिकक्षेत्र हो जाता है । यह मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यग्लोकके असंख्यातवै भागप्रमाण होता है ।

सर्व नारकावासोंका घनफल असंख्यात योजनप्रमाण होकर भी एक राजुप्रतरका असंख्यातवै भागमात्र ही होता है, क्योंकि, ' असंयतसम्यग्दृष्टि नारकोंका मारणान्तिक-स्पर्शन तिर्यग्लोकके असंख्यातवै भाग होता है ' ऐसा सूत्र-वचन है । यदि कहीं भी एक बिलका क्षेत्रफल राजुप्रतरके संख्यातवै भागप्रमाण होता, तो असंयतसम्यग्दृष्टि नारकोंका

तो असंजदसम्मादिट्टिमारणंतियपोसणं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं होइ, तिरियपदर-
वाहल्लादो मारणंतियखेचवाहल्लस्स असंखेज्जगुणत्तादो । पढमपुढविसत्थाणखेत्ते सेटीए
संखेज्जदिभागेण गुणिदे असंजदसम्मादिट्टिमारणंतियपोसणं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं
होदि त्ति के वि पच्चवट्ठाणं कुणंति । तण्ण घडदे, सत्थाणखेत्तं विलसलागाहि ओवट्टिय
लद्धस्स वग्गमूलविकखंभेण अद्धरज्जुआयामपोसणखेतुवलंभादो । ण उट्ठं गंतूण तिरिच्छं
गच्छंताणं बहुपोसणं, तिरिच्छं गंतूण उट्ठं गच्छंताणं व, पुव्वुत्तेणेव विकखंभेण गमणु-
वलंभादो । एवमुववादस्स वि वत्तव्वं ।

पढमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइट्टिप्पहुडि जाव असंजदसम्मा-
दिट्टीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगद-
मिच्छादिट्टीणं परूवणा वट्टमाणकाले खेत्तसमाणा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-
कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि मिच्छादिट्टीहि अदीदकाले चटुहं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,

मारणान्तिकस्पर्शनक्षेत्र तिर्यंग्लोकसे असंख्यातगुणा होता, क्योंकि, तिर्यंग्लोकके बाह्यसे
मारणान्तिकक्षेत्रका बाह्य असंख्यातगुणा है ।

प्रथम पृथिवीके स्वस्थानक्षेत्रमें जगश्रेणीके संख्यातवें भागसे गुणा करनेपर असंयत-
सम्यग्दृष्टि नारकोंका मारणान्तिकस्पर्शनक्षेत्र तिर्यंग्लोकसे असंख्यातगुणा होता है, ऐसा
कितने ही आचार्य समाधान करते हैं । किन्तु वह घटित नहीं होता है, क्योंकि, स्वस्थान-
क्षेत्रको विलशलाकाओंसे अपवर्तितकर लब्धराशिके वर्गमूलप्रमाण विष्कम्भसे अर्धराजु आयाम-
प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है । तथा, ऊपर जाकर तिरछे गमन करनेवाले जीवोंका
स्पर्शनक्षेत्र बहुत नहीं है, जैसा कि तिरछे जाकर ऊपर जानेवालोंका स्पर्शनक्षेत्र बहुत नहीं है;
क्योंकि, पूर्वोक्त ही विष्कम्भद्वारा गमन पाया जाता है ।

इसी प्रकार सस्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकोंके उपपादक्षेत्रका भी
कथन करना चाहिए ।

प्रथम पृथिवीमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि
नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया
है ॥ १६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैकियिक और मारणान्तिक-
समुद्घात तथा उपपादगत मिथ्यादृष्टि नारकोंकी वर्तमानकालिक स्पर्शन-प्ररूपणा क्षेत्र-प्ररूपणाके
समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना कषाय, और वैकियिकसमुद्घातगत
मिथ्यादृष्टि नारकोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग

अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? असंखेज्जजोयणविकखं भणिरयावासखादफलं ठविय तप्पाओग्गसंखेज्जबिलसलागाहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तखेत्तुवलंभादो । मारणंतिय-उववादग्देहि मिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कथं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं ? वुच्चदे— असीदिसहस्साहियजोयणलक्खपठमपुठवीवाहल्लम्मि हेट्ठिमजोयणसहस्सं णेरइएहि सव्वकालं ण लुप्पदि त्ति कट्ठु जोयणसहस्समवणिय सेसवाहल्लं रज्जुपदरं ठविय उत्सेधेण एग्गुणवंचासमेत्तखंडाणि कादूण पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, ' एगरज्जुरुंदो सत्तरज्जुआयदो जोयणलक्खवाहल्लो तिरियलोगो ' त्ति उवदेसादो । जे पुण जोयणलक्खवाहल्लरज्जुवट्ठं तिरियलोगपमाणं भणंति तेसिमुवदेसेण तिरियलोगादो सादिरियं मारणंतिय-उववादखेत्तं होदि ।

और अढ़ाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि असंख्यात योजन विष्कम्भवाले नारकावासोंके घनफलको स्थापित करके तत्प्रायोग्य संख्यात बिलशलाकाओंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्र उपलब्ध होता है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादगत मिथ्यादृष्टि नारकोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका— यहाँपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे कहा ?

समाधान— एक लाख अस्सी हजार योजन प्रथम पृथिवीके बाहल्यमेंसे नीचेका एक हजार योजनप्रमाण क्षेत्र नारकियोंने किसी भी समय नहीं लुआ है, ऐसा करके उक्त प्रमाणमेंसे एक हजार योजन निकालकर शेष एक लाख उन्यासी हजार बाहल्यवाले राजु-प्रतरको स्थापित करके उत्सेधके उन्चास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग हो जाता है, क्योंकि, ' एक राजु खंडवाला, सात राजु लम्बा और एक लाख योजन बाहल्यवाला तिर्यग्लोक है ' ऐसा उपदेश है । किन्तु जो आचार्य एक लाख योजन बाहल्यवाला और एक राजु गोलाईवाला तिर्यग्लोकका प्रमाण कहते हैं, उनके उपदेशानुसार तिर्यग्लोकसे साधिक मारणान्तिक और उपपाद क्षेत्र होता है ।

विशेषार्थ— यहाँ पर प्रथम नरकके मिथ्यादृष्टि जीवोंका मारणान्तिक और उपपाद क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग इस प्रकार सिद्ध किया गया है— यदि हम तिर्यग्लोकके एक राजु लम्बे चौड़े व मोटाईके सप्तमांश प्रमाण मोटे खंड करें तो १४२८५६ योजन मोटाईवाले ४९ खंड होते हैं । अब यदि एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी और एक राजु लम्बी चौड़ी प्रथम पृथ्वीके प्रमाणमेंसे नारकियोंसे सदैव अस्पृष्ट एक हजार योजन मोटा

ण च एदं घडदे, एदमिह उवदेसे पडिग्गहिदे लोगमिह तिण्णिसद-तेदालमेत्तघणरज्जुणम-
णुप्पत्तीदो, ' रज्जु सत्तगुणिदा जगसेठी, सा वग्गिदा जगपदरं, सेठीए गुणिदजगपदरं
घणलोगो होदि ' ति परियम्मसुत्तेण सन्वाइरियसम्मदेण विरोहप्पसंगादो च । कदजुम्मेहि

अधस्तन भाग पृथक् करके शेष १७९००० योजनके एक राजु लम्बे चौड़े ४९. खंड करें तो प्रत्येक खंडकी मोटाई $३६५३\frac{३}{४}$ योजन प्रमाण होगी जो पूर्वोक्त तिर्यग्लोकके खंडोंकी मोटाईसे लगभग चतुर्थांश पड़ती है। इस प्रकार यह समस्त क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग सिद्ध हो जाता है। किन्तु लोककी मूर्त्तिकाकार मान्यताके अनुसार उक्त क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग नहीं, किन्तु तिर्यग्लोकसे भी अधिक पड़ जाता है, क्योंकि, यदि एक राजु व्यासवाले गोल तथा एक लाख योजन मोटाईवाले तिर्यग्लोकके पूर्वप्रकार ४९. खंड करें तो प्रत्येक खंड एक राजु व्यासवाला गोल तथा $२०४०\frac{३}{४}$ योजन मोटा होगा। इसी प्रकार वर्तुलाकार लोककी मान्यतासे उक्त मारणान्तिकक्षेत्रके खंड भी एक राजु व्यासवाले गोल तथा $३६५३\frac{३}{४}$ योजन मोटे होंगे और उनका समस्त घनफल वर्तुलाकार तिर्यग्लोकके घनफलसे हीन न रहकर अधिक हो जायगा।

उदाहरण—

रा. रा.

$$(१) \text{ आयत चतुरस्र तिर्यग्लोक } १ \times ७ \times १००००० \text{ यो.} = १ \times \frac{१०००००}{७} \times \frac{४९}{१}$$

$$(२) \text{ उक्त मारणान्तिकक्षेत्र } १ \times १ \times १७९००० = १ \times \frac{१७९०००}{४९} \times \frac{४९}{१}$$

$$(३) \text{ वर्तुलाकार तिर्यग्लोक } १ \times ३ \times \frac{१}{४} \times १००००० = \frac{३}{४} \times \frac{१०००००}{४९} \times \frac{४९}{१}$$

(४) वर्तुलाकार लोककी मान्यतासे उक्त मारणान्तिकक्षेत्र—

$$\frac{३}{४} \times १७९००० = \frac{३}{४} \times \frac{१७९०००}{४९} \times \frac{४९}{१}$$

इस प्रकारके उक्त क्षेत्रोंमें प्रथम दूसरेसे $\frac{५७९}{१७९} = ३\frac{३६६}{१७९}$ = कुछ कम चौगुना अर्थात् संख्यातगुणा सिद्ध होता है। तथा, चौथा तीसरेसे कुछ कम दुगुणा अर्थात् सातिरेक सिद्ध होता है।

किन्तु यह घटित नहीं होता है, क्योंकि, इस उपदेशके स्वीकार करनेपर लोका-
काशमें तीनसौ तेतालीस घनराजुओंकी उत्पत्ति नहीं होती है। दूसरे, ' राजुको सातसे गुणा
करने पर जगश्रेणी होती है, जगश्रेणीको जगश्रेणीसे गुणा करने पर जगप्रतर होता है,
और जगप्रतरको जगश्रेणीसे गुणा करने पर घनलोक होता है ' इस सर्व आचार्योंसे सम्मत
परिकर्म सूत्रसे विरोध भी प्राप्त होता है। पंचेन्द्रियतिर्य्यच, पंचेन्द्रियतिर्य्यत्रपर्याप्त,

पंचिदियतिरिक्ख-पज्जत्त-जोणिणि-जोदिसिय-वेंतरदेव-अवहारकालेहि खुदाबंधसुत्तसिद्धेहि^१ अकदजुम्मजगपदरे भागे हिदे एदाओ रासीओ सछेदाओ होज्ज ? ण च एवं, जीवाणं छेदाभावा । किं च दब्बाणियोगहारवक्खाणमिह वुत्तहेट्ठिम-उवरिमवियप्पा अभावमुक्कंते, अवग्गसमुट्ठिदलोगत्तादो । तिणिसदतेदालघणरज्जुपमाणो उवमालोओ णाम । एदम्हादो अण्णो पंचदब्बाहारलोगो, तदो सव्वमेदं घडदि त्ति वुत्ते ण, उवमेयाभावे उव-माए अण्णत्थ अणुवलंभादो । तम्हा उवमेयेसु उस्सेह-पमाणंगुलपलिदोवम-सागरोवमसण्णि-देसु खेत्त-कालेसु संतेसु उवमाभूदउस्सेह-पमाणंगुल-पल्ल-सागराणमत्थित्तमुवलम्भदे । तम्हा एत्थ वि उवमेएण लोणेण पमाणदो उवमालोगाणुसारिणा पंचदब्बाहारेण होदव्वं, अण्णहा एदस्स उवमालोगत्ताणुववत्तीदो ।

पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिमती, ज्योतिष्क और व्यन्तरदेवोंके खुदाबंधसूत्र-सिद्ध, कृतयुग्मराशिवाले अवहारकालोंसे अकृतयुग्म जगप्रतरमें भाग देने पर ये उक्त राशियां सछेद हो जायेंगी, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, उन जीवोंके छेदका अभाव है । (कृतयुग्म आदि राशियोंके लिये देखो तीसरा भाग, पृ. २४०.) ।

दूसरी बात यह है कि द्रव्यानुयोगद्वारके व्याख्यानमें कहे गये अधस्तन और उपरिम विकल्प अभावको प्राप्त होते हैं. क्योंकि, उक्त प्रकारसे लोक वर्गविहीनराशिसे समुत्पन्न होता है ।

शंका—तीन सौ तेतलीस घनराजुप्रमाण लोकका नाम उपमालोक है । इससे अन्य पांच द्रव्योंका आधारभूत लोक भिन्न है । यदि ऐसा माना जाय, तो यह सब उपर्युक्त कथन घटित हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपमेयके अभावमें उपमाकी अन्यत्र उपलब्धि नहीं होती है । अर्थात् यदि उपमाके योग्य किसी पदार्थका अस्तित्व न माना जायगा, तो फिर उपमाकी सार्थकता कहाँ पर होगी ? इसलिए उत्सेधांगुल और प्रमाणांगुल संज्ञिक क्षेत्ररूप उपमेयोंके तथा पल्योपम और सागरोपम संज्ञिक कालरूप उपमेयोंके विद्यमान होने पर उपमारूप उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल, पल्य और सागरका अस्तित्व पाया जाता है । अतएव यहाँ पर भी उपमेयरूप लोकके साथ प्रमाणकी अपेक्षा उपमालोकका अनुसरण करनेवाला पांच द्रव्योंका आधारभूत लोक होना चाहिए, अन्यथा इसका नाम उपमालोक हो नहीं सकता ।

१ खेत्तेण पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिदियतिरिक्खजोणिणि-पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि पदरमवहिदि देवअवहारकालादो असंखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणेण कालेण असंखेज्जगुणहीणेण कालेण ॥ खुदाबंधसुत्तं, अ. प्र. प. ५१९. एदे अवहारकाले जहाकमेण सल्लगभूदे ठविय पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिदियतिरिक्खजोणिणि-पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तपमाणेण जगपदरे अवहिरिज्जमाणे सल्लगओ जगपदरं च सुगवं समप्पंति । धवला. अ. प्र. प. ५१९.

सासणसम्माइड्ढि-सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणं-
तियसमुग्घादगदखेत्तपरूवणा वडुमाणकाले खेत्तसमाणा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-
वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि सासणसम्मादिड्ढीहि अदीदकाले चदुण्हं लोगाणम-
संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ पज्जवड्ढियपरूवणा मिच्छा-

विशेषार्थ — यहाँ धवलाकारने लोककी वर्तुलाकार मान्यताके विरुद्ध पांच हेतु दिये हैं । जो इस प्रकार हैं—

(१) प्रथम पृथिवीके मिथ्यादृष्टि जीवोंका मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कहा गया है । किन्तु यदि लोकको आयतचतुरस्र न मानकर वर्तुलाकार माना जावे तो वह क्षेत्र तिर्यग्लोकसे हीन नहीं किन्तु साधिक हो जाता है । (देखो पृ. १८४)

(२) परिकर्ममें राजु, जगश्रेणी, जगप्रतर और लोकका सम्बन्ध बतलाकर घनलोकको ३४३ राजुप्रमाण सिद्ध किया है । यह प्रमाण व व्यवस्था वर्तुलाकार लोकमें नहीं पाई जाती ।

(३) खुदाबंधमें पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यचपर्याप्त, पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमती, ज्योतिषी और ध्यंतर देवोंके अवहारकालोंको कृतयुग्मराशि अर्थात् चारसे पूर्णतः भाजित होनेवाला कहा है, और इनसे जगप्रतर निरवशेष भाजित हो जाता है, जिससे जगप्रतर भी कृतयुग्मराशि सिद्ध हुआ । किन्तु वर्तुलाकार लोककी मान्यतामें जगप्रतर अकृतयुग्मरूप पड़ेगा जिससे उक्त अवहारकालोंद्वारा वह पूर्णतः भाजित नहीं होनेसे वे पंचेन्द्रिय तिर्यच, पर्याप्त, योनिमती आदि राशियां सछेद् हो जाती हैं ।

(४) द्रव्यानुयोगद्वारके व्याख्यानमें गुणस्थानों व मार्गणास्थानोंके भीतर जीवोंका प्रमाण उपरिमविकल्प और अधस्तनविकल्पों द्वारा भी समझाया गया है । किन्तु यदि लोकको उक्त प्रकार वर्तुलाकार मान लिया जाय तो उसमें वर्ग व वर्गमूल प्रमाण नहीं प्राप्त होनेसे वे विकल्प बन ही नहीं सकेंगे । (देखो तीसरा भाग, प्रस्तावना पृ. ४८)

(५) यदि यह कहा जाय कि तीन सौ तेतालीस राजुप्रमाणवाले लोकको द्रव्याधार लोक न मानकर केवल कल्पित उपमालोक ही माना जाय, तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि, उपमेयके अभावमें उपमाका अस्तित्व ही नहीं रहता है । तथा अंगुल, पल्योपम, सागरोपम आदि जो अन्य उपमाप्रमाण माने गये हैं उन सबके आधाररूप उपमेय प्राप्त हैं । अतः प्रमाणलोकको भी काल्पनिक न मानकर सोपमेय ही स्वीकार करना आवश्यक है ।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक-समुद्धातगत सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंके वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्धातगत सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर

१ अ-क प्रत्योः ' अदीदकाले ' इति पाठो नास्ति ।

दिट्टिसमाणा । मारणंतियसमुग्घादगदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ कारणं मिच्छाहट्ठीणं व वत्तव्वं ।

सम्मामिच्छादिट्टि-असंजदसम्मादिट्ठीणं अप्पणो सव्वपदानं वड्ढमाणकाले खेत्त-
भंगो । एदेहि दोहि गुणट्ठाणेहि अदीदकाले सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-
कसाय-त्रेउच्चियसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्ज-
गुणो फोसिदो, एगणिरयावासस्स असंखेज्जघणं गुलाणि ठविय तप्पाओग्गाहि संखेज्जबिल-
सलागाहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तदंसणादो । मारणंतिय-उववादगदेहि
असंजदसम्मादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो ।
कुदो ? सदुक्खंभदुक्खाहाणं खादफलस्स तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तुवलंभादो ।
जदि वि उड्ढं गंतूण सगबिलवग्गमूलविकखंभेण मणुसगई गच्छंति, तो वि तिरियलोगस्सा-
संखेज्जदिभागो, तिरिच्छेण लड्ढखेत्तस्स बिलखेत्तवग्गमूलगुणिदसेट्ठीए संखेज्जदिभाग-
पमाणत्तादो । एदमत्थपदं सव्वत्थ जहासंभवं जाणिऊण जोजेयव्वं ।

पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके समान है । मारणा-
न्तिकसमुद्धातगत नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालकी सपेक्षा सामान्यलोक-
आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे
असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर कारण मिथ्यादृष्टियोंके समान कहना चाहिए ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंके अपने सर्वपदोंकी स्पर्शन-
प्ररूपणा वर्तमानकालमें क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान,
वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्धातगत उक्त दोनों ही गुणस्थानवाले जीवोंने अतीतकालमें
सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अड्ढाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा
क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, एक नारकावासके असंख्यात घनांगुलोंकी स्थापन करके तत्प्रा-
योग्य संख्यात बिलशलाकाओंसे गुणा करने पर तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भागमात्र क्षेत्र
देखा जाता है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादगत असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने
सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अड्ढाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र
स्पर्श किया है, क्योंकि, (असंख्यात योजन विस्तृत श्रेणादिआदि बिलोंके मारणान्तिक व
उपपादगत उक्त नारकियोंका) अपने दोनों ओरके दंडाकार व भुजाकार क्षेत्रोंका घनफल
तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग पाया जाता है ।

यद्यपि ऊपर जाकर अपने बिलके वर्गमूलप्रमाण विष्कम्भसे नारकी मनुष्यगतिको
जाते हैं, तो भी तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग ही स्पर्शनक्षेत्र रहता है, क्योंकि, तिरिच्छे-
रूपसे लब्ध उस क्षेत्रका प्रमाण, बिलसम्बन्धी क्षेत्रके वर्गमूलसे गुणित जगश्रेणीका संख्या-
तवां भाग ही होता है । यह अर्थपद सर्वत्र यथासंभव जान करके जोड़ना चाहिए ।

विदियादि जाव छट्टीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्टि-सासण-
सम्मादिट्टीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥१७॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-मारणंतिय-उववादगद-
मिच्छादिट्टीणं उववादविरहिदसेसपदट्टिदसासणसम्मादिट्टीणं च परूवणाए खेतभंगो,
वडुमाणकालपडिबद्धत्तादो ।

एग वे तिण्णि चत्तारि पंच चोइसभागा वा देसूणा ॥ १८ ॥

एत्थ 'वा' सहस्रचिदत्थं ताव वत्तइस्सामो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-
वेदण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घादगदेहि विदियादि पंचपुढविमिच्छादिट्टि-सासणसम्मादिट्टीहि
चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो अदीदकाले फोसिदो । एत्थ
कारणं पुव्वं व वत्तव्वं । मारणंतिय-उववादगदेहि मिच्छादिट्टीहि अदीदकाले एगो चोइस-
भागो विदियाए पुढवीए फोसिदो । तदियाए वे चोइसभागा, चउत्थीए तिण्णि चोइसभागा,

द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारकियोंमें मिथ्या-
दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां
भाग स्पर्श किया है ॥ १७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक-
समुद्घात तथा उपपादपदको प्राप्त मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंकी तथा उपपादविरहित और
शेष पक्षप्रसिद्धित सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी स्पर्शनसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा वर्तमानकालसे
प्रतिबद्ध होनेसे क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

उक्त जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा चौदह भागोंमेंसे कुछ कम एक, दो, तीन,
चार और पांच भाग स्पर्श किये हैं ॥ १८ ॥

यहांपर पहले 'वा' शब्दसे सूचित अर्थको कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहार-
वत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत द्वितीयादि पांच पृथिवियोंके मिथ्या-
दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां
भाग और अट्ठाईतीससे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है । यहांपर कारण
पूर्वके समान ही कहना चाहिए । दूसरी पृथिवीमें मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत
मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीतकालमें एक बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किया है ।
तीसरी पृथिवीके नारकी जीवोंने दो बटे चौदह (२८) भाग, चौथी पृथिवीके नारकियोंने

१ द्वितीयादिषु प्राक्सप्तम्या मिथ्यादृष्टिभिः सासादनसम्यग्दृष्टिमिलोकस्यासंख्येयभागः, एकः द्वौ त्रयः
चत्वारः पंच चतुर्दशभागा वा देशीनाः । स. सि. १, ८.

पंचमाए चत्तारि चोइसभागा, छट्ठीए पंच चोइसभागा. सव्वत्थ णेरइयाणमगम्मखेत्तेणूणा ति वत्तव्वं । एवं सासणसम्मादिट्ठीणं पि वत्तव्वं । णवरि उच्चवादो णत्थिय । किमट्ठमेदेसिमदीदकाले एत्तियं खेत्तं होदि ? णिग्गमण-पवेसणं पडि सम्मादिट्ठीणं व णियमाभावा । भोगभूमिसंटाणसंठिदा असंखेज्जदीव-सञ्जहा णेरइएहि कथं पुत्तिज्जंति ? ण, तत्थ वि णेरइयाणं णिग्गमण-पवेसं पडि विरोहाभावादो ।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९ ॥

एदेसिं दोण्हं गुणट्ठानाणं वट्ठमागकाले मत्थाणादिपंचपदट्ठियाणं मारणंतियपदट्ठिय-
असंजदसम्मादिट्ठीणं च परुवणाए खेत्तमंगो । एदेहि चैव अदीदकाले सत्थाणादिपंचपद-

तीन बटे चौदह (१४) भाग, पांचवीं पृथिवीके नारकियोंने चार बटे चौदह (१४) भाग और छठी पृथिवीके नारकियोंने पांच बटे चौदह (१४) भाग प्रमाणक्षेत्र स्पर्श किया है । इन सभी पृथिवियोंके नारकियोंका देशोन् क्षेत्र नारकियोंके अगम्यक्षेत्रसे कम कहना चाहिए । इसी प्रकारसे उक्त पृथिवियोंके सर्व पद्गत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि उनके उपपादपद नहीं होता है ।

शंका— उक्त नारकियोंका अतीतकालमें इतना (सूत्रोक्त) स्पर्शनक्षेत्र क्यों होता है ?

समाधान— इतना अधिक स्पर्शनक्षेत्र इसलिये होता है कि उक्त पृथिवियोंमें निर्गमन और प्रवेशनके प्रति अर्थात् जाने और आनेकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि जीवोंके समान मिथ्यादृष्टि जीवोंका नियम नहीं है ।

शंका— भोगभूमिकी रचनासे संस्थित असंख्यात द्वीप-समुद्र नारकियोंने कैसे दाशं क्रिये हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, वहांपर भी नारकियोंका निर्गमन और प्रवेश होनेमें कोई विरोध नहीं है । अर्थात् मारणाभितकसमुद्रातकी अपेक्षा नारकी जीवोंका उक्त क्षेत्रमें प्रवेश और निर्गमन बन जाता है ।

द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्या-
त्वां भाग स्पर्श किया है ॥ १९ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि इन दोनों गुणस्थानोंके स्वस्थानस्वस्थान, विहारवस्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकियिकसमुद्रात, इन पांच पदोंपर स्थित नारकी जीवोंकी तथा मारणाभितकपदस्थित असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी वर्तमानकालमें स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके उक्त गुण-

द्विदेहि मारणंतियपदद्विद असंजदसम्मादिद्वीहि य विदियादि-छद्विपुठविवितेसिएहि चदुण्हं
 लोगणमसंखेज्जदिभागो, अद्वाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कारणं पुव्वं व वत्तव्वं ।
 विदियादि-छसु पुठवीसु असंजदसम्मादिद्वीणिधुवचादो णत्थि ।

सत्तमाए पुठवीए णेरइएसु मिच्छादिद्वीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं,
 लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २० ॥

एदं सुत्तं वड्डमाणखेत्तपरूवर्यं, उवरिमसुत्तेण अदीदाणागदकालविसिद्धखेत्तपरूव-
 णादो । एदस्स परूवणाए खेत्तमंगो ।

छ चोदसभागा वा देसूणा ॥ २१ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कमाय-वेउव्वियसमुग्धादगदेहि मिच्छा-
 दिद्वीहि तीदाणागदकालेसु चदुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अद्वाइज्जादो असंखेज्जगुणो
 फोसिदो । एत्थ कारणं पुव्वं व वत्तव्वं । एसो 'वा' सत्थो । मारणंतिय-उववादगदेहि
 मिच्छादिद्वीहि तीदाणागदकालेसु छ चोदसभागा चित्ताए जोयणसहस्रेणूण हेट्ठिमचदुहि

स्थानवर्ती स्वस्थानादि पांच पदस्थित जीवोंने और मारणान्तिकरदस्थित असंयतसम्यग्दृष्टि
 जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अद्वाइ-
 द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए ।
 द्वितीयादि छह पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद नहीं होता है ।

सातवीं पृथिवीमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
 लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २० ॥

यह सूत्र वर्तमानकालिक क्षेत्रकी प्ररूपणा करनेवाला है, क्योंकि, आगेके सूत्रद्वारा
 अतीत अनागत कालविशिष्ट क्षेत्रकी प्ररूपणा की गई है । इसकी अर्थात् वर्तमानकालके
 राशीनक्षेत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

सातवीं पृथिवीके मिथ्यादृष्टि नारकियोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह
 बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कमाय और वैकियिकसमुद्धानगत
 मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीत और अनागत कालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका
 असंख्यातवां भाग और अद्वाइद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वहाँ पर भी कारण
 पूर्वके समान कहना चाहिए । यही 'वा' शब्दका अर्थ है । मारणान्तिकसमुद्धान्त और
 उपपाद पदगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीत और अनागतकालमें चित्रा पृथिवीके एक

१ सप्तम्यां पृथिव्यां मिथ्यादृष्टिमिलोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशीनाः । स. सि. १, ८.

२ प्रतिपु 'परूवेयं' इति पाठः ।

सहस्मेहि ऊणा फोसिदा । ण केवलं हेड्डिल्लजोयणेहि चेत्र ऊणा, किंतु अण्णो वि देसो लोगणालीए अब्भंतरे णेरइएहि अचल्लुत्तो अस्थि । तं कथं णव्वदे ? ' विदियाए पुठवीए एगो चोइसभागो देसूणो ' इदि सुत्तवयणादो । अण्णहा एदस्स देसूणत्तं पिंडिदूणं संपुण्णो एगो चोइसभागो होज्ज, चित्ताए जोयणसहस्सपवेसादो' । एत्थ पुगो केण खेत्तेणूणो एगो चोइसभागो चि वुत्ते वुच्चदे—णिरयगइयाओग्गाणुपुण्वि-पंचिदियतिरिक्खगइया-ओग्गाणुपुण्वीहि पडिवद्वखेत्तं मोत्तूण अण्णखेत्तेणूणो । वादरुद्वसव्वखेत्तेणूणत्तं किण्ण वुच्चदे ? ण, तत्थ वि आणुपुण्विविवागपाओग्गखेत्ताणं संभवं पडि विरोहाभावादो ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २२ ॥

हजार योजनसे कम और अधस्तन चार पृथिवियोंसम्यन्धी चार हजार योजनोंसे कम छह बटे चौदह ($\frac{1}{4}$) भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर केवल पृथिवियोंके अधस्तन एक एक हजार योजनोंसे ही कम क्षेत्र नहीं समझना, किन्तु अन्य भी देश (क्षेत्र) लोकनालीके भीतर नारकियोंसे अल्लता (असृष्ट) है ।

शंका— यह कैसे जाना ?

समाधान— ' द्वितीय पृथिवीका स्पर्शन देशोन एक बटे चौदह भाग है ' इस सूत्र-वचनसे उक्त बात जानी जाती है । यदि ऐसा न माना जाय, तो इस पृथिवीका देशोन क्षेत्र पिंडित अर्थात् एकत्रित होकर सम्पूर्ण एक बटे चौदह ($\frac{1}{4}$) भाग हो जायगा, क्योंकि चित्रा पृथिवीका एक हजार योजन उस एक राजुमें ही प्रविष्ट है ।

शंका— यहां पर एक बटे चौदह भाग किस क्षेत्रसे कम कहा है ?

समाधान— ऐसी आशंका करनेपर उत्तर देते हैं कि नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और पंचेन्द्रियतिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, इन दोनोंसे प्रतिबद्ध क्षेत्रको छोड़कर अन्य शेष क्षेत्रसे कम कहा है ।

शंका— वायुसे रुके हुए सर्वक्षेत्रसे कम उक्त क्षेत्र क्यों नहीं कहे ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, वहांपर भी आनुपूर्वीनामकर्मके विपाकके प्रायोग्यक्षेत्रके संभव होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २२ ॥

१ म प्रतो ' पवेहदो ' इति पाठः ।

२ शेषैस्त्रिमिलोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

एदेसिं तिण्हं गुणद्वानाणं सत्तमाए पुढवीए मारणंतिय-उववाद्दपदा णत्थि । सेसपंच-पदद्विएहि तिण्णिगुणद्वानजीवेहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कारणं पुच्चं व वत्तत्वं ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, ओघं ॥ २३ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववाद्दगदेहि मिच्छादिट्ठीहि तीदाणागद-वट्टमाणकालेसु सव्वलोगो फोसिदो । विहारवदिसत्थाणपरिणदेहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । असंखेज्जेसु समुद्देसु तसजीवविरहिदेसु कधं विहारवदिसत्थाणपरिणदाणं तिरिक्खाणं संभवो ? ण तत्थ पुच्चवेरियदेवाणं पयोगदो विहारविरोहाभावादो । अदीदकाले विहरंततिरिक्खेहि छुत्तंखेत्तायणविहाणं बुच्चदे-पुच्चवेरियदेवपयोगादो उवरि जोयणलक्खं-

इन तीनों ही गुणस्थानवर्ती जीवोंके सातवीं पृथिवीमें मारणान्तिक और उपवाद्, ये दो पद नहीं होते हैं । शेष स्वस्थानादि पांच पदोंपर विद्यमान उक्त तीन गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए ।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ओघके समान सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ २३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्दात्त और उपवाद्गत मिथ्यादृष्टि तिर्यंच जीवोंने भूत, भविष्य और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थानसे परिणत तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यंग्लोकका संख्यातव भाग और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका— त्रस जीवोंसे विरहित असंख्यात समुद्रोंमें विहारवत्स्वस्थानसे परिणत हुए तिर्यंचोंका अस्तित्व कैसे संभव है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, पूर्वभवके वैरी देवोंके प्रयोगसे विहार होनेमें कोई विरोध नहीं है । और इसलिए वहां पर उनका अस्तित्व भी संभव है ।

अब अतीतकालमें विहार करनेवाले तिर्यंचोंसे स्पर्श किये गए क्षेत्रके निकालनेके विधानको कहते हैं— पूर्वभवके वैरी देवोंके प्रयोगसे चित्रा पृथिवीसे ऊपर एक लाख योजन

१ तिर्यंगतौ तिरश्चा तिर्यग्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । स. सि. १, ८.

२ आ प्रती 'खुत्त' इति पाठः ।

चित्तेरु-कुलसेल-कुंडल-रुजग-माणसुत्तर-णगिंदवरपव्वदादिरुद्धखेत्तं मोत्तूण सव्वं फुसंति
त्ति लपखजोयणवाहल्लं रज्जुपदरं ठधिय उद्धुमेगूणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तखेत्तं होदि । वेउच्चियसमुग्घादगदानं वट्टमाणकाले
खेतभंगो । तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोमाणं संखेज्जदिभागो, दोहि लोमेहिंतो असंखेज्ज-
गुणो फोसिदो । कारणं, वाउकाइयजीवा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता विउच्चण-
क्खमा वट्टमाणकाले होंति', ते रज्जुपदरं पंचरज्जुवाहल्लं अदीदकाले फुसंति त्ति ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ २४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्तमिह परूविदो ।

सत्त चौदसभागा वा देसूणा ॥ २५ ॥

एत्थ 'वा' सदद्धो वुच्चदे- सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-
वेउच्चियसमुग्घादगदसासणसम्मादिट्ठीहिं तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो,

मेरुप्रमाण, तथा कुलाचल, कुंडलागिरि, रुचकगिरि, मानुषोत्तर और नगेन्द्रवर पर्वतादिकोंसे
रुद्ध क्षेत्रको छोड़कर सभी तिर्यंच सर्व द्वीप और समुद्रोंका स्पर्श करते हैं । इसलिए एक
लाख योजन बाह्यवाले राजुप्रतरको स्थापन कर ऊपरकी ओरसे उनंचास खंड करके
प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यंग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र हो जाता है । वैक्रि-
यिकसमुद्रातगत तिर्यंचोंका स्पर्शन वर्तमानकालमें क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत और
अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और तिर्यंग्लोक तथा
मनुष्यलोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि
पह्योपमके असंख्यातवें भागमात्र वायुकायिक जीव वर्तमानकालमें विक्रिया करनेमें समर्थ
होते हैं, और वे पांच राजु बाह्यवाले एक राजुप्रतरप्रमाण क्षेत्रको अतीतकालमें स्पर्श करते हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असं-
ख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २४ ॥

इस सूत्रका अर्थ क्षेत्रप्ररूपणामें कहा जा चुका है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंने भूत और भविष्यकालकी अपेक्षा कुछ कम सात
बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २५ ॥

इस सूत्रमें स्थित 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्व-
स्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्रातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और

१ गो. जी. २५८.

२ प्रतिपु 'फोसिदं' इति पाठो नास्ति ।

३ सासादनसम्यग्दृष्टिभिलोकस्यासंख्येयभागः सप्त चतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. वि. १, ८.

तिरियलोगस्स संखेज्जादिभागो, अङ्काइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ ताव तिरिक्ख-
सासणसत्थाणसत्थाणखेत्ताणयणविधानं वुच्चदे— लवण-कालोदग-संयभूरमणसमुद्रे मोत्तूण
सेससमुद्रेसु णत्थि सत्थाणसत्थाणसासणा, तत्थुप्पण्णतसजीवाणमभावादो । सव्वेसु दीवेषु
अत्थि सत्थाणसत्थाणसासणा, तत्थ तसजीवाणमुप्पत्तिदंसणादो । सत्थाणसत्थाणसासणेहि
सव्वे दीवा तिण्णिण समुद्दा तीदकाले पुसिज्जंति चि तेसिमाणयणट्टमिमा परूवणा कीरदे ।
जंबूदीवो खेत्तगुणिदेण—

सत्त णव सुण्ण पंच य छण्णव चट्टु एक वंच सुण्णं च ।

जंबूदीवस्सेदं गणिदफलं होइ णायवं' ॥ ४ ॥

अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्या-
तवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अब यहांपर तिर्यंच सासा-
दनसम्यग्दृष्टि जीवोंके स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रके निकालनेके विधानको कहते हैं—

लवणसमुद्र, कालोदकसमुद्र और स्वयम्भूरमणसमुद्रको छोड़कर शेष समुद्रोंमें
स्वस्थानस्वस्थान पदवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नहीं होते हैं, क्योंकि, वहांपर उत्पन्न
होनेवाले त्रस जीवोंका अभाव है । हां, सर्वद्वीपोंमें स्वस्थानस्वस्थान पदवाले सासादन-
सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं, क्योंकि, वहांपर त्रसजीवोंकी उत्पत्ति देखी जाती है । स्वस्थान-
स्वस्थानपदस्थित सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीवोंने सर्वद्वीप और तीन समुद्र अतीतकालमें
स्पर्श किये हैं, इसलिए उनका स्पर्शनक्षेत्र लानेकेलिए यह प्ररूपणा की जाती है ।
जम्बूद्वीपके क्षेत्रका गणित करनेपर—

सात, नौ, शून्य, पांच, छह, नौ, चार, एक, पांच और शून्य अर्थात् ७९०५६९४१५०
वर्गयोजन प्रमाण जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल होता है, ऐसा जानना चाहिए ॥ ४ ॥

१ अंबरपंचेकचउणव छ पण सुण्ण णवय सत्तो व । अंककमे जोयणया जंबूदीवस्स खेत्तफलं ॥ ५८ ॥
७९०५६९४१५० । एक्को कोसी दंडा सहस्समेक्कं हुवेदि पंच सया । तेवण्णाए सहिदा किंक्क हत्थे ससुण्णाइ ॥ ५९ ॥
को. १ दंड १५५३।०।० । एक्को होदि विहत्थी सुण्णं पादम्मि अंगुलं एक्कं । जव छ तिय जूवा लिक्खाउ तिण्णि
णादब्बा ॥ ६० ॥ १।०।१।६।३ । कम्मक्खोणीए इवे वालग्गा अवरमोगभूमिए । सत्त हुवंते मज्झिममोगखिदीए वि
तिण्णिण पुदं ॥ ६१ ॥ २।७.३ सत्त य सण्णासण्णा ओसण्णासण्णया तद्दा एक्को । परमाणूण अणंताणता संखा इमा
होदि ॥ ६२ ॥ ७।१ । अडतालसहस्साइ पणन्नणुत्तर चउस्सया अंसा । हारो एकं लक्खं पंच सहस्साणि चउ सया णवयं
॥ ६३ ॥ ४८४५५५ ति. प. माणुसलोया. । पण्णासमेकदालं णव छप्पणास सुण्ण णव सदरी । साहियकोसं च हवे
जंबूदीवस्स सुहुमफलं ॥ ३१३ ॥ त्रि. सा.

एदस्स एया सलागा होदि १ । एदेण पमाणेण लवणसमुद्दे कीरमाणे सो जंबू-
दीवादो खेत्तगुणिदेण चउवीसगुणो होदि । उतं च-

बाहिरसूर्इवग्गो अब्भंतरसूर्इवग्गपरिहीणो ।

जंबूदीवपमाणा खंडा ते होंति चउवीसा' ॥ ५ ॥

एदीए गाहाए सव्वेसिं दीव-समुद्दानं पुध पुध खेत्तफलसलागाओ आणेदव्वाओ ।
तत्थ अट्टुहं खेत्तफलसलागाओ एदाओ-

१	२४	१४४	६७२	२८८०	११९०४	४८३८४	१९५०७२
---	----	-----	-----	------	-------	-------	--------

लवणसमुद्दखेत्तफलवुप्पण्णो पमाणेण एमं होदि । लवणसमुद्दपमाणेण धादइसंडम्हि
कीरमाणे छगुणो होदि । कालोदयसमुद्दो अट्टावीसगुणो होदि । पोक्खरदीवो वीसुत्तर-
सदगुणो होदि । पोक्खरसमुद्दो चटुसदलण्णउदिगुणो होदि । एवं लवणसमुद्दजंबूदीव-

इसकी अर्थात् जम्बूद्वीपके उक्त क्षेत्रफलकी एक शलाका (१) होती है । इस प्रमाणसे
लवणसमुद्रका माप करनेपर वह जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे चौबीस गुणा होता है । कहा भी है-

लवणसमुद्रकी बाह्यसूचीके वर्गको उसीकी आभ्यन्तर सूचीके वर्गके प्रमाणसे कम
करनेपर जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलप्रमाण उसके चौबीस खंड होते हैं ॥ ५ ॥

इस गाथाके अनुसार समस्त द्वीप और समुद्रोंकी पृथक् पृथक् क्षेत्रफल शलाकाएं
ले आना चाहिए । उनमेंसे आठ द्वीप-समुद्रोंकी क्षेत्रफल शलाकाएं इस प्रकार होती हैं—
१, २४, १४४, ६७२, २८८०, ११९०४, ४८३८४, १९५०७२.

उदाहरण—(१) लवणसमुद्र-बाह्यसूची ५ लाख , आभ्यन्तरसूची १ लाख योजन.

$$५^२ - १^२ = २५ - १ = २४.$$

(२) धातकीखंडद्वीप-बाह्यसूची १३ लाख, आभ्यन्तरसूची ५ लाख योजन.

$$१३^२ - ५^२ = १६९ - २५ = १४४.$$

(३) कालोदधि-बाह्यसूची २९ लाख, आभ्यन्तरसूची १३ लाख योजन.

$$२९^२ - १३^२ = ८४१ - १६९ = ६७२ । इत्यादि ।$$

लवणसमुद्रका उत्पन्न हुआ क्षेत्रफल अपने प्रमाणकी अपेक्षा एक होता है । लवण-
समुद्रके प्रमाणसे धातकीखंडका प्रमाण करनेपर धातकीखंड छह गुणा होता है । कालोदधि-
समुद्र अट्टाईसगुणा है । पुष्करवरद्वीप एक सौ वीसगुणा है । पुष्करवरसमुद्र चारसौ छयानवे
गुणा है । इस प्रकारसे लवणसमुद्रकी जम्बूद्वीपप्रमाणशलाकाओंसे द्वीप और सागरोंसम्बन्धी

१ बाहिरसूर्इवग्गो अब्भंतरसूर्इवग्गपरिहीणो । लवणस्स कदिम्मि हिदे इच्छियदीवद्विखंडपमाणं ॥ ति. प.

५, ३६. बाहिरसूर्इवग्गं अब्भंतरसूर्इवग्गपरिहीणं । जंबूवासविससे तत्तियमेत्ताणि खंडाणि । ति. सा. ३१६.

सलागाहि दीव-सायरजंबूदीवसलागाओ ओवट्टिय गुणगारा उप्पादेदच्चा । १।६।१८।
 १२०।४९६।२०१६।८१२८ । एवं ठविदगुणगारसलागाहि लवणसमुद्दजंबूदीवसलागाओ
 गुणिय जंबूदीवजोयणपदराणि गुणिदे इच्छिददीव-सायरणं खेत्तफलं होदि । संपहि समुद्दणं
 चैव खेत्तफलमाणेदुमिच्छामो त्ति अप्पणो इच्छिद-इच्छिदसमुद्दणं लवणसमुद्दगुणगार-
 सलागाणयणविधानं वुच्चदे- लवणोदयसमुद्दादो कालोदयसमुद्दो खेत्तफलेण अट्टावीसगुणो ।
 तम्हि उप्पाइज्जमाणे दो रूवे ठविय पढमस्स वड्डी णत्थि त्ति एगरूवमवणिय सेसेगरूवं
 विरलिय सोलस दादूण अण्णोण्णभासे कदे सोलस होंति । ते दुगुणिय चत्तारि अवणिदे
 कालोदयसमुद्दस्स अट्टावीस गुणगारसलागा उप्पज्जंति । तेहिं लवणोदयसमुद्दस्स

जम्बूद्वीपप्रमाण शलाकार्पं अपवर्तितकर गुणकार उत्पन्न करना चाहिए जो इस प्रकार आते
 हैं— १, ६, २८, १२०, ४९६, २०१६, ८१२८ ।

उदाहरण—(१) लवणसमुद्दकी जम्बूद्वीपशलाकार्पं २४। ल. स. की द्वीप सा. सम्बन्धी
 शलाकार्पं २४। $\frac{२४}{३} = १$ लवणसमुद्दकी गुणकारशलाका ।

(२) धातकीखंडद्वीपकी प्रमाणशलाका १४४। $\frac{१४४}{२४} = ६$ गुणकारशलाकार्पं।

(३) कालोदकसमुद्दकी प्रमाणशलाका ६७२। $\frac{६७२}{२८} = २४$ गुणकार-
 शलाका । इत्यादि ।

इस प्रकार स्थापन की गई गुणकारशलाकाओंसे लवणसमुद्दकी जम्बूद्वीपप्रमाण
 शलाकाओंको गुणित करनेपर पुनः उसे जम्बूद्वीपके प्रतरात्मक योजनोंसे गुणा करनेपर
 इच्छित द्वीप और सागरोंका क्षेत्रफल आता है ।

उदाहरण—(१) धातकीद्वीप-गुणकारशलाका ६।

$६ \times २४ \times ७९०५६९४१५०$ धातकीद्वीपका क्षेत्रफल ।

(२) कालोदधि-गुणकारशलाका २८।

$२८ \times २४ \times ७९०५६९४१५०$ कालोदधिका क्षेत्रफल ।

(३) पुष्करद्वीप-गुणकारशलाका १२०।

$१२० \times २४ \times ७९०५६९४१५०$ पुष्करद्वीपका क्षेत्रफल । इत्यादि ।

अब केवल समुद्रोंका ही क्षेत्रफल निकालना चाहते हैं, इसलिए अपने अपने इष्ट
 समुद्रोंकी लवणसमुद्दप्रमाण गुणकारशलाकाओंके निकालनेका विधान कहते हैं—

लवणोदकसमुद्दसे कालोदकसमुद्द क्षेत्रफलकी अपेक्षा अट्टाईस गुणा है । उसे
 उत्पन्न करनेके लिए दो रूपको स्थापनकर प्रथमसमुद्दकी वृद्धि नहीं है, इसलिए एक रूप
 कमकर शेष एक रूपको धिरलन कर उसके ऊपर सोलह देकर परस्परमें गुणित करनेपर
 सोलह ही होते हैं । उन्हें दूना कर उनमेंसे चार कम कर देने पर कालोदकसमुद्दकी अट्टाईस
 गुणकारशलाकार्पं उत्पन्न होती है ।

खेत्तफले गुणिदे कालोदयसमुद्दस खेत्तफलं होदि । लवणसमुद्दादो पोक्खरसमुद्दो खेत्तगुणिदेण चत्तारिसदछण्णउदिमेत्तगुणो होदि । तम्हि गुगगारे आणिज्जमाणे तिणिण समुद्दा त्ति कड्डु रूवूणं करिय विरलिय रूवं पडि सोलस दादूण अण्णोण्ण-
न्भासे कदे वेसदछप्पणा हँति । ते दुगुणिय पुध डुविय पुणो पुच्चिल्ल-
विरलगमेव विरलिय रूवं पडि चत्तारि दादूण अण्णोण्णगुणं करिय उप्पण्णरासिं दुगुण-
रासीदो अवणिदे पोक्खरसमुद्दसस गुणगारसलागा हँति । तेहि लवणसमुद्दखेत्तफले गुणिदे
पोक्खरसमुद्दसस खेत्तफलं होदि । पुणो चउत्थसमुद्दो लवणसमुद्दं दड्डूणड्ढावीससदाहिय
अड्डसहससगुणो होदि । एदसस गुणगारसस उप्पत्ती वुच्चदे— चत्तारि रूवूणे करिय विर-
लिय रूवं पडि सोलस दादूण अण्णोण्णगुणे कदे छण्णउदिरूवाहियचत्तारिसहससाणि हँति ।
ते दुगुणिय पुध डुविय पुच्चिल्लविरलगरासिं विरलिय रूवं पडि चत्तारि दादूण अण्णोण-

उदाहरण—कालोदधि लवणसमुद्रसे दूसरा समुद्र है, अतः क्रमशलाका २.

$2 - 1 = 1;$ $1 = 16;$ $16 \times 2 - 8 = 24.$ कालोदकसमुद्रकी गुणकारशलाका.

कालोदकसमुद्रकी गुणकारशलाकाओं द्वारा लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करने पर कालोदकसमुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है । लवणसमुद्रकी अपेक्षा पुष्करसमुद्र क्षेत्रफलकी अपेक्षा चारसौ छयानवै गुणा है । उसका गुणकार निकालनेके लिए पुष्करसमुद्र तीसरा है, इसलिए तीनमेंसे एक कम करके शेष बचे दोका विरलनकर एक एक रूपके प्रति सोलह देकर परस्परमें गुणा करने पर दो सौ छयानवै होते हैं । उन्हें दुगुणा करके पृथक् स्थापित कर पुनः पहिलेके विरलनको ही विरलित कर प्रत्येक रूपके प्रति चार देकर और परस्परमें गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो उसे उसीकी दूसरी राशिमेंसे घटाने पर पुष्करसमुद्रकी गुणकारशलाकाएं होती है ।

उदाहरण—पुष्करसमुद्रकी क्रमशलाका ३.

$3 - 1 = 2;$ $1 = 16 \times 16;$ $1 = 256;$ $256 \times 2 = 512.$

8×8
विरलनराशि २; $1 = 16;$ $512 - 16 = 496$ पुष्करसमुद्रकी गुणकारशलाका.

इस गुणकारशलाकाओंसे लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करने पर पुष्करसमुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है । पुनः चौथा समुद्र लवणसमुद्रको देखते हुए आठ हजार एक सौ अट्ठाईस गुणा है । इस गुणकारकी उत्पत्ति कहते हैं—

चारमेंसे एक कम करके शेषको विरलनकर और प्रत्येक रूपके प्रति सोलह देकर परस्पर गुणा करनेपर चार हजार छयानवै होते हैं । उन्हें दुगुणाकर पृथक् स्थापनकर पहिलेकी विरलनराशिको विरलित कर रूपके प्रति चार देकर परस्पर गुणा करनेपर

गुणे कदे चउसट्टी उप्पज्जदि । पुणो पुच्चिल्लदुगुणिदरासिम्हि एदमवणिदे चउत्थसमुद्दस्स गुणगारसलागा होंति । एदाहि लवणसमुद्दखेत्तफले गुणिदे चउत्थसमुद्दखेत्तफलं होदि । एवमणेण वीजपदेण सब्बसमुद्धानं खेत्तफलमाणेदच्चं ।

तत्थ सब्बपच्छिमस्स सयंभूरमणसमुद्दस्स खेत्तफलाणयणं भण्णदे— दीव-सागर-रूवाणि अद्धिदे समुद्दसंखा होदि । ताओ समुद्दसलागाओ रूवूणाओ करिय विरलिय रूवं पडि सोलस दादूण अण्णोण्णम्भत्थे कदे जोयणलक्खवग्गेण छत्तीससदरूवाहिय-तिसहस्सपदुप्पणेण जगपदरम्हि भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । पुणो एदं दुगुणिय पुध द्दुविय पुच्चिल्लविरलणं विरलिय रूवं पडि चत्तारि दादूण अण्णोण्णम्भत्थे कदे छप्पणजोयणलक्खाए सेहिं खंडेदूण एगखंडमागच्छदि । तं पुच्चिल्लदुगुणिदरासिम्हि अवणिदे सयंभूरमणसमुद्दस्स गुणगारसलागा होंति । एदाहि लवणसमुद्दखेत्तफले गुणिदे

चौखठ संख्या उत्पन्न होती है । पुनः पहलेकी दुगुणित राशिमेंसे इस राशिको कमा देनेपर चौथे समुद्रकी गुणकारशलाकार्ण हो जाती हैं ।

उदाहरण—चतुर्थसमुद्रकी भूमशलाका ४;

$$४ - १ = ३; \quad \frac{१६ \times १६ \times १६}{१ \quad १ \quad १} = ४०९६; \quad ४०९६ \times २ = ८१९२;$$

$$\frac{४ \times ४ \times ४}{१ \quad १ \quad १} = ६४; \quad ८१९२ - ६४ = ८१२८ \text{ चतुर्थ समुद्रकी गुणकारशलाका.}$$

इस गुणकारशलाकाओंसे लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करनेपर चौथे समुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है । इस प्रकार इस उक्त वीजपदसे सभी समुद्रोंका क्षेत्रफल निकालना चाहिए ।

उनमें सबसे अन्तिम जो स्वयंभूरमणसमुद्र है, उसके क्षेत्रफलको निकालनेका विधान कहते हैं—सर्वद्वीप और समुद्रोंकी जितनी संख्या है, उसे आधा करने पर सर्व समुद्रोंकी संख्या हो जाती है । उन समुद्रशलाकाओंको एक कम करके विरलनकर और प्रत्येक रूपके प्रति सोलह देकर आपसमें गुणा करने पर तीन हजार एक सौ छत्तीससे गुणित एक लाख योजनके वर्गसे जगप्रतरमें भाग देने पर एक भाग आता है । पुनः इसे दूना करके पृथक् स्थापित कर पहलेके विरलनको विरलितकर प्रत्येक रूपके प्रति चार देकर आपसमें गुणा करने पर छापन लाख योजनके प्रमाणसे जगश्रेणीको खंडित करनेपर एक खंड आ जाता है । उसे पहले दूनी की गई राशिमेंसे घटा देनेपर स्वयंभूरमण समुद्रकी गुणकारशलाकार्ण हो जाती हैं ।

सयंभूरमणसमुद्रस खेत्तफलं जगपदरस्स वासीदिभागो सादिरेगो होदि' । एत्थ करणगाहा—

सोलह सोलसहिं गुणे रूवूणोवहिसलागसंखा ति ।

दुगुणग्धि तग्धि सोहे चउक्कपहदं चउक्कं तु ॥ ६ ॥

संपदि सव्वसमुद्दणं खेत्तफलसंकलणा वुच्चदे—लवणसमुद्दस्स एगा गुणगारसलागा, कालोदयसमुद्दस्स अट्ठावीस । एदेसिं संकलणमाणिज्जमाणे ' रूपोनमादिसंगुणमेकोनगुणो-
न्मथितमिच्छा' एदेण अज्जाखंडेण आणेदव्वं । एगमादिं कादूण सोलसगुणकमेण गदा ति

इन शलाकाओंसे लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणित करनेपर स्वयंभूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल जगप्रतरका साधिक व्यासीवां भाग आता है । इस विषयमें करणगाथा इस प्रकार है—

विवक्षित समुद्रकी क्रमशलाकाकी संख्यामेंसे एक कम करके शेष संख्याके प्रमाण सोलहको सोलहसे गुणाकर उपलब्ध राशिको दूना कर दे और विरलन राशिप्रमाण चारको चारसे गुणाकर लब्धको उस द्विगुणित राशिमेंसे घटा देनेपर विवक्षित समुद्रकी गुणकार-
शलाकाएं आ जाती हैं ॥ ६ ॥

उदाहरण — सर्वद्वीप-समुद्रोंकी संख्या = २अ; सर्वसमुद्रोंकी संख्या $\frac{२अ}{२} = अ$

$$१६^अ - १ = \frac{२७^३ (जगप्रतर)}{१००००० \times ३१३६} = ब; ब \times २ = २ ब;$$

$$४^अ - १ = \frac{२७}{५२०००००} = स; २ ब - स = स्वयंभूरमणसमुद्रकी गुणकारशलाका$$

$$(२ ब - स) \times ल. का क्षेत्रफल = स्वयंभूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल = \frac{२७^३}{८२}$$

अब सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफलका संकलन कहते हैं—लवणसमुद्रकी गुणकारशलाका एक है, कालोदकसमुद्रकी गुणकारशलाकाएं अट्ठाईस हैं । इनका संकलन लानेके लिए उक्त प्रकारसे प्राप्त शलाकाओंमेंसे ' एक कम करके शेषको आदिसे गुणा करे और पुनः एक कम गुणकार-
शलाकाका भाग देनेसे इच्छित राशि उत्पन्न हो जाती है ' इस आर्याखंडसे इच्छित संकलन ले आना चाहिए । चूंकि एकको आदि लेकर सोलह गुणितक्रमसे राशि बढ़ी है, इसलिए दो

१ सयंभूरमणसमुद्रस खेत्तफलं जगसेटीए वग्गं पवरूवेहिं गुणिय सतसदचउसीदिरूवेहिं भजिदमेत्तं पुणो
एककलक्ख बारससइस्सपचेसयजोयणेहिं गुणिदरज्जूए अब्महिंयं होदि । ति. प. पत्र १७१.

कट्टु दो रूवे ठविय' अद्विय पुधं ठविय उवरि एगरूवं दादवं । पुणो तं सोलसेहि गुणिय 'रूपेषु गुणमर्थेषु वर्गणं' एदेण अज्जाखंडेण लद्धविसदछप्पण्णेषु रूवूणेषु आदि-संगुणेषु रूवूणगुणगारेण मज्जिदेसु जं लद्धं तं दुगुणिय पंच अवाणिदे पक्खे सलागसंकलणा होदि । कधं पंच समुप्पणा ? पुच्चपक्खित्तएगादिचदुगुणकमेण गदरासिं मेलाविदे अवणयणरासी आगच्छदि । एदाहि पुच्चसंकलणसलागाहि लवणसमुद्दखेत्तफलं गुणिदे लवण-कालोदयसमुद्दाणं खेत्तफलं होदि । तिण्हं समुद्दाणं खेत्तफलसंकलणा बुच्चदे—तिसु रूवेषु एगरूवमवणिय पुधं ड्विय सेसमद्विय रूवस्सुवरि वर्गणं ठविय तस्सुवरि रूवं ठविय हेट्ठिम उवरिमरूवाणि सोलसेहि गुणिय 'रूपेषु गुणमर्थेषु वर्गणं' एदेण अज्जा-

रूपोंको स्थापितकर आधा करके पृथक् स्थापितकर ऊपर एक रूप दे देना चाहिए । पुनः उसे सोलहसे गुणितकर 'रूपोंमें गुणा और अर्थोंमें वर्गणा' इस आर्याखंडसे प्राप्त दोसौ छप्पन रूपोंमेंसे एक कम कर आदिसे संगुणित करनेपर तथा एक कम गुणकारसे भाग देनेपर जो राशि लब्ध हो उसे दुगुनाकर उसमेंसे पांच घटा देनेपर एक पक्षमें अर्थात् केवल समुद्रोंसम्बन्धी शलाकाओंकी संकलना हो जाती है ।

उदाहरण—लवणोदक और कालोदककी गुणकारशलाकाओंका संकलन—

कालोदककी शलाका २; १×१६ ; १×१६ ; $१६ \times १६ = २५६$;

$$\left(\frac{२५६ - १}{१६ - १} \right) = \frac{२५५}{१५} = १७; १७ \times २ = ३४; ३४ - ५ = २९$$

शंका—यहांपर पांच कैसे उत्पन्न हुए ?

समाधान—पूर्वोक्त एकको आदि लेकर चतुर्गुणितक्रमसे वृद्धिगत राशिको मिला देनेपर अपनयनराशि आ जाती है ।

उदाहरण—पांचकी उत्पत्ति— $१+४=५$ अपनयनराशि (दो समुद्रोंकी अपनयनशलाका) ।

इन पूर्वोक्त संकलनशलाकाओंसे लवणसमुद्रसम्बन्धी क्षेत्रफलको गुणित करने पर लवणसमुद्र और कालोदकसमुद्र, इन दोनोंका क्षेत्रफल हो जाता है ।

उदाहरण—लवणसमुद्रका क्षेत्रफल— ७९०५६९४१५०×२४ ;

लवणोदक और कालोदककी संकलित गुणकारशलाका २९;

$७९०५६९४१५० \times २४ \times २९$ लवणोदक और कालोदकका संकलित क्षेत्रफल.

अब तीन समुद्रोंके क्षेत्रफलका संकलन कहते हैं—तीन रूपोंमेंसे एक रूपको घटाकर उसे पृथक् स्थापित करे । पुनः शेषको आधा कर रूपके ऊपर वर्गणराशिको स्थापितकर और उसके ऊपर रूपको स्थापितकर अधस्तन और उपरिम रूपोंको सोलहसे गुणाकर

१ प्रतिषु ' विय ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' वृणं ' इति पाठः ।

खंडेण लद्धा चारि सहस्सा छण्णउदी । ' रूपोनमादिसंगुणमेकोनगुणोन्मथितमिच्छा ' एदेण अज्जाखंडेण लद्धाणि वे सदाणि तेहत्तराणि, एदाणि दुगुणिय एक्कावीसमवणिदे गुणकारसलाकासंकलणा होदि । कथमेक्कावीसस्स उप्पत्ती ? एजरूवं विरलिय चत्तारि दादूण अण्णोण्णबभत्थं करिय पंचहि गुणिय एगादिचदुगुणसंकलणं पक्खित्ते अवणयणसलागपमाणं एक्कावीसं होदि । एत्थ करणगाथा —

इद्वसलागाखुत्तो चत्तारि परोप्परेण संगुणिय ।

पंचगुणे खित्त्वा एगादिचदुगुणा संकलणा ॥ ७ ॥

एत्थ सव्वत्थ दुरूवणगच्छं विरलेदव्वं ५ । २१ । ८५ । ३४१ । १३६५ । ५४६१ । एदाओ अवणयणधुवरासीओ अणंतरहेट्ठिमं चदुहि गुणिय रूवं पक्खित्ते उप्पज्जंति जाव

' रूपोंमें गुणा और अर्थोंमें वर्गणा ' इस आर्याखंडसे चार हजार छयानवै (४०९६) संख्या प्राप्त होती है । पुनः उक्त प्रकारसे प्राप्त शलाकाओंमेंसे ' एक कम करके शेषको आदिसे गुणा करे, पुनः एक कम गुणकारशलाकाका भाग दे, तो इष्टराशि उत्पन्न हो जाती है ' इस आर्याखंडके अनुसार दो सौ तेहत्तर (२७३) संख्या प्राप्त होती है । इस संख्याको दूनाकर उसमेंसे इक्कीस घटा देनेपर गुणकारशलाकाओंका संकलन हो जाता है ।

उदाहरण—प्रथम तीन समुद्रोंका संकलन— शलाका ३;

$$१ \times १६$$

$$१ \times १६$$

$$१ \times १६;$$

$$१६ \times १६ \times १६ = ४०९६;$$

$$\frac{४०९६ - १}{१६ - १} = \frac{४०९५}{१५} = २७३;$$

$$२७३ \times २ = ५४६; ५४६ - २१ = ५२५$$

तीन समुद्रोंकी संकलित गुणकारशलाका ।

शंका—यहाँपर घटाई जानेवाली इक्कीस संख्याकी उत्पत्ति कैसे हुई ?

समाधान—एकरूपको विरलित कर उसके ऊपर चारको देयरूपसे देकर अन्योन्याभ्यास करके उसे पांचसे गुणाकर एक आदि चतुर्गुणसंकलनको प्रक्षेप करने पर अपनयन-शलाकाका प्रमाण इक्कीस हो जाता है ।

उदाहरण—२१ की उत्पत्ति— $३ - २ = १; १ = ४; ४ \times ५ = २०; २० + १ = २१$

तीन समुद्रोंकी अपनयनशलाका.

इस विषयमें यह करणगाथा है—

इष्ट शलाकाराशिका जो प्रमाण हो उतने चार चारको रखकर परस्परमें गुणा करे, पुनः उसे पांचसे गुणा करे और फिर एक आदि चतुर्गुणसंकलनराशिको प्रक्षेप करना चाहिए । ऐसा करनेपर अपनयनराशिका प्रमाण आ जाता है ॥ ७ ॥

यहाँपर सर्वत्र दो रूप कम गच्छराशिका विरलन करना चाहिए । ५, २१, ८५, ३४१, १३६५, ५४६१, ये घटाई जाने वाली ध्रुवराशियां अनन्तर अद्यस्तन राशिको चारसे गुणाकर

संयंभूरमणसमुद्रो त्ति । संपदि संयंभूरमणसमुद्रविरहिदसव्वसमुद्रखेत्तफलाणयणविधानं
 बुच्चदे— दीव-सायररूवाणं अद्धं रूवूणं विरलिय रूवं पडि वेणिण दादूण अण्णोण्णभासे
 कदे चोद्दसगुणित्तजोयणलक्खमूलेण खंडिदसेठीए वग्गमूलस्स अद्धमामच्छदि । अध
 पुव्वविरलणाए रूवं पडि जदि चत्तारि रूवाणि दादूण अण्णोण्णभासो कीरदे, तो चोद्दस-
 गुणजोयणलक्खेण खंडिदे सेठीए चदुभागो आगच्छदि । अध रूवं पडि सोलस दादूण
 अण्णोण्णभासो कीरदि, तो जोयणलक्खवग्गेण तिसहस्सच्छत्तीससदरूवगुणित्तेण जगपदरम्मिह
 भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । पुणो तं रूवूणं करिय एगेण आदिणा गुणिय पण्णारस-

और उनमें एक प्रक्षेप करनेपर उत्पन्न होती हैं, और इसी क्रमसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक
 उत्पन्न होती हुई चली जाती हैं ।

उदाहरण—(१) $४ - २ = २$; $४ \times ४ = १६$; $१६ \times ५ + ५ = ८५$ चार स.
 $१ \quad १$
 (२) $५ - २ = ३$; $४ \times ४ \times ४ = ६४$; $६४ \times ५ + २१ = ३४१$ पांच स.
 $१ \quad १ \quad १$
 (३) $६ - २ = ४$; $४ \times ४ \times ४ \times ४ = २५६$; $२५६ \times ५ + ८५ = १३६५$ छह स.
 $१ \quad १ \quad १ \quad १$
 (४) $७ - २ = ५$; $४ \times ४ \times ४ \times ४ \times ४ = १०२४$; $१०२४ \times ५ + ३४१ = ५४६१$ सात स.
 $१ \quad १ \quad १ \quad १ \quad १$ इत्यादि.

अब स्वयम्भूरमणसमुद्रको छोड़कर शेष सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफल निकालनेका विधान
 कहते हैं— द्वीप और समुद्रोंकी त्रितनी संख्या है उसे आधाकर उसमेंसे एक घटावे । पुनः
 शेष राशिका विरलनकर प्रत्येक रूपके प्रति देयरूपसे दो को देकर परस्पर गुणा करनेपर
 चतुर्विंश-गुणित लक्ष योजनके वर्गमूलसे खंडित जगश्रेणीके वर्गमूलका आधा प्रमाण आता
 है । अब यदि पूर्व विरलनराशिमें प्रत्येक रूपके प्रति चार रूपोंको देयरूपसे देकर परस्पर
 गुणा किया जाता है, तो चतुर्विंश-गुणित लक्ष योजनसे खंडित जगश्रेणीका चौथा भाग आता
 है । और यदि उसी विरलनराशिमें प्रत्येक रूपके प्रति सोलहको देयरूपसे देकर परस्पर
 गुणा किया जाता है तो तीन हजार एक सौ छत्तीस (३१३६) रूपोंसे गुणित लक्ष योजनके
 वर्गसे भाजित जगप्रतरका एक भाग आता है ।

उदाहरण—(१) $\frac{२अ}{२} = अ$; $२^{अ-१} = \frac{\sqrt{२७}}{२} = \frac{२७}{\sqrt{१४००००००}} \text{ यो.}$

(२) $४^{अ-१} = \frac{\frac{२७}{४}}{१४०००००० \text{ यो.}}$

(३) $१६^{अ-१} = \frac{२७^३}{१०००००^३ \times ३१३६}$

रूवेहि भागे हिदे जोयणलक्खवग्गेण चालीसाहियसत्तेतालसहस्सरुवगुणिदेण जगपदरम्हि
भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । एदं दुगुणिय सेढिअसंखेज्जदिभागमेत्तमवणयणरासि
पुब्बिल्लकरणगाहाए आणिदमवणिय लवणसमुद्दखेत्तफलेण गुणिदे सयंभूरमणविरहिद-
समुद्दाणं खेत्तफलं होदि । तं केत्तियमिदि भणिदे एगूणचालीसाहियवारससदरूवेहि जग-
पदरम्हि भागे हिदे एगभागपमाणं होदि । तत्थ मूलिल्लदोसमुद्दखेत्तफलं संखेज्ज-
जोयणपदरमेत्तमवणिय रज्जुपदरम्हि अवणिदे एकवंचासरूवेहि सादिरेगेहि जगपदरम्हि
खंडिदे एगखंडो आगच्छदि । तं संखेज्जसूचिअंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदि-

पुनः उक्ते, अर्थात् १६ के गुणितक्रमसे उपलब्ध राशिको, एक कम करके आवि
स्थानवर्ती एकसे गुणितकर, पन्द्रह रूपोंसे भाग देनेपर चालीस अधिक सैंतालीस हजार
अर्थात् सैंतालीस हजार चालीस (४७०४०) रूपोंसे गुणित लक्ष योजनके वर्गसे भाजित
जगप्रतरका एक भाग आता है ।

$$\text{उदाहरण—१} \left(\frac{२७^१}{१०००००^१ \times ३१३६} - १ \right) = \frac{२७^१}{१६ - १} = \frac{२७^१}{१०००००^१ \times ४७०४०}$$

इस प्रमाणको दुगुणाकर उसमेंसे पूर्वोक्त करणगाथासे निकाली हुई जगश्रेणीके
असंख्यातर्षे भागप्रमाण अपनयनराशिको घटाकर लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे गुणा करनेपर
स्वयम्भूरमणसमुद्रसे रहित शेष समस्त समुद्रोंका क्षेत्रफल हो जाता है । वह क्षेत्रफल
कितना होता है, ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हैं कि वह उनतालीस अधिक बारह सौ अर्थात्
बारहसौ उनतालीस (१२३९) रूपोंसे भाजित जगप्रतरका एक भाग प्रमाण होता है ।

उदाहरण— $\left\{ २ \left(\frac{२७^१}{१०००००^१ \times ४७०४०} \right) - \frac{२७}{अ} \right\} \times ल = \frac{२७^१}{१२३९}$ स्वयम्भूरमणको
छोड़ शेष समुद्रोंका क्षेत्रफल.

(इसी प्रमाणको उत्पन्न करनेकी प्रक्रियाके विस्तारके लिये देखो गोमटसार
जीवकांड सं. टीका व द्विंशी अनुवाद गाथा ५४७, पृ. ९६४ आदि.)

स्वयम्भूरमणसमुद्रसे रहित शेष समुद्रोंके उक्त क्षेत्रफलमेंसे मूल अर्थात् आविके
लवणोदधि और कालोदधि इन दो समुद्रोंके प्रतरात्मक संख्यात योजनप्रमाण क्षेत्रफलको
घटाकर पुनः शेष राशिको प्रतरात्मक राजुके प्रमाणमेंसे घटा देनेपर साधिक इकावन रूपोंसे
जगप्रतरके खंडित करनेपर एक खंड आ जाता है ।

$$\text{उदाहरण—} १^१ - \left(\frac{२७^१}{१२३९} - २९ ल \right) = \frac{२७^१}{५१} \text{ (कुछ अधिक)} \text{ तिर्यग्लोकका संख्यातर्षां}$$

भाग तिर्यच सासादन जीवोंका स्वस्थानक्षेत्र.

भागमेत्तं तिरिक्खसासणसत्थाणखेत्तं होदि । सेसपदसासणसम्मादिट्ठीहि सव्वे दीव-समुदा पुव्ववेरियदेवसंबंधेण पुसिज्जंति त्ति कट्ठु जोयणलक्खवाहल्लं तप्पाओग्गवाहल्लं वा रज्जु-पदरमुद्धुमेगूणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण इइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । ' वा ' सहस्स अत्थो गदो ।

मारणंतियसमुग्घादग्घेहि सत्त चोहसभागा देसुणा पोसिदा । तिरिक्खसासणा मेरुमूलादो हेट्ठा किण्ण मारणंतियं करेति त्ति बुत्ते णेरइएसु किण्ण उप्पज्जंति ? सभावदो । जदि एवं, तो हेट्ठा सभावदो चेत्र मारणंतियं ण मेलंति त्ति किण्ण घेप्पदे ? जदि सासण-सम्मादिट्ठिणो हेट्ठा ण मारणंतियं मेलंति, तो तेसिं भवणवासियदेवेषु मेरुतलादो हेट्ठा ट्ठिदेसु उप्पत्ती ण पावदि त्ति बुत्ते ण एस दोसो, मेरुतलादो हेट्ठा सासणसम्मादिट्ठीणं मारणंतियं णत्थि त्ति एदं सामण्णवयणं । विसेसदो पुग भण्णमाणे णेरइएसु हेट्ठिम-

उक्त एक खंडको तिर्यंचोंके अवगाहनासम्बन्धी संख्यात सूच्यंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यंग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है। चूंकि, विहारवत्स्वस्थानादि शेष पदस्थित तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा समस्त द्वीप और समुद्र पूर्वभवके वैरी देवोंके सम्बन्धसे स्पर्श किये गये हैं, इसलिए लक्ष योजन बाह्यवाले अथवा तत्प्रायोग्य बाह्यवाले राजुपत्रके ऊपरकी ओरसे उनंचास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यंग्लोकका संख्यातवां भाग हो जाता है। इसप्रकारसे यह सूत्रपठित ' वा ' शब्दका अर्थ हुआ।

मारणान्तिकसमुद्धातको प्राप्त तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंने कुछ कम सात बड़े चौदह (३४) भाग स्पर्श किये हैं।

शंका— तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सुमेरुपर्वतके मूलभागसे नीचे मारणा-न्तिकसमुद्धात क्यों नहीं करते हैं ?

प्रतिशंका— यदि ऐसी शंका करते हैं, तो आप ही बताइए कि तिर्यंच सासादन-सम्यग्दृष्टि जीव नारकियोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान— वे नारकियोंमें स्वभावसे ही उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्रतिसमाधान— यदि ऐसा है तो सुमेरुपर्वतके मूलभागसे नीचे भी वे स्वभावसे मारणान्तिकसमुद्धात नहीं करते हैं, ऐसा क्यों नहीं स्वीकार कर लेते हैं ?

शंका— यदि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मेरुतलसे नीचे मारणान्तिकसमुद्धात नहीं करते हैं तो मेरुतलसे नीचे स्थित भवनवासी देवोंमें उनकी उत्पात्ति भी नहीं प्राप्त होती है ?

समाधान— उक्त शंकापर भ्रवलाकार उत्तर देते हैं कि, यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, ' मेरुतलसे नीचे सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका मारणान्तिकसमुद्धात नहीं होता है ' यह सामान्य अर्थात् द्रव्यार्थिकनयका वचन है। किन्तु विशेष अर्थात् पर्यायार्थिकनयकी

एहंदिएसु वाण मारणंतियं मेलंति त्ति एस परमत्थो । कधमेत्थ देसुणत्तं ? ण ताव हेड्डिम-
जोयणसहस्सेण ऊणा सत्त चोद्दसभागा, तिरिक्खसासणेहि भवणवासिएसु मारणंतियं
मेल्लमाणेहि तस्स वि छुवणसंभवोवलंभादो । मेरुमूलादो हेड्डा देसुणजोयणलक्खं फुसंताणं
सासादणाणं सत्त-चोद्दसभागेहि सादिरेगेहि होद्व्वभिदि ? ण एस दोसो, छमग्गं पयड्डेहि
पडिणिययउत्पत्तिट्ठाणेहि तसजीवेहि गिरंतरं ण सत्त रज्जू फुमिज्जंति, तथा संभवासंभवा ।
सो वि कधं णव्वदे ? देसुणवयणणहाणुव्वत्तीदो । उव्वदादस्स एकारह चोद्दसभागा पोसिदा
त्ति वत्तव्वं । सुत्ते अउत्तं कधमेदं णव्वदे ? कम्मइयकायजोगिसासणाणमेकारह-चोद्दस-

विवशाले कथन करने पर तो वे नारकियोंमें अथवा मेरुतलसे अधोभागवर्ती एकेन्द्रियजीवोंमें
मारणान्तिकसमुद्धात नहीं करते हैं, यही परमार्थ है ।

शंका—यहांपर अर्थात् मारणान्तिकसमुद्धातगत सासादनसम्यग्दृष्टियोंके क्षेत्रमें
देशोनता अर्थात् कुछ कम सात बटे चौदह भागका कथन कैसे किया, क्योंकि, मेरुतलके
अधोभागवर्ती एक हजार योजनसे कम सात बटे चौदह (१४) भाग तो माने नहीं जा
सकते । इसका कारण यह है कि भवनवासियोंमें मारणान्तिकसमुद्धातको करनेवाले तिर्यंच
सासादनसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा उसके भी छुए जानेकी संभावना पाई जाती है । इसलिए मेरु-
तलसे नीचे कुछ कम एक लक्ष योजन प्रमाण क्षेत्रको स्पर्श करनेवाले तिर्यंच सासादन-
सम्यग्दृष्टियोंका मारणान्तिक स्पर्शनक्षेत्र साधिक सात बटे चौदह (१४) भाग होना
चाहिए, न कि देशोन सात बटे चौदह भाग ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं । इसका कारण यह है कि छहों मार्गोंको प्रवृत्त,
अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व और अधोदिशा सम्बन्धी छहों मार्गोंसे जानेवाले,
एवं प्रतिनियत उत्पत्ति स्थानवाले ब्रह्मजीवोंके द्वारा निरन्तर सात राजु स्पर्श नहीं किये
जाते हैं, क्योंकि, उस प्रकारकी संभावनाका अभाव है ।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—‘देशोन’ वचनकी अन्यथा अनुपपत्तिसे । अर्थात् यदि मारणान्तिक-
समुद्धात करनेवाले ब्रह्मजीवोंके द्वारा निरन्तर सात राजु प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया जाता, तो
सूत्रमें ‘देशोन’ यह वचन नहीं दिया जाता । इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि
मारणान्तिकसमुद्धात करनेवाले ब्रह्मजीवोंके द्वारा सात राजुके स्पर्श किये जानेकी निरन्तर
संभावना नहीं है ।

उपपदपदको प्राप्त तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंने ग्यारह बटे चौदह (१४) भाग
स्पर्श किये हैं, ऐसा कहना चाहिए ।

शंका—सूत्रमें नहीं कही गई यह बात कैसे जानी जाती है ?

भागपोसणपरुवयसुत्तादो', खुदाबंधम्मि उववादपरिणयसासणाणमेक्कारह-चोइसभाग-पोसणपरुवयसुत्तादो च णव्वदे । एत्थ महंते उववादपोसणखेत्ते संते मारणंतियफोसणमेव किमडुं परुविदं ? ण', एत्थ उववादविवक्खाए अभावादो । तदविवक्खा किण्णिबंधणा', सासणाणमेइंदियसु अणुप्पज्जमाणणं तत्थ मारणंतियविहाणणिवंधणा । तेण उववादस्स एक्कारह चोइसभागा फोसणमुवलब्भदे ।

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असंखे-ज्जदिभागो ॥ २६ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणकाले सव्वपदपरुवणाए खेतभंगो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियपदट्टिदसम्मामिच्छादिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु तिण्हं

समाधान—कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके ग्यारह बटे चौदह (११) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपक आगे कहे जानेवाले इसी स्पर्शनप्ररूपणके सूत्रसे, तथा खुदा-बंधमें कहे गये उपपादपरिणत सासादनसम्यग्दृष्टियोंके ग्यारह बटे चौदह (११) भागप्रमाण स्पर्शन करनेकी प्ररूपणा करनेवाले सूत्रसे जाना जाता है कि उपपादपदको प्राप्त तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टियोंने ग्यारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ।

शंका—उक्त प्रकारसे इतना अधिक उपपादपदका स्पर्शनक्षेत्र होते हुए भी यहां पर मारणाभितक स्पर्शनक्षेत्र ही किसलिये प्ररूपण किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यहां पर उपपादपदकी विवक्षाका अभाव है ।

शंका—उपपादपदकी विवक्षा न होनेका क्या कारण है ?

समाधान—उपपादपदकी विवक्षा न होनेका कारण एकेन्द्रियोंमें नहीं उत्पन्न होने वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका उनमें मारणाभितकसमुद्घातका विधान है । अर्थात् सासा-दनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं, फिर भी वे उनमें मारणाभितकसमुद्घात करते हैं । इसलिए यहां पर उपपादकी विवक्षा नहीं की गई, और इसीलिए उपपादपदका ग्यारह बटे चौदह (११) भाग प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र प्राप्त हो जाता है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यचोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २६ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालमें स्वस्थानादि सर्व पदसम्बन्धी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कसाय और वैकियिकसमुद्घात, इन पांच पदोंवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यचोंने भूत और भविष्य इन दोनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यलोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे

१ कम्मइयकायजोगीसु × × सासणसम्मामिच्छादिट्ठीहि × × एक्कारह चोइसभागा देवणा । जी. फो. १६-१८.

२ स प्रती ' ण ' इति पाठो नास्ति ।

३ प्रतिषु ' किण्णबंधणा ' इति पाठः ।

४ सम्यग्मिथ्यादृष्टिमिलोकस्यासंख्येयभागः । स. वि. १, ८.

लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाहज्जादो असंखेज्जगुणो ।
एत्थ पज्जवट्ठियपरुवणा सासणपरुवणाए तुल्ला ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स
असंखेज्जदिभागो ॥ २७ ॥

तिरिखगदीए तिरिखेसु त्ति महाधिकारो अणुवट्ठे । एदं सुत्तं वट्ठमाणकाल-
विसिद्धअसंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदखेत्तं जदो परुवेदि, तदो एदस्स परुवणाए खेत्तं भंगो ।

छ चौदसभागा वा देसूणा ॥ २८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिहि सत्थाणपदे वट्ठमाणेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाहज्जादो असंखेज्जगुणो अदीदकाले पोसिदो । एदे
असंजदसम्मादिट्ठिणो सत्थाणपदे सव्वदीवेषु होंति, लवण-कालोदय-सयंभूरमणसमुदेषु
च । तम्हा सेससमुदखेत्तूणरज्जुपदरं एत्थ सत्थाणखेत्तं होदि । एदस्साणयणविधानं पुञ्चं व
कादव्वं । विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदेषु वट्ठता अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-

असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहाँपर पर्यायार्थिकनयकी स्पर्शनप्ररूपणा सासादन-
गुणस्थानकी स्पर्शनप्ररूपणाके तुल्य जानना चाहिए ।

असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानवर्ती तिर्यचोने कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २७ ॥

‘तिर्यचगतिमें तिर्यचोमें’ इस महाधिकारकी यहाँपर अनुवृत्ति होती है । चूंकि यह
सूत्र वर्तमानकालविशिष्ट असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यचोके स्पर्शनक्षेत्रका प्ररूपण
करता है, इसलिए इसकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान ही है ।

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती तिर्यच जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा
कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २८ ॥

स्वस्थानपदपर वर्तमान असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोने सामान्यलोक आदि तीन
लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणा
क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है । ये असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच स्वस्थानस्वस्थानपदपर सर्व
द्वीपोंमें होते हैं, तथा लवणसमुद्र, कालोदकसमुद्र और स्वयम्भूरमणसमुद्रमें भी होते हैं ।
इसलिए शेष समुद्रोंके क्षेत्रसे हीन राजुप्रतर यहाँपर स्वस्थानक्षेत्र होता है । इसके
निकालनेका विधान पूर्वके समान ही करना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय
और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंपर वर्तमान जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन

१ असंयतसम्यग्दृष्टिभिः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि. १, ८.

भागं, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागं, अड्ढाज्जदादो असंखेज्जगुणं फुसंति । कुदो ? पुव्व-
वेरियदेवपयोगदो जोयणलक्खवाहल्लं संखेज्जजोयणवाहल्लं वा रज्जुपदरं सव्वमदीदकाले
फुसंति त्ति । मारणंतियपदे वड्ढमाणेहि छ चोदसभागा देसूणा पेसिदा । कुदो ? अच्चुद-
कप्पादो उवरि तेसिमुप्पत्तीए अभावादो तत्थ गमणाभावा । ण च उप्पत्तिखेत्तमुल्लंघिय
गमणं संभवदि, अइप्पसंगा । उवरि णवगेवज्जेसु मिच्छादिट्ठिणो जदि उप्पज्जंति, तो
असंजदसम्मादिट्ठिणं संजदासंजदाणं च उप्पत्ती किमिदि ण होज्ज ? मिच्छादिट्ठिणो दव्व-
लिंगेण उप्पज्जंति चे, एदे वि दव्वलिंगेण चेव उप्पज्जंतु, ण कोवि दोसो । उप्पज्जंतु चे,
ण, खेत्तस्स देसूणसत्तं-चोदसभागत्तप्पसंगादो ? ण एस दोसो, जदि वि णवगेवज्जेसु
दव्वलिंगिणो असंजदसम्मादिट्ठि संजदासंजदा च उप्पज्जंति, तो वि सत्त चोदसभागा ण
होंति, माणुसखेत्तादो चेव तत्थुप्पत्तीदो । उववाद्गदेहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणम-

लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अदार्शद्वीपसे असंख्यातगुणा
क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, पूर्वभक्तके वैरी देवोंके प्रयोगसे एक लाख योजन बाहल्यवाला
अथवा संख्यात योजन बाहल्यवाला राजुप्रतररूप सर्वक्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है ।
मारणान्तिकसमुद्घातपदपर वर्तमान जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह भाग (६४) स्पर्श किये
हैं, क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर उनकी उत्पत्तिका अभाव होनेसे वहांपर गमनका अभाव
है । और, उत्पत्तिक्षेत्रको उलंघन करके गमन संभव नहीं है, अन्यथा अतिप्रसंग दोष प्राप्त
हो जायगा ।

शंका—अच्युतकल्पसे ऊपर यदि नवग्रैवेयकोंमें मिथ्यादृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं,
तो असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यचोंकी उत्पत्ति क्यों नहीं होना चाहिए ? यदि कहा
जाय कि मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्यलिंगसे उत्पन्न होते हैं, तो ये भी द्रव्यलिंगसे ही उत्पन्न होंगे,
इसमें कोई दोष नहीं है । यदि कहा जाय कि वे नवग्रैवेयकोंमें उत्पन्न होंगे, सो ऐसा भी
नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि, फिर स्पर्शनक्षेत्रके देशोंन सात बटे चौदह (६४) भाग
प्रमाण होनेका प्रसंग प्राप्त होगा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यद्यपि नवग्रैवेयकोंमें द्रव्यलिंगी मिथ्या-
दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव उत्पन्न होते हैं, तो भी सात बटे चौदह
(६४) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, उन नवग्रैवेयकोंमें मनुष्यक्षेत्रसे ही
उत्पत्ति होती है । अर्थात् उनमें मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं, तिर्यच नहीं ।

उपपाद्गत असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती तिर्यच जीवोंने अतीतकालमें सामान्य-

१ प्रतिशु ' तस्स ' इति पाठः ।

२ परतिरिय देस-अयदा उक्कस्सेणच्चुदो सि णिगांथा । णर अयद-देस-मिच्छा गेवेज्जंतो त्ति गच्छंति ॥
त्रि. सा. ५४५.

संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । तं जहा— तिरिक्खेसु तिरिक्ख-देव-णेरइयसम्मादिट्ठिणो ण उप्पज्जंति त्ति । कुदो? सहावादो । मणुसखइयसम्मादिट्ठिणो चैव उप्पज्जंति, पुवं मिच्छत्तसंसिदेहि बद्धतिरिक्खाउत्तादो । ते वि भोगभूमीसु चैव उप्पज्जंति, दाणादिसयलदसधम्मे विज्जमाणाणुमोदादो । तेण सयंपहपव्वदोवरिमभागो सव्वो चैव उववादपरिणदसम्मादिट्ठीहि पुसज्जदि त्ति तस्साणयण-विधाणं वुच्चदे— सयंपहपव्वदादो परभागो दोहि वि पासेहि रज्जुपंचडुभागो रज्जूए तप्पाओग्गा संखेज्जा भागा वा होंति । तेषु रज्जुविकखंभम्हि फेडिदेसु अवसेसा तिण्णि अड्डभागो रज्जूए संखेज्जदिभागो वा होदि । एदेण विकखंभायामेण ट्ठिदसम्मादिट्ठि-उववादखेत्तं—

विकखंभवग्गदसगुणकरणी वट्टस्स परिट्ठो होदि ।

विकखंभवउवभागो परिठयगुणियो हवे गणिदं ॥ ८ ॥

एदीए गाहाए पदरागारेण कदे जगपदरं अट्टसत्तावण्णभागवमहियचालीसोत्तर-चदुहि सदेहि खंडिद-एयभागो सादिरेगो आगच्छदि, तप्पाओग्गसंखेज्जरूवेहि छिण्णेग-

लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईखीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वह इस प्रकारसे है— तिर्यचोंमें तिर्यच, देव अथवा नारकी सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है । केवल क्षायिक-सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, उन्होंने पूर्वमें मिथ्यात्वसे संसिक्त परिणामोंके द्वारा तिर्यच आयुको बांध लिया है । सो वे भी जीव भोगभूमिके तिर्यचोंमें ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, सम्यग्दृष्टियोंकी दान आदि समस्त दश धर्मोंमें अनुमोदना विद्यमान रहती ही है । इसलिये स्वयंप्रभ पर्वतका उपरिम सर्व भाग उपपादपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच जीवोंके द्वारा स्पर्श किया गया है, अतः उसके निकालनेके विधानको कहते हैं—

स्वयंप्रभ पर्वतसे परभागवतीं क्षेत्र दोनों ही पार्श्वोंसे राजुके पांच बटे आठ ($\frac{5}{8}$) भाग अथवा राजुके तत्प्रायोग्य संख्यात बहुभाग प्रमाण होता है । उन भागोंको राजुके विष्कम्भमेंसे घटा देनेपर तीन बटे आठ ($\frac{3}{8}$) भाग अवशेष क्षेत्र अथवा राजुका संख्यातवां भागप्रमाण होता है । इस विष्कम्भ और आयामसे स्थित सम्यग्दृष्टिके उपपादक्षेत्रको—

विष्कम्भका वर्गकर उसे दशसे गुणा करके उसका वर्गमूल निकाले, वही वृत्त अर्थात् गोलाकृति क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण हो जाता है । पुनः विष्कम्भके चतुर्भागसे परिधिको गुणा करनेपर क्षेत्रफल हो जाता है ॥ ८ ॥

इस गाथासूत्रके अनुसार प्रतराकारसे करनेपर आठ बटे सत्तावन भागसे अधिक चार सौ चालीस (४४० $\frac{1}{2}$) भागोंसे खंडित सातिरेक एक भागप्रमाण जगप्रतर होता है ।

भागो वा । तं उत्सेधसंखेज्जगुलेहि गुणिदे तिरिक्खसम्मादिट्टिउववादखेत्तं होदि । संजदासंजदेहि सत्थाणपदट्टिएहि तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो । एत्थ सत्थाणखेत्तमाणिज्जमाणे तिरिक्खसम्मादिट्टिउववादपदरखेत्तमुत्सेधगुणगारवज्जिदं रज्जुपदरमिह अवणिदे जगपदरं सादिरेयपंचपंचास-रूवेहि भजिदएगभागो आगच्छदि । तं संखेज्जुत्सेधं गुलेहि गुणिदं संजदासंजदसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय वेउच्चियपरिण-देहि संजदासंजदेहि तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइ-

उदाहरण—विष्कम्भ $\frac{३}{८}$; $\sqrt{\frac{३}{८} \times \frac{३}{८} \times \frac{१०}{१} \times \frac{३}{३२} \times \frac{१}{४९}} = \sqrt{\frac{९०}{६४} \times \frac{३}{३२} \times \frac{१}{४९}}$

$$= \frac{१९}{१६} \times \frac{३}{३२} \times \frac{१}{४९} = \frac{५७}{२५०८८}; \frac{२७^३}{४४० \cdot ८} \quad \text{तिर्यंच सम्यग्दृष्टियोंके}$$

उपपादका क्षेत्रफल.

विशेषार्थ—यहां उपद्वय भागप्रमाणको सातिरेक कहनेका अभिप्राय यह है कि जो $\frac{१९}{१६}$ का वर्गमूल $\frac{१९}{१६}$ ले लिया गया है वह यथार्थ वर्गमूलसे कुछ अधिक हो गया है जिससे भागद्वार कुछ बढ़ गया है । पहले इसी विष्कम्भको लेकर परिधिके भिन्न प्रमाण द्वारा भिन्न क्षेत्रफल निकाला गया है । (देखो पृ. १६९.)

अथवा तत्प्रायोग्य संख्यात रूपोंसे भाजित जगप्रतरका एक भाग आता है । उसे संख्यात उत्सेधगुणोंसे गुणा करनेपर तिर्यंच सम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपादक्षेत्र हो जाता है ।

स्वस्थानस्वस्थानपदस्थित संयतासंयत तिर्यंचोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यंग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईट्टीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको निकालनेपर उत्सेधगुणकारसे रहित तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टियोंके उपपाद प्रतरक्षेत्रको राजुप्रतरमेंसे घटा देनेपर साधिक पचपन रूपोंसे भाजित एक भाग जगप्रतर आता है ।

उदाहरण—तिर्यंच सम्यग्दृष्टियोंका उपपादप्रतरक्षेत्र =

$$\frac{२७^३}{४४० \cdot ८} = \frac{५७ \times ४९}{२५०८८}; \quad १ - \frac{५७ \times ४९}{२५०८८} = \frac{४५५}{५१२} = \frac{२७^३}{५५ \cdot ९}$$

उसे संख्यात उत्सेधगुणोंसे गुणा करनेपर तिर्यंच संयतासंयतोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है, जो कि तिर्यंग्लोकका संख्यातवां भागमात्र होता है ।

विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत तिर्यंच संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यंग्लोकका

ज्जादो असंखेज्जगुणो अदीदकाले फोसिदो । कुदो ? संजदासंजदाणं वेरियदेवसंबंधेण जोयणलक्खवाहल्लं तिरियपदरस्स अदीदकाले पोसो अत्थि ति । मारणंतियसमुग्घादगदेहि संजदासंजदेहि छ चोइसभागा देसणा फोसिदा, तिरिक्खसंजदासंजदाणमच्चुदकप्पो ति मारणंतिण गमणसंभवादो ।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीसु मिच्छादि-
ट्टीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २९ ॥

एदं सुत्तं वट्टमाणकालसंबंधि ति एदस्स परूवणाए खेत्तमंगो ।

सव्वलोगो वा ॥ ३० ॥

परिसेसादो एदं सुत्तं तीदाणागदकालसंबंधी । एत्थ ताव ' वा ' सद्दुट्टो उच्चदे-
ति-विसेसणविसिद्धसत्थाणतिरिक्खमिच्छादिट्टीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एदं खेत्तमाणिज्जमाणे
असंखेज्जेसु समुद्देशु भोगभूमिपडिभागदीवाणमंतरेसु ट्टिदेसु सत्थाणपदट्टिदतिविहा तिरिक्खा

संख्यातवां भाग और अट्टाईट्टीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है, क्योंकि, संयतासंयत तिर्यंचोंका वैरी देवोंके हरणसम्बन्धसे एक लाख योजन बाह्यवाले तिर्यक्-
प्रतरका अतीतकालमें स्पर्श किया गया है । मारणान्तिकसमुद्धातगत तिर्यंच संयतासंयतोंने कुछ कम छह बटे चौदह (६४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, तिर्यंच संयतासंयतोंका अच्युतकल्प तक मारणान्तिकसमुद्धातसे गमन संभव है ।

पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमत्तियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २९ ॥

यह सूत्र वर्तमानकालसम्बन्धी है, इसलिए इसकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच जीवोंने अतीत और अनागत कालमें सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ३० ॥

पारिशेष्यायसे यह सूत्र भूत और भविष्यकालसम्बन्धी है । यहाँपर पहले ' वा ' शब्दका अर्थ कहते हैं—पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त और योनिमती इन तीन विशेषणोंसे विशिष्ट स्वस्थानपदस्थित तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यंग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईट्टीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इस क्षेत्रको निकालनेपर असंख्यात समुद्रोंमें और भोगभूमिके प्रतिभागरूप द्वीपोंके अंतरालोंमें स्थित क्षेत्रोंमें स्वस्थानपदस्थित उक्त तीन प्रकारके तिर्यंच नहीं हैं, इसलिए इस

णत्थि त्ति एदं खेत्तां पुव्वविधाणेणाणिय रज्जुपदरम्हि अवणिय संखेज्जसुचिअंगुलेहि गुण्णिदे
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं पंचिदियतिरिक्खतिगमिच्छादिट्ठिसत्थाणखेत्तं होदि ।
विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदपरिणदतिविहमिच्छादिट्ठीहि तिण्हं लोमाणम-
संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो अङ्काइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।
कुदो ? मित्तामित्तदेववसेण सव्वदीव-सागरेसु संचरणं पडि विरोहाभावादो । तेणेत्थ संखेज्ज-
गुलबाहल्लं तिरियपदरमुद्धमेगूणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे पंचिदियतिरिक्ख-
त्तिगमिच्छादिट्ठिविहारवदिसत्थाणादिखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि । 'वा' सद्व्हे
गदो । मारणंतिय-उववादगदपंचिदियतिरिक्खतिगमिच्छादिट्ठीहि सव्वलोभो पोसिदो ।
लोणालीए बाहिं तसकाइयाणमसंभवादो सव्वलोगो त्ति वयणं कधं घडदे ? ण एस दोसो,
मारणंतिय-उववादट्ठिदत्तसजीवे मोत्तूण सेसत्तसाणं बाहिरे अत्थित्तप्पडिसेहादो' ।

क्षेत्रको पूर्वाविधानसे लाकर और राजुप्रतरमेंसे बटाकर संख्यात सूर्यगुलोंसे गुणा करनेपर
तिर्यग्लोकका संख्यातवें भागप्रमाण पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यचपर्याप्त और योनिमती
इन तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यचोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना
कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत उक्त तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यचोंने
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और
अर्द्धद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, पूर्वभवके मित्र या शत्रुरूप देवोंके
बशसे सर्व द्वीप और सर्व समुद्रोंमें संचार (विहार) करनेके प्रति कोई विरोध नहीं है ।
इसलिए यहाँपर संख्यात अंगुल बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरको ऊपरसे उनंचास खंड करके
प्रतराकारसे स्थापित करनेपर पंचेन्द्रिय तिर्यच आदि तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यच
जीवोंसम्बन्धी विहारवत्स्वस्थान आदिका क्षेत्र हो जाता है, जो कि तिर्यग्लोकका संख्यातवां
भागमात्र होता है । इस प्रकारसे 'वा' शब्दका अर्थ हुआ ।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदगत पंचेन्द्रिय तिर्यच आदि तीन प्रकारके
मिथ्यादृष्टि तिर्यच जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है ।

शंका—लोकनालीके बाहिर त्रसकायिक जीवोंके असंभव होनेसे 'सर्वलोक स्पर्श
किया है' यह वचन कैसे घटित होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद-
स्थित त्रसजीवोंको छोड़कर शेष त्रसजीवोंका त्रसनालीके बाहिर अस्तित्वका प्रतिषेध किया
गया है ।

१ उववाद-मारणंतियपरिणदत्तसमुद्घातसत्तसा । तसणालिवाहिरम्हि य णत्थि षि जिणेहि णिदिट्ठं ॥
गी. जी. १९९।

सेसाणं तिरिक्खगदीणं भंगो ॥ ३१ ॥

सेसाणमिदि उत्ते सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदा-संजदा घेत्तव्वा, अण्णेसिमसंभवादो । एकस्से तिरिक्खगदीए तिरिक्खगदीणमिदि बहुत्तणिदेसो कथं घडदे ? ण एस दोसो, एकस्से वि तिरिक्खगदीए गुणट्ठाणादिभेएण बहुत्तविरोहाभावादो । एदेसिं चदुण्हं गुणट्ठाणाणं परूवणा वट्टमाणकाले खेत्तसमाणा । अदीदकाले एदेसिं तिरिक्खोघपरूवणाए तुच्छा । णवरि जोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठिणं उववादो णत्थि, एत्तिओ चेव विसेसो ।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३२ ॥

वट्टमाणकाले सत्थाण-वेदण-कसायपदे वट्टमाणपंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । मारणांतिय-उववादपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो ।

शेष तिर्यचगतिके जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ३१ ॥

‘शेष’ ऐसा पद कहने पर सासावनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यचोंको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, इनके अतिरिक्त अन्य तिर्यचोंका ग्रहण करना असंभव है ।

शंका—एक ही तिर्यचगतिके होने पर ‘तिरिक्खगदीणं’ यह बहुवचनका निर्देश कैसे घटित होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, एक तिर्यचगतिसामान्यके होने पर भी गुणस्थान आदिके भेदसे बहुत्वके होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

इन उक्त चारों गुणस्थानोंकी स्पर्शनप्ररूपणा वर्तमानकालमें क्षेत्रके समान है और इन्हीं चार गुणस्थानवर्ती तिर्यचोंकी अतीतकालिक स्पर्शनप्ररूपणा तिर्यचोंकी ओघ स्पर्शनप्ररूपणाके तुल्य है । किन्तु घोनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद नहीं होता है, इतनी मात्र ही विशेषता है ।

पंचेन्द्रियतिर्यच लब्धपर्याप्त जीवोंने कितनाक्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ३२ ॥

वर्तमानकालमें स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, और कषायसमुद्घात, इन पदोंपर वर्तमान पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवा भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदवाले पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त तिर्यचोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवा भाग और मनुष्यलोक तथा तियर्गलोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

सव्वलोगो वा ॥ ३३ ॥

पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तेत्ति अणुवद्दुदे । एत्थ ताव 'वा' सहद्दो उच्चदे-
सत्थाण-वेदण-कसायपदगदेहि पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदि-
भागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ?
अड्ढाइज्जदीव-समुद्देसु कम्मभूमिपडिभागे सयंपहपव्वदपरभागे च तेसिं संभवादो । अदीद-
काले सयंपहपव्वदपरभागं सव्वं ते पुसंति त्ति तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं खेत्तं
होदि । तस्साणयणविधाणं वुच्चदे--सयंपहपव्वदव्वमंतरखेत्तं जगपदरस्स संखेज्जदिभागं
रज्जुपदरम्हि अवणिदे सेसं जगपदरस्स संखेज्जदिभागो होदि । तं संखेज्जसूचिअंगुलेहि
गुणिदे' तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । अपज्जत्ताणमंगुलासंखेज्जदिभागोमाहणाणं
कथं संखेज्जंगुलस्सेथो लब्भदे ? ण, मुअपंचिदियादितमकलेवरसु अंगुलस्स संखेज्जदि-
भागमादिं कादूण जाव संखेज्जजोयणाणि त्ति कमवड्डीए द्विदेसु उप्पज्जमाणामपज्जत्ताणं
संखेज्जंगुलस्सेथं पडि विरोहाभावादो । अथवा सव्वसु दीव-समुद्देसु पंचिदियतिरिक्ख-

पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक
स्पर्श किया है ॥ ३३ ॥

इस सूत्रमें 'पंचेन्द्रियतिर्यंचअपर्याप्त' इस पदकी अनुवृत्ति होती है । अब यहाँपर
'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात, इन पदोंको प्राप्त
पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,
तिर्यंग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि,
अढ़ाईद्वीप और दो समुद्रोंमें, तथा कर्मभूमिके प्रतिभागवाले स्वयंप्रभपवर्तके परभागमें पंचे-
न्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका होना सम्भव है । अतीतकालमें स्वयंप्रभपवर्तके सम्पूर्ण
परभागको वे जीव स्पर्श करते हैं, इसलिए वह क्षेत्र तिर्यंग्लोकका संख्यातवां भागमात्र
होता है । अब उस क्षेत्रके निकालनेके विधानको कहते हैं— स्वयंप्रभपवर्तका आभ्यन्तर
क्षेत्र जगप्रतरके संख्यातवें भागप्रमाण है । उसे राज्जुप्रतरमेंसे घटा देनेपर शेष क्षेत्र जगप्रतरका
संख्यातवां भाग होता है । उसे संख्यात सूत्र्यंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यंग्लोकका संख्यातवां
भाग हो जाता है ।

शंका — अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहिनवाले लब्ध्यपर्याप्तके जीवोंके संख्यात
अंगुलप्रमाण उत्सेध कैसे पाया जा सकता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, मृत पंचेन्द्रियादि त्रसजीवोंके अंगुलके संख्यातवें भागकी
आदि करके संख्यात योजनों तक क्रमबद्धिसे स्थित शरीरोंमें उत्पन्न होनेवाले लब्ध्यपर्याप्त
जीवोंके संख्यात अंगुल उत्सेधके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

अथवा, सभी द्वीप और समुद्रोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीव होते हैं, क्योंकि,

१ प्रतिशु 'शुषिदेहि' इति पाठः ।

अपज्जत्ता अत्थि । कुदो, पुव्ववेरियदेवसंबंधेण एगबंधणवद्धलज्जजीवणिकाओगाढ-
कम्मभूमिपडिभागुप्पण्णओरालियदेहमच्छादीणं सव्वदीव-समुद्देसु संभवोवलंभादो । महा-
मच्छोगाहणमिह एगबंधणवद्धलज्जजीवणिकायाणमत्थित्तं कथं णव्वदे ? वग्गणमिह उच्च-
अप्पावहुगादो । तं जहा— 'सव्वत्थोवा महामच्छसरीरे पदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता
तसकाइयजीवा । तेउकाइया जीवा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा ।
पुढविकाइया जीवा विसेसाहिया । केत्तियमेत्तो विसेसो ? असंखेज्जलोगमेत्तो । तेसिं पडि-
भागो वि असंखेज्जलोगमेत्तो । एवं आउकाइया विसेसाहिया । वाउकाइया विसेसाहिया ।
वणप्फइकाइया अणंतगुणा त्ति ' । ण च सव्वे ते पज्जत्ता चेव, तसअपज्जत्ताणं पि' तेउ-
काइयाणं च संभवादो । ण च मुदसरीरे चेव पंचिदियअपज्जत्ताणं संभवो त्ति वोत्तुं जुत्तं,
तस्स विधाययसुत्ताभावा । महामच्छादिदेहे तेसिमत्थित्तस्स सूचगं पुण इदमप्पावहुगसुत्तं
होदि । तसपज्जत्तरासीदो तसअपज्जत्तरासी असंखेज्जगुणो । तेण जत्थ तसजीवाणं

पूर्वभचके वैरी देवोंके सम्बन्धसे एक बंधनमें बद्ध पदकायिक जीवोंके समूहसे व्याप्त और
कर्मभूमिके प्रतिभागमें उत्पन्न हुए औदारिकदेहवाले महामच्छादिकोंकी सर्वद्रोप और
समुद्रोंमें संभावना पाई जाती है ।

शंका—महामच्छकी अवगाहनामें एक बन्धनसे बद्ध पदकायिक जीवोंका अस्तित्व
कैसे जाना जाता है ?

समाधान—वर्गणाखंडमें कहे गये अल्पबहुत्वानुयोगद्वारसे जाना जाता है । वह इस
प्रकार है— 'महामत्स्यके शरीरमें सबसे कम जगप्रतरके असंख्यातर्षे भागमात्र त्रसकायिक
जीव होते हैं । उन त्रसकायिक जीवोंसे तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणे होते हैं । गुणकार
क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । तेजस्कायिक जीवोंसे पृथिवीकायिक जीव विशेष
अधिक होते हैं । कितने प्रमाण विशेषसे अधिक होते हैं ? असंख्यात लोकमात्र विशेषसे अधिक
होते हैं । उनका प्रतिभाग भी असंख्यात लोकमात्र होता है । इसी प्रकारसे पृथिवीकायिक
जीवोंसे अप्कायिक जीव विशेष अधिक होते हैं । अप्कायिक जीवोंसे वायुकायिक जीव विशेष
अधिक होते हैं और वायुकायिक जीवोंसे वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे होते हैं । '

महामच्छके शरीरमें ऊपर कहे गये ये सब जीव केवल पर्याप्त ही नहीं होते हैं,
किन्तु उसके शरीरमें त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीव और तेजस्कायिक जीवोंका भी
होना संभव है । तथा मृत शरीरमें ही पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीव संभव हैं
ऐसा भी कहना युक्त नहीं है, क्योंकि, इस बातके विधायक सूत्रका अभाव
है । किन्तु महामच्छादिके देहमें उनके अस्तित्वका सूचक यही उक्त अल्पबहुत्वसूत्र है ।
त्रसपर्याप्तराशिसे त्रसअपर्याप्तराशि असंख्यातगुणी होती है, इसलिए जहां पर त्रसजीवोंकी

१ प्रतिपु वी हि ' इति पाठः ।

संभवो होदि, तत्थ सव्वत्थ वि पज्जत्तेहिंतो अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा होंति । तम्हा संखेज्जंगुलवाहल्लं तिरियपदरमेगूणयंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तसत्थाण-वेदण-कसायखेत्तं होदि । 'वा' सहड्ढो गदो । मारणंतिय-उववाद्गदेहि सव्वलोगो पोसिदो, सव्वत्थ गमणागमणं पडि विरोहाभावा ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीहि केव-डियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्ताणिओगदारे परूविदो त्ति णेह परूविज्जदे ।

सव्वलोगो वा ॥ ३५ ॥

एत्थ ताव 'वा' सहड्ढो उच्चदे- सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियपरिणदेहि चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो पोसिदो, तीदाणागदकालेसु वेरियदेव-संबंधेण वि माणुसोत्तरसेलादो परदो गमणाभावा । माणुसखेत्तस्स पुण संखेज्जदिभागो

संभावना होती है वहां पर सर्वत्र ही पर्याप्त जीवोंसे अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे होते हैं । अतएव संख्यात अंगुल वाइल्यवाले तिर्यक्प्रतरके अनंचास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करने पर तिर्यग्लोकके संख्यातवं भागमात्र पंचेन्द्रिय तिर्यक् लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका स्वस्थान वेदना और कषायसमुद्घातगत क्षेत्र होता है । इस प्रकारसे 'वा' शब्दका अर्थ समाप्त हुआ ।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद्गत पंचेन्द्रियतिर्यक् लब्ध्यपर्याप्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, उनके सर्व लोकमें गमनागमनके प्रति विरोधका अभाव है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३४ ॥

इस सूत्रका अर्थ क्षेत्रानुयोगद्वारमें प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यहांपर पुनः प्ररूपण नहीं किया जाता है ।

मिथ्यादृष्टि मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंने अतीत और अनागत-कालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ३५ ॥

अब यहांपर पहिले 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहार-वत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातसे परिणत उपर्युक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है, क्योंकि, अतीत और अनागतकालमें वैरी देवोंके सम्बन्धसे भी मानुषोत्तर शैलसे परे मनुष्योंके गमनका अभाव है । किन्तु मनुष्यक्षेत्रका

मिच्छादिद्वीणं आगासगमणादिविसत्तिविरहिदाणं जोयणलक्खवाहल्लेण फासाभावादो । अधवा सव्वपदेहि माणुसलोगो देख्खणो पोसिदो, पुव्ववेरियदेवसंबंधेण उड्डं देख्खणजोयण-लक्खुप्पायणसंभवादो । एसो 'वा' सहड्ढो । मारणंतिय-उववाद्गदेहि सव्वलोगो पोसिदो, सव्वलोगे गमणागमणे विरोहाभावादो ।

सासणसम्मादिद्वीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो' ॥ ३६ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो पुव्वं परुविदो ।

सत्त चौदसभागा वा देसूणा ॥ ३७ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कप्पाय-वेउव्वियसमुग्घाद्गदेहि सासण-सम्मादिद्वीहि चदुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो पोसिदो । माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो । अधवा विहारादि-उवरिमपदेहि माणुसखेत्तं देख्खणं पोसिदं । केण ऊणं ? चित्त-

संख्यातवां भाग स्पर्श किया है, क्योंकि, आकाशगमनादि विशिष्ट शक्तिले विरहित मिथ्या-दृष्टि जीवोंके एक लाख योजनके बाह्यसे सर्वत्र स्पर्शका अभाव है । अथवा, सर्व पदोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि मनुष्योंने देशोन मनुष्यलोकका स्पर्श किया है, क्योंकि, पूर्वभवके वैरी देवोंके समन्वयसे ऊपर कुछ कम एक लाख योजन तक उनका जाना आना संभव है । इस प्रकार यह 'वा' शब्दका अर्थ समाप्त हुआ ।

मारणान्तिकसमुद्धात और उपवादपद्गत उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, इन दोनों पदोंकी अपेक्षा सर्वलोकके भीतर जाने आनेमें कोई विरोध नहीं है ।

मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३६ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है ।

मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ३७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कप्पाय और वैक्रियिकसमुद्धातगत सासा-दनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है, तथा मानुषक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । अथवा, विहारवत्स्वस्थानादि ऊपरके पदोंकी अपेक्षा देशोन मनुष्यक्षेत्रको स्पर्श किया है ।

शंका—यहां देशोन पदसे कितना कम क्षेत्र विवक्षित है ?

१ सासादनसम्यग्दृष्टिमिलोकस्यासंख्येयभागः सप्त चतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि. १, ८.

कुलसेल-मेरुपर्वत-जोइसावासादिणा । माणुसेहि अगम्मपदेसस्स तस्स कधं माणुसखेत्त-
ववणसो ? ण, लद्धिसंपण्णमुणीणमगम्मपदेसाभावा । मारणंतियसमुग्घादग्देहि सत्त चोइस-
भागा देसणा पोसिदा । किं कारणं ? सासणाणं मारणंतिण भवणवासियलोगादो हेड्डा
गमणाभावादो, उवरि सब्बत्थ मारणंतिण गमणसंभवादो । उववादग्देहि तिण्हं लोगाणम-
संखेज्जदिभागो पोसिदो; तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो । ण ताव णेरइय
सासणाणं मणुसेसुप्पज्जमाणाणं पोसणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, दुक्खंम-
दुवाहुखेत्तफलस्स णेरइयअसंजदसम्मादिट्ठिमारणंतियखेत्तफलस्सेव तिरियलोगासंखेज्जदि-
भागत्तुवलंभादो । णादीदकाले अट्टरज्जुमाऊरिय द्विदेवसासणाणं मणुसेसुप्पज्जमाणाण-
मुववादपोसणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, छक्कावक्कमणियमवलंण पण्दालीम-

समाधान— चित्रापृथिवी, कुलाचल, मेरुपर्वत और ज्योतिष्क आवास आदिसे हीन प्रदेश विवक्षित है ।

शंका— मनुष्योंसे अगम्य प्रदेशवाले इस कुलाचल आदिके क्षेत्रको 'मनुष्यक्षेत्र' यह संज्ञा कैसे प्राप्त है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, लब्धिसम्पन्न मुनियोंके लिए (मनुष्यलोकके भीतर) अगम्य प्रदेशका अभाव है ।

मारणान्तिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंने कुछ कम सात बटे चौदह (१५) भाग स्पर्श किये हैं । इसका कारण यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टियोंका मारणान्तिक-समुद्घातके द्वारा भवनवासियोंके निवासलोकसे नीचे गमन नहीं होता है । किन्तु ऊपर सर्वत्र मारणान्तिकसमुद्घातके द्वारा गमन संभव है । उपपादगत उक्त तीनों प्रकारके सासादन-सम्यग्दृष्टि मनुष्योंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

शंका— मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले नारकी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग नहीं होता, क्योंकि, (असंख्यात योजन विस्तृत श्रेणीवद्धादि विलोकके) अपने दोनों ओरके दंडाकार व भुजाकार क्षेत्रोंका क्षेत्रफल', नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि-योंके मारणान्तिकक्षेत्रफलके समान, तिर्यग्लोकके असंख्यातयें भागप्रमाण पाया जाता है । और न अर्थात्कालमें ही आठ राजुप्रमाण क्षेत्रको व्याप्त करके स्थित और मनुष्योंमें उत्पन्न होने वाले सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका उपपादसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां

१ 'दुक्खंमदुवाहुखेत्तफलस्स' इस पदका अर्थ बहुत स्पष्ट नहीं हुआ । प्रायः यही पद पहले भी आ चुका है । (देखो पृ, १८७.) इस पदकी यथाशक्य सार्थकता निकालकर अर्थ कर दिया गया है । संभव है ये उक्त नरकके बड़े से बड़े विलोकके नाम हों । त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें विलोकके नाम इस प्रकारके मिलते हैं, किन्तु ये नाम हमें अभी तक नहीं मिले ।

जोयणलवखविकखंभ-अट्टरज्जुस्सेहचदुपाणालीसु मणुअलोगमागच्छंताणमुववादखेत्तफलस्स तिरियलोगादो संखेज्जगुणत्तुवलंभादो । ण तिरिक्खेहिंतो मणुस्सेसुप्पज्जमाणसासणाण-मुववादखेत्तं पि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, तत्थ वि चदुहि चेव पंथेहि आगमणदंसणादो त्ति ? एत्थ परिहारो उच्चदे- ण ताव णेरइयसासणे अस्सिदूण उच्चदोसो, तण्णिबंधणुववादफोसणवलेण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्ताणम्भुवगमादो । ण देव-सासणे अस्सिदूण उच्चदोसो वि, अट्टरज्जुस्सेहलोगणालीए समचउरस्साए अंतोद्धिदेव-सासणाणं हेट्ठिम-उवरिमाणं च कंडुज्जुवाए गईए चट्ठणोयरणवावारेण मणुवलोगपणिधि-मागंतूण एग-दोविग्गहं करिय मणुसेसुप्पज्जमाणणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्त-फोसणस्सुवलंभादो । तिरिच्छं गंतूण विग्गहं करिय देवसासणा मणुसेसु किण्ण उप्पजंति ? मणुसगइविरहियदिसाए सहावदो चेव तेसिं गमणाभावादो । ण च मणुसगइसंमुहमागंतूण विग्गहं करिय मणुस्सेसुप्पणाणं खेत्तं बहुअमुवलब्भइ, तक्खेत्तस्स तिरियलोयस्स संखे-

भाग होता है, क्योंकि, भवान्तरमें संक्रमणके समय पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे, इसप्रकार छह दिशाओंमें गमनागमनरूप षट् अपक्रम-नियमके बलसे पैतालीस लाख धोजन विष्कम्भवाले व आठ राजु उत्सेधवाले क्षेत्रमें चारों ओरसे मनुष्यलोकको आनेवाले जीवोंका उपपादसम्बन्धी क्षेत्रफल, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा पाया जाता है । और न तिर्यचोंसे मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंका उपपादक्षेत्र भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है, क्योंकि, वहाँपर भी चारों ही दिशाओंके मार्गोंसे आगमन देखा जाता है ?

समाधान—अब उपर्युक्त आशंकाका परिहार करते हैं— न तो नारकी सासादन, सम्यग्दृष्टियोंको आश्रय करके उक्त दोष प्राप्त होता है, क्योंकि, तन्निमित्तक उपपादसम्बन्धी स्पर्शनके बलसे तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग नहीं स्वीकार किया गया है । और न षेव सासादनसम्यग्दृष्टियोंका आश्रय करके भी उक्त दोष प्राप्त होता है, क्योंकि, आठ राजु उत्सेधवाली समचतुरस्र लोकनालीके अन्तःस्थित देव सासादनसम्यग्दृष्टियोंका और अधस्तन तथा उपरिम जीवोंका भी बाणकी तरह सीधी गतिसे चढ़ने और उतरनेरूप व्यापारसे मनुष्यलोककी प्रणिधि (तट) को आकर और एक या दो विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र स्पर्शन पाया जाता है ।

शंका—तिरछे जाकर पुनः विग्रह करके सासादनसम्यग्दृष्टि देव, मनुष्योंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान—मनुष्यगतिसे रहित दिशामें स्वभावसे ही उनका गमन नहीं होता है ।

— तथा, मनुष्यगतिके सम्मुख आकर और विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका भी क्षेत्र बहुत नहीं पाया जाता है, क्योंकि, उस क्षेत्रके तिर्यग्लोकके संख्यातवें

ज्जदिभागपहाणत्तादो । तम्हा एवंविहणियमवसेण तलफोसणमेत्तस्सेव संगहो कायव्वो । मणुसोववादिणो देवसासणा मूलसरीरं पविसिय कालं करेति त्ति भणंताणमभिप्पायेण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तमेदं फोसणं समत्थेदव्वं । तिरिक्खसासणेषु मणुस्सेसु-
प्पज्जमाणेषु वि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसणमुवलब्भइ, तिरिक्खसासणसम्मा-
इट्ठीणं चउग्गईसुप्पज्जमाणणं तिरिक्खभवाभिमुहसेसगइजीवाणं च तिरिच्छं गंतूण विग्गहं
करिय उप्पत्तिदंसणादो । अतएव च ' तिरोऽञ्चन्तीति तिर्यञ्चः ' । एदेसिमेवंविहा गई
अत्थि त्ति कुदो णव्वेदे? देवसासणोववादस्स पंच-चोइसभागपोसणपरूवणण्णहाणुववत्तीदो ।
तदो ण पुव्वुत्तदोसप्पसंगो त्ति सहहेयव्वं ।

**सम्मामिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं
पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३८ ॥**

सम्मामिच्छाइट्ठीणं वट्टमाणकाले सगसव्वपदेहि खेत्तमंगो । सत्थाणपदट्ठिएहि
चदुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, माणुमखेत्तस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो । विहारवदि-

भागकी ही प्रधानता है। इसलिए इसप्रकारके नियमके वशसे मेरुके तलभागके स्पर्शनमात्रका ही संप्रह करना चाहिए। मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले देव सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मूलशरीरमें प्रवेश करके मरण करते हैं, ऐसा कहने वाले आचार्योंके अभिप्रायसे तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र स्पर्शन होता है, ऐसा समर्थन करना चाहिए। तथा तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें और मनुष्योंमें भी उत्पन्न होने वाले जीवोंमें तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है, क्योंकि, चारों गतियोंमें उत्पन्न होने वाले तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंके और तिर्यंचभवके अभिमुख शेष गतिके जीवोंके तिरछे जाकर और विग्रह करके उत्पत्ति देखी जाती है। और इसीलिए वे ' तिरछे जाते हैं अतएव तिर्यंच है ' ऐसी व्युत्पत्ति की गई है।

शंका—इन तिर्यंचोंकी इस प्रकारकी तिरछी गति होती है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—अथवा देव सासनसम्यग्दृष्टियोंके उपाद्सम्बन्धी पांच बटे चौदह (१५) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा नहीं हो सकती थी। इसलिए पूर्वोक्त दोष नहीं प्राप्त होता है, ऐसा श्रद्धान करना चाहिए।

मनुष्योंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३८ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका वर्तमानकालमें स्पर्शनक्षेत्र अपने सर्व पदोंकी अपेक्षा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थान पदस्थित उक्त गुणस्थानवर्ती मनुष्योंने सामान्य-लोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श

। सम्यग्मिथ्यादृष्टिनामयोगकेवल्यन्तानां क्षेत्रवत्स्पर्शनम् । स. वि. १, ८.

सत्थाण-वेदण कसाय-वेउव्वियपदेहि चदुहं लोगणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेनस्स संखे-
ज्जदिभागो' पोसिदो । अदीदाणागदवट्टमाणकालेसु मणुसअसंजदसम्मादिट्ठीणं मणुमममा-
मिच्छादिट्ठीभंगो । णवरि मारणंतियसमुग्घादगदेहि तिहं ले.गाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो । तं कधं ? मणुससम्मादिट्ठीदेवेसु मारणंतियं करेता
संखेज्जपंथ-संखेज्जविमाणेसु चैव मारणंतियं करेति, वाणवेंतर-जो.दिसेएसु तेसिमुप्पत्तीए
अभावादो । तत्थ एकेकिस्से वट्टाए जदि वि असंखेज्जजोयणलक्खवाहल्लं होदि, तो वि
तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं चैव खेत्तं फोसिदं होज्ज । तेणेदमप्पधाणं । मणुमा
पुव्वं तिरिक्खेसु बद्धायुगा पच्छा सम्मत्तं घेत्तूण तिरिक्खेसु उप्पजंति, एदं खेत्तं पधाणं ।
कधमेदमाणिज्जे ? सयंपहपव्वदादो उवरिमखेत्तविकखंभं ठविय--

व्यासं षोडशगुणितं षोडशसहितं त्रिरूपरूपहत्तं ।

व्यासत्रिगुणितसहितं सूक्ष्मादपि तद्भवेत्सूक्ष्मम् ॥ ९ ॥

किया है । विहारवत्स्वस्थान, चेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्रात, इन पशोंकी अपेक्षा
मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकको संख्यातवां
भाग स्पर्श किया है । अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें मनुष्य असंयत-
सम्यग्दृष्टियोंकी स्पर्शनप्ररूपणा मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके समान है । विशेष बात यह है
कि मारणान्तिकसमुद्रातगत असंयत मनुष्योंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां
भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

शंका — मारणान्तिकसमुद्रातगत असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंने तिर्यग्लोकका संख्या-
तवां भाग कैसे स्पर्श किया ?

समाधान — देवोंमें मारणान्तिकसमुद्रात करने वाले सम्यग्दृष्टि मनुष्य संख्यात
मार्ग वाले संख्यात विमानोंमें ही मारणान्तिकसमुद्रात करते हैं, क्योंकि, उनकी वानव्यन्तर
और ज्योतिष्क देवोंमें उत्पत्ति नहीं होती है । उनमें एक एक मारणान्तिकसमुद्रातके मार्गका
यद्यपि असंख्यात लाख योजन बाहव्य होता है, तो भी वह क्षेत्र (सब मिलकर) तिर्य-
ग्लोकके असंख्यातत्रै भागमात्र ही स्पर्श किया गया होगा । इसलिए यह क्षेत्र यहाँ पर
अप्रधान है । पहले तिर्यग्लोकमें जिन्होंने आयु बांध ली है ऐसे मनुष्य पीछे सम्यक्त्वको ग्रहण
करके तिर्यग्लोकमें उत्पन्न होते हैं, यह क्षेत्र यहाँ पर प्रधान है ।

शंका — बद्धायुष्क मनुष्योंका यह उपवादक्षेत्र कैसे निकाला जाता है ?

समाधान — स्वयंप्रभ पर्वतसे उपरिम क्षेत्रके विष्कम्भको स्थापित करके —

व्यासको सोलहसे गुणा करे, पुनः सोलह जोड़े, पुनः तीन, एक और एक अर्थात्
एकसौ तेरह (११३) का भाग देवे । पुनः व्यासका तिगुना जोड़ देवे, तो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म
परिधिका प्रमाण आ जाता है ॥ ९ ॥

१ भा.क प.सो. 'भागो संखेज्जभागो वा' इति पठः ।

एदीए गाहाए परिधिभाणीय विक्खंभचउज्जागेण गुणिय संखेज्जगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो मारणंतियखेत्तं होदि । अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणं । उत्रवादग्देहि असंजदसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो । तं जहा-जदि वि अट्ठरज्जुखेत्तं रज्जुविक्खंभमदीदकाले चउव्विहा देवा आऊरिय ट्ठिदा असंजदसम्मादिट्ठिणो मणुसेसु उप्पज्जंति, तो वि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो पोसणं, देवसासणाणं व तत्थतणअसंजदसम्मादिट्ठीणं मणुसेसुप्पज्जमाण-मागमणणियमोवलंभादो । एमो अत्थो अण्णत्थ वि वत्तच्चो । अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । संजदासंजदाणं वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो । सत्थाणसत्थाणेण अदीदकाले संजदासंजदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्वादग्देहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,

इस गाथाके अनुसार परिधिको निकालकर और विष्कम्भके चतुर्भागसे गुणाकर पुनः संख्यात अंगुल्लोसे गुणा करने पर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण मारणान्तिकक्षेत्र हो जाता है । वह क्षेत्र अड़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा होता है ।

उदाहरण—स्वयंप्रभ पर्वतसे उपरिम भाग अर्थात् भीतरी क्षेत्रका विष्कम्भ—

$$१ - \frac{५}{८} = \frac{३}{८}; \quad \frac{\frac{३}{८} \times \frac{१६}{१} + \frac{१६}{१}}{११३} + \frac{९}{८} \times \frac{३}{३२} = \frac{३५७२}{२९०५६} \text{ राजु प्रतर,}$$

यह मारणान्तिकसमुद्रातगत असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका क्षेत्र है जो राजुप्रतरके अष्टमांशसे कुछ अधिक होनेके कारण तिर्यग्लोक अर्थात् ७ × १ राजुका संख्यातवां भाग तथा पैतालीस लाख योजन विष्कम्भ वाले अड़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा बड़ा है ।

उपपादपद्गत असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । वह इसप्रकार है—यद्यपि अतीतकालमें आठ राजु आयत और एक राजु विस्तृत क्षेत्रको व्याप्त करके स्थित चारों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि देव, मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं तो भी वह स्पर्शक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग ही होता है, क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंके समान वहाँके मनुष्योंमें उत्पन्न होने वाले असंयतसम्यग्दृष्टियोंके आगमनका नियम पाया जाता है । यह अर्थ अन्यत्र भी कहना चाहिए । उन्हीं जीवोंने अड़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

संयतासंयत मनुष्योंकी वर्तमानकालिक स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थानपदकी अपेक्षा संयतासंयत मनुष्योंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकियिकसमुद्रातगत मनुष्य संयतासंयतोंने सामान्य-

माणुसखेत्तस्म संखेज्जदिभागो, संखेज्जा भागा वा पोसिदा । मारणंतियसमुग्घादग्देहि चटुहं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । कारणं चितिय वत्तव्वं । पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघं ।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा, सब्वलोगो वा ॥ ३९ ॥

एदस्म सुत्तस्म अत्थो पुव्वं उत्तो ति संपदि ण उच्चदे । एवं पज्जत्तमणुस-मणुसिणीसु । णवरि मणुसिणीसु असंजदसम्मादिट्ठीणं उववादो णत्थि । पमत्ते तेजाहारं णत्थि ।

मणुसअपज्जत्तेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ४० ॥

सत्थाण-वेदण-कमायसमुग्घादग्देहि चटुहं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुस-खेत्तस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो । मारणंतिय-उववादग्देहिं तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, दोलोमेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो ।

लोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग अथवा संख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घातगत संयतासंयत मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण विचार कर कहना चाहिए । प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लगाकर अयागिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानकी मनुष्योंका स्पर्शनक्षेत्र ओघप्ररूपणाके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ।

सजोगिकेवली जिनोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ३९ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कह आये हैं, इसलिए अब नहीं कहते हैं । इसी प्रकारसे पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यनियोंका स्पर्शनक्षेत्र जनाना चाहिए । विशेष बात यह है कि मनुष्यनियोंमें असंयतसम्पग्दष्टि जीवोंका उपपाद नहीं होता है, और प्रमत्तसंयतगुणस्थानमें तैजस एवं आहारकसमुद्घात नहीं होते हैं ।

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातगत लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंने सामान्य-लोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदगत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्य तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

सव्वलोगो वा ॥ ४१ ॥

सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेतस्स संखेज्जदिभागो, संखेज्जा भागा वा अदीदकाले पोसिदा । मारणंतिय-उववाद्गदेहि सव्व-लोगो पोसिदो, सव्वत्थ गमणागमणे विरोहाभावा ।

देवगदीए देवेषु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४२ ॥

एत्थ ताव मिच्छादिट्ठीणं उच्चदे- सत्थाणसत्थाणपरिणदेहिं तिण्हं लोगाणमसंखे-ज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एवं विहारवदिसत्थाण-वेदण कसाय-वेउच्चियपदाणं पि वत्तव्वं । मारणंतिय-उववाद्गदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो । सासणसम्मा-दिट्ठिस्स सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय वेउच्चियपदाणं खेतोघं । मारणंतिय-

लब्धपर्याप्त मनुष्योंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ४१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातगत लब्धपर्याप्त मनुष्योंने सामान्य-लोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग अथवा संख्यात बहुभाग अतीतकालमें स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद्गत मनुष्योंने सर्व-लोक स्पर्श किया है क्योंकि, उनके सर्वत्र गमनानागमनमें कोई विरोध नहीं ।

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४२ ॥

यहांपर पहले मिथ्यादृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र कहते हैं- स्वस्थानस्वस्थानपदसे परिणत मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्या-तवां भाग और अट्ठाईछीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसी प्रकारसे विहारव-त्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंको प्राप्त देवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र बहना चाहिए । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद्पदवले मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदवाले सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघक्षेत्रकी प्ररूपणाके समान है । मारणान्तिक-

१ देवगती देवमिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिमिलोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः ।

त. सि. १, ८.

उववादगदाणं पि खेतोघमेव होदि । एसा वडुमाणपमाणपरूवणा । अदीदाणागद-
परूवणडुमाह-

अट्ट णव चोदसभागा वा देसूणा ॥ ४३ ॥

सत्थाणसत्थाणमिच्छादिट्टीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एत्थ ओघकारणं वत्तन्वं । सासण-
सम्मादिट्टीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एत्थ वि ओघकारणं वत्तन्वं ।
विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियपरिणदेहि दोगुणट्टाणजीवेहि अदीदकाले अट्ट
चोदसभागा देसूणा पोसिदा । केण ऊणा ? तदियपुढविहेट्टिमतलसहस्सजोयणेहि अण्णेहि
वि देवाणमगम्मपदेसेहि । मारणंतियसमुग्घादगदेहि मिच्छादिट्टि-सासणसम्मादिट्टीहि णव
चोदसभागा देसूणा पोसिदा, हेट्टा दो रज्जू, उवरि सत्त रज्जु ति । उववादगदेहि

समुद्धात और उपपादपदवाले जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र ओघ क्षेत्रपरूपणाके समान ही होता
है । इसप्रकार यह वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रके प्रमाणकी प्ररूपणा समाप्त हुई । अब अतीत
और अनागत कालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपण करनेके लिए भागोंका सूत्र कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा
कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये
हैं ॥ ४३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान पदवाले मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका
असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईट्टीपले असंख्यातगुणा क्षेत्र
स्पर्श किया है । यहांपर कारण ओघके समान कहना चाहिए । स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत
सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका
संख्यातवां भाग और अट्टाईट्टीपले असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहांपर भी कारण
ओघके समान ही कहना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्धात,
इन पदोंसे परिणत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि, इन दो गुणस्थानतीं देवोंने अतीतकालमें
कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

शंका—यहां आठ बटे चौदह भाग किस क्षेत्रसे कम हैं ?

समाधान—तृतीय पृथिवीके अधस्तन तलसम्बन्धी एक हजार योजनोंसे, तथा
अन्य भी देवोंके अगम्य प्रदेशोंसे, कम हैं ।

मारणान्तिकसमुद्धातगत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने मंदराचलसे
नीचे दो राजु और ऊपर सात राजु, इस प्रकार कुछ कम नौ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श

मिच्छादिद्वि-सासणसम्मादिट्टीहि पंच चोदसभागा देहणा पोसिदा, सहस्सारकप्पादो उवरि-
मेदेसिमुववादाभावा । छक्कावक्कमणियमे संते पंचचोदसभागफोसणं ण जुञ्जदि त्ति णासंकणिजं,
चदुण्हं दिसाणं हेदुवरिमदिसाणं च गच्छंतेहि तदा मारणं पडि विरोहाभावादो ।

का दिसा णाम ? सगट्टाणादो कंडुज्जुवा दिसा णाम । ताओ छच्चेव, अणोसिम-
संभवादो । का विदिसा णाम ? सगट्टाणादो कण्णायारेण द्विदखेत्तं विदिसा । जेण सब्बे
जीवा कण्णायारेण ण जांति तेण छक्कावक्कमणियमो जुञ्जदे । ण च एगदंडेणेव उत्पत्ति-
ट्टाणेण उवरि सरिसा होंति त्ति णियमो, एगंगुलादिवियप्पेहि तिरिक्खेण आयदं पढमदंडं
काऊण तिरिक्ख-मणुसाणं विदियदंडेण सगुत्पत्तिट्टाणपावणे विरोहाभावादो । भवणवासिएसु
उत्पज्जमाणतिरिक्खुववादखेत्ते गहिदे पंच रज्जू सादिरेया किण्ण होंति त्ति उत्ते ण होंति,

किये हैं । उपपादपदगत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह
(१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, सहस्वारकल्पसे ऊपर इन दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंका
उपपाद नहीं होता है ।

शंका—छहों दिशाओंमें जाने आनेका नियम होनेपर सासादनगुणस्थानवर्ती देवोंका
स्पर्शनक्षेत्र पांच बटे चौदह भागप्रमाण नहीं बनता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, चारों दिशाओंको और
ऊपर तथा नीचेकी दिशाओंको गमन करनेवाले जीवोंके मारणान्तिकसमुद्रातके प्रति कोई
विरोध नहीं है ।

शंका—दिशा किसे कहते हैं ?

समाधान—अपने स्थानसे बाणकी तरह सीधे क्षेत्रको दिशा कहते हैं ।
वे दिशाएं छह ही होती हैं, क्योंकि, अन्य दिशाओंका होना असंभव है ।

शंका—विदिशा किसे कहते हैं ?

समाधान—अपने स्थानसे कर्णरेखाके आकारसे स्थित क्षेत्रको विदिशा कहते हैं ।

चूंकि मारणान्तिकसमुद्रात और उपपाद पदगत सभी जीव कर्णरेखाके आकारसे
अर्थात् तिरछे मार्गसे नहीं जाते हैं, इसलिए छह दिशाओंके अपक्रम अर्थात् गमनागमनका
नियम बन जाता है । तथा, एक दंडके द्वारा ही सब जीव ऊपर उत्पत्तिस्थानकी अपेक्षा
समतलस्थ हो जाते हैं, ऐसा नियम भी नहीं है, क्योंकि, एक अंगुल आदिके विकल्पसे
तिरछे रूपसे आयत प्रथम दंडको करके तिर्यच और मनुष्योंका द्वितीय दंडके द्वारा अपने
उत्पत्तिस्थानको पानेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—भवनवासियोंमें उत्पन्न होने वाले तिर्यचोंके उपपादक्षेत्रको ग्रहण करने पर
साधिक पांच राजु स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं होता है ?

अहियखेत्तादो ऊणखेत्तस्स बहुत्तुवदेसा । तं कथं णव्वदे ? हेट्ठा दंडायारेण ओयरिय विग्गहं काऊण भवणवासिएसुप्पण्णाणं पढम-विदियदंडेहि अदीदकाले रुद्धखेत्तादो सहस्सारुववादसेज्जाए उवरिमभागस्स संखेज्जगुणत्ता । विमाणसिहरमुस्सेहजोयणपमाणं त्ति ण थोवो उवरिमभागो, सहस्सारुवरिमपज्जवसाणस्स लक्खपमाणजोयणेहिंतो बहुअत्तादो । तं कुदो णव्वदे ? देसूणपंच-चोहसभागफोसणणहाणुववत्तीदो ।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्तपरूवणाए उत्तो त्ति इह ण उच्चदे ।

अट्ठ चोहसभागा वा देसूणा ॥ ४५ ॥

समाधान—ऐसी शंका करने पर उत्तर देते हैं कि नहीं होता है, क्योंकि, अधिक क्षेत्रकी अपेक्षा कम क्षेत्रकी अधिकताका उपदेश पाया जाता है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—नीचे दंडाकार आत्मप्रदेशोंसे उतरकर और विग्रह करके भवनवासियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके प्रथम और द्वितीय दंडोंके द्वारा अतीतकालमें रुद्धक्षेत्रसे सहस्वार कल्पकी उपपादशय्याका उपरिम भाग संख्यातगुणा है, इसलिए जाना जाता है कि नीचेके अधिक क्षेत्रकी अपेक्षा ऊपरका हीन क्षेत्र प्रधानतया विवक्षित है । देवोंके विमानोंका माप उत्सेधयोजनके प्रमाणसे है, इसलिए उपपादशय्यासे ऊपरी भाग अर्थात् विमानशिखरसे लेकर उसी कल्पके अन्त तकका क्षेत्र स्तोक अर्थात् अल्प नहीं है, क्योंकि, मेरुतलसे नीचेके एक लाख प्रमाणयोजनोंकी अपेक्षा सहस्वारकल्पके विमानशिखरसे ऊपरी पर्यन्तभागका प्रमाण बहुत है ।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—अन्यथा सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका देशोन पांच बटे श्वीवह (४५) भाग स्पर्शनक्षेत्र बन नहीं सकता है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि भवनवासी देवोंके क्षेत्रकी अपेक्षा ऊपरके विमानवासी देवोंका क्षेत्र यहां पर प्रधानतासे ग्रहण किया गया है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४४ ॥

इस सूत्रका अर्थ क्षेत्रपरूपणामें कहा गया है, इसलिए यहां पर नहीं कहा जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने अतीत और अनागतकालमें कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४५ ॥

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टिसंयतसम्यग्दृष्टिभिलोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशेनाः । स. वि. १, ६,

सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोमाणम-
संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो ।
एसो ' वा ' सहट्ठो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कप्पाय-वेउव्विय-मारणंतियसमुग्घादगदेहि
असंजदसम्मादिट्ठीहि अट्ठ चोदसभागा देसूणा पोसिदा । उववादगदेहि छ चोदसभागा
पोसिदा, अच्चुदकप्पादो उवरि मणुसत्रदिरित्ताणमुववादाभावा । एवं सम्मामिच्छदिट्ठीणं
पि । णवरि मारणंतिय-उववादगदा णत्थि ।

**भवनवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेषु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मा-
दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४६ ॥**

वाणवेंतर-जोदिसियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीणं खेत्तभंगो । भवनवासिय-
मिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कप्पाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि वट्ट-
माणकाले चट्ठुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो पोसिदो । अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो । उववा-
परिणदाणं पि एवं चेव वत्तव्वं । जदि वि एदं वट्टमसंखेज्जसेट्ठीमेत्तं, तो वि तिरिय-

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्य-
लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्ठाईद्वीपसे
असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह ' वा ' शब्दका अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना,
कप्पाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घातगत असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने कुछ कम आठ बटे
चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदगत असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने छह बटे चौदह
(१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर मनुष्योंको छोड़कर अन्य जीवोंके
उत्पन्न होनेका अभाव है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका भी स्पर्शन जानना चाहिए,
विशेष बात यह है कि इनके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्य-
ग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया
है ॥ ४६ ॥

वानव्यन्तर और ज्योतिष्क मिथ्यादृष्टि तथा सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शन
क्षेत्रप्ररूपणके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कप्पाय और वैक्रि-
यिकसमुद्घातगत भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार
लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है । तथा मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श
किया है । उपपादपदपरिणत उक्त देवोंका भी इसी प्रकारसे स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । यद्यपि
यह उपपादक्षेत्रसम्बन्धी मार्ग असंख्यात श्रेणीप्रमाण होता है, तथापि तिर्यग्लोकके असंख्या-

१ प्रतिपु ' दव्व-' इति पाठः ।

लोगस्म असंखेज्जदिभागं चेव उववादेण वट्टमाणकाले फुसदि, तिरियलोगमज्झमि तद-
संखेज्जदिभागो चेव भवणावासणमवट्टाणादो, तदवट्टिदिसं मोत्तूणणदिसाए गमणा-
भावादो, हेट्ठा ओयरिय उप्पज्जमाणणं सुट्टु थोवत्तादो । मारणंतियसमुग्घादगदेहि तिण्हं
लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोमेहिंतो असंखेज्जगुणो । भवणवासियसासणसम्मा-
दिट्ठीणं खेत्तभंगो ।

अट्टुट्ठा वा, अट्ट णव चोइसभागा वा देसूणा ॥ ४७ ॥

भवणवासियमिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि चट्टुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-
भागो, अट्टुइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-
पदेहि अट्टुट्ठा वा अट्ट चोइसभागा वा देसूणा । अट्टुट्टरज्जू सयमेव विहरंति । कधमाहुट्ट-
रज्जू जादा ? मंदरतलादो हेट्ठा दोण्णि, उवरि जाव सोधम्मविमाणसिहरधजदंडो त्ति
दिवट्टुरज्जू । उवरिमदेवपयोगेण अट्ट रज्जू । मारणंतियसमुग्घादगदेहि णव चोइसभागा

तवें भागप्रमाण क्षेत्र ही उपपादके द्वारा वर्तमानकालमें स्पर्श किया जाता है, क्योंकि, तिर्यंग्लोकके मध्य भागमें और उसके भी असंख्यातवें भागमें ही भवनवासी देवोंके आवासोंका अवस्थान है। तथा, जिस दिशामें विमान अवस्थित हैं उस दिशाको छोड़कर अन्यदिशामें गमन करनेका अभाव है, तथा, नीचे उतरकर उत्पन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण बहुत कम है। मारणान्तिकसमुद्घातगत उक्त देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यंग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। भवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र क्षेत्रप्ररूपणाके समान है।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भवनात्रिक देवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन भाग, आठ भाग और नौ भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४७ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपरिणत भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहार-वत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और चैक्रियिकसमुद्घातपदवाले उक्त देवोंने चौदह भागोंमेंसे देशोन साढ़े तीन भाग, (३४) अथवा आठ भाग (१६) प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। भवनवासी देव साढ़े तीन राजु स्वयं ही विहार करते हैं।

शंका—साढ़े तीन राजु कैसे हुए ?

समाधान—मंदराचलके तलभागसे नीचे तीसरी पृथिवी तक दो राजु और ऊपर सौधर्मकरूपके विमानके शिखरपर स्थित ध्वजादंड तक डेढ़ राजु, इस प्रकार मिलाकर साढ़े तीन राजु हुए।

उपरिम अर्थात् ऊपरके आरण-अच्युत कल्पवासी देवोंके प्रयोगसे आठ राजुप्रमाण

देसणा पोसिदा । उवरि सत्त, हेट्टा दोण्णि, एवं णव रज्जू । उववादपरिणदेहि तिण्हं लोणाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो । जोयणलक्खवाहल्लं तिरियपदरमदीदकाले किण्ण पुसिज्जदि ? ण, तिरिच्छेण भवणद्धिदपदेसं गंतूण हेट्टा मुक्कमारणंतियाणमुववादेण हेट्टुवरिमासेसखेत्तफुसणाभावादो । पुणो कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं जुज्जदे ? सगावद्धिदपदेसादो हेट्टा गंतूण तिरिच्छेण पल्लद्धिय सगभवणेसुप्पण्णाणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो उववादफोसणं होदि । अण्णहा किण्ण होदि ? भवणवासियपाओग्गाणुपुच्चिपडिबद्धागासपदेसाणमवट्ठाणवसेण मारणंतिय-संभवादो । भवणवासियसासणसम्मादिद्धिसव्वपदाणं भवणवासियमिच्छादिद्धिमंगो । वाण-वेंतरमिच्छाइद्धि-सासणसम्मादिद्धीहि सत्थाणेण तिण्हं लोणाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स

विहार करते हैं । मारणान्तिकसमुद्धातगत उन्हीं भवनवासी देवोंने नौ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । मंदराचलसे ऊपर लोकके अन्त तक सात राजु और नीचे तीसरी पृथिवी तक दो राजु, इस प्रकार नौ राजु होते हैं । उपपादपरिणत उक्त देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका — भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने अतीतकालमें एक लाख योजन बाह्यवाला तिर्यक्प्रतरप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं स्पर्श किया है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, तिर्यगरूपसे भवनस्थित प्रदेशको जाकर नीचे मारणांतिकसमुद्धातको करनेवाले जीवोंके उपपादपदकी अपेक्षा नीचे और ऊपरके समस्त क्षेत्रको स्पर्शन करनेका अभाव है ।

शंका — तो फिर भवनवासी देवोंके उपपादपदकी अपेक्षा तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्शनक्षेत्र कैसे बन सकता है ?

समाधान — अपने रहनेके स्थानसे नीचे जाकर पुनः तिरछे रूपसे पलट करके अपने भक्षकोंमें उत्पन्न होने वाले जीवोंका तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण उपपादपद-सम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र हो जाता है ।

शंका — यह स्पर्शनक्षेत्र अन्य प्रकारसे क्यों नहीं होता है ?

समाधान — क्योंकि, भवनवासी देवोंके योग्य आनुपूर्वीनामकर्मसे प्रतिषद्ध आकाश-प्रदेशोंके अवस्थानके वशसे मारणान्तिकसमुद्धात होता है, इसलिए उक्त स्पर्शनक्षेत्र अन्य प्रकारसे नहीं बन सकता है ।

भवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंके स्वस्थानादि सभी पक्षोंका स्पर्शनक्षेत्र भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंके समान है । मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि वानव्यन्तर देवोंने स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्य-

संखेज्जदिभागो, अङ्काइज्जादो असंखेज्जगुणो । तं जहा— एगं जगपदरं ठविय तप्पाओग्ग-
संखेज्जपदरंगुलेहि भागे हिदे वेंतरावासाण पमाणं होदि । तमेगावासागाहणाए संखेज्जघणं-
गुलपमाणाए गुणिदे संखेज्जगुलाणि वाहल्लं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं जगपदरं
होदि । असंखेज्जजोयणवित्थडा वेंतरावासा अप्पघाणा त्ति कड्डु इदं भणिदं । अह जइ ते
चेय पहाणा, जगपदरस्स असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि भागहारं ठविय असंखेज्जघणं-
गुलेहि एगावासुप्पणेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । विहारवदिसत्थाण-
वेदण-कसाय-वेउव्वियपदपरिणदमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि सगपच्चएण आहुट्ठ-
चोइसभागा देसूणा पोसिदा । परपच्चएण अट्ठ चोइसभागा देसूणा पोसिदा । मारणंतिय-
समुग्घादगदेहि णव चोइसभागा पोसिदा । उववादेण तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो अङ्काइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । उववादेण तिरिय-
लोगादो असंखेज्जगुणं खेत्तं वट्ठमाणकाले अवरुंभिय ट्ठिद्वेंतरा अदीदकाले कथं
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागं पुसंति त्ति उत्ते ण एस दोसो, खेत्तं णाम सच्चजीवाण-

ग्लोकका संख्यातवां भाग और अङ्काइज्जापसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वद
इस प्रकार है— एक जगप्रतरको स्थापित करके तत्प्रायोग्य संख्यात प्रतरांगुलोंसे भाग
देनेपर संख्यात घनांगुलप्रमाण व्यन्तर देवोंके आवासोंका प्रमाण हो जाता है । उसे
संख्यात अंगुलप्रमाण एक आवासकी अवगाहनासे गुणा करनेपर संख्यात घनांगुल वाहल्य-
वाला और तिर्यग्लोकके संख्यातवै भाग प्रमाण जगप्रतर होता है । यद्यपि असंख्यात योजन
विस्तारवाले भी व्यन्तरोंके आवास होते हैं, किन्तु वे यहाँपर प्रधानरूपसे विवक्षित नहीं
हैं, इस अपेक्षासे यह उक्त स्पर्शनक्षेत्र कहा है । और यदि वे ही अर्थात् असंख्यात योजन
विस्तार वाले विमानोंको ही प्रधान माना जाय, तो जगप्रतरका असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण
भागहार स्थापित करके एक आवासके क्षेत्रफलकी अपेक्षा उत्पन्न होने वाले असंख्यात
घनांगुलोंसे गुणा करने पर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग हो जाता है ।

विहारवत्सस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत मिथ्यादृष्टि और सासा-
दनसस्यगृष्टि भवनवासी देवोंने स्वप्रत्ययसे अर्थात् अपने आप कुछ कम साढ़े तीन बटे
चौदह (३८) भाग स्पर्श किये हैं । किन्तु परप्रत्ययसे अर्थात् अन्य देवोंके प्रयोगसे कुछ
कम आठ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । मारणान्तिकसमुद्घातगत उक्त दोनों
गुणस्थानवर्ती व्यन्तर देवोंने नौ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादकी अपेक्षा
उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां
भाग और अङ्काइज्जापसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका— उपपादकी अपेक्षा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र चर्तमानकालमें व्याप्त
करके स्थित व्यन्तर देव अतीतकालमें कैसे तिर्यग्लोकके संख्यातवै भागको स्पर्श करते हैं ?

मोगाहणाओ उववादविसिद्धाओ एगडुं करिय गहिदे होदि । तेण तिरियलोगादेो वेंतर-
मिच्छादिद्वि-उववादखेत्तमसंखेज्जगुणं जादं । पोसणमिह पुण जीवप्पडिद्विदओगाहणाओ
ण घेप्पंति, किंतु तीदकाले उववादपरिणदमिच्छादिद्वि-सासणसम्मादिद्विवेंतरेहि च्छित्त-
खेत्तमेव घेप्पदि, वेंतरेसु वि ण देवा णेरइया वा उप्पज्जंति, ण च एइंदिया विग-
ल्लिंदिया, किंतु सण्णि-असण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसा चेव । ण च वेंतराणमावासा
सोधम्मादिसु तिरियलोगवाहिरेसु कप्पेसु अत्थि, तधोवदेसाभावा । ण च लक्खजोयण-
बाहल्लतिरियपदरमिह सव्वत्थ वेंतरावासा चेव, जोदिसियवासाणं वेलंधरपण्णगादिआवासाणं
च अभावप्पसंगा । ण च भूमीए चेव वेंतरावासा होंति त्ति णियमो अत्थि, आगासपदि-
द्वियाणं पि वेंतरावासाणं संभवादो । ण च तिरियलोगे चेव वेंतरावासाणमत्थित्तणियमो,
हेट्ठा पंकवहुलपुट्ठीए वि भूत-रक्खसावासाणमुवलंभादो । तम्हा किंचूणमजोएदूण वेलक्ख-
बाहल्लतिरियपदरं ठविय सत्तकदीए ओवद्विय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदि-
भागवाहल्लं जगपदरं होदि । एवं चेव जोदिसियाणं पि वत्तवं, णवरि उववादखेत्ते

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सर्व जीवोंकी उपपादविशिष्ट अवगाहना-
ओंको एकट्ठा करके ग्रहण करने पर 'क्षेत्र' यह नाम होता है, इसलिए मिथ्यादृष्टि व्यन्तर-
देवोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यात गुणा हो जाता है । पर स्पर्शनमें जीवोंसे
प्रतिष्ठित अवगाहनाएं नहीं ग्रहण की जाती हैं, किन्तु अतीतकालमें उपपादपरिणत मिथ्यादृष्टि
और सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंसे स्पर्शित क्षेत्र ही ग्रहण किया जाता है । व्यन्तरोंमें
भी न तो देव अथवा नारकी जीव उत्पन्न होते हैं और न एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय जीव ही,
वहां केवल संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यच और मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं । तथा तिर्यग्लोकसे
बाहिर स्थित सौधर्मादि कल्पोंमें भी व्यन्तर देवोंके आवास नहीं होते हैं, क्योंकि, उस
प्रकारके उपदेशका अभाव है । और न लाख योजन बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरमें ही सर्वत्र व्यन्तर
देवोंके आवास होते हैं, अन्यथा चन्द्र, सूर्यादि ज्योतिष्क देवोंके आवासोंका और वेलंधर,
पन्नग आदि भवनवासी देवोंके आवासोंके अभावका प्रसंग प्राप्त हो जायगा । तथा भूमिमें
ही व्यन्तर देवोंके आवास होते हैं, ऐसा भी नियम नहीं है, क्योंकि, आकाशमें प्रतिष्ठित
व्यन्तरोंके आवास सम्भव हैं । और न तिर्यग्लोकमें ही व्यन्तर देवोंके आवासोंके अस्तित्वका
नियम है, क्योंकि, नीचे रत्नप्रभा पृथिवीके पंकवहुल भागमें भी भूत और राक्षस नामके व्यन्तर
देवोंके आवास पाये जाते हैं । इसलिए कुछ कम क्षेत्रको नहीं जोड़कर दो लाख योजन
बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरको स्थापित करके सातकी कृति अर्थात् बर्गसे अपवर्तितकर प्रतराकारसे
स्थापित करने पर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण बाहल्यवाला जगप्रतर हो जाता है ।

इसी प्रकारसे ही ज्योतिष्क देवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह

१ रज्जुकदी गुणिदत्त्वा णवणउदिसइस्सा अभियलक्खेण । तम्मज्जे तिवियप्पा वेंत-देवाण होंति पुरा ॥
भवणं भवणपुराणि आवासा इय भवति तिवियप्पा । जिणपुहकमलविणिग्गद्वेंतरपण्णत्तिणामाए ॥ रयणप्पहपुट्ठीए
भवणारणि दीव-उवद्विअवरिमि । भवणपुराणि दहगिरिपहुदीणं उवरि आवासा ॥ ति. प. पत्र १९६.

आणिज्जमाणे णव्रजोयणसदवाहल्लं तिरियपदरं सत्तकदीए खंडिदे पदरागारेण इइदे तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागवाहल्लं जगपदरं होदि' ।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४८ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो- सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउन्विय-
मारणंतियपदपरिणदेहि सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि भवणवासिय-वेंतर-जोदि-
सिएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो ।

अट्टुट्टा वा अट्ट चोदसभागा वा देसूणा ॥ ४९ ॥

सत्थाणसत्थाणभवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा-
दिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो
असंखेज्जगुणो पोसिदो । णवरि भवणवासिएसु चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो पोसिदो
त्ति वत्तव्वं । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउन्विय-मारणंतियपदपरिणदेहि सम्मा-

है कि उनके उपपादक्षेत्रको लाते समय नौ सौ योजन बाह्यवाले तिर्यक्प्रतरको सातके
वर्गद्वारा खंडितकर प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकके संख्यातव्ये भागप्रमाण बाह्य-
वाला जगप्रतर होता है ।

सम्यग्मिध्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४८ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना,
कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्भात, इन पदोंसे परिणत सम्यग्मिध्यादृष्टि और
असंयतसम्यग्दृष्टि भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंने सामान्यलोक आदि चार
लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

सम्यग्मिध्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने अतीत और अनागत
कालकी अपेक्षा कुछ कम सादे तीन भाग और कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श
किये हैं ॥ ४९ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदवाले भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क सम्यग्मिध्यादृष्टि
और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,
तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विशेष
बात यह है कि भवनवासियोंमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श
किया है, ऐसा कहना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणा-

१ रज्जुकदी गुणिवत्वं एकसयदसुचरेहिं जोयणए । तस्मिं अगम्मदेसं सोधिब सेसम्मि जोदिसिया ॥
ति. प. ७, ५.

मिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्वीहि अद्दुट्टा चोदसभागा देखणा सगपच्चएण; परपच्चएण अद्दु चोदंसभागा देखणा पोसिदा । णवरि सम्भामिच्छादिद्वीणं मारणंतियपदं णत्थि ।

सौधर्मीसाणकप्पवासियदेवेषु मिच्छादिद्विपहुडि जाव असंजद-सम्मादिद्वि ति देवोयं ॥ ५० ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियपदपरिणदेहि मिच्छा-दिद्वीहि वट्टमाणकाले चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, अद्दाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्ज-गुणो पोसिदो । सेसगुणद्वारणजीवेहि अप्पप्पणो पदेसु वट्टमाणेहि चदुण्हं लोमाणमसंखे-ज्जदिभागो, अद्दाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । तीदे काले सौधर्मीसाणकप्पवासिय-मिच्छादिद्वि-सासणसम्मादिद्वीहि सत्थाणसत्थाणपदपरिणदेहि चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदि-भागो, अद्दाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । तं जहा- सव्वे इंदया संखेज्जजोयण-वित्थडा, सेटीवद्दा असंखेज्जजोयणवित्थडा, पइण्णयवा मिस्सा' । एत्थ जदि वि सव्व-

न्तिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने स्वप्रत्ययसे कुछ कम साठे तीन बटे चौदह (३६) भाग स्पर्श किये हैं; तथा परप्रत्ययसे कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्या-दृष्टि देवोंके मारणान्तिकपद नहीं होता है ।

सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंका स्पर्शक्षेत्र देवोंके ओघस्पर्शनके समान है ॥ ५० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत मिथ्यादृष्टि देवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अद्दाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदसे परिणत सौधर्म-पेशान देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तथा नरलोक और तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थान-स्वस्थान आदि अपने अपने पदोंमें वर्तमान सासादनादि शेष गुणस्थानवर्ती देवोंने सामान्य-लोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अद्दाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अतीतकालमें सौधर्म और ईशान कल्पवासी स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अद्दाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वह इस प्रकार है— सभी इन्द्रकविमान संख्यात योजन विस्तारवाले होते हैं, श्रेणीबद्धविमान असंख्यात योजन विस्तृत और

१ इंदयसेटीवद्दुपइण्णयाणं कमेण वित्थारा । संखेज्जमसंखेज्जं उमयं च य ज्ञोयणाण ह्वे । त्रि. सा. २६८,

विमाणानि असंखेज्जजोयणवित्थडाणि ति घेप्पंति, तो वि सव्वविमाणखेत्तफलसमासो तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो चव होदि । तं जहा— एगविमाणायामो असंखेज्जजोयण-मेत्तो ति कट्ठु असंखेज्जजोयणविकखंभेणायामं गुणिय विमाणुस्सेहसंखेज्जगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो होदि, एककेकविमाणायाम-विकखंभाणं सेट्ठिपढमवग्ग-मूलादो असंखेज्जगुणपमाणत्तादो । तं सोधम्मीसाणविमाणसंखाए गुणिदे वि तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो होदि ति । एत्थ सव्वकप्पाणं क्रमेण विमाणसंखापरूवयगाहाओ—

वत्तीसं सोहम्मे अट्ठावीसं तहेव ईसाणे ।

वारह सगवकुमारे अट्टेव य होंति माहिंदे ॥ १० ॥

बम्हे कप्पे बम्हेत्तरे य चत्तारि सयसहस्साइं ।

छसु कप्पेसु य एयं चउरासीदी सयसहस्सा ॥ ११ ॥

पण्णासं तु सहस्सा लंतय-काविट्टएसु कप्पेसु ।

सुकक-महासुककेसु य चत्तालीसं सहस्साइं ॥ १२ ॥

प्रकीर्णकविमान मिश्र अर्थात् संख्यात और असंख्यात योजन विस्तारवाले होते हैं । यद्वांपर यदि सभी विमान असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं, ऐसा समझकर ग्रहण करते हैं तो भी सभी विमानोंके क्षेत्रफलका जोड़ तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है । वह इस प्रकारसे है— एक विमानका आयाम असंख्यात योजनप्रमाण होता है । इसलिए असंख्यात योजन विष्कम्भसे आयामको गुणा करके विमानके उत्सेधसम्बन्धी संख्यात अंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग ही होता है, क्योंकि, एक एक विमानका आयाम और विष्कम्भ जगत्रेणीके प्रथम वर्गमूलसे असंख्यातगुणित (हीन) प्रमाण होता है । उसे सौधर्म ईशानकल्पकी विमानसंख्यासे गुणा करनेपर भी तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग ही रहता है । यद्वांपर सभी कल्पोंके विमानोंकी क्रमसे संख्याओंकी प्ररूपणा करनेवाली गाथाएं इस प्रकार हैं—

सौधर्मकल्पमें बत्तीस लाख विमान हैं, उसी प्रकारसे ईशानकल्पमें अट्ठाईस लाख, सनत्कुमारकल्पमें बारह लाख तथा माहेन्द्रकल्पमें आठ लाख विमान होते हैं ॥ १० ॥

ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पमें दोनों कल्पोंके मिलाकर चार लाख विमान हैं । इस प्रकार इन ऊपर बताए गये छह कल्पोंमें विमानोंकी संख्या चौरासी लाख होती है ॥ ११ ॥

जैसे— ३२००००० + २८००००० + १२००००० + ८००००० + ४००००० = ८४००००० सौधर्मादि छह स्वर्गोंकी विमानसंख्या.

लाम्त्व और कापिष्ठं इन दोनों कल्पोंमें पचास हजार विमान होते हैं । शुक्र और महाशुक कल्पमें खालीस हजार विमान हैं ॥ १२ ॥

१ ' असंखेज्जगुणहीणपमाणत्तादो ' इति पाठः प्रतिभाति ।

छच्चेव सहस्साइं सयारकप्पे तहा सहस्सारे ।
 सत्तेव विमाणसया आरणकप्पच्चुदे चेष ॥ १३ ॥
 एक्कारसयं तिसु हेट्टिमेसु तिसु मज्झमेसु सत्तहियं ।
 एक्काणउदिविमाणा तिसु मेवज्जेसुत्तरिमेसु ॥ १४ ॥
 मेवज्जाणुवरिमया णव चेष अणुदिसा विमाणा ते ।
 तह य अणुत्तरणामा पंचेव हवंति संखाए ॥ १५ ॥

विहार-वेदण-कसाय-वेउच्चियपदेहि अट्ट चोइसभागा देसूणा पोसिदा । मारणंतिय-परिणदेहि मिच्छादिट्ठि-सासणेहि णव चोइसभागा पोसिदा । उववादपरिणदेहि दिवङ्कु-चोइसभागा पोसिदा । सोधम्मकप्पो धरणीतलादो दिवङ्गुरज्जुमोस्सरिय ट्ठिदो । त्ति सम्मा-मिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियपदपरिणदेहि अट्ट चोइस-भागा देसूणा पोसिदा । एवं असंजदसम्मादिट्ठीणं पि । णवरि मारणंतिएण अट्ट चोइस-भागा, उववादेण दिवङ्कु-चोइसभागा देसूणा पोसिदा । जेणेवं देवोघादो सोधम्मकप्पे ण

शातार और सहस्रार कल्पमें छह हजार विमान होते हैं । आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, इन चार कल्पोंमें मिलाकर सातसौ विमान होते हैं ॥ १३ ॥

अधस्तन तीन प्रैवेयकोंमें एक सौ ग्यारह विमान, मध्यम तीन प्रैवेयकोंमें एक सौ सात विमान और उपरिम तीन प्रैवेयकोंमें इक्यानवें विमान होते हैं ॥ १४ ॥

नव प्रैवेयकोंके ऊपर अनुदिश संज्ञावाले नौ विमान होते हैं । उनके ऊपर अनुत्तर संज्ञावाले पांच विमान होते हैं ॥ १५ ॥

विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्धात, इन पदोंको प्राप्त सौधर्म-ईशान कल्पके मिथ्यादृष्टि और सासादनगुणस्थानवर्ती देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । मारणान्तिकपदसे परिणत उक्त मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि देवोंने नौ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदपरिणत उन्हीं जीवोंने डेढ़ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, सौधर्मकल्प धरणीतलसे डेढ़ राजु ऊपर जाकर स्थित है । स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत सभ्यमिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवा भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्धात, इन पदोंसे परिणत उक्त देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

इसी प्रकारसे असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने मारणान्तिकसमुद्धातकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग और उपपादकी अपेक्षा कुछ कम डेढ़ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

विसेसो अत्थि तेण देवोघमिदि सुत्तवयणं सुट्टु सुवडमिदि ।

सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छा-
दिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स
असंखेज्जदिभागो ॥ ५१ ॥

एदेसिं पंचण्हं कप्पाणं चदुगुणट्ठाणजीवेहि जहासंभवं सत्थाणसत्थाण-विहारवदि-
सत्थाण-वेदण-कसाय वेउच्चिय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-
भागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एसा वट्टमाणपरूवणा ।

अट्ट चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ५२ ॥

पंचकप्पवासियचदुगुणट्ठाणजीवेहि सत्थाणसत्थाणपदपरिणदेहि अदीदकाले चदुण्हं
लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-
कसाय-वेउच्चिय- मारणंतिय-पदपरिणदेहि अट्ट चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा । उववाद-
परिणदेहि सणक्कुमार-माहिंददेवेहिं तिण्णि चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा । बम्ह-बम्हुत्तर-

चूँकि देवोंके ओघस्पर्शनसे सौधर्मकल्पमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिए 'देवोघ'
यह सूत्र-वचन भले प्रकार सुघटित होता है ।

सनत्कुमारकल्पसे लेकर शतार सहस्रारकल्प तकके देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे
लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, बैक्रियिक, मारणान्तिकसमुद्घात
और उपपाद, इन पदोंसे यथासंभव परिणत उक्त पाँचों कल्पोंके चारों गुणस्थानोंमें रहने-
वाले देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्ठाईद्वीपसे असं-
ख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह वर्तमानकालिक स्पर्शनके क्षेत्रकी प्ररूपणा है ।

सनत्कुमारकल्पसे लेकर सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुण-
स्थानवर्ती देवोंने अतीत और अनागत कालमें कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श
किये हैं ॥ ५२ ॥

सनत्कुमारदि पाँच कल्पोंके चारों गुणस्थानवर्ती स्वस्थानस्वस्थान पदपरिणत देवोंने
अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्ठाईद्वीपसे
असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, बैक्रियिक और मार-
णान्तिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत उक्त देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श
किये हैं । उपपादपरिणत सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देवोंने कुछ कम तीन बटे
चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पवासी देवोंने कुछ कम साढ़े

कल्पवासियदेवेहि आहुड्-चोदसभागा देसूणा पोसिदा । लंतय-कविड्देवेहि चत्तारि चोदस-
भागा देसूणा पोसिदा । सुक महासुकदेवेहि अद्रुपंचम-चोदसभागा देसूणा पोसिदा ।
सदर-सहस्रारकल्पवासियदेवेहि पंच चोदसभागा देसूणा पोसिदा । णवरि सम्मामिच्छा-
इट्टीणं मारणंतिय-उववादा णत्थि ।

आणद जाव आरणच्चुदकल्पवासियदेवेसु मिच्छाइट्टिपहुडि जाव
असंजदसम्मादिट्टीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ ५३ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणखेत्तपरुवयस्स अत्थो पुच्चं परुविदो त्ति पुणो ण उच्चदे ।

छ चोदसभागा वा देसूणा पोसिदा ॥ ५४ ॥

मिच्छादिट्टि-सासणसम्मादिट्टि-सम्मामिच्छादिट्टि-असंजदसम्मादिट्टीहि सत्थाण-
सत्थाणपदपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो ।
एसो 'वा' सहड्डो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-नेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि छ चोदस-

तीन बटे चौदह (३८) भाग स्पर्श किये हैं । लान्तव और कापिष्ठ कल्पवासी देवोंने कुछ
कम चार बटे चौदह (३४) भाग स्पर्श किये हैं । शुक्र और महाशुक्र कल्पवासी देवोंने कुछ
कम साढ़े चार बटे चौदह (२८) भाग स्पर्श किये हैं । शतार और सहस्रार कल्पवासी
देवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह (२४) भाग स्पर्श किये हैं । विशेष बात यह है कि सम्य-
ग्मिथ्यादृष्टि देवोंके मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

आनतकल्पसे लेकर आरण-अच्युत तक कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे
लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५३ ॥

वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपक इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है,
इसलिप्य पुनः नहीं कहा जाता है ।

चारों गुणस्थानवर्ती आनतादि चार कल्पवासी देवोंने अतीत और अनागत कालकी
अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ५४ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और
असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्य-
लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह 'घा' शब्दका अर्थ हुआ । विहारवत्स्वस्थान,
वेदना, कषाय, वैकिकियिक और मारणान्तिकसमुद्धात, इन पदोंसे परिणत उक्त जीवोंने कुछ कम

भागा देसूणा पोसिदा, चित्ताए उवरिमत्तादो हेड्डा एदेसिं गमणाभावादो । मिच्छादिट्टि-
सासणसम्मादिट्टीणं उववादो चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्ज-
गुणो । कुदो ? एगपणदालीसजोयणलक्खविकखंभ संखेज्जरज्जुआयदमुववादखेत्तं तिरिय-
लोमस्स असंखेज्जदिभागं ण पावेदि त्ति । सम्मामिच्छाडिड्डीणं मारणंतिय-उववादपदं णत्थि ।
असंजदसम्माडिड्डीहि उववादपरिणदेहि अद्धलक्क-चोदसभागा देसूणा पोसिदा । आरणच्चुद-
कप्पे छ चोदसभागा देसूणा पोसिदा । किं कारणं ? तिरिक्खअसंजदसम्मादिट्टि-संजदा-
संजदाणं वेरियदेवसंबंधेण सच्चदीव-सायरेसु ट्टिदाणं तत्थुववादोवलंभादो ।

णवगेवज्जविमाणवासियदेवेषु मिच्छादिट्टिपहुडि जाव असंजद-
सम्मादिट्टीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोमस्स असंखेज्जदिभागो ॥५५॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो । अदीदपरूवणा वि खेत्तभंगो चेय ।
कुदो ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तेण च समाणत्तु-
वलंभादो ।

छह बटे चौदह ($\frac{1}{4}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, चित्रा पृथिवीके उपरिम तलसे नीचे
इनके गमनका अभाव है । उक्त मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका उपपादकी
अपेक्षा स्पर्शनक्षेत्र सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे
असंख्यातगुणा है, क्योंकि, पैतालीस लाख योजन विष्कम्भवाला और संख्यात राजुप्रमाण
आयत उक्त देवोंका उपपादक्षेत्र भी तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागको नहीं प्राप्त होता है ।
सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद नहीं होते हैं । आनत-प्राणत
कल्पके उपपादपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने कुछ कम साढ़े पांच बटे चौदह ($\frac{1}{4}$)
भाग स्पर्श किये हैं । आरण और अच्युतकल्पमें उक्त पदपरिणत जीवोंने कुछ कम छह बटे
चौदह ($\frac{1}{4}$) भाग स्पर्श किये हैं । इसका कारण यह है कि वैरी देवोंके सम्बन्धसे सर्व द्वीप
और सागरोंमें विद्यमान तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतोंका आरण-अच्युतकल्पमें
उपपाद पाया जाता है ।

नवप्रैवेयक विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि
गुणस्थान तक प्रत्येक विमानके गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए ।
तथा अतीतकालिक स्पर्शनप्ररूपणा भी क्षेत्रप्ररूपणाके समान ही है, क्योंकि, सामान्यलोक
आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागसे तथा मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणित क्षेत्रकी अपेक्षा
समानता पाई जाती है ।

अणुदिस जाव सव्वट्टसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मा-
दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५६ ॥

एदेसु द्विदअसंजदसम्मादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-
वेउच्चिय-मारणंतिय-उत्रवादपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो
असंखेज्जगुणो, णवगेवज्जादिउवरिमदेवाणं तिरिक्खेसु चयणोत्रवादाभावादो । णवरि पंच-
पदपरिणदेहि सव्वट्टसिद्धिदेवेहि जाणुसलोगस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो ।

एवं गदिमग्गणा समत्ता ।

इंदियाणुवादेण एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्तएहि केवडियं
खेत्तं फोसिदं, सव्वलोगो ॥ ५७ ॥

एइंदिएहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उत्रवादपरिणदेहि तीद-वट्टमाण-
कालेसु सव्वलोगो फोसिदो । वेउच्चियपरिणदेहि वट्टमाणकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-

नव अनुदिश विमानोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तत्र विमानवासी देवोंमें असंयतसम्य-
गृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया
है ॥ ५६ ॥

इन नव अनुदिश और पांच अनुत्तर विमानोंमें रहने वाले स्वस्थानस्वस्थान,
विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैकियिक, मारणान्तिरुसमुद्धात और उपपादपरिणत
असंयतसम्यगृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुष-
क्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, नवग्रंथेयकादि उपरिम कल्पवासी
देवोंका च्यवन होकर तिर्यचोंमें उपपाद होनेका अभाव है । विशेष बात यह है कि स्वस्था-
नादि पांच पदोंसे परिणत सर्वार्थसिद्धिके देवोंने मनुष्यलोकका संख्यातवां भाग स्पर्श
किया है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

इन्द्रियमागणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय, एकेन्द्रियपर्याप्त, एकेन्द्रियअपर्याप्त; बादर
एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रियपर्याप्त, बादर एकेन्द्रियअपर्याप्त; सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म
एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ५७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिरुसमुद्धात और उपपाद, इन पदोंसे
परिणत एकेन्द्रिय जीवोंने अतीत और वर्तमानकालमें सर्वलोक स्पर्श किया है । वैकियिक-
पदपरिणत एकेन्द्रिय जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां

भागो पोसिदो । माणुसखेत्तं ण णव्वदे । अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णर-
तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो । अदीदकाले पंचरज्जुवाहल्लं तिरियपदरं विउच्च-
माणा वाउक्काइया फुसंति च्चि । बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तेहि सत्थाण-वेदण-कसाय-
परिणदेहि वड्डमाणकाले तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।
किं कारणं ? जेण पंचरज्जुवाहल्लं रज्जुपदरं वाउक्काइयजीवावूरिदं बादरएइंदियजीवावूरिद-
अट्टपुढवीओ च, तेसिं पुढवीणं हेट्ठा द्विदवीसावीसजोयणसहस्सवाहल्लं तिण्णि तिण्णि
वादवलए लोगंतद्विदवाउक्काइयखेत्तं च एगट्ठ कदे लोगस्स संखेज्जदिभागो होदि च्चि ।
एदेहि अदीदकाले वि एत्तियं चेव खेत्तं पोसिदं, विवक्खिदपदपरिणदाणमेदेसिं सव्वड्ड-
मणत्थच्छणाभावादो । वेउच्चियपदपरिणदेहि वड्डमाणकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,
माणुसखेत्तादो अमुणिदविसेसो फोसिदो । तीदे काले तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो,
दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । मारणांतिय-उववादपरिणदेहि तीद-वड्डमाणकालेसु

भाग स्पर्श किया है । इस विषयमें मनुष्यक्षेत्रका प्रमाण ज्ञात नहीं है । उन्हीं जीवोंने अतीत-
कालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोकसे
असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, अतीतकालमें पांच राजु बाह्व्यप्रमाण
तिर्यक्प्रतरको विक्रिया करनेवाले वायुकायिक जीव निरन्तर स्पर्श करते हैं । स्वस्थान, वेदना
और कषायसमुद्घात, इन पक्षोंसे परिणत बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंने
वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और नरलोक तथा
तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका—बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंका सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंके संख्यातवें भाग स्पर्शनक्षेत्र होनेका क्या कारण है ?

समाधान—इसका कारण यह है कि पांच राजु बाह्व्यवाला राजुप्रतरप्रमाण क्षेत्र
वायुकायिक जीवोंसे परिपूर्ण है और बादर एकेन्द्रिय जीवोंसे आठों पृथिवियों व्याप्त
हैं । उन पृथिवियोंके नीचे स्थित बीस बीस हजार योजन बाह्व्यवाले तीन द्वीप वातवलयोंको
और लोकान्तमें स्थित वायुकायिक जीवोंके क्षेत्रको एकत्रित करनेपर सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंका संख्यातवां भाग हो जाता है ।

इन्हीं उक्त जीवोंने अतीतकालमें भी इतना ही क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, विवक्षित
पदपरिणत इन उक्त जीवोंके सभी कालोंमें अन्यत्र रहनेका अभाव है । वैकियिकसमुद्घातसे
परिणत बादरएकेन्द्रिय और बादरएकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक
आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे अज्ञातविशेष प्रमाणक्षेत्र स्पर्श
किया है । अतीतकालमें उन्हीं जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग
और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।
मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने अतीत और वर्तमानकालमें

सच्चलोगो पौसिदो । एवं वादरेइंदियअपज्जत्ताणं पि तत्तच्च । पव्वरि वेउच्चियं णत्थि । सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्तएहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववाद-परिणदेहि तिसु वि कालेसु सच्चलोगो पौसिदो, 'सुहुमा जल-थलाभासे सच्चत्थ होंति' ति वयणादो ।

वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो' ॥ ५८ ॥

एदस्सत्थो— वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिएहि तेसिं पज्जत्तेहि य सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अद्वाइज्जादो असंखेज्जगुणो पौसिदो । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो पौसिदो । तेसिं चैव अपज्जत्तेहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो

सर्वलोक स्पर्श किया है । इसी प्रकारसे वादर एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि उनके वैकियिकसमुद्धात नहीं होता है । स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपरिणत सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, 'सूक्ष्मकायिकजीव जल, स्थल और आकाशमें सर्वत्र होते हैं' ऐसा आंगमका वचन है ।

द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रियपर्याप्त, द्वीन्द्रियअपर्याप्त; त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रियपर्याप्त, त्रीन्द्रियअपर्याप्त; चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रियपर्याप्त और चतुरिन्द्रियअपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना और कषाय-समुद्धातसे परिणत द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अद्वाइद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्धात-परिणत उन्हीं द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह

१ विकलेन्द्रियैलोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा । स. शि. १, ८.

असंखे ज्जगुणो फोसिदो । एसा वड्डुमाणपरूवणा पुव्वुत्तरसंभालणणिमित्तं कदा ।

सव्वलोगो वा ॥ ५९ ॥

एत्थं ताव 'वा' सदड्डो उच्चदे- बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिएहि तेसिं चैव पज्जत्तेहि य सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखे-ज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो अदीदकाले पोसिदो । विगलिंदियसत्थाणसत्थाणस्यं पहपव्वदस्स परभागे चैव होंति त्ति तद्वे परभागे पुव्वं व पदरागारेण उच्चदे विगलिंदियसत्थाणसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं हेदि । सेसपदेहि वड्डि पंबवेषे विगलिंदिया मव्वत्थं तिरियपदरुभंतरे होंति त्ति पदरागारेण उच्चदे एदं वि खेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं चैव हेदि । मारणंतिय-उत्तवात्परिणदेहि सव्वलोगो पोसिदो । तेसिं चैव अपज्जत्तेहि सत्थाण-वेदण-कसाय-परिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । मारणंतिय-उत्तवात्परिणदेहि सव्वलोगो पोसिदो । पंचिदिय-

वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा पूर्व और उत्तर अर्थके अर्थात् अतीत और अनागत कालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रके संभालनेके लिए की गई है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ५९ ॥

यहांपर पहले 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके ही पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है ।

स्वस्थानस्वस्थानस्थ विकलेन्द्रिय जीव स्वयम्भुवर्षतके परभागमें ही होते हैं, इसलिये परभागवर्ती क्षेत्रको पूर्वके समान प्रतराकारसे स्थापित करनेपर विकलेन्द्रिय जीवोंका स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र होता है । शेष पदोंकी अपेक्षा वैरी जीवोंके सम्बन्धसे विकलेन्द्रिय जीव सर्वत्र तिर्यक्प्रतरके भीतर ही होते हैं, इसलिये प्रतराकारसे स्थापित करनेपर यह क्षेत्र भी तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र ही होता है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है । उन्हीं जीवोंमेंसे स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत अपर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग तथा अड्डाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घात तथा उपपादपरिणत विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है । पंचेन्द्रियतिर्यक् अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र

तिरिक्खअपज्जत्ताणं जधा कारणं उत्तं, तथा एत्थ वि पुध पुध विगल्लिदियअपज्जत्ताणं वत्तव्वं ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६० ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तपंचिंदियदुगपरूवणाए तुल्ला, उभयत्थ वड्डमाण-
कालावलंबणं पडि साधम्मादो ।

अट्ट चोहसभागा देसूणा, सब्वलोगो वा ॥ ६१ ॥

दुविधपंचिंदियमिच्छादिट्ठीहि सत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो । एत्थ पुव्वं व जोदिसिय-
बेंतरावासरुद्धखेत्तं अदीदकाले पंचिंदियतिरिक्खेहि सत्थाणीकयखेत्तं च घेत्तूण तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागो दरिसेदव्वो । एसो 'वा' सहसूचिदत्थो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-
कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ट चोहसभागा पोसिदा, मेरुमूलादो उवरि छ, हेट्टा दो रज्जु-

बतलाते समय जिस प्रकार (उक्त क्षेत्र होनेका जो) कारण कहा है, उसी प्रकारसे यहांपर
भी पृथक् पृथक् द्वीन्द्रियादि विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका क्षेत्र बतलाते हुए उसी कारणको
कहना चाहिए ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया
है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६० ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त, इन दोनोंकी क्षेत्रप्ररूपणाके
समान है, क्योंकि, दोनों ही स्थानोंपर वर्तमानकालके अवलम्बणके प्रति समानता है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा
कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६१ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त, इन दोनों ही प्रकारके
पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्य-
लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहांपर
पूर्वके समान ही ज्योतिष्क और व्यन्तर देवोंके आवासोंसे रह्य क्षेत्रको तथा अतीतकालमें
पंचेन्द्रिय तिर्यच्चोंके द्वारा स्वस्थानीकृत अर्थात् स्वस्थानस्वस्थानरूपसे परिणत क्षेत्रको
लेकर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग दिखाना चाहिए । यह 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है ।
बिहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकियिकसमुद्धातपरिणत उक्त दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय
जीवोंने आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, मेरुपर्वतके मूलभागसे
ऊपर छह राजु और नीचे दो राजु, इस प्रकार आठ राजु क्षेत्रके भीतर सर्वत्र पूर्वपदपरिणत

१ पंचेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टिभिलोकस्यासंखेयभागः अष्टौ चटुर्दशभागा वा देशोनाः सर्वलोको वा । स.सि. १, ८,

खेत्तभ्रमंतरे सव्वत्थ पुव्वपदपरिणददुविहपंचिन्द्रियाणमुवलंभा । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो पोसिदो, विवक्खिदादीदकालत्तादो ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघं ॥ ६२ ॥

एदेसिं गुणट्ठाणाणं वट्टमाणकालविसिट्ठखेत्तपरूवणा एदेसिं चैव खेत्ताणिओग-
द्वागोघमिह उत्तपरूवणाए तुल्ला । कुदो ? सासणप्पहुडि जाव संजदासंजदो त्ति सव्वपदाणं
चदुहं लोगाणमसंखेज्जदिमागत्तेण, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तेण च एदेसिं चैव
खेत्ताणिओगहारउत्तपदेहि साधम्ममुवलंभादो । सेसगुणट्ठाणाणं पि सव्वपदेहि सरिसत्तदंस-
णादो च । अदीदकालमस्सिदूण परूवणं कीरमाणे वि णत्थि भेदो, पंचिन्द्रियवदिरित्तगुण-
पडिवण्णाणमभावा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ६३ ॥

एत्थ वि तिविधं कालमस्सिदूण ओघपरूवणा चैव कादव्वा, उभयत्थ पंचिन्द्रियत्तं
पडि भेदाभावा ।

दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय जीव पाये जाते हैं । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदपरिणत
उक्त दोनों प्रकारके जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, अतीतकालकी यहाँ पर विवक्षा
की गई है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-
स्थानवर्ती पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ६२ ॥

इन गुणस्थानोंकी वर्तमानकालविशिष्ट स्पर्शनकी प्ररूपणा, इन्हीं जीवोंके क्षेत्रानुयोग-
द्वारके ओघमें कही गई क्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है, क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे
लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक सर्व पदोंका स्पर्शन सामान्यलोक आदि चार लोकोंके
असंख्यातत्रै भागसे और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रसे इन्हीं पूर्वोक्त जीवोंके क्षेत्रानु-
योगद्वारमें कहे गये पदोंके साथ साधर्म्य पाया जाता है; तथा प्रमत्तसंयतादि शेष गुणस्थान-
वर्ती जीवोंके भी सर्वपदोंके साथ सदृशता देखी जाती है । अतीतकालका आश्रय लेकरके
स्पर्शनप्ररूपणाके करने पर भी कोई भेद नहीं है, क्योंकि, पंचेन्द्रिय जीवोंको छोड़कर गुण-
स्थानोंको प्राप्त हुए जीवोंका अभाव है ।

सयोगिकेवली जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ६३ ॥

यहाँ पर भी तीनों कालोंको आश्रय लेकर ओघ स्पर्शनप्ररूपणा ही करना चाहिये,
क्योंकि, दोनों ही स्थानों पर पंचेन्द्रियताके प्रति भेदका अभाव है ।

पंचिन्द्रियअपज्जत्तएहि केवडिथं खेत्तं पौसिदं, लोगस्स असं-
खेज्जदिभागो ॥ ६३ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तमंगा । उत्तमेव किमिदि पुणो वि उच्चदे, फला-
भावा ? ण, मंदबुद्धिभवियजणमंभालणदुवारेण फलोवलंभादो ।

सव्वलोगो वा ॥ ६५ ॥

सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पौसिदो । एत्थ पंचिन्द्रियतिरिक्ख-
अपज्जत्ताणं व तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं दरिसेदच्चं । एसो 'वा' सहसुत्तिदत्थो ।
मारणांतिय उववादपरिणदेहि सव्वलोगो पौसिदो, सव्वलोगमिह एदेहि पदेहि सह सव्व-
अपज्जत्ताणं गमणागमणपडिसेहाभावा ।

एवमिन्द्रियमगणा समत्ता ।

लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असं-
ख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६४ ॥

इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

शंका — कही गई बात ही पुनः क्यों कही जाती है, क्योंकि, कहे हुएके पुनः कहनेमें
कोई फल नहीं है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, मंदबुद्धि भव्यजनोंके संभालनेकी अपेक्षा पुनः कथन
करनेका फल पाया जाता है ।

लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्वलोक
स्पर्श किया है ॥ ६५ ॥

स्थस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत उक्त लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय
जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका
संख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर लब्ध्यपर्याप्त
पंचेन्द्रिय तिर्यक् जीवोंके समान ही तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग दिखाना चाहिए । यह
सूत्रोक्त 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपवादपरिणत लब्ध्यपर्याप्त
पंचेन्द्रिय जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, सम्पूर्ण लोकमें इन दोनों पदोंके साथ
सभी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके गमन और आगमनके प्रतिषेधका अभाव है ।

इसप्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय वाउकाइय-
बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-
बादरवणफ्फदिकाइयपत्तेयसरीर-तस्सेवअपज्जत्त-सुहुमपुढविकाइय-सुहुम-
आउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय तस्सेवअपज्जत्त-अपज्जत्तएहि
केवडियं खेतं पोसिदं, सव्वलोगो ॥ ६६ ॥

पुढविकाइय-आउकाइय-तेसिं चैव सव्वसुहुमेहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-
मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो पोसिदो । बादरपुढविकाइय-
बादरआउकाइय-तेसिं चैव अपज्जत्त बादरतेउकाइय-तस्सेव अपज्जत्तवणफ्फदिकाइयपत्तेय-
सरीरबादरणिगोदपदिट्ठिद-तेसिं चैव अपज्जत्तएहि य सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि
तीदाणागदवट्टमाणकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो,
माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । तिरियलोगादो संखेज्जगुणत्तं कथं णव्वदे ?

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक
जीव तथा बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायु-
कायिक और बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीव तथा इन्हीं पांचोंके बादर काय-
सम्बन्धी अपर्याप्त जीव; सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक,
सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं सूक्ष्म जीवोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र
स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत
पृथिवीकायिक और जलकायिक जीव और उन्हींके सर्व सूक्ष्मकायिक जीवोंने तीनों ही
कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । स्वस्थान, वेदना और कषायपदपरिणत बादर पृथिवी-
कायिक, बादर जलकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंने, बादर अग्निकायिक और उन्हींके
अपर्याप्त जीवोंने, वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर बादरनिगोदप्रतिष्ठित और उन्हींके अपर्याप्त
जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके
असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा तथा मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श
किया है ।

शंका — उक्त जीवोंने तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, यह कैसे जाना ?

१ कायानुवादेन स्थावरकायिकैः सर्वलोकः स्पृष्टः । स, सि. १, ८.

उच्चदे- एदे पुढवीओ चव अस्सिदूण अच्छंति । सञ्चपुढवीओ च सत्तरज्जुआयदाओ, पढमपुढवी सादिरेगएगरज्जुरुंदा [१] । विदियपुढवी छहि सत्तभागेहि समहियएगरज्जुरुंदा [१६] । तदियपुढवी पंच-सत्तभागाहिय वे रज्जुरुंदा [२६] । चउत्थपुढवी चत्तारि-सत्तभागाहिय-तिण्णिरज्जुरुंदा [३६] । पंचमपुढवी तिण्णिसत्तभागाहिय-चत्तारिरज्जुरुंदा [४६] । छट्ठपुढवी वे-सत्तभागाहियपंचरज्जुरुंदा [५६] । सत्तमपुढवी एग-सत्तभागाहिय-छरज्जुरुंदा [६६] । अट्ठमपुढवी सादिरेयएगरज्जुरुंदा । पढमपुढविवाहल्लं असीदिसहस्सा-हियजोयणलक्खपमाणं होदि १८०००० । विदियपुढवी वत्तीसजोयणसहस्सबाहल्ला ३२००० । तदियपुढवी अट्ठावीसजोयणसहस्सबाहल्ला २८००० । चउत्थपुढवी चउवीस-जोयणसहस्सबाहल्ला २४००० । पंचमपुढवी वीसजोयणसहस्सबाहल्ला २०००० । छट्ठपुढवी सोलसजोयणसहस्सबाहल्ला १६००० । सत्तमपुढवी अट्ठजोयणसहस्सबाहल्ला ८००० । अट्ठमपुढवी अट्ठजोयणबाहल्ला ८ । एदाओ अट्ठपुढवीओ पदरागारेण ठइदे तिरियलोगबाहल्लादो संखेज्जगुणबाहल्लं जगपदरं होदि । मारणांतिय-उववादपरिणदेहि

समाधान — ये बादर पृथिवीकायिक आदि जीव पृथिवियोंका ही आश्रय लेकरके रहते हैं । और सभी पृथिवियां सात राजुप्रमाण आयत हैं । प्रथम पृथिवी साधिक एक राजु चौड़ी है (१) । द्वितीय पृथिवी छइ बटे सात भागोंसे अधिक एक राजु चौड़ी है (१६) । तृतीय पृथिवी पांच बटे सात भागोंसे अधिक दो राजु चौड़ी है (२६) । चौथी पृथिवी चार बटे सात भागोंसे अधिक तीन राजु चौड़ी है (३६) । पांचवी पृथिवी तीन बटे सात भागोंसे अधिक चार राजु चौड़ी है (४६) । छठी पृथिवी दो बटे सात भागोंसे अधिक पांच राजु चौड़ी है (५६) । सातवीं पृथिवी एक बटे सात भागसे अधिक छइ राजु चौड़ी है (६६) । आठवीं पृथिवी कुछ अधिक एक राजु चौड़ी है (१) । प्रथम पृथिवीकी मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण है (१८००००) । द्वितीय पृथिवी बत्तीस हजार योजन मोटी है (३२०००) । तृतीय पृथिवी अट्ठाईस हजार योजन मोटी है (२८०००) । चौथी पृथिवी चौबीस हजार योजन मोटी है (२४०००) । पांचवीं पृथिवी बीस हजार योजन मोटी है (२००००) । छठीं पृथिवी सोलह हजार योजन मोटी है (१६०००) । सातवीं पृथिवी आठ हजार योजन मोटी है (८०००) । आठवीं पृथिवी आठ योजन मोटी है (८) । इन आठों पृथिवियोंको प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यंगलोकके बाहल्यसे संख्यातगुणा बाहल्यप्रमाण जगप्रतर होता है (देखो पृ. ९१) । इसलिए उक्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यंगलोकसे संख्यातगुणा है, यह जाना जाता है ।

मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने भूत, भविष्य और वर्तमान

तीदाणागदवड्डमाणकालेसु सव्वलोगो पोसिदो । कुदो ? तस्सहावचादो । तेऊणं पुढविभंगो णवरि वेउव्वियपरिणदेहि वड्डमाणकाले पंचण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तीदे तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो । तं जघा— तेउकाइया पज्जत्ता चेव वेउव्वियसरीरं उट्ठावेंति, अपज्जत्तेसु तदभावा । ते च पज्जत्ता कम्मभूमीसु चेव होंति च्चि । सयंपहपव्वदपरभागखेत्तं जगपदरे वड्डे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि च्चि । अधवा बादरतेउकाइयपज्जत्ता कम्मभूमीए उप्पणा वाउसंबंधेण संखेज्जजोयणवाहल्लं तिरियपदरं अदीदकाले सव्वमावूरिय विउव्वंति च्चि गहिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो चेव होदि । बादरतेउकाइया बादरपुढविभंगो, बादरपुढविकाइया इव बादरतेउकाइया वि सव्वपुढवीसु अच्छंति च्चि । णंवरि वेउव्वियपदस्स तेउकाइयवेउव्वियपदभंगो । वाउकाइयाणं तीदाणागदकालेसु तेउकाइयाणं भंगो । णवरि वेउव्वियस्स वड्डमाणकाले माणुसखेत्तगदविसेसो ण जाणिज्जदि । अदीदकाले वेउव्वियपरिणदेहि वाउकाइएहि तिण्हं लोमाणं संखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंदो असंखेज्जगुणो पोसिदो । सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि बादरवाउकाइएहि

इन तीनों कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, उनका यह स्पर्शनक्षेत्र स्वभावसे ही है । अग्निकायिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र पृथिवीकायिक जीवोंके समान जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि वैक्रियिकसमुद्घातपदपरिणत अग्निकायिक जीवोंने वर्तमानकालमें पाँचों प्रकारके लोकोंका असंख्यातवां भाग तथा भूतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । वह इस प्रकारसे है—

तेजस्कायिक पर्याप्त जीव ही वैक्रियिकशरीरको उत्पन्न करते हैं, क्योंकि, अपर्याप्त जीवोंमें वैक्रियिकशरीरके उत्पन्न करनेकी शक्तिका अभाव है । और वे पर्याप्त जीव कर्मभूमिमें ही होते हैं, इसलिए स्वयम्प्रभपर्वतके परभागवर्ती क्षेत्रको जगप्रतररूपसे करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है । अधवा कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव वायुके सम्बन्धसे अतीतकालमें संख्यात योजन वाहल्यवाले सर्व तिर्यक्-प्रतरको व्याप्त करके विक्रिया करते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग ही होता है । बादर तेजस्कायिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र बादर पृथिवीकायिक जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रके समान है, क्योंकि, बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान बादर तेजस्कायिक जीव भी सभी पृथिवियोंमें रहते हैं । विशेष बात यह है कि वैक्रियिकपदका स्पर्शन तेजस्कायिक जीवोंके वैक्रियिकपदके समान जानना चाहिए । वायुकायिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र अतीत और अनागतकालमें तेजस्कायिक जीवोंके समान है । विशेष बात यह है कि वर्तमानकालमें वैक्रियिकपदकी मनुष्यक्षेत्रगत विशेषता नहीं जानी जाती है । अतीतकालमें वैक्रियिकपदपरिणत वायुकायिक जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत बादरवायुकायिक जीवोंने अतीत, अनागत और

तीदाणागदवट्टमाणकालेषु तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । वेउच्चियपदस्स वट्टमाणकाले खेत्तभंगो । तीदे काले वेउच्चियपदस्स वाउकाइय-वेउच्चियभंगो । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि बादरवाउकाइएहि सव्वलोगो पोसिदो । एवं बादरवाउकाइयअपज्जत्ताणं । णवरि वेउच्चियपदं णत्थि । सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइया तेसिं पज्जत्त-अपज्जत्तएहि य सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तीदाणा-गदवट्टमाणकालेषु सव्वलोगो पोसिदो ।

बादरपुठविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदि-काइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखे-ज्जदिभागो ॥ ६७ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जघा खेत्ताणिओगदारे उत्तो तथा वत्तच्चो ।

सव्वलोगो वा ॥ ६८ ॥

एत्थ ताव ' वा ' सद्दट्ठो बुच्चदे— बादरपुठविकाइयपज्जत्त-बादरआउकाइयपज्जत्त-बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्तएहि य सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखे-

वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्य-लोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वैक्रियिकसमु-द्धातपदका स्पर्शनक्षेत्र वर्तमानकालमें क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीतकालमें वैक्रियिकसमु-द्धातपदका स्पर्शनक्षेत्र वायुकायिक जीवोंके वैक्रियिकपदके स्पर्शनके समान है । मारणान्तिक-समुद्धात और उपपादपदपरिणत बादरवायुकायिक जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है । इसी प्रकारसे बादरवायुकायिक अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शन जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि इनके वैक्रियिकसमुद्धातपद नहीं होता है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमु-द्धात और उपपादपदपरिणत सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है ।

बादर पृथिवीकायिक, बादर अष्कायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६७ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा गया है, उसी प्रकारसे कहना चाहिए । उक्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥६८॥ यहाँपर ' वा ' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्धात-परिणत बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादरनिगोदप्रतिष्ठित

झादिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। मारणंतिय-
उववादपरिणदेहि सब्वलोगो पोसिदो। बादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ताएहि य सत्थाण-
वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो। किं
कारणं? सब्वपुढवीसु बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता णत्थि, 'चित्ताए उवरिमभागो
चेव अत्थि' ति आइरियवयणादो। अधवा, पत्तेयसरीरपज्जत्ता तिरियलोगादो संखेज्जगुणं
खेत्तं पुसंति। कुदो? बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ताणं तिरियलोगादो संखेज्जगुणपोसणखेत्त-
ब्भुवगमादो। ण च पत्तेयसरीरपज्जत्तवदिरित्तबादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ता अत्थि।
बादरणिगोदपदिट्ठिदा सब्वे पत्तेयसरीरा चेवेत्ति कथं णव्वदे?

वीने जोणीभूदे जीवो वक्कमइ सो व अण्णो वा।

जे वि य मूलादीया ते पत्तेया पढमदाए ॥ १६ ॥

इदि सुत्तवयणादो णव्वदे।

पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यात-
गुणा और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात और
उपपादपदपरिणत जीवोंने सर्व लोक स्पर्श किया है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषाय-
समुद्घातपदपरिणत बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

शंका—बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके तिर्यग्लोकके संख्यातवां
भागमात्र स्पर्शनक्षेत्र होनेका क्या कारण है?

समाधान—सर्व पृथिवियोंमें बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव नहीं
होते हैं, क्योंकि, 'चित्रापृथिवीके उपरिम भागमें ही बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर
पर्याप्त जीव होते हैं' इस प्रकार आचार्योंका वचन है।

अथवा, प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रको स्पर्श करते हैं,
क्योंकि, बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंका तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा स्पर्शनक्षेत्र
स्विकार किया गया है। तथा प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंको छोड़कर बादरनिगोदप्रतिष्ठित
पर्याप्त नामके कोई अन्य जीव नहीं होते हैं। इसलिए उनका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकसे
संख्यातगुणा बन जाता है।

शंका—बादरनिगोदप्रतिष्ठित जीव सभी प्रत्येक शरीरी ही होते हैं, यह कैसे जाना?

समाधान—'योनीभूत बीजमें वही पूर्व पर्याप्तवाला जीव अथवा अन्य दूसरा भी
जीव संक्रमण करता है। और जो बीज मूलादिक बादरनिगोदप्रतिष्ठित वनस्पतिकायिक
जीव हैं वे सब प्रथम अवस्थामें प्रत्येकशरीर ही होते हैं ॥ १६ ॥

इस सूत्रवचनसे जाना जाता है कि बादरनिगोदप्रतिष्ठित जीव सभी प्रत्येक शरीरी
ही होते हैं।

बादरणिगोदपदिद्विदपज्जत्ता सव्वासु पुढवीसु अत्थि त्ति कधं णव्वदे ? सव्वपुढवीसु विज्जमाणपुढविकाइयपज्जत्तपोसणेण सह एगत्तेणुवदिद्वुअसंखेज्जाणि तिरियपदराणि त्ति वक्ख्खाणवयणादो णव्वदे । तम्हा पत्तेयसरीरपज्जत्तेहि पोसिदखेत्तेण तिरियलोगादो संखेज्जगुणेण होदव्वमिदि । जधा पत्तेयसरीरवणप्फदिकाइयपज्जत्ता सव्वासु पुढवीसु होंति, तथा बादरआउकाइयपज्जत्तेहि वि सव्वासु पुढवीसु होदव्वं । अधवा बादरणिगोदपदिद्विदपज्जत्तपत्तेगसरीरा चैव सव्वपुढवीसु होंति । बादरणिगोदानमजोणीभूदपत्तेयसरीरपज्जत्ता चित्ताए उवरिमभागे चैव होंति त्ति कड्डु बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ते बादरणिगोदानमजोणीभूदे चैव घेत्तूण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो त्ति घेत्तव्वं । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो पोसिदो । एवं बादरतेउकाइयपज्जत्ताणं पि वत्तव्वं । णवरि वेउव्वियस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो वत्तव्वो ।

**बादरवाउपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स संखेज्जदि-
भागो ॥ ६९ ॥**

शंका—बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं, यह कैसे जाना ?

समाधान—‘सर्व पृथिवियोंमें विद्यमान पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंके स्पर्शनके साथ एकत्वसे उपदिष्ट असंख्यात तिर्यक् प्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र होता है’ इस प्रकारके व्याख्यानवचनसे जाना जाता है कि बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं ।

इसलिए प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंसे स्पृष्ट क्षेत्र तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा होना चाहिए । जिस प्रकारसे प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव सभी पृथिवियोंमें होते हैं, उसी प्रकारसे बादर जलकायिक पर्याप्त जीव भी सभी पृथिवियोंमें होना चाहिए । अथवा, बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त प्रत्येकशरीरवाले जीव ही सर्व पृथिवियोंमें होते हैं । बादरनिगोदके अयोनीभूत प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीव त्रिन्ना पृथिवीके उपरिम भागमें ही होते हैं, इसलिए बादर निगोदोंके अयोनीभूत बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीव ही ग्रहण करके अर्थात् उनकी अपेक्षा ‘तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है’ ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदपरिणत जीवोंने सर्व लोक स्पर्श किया है । इसी प्रकारसे बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि तेजस्कायिक जीवोंके वैकियिकसमुद्धात पदका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है, ऐसा कहना चाहिए ।

बादरवायुकायिक पर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जघा खेत्ताणिओगदारे उत्तो तथा वत्तव्वो, वट्ठमाणकाल-
मस्सिदूण ड्ढिट्ठादो ।

सव्वलोगो वा ॥ ७० ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि तिण्हं लोमाणं संखेज्जदिभागो,
दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो । मारणंतिय-उववादपदपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो ।

वणप्फदिकाइयणिगोदजीववादरसुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केव-
डियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ॥ ७१ ॥

वणप्फदिकाइयणिगोदजीवसुहुमपज्जत्त-अपज्जत्तएहि सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणं-
तिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो पोसिदो । बादरवणप्फदिकाइय-
बादरणिगोद-तेसिं पज्जत्त-अपज्जत्तएहिं सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिसु वि कालेसु

इस सूत्रका अर्थ जैसा क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा है, उसी प्रकारसे यहां पर कहना
चाहिए, क्योंकि, धर्तमानकालको आश्रय करके यह सूत्र स्थित है अर्थात् कहा गया है ।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक
स्पर्श किया है ॥ ७० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्धातपरिणत उक्त जीवोंने
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन
दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपद-
परिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है ।

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक बादर जीव, वनस्पति-
कायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक बादर
अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त
जीव, निगोद बादर पर्याप्त जीव, निगोद बादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त
जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श
किया है ॥ ७१ ॥

स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद, इन पक्षोंसे परिणत
वनस्पतिकायिक निगोद जीव और उनके सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने तीनों ही
कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्धातपदपरिणत बादर वन-
स्पतिकायिक, बादर निगोद उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सामान्य-

तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सच्चलोगो पोसिदो ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि-केवलि ति ओघं ॥ ७२ ॥

वट्टमाणकालमदीदकालं च अस्सिदूण जधा ओघमिह सासणादिगुणाणं परूवणा कदा, तथा एत्थ वि कादच्चा । णवरि मिच्छाइट्ठीणं पंचिदियमिच्छादिट्ठिभंगो, मारणंतिय-उववादपदं मोत्तूण अणत्थ सच्चलोगत्ताभावा ।

तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिदियअपज्जत्ताणं भंगो ॥ ७३ ॥

वट्टमाणकालमस्सिदूण जधा पंचिदियअपज्जत्ताणं परूवणा कदा, तथा एत्थ वि वट्टमाणकालमस्सिदूण परूवणा कादच्चा । जधा अदीदकालमस्सिदूण सत्थाण-वेदण-कसायपदेहि तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो

लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है ।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ७२ ॥

वर्तमानकाल और अतीतकालको आश्रय करके जैसी ओघ स्पर्शनप्ररूपणामें सासाधन भादि गुणस्थानोंकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहांपर भी करना चाहिए । विशेष बात यह है कि त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा पंचेन्द्रियमिथ्यादृष्टि जीवोंके समान जानना चाहिए, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदको छोड़कर अन्यत्र अर्थात् शेष पदोंमें सर्वलोकप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रका अभाव है ।

त्रसकायिक लब्धपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र पंचेन्द्रियलब्धपर्याप्त जीवोंके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ७३ ॥

वर्तमानकालका आश्रय करके जिस प्रकारसे पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त जीवोंकी स्पर्शन-प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहांपर भी वर्तमानकालका आश्रय करके स्पर्शनप्ररूपणा करना चाहिए । तथा जैसे अतीतकालका आश्रय करके स्वस्थान, वेदना और कपायसमुद्धात-परिणत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां

असंखेज्जगुणो, मारणंतिय-उववादपदेहि सव्वलोगो पोसिदो सि पंचिदियअपज्जत्ताणं परूवणा कदा, तथा एत्थ वि कायच्चा ।

एवं कायमगणा समत्ता ।

**जोगाणुवादेण पंचमणजोगि पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केव-
डियं खेतं पोसिदं, लोमस्स असंखेज्जदिभागो' ॥ ७४ ॥**

एदं सुत्तं वट्टमाणकालमस्सिदूणं द्विदिमिदि एदस्स परूवणं कीरमाणे जधा खेत्ताणि-
ओगहारे पंचमण-वचिजोगिमिच्छादिट्ठीणं परूवणा कदा, तथा एत्थ वि मंदबुद्धिसिस्स-
संभालणट्ठं परूवणा कादच्चा ।

अट्ट चोहसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ॥ ७५ ॥

पंचमण-पंचवचिजोगिमिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोमाणमसंखे-
ज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो ।
एत्थ सत्थाणखेत्ताणयणविधानं जाणिय कादव्वं । एसो ' वा ' सहसूचिदत्थो । विहार-

भाग और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, तथा मारणान्तिकसमुदात्त और उपवादपदपरिणत जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, इसप्रकारसे जैसी पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहांपर भी स्पर्शनप्ररूपणा करना चाहिए ।

इसप्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥७४॥

यह सूत्र वर्तमानकालका आश्रय करके स्थित है, इसलिए इसकी प्ररूपणा करनेपर जैसी क्षेत्रानुयोगद्वारमें पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी मंदबुद्धि शिष्योंके संभालनेके लिए स्पर्शनप्ररूपण करना चाहिए ।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ७५ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रके निकालनेका विधान जान करके करना चाहिए । यह ' वा ' शब्दसे सूचित अर्थ है । विहार-

१ योगानुवादेन वाङ्मानसयोगिमिमिथ्यादृष्टिमिलोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देवोनाः सर्व-
लोको वा । स. सि. १, ८.

वेदण-कसाय-वेउच्चियपरिणेदेहि अट्ट चोदसभागा देसुणा पोसिदा । घणलोगमट्टभागूण-
तेदालीसरूवेहि छिण्णेगभागो, अधोलोमं साद्धचउच्चीसरूवेहि छिण्णेगभागो, उट्टलोगमट्ट-
भागूणसाद्धद्वारस रूवेहि छिण्णेगभागो, णर-तिरियलोगेहिंती असंखेज्जगुणो पोसिदो ति
जं उच्चं होदि । मारणंतियपदेण सच्चलोगो पोसिदो ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं ॥ ७६ ॥

वट्टमाणकालमस्सिदूण जघा खेत्ताणिओगद्वारस्स ओघमिह एदेसिं चदुण्हं गुण-
ट्टाणाणं खेत्तपरूवणा कदा, तथा एत्थ वि सिस्ससंभालणट्ठं परूवणा कादव्वा; णत्थि कोइ
विसेसो । अदीदकालमस्सिदूण जघा पोसणाणिओगद्वारस्स ओघमिह तीदाणागदकालेसु

वस्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह
(१४) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि घनाकार लोकको आठवें भागसे कम तैतालीस (४२)
रूपोंसे विभक्त करने पर एक भाग, अथवा अधोलोकको साढ़े चौबीस (२४) रूपोंसे
विभक्त करने पर एक भाग, अथवा ऊर्ध्वलोकको आठवें भागसे कम साढ़े अठारह (१८)
रूपोंसे विभक्त करने पर एक भाग प्रमाण होता है । अर्थात् उक्त तीनों ही पद्धतियोंसे क्षेत्र
निकालने पर वही देशोन आठ राजु प्रमाण आ जाता है ।

उदाहरण—(१) घनलोक- $३४३ \div \frac{३४३}{८} = ८$ राजु.

(२) अधोलोक- $१९६ \div \frac{४९}{२} = ८$ राजु.

(३) ऊर्ध्वलोक- $१४७ \div \frac{१४७}{८} = ८$ राजु.

इसप्रकार सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और नरलोक तथा
तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकपदपरिणत जीवोंने सर्वलोक
स्पर्श किया है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-
स्थानवर्ती पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान
है ॥ ७६ ॥

वर्तमानकालका आश्रय करके जैसी क्षेत्रानुयोगद्वारके ओघमें इन चारों गुणस्थानोंकी
क्षेत्रप्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी शिष्योंके संभालनेके लिए स्पर्शनप्ररूपणा
करना चाहिए । इसके अतिरिक्त अन्य कोई विशेषता नहीं है । अतीतकालका आश्रय करके
जैसी स्पर्शानुयोगद्वारके ओघमें अतीत और अनागत कालोंकी अपेक्षा इन चार गुणस्थान-

१ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादानां क्षणिकषायान्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

एदेहि चदुगुणट्टाणजीवेहि लुत्तखेत्तपरूवणा कदा, तथा एत्थ वि कादव्वा, विसेसाभावा ।
णवरि सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीसु उत्रवादे। णत्थि, उत्रवादेण पंचमण-वचि-
जोगाणं सहअणवट्टाणलक्खणविरोहा ।

पमतसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७७ ॥

एदेसिमट्ठणं गुणट्टाणाणं जधा पोसणाणिओगदारस्स ओघमिह तिण्णि काले
अस्सिदूण परूवणा कदा, तथा एत्थ वि कादव्वा । जदि एवं, तो सुत्ते ओघमिदि किण्ण
परूविदं ? ण, तथा परूवणाए कायजोगाविणाभाविसजोगिचउत्तिहसमुग्घादखेत्तपडिसेह-
फलत्तादे ।

वर्ती जीवोंने स्पर्शित क्षेत्रकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी करना चाहिए,
क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है । विशेष बात यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टि और
असंयतसम्यग्दृष्टियोंमें उपपादपद नहीं होता है, क्योंकि, उपपादके साथ पांचों मनोयोग
और पांचों वचनयोगोंका सहानवस्थानलक्षण विरोध है, अर्थात् उपपादमें उक्त योग संभव
नहीं है ।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सजोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती
उक्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया
है ॥ ७७ ॥

इन आठों गुणस्थानोंकी स्पर्शनानुयोगद्वारके ओघमें तीनों कालोंका आश्रय करके
जैसी स्पर्शनप्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी करना चाहिए ।

शंका—यदि ऐसा है, तो सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी प्ररूपणा काययोगके अविनाभावी सयोगि-
केवलीके चारों प्रकारके समुद्घातक्षेत्रके प्रतिषेध करनेके लिए है ।

विशेषार्थ—यदि सूत्रमें 'असंखेज्जदिभागो' पदके स्थान पर 'ओघ' ऐसा पद
दिया जाता तो केवल मनोयोगी और वचनयोगियोंका स्पर्शनक्षेत्र बताते समय, जो केवल
काययोगके निमित्तसे ही केवलीके समुद्घात होता है जिसका कि स्पर्शनक्षेत्र लोकका
असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है, उसका प्रतिषेध नहीं हो पाता; अर्थात्
अनिष्ट प्रसंग उपस्थित हो जाता । उसी अनिष्टापत्तिके प्रतिषेधके लिए सूत्रमें 'ओघ' पद न
देकर 'असंखेज्जदिभागो' पद दिया है ।

१ सयोगकेवलिना लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ७८ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-मारणंतिय-उववादपरिणदकायजोगिमिच्छा-दिट्ठीणं तिसु वि कालेसु सव्वलोगत्तुवलंभादो, विहारवदिसत्थाण-वेउच्चियपदेहि वट्टमाण-काले तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तेण, माणुसखेत्तादो असंखेज्जदिगुणत्तेण; अदीदकाले अट्ट-चौदसभागत्तेण च तुल्लत्तुवलंभादो, सुत्तेण ओघ-मिदि उत्तं ।

सासणसम्मादिट्ठिण्हुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ॥ ७९ ॥

एदेसिमेक्कारसण्हं गुणट्टाणाणं तिविहं कालमस्सिदूण सत्थाणादिपदानं परूवणा कीरमाणे पोसणाणिओगहारोघमिह जघा तिविहकालमस्सिदूण एक्कारसण्हं गुणट्टाणाणं सत्थाणादिपरूवणा कदा, तथा कादव्वा; णत्थि एत्थ कोवि विसेसो ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ८० ॥

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥७८॥ स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद-पदपरिणत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र तीनों ही कालोंमें सर्वलोक पाया जाता है। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागसे, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागसे, और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रकी अपेक्षा, तथा अतीतकालमें आठ बटे चौदह (१४) भागप्रमाण स्पर्शनसे तुल्यता पाई जाती है, इसलिये सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती काययोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ७९ ॥

इन ग्यारह गुणस्थानोंकी तीनों कालोंको आश्रय करके स्वस्थानादि पदोंकी प्ररूपणा करने पर स्पर्शनानुयोगद्वारके ओघमें जिस प्रकारसे तीनों कालोंका आश्रय लेकर ग्यारह गुणस्थानोंकी स्वस्थानादि पदसम्बन्धी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी करना चाहिए, क्योंकि, यहां पर कोई विशेषता नहीं है।

काययोगी सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है ॥ ८० ॥

१ काययोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादीनां सयोगिकेवल्यानामयोगिकेवल्लिनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् । अ. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स पुधारंभो किंफलो ? ण, सजोगिकेवलि-चत्तारिसमुग्घादा काय-जोगाविणाभाविणो त्ति मंदमेहाविजणावबोहणफलत्तादो । एगजोगं कादूण ओघमिदि उत्ते वि ओघत्तण्णहाणुववत्तीदो कायजोगी वि चदुण्हं समुग्घादाणमत्थित्तं परिच्छिज्जदे चे, ण एस दोसो, ओघमिदि उत्ते इमाणि पदाणि अत्थि, इमाणि च णत्थि त्ति (ण) णव्वदे । जाणि संभवन्ति पदाणि तेसिं परूवणाओ ओघपरूवणाए तुल्ला त्ति एत्तियमेत्तं चेव णव्वदे । तेण पुध सुत्तारंभो कायजोगिभिह चउच्चिहसमुग्घादाणमत्थित्तपदुप्पायणफलो त्ति ।

ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८१ ॥

दव्वट्टियपरूवणाए ओघत्तं जुज्जदे । पज्जवट्टियपरूवणाए पुण ओघत्तं णत्थि, ओरालियजोगे णिरुद्धे विहार-वेउच्चियपदाणमट्ठ-चोइसभागत्ताणुवलंभादो । तदो एत्थ भेदपरूवणा कीरदे— सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतियपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो पोसिदो । उववादो णत्थि, दोण्हं सहाणवट्ठाणलक्खणविरोहा । वट्ठमाणकाले

शंका— इस सूत्रके पृथक् आरम्भ करनेका क्या फल है ?

समाधान— ऐसा नहीं कहना, क्योंकि, सयोगिकेवलीमें दंड, कपाटादि चारों समुद्घात काययोगके अविनाभावी होते हैं, इस बातका मंदमेधावी जनोंको ज्ञान करानेके लिए इस सूत्रका पृथक् निर्माण किया गया है, और यही सूत्रके पृथक् निर्माणका फल है।

शंका— पूर्वसूत्र और इस सूत्रका एक योग अर्थात् एक समास करके 'ओघ' ऐसा कहने पर भी ओघत्व-अभ्यथानुपपत्तिसे काययोगी सयोगिकेवलीमें दंड-कपाटादि चारों समुद्घातोंका अस्तित्व जाना जाता है, फिर पृथक् सूत्र-निर्माणकी क्या उपयोगिता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, 'ओघ' ऐसा कहनेपर भी ये अमुक विवक्षित पद होते हैं, और ये अमुक पद नहीं होते हैं, ऐसा, विशेष नहीं जाना जाता है। किन्तु जो पद संभव हैं उनकी प्ररूपणाएं ओघप्ररूपणाके साथ समान होती हैं, इतनामात्र ही जाना जाता है। इसलिये पृथक् सूत्रका आरंभ काययोगी सयोगिकेवलीमें चारों प्रकारके समुद्घातोंका अस्तित्व प्रतिपादन करनेरूप फलके लिए है।

औदारिककाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्व-लोक है ॥ ८१ ॥

द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणामें तो ओघपना घटित होता है, किन्तु पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणामें ओघपना घटित नहीं होता है, क्योंकि, औदारिककाययोगके निरुद्ध करनेपर विहारवस्वस्थान और वैकियिक पदोंके स्पर्शनका क्षेत्र आठ बड़े चौबह (१४) भाग नहीं पाया जाता है। इससे यहाँपर भेदप्ररूपणा की जाती है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और मारणान्तिकपदपरिणत औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है। यहाँपर उपपादपद नहीं है, क्योंकि, औदारिककाययोग और उपपादपद, इन दोनोंका सहानवस्थानलक्षण विरोध है। वर्तमानकालमें वैकियिकपदपरिणत

वेउव्वियपरिणदेहि च्चदुहं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । तीदाणागदेसु तिण्हं लोमाणं संखेज्जदिभागो, दोलोगेहितो असंखेज्जगुणो, वाउक्काइय-वेउव्वियफोसणस्स पाधण्णवित्रक्खाए । विहारपरिणदेहि ओरालियकायजोगिमिच्छादिट्ठीहि बट्टमाणकाले तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो ।

**सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ ८२ ॥**

एदस्स बट्टमाणकालसंबंधिसुत्तस्स खेत्ताणिओगदारे ओरालियकायजोगिसासण-सुत्तस्सेव परूवणा कादव्वा ।

सत्त चोदसभागा वा देसूणा ॥ ८३ ॥

सत्थानसत्थान-विहारवदिसत्थान-वेदण-कषाय-वेउव्वियपरिणदेहि सासणसम्मा-

इत्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अतीत और अनागत, इन दोनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग, और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहां पर वायुकायिक जीवोंके वैक्रियिकपद-सम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रकी प्रधानतासे विवक्षा की गई है । विहारवत्स्वस्थानपदसे परिणत औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । उन्हीं जीवोंने अतीतकाल और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

औदारिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८२ ॥

इस वर्तमानकालसम्बन्धी सूत्रकी क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहे गये औदारिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी क्षेत्रप्ररूपणा करनेवाले सूत्रके समान स्पर्शनप्ररूपणा करना चाहिए ।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ८३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत

दिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । उववादो णत्थि । मारणंतियपरिणदेहि सत्त चोइसभागा देसुणा पोसिदा । केण उणा ? इसिपभारपुठवीए उवरिमबाहल्लेण ।

**सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ ८४ ॥**

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्ताणिओगहारोरालियकायजोगसम्मामिच्छादिट्ठिसुत्त-
परूवणाए तुह्हा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियपरिणदेहि ओरा-
लियसम्मामिच्छादिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । मारणंतिय-उववादा णत्थि ।

**असंजदसम्मादिट्ठीहि संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८५ ॥**

सासादनसम्यग्दृष्टियोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका
संख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इन जीवोंके उपपाद-
पद नहीं होता है । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह (१४)
भाग स्पर्श किये हैं ।

शंका—यहांपर कुछ कमसे कितना कम क्षेत्र समझना चाहिए ?

समाधान—ईषत्प्राग्भार पृथिवीके उपरिम भागके बाह्यप्रमाणसे कुछ कम क्षेत्र
समझना चाहिए ।

औदारिककाययोगी सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८४ ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रानुयोगद्वारमें वर्णित औदारिककाययोगी सम्यग्मिध्यादृष्टि-
योंके क्षेत्रका वर्णन करनेवाले सूत्रकी प्ररूपणाके तुल्य है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान,
वेदना, कषाय और वैकृतिकपदपरिणत औदारिककाययोगी सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंने
अतीत और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,
तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । औदा-
रिककाययोगी सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद
नहीं होते हैं ।

औदारिककाययोगी, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र
स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८५ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउन्विय-मारणंतियपरिणदेहि असं-
जदसम्मादिट्ठीहि संजदासंजदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्ज-
गुणो वड्डमाणद्वाण फोसिदो ।

छ चोहसभागा वा देसूणा ॥ ८६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउन्वियपरिणदेहि असंजदसम्मा-
दिट्ठीहि संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो,
अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो । एसो 'वा' सहस्रचिदत्थो । मारणंतिय (-उववाद-)
परिणदेहि छ चोहसभागा देसूणा पोसिदा, अच्चुदकप्पादो उवरि असंजदसम्मादिट्ठि-
संजदासंजदाणमुववादाभावादो ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेतं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८७ ॥

एदेसिमड्डण्हं गुणद्वानाणं तिण्णि वि काले अस्सिदूण परूवणं कीरमाणे खेत-

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक-
समुद्धातपदपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि चार
लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श
किया है ।

औदारिककाययोगी उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत और अनागत-
कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ८६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्धात, इन पदोंसे
परिणत औदारिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन
लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अर्द्धाद्वीपसे असंख्यातगुणा
क्षेत्र स्पर्श किया है । यह 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद-
पदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{1}{4}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि,
अच्युतकरूपसे ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंका उपपाद नहीं होता है ।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती
औदारिककाययोगी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग
स्पर्श किया है ॥ ८७ ॥

इन आठों गुणस्थानोंकी तीनों ही कालोंका आश्रय करके स्पर्शनप्रकृपणा करनेपर

पोसणाणं मूलोघपमत्तादिपरुवणाए समाणा परुवणा कादच्चा । णवरि सजोगिकेवलिहि क्वाड-पदर-लोगपूरणाणि णत्थि' । तं कथं णव्वदे ? सजोगिकेवलीहि लोगस्स असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा फोसिदो चि सुत्तेण अणिहिट्टत्तादो ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८८ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि ओरालियमिस्सकाय-जोगिमिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु जेण सव्वलोगो फोसिदो, तेण ओघत्तमेदेसि ण विरुज्जदे । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदाणमेत्थाभावा गोघत्तं जुज्जदे ? होदु णाम

क्षेत्र और स्पर्शन अनुयोगद्वारके मूलोघ प्रमत्तादि गुणस्थानोंकी प्ररूपणाके समान प्ररूपणा करना चाहिए । विशेष बात यह है कि सयोगिकेवली गुणस्थानमें कपाट, प्रतर और लोकपूरणसमुद्धात नहीं होते हैं, (क्योंकि, औदारिककाययोगकी अवस्थामें केवल एक दंडसमुद्धात ही होता है ।)

शंका—यह कैसे जानते हैं कि औदारिककाययोगी सयोगिकेवलीके कपाट आदि तीन समुद्धात नहीं होते हैं ?

समाधान — ' यह बात सयोगिकेवलियोंने लोकका असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ' इस सूत्रसे निर्दिष्ट नहीं की गई है । (अतः हम जानते हैं कि औदारिककाययोगी सयोगिजिनमें कपाटादि तीन समुद्धात नहीं होते हैं ।)

विशेषार्थ—औदारिककाययोगकी अवस्थामें केवल एक दंडसमुद्धात ही होता है ' कपाटसमुद्धात आदि नहीं । इसका कारण यह है कि कपाटसमुद्धातमें औदारिकमिश्रकाययोग, और प्रतर तथा लोकपूरणसमुद्धातमें कर्मणकाययोग होता है, ऐसा नियम है । इसलिए यहाँ, औदारिककाययोगकी प्ररूपणा करते समय सयोगिकेवलीमें कपाट, प्रतर और लोकपूरणसमुद्धात नहीं होते हैं, ऐसा कहा है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ८८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपक्षपरिणत औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें चूंकि सर्वलोक स्पर्श किया है, इसलिए ओघपना इन पदोंवाले जीवोंसे विरोधको प्राप्त नहीं होता है ।

शंका—औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्धात, इन दो पदोंका अभाव होनेसे ओघपना नहीं बनता है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' पद नहीं देना चाहिए ?

समाधान—औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमु-

१ ओरालं दंडुगे क्वाड्जुगले य तस्स मिस्सं तु । पदरे य लोगपूरे कम्मव य होदि णायव्वो ॥
नो. क. ५८७.

एदेसिं दोण्हं पि पदाणमभावो, तथावि पदसंखाविवक्खाभावा विज्जमाणपदानं फोसणस्स ओघपदफोसणेण तुल्लत्तमत्थि च्चि ओघत्तं ण विरुज्जेद ।

सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८९ ॥

एदेसिं तिण्हं गुणद्वानाणं वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो । सत्थाणसत्थाण-वेदण कप्पाय-उववादपरिणदओरालियमिस्ससासणसम्मादिट्ठीहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो । कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं ? देव-णेरइयमणुस्स-तिरिक्खसासणसम्मादिट्ठीहि तिरिक्खमणुस्सेसुप्पज्जिय सरीरं घेत्तूण ओरालियमिस्सकायजोगेण सह सासणगुणमुव्वहंतेहि अदीदकाले संखेज्जगुल-बाहल्लरज्जुपदरं मज्झल्लसमुद्वज्जं सर्व्वं जेण फुसिज्जदि तेण तिरियलोगस्स संखेज्जदि-भागो च्चि वयणं जुज्जेद । एत्थ विहार-वेउच्चिय-मारणंतिय-पदाणि णत्थि, एदेसिमोरालिय-मिस्सकायजोगेण सहअवट्टाणविरोहा । उववादो पुण अत्थि, सासणगुणेण सह अकमेण

ज्ञात, इन दो पदोंका अभाव भले ही रहा आवे, तथापि पदोंकी संख्याकी विवक्षा न करनेसे उनमें विद्यमान पदोंके स्पर्शनकी ओघपदके स्पर्शनके साथ तुल्यता है ही, इसलिए ओघपना विरोधको प्राप्त नहीं होता है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८९ ॥

इन तीनों ही गुणस्थानोंके स्पर्शनकी वर्तमानकालिक प्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कपायसमुद्धात और उपपादपदपरिणत औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका — तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे कहा ?

समाधान—चूंकि देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने (यथासंभव) तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर शरीरको ग्रहण करके औदारिकमिश्रकाय-योगके साथ सासादनगुणस्थानको धारण करते हुए अतीतकालमें बीचके समुद्रको छोड़कर संख्यात अंगुल बाह्यबाले सम्पूर्ण राजुप्रतररूप क्षेत्रका स्पर्श किया है, इसलिए 'तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग' यह वचन युक्तियुक्त है ।

यहां पर विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिक पद नहीं होते हैं, क्योंकि, इन पदोंका औदारिकमिश्रकाययोगके साथ अवस्थानका विरोध है । किन्तु उपपादपद होता है, क्योंकि, सासादनगुणस्थानके साथ अक्रमसे (युगपत्) उपात्त भवशरीरके प्रथम समयमें

उवात्तभवसरीरपढमसमए उववादोवलंभा । मिच्छादिद्वीणं पुण मारणंतिय-उववादपदाणि लब्भन्ति, अणंतो ओरालियमिस्सेइंदियअपज्जत्तरासी सट्टाणे परट्टाणे च वक्कमणोवक्कमणं करेमाणो लब्भदि त्ति । सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदेहि असंजदसम्मादिद्वीहि ओरालियमिस्सकायजोगीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं ? ण, पुव्वं तिरिक्ख-मणुस्सेसु आउअं बंधिय पच्छा सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय बद्धाउवसेण भोगभूमिसंठाणअसंखेज्जदीविसु उत्पण्णेहि भवसरीरग्गहणपढमसमए वट्ट-माणेहि ओरालियमिस्सकायजोगअसंजदसम्मादिद्वीहि अदीदकाले पोसिदतिरियलोगस्स संखेज्जदिभागुवलंभा । कवाडगदेहि सजोगिकेवलीहि ओरालियमिस्सकायजोगे वट्टमाणेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्ज-गुणो; अदीदेण तिरियलोगादो संखेज्जगुणो पोसिदो । एत्थ कवाडखेत्तादो जगपदरुप्पा-यणविधानं जाणिय वत्तव्वं ।

उपपाद् पाया जाता है । मिथ्यादृष्टि जीवोंके भी मारणान्तिक और उपपादपद पाये जाते हैं, क्योंकि, अनन्तसंख्यक औदारिकमिश्रकाययोगी एकेन्द्रिय अपर्याप्त राशि, स्वस्थान और परस्थानमें अपक्रमण और उपक्रमण करती हुई, अर्थात् जाती आती, पाई जाती है । स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कषायसमुद्घात और उपपादपदपरिणत औदारिकमिश्रकाययोगी असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईदीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका— औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंके उपपादक्षेत्रको तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे कहा ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, पूर्वमें तिर्यच और मनुष्योंमें आयुको बांधकर पीछे सम्यक्को ग्रहण कर, और दर्शनमोहनीयका क्षय करके बांधी हुई आयुके वशसे भोगभूमिकी रचनावाले असंख्यात द्वीपोंमें उत्पन्न हुए, तथा, भव-शरीरके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें वर्तमान, ऐसे औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा अतीतकालमें स्पर्श किया गया क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग पाया जाता है ।

कपाटसमुद्घातको प्राप्त, औदारिकमिश्रकाययोगमें वर्तमान सयोगिकेवलियोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईदीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अतीतकालकी अपेक्षासे तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहाँ पर कपाटसमुद्घातगत क्षेत्रकी अपेक्षासे स्पर्शन-क्षेत्रसम्बन्धी जगप्रतरके उत्पादनका विधान जान करके कहना चाहिए । (इसके लिए देखो क्षेत्रप्ररूपणा पृ. ४९ आदि) ।

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेतं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९० ॥

एदं सुत्तं जेण वडुमाणकाले पडिबद्धं तेणेदस्स वक्खाणे कीरमाणे जघा खेत्ताणि-
ओगहारे वेउव्वियकायजोगिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि-बद्धसुत्तस्स वक्खाणं कदं, तथा एत्थ
वि कायव्वं ।

अट्ट तेरह चौदसभागा वा देसूणा ॥ ९१ ॥

सत्थाणसत्थाणपरिणद-वेउव्वियमिच्छादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-
वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ट चौदसभागा फोसिदा । उववादो णत्थि । मारणंतिय-
परिणदेहि तेरह चौदसभागा फोसिदा, हेट्टा छ, उवरि सत्त रज्जू । घणलोगमेगरूवस्स अट्ट-
तेरसभागूण-सत्तावीसरूवेहि खंडिदएगखंडं फोसंति त्ति वुत्तं होइ ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९० ॥

चूंकि यह सूत्र वर्तमानकालसे सम्बद्ध है, इसलिए इसका व्याख्यान करने पर जिस प्रकारसे क्षेत्रानुयोगद्वारमें वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि आदिक जीवोंसे प्रतिबद्ध सूत्रका व्याख्यान किया है, उसी प्रकारसे यहां पर भी करना चाहिए ।

वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह, और कुछ कम तेरह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ९१ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, और वैक्रियिक-समुद्घातपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{१६}{३}$) भाग स्पर्श किये हैं । यहां पर उपपादपद नहीं होता है, (क्योंकि, मिश्रयोग और कार्मणकाययोगके सिधाय अन्य योगोंके साथ उपपादपदका सहान्वयस्थानलक्षण विरोध है) । मारणान्तिकसमुद्घातपद-परिणत उक्त जीवोंने (कुछ कम) तेरह बटे चौदह ($\frac{१६}{३}$) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि मेरु-तलसे नीचे छह राजु और ऊपर सात राजु जानना चाहिए । घनाकारलोकको एक रूपके आठ बटे तेरह ($\frac{१६}{३}$) भागसे कम सत्ताइस (२६ $\frac{२}{३}$) रूपोंसे खंडित (विभक्त) करने पर एक खंड प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श करते हैं, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ९२ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो । सत्थाणसत्थाणपरिणदवेउच्चियकायजोगि-
सासणसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाह-
ज्जादो असंखेज्जगुणो । एत्थ तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागपरूवणं पुच्चं व वत्तच्चं ।
विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियपरिणदेहि अट्ट चोइसभागा फोसिदा । उववादो
णत्थि । मारणंतियपरिणदेहि वारह चोइसभागा फोसिदा । तेणोघमिदि जुज्जे ।

सम्भामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ९३ ॥

जेणेदेसिं वट्टमाणपरूवणा खेत्तोघपरूवणाए तुल्ला, तेणोघं होदि । अदीदपरूवणा
वि फोसणोघेण तुल्ला । तं जहा— सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-
वेदण-कसाय-वेउच्चिय-मारणंतियपरिणदेहि अट्ट चोइसभागा देसणा फोसिदा । असंजद-

वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघस्पर्शनके
समान है ॥ ९२ ॥

इस सूत्रकी वर्तमान स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान-
पदपरिणत वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन
लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा
क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागकी प्ररूपणा पूर्वके समान ही
करना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत
वैक्रियिककाययोगी जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । इनके
उपपादपद नहीं होता है । मारणान्तिकसमुद्घातपदसे परिणत उक्त जीवोंने वारह बटे चौदह
(१४) भाग स्पर्श किये हैं । इसलिए सूत्रमें दिया गया ' ओघ ' यह पद युक्तिसंगत है ।

वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन
ओघके समान है ॥ ९३ ॥

चूंकि इन दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रसम्बन्धी
ओघप्ररूपणाके तुल्य है, इसलिए उनकी स्पर्शनप्ररूपणा ओघके तुल्य होती है । अतीत-
कालिक स्पर्शनप्ररूपणा भी ओघस्पर्शनप्ररूपणाके समान है । वह इस प्रकारसे है— स्वस्थान-
स्वस्थानपदपरिणत वैक्रियिककाययोगी सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपसे
असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और
मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

सम्मादिट्टिस्स उववादो णत्थि । सम्मामिच्छादिट्टिस्स मारणंतिय-उववादो णत्थि । तेणेत्थ वि ओघत्तमेदेसिं जुज्जे ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्टि-सासणसम्मादिट्टि-असं-
जदसम्मादिट्टिहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ ९४ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो । सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय उववाद-
परिणदवेउव्वियमिस्सकायजोगिमिच्छादिट्टिहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-
वेउव्विय-मारणंतियपदाणि णत्थि । सासणसम्मादिट्टिस्स वि एवं चेव वत्तच्चं, वाणवेंतर-
जोदिसियदेवाणमसंखेज्जावासेसु तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमोट्टुहिय ट्टिदे सासणाण-
मुप्पत्तिदंसणादो । असंजदसम्माइट्टिहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदेहि
चउण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, वाणवेंतर-जोदिसिय-

वैक्रियिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपादपद नहीं होता है । वैक्रियिककाययोगी
सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं । इसलिय
यहां पर भी ओघपना बन जाता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयत-
सम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श
किया है ॥ ९४ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थान,
वेदना, कषाय और उपपादपदपरिणत वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने भतीत-
कालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग,
और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके
विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात, ये पद नहीं होते हैं । सासादनसम्य-
ग्दृष्टि गुणस्थानकी भी स्पर्शनप्ररूपणा इसी प्रकारसे कहना चाहिए । तिर्यग्लोकके संख्यातवें
भागको व्याप्त करके स्थित चानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके असंख्यात आवासोंमें सासा-
दनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति देखी जाती है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और उप-
पादपदपरिणत वैक्रियिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार
लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि,

भवनवासिएसु एदेसिमुववादाभावा; सम्मादिट्टिउववादपाओग्गसोधम्मदिउवरिमविमाणणं तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे चेव अवट्टाणादो ।

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदेहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९५ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेतभंगा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि आहारकायजोगिपमत्तसंजदेहि तीदे काले चदुहं लोगाणमसंखेज्जदि-भागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । उववाद वेउच्चियं णत्थि । मारणंतिय-परिणदेहि चदुहं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो । आहारमिस्स-कायजोगिपमत्तसंजदेहि सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि चदुहं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९६ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदेहि मिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु

धानव्यन्तर, ज्योतिष्क और भवनवासी देवोंमें इनका, अर्थात् वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंका, उपपाद नहीं होता है; सम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपादके प्रायोग्य सौधर्मादि उपरिम विमानोंका तिर्यग्लोकके असंख्यातवां भागमें ही अवस्थान देखा जाता है ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें प्रमत्तसंयतोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत आहारककाययोगी प्रमत्त-संयत जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्य क्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । आहारककाययोगियोंके उपपाद और वैक्रियिकपद नहीं होते हैं । मारणान्तिकपदपरिणत आहारककाययोगी जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्तसंयतोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

कर्मणकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा ओघके समान है ॥ ९६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और उपपादपदपरिणत कर्मणकाययोगी मिथ्या-दृष्टि जीवोंने तीनोंही कालोंमें चूंकि सर्वलोक स्पर्श किया है, इसलिये सूत्रमें 'ओघ' ऐसा

जेण सच्चलोगो फोसिदो, तेण सुत्ते ओषमिदि बुत्तं । एत्थ विहारवदिसत्थाण-वेउच्चिय-मारणंतियपदाणि णत्थि ।

**सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ ९७ ॥**

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा ।

एक्कारह चौदसभागा देसूणा ॥ ९८ ॥

एत्थ उववादवदिरित्तसेसपदाणि णत्थि, कम्मइयकायजोगविवक्खादो । उववादे वट्टमाणा सासणा हेट्ठा पंच, उवरि छ रज्जूओ फुसंति त्ति एक्कारह चौदसभागा फोसिद-खेत्तं होदि ।

**असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखे-
ज्जदिभागो ॥ ९९ ॥**

एदस्स परूवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिबद्धत्तादो ।

छ चौदसभागा देसूणा ॥ १०० ॥

पद कहा है । यहाँ, अर्थात् कर्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके, विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुदाय, इतने पद नहीं होते हैं ।

कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९७ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षा कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ९८ ॥

यहाँपर उपपादपदको छोड़कर शेष पद नहीं हैं, क्योंकि, कर्मणकाययोगकी विवक्षा की गई है । उपपादपदमें वर्तमान सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मेरुके मूलभागसे नीचे पांच राजु और ऊपर अच्युतकल्पतक छह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करते हैं, इसलिये ग्यारह बटे चौदह (१४) भाग प्रमाण स्पर्श किया हुआ क्षेत्र हो जाता है ।

कर्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९९ ॥

वर्तमानकालसे प्रतिसंबद्ध होनेसे इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

कर्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षासे कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०० ॥

एत्थ वि उववादपदमेककं चैव । तिरिक्खासंजदसम्माइड्ढिणो जेणुवरि छ रज्जुओ गंतूणुप्पज्जंति, तेण फोसणखेत्तपरूवणं छ-चोइसभागमेत्तं होदि । हेट्ठा फोसणं पंचरज्जु-पमाणं ण लब्भदे, णेरइयासंजदसम्मादिड्ढीणं तिरिक्खेसुववादाभावा ।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा ॥ १०१ ॥

पदरगदकेवलीहि लोगस्स असंखेज्जा भागा फोसिदा, लोगपेरंतड्ढिदवादवलएसु अपविट्ठजीवपदेसत्तादो । लोगपूरणे सव्वलोगो फोसिदो, वादवलएसु वि पविट्ठजीव-पदेसत्तादो ।

एवं जोगमगणा समत्ता ।

वेदानुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदएसु मिच्छादिड्ढीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०२ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिबद्धत्तादो ।

यहां पर भी केवल उपपादपदही होता है । तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीव चूंकि मेरूतलसे ऊपर छह राजु जाकरके उत्पन्न होते हैं, इसलिए स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा छह बटे चौदह $\frac{1}{4}$ भाग प्रमाण होती है । मेरूतलसे नीचे पांच राजु प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र नहीं पाया जाता है, क्योंकि, नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका तिर्यंचोंमें उपपाद नहीं होता है ।

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवलियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १०१ ॥

प्रतरसमुद्धातको प्राप्त केवलियोंने लोकके असंख्यात बहुभाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, लोकपर्यंत स्थित वातवलियोंमें केवली भगवान्के आत्मप्रदेश प्रतरसमुद्धातमें प्रवेश नहीं करते हैं । लोकपूरणसमुद्धातमें सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, लोकके चारों ओर व्याप्त वातवलियोंमें भी केवली भगवान्के आत्मप्रदेश प्रविष्ट हो जाते हैं ।

इसप्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०२ ॥

वर्तमानकालसे सम्बद्ध होनेके कारण इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

१ वेदानुवादेन-स्त्रीपुंवैदमिथ्यादृष्टिमिलोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः सर्व-लोको वा । स. सि. १, ८.

अट्टचोदसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ॥ १०३ ॥

सत्थाणत्थेहि मिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ वाणवेंतर-जोदि-
सियावासे संखेज्जजोयणबाहल्लं रज्जुपदरं च घेत्तूण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो साहेदव्वो ।
विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउब्बियपरिणदेहि अट्ट चोदसभागा फोसिदा, अट्टरज्जु-
बाहल्ल-रज्जुपदरपरिणममणसत्तिजुत्तदेवित्थि-पुरिसवेदमिच्छादिट्ठीणमुवलंभादो । मारणंतिय-
उववाद-परिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो, दुपदपरिणदमिच्छादिट्ठीणमगम्मपदेसाभावादो ।

**सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्ज-
दिभागो ॥ १०४ ॥**

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिबद्धत्तादो ।

अट्ट णव चोदसभागा देसूणा ॥ १०५ ॥

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा
कुछ कम आठ बटे चौदह भाग तथा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १०३ ॥

स्वस्थानस्थ स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यात-
गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके आवासोंको, तथा संख्यात
योजन प्रमाण बाह्यवाले राजुप्रतरको ग्रहण करके तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग साधलेना
चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातपरिणत उक्त जीवोंने आठ बटे
चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, आठ राजु बाह्यवाले राजुप्रतरप्रमाण क्षेत्रमें
परिभ्रमणकी शक्तिसे युक्त देव स्त्री और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव पाये जाते हैं । मार-
णान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि,
मारणान्तिक और उपपाद, इन दोनों पदोंसे परिणत स्त्री और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंके
अमभ्यप्रदेशका अभाव है ।

स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०४ ॥

वर्तमानकालसे सम्बद्ध होनेके कारण इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टियोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा
कुछ कम आठ बटे चौदह तथा नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०५ ॥

१ सासादनसम्यग्दृष्टिमिलोकस्यासंख्येयमागः अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि. १, ८.

सत्थाणत्थेहि सासणसम्मदिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, अदीदकालविवक्खादो । एत्थ वि पुब्बं व तिण्णि खेत्ताणि धेत्तूण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो दरिसेदव्वो । एसो ' वा ' सइट्ठो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि अट्ठ चोइसभागा देखणा फोसिदा, अट्ठ-रज्जुवाहल्लरज्जुपदरब्भंतरे देवित्थि-पुरिससासणाणं गमणागमणं पडि पडिसेहाभावा । मारणंतियपरिणदेहि णव चोइसभागा देखणा फोसिदा । हेट्ठा पंच रज्जू फोसणं किण्ण लब्भदे ? ण, णेरइएहिंतो इत्थि-पुरिसवेदे सासणाणं तिरिक्ख-मणुस्सेसु मारणंतियमेल्ल-माणाणमभावादो, तिरिक्खित्थि-पुरिसवेदसासणाणं णिरयगदिं मारणंतियं मेल्लमाणाणम-भावादो च । उववादपरिणदेहि एक्कारह चोइसभागा देखणा फोसिदा । सुत्ते उववाद-फोसणं किण्ण वुत्तं ? ण, फोसणसुत्ते उववादविवक्खाभावा । णिरयादो आगच्छंतेहि पंच

उक्त दोनों वेदवाले स्वस्थानस्थ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यात-गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; क्योंकि, यहांपर अतीतकालकी विवक्षा है। यहांपर भी पूर्वके समान तीनों क्षेत्रोंको ग्रहण करके तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग दर्शाना चाहिए। यही सूत्रपठित ' वा ' शब्दका अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकियिकसमुद्घात-परिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, आठ राजु बाहल्यवाले राजुप्रतरके भीतर देव स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके गमनागमनके प्रति प्रतिषेधका अभाव है। मारणान्तिकसमुद्घातपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम नौ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं।

शंका—मेरुतलसे नीचे पांच राजुप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, नारकियोंसे स्त्री और पुरुषवेदी तिर्यचों और मनुष्योंमें मारणान्तिकसमुद्घात करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अभाव है; तथा नरकगतिके प्रति मारणान्तिकसमुद्घात करनेवाले स्त्री और पुरुषवेदी तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका भी अभाव है।

उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं।

शंका—सूत्रमें उपपादपदसम्बन्धी स्पर्शनका प्रमाण क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, स्पर्शनानुगमसम्बन्धी सूत्रमें उपपादपदकी विवक्षाका अभाव है।

नरकगतिसे आनेवाले जीवोंकी अपेक्षा पांच राजु, और देवगतिसे आनेवाले जीवोंकी

रज्जू, देवेहिंतो आगच्छंतेहि छ रज्जू फोसिदा त्ति एकारह चोइसभागा फोसणखेत्तं होदि ।
 सम्मामिच्छादिट्ठी-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं,
 लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०६ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालविवक्खादो ।

अट्ट चोइसभागा वा देसूणा फोसिदा ॥ १०७ ॥

सत्थाणत्थेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो,
 अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, तीदकालविवक्खादो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-
 कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि अट्ट चोइसभागा देसूणा फोसिदा । णवरि सम्मा-
 मिच्छाइट्ठीणं मारणंतियं णत्थि । उववादपरिणदेहि छ चोइसभागा देसूणा फोसिदा । णवरि
 सम्मामिच्छादिट्ठीणं उववादो णत्थि । इत्थिवेदेसु असंजदसम्मादिट्ठीणं उववादो णत्थि ।

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
 भागो ॥ १०८ ॥

अपेक्षा छह राजु स्पर्श किये गये हैं । इस प्रकार ग्यारह बटे चौदह (११) भाग उपपादका स्पर्शनक्षेत्र है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि तथा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०६ ॥

वर्तमानकालकी विवक्षा होनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए ।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०७ ॥

स्वस्थानस्थ स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी तृतीय व चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; क्योंकि, यहां पर अतीतकालकी विवक्षा की गई है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (११) भाग स्पर्श किये हैं । विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्रातपद नहीं होता है । उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह (११) भाग स्पर्श किये हैं । विशेषता यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके उपपाद-पद नहीं होता है । स्त्रीवेदी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं होता है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०८ ॥

१ असंयतसम्यग्दृष्टिभिः संयतासंयतलोकस्थासंख्येयभागः षट् षतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि, १, ८.

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, विवक्खिखदवट्टमाणकालत्तादो ।

छ चौदसभागा देसूणा ॥ १०९ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउट्ठिवयपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो, विवक्खिखदातीदकालत्तादो । मारणंतियपरिणदेहि छ चौदसभागा देसूणा फोसिदा, अच्चुदकप्पादो उवरि तिरिक्खिसंजदासंजदाणमुववादाभावा ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठिउवसामग-खवएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११० ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । अदीदकाले एदेहि सत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेउट्ठिवयपरिणदेहि चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, भाणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । पमत्तसंजदे तेजाहारपदाणं वि एवं चेव वत्तव्वं । णवरि इत्थिवेदे तेजाहारं

वर्तमानकालकी विवक्षा होनेसे इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवोंने अतीत और अनागतकालकी विवक्षासे कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०९ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकियिकपदपरिणत स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; क्योंकि, यहांपर अतीतकालकी विवक्षा की गई है । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{1}{4}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर तिर्यच संयतासंयत जीवोंका उपपाद नहीं होता है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११० ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीतकालमें स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकियिकसमुद्घातपरिणत इन्हीं उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात, इन दोनों ही पदोंमें इसी प्रकारसे स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि स्त्रीवेदमें

णत्थि । मारणंतिय-परिणदेहि चदुहं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।

णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १११ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदणुंसयवेदमिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु जेण सच्चलोगो फोसिदो; विहारपरिणदेहि तिसु वि कालेसु तिण्हं लोगणम-संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो चि; तेण ओघत्तं जुज्जदे । किंतु वेउच्चियपदस्स ओघभंगो ण होदि, तत्थ वेउच्चियपदं वट्ट-माणकाले तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तमदीदकाले उभयत्थ वि अट्ट पंच चोइसभागा चि ? ण, पदविसेसविवक्खाभावेण ओघणिहेसस्स विरोहाभावा ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ११२ ॥

सैजस और आहारकसमुद्घात, ये दोनों पद नहीं होते हैं । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अट्टाईज्जीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

नपुंसकवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ १११ ॥

शंका—स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपाद्, इन पदोंसे परिणत नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें चूंकि सर्वलोक स्पर्श किया है; तथा विहारवत्स्वस्थानपदपरिणत उक्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईज्जीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; इसलिये सूत्रमें कहा गया ओघपना घटित हो जाता है । किन्तु वैक्रियिकपदका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान घटित नहीं होता है, क्योंकि, वहां पर, अर्थात् ओघप्ररूपणामें (देखो पृ. १४८), वैक्रियिकपदका वर्तमानकालमें तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र, और अतीतकालमें दोनों ही स्थलोंपर, अर्थात् ओघप्ररूपणामें और आवेशप्ररूपणाके अन्तर्गत, वेद-प्ररूपणामें आठ बटे चौदह (१४) तथा पांच बटे चौदह (१४) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पदविशेषकी विवक्षाका अभाव होनेसे सूत्रमें ओघपदका निर्देश विरोधको प्राप्त नहीं होता है ।

नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११२ ॥

१ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टीनां सासादनसम्यग्दृष्टीनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् । व. सि. १, ८.

एदस्स वडुमाणपरूवणा खेत्तमंगो ।

वारह चौदसभागा वा देसूणा ॥ ११३ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि णवुंसयसासणेहि तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अङ्काइ-ज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, पहाणीकदतिरिक्खसासणरासिच्चादो । उववादपरिणदेहि एका-रह चौदसभागा देसूणा फोसिदा, णवुंसगवेदतिरिक्खसासणेसुप्पज्जमाणदेव-णेरइयाणं छ-पंचरज्जुबाहल्लतिरियपदरफोसणोवलंभादो । मारणंतिय-परिणदेहि वारह चौदसभागा फोसिदा, णेरइय-तिरिक्खाणं पंच-सत्तरज्जुबाहल्लरज्जुपदरफोसणोवलंभादो ।

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखे-ज्जदिभागो ॥ ११४ ॥

एदस्स सुत्तस्स वडुमाणपरूवणा खेत्तमंगो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि णवुंसयवेदसम्मामिच्छादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणम-

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम बारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ११३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अदार्द्रद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहाँपर तिर्यच सासादन जीवराशिकी प्रधानता है । उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, नपुंसकवेदी तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले देवोंकी अपेक्षा छह राजु, और नारकियोंकी अपेक्षा पांच राजु, इसप्रकार मिलकर ग्यारह राजु बाह्यत्ववाले तिर्यक्प्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने बारह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, नारकियोंके पांच राजु और तिर्यचोंके सात राजु, इसप्रकार बारह राजु बाह्यत्ववाला राजुप्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है ।

नपुंसकवेदी सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११४ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत नपुंसकवेदी सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका

संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो, तिरियरासिस्स पाधण्णादो । मारणंतिय-उववादा णत्थि ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११५ ॥

एदस्स सुत्तस्स वड्डमाणपरूवणा खेत्तभंगा ।

छ चोइसभागा देसूणा ॥ ११६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि णवुंसगवेद-असं-जदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदि-भागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो । एसो 'वा' सदद्धो । मारणंतियपरिणदेहि छ चोइस-भागा देसूणा फोसिदा, अच्चुदकप्पादो उवरि तिरिक्खासंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदाणं गमणाभावा । उववादपदं णत्थि । णवरि असंजदसम्मादिट्ठिहि उववादपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति ओघं ॥ ११७ ॥

संख्यातवां भाग, और अड्डाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; क्योंकि, यहांपर तिर्यंच-राशिकी प्रधानता है । यहांपर मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ११६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यंचलोकका संख्यातवां भाग, और अड्डाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह 'वा' शब्दका अर्थ है । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंके गमनका अभाव है । यहांपर उपपादपद नहीं होता है । विशेष बात यह है कि उपपादपदपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अड्डाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

उक्त नपुंसकवेदी जीवोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ११७ ॥

पमत्ते तेजाहाराभावादो ओघत्तं ण जुज्जदे ? ण, सुत्ते पदविवक्खाए विणा साम-
ण्णणिहेसादो । सेसं चित्तिं वत्तव्वं ।

अपगतवेदएसु अणियट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति
ओघं ॥ ११८ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टुमाणादीदकालपरूवणा ओघादो ण भिज्जदि ति सुत्ते ओघ-
मिदि भणिदं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ११९ ॥

एगजोगो किण्ण कदो ? ण, पुव्वखेत्तेण सजोगिखेत्तस्स अदीद-वट्टुमाणकालेसु
तुल्लताभावादो एगजोगत्ताणुववत्तीए । एदस्स वि सुत्तस्स अत्थो सुगमो ति ण किंचि
बुच्चदे ।

एवं वेदमार्गणा समाप्ता ।

शंका — प्रमत्त गुणस्थानमें नपुंसकवेदी जीवोंके तैजस और आहारकसमुद्घातका
अभाव होनेसे सूत्रोक्त ओघपना नहीं घटित होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, सूत्रमें उक्त दोनों पदविशेषोंकी विवक्षाके विना सामान्य
निर्देश किया गया है ।

शेष पदोंका स्पर्शनक्षेत्र विचार करके कहना चाहिए ।

अपगतवेदी जीवोंमें अनिष्टुत्तिकरण गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ११८ ॥

इस सूत्रकी वर्तमान और अतीतकालसम्बन्धी स्पर्शनप्ररूपणा ओघस्पर्शनप्ररूपणासे
भिन्न नहीं है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' यह पद कहा है ।

अपगतवेदी सयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ११९ ॥

शंका — ऊपरके सूत्रका और इस सूत्रका, अर्थात् दोनों सूत्रोंका, एक योग (समास)
क्यों नहीं किया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, प्रमत्तसंयतादिके क्षेत्रसे सयोगिकेवलीके क्षेत्रके अतीत
और वर्तमानकालमें समानताका अभाव होनेसे एकयोगपना नहीं बन सकता है ।

इस सूत्रका भी अर्थ सुगम है, इसलिए विशेष कुछ भी नहीं कहा जाता है ।

इसप्रकारसे वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु
मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओघं ॥ १२० ॥

एदस्स सुत्तस्स अदीद-वट्टमाणकाले अस्सिदूण परूवणे कीरमाणे फोसणमूलोघादो
ण केण वि अंसेण भिज्जदि ति ओघमिदि सुत्तवयणं सुट्टु संबद्धं । तदो मूलोघपरूवणं सुट्टु
संभालिय एत्थ सिस्साणं पडिबोहो कायव्वो ।

लोहमयविसेसावबोहणट्टमुत्तरसुत्तं भण्णदे—

णवरि लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं ॥१२१॥

कुदो ? ओघसुहुमसांपराइयउवसम-खवगेहितो एदेसिं विसेसाभावा । सो च
विसेसाभावो सिस्साणं सण्णिरिसेयव्वो ।

अकसाईसु चट्टुट्टाणमोघं ॥ १२२ ॥

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभ-
कषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-
स्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२० ॥

इस सूत्रकी अतीत और वर्तमानकालको आश्रय करके प्ररूपणा करनेपर स्पर्शानु-
योगद्वारकी मूल ओघप्ररूपणासे किसी भी अंशसे भेद नहीं है, इसलिए 'ओघ' ऐसा सूत्र-
वचन सुसम्बद्ध है । अतएव मूल ओघप्ररूपणाको भलेप्रकार संभाल करके यहांपर शिष्योंको
प्रतिबोधित करना चाहिए ।

अब लोभकषायगत विशेषताके अवबोधनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि लोभकषायी जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती उप-
शमक और क्षपक जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ १२१ ॥

क्योंकि, ओघनिरूपित सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती उपशमक और क्षपकोंसे
कषायमार्गणाकी दृष्टिसे प्ररूपित इन जीवोंके कोई विशेषता नहीं है । वह विशेषताका अभाव
शिष्योंके लिए भलीभांति दिखाना चाहिए ।

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषाय आदि चार गुणस्थानवालोंका स्पर्शनक्षेत्र
ओघके समान है ॥ १२२ ॥

१ कषायानुवादेन चतुक्कषायणां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

२ अकषायणां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

णामेगदेसग्गहणे वि णामिह्लसंपच्चओ होदि त्ति चदुट्ठाणसदेण वीदरागाणं चदुण्हं गुणट्ठाणाणं गहणं होदि । तेसिं परूवणा सुगमा, ओघसमाणत्तादो ।

एवं कसायमग्गणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं
॥ १२३ ॥

जेण सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदमदि-सुदअण्णाणिमिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो, विहार-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोदसभागा फोसिदा, तेण ओघमिदि जुज्जदे ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १२४ ॥

ओघो जेण अणेयपयारो मिच्छादिट्ठीओघादिभेदेण, तेण कस्सोघस्स एत्थ गहणं होदि त्ति ण णव्वदे ? जेणोघेण सासणसम्मादिट्ठीणं पगरिसेण पच्चासत्ती अत्थि, तस्सेव

‘किसी भी नामके एक देशके ग्रहण करनेपर भी नामवालोंका सम्प्रत्यय हो जाता है’ इस न्यायके अनुसार ‘चतुःस्थान’ शब्दसे उपशान्तकषाय आदि वीतरागी चारों गुणस्थानोंका ग्रहण हो जाता है । उनके स्पर्शनकी प्ररूपणा ओघके समान होनेसे सुगम है ।

इसप्रकार कषायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२३ ॥

चूंकि स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपद-परिणत मत्यज्ञानी तथा श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है, तथा विहारवत्स्वस्थान और वैकियिकसमुद्धातपदपरिणत जीवोंने आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, इसलिए सूत्रोक्त ‘ओघ’ यह वचन घटित हो जाता है ।

उक्त दोनों प्रकारके अज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२४ ॥

शंका—चूंकि, मिथ्यादृष्टि-ओघ, सासादनसम्यग्दृष्टि-ओघ, आदिके भेदसे ओघ अनेक प्रकारका है, इसलिए यहांपर किस ओघका ग्रहण किया जा रहा है, यह नहीं जाना जाता है ?

समाधान—जिस ओघके साथ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी प्रकर्षतासे प्रत्यासक्ति है, उसका ही ग्रहण यहांपर किया जा रहा है ।

गहणं । केण सह एत्थ पुण पगरिसेण पच्चासत्ती विज्जदे ? सासणसम्मादिट्ठिस्स ओघेण । वट्टमाणकाले चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो सगसव्वपद-
खेतुवलंभादो । तीदे काले वि सत्थाणेण तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागस्स, तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागस्स, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणस्स; विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-
पदेसु अट्ट चोदसभागमेत्तस्स, मारणंतिय-उववादपदेसु वारसेकारस-चोदसभागखेत्तस्सुवलं-
भादो । एदमत्थपदं सव्वत्थं वत्तव्वं ।

विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोमस्स
असंखेज्जदिभागो ॥ १२५ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगा, वट्टमाणकालसंबंधित्तादो ।

अट्ट चोदसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १२६ ॥

सत्थाणपरिणदेहि विभंगणाणमिच्छादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदि-
भागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो 'वा'

शंका— तो यहांपर किस ओघके साथ प्रकर्षतासे प्रत्यासत्ति है ?

समाधान—सासादनगुणस्थानके ओघके साथ प्रकर्षतासे प्रत्यासत्ति है, क्योंकि, वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा अपने सर्वपदोंका स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है । अतीतकालमें भी स्वस्थानपदकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा; तथा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक-पदोंमें आठ बटे चौदह ($\frac{1}{4}$) भागमात्र; तथा मारणान्तिक और उपपाद, इन दो पदोंमें क्रमशः बारह बटे चौदह ($\frac{1}{2}$) और ग्यारह बटे चौदह ($\frac{3}{4}$) भागप्रमाण स्पर्शनका क्षेत्र पाया जाता है । यह अर्थपद सर्वत्र कहना चाहिए ।

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १२५ ॥

वर्तमानकालसे सम्बन्ध होनेके कारण इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

विभंगज्ञानी जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १२६ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदसे परिणत विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्य-लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह 'वा' शब्दका अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना,

१ विभंगज्ञानिनां मिथ्यादृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशीनाः, सर्वलोको वा ।
उ. सि. १, ८.

सदृष्टो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियपरिणदेहि अट्ट चोदसभागा देसणा; मारणंतियपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १२७ ॥

कुदो ? वट्टमाणकाले सगसव्वपदाणं चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, अट्टाइ-ज्जादो असंखेज्जगुणत्तेण; तीदे काले सत्थाणस्स तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तेण, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणत्तेण; विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियपदाणं देसण-अट्ट-चोदसभागत्तेण मारणंतियस्स देसण-वारह-चोदस-भागत्तेण, ओघसासणसम्मादिट्ठिखेत्तेण सरिसत्तुवलंभादो । कथं सारिच्छे एगत्तं ? ण, दव्वट्ठियणयणिबंधणववहारणं सरिसे वि एगत्तालंघणाणमुवलंभा ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागल्लदुमत्था ति ओघं ॥ १२८ ॥

कषाय, और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । मारणान्तिकसमुद्धातपदपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है । शेष अर्थ सुगम है ।

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२७ ॥

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान होनेका कारण यह है कि वर्तमानकालमें स्वकीय सर्वपदोंके स्पर्शनक्षेत्रकी सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागसे, तथा अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणितक्षेत्रसे; अतीतकालमें स्वस्थानस्वस्थानपदका सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागसे, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागसे, तथा अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणित क्षेत्रसे, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्धात, इन पदोंका कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भागसे, और मारणान्तिकसमुद्धातका कुछ कम वारह बटे चौदह (१४) भागकी अपेक्षा, ओघप्ररूपित सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके स्पर्शनक्षेत्रके साथ सदृशता पाई जाती है ।

शंका— सादृश्यमात्र होनेपर सूत्रोंमें ' ओघ ' पद द्वारा एकत्व कैसे कहा जा रहा है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिकनधनिबन्धनक व्यवहारोंकी सदृशता होनेपर भी एकत्वावलम्बी व्यवहार पाये जाते हैं ।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर श्लीणकषायवीतरागल्लभस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२८ ॥

१ सासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

२ आभिनिबोधिकश्रुतावधिजनः पर्ययकेवलज्ञानिनां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, मूलोघमिह वित्थरेण परूविदत्तादो । तत्थ णाण-
विसेसणेण विणा सामण्णेण परूविदमिदि चे ण, सामण्णेण परूविदे वि सा मदि-सुदणाण-
परूवणा चेय, मदि-सुदणाणवदिरित्तछदुमत्थसम्मादिट्ठीणमणुवलंभा । ओधिणाणविरहिद-
सम्मादिट्ठीणमुवलंभा ओधिणाणस्स ओघत्तं ण जुज्जेदे चे ण, एत्थ दव्वपमाणेण अहियारा-
भावा । ओघअसंजदसम्मादिट्ठीआदिफोसणेहि ओधिणाणअसंजदसम्मादिट्ठीआदिफोसणाणं
सरिसत्तुवलंभादो ओधिणाणस्स ओघत्तं जुज्जेदे चेय ।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदणहुडि जाव खीणकसायवीदराग-
छदुमत्था ति ओघं ॥ १२९ ॥

अदीद-वट्टमाणकाले सव्वपदानमोघसव्वपदेहि सरिसत्तुवलंभादो एत्थ वि ओघत्तं
जुज्जेदे ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ॥ १३० ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, मूलोघमें विस्तारसे प्ररूपण किया जा चुका है ।

शंका—उस मूलोघ स्पर्शनप्ररूपणमें तो ज्ञानमार्गणारूप विशेषणके विना सामा-
न्यसे ही कथन किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सामान्यसे प्ररूपित होनेपर भी वह मतिज्ञान और श्रुत-
ज्ञानकी ही प्ररूपणा है, क्योंकि, मतिज्ञान और श्रुतज्ञानसे रहित छद्मस्थ सम्यग्दृष्टि जीव
नहीं पाये जाते हैं ।

शंका—अवधिज्ञानसे रहित सम्यग्दृष्टि जीव तो पाये जाते हैं; इसलिये अवधिज्ञानके
ओघपना नहीं घटित होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहां पर द्रव्यप्रमाणके अधिकार या प्रकरणका अभाव
है । ओघ असंयतसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रके साथ अवधिज्ञानी असंयतसम्य-
ग्दृष्टि आदिकोंके स्पर्शनसम्बन्धी क्षेत्रोंकी सदृशता पाये जानेसे अवधिज्ञानके ओघपना घटित
हो ही जाता है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतगुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुण-
स्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२९ ॥

अतीत और वर्तमानकालमें मनःपर्ययज्ञानियोंमें संभवित सर्वपदोंके स्पर्शनकी ओघ-
घर्णित सर्वपदोंके स्पर्शनके साथ सदृशता पाई जानेसे यहां पर भी ओघपना युक्तिसंगत है ।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३० ॥

एदस्स अत्थो सुगमो, ओघमिह परूविदत्तादो, केवलणाणवदिरित्तसजोगिकेवलीणम-
भावा ओघसजोगिपरूवणाणं पडि सामण्णा ।

अजोगिकेवली ओघं ॥ १३१ ॥

एदस्स वि अत्थो सुगमो, ओघमिह परूविदत्तादो । पृथ सुत्तारंभो किमट्ठो ? ण,
सजोगि-अजोगिकेवलीणं वड्डमाणादीदकालेण पच्चासतीए अभावादो एगजोगत्ताणु-
ववत्तीए ।

एवं णाणमग्गणा समत्ता ।

**संजमाणुवादेण संजदेसु पमतसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि
त्ति ओघं ॥ १३२ ॥**

एत्थ ओघपरूवणादो ण को वि' भेदो अत्थि, विवक्खिखदसंजमसामण्णादो । ण
च संजमसामण्णाविरहिदा संजदा अत्थि, तेसिमसंजदत्तप्पसंगादो ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ १३३ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, ओघमें प्ररूपण किया जा चुका है । दूसरी बात
यह भी है कि केवलज्ञानसे रहित सयोगिकेवलियोंके अभाव होनेसे ओघवर्णित सयोगि-
जिनोंकी प्ररूपणाओंके प्रति समानता है ।

केवलज्ञानियोंमें अयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३१ ॥

ओघमें प्ररूपित होनेसे इस सूत्रका भी अर्थ सुगम है ।

शंका— तो फिर पृथक् सूत्रका आरंभ किसलिए किया गया है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सयोगी और अयोगिकेवलियोंके वर्तमान और अतीत-
कालके साथ प्रत्यासत्तिका अभाव होनेसे एक योगपना बन नहीं सकता था, अतः पृथक्
सूत्रारंभ किया गया है ।

इसप्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगि-
केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३२ ॥

यहांपर ओघप्ररूपणासे कोई भी भेद नहीं है, क्योंकि, संयमसामान्यकी विवक्षा है ।
और संयमसामान्यसे रहित संयत होते नहीं हैं । यदि संयमके बिना भी संयमी होने लगे,
तो फिर असंयतपनेका प्रसंग प्राप्त हो जायगा ।

संयतोंमें सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३३ ॥

१ संयमात्तुवादेण संयतानां सर्वेषां × × सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

२ प्रतिपु ' को थि ' म प्रती ' को छि ' इति पाठः ।

पुध सुत्तारंभो किमट्टो ? ण, पुञ्चिल्लेहि सह फोसणेण पच्चासत्तिअभावप्पदंसण-
फलत्तादो । सेसं सुगमं ।

सामाह्यच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणि-
यट्ठि ति ओघं ॥ १३४ ॥

एदं पि सुत्तं सुगममिदि ण एत्थ किञ्चि वत्तव्वमत्थि ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अपमत्तसंजदेहि केवडियं खेतं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३५ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-
कसाय-वेडव्वियपरिणदेहि चट्ठुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो;
मारणंतियपरिणदेहि चट्ठुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो तीदे
काले फोसिदो । पमत्ते तेजाहारं णत्थि, लट्ठीए उवरि लट्ठीणमभावा ।

शंका— तो फिर पृथक् सूत्रका आरंभ किसलिए किया गया है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, पूर्वोक्त जीवोंके स्पर्शनके साथ सयोगिकेवलीके स्पर्शनसे
प्रत्यासत्तिके अभावका प्रदर्शन करना ही पृथक् सूत्रका फल है ।

शेष अर्थ सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनि-
वृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, इसलिए यहांपर कुछ भी वक्तव्य नहीं है ।

परिहारविशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १३५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थान-
स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक
आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग; तथा मारणान्तिक-
पदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्य-
क्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है । विशेष बात यह है कि प्रमत्तगुण-
स्थानमें तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात, ये दो पद नहीं होते हैं, क्योंकि, लब्धिके ऊपर
दूसरी लब्धियां नहीं होती हैं ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइय-उवसमा खवा
ओघं ॥ १३६ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, ओघमिह परूविदत्तादो ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्टाणी ओघं ॥ १३७ ॥

चदुण्हं ट्टाणाणं समाहारो चदुट्टाणी; सा ओघं भवदि, जहाक्खादसंजदचदुगुण-
ट्टाणाणं परूवणा ओघसरिसा त्ति जं बुत्तं होदि ।

संजदासंजदा ओघं ॥ १३८ ॥

संजमाणुवादेण संजमासंजम-असंजमाणं कथं गहणं होदि ? एसो संजमाणुवादो
ण संजममेव परूवेदि, किंतु संजमं संजमासंजममसंजमं च । तेणेदेसिं पि गहणं होदि ।
जदि एवं, तो एदिस्से मग्गणाए संजमाणुवादववदेसो ण, जुज्जदे ? ण, अंब-णिंभवणं व
पाधण्णपदमासेज्ज संजमाणुवादववदेसजुत्तीए । सेसं सुगमं ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमक और क्षपक जीवोंका
स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३६ ॥

ओघमें प्ररूपित होनेसे इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

यथाख्यातविहारविशुद्धिसंयतोमें अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र
ओघके समान है ॥ १३७ ॥

चार स्थानोंके समाहारको चतुःस्थानी कहते हैं । उन चारों गुणस्थानोंकी स्पर्शन-
प्ररूपणा ओघके समान होती है । अर्थात्, यथाख्यातसंयमवाले अन्तिम चार गुणस्थानोंकी
प्ररूपणा ओघके सदृश होती है, ऐसा कहा गया समझना चाहिए ।

संयतासंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३८ ॥

शंका—संयममार्गणाके अनुवादसे संयमासंयम और असंयम, इन दोनोंका ग्रहण
कैसे होता है ?

समाधान—संयममार्गणाके अनुवादसे न केवल संयमका ही ग्रहण होता है, किन्तु
संयम, संयमासंयम और असंयमका भी ग्रहण होता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो इस मार्गणाको संयमानुवादका नाम देना युक्त नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'आभ्रवन' वा 'निम्बवन' के समान प्राधान्यपदका
आश्रय लेकर 'संयमानुवादसे' यह व्यपदेश करना युक्तियुक्त हो जाता है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम ही है ।

१ × × संयतासंयतानां × × सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि ति
ओधं ॥ १३९ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं, ओधम्मिह मिच्छादिट्ठिआदिचदुगुणहाणपरुवणाण परुविदत्तादो ।

एवं संजममग्गणा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं
पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १४० ॥

एदं सुत्तं सुगमं खेत्ताणिओगदारे उत्तद्वादो ।

अट्ठ चोदसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १४१ ॥

सत्थाणत्थेहि चक्खुदंसणिमिच्छादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो; विहार-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-
परिणदेहि देसूणट्ठ चोदसभागा; मारणांतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो पोसिदो ।

असंयत जीवोंमें मिथ्यादृष्टिगुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती असंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, ओघमें मिथ्यादृष्टि आदि चारगुणस्थानोंकी प्ररू-
पणाओंका निरूपण किया गया है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४० ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, क्षेत्रानुयोगद्वारमें इसका अर्थ कहा जा चुका है ।

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम
आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १४१ ॥

स्वस्थानस्थ चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका
असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अद्वार्द्धीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श
किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम
आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत
उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है ।

१ × × असंयतानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

२ दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां पंचेन्द्रियवत् । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागच्छदुमत्था त्ति ओघं ॥ १४२ ॥

ओघसासणसम्मादिट्ठिआदिसयलगुणट्ठणोहिंतो चक्खुदंसणिसासणसम्मादिट्ठिआदि-
गुणट्ठणाणं ण कोवि^१ भेदो, चक्खुदंसणवदिरिचसासणादिगुणट्ठणाणमभावादो । तेण
ओघमिदि सुट्ठु जुज्जदे ।

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-
च्छदुमत्था त्ति ओघं ॥ १४३ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं, ओघमिह वित्थरेण परूविदत्तादो । ण च ओघपरूविदमिच्छा-
दिट्ठिआदिखीणकसायपज्जंतगुणट्ठणाणि अचक्खुदंसणविरहिदाणि अत्थि, तघाणुवलं-
भादो । तेणेदेसिं सव्वेसिं पि ओघत्तं जुज्जदे ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो^२ ॥ १४४ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती चक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १४२ ॥

ओघ सासादनसम्यग्दृष्टि आदि सकल गुणस्थानोंसे चक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि
आदि समस्त गुणस्थानोंके स्पर्शनसम्बन्धी क्षेत्रोंका कोई भेद नहीं है; क्योंकि, चक्षु-
दर्शनसे रहित सासादनादि गुणस्थानोंका अभाव है । इसलिए 'ओघ' यह पद भली भांति
घटित हो जाता है ।

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ
गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान
है ॥ १४३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, ओघप्ररूपणामें विस्तारसे प्ररूपण किया जा चुका
है । और ओघप्ररूपित मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषायपर्यंत गुणस्थान अचक्षुदर्शनसे विरहित हैं
नहीं; क्योंकि, ऐसा देखनेमें नहीं आता । इसलिए इन सभी गुणस्थानोंके ओघपना
युक्तिसंगत है ।

अवधिदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ १४४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ प्रतिपु 'कोवि' इति पाठः ।

२ अचक्षुदर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां × × सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

३ अवधि-क्षेत्रदर्शनिनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

केवलदंसणी केवलाणिभंगो ॥ १४५ ॥

एदं पि सुगमं ।

एवं दंसणमगणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियमिच्छादिट्ठी
ओघं ॥ १४६ ॥

जेण सत्थाण-वेदण-कमाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि किण्ह-णील-काउलेस्सिय-
मिच्छादिट्ठीहि तिसु पि कालेसु सब्वलोगो, विहारपरिणदेहि अदीद-वट्टमाणेण तिण्हं
लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो;
वट्टमाणकाले वेउव्वियपरिणदेहि (तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,) तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो; अदीदे पंच चोदसभागा पोसिदा; तेण
ओघत्तं जुज्जे । विहार-वेउव्वियपदेसु देसणट्ट-चोदसभागपोसणखेत्ताभावा ओघत्तं ण घडदे
इदि पच्चवट्टाणं ण कायव्वं, सुत्ते पदविसेसाभावा । सब्वलोगत्तमेत्तेण सरिसत्तमालोविय
ओघत्तुववत्तीए ।

केवलदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १४५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले मिथ्या-
दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १४६ ॥

चूंकि स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत
कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्व लोक स्पर्श किया
है; विहारवत्स्वस्थानपदपरिणत उक्त जीवोंने अतीत और वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईट्ठीपसे असं-
ख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, तथा वर्तमानकालमें वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने
(सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,) तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और
अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; तथा अतीतकालमें उक्त जीवोंने पांच बटे
चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं; इसलिये ओघपना बन जाता है ।

शंका—विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात, इन दो पदोंमें देशोन आठ बटे
चौदह (१४) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके अभाव होनेसे ओघपना घटित नहीं होता है ?

समाधान—पेसी शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि, सूत्रमें पदविशेषकी विवक्षाका
अभाव है । सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रकी सदृशताको देखते हुए ओघपना बन जाता है ।

१ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्यैर्मिथ्यादृष्टिमिः सर्वलोकः स्पृष्टः । स. सि. १, ८. फासं सन्नं लोयं
तिट्ठाणे असुहलेस्साणं । गो. जी. ५४५.

सासणसम्मादिट्टिहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ १४७ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तमंगो, अल्लीणवड्डमाणत्तादो ।

पंच चत्तारि वे चोहसभागा वा देसूणा ॥ १४८ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेउच्चियपरिणदेहि किण्ह-णील-काउलेस्सिय-
सासणेहि तीदे काले तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डा-
ज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । देवे मोत्तूण णेरइय-अपज्जत्तभवणवासिय-वाणवेंतर-जोदि-
सिय-तिरियंतिरिक्खेसु चैव एदस्स खेत्तस्सुवलंभादो तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्त-
मुववणं । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि किण्ह-णील-काउलेस्सियसासणेहि जहाकमेण देसूणा
पंच चत्तारि वे चोहसभागा पोसिदा । णेरइएहिंतो तिरिक्खेसु उपपज्जमाणसासणे पेक्खि-
दूण एसा फोसणपरूवणा कदा । देवेहिंतो एइंदिएसु मारणंतियं मेल्लमाणसासणखेत्ते गहिदे

उक्त तीनों अशुभलेश्याओंवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४७ ॥

वर्तमानकालको व्याप्त करनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

तीनों अशुभलेश्याओंवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत
कालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे चौदह, चार बटे चौदह और दो बटे चौदह भाग
स्पर्श किये हैं ॥ १४८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत कृष्ण,
नील और कापोतलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आवि
तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अर्द्धाद्दीपसे असंख्यात-
गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । कल्पवासी देवोंको छोड़कर नारकी, अपर्याप्त भवनवासी, वानव्यंतर
और ज्योतिष्कदेव तथा तिर्यग्लोकधर्ती तिर्यचोंमें ही यह उक्त क्षेत्र पाया जानेसे तिर्यग्लोकके
संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका कथन युक्तिसंगत है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपद-
परिणत छठी पृथिवीके नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि कृष्णलेश्यावाले जीवोंने कुछ कम पांच
बटे चौदह (१४) भाग, नीललेश्यावाले पांचवीं पृथिवीके नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने
कुछ कम चार बटे चौदह (१४) भाग, और कापोतलेश्यावाले तीसरी पृथिवीके नारकी
सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम दो बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । नारकि-
योंसे तिर्यचोंमें उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंको देखकर अर्थात् उनकी अपेक्षासे
यह स्पर्शनप्ररूपणा की गई है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टिभिलोकस्यासंख्येयभागः पंच चत्वारो द्वौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः । घ. सि, १, ८.

२ क प्रती ' तिरिय ' इति पाठो नास्ति ।

पुव्विल्लखेत्तेण सह जहाकमैण वारस-एकारस-णव-चोद्दसभागमेत्तखेत्तं किण्ण लब्भदि त्ति उत्ते ण लब्भदि, देवाणमण्णो आउवचरिमसमओ त्ति पुव्विल्लतेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणं विणासाभावा । किण्ह-णील-काउलेस्सियतिरिक्ख-मणुससासणाणमेइंदिएसु मारणांतियं मेल्ल-माण्णं सत्त चोद्दसभागा उवरि लब्भंति त्ति हेट्ठिल्लखेत्तेहि सह वारसेकारस-णव-चोद्दस-भागमेत्तखेत्तं किण्ण लब्भदे ? ण, तिरिक्ख-मणुसउवसमसम्माइट्ठीणं उवसमसम्मत्तकालब्भंतरे सुट्ठु संकिलिद्धाणं पि संजदासंजदाणं व किण्ह-णील-काउलेस्साओ ण होंति त्ति गुरूवदे-संतरजाणावण्णं तहाणुवदेसादो । देवेषु तिरिक्खगईए उववण्णेषु उववादस्स एकारस-दस-अट्ठ-चोद्दसभागमेत्तखेत्तं किण्ण-लब्भदे ? ण, किण्ह-णील-काउलेस्साहि सह अच्छिऊण पच्छा ताहि सह उववादाभावादो । ण च लेस्सा उववादसमाणकालभाविणी मग्गणा होइ,

शंका— देवोंसे एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्धात करनेवाले जीवोंके सासादन गुण-स्थानसम्बन्धी क्षेत्रके ग्रहण करनेपर पूर्वोक्त क्षेत्रके साथ यथाक्रमसे बारह बटे चौदह ($\frac{1}{2}$) भाग, ग्यारह बटे चौदह ($\frac{1}{2}$) भाग, और नौ बटे चौदह ($\frac{1}{2}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान— ऐसी शंका पर उत्तर देते हैं कि नहीं पाया जाता है, क्योंकि, देवोंके अपनी आयुके अन्तिम समय पर्यन्त अपनी पूर्ववर्ती तेज, पद्म और शुक्रु लेश्याओंका विनाश नहीं होता है, इसलिए उक्त प्रकारका क्षेत्र नहीं कहा गया ।

शंका— कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले तथा एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्धात करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच और मनुष्योंके सात बटे चौदह ($\frac{1}{2}$) भाग तो ऊपर स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है, इसलिए उसे अधस्तन उक्त क्षेत्रोंके साथ ग्रहण करने पर बारह बटे चौदह ($\frac{1}{2}$) भाग, ग्यारह बटे चौदह ($\frac{1}{2}$) भाग और नौ बटे चौदह ($\frac{1}{2}$) भागप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्कालके भितर अत्यन्त संक्लेशको प्राप्त हुए भी तिर्यच और मनुष्य उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके संयतासंयतोंके समान कृष्ण, नील और कापोत लेश्याएं नहीं होती हैं, इस प्रकारका एक दूसरा गुरुका उपदेश है, यह बात बतलानेके लिए वैसा उपदेश नहीं दिया है ।

शंका— तिर्यचगतिमें उत्पन्न होनेवाले देवोंमें उपपादपद्का ग्यारह बटे चौदह, दश बटे चौदह और आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओंके साथ रहकर पीछे उन्हींके साथ उपपाद नहीं पाया जाता है ।

विशेषार्थ— देवोंमें तीनों अशुभलेश्याएं अपर्याप्तकालमें ही होती हैं । पीछे नियमसे

आधेयपुव्वुत्तरकालेसु असंतीए आहारत्तविरोहादो । तम्हा सुत्तुत्तमेव होदु, णिरवज्जत्तादो ।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १४९ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण कसाय-

शुभलेश्या हो जाती है । अतएव कृष्ण, नील और कापोतलेश्याके साथ रहनेवाले देवोंके उपपादका अभाव बतलाया, क्योंकि, देवोंका मरण न तो अपर्याप्तकालमें ही होता है और न पूरी आयुके समाप्त हुए बिना ही । अतः यह कहना युक्तिसंगत ही है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओंके साथ रहकर पीछे उपपाद नहीं होता है ।

दूसरी बात यह है कि लेश्यामार्गणा उपपाद-समान-कालभाविनी नहीं है, क्योंकि, आधेयरूप पूर्व और उत्तर कालोंमें अविद्यमान लेश्याके आधारपनेका विरोध है । इसलिए सूत्रोक्त ही स्पर्शनक्षेत्रका प्रमाण होना चाहिए, क्योंकि, वही प्रमाण निर्दोष पाया जाता है ।

विशेषार्थ — यहाँपर लेश्यामार्गणा उपपाद-समानकाल-भाविनी नहीं है, ऐसा कहनेका यह अभिप्राय है कि जिस प्रकारसे विवक्षित जीवके पूर्व भवको छोड़नेके पश्चात् उत्तर भवको ग्रहण करनेके साथ ही गति, योग, आहार आदि यथासंभव कितनी ही मार्गणाएं परिवर्तित हो जाती हैं, उस प्रकार लेश्यामार्गणा परिवर्तित नहीं होती है । इसका कारण यह है कि जीव जिस लेश्यासे मरण करता है उसी लेश्यासे ही उत्पन्न होता है, ऐसा एकान्त नियम है । और इसी नियमके कारण भवनत्रिक देवोंके अपर्याप्तकालमें तीन अशुभ लेश्याओंका अस्तित्व माना गया है । इसी बातको सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया गया है, उसका भी अभिप्राय यही है कि यदि उपपाद होनेके साथ ही लेश्याके परिवर्तनका नियम अवश्यंभावी होता, तो मरण करनेके पूर्वकालमें और उत्तरकालमें विवक्षित लेश्याके परिवर्तित हो जानेसे आधार-आधेयपना बन जाता, अर्थात्, मरणकाल और उपपादकालरूप पूर्वोत्तरकाल आधेय बन जाते और उनमें होनेवाली लेश्या आधार बन जाती । किन्तु भव-परिवर्तनके हो जाने पर भी लेश्यापरिवर्तन होता नहीं है; इसलिए कहा गया है कि आधेयरूप पूर्व और उत्तर कालोंमें विवक्षित लेश्याका परिवर्तन न होनेसे आधारपना नहीं बन सकता है ।

उक्त तीनों अशुभलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४९ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकियिकपदपरिणत तीनों अशुभलेश्यावाले

वेउच्चियपरिणदेहि तिलेस्सियसम्मामिच्छादिट्टि-असंजदसम्मादिट्टीहि तिहं लोगाणमसंखे-
ज्जदिभागो, (तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो,) अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो । कुदो ?
पहाणीकयतिरिक्खरासिच्चादो । मारणांतिय-उववादपरिणदेहि किण्ह-णील्लेस्सियअसंजद-
सम्मादिट्टीहि चदुहं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो, छट्ठ-पंचम-
पुढवीहिंतो माणुसेसु आगच्छमाणअसंजदसम्मादिट्टीणं पणदालीसजोयणलक्खविवक्खंभ-
पंच-चत्तारिज्जुआयदखेत्तुवलंभादो । मारणांतिय-उववादपरिणदकाउलेस्सियअसंजदसम्मा-
दिट्टीहिं तिहं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो
असंखेज्जगुणो, काउलेस्साए सह असंखेजेसु दीवेषु पढमपुढवीए च उप्पज्जमाणखइय-
सम्मादिट्टिच्छुत्तखेत्तग्गहणादो ।

तेउलेस्सिएसु मिच्छादिट्टि-सासणसम्मादिट्टीहि केवडियं खेत्तं
पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५० ॥

एदस्स परूवणा खेत्तभंगा, अल्लीणवट्टमाणत्तादो ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्या-
तवां भाग, (तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग,) और अइर्इट्टीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श
किया है, क्योंकि, यहाँपर तिर्यच राशिकी प्रधानता है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद-
पदपरिणत कृष्ण और नीलेद्रयावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार
लोकोंका असंख्यातवां भाग और अइर्इट्टीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि,
छठी और पांचवीं पृथिवीसे मनुष्योंमें आनेवाले क्रमशः कृष्ण और नील द्रयाके धारक
असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके पैतालीस लाख योजनप्रमाण विष्कम्भवाला, छठी पृथिवीकी
अपेक्षा पांच राजु और पांचवीं पृथिवीकी अपेक्षा चार राजु आयत (लम्बा) स्पर्शनक्षेत्र पाया
जाता है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदपरिणत कापोतलेद्रयावाले असंयतसम्यग्दृष्टि
जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग
और अइर्इट्टीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि यहाँपर कापोत-
लेद्रयाके साथ असंख्यात द्वीपोंमें और प्रथम पृथिवीमें उत्पन्न होनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टि
जीवोंसे स्पर्शित क्षेत्रका ग्रहण किया गया है ।

तेजोलेद्रयावालोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र
स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५० ॥

वर्तमानकालको ग्रहण करनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

१ म प्रती 'णील-काउ' इति पाठः ।

२ तेजोलेद्रयैर्मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिलोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ नव चतुर्दशमाया वा देशोनाम ।

स. सि. १, ८.

अट्ट णव चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १५१ ॥

सत्थाणपदपरिणदेहि तेउलेस्सियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो^१ । एसो 'वा' सदट्ठो । विहार-वेदण-कसाय--वेउव्वियपरिणदेहि अट्ट-चोद्दस-भागा, मारणंतिय-उववाद्दपरिणदेहि णव-दिवड्ड-चोद्दसभागा पोसिदा^२ ।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो^३ ॥ १५२ ॥

एदस्स परूवणा खेत्तभंगा ।

अट्ट चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १५३ ॥

सत्थाणपरिणदेहि दोगुणद्वाणजीवेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-

तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५१ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यह 'वा' शब्दका अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदसे परिणत जीवोंने आठ बटे चौदह (१४) भाग, मारणागतिकसमुद्घातपरिणत उक्त जीवोंने नौ बटे चौदह (१४) भाग और उपपाद्-पदपरिणत उन्हीं जीवोंने डेढ़ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

तेजोलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५२ ॥

इस सूत्रकी प्ररूपण। क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५३ ॥

स्वस्थानपदपरिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, इन दोनों गुणस्थानवर्ती तेजोलेश्यावाले जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका

१ तेउस्स य सट्ठाणे लोगस्स असंखभागमेत्तं तु । अट्टचोद्दसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥ गो. जी. ५४६.

२ एवं तु समुग्घादे णव चोद्दसभागयं च किंचूणं । उववादे पटमपदं दिवड्डचोद्दस य किंचूणं ॥ गो. जी. ५४७.

३ सम्यग्मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टिभिलोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोना; । स. सि. १, ८.

लोगस्स संखेज्जादिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो । विहार-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-मारणंतियपरिणदेहि देसूण-अड्ढचोइसभागा । उववादपरिणदेदि दिवड्ढु-चोइसभागा देसूणा पोसिदा । णवरि सम्मामिच्छादिट्ठिस्स मारणंतिय-उववादा णत्थि । सणक्कुमार-माहिंदे तेउलेस्सा अत्थि त्ति उववादस्स देसूण-तिण्णि-चोइसभागा किण्ण होंति ? ण, सोधम्मी-साणादो संखेज्जाणि चेव जोयणाणि गंतूण सणक्कुमार-माहिंदकप्पपारंभो होदूण दिवड्ढु-रज्जुम्हि परिसमचीदो । तस्सुत्तरिमपेत्ते तेउलेस्सिया किण्ण होंति ? ण, तस्स हेट्ठिम-विमाणे चेव तेउलेस्सासंभवोवदेसा ।

संजदासंजदेहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ १५३ ॥

एदस्स परूवणा खेत्तभंगा, वट्टमाणकालसंबंधादो ।

दिवड्ढु चोइसभागा वा देसूणा ॥ १५५ ॥

संख्यातवां भाग, और अढाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिक-समुद्धात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

शंका—सानत्कुमार और माहेन्द्रकल्पमें तेजोलेश्या होती है, इसलिये उपपादका देशोन तीन बटे चौदह (१६) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सौधर्म और ईशानकल्पसे संख्यात योजन ही ऊपर जाकर सानत्कुमार और माहेन्द्रकल्प प्रारम्भ होकर डेढ़ राजुपर समाप्त हो जाता है ।

शंका—सानत्कुमार-माहेन्द्रकल्पके उपरिम विमानके अन्ततक तेजोलेश्यावाले जीव क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उस कल्पके अधस्तन विमानोंमें ही तेजोलेश्याके होनेका उपदेश पाया जाता है ।

तेजोलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५४ ॥

वर्तमानकालसे सम्बद्ध होनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

तेजोलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५५ ॥

१ संयतासंयतलोकस्यासंख्येयभागः अर्धचतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि. १, ८.

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियपरिणदतेउलेस्सियसंजदा-
संजदेहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो
असंखेज्जगुणो पोसिदो। मारणंतियपरिणदेहि दिवड्डु-चोदहसभागा पोसिदा। उववादो णत्थि।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं ॥ १५६ ॥

एदं सुत्तं सुगमं, ओघमिह परुविदत्तादो।

पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिण्हुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केव-
डियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५७ ॥

सुगममेदं सुत्तं, खेत्तमिह उत्तत्थादो।

अट्ट चोदहसभागा वा देसूणा ॥ १५८ ॥

सत्थाणपरिणदपम्मलेस्सियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि तीदे
काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असं-

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत तेजो-
लेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां
भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अदार्हद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।
मारणान्तिकसमुद्घातपदपरिणत उक्त जीवोंने (कुछ कम) डेढ़ बटे चौदह (३६) भाग स्पर्श
किये हैं। इन जीवोंके उपपादपद नहीं होता है।

तेजोलेश्यावाले प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके
समान है ॥ १५६ ॥

ओघमें प्ररूपित होनेसे यह सूत्र सुगम है।

पद्मलेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग
स्पर्श किया है ॥ १५७ ॥

क्षेत्रप्ररूपणामें कहे जानेके कारण यह सूत्र सुगम है।

पद्मलेश्यावाले उक्त गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा
कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५८ ॥

स्वस्थानपदपरिणत पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयत-
सम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,

१ प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

२ पद्मलेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्टवन्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशीनाः
स. सि. १, ८.

खेज्जगुणो; विहार-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-मारणंतियपरिणदेहि देसूणट्ट चोदसभागा पोसिदां । उववाद्परिणदेहि देसूणपंच चोदसभागा पोसिदां । णवरि सम्मामिच्छादिट्टिस्स मारणंतिय-उववादा णत्थि ।

संजदासंजदेहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ १५९ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं, खेत्ताणिओगहारे उच्चत्थादो । उच्चमेव किमिदि पुणो उच्चदे ? ण, मंदवुद्धिसिस्सस्स संभालणट्टं तप्परूवणादो ।

पंच चोदसभागा वा देसूणा ॥ १६० ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चियपरिणदेहि पम्मलेस्सिय-संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अङ्काइज्जादो असंखेज्जगुणो; मारणंतियपरिणदेहि देसूणा पंच चोदसभागा पोसिदा ।

तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहार-वत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत पद्मलेश्यावाले उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

पद्मलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, क्षेत्रानुयोगद्वारमें इसका अर्थ कहा जा चुका है ।

शंका — पहले कही गई बात ही पुनः क्यों कही जाती है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, मंदवुद्धि शिष्योंके संभालनेके लिए पुनः उसका प्ररूपण किया गया है ।

पद्मलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत पद्म-लेश्यावाले संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घात-पदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं ।

१ पम्मस्स य सट्ठाणससुग्वाद्दुमेसु हेदि पदमपदं । अडचोदसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥ गो. जी. ५४८.

२ उववादे पदमपदं ण चोदस भागयं च देसूणं । गो. जी. ५४९.

३ संयतासंयतैलोकस्यासंख्येयभागः पंच चतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि. १, ८.

पमत्त-अण्पमत्तसंजदा ओघं ॥ १६१ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

सुकलेस्सिएसु मिच्छादिट्टिण्णहुडि जाव संजदासंजदेहि केवडियं
खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६२ ॥

एदं सुत्तं सुगमं, खेत्ताणिओगहारे उत्तत्थादो ।

छ चौदसभागा वा देसूणा ॥ १६३ ॥

सत्थाणपरिणदसुकलेस्सियमिच्छादिट्टि-सासणसम्मादिट्टि-सम्मामिच्छादिट्टि-असंजद-
सम्मादिट्टीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अङ्काइज्जादो
असंखेज्जगुणो; विहार-वेदण-कपाय-वेउच्चिय-मारणंतियपरिणदेहि छ चौदसभागा देसूणा
पोसिदा । उत्रवादपरिणदसुकलेस्सियमिच्छादिट्टीहि सासणसम्मादिट्टीहि य चदुण्हं लोगा-
णमसंखेज्जदिभागो, अङ्काइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो; तिरिक्खमिच्छादिट्टि-सासण-

पञ्चलेश्यावाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान
है ॥ १६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्लेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग
स्पर्श किया है ॥ १६२ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, क्षेत्रानुयोगद्वारमें इसका अर्थ कह दिया गया है ।

शुक्लेश्यावाले उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह
बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६३ ॥

स्वस्थानपदपरिणत शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्या-
दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग
तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहार-
वत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत जीवोंने कुछ कम छह बटे
चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदपरिणत शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और
सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और
अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि तिर्यंच मिथ्यादृष्टि
और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका शुक्लेश्याके साथ देवोंमें उपपाद नहीं होता है । पैतालीस

१ प्रमत्ताप्रमत्तलोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

२ शुक्लेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्विंशभागा वा देशानाः । स. सि. १, ८.

३ सुकस्स य तिक्काणे पदमो ष्चोदसा हीणा ॥ गो. जी. ५४९.

सम्मादिट्ठीणं सुक्कलेस्साए सह देवेषु उववादाभावा । पणदालीसलक्खजोयणविकखंभेण पंच-
रज्जुआयामेण द्विदखेत्तमाऊरिय सुक्कलेस्सियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिमणुसाणं चेव
सुक्कलेस्सियदेवेषुववादुवलंभा । ते तत्थ ण उप्पज्जंति त्ति कथं णव्वदे ? पंच चोद्दसभागु-
वदेसाभावादो । उववादपरिणदअसंजदसम्मादिट्ठीहि छ चोद्दसभागा फोसिदा, तिरिक्ख-
असंजदसम्मादिट्ठीणं सुक्कलेस्साए सह देवेषुववादुवलंभा । सत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-
वेउन्वियपरिणदसुक्कलेस्सियसंजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो; मारणांतियपरिणदेहि छ चोद्दसभागा फोसिदा,
तिरिक्खसंजदासंजदाणं सुक्कलेस्साए सह अच्चुदकप्पे उववादुवलंभा । सम्मामिच्छा-
दिट्ठिस्स मारणांतिय-उववादा णत्थि ।

प्रमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि' ति ओघं ॥ १६४ ॥

छाख योजन विष्कम्भसे और पांच राजु आयामसे स्थित क्षेत्रको व्याप्त करके शुक्कलेश्यावाले
मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका ही शुक्कलेश्यावाले देवोंमें उपपाद पाया
जाता है ।

शंका—शुक्कलेश्यावाले तिर्यंच, शुक्कलेश्यावाले देवोंमें नहीं उत्पन्न होते हैं, यह कैसे
जाना ?

समाधान—चूंकि, पांच बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके उपदेशका अभाव
है, इससे जाना जाता है कि शुक्कलेश्यावाले तिर्यंच जीव मरकर शुक्कलेश्यावाले देवोंमें नहीं
उत्पन्न होते हैं ।

उपपादपदपरिणत शुक्कलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम छह बटे
चौदह भाग (११/४) स्पर्श किये हैं, क्योंकि, तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका शुक्कलेश्याके साथ
देवोंमें उपपाद पाया जाता है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकि-
यिकपदपरिणत शुक्कलेश्यावाले संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां
भाग, तिर्यंग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।
मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने छह बटे चौदह (११/४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि,
तिर्यंच संयतासंयतोंका शुक्कलेश्याके साथ अच्युतकल्पमें उपपाद पाया जाता है । सम्य-
ग्मिथ्यादृष्टि शुक्कलेश्यावालोंके मारणान्तिक और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवती
शुक्कलेश्यावाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६४ ॥

१ णवरि सट्ठ्ठवादिमि य संखातीदा इवन्ति भागा वा । सव्वो वा खलु लोगो फासो होदि त्ति णिदिट्ठो ॥
गो. भा. ५५० ॥

२ प्रमत्तादिसयोगक्रेवल्यन्तानां अलेश्यानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ६.

एदं सुत्तं सुगमं, तदो ण किञ्चि वत्तव्वमत्थि ।

एवं लेस्सामग्गणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्टिप्पहुडि जाव अजोगि-
केवलि त्ति ओघं ॥ १६५ ॥

एदं सुत्तं सुगमं, वट्टमाणादीदकाले अस्सिदूण ओघमिह परूविदत्तादो ।

अभवसिद्धिएहिं केवडियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ॥ १६६ ॥

सत्थाण-वेदण-कषाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो
पोसिदो । विहार वेउव्वियपरिणदेहि वट्टमाणकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो; असंखेज्जरासीसु तेसिमसंखेज्जदि-
भागमेत्तो तत्थ तत्थ अभव्वरासि त्ति उवदेसादो । अदीदेण अट्ट चोइसभागा पोसिदा ।

एवं भवियमग्गणा समत्ता ।

यह सूत्र सुगम है, इसलिए कुछ भी अन्य वक्तव्य नहीं है ।

इसप्रकार लेख्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर
अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान
है ॥ १६५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान और अतीतकालको आश्रय करके ओघमें
इसका प्ररूपण हो चुका है ।

अभव्यसिद्धिक जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया
है ॥ १६६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत
अभव्यसिद्धिक जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान और
वैक्रियिकपदपरिणत अभव्यसिद्धिक जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका
असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र
स्पर्श किया है; क्योंकि, असंख्यात प्रमाणवाली पंचेन्द्रियादि राशिओंमें उन उनके असं-
ख्यातवें भागप्रमाण वहां वहां पर अर्थात् उन उन विवक्षित राशिओंमें अभव्यराशि होती
है, इस प्रकार आचार्योंका उपदेश पाया जाता है । उक्त जीवोंने अतीतकालमें आठ बटे
चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

इसप्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

१ भव्यानुवादेन भव्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्योगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

२ असन्धैः सर्वलोकः स्पृष्टः । स. सि. १, ८.

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिण्हुडि जाव
सजोगिकेवलि ति ओघं ॥ १६७ ॥

एदं सुत्तं सुगमं, ओघमिह तिण्णि वि काले अस्सिदूण परुविदत्तादो ।

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १६८ ॥

एदस्स वड्डमाणपरुवणा खेत्तभंगा । सत्थाणपरिणदेहि खइयअसंजदसम्मादिट्ठीहि
तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियल्लोयस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो;
विहार-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-मारणतियपरिणदेहि अट्ट चोइसभागा फोसिदा । उववाद-
परिणदेहि तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो, तिरियल्लोयस्स
संखेज्जदिभागो । तं कधं लब्भदे ? बद्धाउअमणुसखइयसम्मादिट्ठीसु तिरिक्खेसुप्पज्ज-
माणेसु असंखेज्जदीवेषु अच्छिय सोधम्मीसाणकप्पेसु उप्पज्जमाणखइयसम्मादिट्ठिलुत्तखेत्तं

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर
अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान
है ॥ १६७ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, तीनों ही कालोंका आश्रय करके ओघमें प्ररूपण किया
जा चुका है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान
है ॥ १६८ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थानपद-
परिणत असंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,
तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहार-
वस्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने आठ बटे
सौबह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदपरिणत असंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंने सामान्य-
लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा और तिर्यग्लोकका
संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

शंका—उपपादगत असंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकके
संख्यातवें भागप्रमाण कैसे पाया जाता है ?

समाधान—तिर्यग्लोकमें उत्पन्न होनेवाले बद्धायुष्क क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्योंके
असंख्यात द्वीपोंमें रह करके पुनः मरणकर सौधर्म और ईशानकरपोंमें उत्पन्न होनेवाले

१ सम्यक्त्वानुवादेण क्षायिकसम्यग्दृष्टीणामसंयतसम्यग्दृष्टवाचयोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तम् । किन्तु संयता-
संयतानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. वि. १. ८.

मणुस्सेसुप्पज्जमाणखइयसम्मादिडिपोसिदखेत्तं च धेत्तूण लब्भदे । एदम्मि खेत्ते आणिज्जमाणे देसूणजोयणलक्खवाहल्लं रज्जुपदरं उड्डं सत्तवग्गेण छिंदिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स बाहल्लादो संखेज्जदिभागवाहल्लं जगपदरं होदि । एवं संजादे ओघत्तं कथं जुज्जदे ? ण, उववादविरहिदसेसपदखेत्तेहि तुल्लत्तमात्रेक्खिय ओघत्तुववत्तीए ।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६९ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । सत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेउच्चियपरिणदेहि खइयसम्मादिडिसंजदासंजदेहि चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो, संखेज्जा भागा वा, पोसिदा; खइयसम्मादिडिसंजदासंजदाणं तिरिक्खेसु असंभवादो । मारणंतियपरिणदेहि चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाज्जादो असंखेज्जगुणो तीदे काले पोसिदो, पणदालीसजोयणलक्खविकखंभेण संखेज्जरज्जुआयदपोसणखेत्तुवलंभादो ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे स्पर्शित क्षेत्रको, तथा वहांसे चयकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे स्पर्शित क्षेत्रको ग्रहण करके तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है ।

इस उक्त क्षेत्रके निकालनेपर कुछ कम एक लाख योजन बाहल्यवाले राजुप्रतरको ऊपरसे सातके वर्ग (४९) द्वारा छेदकर प्रतराकारसे स्थापित करने पर तिर्यग्लोकके बाहल्यसे संख्यातवें भाग बाहल्यवाला जगप्रतर होता है ।

शंका— येसा होने पर सूत्रोक्त ओघपना कैसे घटित होगा ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उपपादपदको छोड़ शेष पदोंके क्षेत्रोंके साथ समानता देखकर ओघपना बन जाना है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १६९ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग, अथवा संख्यात बहुभाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवोंका तिर्यच्चोंमें होना असंभव है । मारणान्तिकपदपरिणत क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यात-गुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है, क्योंकि, पैतालीस लाख योजन विष्कम्भके साथ संख्यात राजुप्रमाण आयत स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है । प्रमत्तादि गुणस्थानोंकी स्पर्शन-

पमचादिगुणद्वानाणं ओघभंगो, विसेसाभावा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ १७० ॥

एदं सुत्तं सुगमं, ओघमिह परूविदत्तादो ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा
ति ओघं ॥ १७१ ॥

एदस्स सुत्तस्स जेण अदीद-वट्टमाणपरूवणा मूलोघमिह उत्तचदुगुणद्वान-अदीद-
वट्टमाणपरूवणाए तुल्ला, तेण ओघत्तं जुज्जदे ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १७२ ॥

वट्टमाणपरूवणाए सच्चपदानं ओघत्तं होदु णाम, विसेसाभावा । अदीद-परूवणाए
वि-सत्थाणस्स तिरियलोगस्स संखेज्जादिभागमेत्तखेत्तुवलंभादो । विहार-वेदण-कसाय-वेउव्विय-
पदानं य देसूणद्व-चोदसभागमेत्तखेत्तुवलंभादो ओघत्तं जुज्जदे । किंतु मारणंतिय-उववाद-

प्ररूपणा ओघके समान है, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है ।

सजोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७० ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, ओघमें इसका प्ररूपण किया जा चुका है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत
गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७१ ॥

चूंकि, इस सूत्रकी अतीत और वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा मूलोघमें कही गई
उक्त चारों गुणस्थानोंकी अतीत और वर्तमानकालिक प्ररूपणाके समान है, इसलिए ओघ-
पना बन जाता है ।

औपशमिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान
है ॥ १७२ ॥

शंका—वर्तमानकालिक स्पर्शनकी प्ररूपणामें सर्व पदोंके ओघपना भले ही रहा
आवे; क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है। अतीतकालिक प्ररूपणामें भी सर्व पदोंके ओघपना
रहा आवे; क्योंकि, अतीतप्ररूपणामें भी स्वस्थानपदका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातर्थां
भागमात्र पाया जाता है। तथा, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, और वैकियिकपदोंका
स्पर्शनक्षेत्र कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भागप्रमाण पाये जानेसे ओघपना बन जाता है।

१ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८.

२ औपशमिकसम्यक्त्वानामसंयतसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८.

परिणदाणमोघत्तं णत्थि, ओघम्हि उत्तं अट्ट-चोद्दसभागखेत्तं मोत्तूण चटुण्हं लोणाणम-
संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणमेत्तपोसणखेत्तुवलंभा । कुदो ? मणुसगदिं
मोत्तूण अण्णत्थ उवसमसम्मत्तेण सह मरणाणुवलंभा ? ण एस दोसो, मारणंतिय-उववादे
मोत्तूण सेसपदेहि सरिसत्तमत्थि त्ति ओघत्तुववत्तीदो ।

संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागच्छदुमत्थेहि केवडियं
खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७३ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । सत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-
परिणदउवसमसम्मादिट्टि-संजदासंजदेहि तीदे काले तिण्हं लोणाणमसंखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । मारणंतियपरिणदेहि
चटुण्हं लोणाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो, मणुसगदीए चैव
मारणंतियदंसणादो । सेससच्चगुणट्टाणाणमोघभंगो ।

किन्तु मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदपरिणत जीवोंके ओघपना नहीं बनता है,
क्योंकि, ओघमें कहा गया आठ बटे चौदह (१४) भागप्रमाण क्षेत्र छोड़कर सामान्यलोक
आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणे प्रमाणवाला स्पर्शन-
क्षेत्र पाया जाता है । और इसका कारण यह है कि मनुष्यगतिको छोड़कर अन्यत्र उपशम-
सम्यक्त्वके साथ मरण नहीं पाया जाता है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद, इन
दोनों पदोंको छोड़कर शेष पदोंके साथ सदृशता है, इसलिए ओघपना बन जाता है ।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषायवीतरागलज्जस्थ गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका
असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७३ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थान
स्वस्थान, विहारवत्त्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उपशमसम्यग्दृष्टि
संयतासंयत जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,
तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईट्टीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मार-
णान्तिकसमुद्धातपदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां
भाग और अट्टाईट्टीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि मनुष्य-
गतिकमें ही उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्धात देखा जाता है । शेष सर्व गुण-
स्थानोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ।

१ शेषाणां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १७४ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १७५ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १७६ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि अवगदत्थाणि, ओघमिह परूविदत्तादो । तदो एदेसिं परूवणा ण कीरदे ।

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७७ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तमंगा, समल्लीणवट्टमाणकालत्तादो ।

अट्ट चोदसभागा देसूणा, सब्वलोगो वा ॥ १७८ ॥

सत्थाणपरिणदेहि सण्णिमिच्छादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७४ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७५ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७६ ॥

ये उक्त तीनों ही सूत्र ओघमें प्ररूपित होनेसे अवगतार्थ हैं, अर्थात् इनका अर्थ जाना हुआ है । इसलिये इनकी प्ररूपणा नहीं की जाती है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७७ ॥

वर्तमानकालको आश्रय करनेसे इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

संज्ञी जीवोंने अतीत और वर्तमानकालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १७८ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपरिणत संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यात-

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८.

२ संज्ञानुवादेन संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनवत् । स. सि. १, ८.

तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । विहार-वेदण-कसाय-वेउच्चियपरिणदेहि अट्ट चोइसभागा, मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो पोसिदो ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागच्छदुमत्था ओघं

॥ १७९ ॥

एदेसिमोघादो ण को वि' भेदो अत्थि, सण्णिरहिदसासणादीणमभावा ।

असण्णीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ॥ १८० ॥

सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि असण्णीहि तिसु वि अट्टासु सव्वलोगो पोसिदो । विहारपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो तिसु वि कालेसु पोसिदो । वेउच्चियपरिणदेहि चट्टुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो वट्टमाणे पोसिदो । तीदे पंच चोइसभागा ति वत्तव्वं ।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता ।

गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, और वैक्रियिकपदपरिणत संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंने आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदपरिणत संज्ञी जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है ।

संज्ञी जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागद्वेषस्य गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७९ ॥

इन गुणस्थानोंकी स्पर्शनप्ररूपणाका ओघस्पर्शनप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है, क्योंकि, संक्षित्वसे रहित सासादनादि गुणस्थानोंका अभाव है ।

असंज्ञी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १८० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपादपदपरिणत असंज्ञी जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थानपदपरिणत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र तीनों ही कालोंमें स्पर्श किया है । वैक्रियिकपदपरिणत असंज्ञी जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श किया है । अतीतकालमें पांच बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, ऐसा कहना चाहिए ।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई ।

१ प्रतिषु ' कोरिथ ' इति पाठः, म प्रती ' को छि ' इति पाठः ।

१ असंक्षिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । स. वि. १, ८.

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १८१ ॥

उववादस्स रज्जुआयामो आहारणिरुद्धे ण लब्भदि, तेण सव्वलोगो पोसणाभावा णोघत्तं जुज्जदे ? ण, सरीरगहिदपढमसमए वट्टमाणजीविहि आऊरिदसव्वलोगुवलंभादो । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं ॥ १८२ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । तीदकालपरूवणं भण्णमाणे पोसणोघग्धि च्चदुण्हं गुणट्टाणाणं जहा उत्तं तथा वत्तव्वं । णवरि सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि उववादपरिणदेहि तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाई-ज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८३ ॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १८१ ॥

शंका—आहारमार्गणाकी अपेक्षा कथन करनेपर उपपादपदका राजुप्रमाण आयाम नहीं पाया जाता है, इसलिए सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रके स्पर्शनका अभाव होनेसे ओघपना नहीं बनता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयमें वर्तमान जीवोंसे व्याप्त सर्वलोकके पाये जानेसे ओघपना बन जाता है ।

शेष अर्थ सुगम ही है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-स्थानवर्ती आहारक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १८२ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । अतीतकालकी प्ररूपणा कहनेपर स्पर्शनके ओघमें जैसा कि इन चारों गुणस्थानोंका स्पर्शनक्षेत्र कहा है, उसी प्रकारसे कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि उपपादपरिणत सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

आहारक जीवोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १८३ ॥

१ आहाराणुवादेण आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिकक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८.

२ सयोगिकेवलीनां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स परूवणा अदीद-वट्टमाणेहि ओघतुल्ला । णवरि सजोगकेवली
पदर-लोगपूरणपदा णत्थि ।

आहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो' ॥ १८४ ॥

कुदो ? कम्मइयकायजोगीसु सन्वेसु अणाहारित्तुवलंभादो ।
अजोगिअणाहारिपरूवणद्धमुत्तरसुत्तं भणदि-

**णवरिविसेसा, अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स
असंखेज्जदिभागो' ॥ १८५ ॥**

एदं सुत्तं सुगमं ।

(एवं आहारमग्गणा समाप्ता)

एवं फौसणाणुगमो त्ति सम्मत्तमणिओगहारं ।

.....

इस सूत्रकी प्ररूपणा अतीत और वर्तमान इन, दोनों कालोंकी अपेक्षा ओघप्ररूपणाके
समान है । विशेष बात यह है कि सयोगिकेवलीके प्रतर और लोकपूरणसमुद्दात, ये दो पद
नहीं होते हैं ।

अनाहारक जीवोंमें संभवित गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र कर्मणकाय-
योगियोंके क्षेत्रके समान है ॥ १८४ ॥

इसका कारण यह है कि सभी कर्मणकाययोगियोंके अनाहारकपना पाया जाता है ।
अनाहारी अयोगिजिनके स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि अयोगिकेवलियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका
असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १८५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार स्पर्शनानुगम नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

.....

१ अनाहारकेषु मिथ्याहाष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, एकादश
षतुर्दशभागा वा देशीनाः । सयोगिकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा । स. सि. १, ८.

२ अयोगिकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

कालाणुगमो



सिरि-भगवंत-पुष्पदंत-भूदवलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाहरिय-विरइय-धवला-टीका-समणिणदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्टाणे

कालाणुगमो

कम्मकलंकुत्तिणं^१ विबुद्धसव्वत्थमुत्तवत्थमणं ।

णमिउण उसहसेणं कालणिओगं भणिस्सामो ॥

कालाणुगमेण दुविहो णिहेसो, ओधेण आदेसेण य^२ ॥ १ ॥

णामकालो ठवणकालो दव्वकालो भावकालो चेदि कालो चउच्चिहो । तत्थ णामकालो
णाम कालसहो । कधं सहो अप्पाणं पडिवज्जादि चे, ण एस दोसो; सँ-परप्पयासमयपमाण-

कर्मरूप कलंकसे उत्तीर्ण, सर्व अर्थोंके जाननेवाले, और अस्त रहित अर्थात् सदा
उदित, ऐसे वृषभसेन गणधरको नमस्कार करके अब कालानुयोगद्वारको कहते हैं ॥

कालानुगमसे दो प्रकारका निर्देश है, ओधनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

नामकाल, स्थापनाकाल, द्रव्यकाल, और भावकाल, इस प्रकारसे काल चार
प्रकारका है । उनमेंसे 'काल' इस प्रकारका शब्द नामकाल कहलाता है ।

शंका — शब्द कैसे अपने आपको प्रतिपादित करता है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, शब्दके स्व-परप्रकाशात्मक प्रमाणके

१ अ-आ-क-प्रतिपु ' तम्मकुलंकुत्तेणं ' इति पाठः ।

२ म स प्रत्योः ' मुत्थ ' ; अ-आप्रत्योः ' मुद्धु ' ; क प्रतौ ' मद्धु ' इति पाठः ।

३ कालः प्रस्तूयते । स द्विविधः सामान्येन विशेषेण च । स. सि. १, ८.

४ प्रतिपु ' सदस्स स-पर ' इति पाठः । म प्रतौ तु ' सदस्स ' इति पाठो नोपलभ्यते ।

पडिवादीणमुवलंभा । सो एसो इदि अण्णस्सिह बुद्धीए अण्णारोवणं ठवणा णाम । सा दुविहा, सम्भावासम्भावभेदेण । अणुहरंतए अणुहरंतस्स अण्णस्स बुद्धीए समारोवा सम्भावद्ववणा । तव्वदिरित्ता असम्भावद्ववणा । तत्थ सम्भावद्ववणा कालो णाम^१ पल्लवियं-कुरिय-कुलिद-करलिद-फुलिद-मबुलिद-कलकोइलपुण्णालाववणसंडुज्जोइयचित्तालिहियवसंतो । असम्भावद्ववणकालो णाम मणिभेद^२-गेरुअ-मट्टी-ठिकरादिसु वसंतो त्ति बुद्धिवलेण ठविदो । दव्वकालो दुविहो, आगमदो णोआगमदो य । आगमदो कालपाहुडजाणगो अणुवज्जुत्तो । णोआगमदो दव्वकालो जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेदेण तिविहो । तत्थ जाणुगसरीर-णोआगमदव्वकालो भविय-वट्टमाण-समुज्झादभेदेण तिविहो । सो वि बहुसो पुव्वं परूविदो त्ति णेह बुच्चदे । भवियणोआगमदव्वकालो भविस्सकाले कालपाहुडजाणओ जीवो । वव-गददोगंध-पंचरसदुपास-पंचवण्णो कुंभारचकहेट्टिमसिलव्व वचणालक्खणो लोगागासपमाणो

प्रतिपादक शब्द पाये जाते हैं । 'वह यही है' इसप्रकारसे अन्य वस्तुमें बुद्धिके द्वारा अन्यका आरोपण करना स्थापना है । वह स्थापना सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारकी है । अनुकरण करनेवाली वस्तुमें अनुकरण करनेवाले अन्य पदार्थका बुद्धिके द्वारा समारोप करना सद्भावस्थापना है । उससे भिन्न या विपरीत असद्भावस्थापना होती है । उनमेंसे पल्लवित, अंकुरित, कुलित, करलित, पुष्पित, मुकुलित, तथा कोयलके कलकल आलापसे परिपूर्ण वनखंडसे उद्योतित, चित्रलिखित वसन्तकालको सद्भावस्थापनाकालनिक्षेप कहते हैं । मणिविशेष, गेरुक, मट्टी, ठीकरा इत्यादिकमें 'यह वसंत है' इसप्रकार बुद्धिके बलसे स्थापना करनेको असद्भावस्थापनाकाल कहते हैं ।

आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यकाल दो प्रकारका है । कालविषयक प्राभृतका ज्ञायक किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यकाल है । ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्द्रव्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यकाल तीन प्रकार है । उनमें ज्ञायकशरीर नोआगम-द्रव्यकाल भावी, वर्तमान और त्यक्तके भेदसे तीन प्रकारका है । वह भी पहले बहुत वार प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यहांपर पुनः नहीं कहते हैं । भविष्यकालमें जो जीव कालप्राभृतका ज्ञायक होगा, उसे भावीनोआगमद्रव्यकाल कहते हैं ।

जो दो प्रकारके गंध, पांच प्रकारके रस, आठ प्रकारके स्पर्श और पांच प्रकारके वर्णसे रहित है, कुम्भकारके चक्रकी अधस्तन शिला या कीलके समान है, वर्तना ही जिसका

१ आ प्रती 'पडिवादीण-' ; क प्रती 'पवादीण' इति पाठः ।

२ अ-क प्रतीः 'सम्भावद्ववणा वर्णसंस्थानादिनानुकुर्वतः चित्रादावारोपितं कालो णाम' इति पाठः । अत्र संस्कृतवाक्यांशः केवलं सद्भावस्थापनायाः स्वरूपबोधकं टिप्पणकं प्रतिभाति, न तु मूलग्रंथांशः । क प्रती सम्भाव-शब्दे टिप्पणबुचकं = इति चिन्हाप्युपलभ्यते । तेन अस्यैवानुमानस्य पुष्टिर्जायते । आ प्रती स संस्कृतवाक्यांशो नोपलभ्यते ।

३ प्रतिपु 'मणिभेदः गेरुअ-' इति पाठः । म प्रती 'मणिभेदः' इति पाठो नोपलभ्यते ।

अत्थो तव्वदिरिच्चणोआगमदव्वकालो' णाम । वुत्तं च पंचत्थिपाहुडे—

कालो त्ति य व्वएसो सव्वभावपरूवओ हवइ णिच्चो ।
उप्पण्णप्पद्वंसी अवरो दीहंतरद्दाई' ॥ १ ॥
कालो परिगामभवो परिणामो दव्वकालसंभूओ ।
दोण्हं एस सहाओ कालो खणभंगुरो णियदो' ॥ २ ॥
ण य परिणमइ सयं सो ण य परिणामेइ अण्णमण्णेहिं ।
विविहपरिणामियाणं हवइ सुहेऊ सयं कालो ॥ ३ ॥
लोयायासपदेसे एक्केक्के जे ट्टिया दु एक्केक्का ।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा' ॥ ४ ॥

जीवसमासाए वि उत्तं—

छपंचणवविहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्टाणं ।
आणाए अहिगमेण य सरहणं होइ सम्मत्तं ॥ ५ ॥

लक्षण है, और जो लोकाकाशप्रमाण है, ऐसे पदार्थको तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकाल कहते हैं । पंचास्तिकायप्राभृतमें कहा भी है—

‘काल’ इस प्रकारका यह नाम सत्तारूप निश्चयकालका प्ररूपक है; और वह निश्चयकालद्रव्य अविनाशी होता है । दूसरा व्यवहारकाल उत्पन्न और प्रध्वंस होनेवाला है, तथा आवली, पल्य, सागर आदिके रूपसे दीर्घकाल तक स्थायी है ॥ १ ॥

व्यवहारकाल पुद्गलोंके परिणमनसे उत्पन्न होता है, और पुद्गलादिका परिणमन द्रव्यकालके द्वारा होता है; दोनोंका ऐसा स्वभाव है । यह व्यवहारकाल क्षणभंगुर है, परन्तु निश्चयकाल नियत अर्थात् अविनाशी है ॥ २ ॥

वह कालनामक पदार्थ न तो स्वयं परिणमित होता है, और न अन्यको अन्यरूपसे परिणमाता है । किन्तु स्वतः नाना प्रकारके परिणामोंको प्राप्त होनेवाले पदार्थोंका काल स्वयं सुदेतु होता है ॥ ३ ॥

लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर रत्नोंकी राशिके समान जो एक एक रूपसे स्थित हैं, वे कालाणु जानना चाहिए ॥ ४ ॥

जीवसमासमें भी कहा है—

जिनवरके द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, अथवा पंच अस्तिकाय, अथवा नव पदार्थोंका आकासे और अधिगमसे भद्धान करना सम्यक्त्व है ॥ ५ ॥

१ ववगदपणवण्णरसो ववगददोगंथ अट्टकासो य । अणुहलहुगो अणुत्तो वट्टणलक्खो य कालो त्ति ॥

पंचास्ति. गा. २४.

२ पंचास्ति. गा. १०८.

३ पंचास्ति. गा. १०७.

४ गो. जी. ५८८.

५ गो. नी. ५६०.

तह आयारंगे वि वुत्तं—

पंचत्थिया य छज्जीवणिकायकालदव्वमण्णे य ।

आणागेज्जे भावे आणाविचएण विचिणादिं ॥ ६ ॥

तह गिद्धपिंछाहरियप्पयासिदत्तच्चत्थसुत्ते वि 'वर्त्तनापरिणामक्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य' इदि दव्वकालो परूविदो । जीवद्वानादिसु दव्वकालो ण वुत्तो त्ति तस्साभावो ण वोत्तुं सक्किज्जदे, एत्थ छदव्वपदुप्पायणे अहियाराभावा । तम्हा दव्वकालो अत्थि त्ति धेत्तव्वो । जीवाजीवादिअट्टभंगदव्वं वा णोआगमदव्वकालो । भावकालो दुविहो, आगम-णोआगमभेदा । कालपाहुडजाणओ उवजुत्तो जीवो आगमभावकालो । दव्वकालजणिद-परिणामो णोआगमभावकालो मण्णदि । पोग्गलादिपरिणामस्स कथं कालववएसो ? ण एस

उसी प्रकारसे आचारांगमें भी कहा है—

पंच अस्तिकाय, षट्जीवनिकाय, कालद्रव्य तथा अन्य जो पदार्थ केवल आज्ञा अर्थात् जिनेन्द्रके उपदेशसे ही ग्राह्य हैं, उन्हें यह सम्यक्त्वी जीव आज्ञाविचय धर्मध्यानसे संचय करता है, अर्थात् भ्रज्जान करता है ॥ ६ ॥

तथा गृद्धपिच्छाचार्यद्वारा प्रकाशित तत्त्वार्थसूत्रमें भी 'वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व, ये कालद्रव्यके उपकार हैं' इस प्रकारसे द्रव्यकाल प्ररूपित है । जीवस्थान आदि ग्रंथोंमें द्रव्यकाल नहीं कहा गया है, इसलिए उसका अभाव नहीं कह सकते हैं, क्योंकि, यहां जीवस्थानमें छह द्रव्योंके प्रतिपादनका अधिकार नहीं है । इसलिए 'द्रव्यकाल है' ऐसा स्वीकार करना चाहिए ।

अथवा, जीव और अजीव आदिके योगसे बने हुए आठ भंगरूप द्रव्यको नोआगम-द्रव्यकाल कहते हैं ।

विशेषार्थ— जीव और अजीवद्रव्यके संयोगसे कालके आठ भंग इस प्रकार होते हैं—१ एक जीवकाल, २ एक अजीवकाल, ३ अनेक जीवकाल, ४ अनेक अजीवकाल, ५ एक जीव एक अजीवकाल, ६ अनेक जीव एक अजीवकाल, ७ एक जीव अनेक अजीवकाल ८ और अनेक जीव अनेक अजीवकाल । (देखो मंगलसम्बन्धी आठ आधार, सत्प्र. १, पृ. १९) कालके निमित्तसे होनेवाले एक जीवसम्बन्धी परिवर्तनको एक जीवकाल कहते हैं । कालके निमित्तसे होनेवाले एक अजीवसम्बन्धी कालको एक अजीवकाल कहते हैं । इस प्रकारसे आठों भंगोंका स्वरूप जान लेना चाहिए ।

आगम और नोआगमके भेदसे भावकाल दो प्रकारका है । काल-विषयक प्राभृतका ज्ञायक और वर्तमानमें उपयुक्त जीव आगम भावकाल है । द्रव्यकालसे जनित परिणाम या परिणमन नोआगमभावकाल कहा जाता है ।

दोसो, कज्जे कारणोवयारणिबंधणत्तादो । वुत्तं च पंचत्थिपाहुडे ववहारकालस्स अत्थित्तं ।
तं जहा —

सम्भावसहावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च ।

परियट्ठणसंभूओ कालो णियमेण पण्णत्तो' ॥ ७ ॥

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवास्ती ।

मास उडु अयण संवच्छरो त्ति कालो परायत्तो' ॥ ८ ॥

णत्थि चिरं वा खिण्णं वुत्तारहिदं तु सा वि खलु वुत्ता' ।

पोग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पलुच्च भवो' ॥ ९ ॥ इदि ।

एत्थ केण कालेण पयदं ? णोआगमदो भावकालेण । तस्स समय-आवलय-खण-
लव-मुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छर-जुग-पुव्व-पव्व-पलिदोवम-सागरोवमादि-
रूवत्तादो । कधमेदस्स कालववणसो ? ण, कलयन्ते संख्यायन्ते कर्म-भव-कायायुस्थितयोऽ-

शंका—पुद्गल आदि द्रव्योंके परिणामके 'काल' यह संज्ञा कैसे संभव है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, कार्यमें कारणके उपचारके निबंधनसे
पुद्गलादि द्रव्योंके परिणामके भी 'काल' संज्ञाका व्यवहार हो सकता है ।

पंचास्तिकायप्राभृतमें व्यवहारकालका अस्तित्व कहा भी गया है—

सत्तास्वरूप स्वभाववाले जीवोंके, तथैव पुद्गलोंके और 'च' शब्दसे धर्मद्रव्य,
अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्यके परिवर्तनमें जो निमित्तकारण हो, वह नियमसे कालद्रव्य
कहा गया है ॥ ७ ॥

समय, निमिष, काष्ठा, कला, नाली, तथा दिन और रात्रि, मास, ऋतु, अयन और
संवत्सर, इत्यादि काल परायत्त है; अर्थात् जीव, पुद्गल एवं धर्मादिक द्रव्योंके परिवर्तनाधीन
है ॥ ८ ॥

वर्तनारहित चिर अथवा क्षिप्रकी, अर्थात् परत्व और अपरत्वकी, कोई सत्ता नहीं
है । वह वर्तना भी पुद्गलद्रव्यके बिना नहीं होती है, इसलिए कालद्रव्य पुद्गलके निमित्तसे
हुआ कहा जाता है ॥ ९ ॥

शंका—ऊपर वर्णित अनेक प्रकारके कालोंमेंसे यहाँपर किस कालसे प्रयोजन है ?

समाधान—नोआगमभावकालसे प्रयोजन है ।

वह काल-समय, आवली, क्षण, लव, मुहुत्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन,
संवत्सर, युग, पूर्व, पर्व, पल्योपम, सागरोपम आदि रूप है ।

शंका—तो फिर इसके 'काल' ऐसा व्यपदेश कैसे हुआ ?

१ पंचास्ति. गा. २३.

२ पंचास्ति. गा. २५.

३ प्रतिपु 'उत्ता' इति पाठः ।

४ पंचास्ति० गा. २६.

नेनेति कालशब्दव्युत्पत्तेः । कालः समय अद्वा इत्येकोऽर्थः । समयादीणमत्थो बुच्चदे-
अणोरप्यंतरव्यतिक्रमकालः समयः । चौदसरज्जुआगासपदेसकमणमेत्तकालेण जो
चौदसरज्जुकमणक्खमो परमाणू तस्स एगपरमाणुककमणकालो समओ णाम । असंखेज्ज-
समए धेत्तूण एया आवलिया होदि । तप्पाओग्गसंखेज्जावलियाहि एगो उस्सासणिस्सासो
होदि । सत्तहि उस्सासेहि एगो थोवसण्णिदो कालो होदि । सत्तहि थोवेहि लवो णाम
कालो होदि । साद्ध-अट्टचीसलवेहि णाली णाम कालो होदि । वेहि णालियाहि मुहुत्तो होदि ।

उच्छ्वासानां सहस्राणि त्रीणि सप्त शतानि च ।

त्रिसप्ततिः पुनस्तेषां मुहूर्तो ह्येक इष्यते (३७७३) ॥ १० ॥

निमेषाणां सहस्राणि पंच भूयः शतं तथा ।

दश चैव निमेषाः स्युर्मुहूर्ते गणिताः बुधैः (५११०) ॥ ११ ॥

त्रिंशन्मुहूर्तो दिवसः । मुहूर्तानां नामानि-

रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च ततः सारभटोऽपि च ।

दैत्यो वैरोचनश्चान्यो वैश्वदेवोऽभिजित्तथा ॥ १२ ॥

रोहणो बलनामा च विजयो नैऋतोऽपि च ।

वारुणश्चार्यमा च स्युर्भाग्यः पंचदशो दिने (१५) ॥ १३ ॥

समाधान—नहीं, क्योंकि, ' जिसके द्वारा कर्म, भव, काय और आयुकी स्थितियां कल्पित या संख्यात की जाती हैं, अर्थात् कही जाती हैं, उसे काल कहते हैं ' इस प्रकारकी काल शब्दकी व्युत्पत्ति है । काल, समय और अद्वा, ये सब एकार्थवाची नाम हैं ।

समय आदिका अर्थ कहते हैं । एक परमाणुका दूसरे परमाणुके व्यतिक्रम करनेमें जितना काल लगता है, उसे समय कहते हैं । अर्थात्, चौदह राजु आकाशप्रदेशोंके अतिक्रमण-मात्र कालसे जो चौदह राजु अतिक्रमण करनेमें समर्थ परमाणु है, उसके एक परमाणु अतिक्रमण करनेके कालका नाम समय है । असंख्यात समयोंको ग्रहण करके एक आवली होती है । तत्प्रायोग्य संख्यात आवलियोंसे एक उश्वास-निःश्वास निष्पन्न होता है । सात उश्वासोंसे एक स्तोत्रसंज्ञिक काल निष्पन्न होता है । सात स्तोत्रोंसे एक लव नामका काल निष्पन्न होता है । साढ़े अट्टीस लवोंसे एक नाली नामका काल निष्पन्न होता है । दो नालिकाओंसे एक मुहूर्त होता है ।

उन तीन हजार सात सौ तेहत्तर (३७७३) उच्छ्वासोंका एक मुहूर्त कहा जाता है ॥ १० ॥

विद्वानोंने एक मुहूर्तमें पांच हजार एक सौ दश (५११०) निमेष गिने हैं ॥ ११ ॥ तीस मुहूर्तोंका एक दिन अर्थात् अहोरात्र होता है । मुहूर्तोंके नाम इस प्रकार हैं—

१ रौद्र, २ श्वेत, ३ मैत्र, ४ सारभट, ५ दैत्य, ६ वैरोचन, ७ वैश्वदेव, ८ अभिजित्,

सावित्रो धुर्यसंज्ञश्च दात्रको यम एव च ।
 वायुर्हुताशनो भानुर्वैजयन्तोऽष्टमो निशि ॥ १४ ॥
 सिद्धार्थः सिद्धसेनश्च विक्षोभो योग्य एव च ।
 पुष्पदन्तः सुगन्धर्वो मुहूर्त्तोऽन्योऽरुणो मतः (१५) ॥ १५ ॥
 समयो रात्रिदिनयोर्मुहूर्त्ताश्च समा स्मृताः ।
 षण्मुहूर्त्ता दिनं यान्ति कदाचिच्च पुनर्निशा ॥ १६ ॥

पंचदश दिवसाः पक्षः । दिवसानां नामानि—

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा च तिथयः क्रमात् ।
 देवताश्चन्द्रसूर्येन्द्रा आकाशो धर्म एव च ॥ १७ ॥

९ रोहण, १० बल, ११ विजय, १२ नैऋत्य, १३ वारुण, १४ अर्यमन् और १५ भाग्य । ये पंद्रह मुहूर्त दिनमें होते हैं ॥ १२-१३ ॥

१ सावित्र, २ धुर्य, ३ दात्रक, ४ यम, ५ वायु, ६ हुताशन, ७ भानु, ८ वैजयन्त, ९ सिद्धार्थ, १० सिद्धसेन, ११ विक्षोभ, १२ योग्य, १३ पुष्पदन्त, १४ सुगन्धर्व और १५ अरुण । ये पंद्रह मुहूर्त रात्रिमें होते हैं, ऐसा माना गया है ॥ १४-१५ ॥

रात्रि और दिनका समय तथा मुहूर्त समान कहे गये हैं । हां, कभी दिनको छह मुहूर्त जाते हैं, और कभी रात्रिको छह मुहूर्त जाते हैं ॥ १६ ॥

विशेषार्थ—समान दिन और रात्रिकी अपेक्षा तो पंद्रह मुहूर्तका दिन और इतने ही मुहूर्तोंकी एक रात्रि होती है । किन्तु सूर्यके उत्तरायणकालमें अठारह मुहूर्तका दिन और बारह मुहूर्तकी रात्रि हो जाती है । तथा सूर्यके दक्षिणायनकालमें बारह मुहूर्तका दिन और अठारह मुहूर्तकी रात्रि हो जाती है । इसलिए श्लोकमें कहा है कि छह मुहूर्त कभी दिनको और कभी रात्रिको प्राप्त होते हैं । अर्थात् दिनके तीन और रात्रिके तीन, इस प्रकार छह मुहूर्त कभी दिनसे रात्रिमें और कभी रात्रिसे दिनकी गिनतीमें आते जाते रहते हैं ।

पंद्रह दिनोंका एक पक्ष होता है । दिनोंके नाम इस प्रकार हैं—

नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा, इस प्रकार क्रमसे पांच तिथियां होती हैं । इनके देवता क्रमसे चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, आकाश और धर्म होते हैं ॥ १७ ॥

विशेषार्थ—नन्दा आदि तिथियोंके नाम प्रतिपदासे प्रारंभ करना चाहिये, अर्थात् प्रतिपदाका नाम नन्दातिथि है । द्वितीयाका नाम भद्रातिथि है । तृतीयाका नाम जयातिथि है । चतुर्थीका नाम रिक्तातिथि है । पंचमीका नाम पूर्णातिथि है । पुनः षष्ठीका नाम नन्दातिथि है, इत्यादि । इस प्रकारसे प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशीका नाम नन्दातिथि है । द्वितीया सप्तमी और द्वादशीका नाम भद्रातिथि है । तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशीका नाम जयातिथि है । चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशीका नाम रिक्तातिथि है । पंचमी, दशमी तथा पूर्णिमाका नाम पूर्णातिथि है । इसी क्रमसे इनके देवता भी समझ लेना चाहिये ।

द्वौ पक्षौ मासः । ते च श्रावणादयः प्रसिद्धाः । द्वादशमासं वर्षम् । पंचभिर्व-
 पैर्युगः । एवमुवरि वि वत्तव्वं जाव कप्पो त्ति । एसो कालो णाम । कस्स इमो कालो ?
 जीव-पोग्गलणं । कुदो ? तप्परिणामत्तादो । अधवा इमो सुज्जमंडलस्स परियट्ठणलक्खणस्स,
 तदुदयत्थमणेहितो दिवसादीणमुप्पत्तीए । केण कालो कीरदि ? परमट्ठकालेण । कत्थ
 कालो ? माणुसखेत्तेकसुज्जमंडले तियालगोयराणंतपज्जाएहि आवूरिदे । जदि माणुस-
 खेत्तेकसुज्जमंडले कालो ट्ठिदो होदि, कथं तेण सव्वपोग्गलणमणंतगुणेण पदीवो व्व स-
 परप्पयासकारणेण जवरासि व्व समयभावेणावट्ठिदेण छद्दव्वपरिणामा पयासिज्जंते ? ण
 एस दोसो, मिणिज्जमाणदव्वेहितो पुधभूदेण मागहपत्थेगेव मवणविरोहाभावा । ण
 चाणवत्था, पईवेण विउच्चार । देवलोगे कालाभावे तत्थ कथं कालववहारो ? ण, इहत्थेणेव

दो पक्षोंका एक मास होता है । ये मास श्रावण आदिकके नामसे प्रसिद्ध हैं । बारह
 मास का एक वर्ष होता है । पांच वर्षोंका एक युग होता है । इस प्रकार ऊपर ऊपर भी कल्प
 उत्पन्न होने तक कहते जाना चाहिए । यह सब काल कहलाता है ।

शंका—यह काल किसका है, अर्थात् कालका स्वामी कौन है ?

समाधान—जीव और पुद्गलोंका, अर्थात् ये दोनों कालके स्वामी हैं; क्योंकि, काल
 तत्परिणामात्मक है ।

अथवा, परिवर्तन या प्रदक्षिणा लक्षणवाले इस सूर्यमंडलके उदय और अस्त होनेसे
 दिन और रात्रि आदिकी उत्पत्ति होती है ।

शंका—काल किससे किया जाता है, अर्थात् कालका साधन क्या है ?

समाधान—परमार्थकालसे काल, अर्थात् व्यवहारकाल, निष्पन्न होता है ।

शंका—काल कहाँपर है, अर्थात् कालका अधिकरण क्या है ?

समाधान—त्रिकालगोचर अनन्त पर्यायोंसे परिपूरित एकमात्र मानुषक्षेत्रसम्बन्धी
 सूर्यमंडलमें ही काल है; अर्थात् कालका आधार मनुष्यक्षेत्रसम्बन्धी सूर्यमंडल है ।

शंका—यदि एकमात्र मनुष्यक्षेत्रके सूर्यमंडलमें ही काल अवस्थित है, तो सर्व
 पुद्गलोंसे अनन्तगुणे तथा प्रदीपके समान स्व-प्रकाशनके कारणरूप, और यवराशिके
 समान समयरूपसे अवस्थित उस कालके द्वारा छह द्रव्योंके परिणाम कैसे प्रकाशित किये
 जाते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मापे जानेवाले द्रव्योंसे पृथग्भूत मागध
 (देशीय) प्रस्थके समान मापनेमें कोई विरोध नहीं है । न इसमें कोई अनवस्था दोष ही
 आता है, क्योंकि, प्रदीपके साथ व्यभिचार आता है । अर्थात् जैसे दीपक, घट, पट आदि
 अन्य पदार्थोंका प्रकाशक होनेपर भी स्वयं अपने आपका प्रकाशक होता है, उसे प्रकाशित

१ मेरुप्रदक्षिणा निजगतयो नुल्लोके । तत्कृतः कालविभागः । तत्त्वा. सू. ४, १३-१४.

कालेण तेसिं ववहारादो । जदि जीव-पोग्गलपरिणामो कालो होदि, तो सव्वेसु जीव-पोग्गलेसु संठिएण कालेण होदव्वं; तदो माणुसखेत्तेकसुज्जमंडलद्धिदो कालो त्ति ण घडदे ? ण एस दोसो, णिरवज्जत्तादो । किंतु ण तहा लोमे समए वा संववहारो अत्थि; अणाइणि-हणरूवेण सुज्जमंडलकिरियापरिणामेसु चेव कालसंववहारो पयट्ठो । तम्हा एदस्सेव गहणं कायव्वं । केवचिरं कालो ? अणादिओ अपज्जवसिदो । कालस्स कालो किं तत्तो पुधभूदो अणण्णो वा ? ण ताव पुधभूदो अत्थि, अणवट्ठाणप्पसंगा । णाणण्णो वि, कालस्स काला-भावप्पसंगा । तदो कालस्स कालेण णिद्देसो ण घडदे ? ण, एस दोसो, ण ताव पुध-

करनेके लिए अन्य दीपककी आवश्यकता नहीं हुआ करती है, इसी प्रकारसे कालद्रव्य भी अन्य जीव पुद्गल, आदि द्रव्योंके परिवर्तनका निमित्तकारण होता हुआ भी अपने आपका परिवर्तन स्वयं ही करता है, उसके लिए किसी अन्य द्रव्यकी आवश्यकता नहीं पड़ती है । इसीलिए अनवस्था दोष भी नहीं आता है ।

शंका—देवलोकमें तो दिन-रात्रिरूप कालका अभाव है, फिर वहां पर कालका व्यवहार कैसे होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहांके कालसे ही देवलोकमें कालका व्यवहार होता है ।

शंका—यदि जीव और पुद्गलोंका परिणाम ही काल है, तो सभी जीव और पुद्गलोंमें कालको संस्थित होना चाहिए । तब ऐसी दशामें ' मनुष्यक्षेत्रके एक सूर्यमंडलमें ही काल स्थित है ' यह बात घटित नहीं होती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, उक्त कथन निरवद्य (निर्दोष) है । किन्तु लोकमें या शास्त्रमें उस प्रकारसे संव्यवहार नहीं है, पर अनादिनिधनस्वरूपसे सूर्यमंडलकी क्रिया-परिणामोंमें ही कालका संव्यवहार प्रवृत्त है । इसलिए इसका ही ग्रहण करना चाहिए ।

शंका—काल कितने समय तक रहता है ?

समाधान—काल अनादि और अपर्यवसित है । अर्थात् कालका न आदि है, न अन्त है ।

शंका—कालका परिणमन करनेवाला काल क्या उससे पृथग्भूत है, अथवा अनन्य (अपृथग्भूत) ? पृथग्भूत तो कहा नहीं जा सकता है, अन्यथा अनवस्थादोषका प्रसंग प्राप्त होगा । और न अनन्य (अपृथग्भूत) ही, क्योंकि, कालके कालका अभाव-प्रसंग आता है । इसलिए कालका कालसे निर्देश घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं । इसका कारण यह है कि पृथक् पक्षमें कहा गया

पक्खुत्तदोसो संभवदि, अणब्भुवगमा । णाणणपक्खदोसो वि, इट्टत्तादो । ण च कालस्स कालेण णिद्देशो णत्थि, सुज्जमंडलंतरट्टियकालेण ततो पुधभूदसुज्जमंडलट्टियकालणिद्देशादो । अधवा, जधा घडस्स भावो, सिलावुत्तयस्स सरीरमिच्चादिसु एकम्मिह वि भेदववहारो, तथा एत्थ वि एकम्मिह काले भेदेणं ववहारो जुज्जे । कदिविधो कालो ? सामण्णेण एयविहो । तीदो अणागदो वट्टमाणो चि तिविहो । अधवा गुणट्टिदिकालो भवट्टिदिकालो कम्मट्टिदि-कालो कायट्टिदिकालो उववादकालो भावट्टिदिकालो चि छव्विहो । अहवा अण्यविहो परिणामे-हिंतो पुधभूदकालाभावा, परिणामाणं च आणंतिओवलंभा । जहत्थमववोहो अणुगमो । कालस्स अणुगमो कालाणुगमो, तेण कालाणुगमेण । णिद्देशो कहणं पयासणं अहिव्वत्ति-जणणमिदि एयट्टो । सो च दुविहो, ओघेण आदेसेण चेदि । तत्थ ओघणिद्देशो द्व्व-ट्टियणयपदुप्पायणो, संगहिदत्थादो । आदेसणिद्देशो पज्जवट्टियणयपदुप्पायणो, अत्थभेदा-

दोष तो संभव है नहीं, क्योंकि, हम कालके कालको कालसे भिन्न मानते ही नहीं है । और न अनन्य या अभिन्न पक्षमें दिया गया दोष ही प्राप्त होता है, क्योंकि, वह तो हमें इष्ट ही है, (और इष्ट वस्तु उसीके लिए दोषदायी नहीं हुआ करती है) । तथा, कालका कालसे निर्देश नहीं होता हो, ऐसी भी बात नहीं है, क्योंकि, अन्य सूर्यमंडलमें स्थित कालद्वारा उससे पृथग्भूत सूर्यमंडलमें स्थित कालका निर्देश पाया जाता है । अथवा, जैसे घटका भावः शिलापुत्रकका (पाषाणमूर्तिका) शरीरः इत्यादि लोकोक्तियोंमें एक या अभिन्नमें भी भेद व्यवहार होता है, उसी प्रकारसे यहां पर भी एक या अभिन्न कालमें भी भेदरूपसे व्यवहार बन जाता है ।

शंका—काल कितने प्रकारका होता है ?

समाधान—सामान्यसे एक प्रकारका काल होता है । अतीत, अनागत और वर्तमानकी अपेक्षा तीन प्रकारका होता है । अथवा, गुणस्थितिकाल, भवस्थितिकाल, कर्मस्थितिकाल, कायस्थितिकाल, उपपादकाल और भावस्थितिकाल, इस प्रकार कालके छह भेद हैं । अथवा काल अनेक प्रकारका है, क्योंकि, परिणामोंसे पृथग्भूत कालका अभाव है, तथा परिणाम अनन्त पाये जाते हैं ।

यथार्थ अवबोधको अनुगम कहते हैं, कालके अनुगमको कालानुगम कहते हैं । उस कालानुगमसे । निर्देश, कथन, प्रकाशन, अभिव्यक्तिजनन, ये सब एकार्थक नाम हैं । वह निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उक्त दोनों प्रकारके निर्देशोंमेंसे ओघनिर्देश द्रव्यार्थिकनयका प्रतिपादन करनेवाला है, क्योंकि, उसमें समस्त अर्थ संगृहीत हैं । आदेशनिर्देश पर्यायार्थिकनयका प्रतिपादन करनेवाला है, क्योंकि, उसमें अर्थभेदका

१ अ प्रती 'कालभेदेण' इति पाठः ।

२ गो. जी. ५५७.

वलंबणादो । किमहं दुविहो णिदेसो उसहसेणादिगणहरदेवेहि कीरदे ? ण एस दोसो, उहय-
णयमवलंबिय द्विदसत्ताणुग्गहहं तधोवदेसादो ।

**ओघेण मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा' ॥ २ ॥**

'जहा उदेसो तहा णिदेसो होदि' ति जाणावणहं ओघणिदेसो कदो । सेसगुणद्वान-
पडिसेहफलो मिच्छाद्विणिदेसो । कालादो कालेण णिहालिज्जमाणे केवचिरं होंति ति
पुच्छा जिणपणत्तत्थमिदं सुत्तमिदि पदुप्पायणफला । बहुसु णाणाजीवमिदि एगवयण-
णिदेसो जादिणिबंधणो ति ण दोसयो । सव्वद्धा इदि कालविसिद्धवहुजीवणिदेसो । कुदो ?
सव्वा अद्धा कालो जेसिं जीवाणमिदि व-समासवसेण वज्झट्टुप्पवुत्तीए । अधवा, सव्वद्धा
इदि कालणिदेसो । कथं ? मिच्छादिद्वीणं कालत्तणणपरिणामिणो परिणामेहिंतो कथंचि
अभेदमासेज्ज मिच्छादिद्वीणं कालत्ताविरोहा । सव्वकालं णाणाजीवे पडुच्च मिच्छादिद्वीणं
वोच्छेदो णत्थि ति भणिदं होदि ।

अवलंबन किया गया है ।

शंका — वृषभसेनादि गणधरदेवोंने दो प्रकारका निर्देश किसलिए किया है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दोनों
नयोंको अवलंबन करके स्थित प्राणियोंके अनुग्रहके लिए दो प्रकारके निर्देशका उपदेश
किया है ।

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व-
काल होते हैं ॥ २ ॥

'जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश किया जाता है' यह बात जत-
लानेके लिए सूत्रमें 'ओघ' पदका निर्देश किया । 'मिथ्यादृष्टि' पदका निर्देश, शेष गुणस्थानोंके
प्रतिषेधके लिए है । 'कालसे' अर्थात् कालकी अपेक्षा जीवोंके संभालने पर 'कितने काल तक
होते हैं' इस प्रकारकी यह पृच्छा 'यह सूत्र जिनप्रश्न है' इस बातके बतानेके लिए है । जीवोंके
बहुत होनेपर भी 'नाना जीव' इस प्रकारका यह एक वचनका निर्देश जातिनिबंधनक है,
इसलिए कोई दोषोत्पादक नहीं है । 'सर्वाद्धा' यह पद कालविशिष्ट बहुतसे जीवोंका निर्देश
करनेवाला है, क्योंकि, सर्व अद्धा अर्थात् काल जिन जीवोंके होता है, इस प्रकारसे 'व'
समास अर्थात् बहुव्रीहिसमासके वशसे बाह्य अर्थकी प्रवृत्ति होती है । अथवा 'सर्वाद्धा'
इस पदसे कालका निर्देश जानना चाहिए, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंके कालत्वसे अभिन्न
परिणामीके परिणामोंसे कथंचिन् अभेदका आश्रय करके मिथ्यादृष्टियोंके कालत्वका कोई
भेद नहीं है । अर्थात् नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंका सर्वकाल व्युच्छेद नहीं
होता है, यह कहा गया है ।

१ मिथ्यादृष्टेर्नाना जीवोपेक्षया सर्वः कालः । स, सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो, अणादिओ सपज्जवसिदो, सादिओ सपज्जवसिदो । जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देशो । जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३ ॥

अभवसिद्धियजीवमिच्छत्तं पडुच्च अणादिअपज्जवसिदमिदि भणिदं, अभवमिच्छत्तस्स आदिमज्झंताभावादो । भवसिद्धियमिच्छत्तकालो अणादिओ सपज्जवसिदो । जहा बद्धणकुमारस्स मिच्छत्तकालो । अण्णेगो भवसिद्धियमिच्छत्तकालो सादिओ सपज्जवसिदो । जहा कण्हादिमिच्छत्तकालो । तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो मिच्छत्तकालो, तस्स इमो णिद्देशो । सो दुविहो, जहण्णो उक्कस्सो चेदि । तत्थ जहण्णकालपरुवणाजाणावणट्ठं जहण्णेणेत्ति वुत्तं । मुहुत्तस्संतो अंतोमुहुत्तं, एसो मिच्छत्तजहण्णकालणिद्देशो । तं जथा— सम्मामिच्छादिट्ठी वा असंजदसम्मादिट्ठी वा संजदासंजदो वा पमत्तसंजदो वा परिणामपच्चएण मिच्छत्तं गदो । सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तं अच्छिय पुणरवि सम्मामिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मतं वा संजमासंजमं वा अप्पमत्तभावेण संजमं वा पडिवण्णस्स

एक जीवकी अपेक्षा काल तीन प्रकार है, अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । इनमें जो सादि और सान्त काल है, उसका निर्देश इस प्रकार है— एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंका सादि-सान्तकाल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३ ॥

अभव्यासिद्धिक जीवोंके मिथ्यात्वकी अपेक्षा 'काल अनादि-अनन्त है' ऐसा कहा गया है, क्योंकि, अव्ययके मिथ्यात्वका आदि, मध्य और अन्त नहीं होता है । भव्यासिद्धिक जीवके मिथ्यात्वका काल एक तो अनादि और सान्त होता है, जैसा कि बर्द्धनकुमारका मिथ्यात्वकाल । तथा एक और प्रकारका भव्यासिद्धिक जीवोंका मिथ्यात्वकाल है, जो कि सादि और सान्त होता है, जैसे कृष्ण आदिका मिथ्यात्वकाल । उनमेंसे जो सादि और सान्त मिथ्यात्वकाल होता है उसका यह निर्देश है— वह दो प्रकारका है, जघन्यकाल और उत्कृष्टकाल । उनमेंसे जघन्यकालकी प्ररूपणा की जाती है, यह बतलानेके लिए 'जघन्यसे' ऐसा पद कहा । मुहूर्तके भीतर जो काल होता है, उसे अन्तर्मुहूर्तकाल कहते हैं । इस पदसे मिथ्यात्वके जघन्यकालका निर्देश कहा गया है, जो कि इस प्रकार है—

कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्त-संयत जीव, परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके, फिर भी सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे प्राप्त होनेवाले जीवके

१ एकजीवपेक्षया त्रयो मङ्गाः-अनादिसपर्यवसानः अनादिसपर्यवसानः सादिसपर्यवसानश्चेति । तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

सव्वजहणो मिच्छत्तकालो हेदि । सासणसम्मादिद्वी मिच्छत्तं किण्ण पडिवञ्जाविदो ? ण, सासणसम्मतपच्छायदमिच्छादिद्विस्स अइतिव्वसंकिलिद्वस्स मिच्छत्तत्तम्हा विणडिअस्स^१ सव्वजहणकालेण गुणंतरसंकमणाभावा । उक्कस्सकालपदुप्पायणद्वुत्तरसुत्तं भणदि-

उक्कस्सेण अद्वपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ४ ॥

अद्वपोग्गलपरियट्टं नाम किं ? बुच्चदे- अणाइसंसारे हिंडंताणं जीवाणं दव्वपरियट्टणं खेत्तपरियट्टणं कालपरियट्टणं भवपरियट्टणं भावपरियट्टणमिदि पंच परियट्टणाणि होंति । जं तं दव्वपरियट्टणं तं दुविहं, णोकम्मपोग्गलपरियट्टणं कम्मपोग्गलपरियट्टणं चेदि । तत्थ णोकम्मपोग्गलपरियट्टं^२ वचइस्सामो । तं जहा- जदि वि पोग्गलाणं गमणागमणं पडि

मिथ्यात्वका सर्वजघन्य काल होता है ।

शंका — सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको क्यों नहीं प्राप्त कराया गया ? अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टिको भी मिथ्यात्व गुणस्थानमें पहुंचाकर उसका जघन्यकाल क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, सासादनसम्यक्त्वसे पीछे आनेवाले, अतितीव्र संक्लेशवाले मिथ्यात्वरूपी अन्धकारसे विडम्बित मिथ्यादृष्टि जीवके सर्व जघन्यकालसे गुणान्तर-संकमणका अभाव है, अर्थात् गुणस्थान-परिवर्तन नहीं हो सकता है ।

अब मिथ्यात्वके उत्कृष्टकालके बतलानेके लिए उत्तरस्त्र कहते हैं—

एक जीवकी अपेक्षा सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्टकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥ ४ ॥

शंका — अर्धपुद्गलपरिवर्तन किसे कहते हैं ?

समाधान—इस अनादि संसारमें भ्रमण करते हुए जीवोंके द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्र-परिवर्तन, कालपरिवर्तन, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तन, इस प्रकार पांच परिवर्तन होते रहते हैं । इसमेंसे जो द्रव्यपरिवर्तन है, वह दो प्रकारका है— नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन और कर्मपुद्गलपरिवर्तन । उनमेंसे पहले नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनको कहते हैं । वह इस प्रकार है—

यद्यपि पुद्गलोंके गमनागमनके प्रति कोई विरोध नहीं है, तो भी बुद्धिसे (किसी

१ प्रतिपु ' विणदिअस्स ' इति पाठः ।

२ उत्कर्मणार्धपुद्गलपरिवर्तनो देशोनः । स. सि. १, ८.

३ तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्यायीनां योग्या ये पुद्गला एकेन जीवेन एकस्मिन् समये गृहीताः स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिरतीव्रमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता द्वितीयादिषु समयेतु निर्जीर्णा अगृहीतानन्तवारानतीत्य मिश्रकाश्चानन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीताश्चानन्तवारानतीत्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्सपुदितं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् । स. सि. २, २०. गो. जी. जी. प्र. ५६०,

विरोहो णत्थि, तो वि बुद्धीए आदिं कादूग णोकम्मपोग्गलपरियट्टे मण्णमाणे अप्पिद-
पोग्गलपरियट्टुब्भंतरे सव्वपोग्गलरासिम्हि एक्को वि परमाणू ण भुत्तो त्ति सव्वपोग्गलाणम-
गहिदसण्णा पोग्गलपरियट्टुपढमसमए कादव्वा । अदीदकाले वि सव्वजीवेहि सव्व-
पोग्गलाणमणंतिमभागो सव्वजीवरासीदो अणंतगुणो, सव्वजीवरासिउवरिमवग्गादो अणंत-
गुणहीणो पोग्गलपुंजो भुत्तुज्झिदो । कुदो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणेण सिद्धाणमणंतिम-
भागेण गुणिदादीदकालमेत्तसव्वजीवरासिसमाणभुत्तुज्झिदपोग्गलपरिमाणोवलंभा ।

सव्वे वि पोग्गला खल्ल एगो^१ भुत्तुज्झिदा हु जीवेण ।

असहं अणंतखुत्तो पोग्गलपरियट्टसंसारे^२ ॥ १८ ॥

एदीए सुत्तगाहाए सह विरोहो किण्ण होदि त्ति भणिदे ण होदि, सव्वेगदेसम्हि
गाहत्थसव्वसहप्पवुत्तीदो । ण च सव्वम्हि पयट्टमाणस्स सहस्स एगदेसपउत्ती असिद्धा,
गामो दट्ठो, पदो दट्ठो, इच्चादिसु गाम-पदाणमेगदेसपयट्टसदुवलंभादो । तेण पोग्गल-

विवक्षित पुद्गलपरमाणुपुंजको) आदि करके नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनके कहनेपर विवक्षित
पुद्गलपरिवर्तनके भीतर सर्वपुद्गलराशिमैसे एक भी परमाणु नहीं भोगा है, ऐसा समझकर
पुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें सर्व पुद्गलोंकी अशुहीतसंज्ञा करना चाहिए । अतीतकालमें
भी सर्व जीवोंके द्वारा सर्वपुद्गलोंका अनन्तत्वां भाग, सर्वजीवराशिसे अनन्तगुणा, और सर्व-
जीवराशिके उपरिम वर्गसे अनन्तगुणहीन प्रमाणवाला पुद्गलपुंज भोगकर छोड़ा गया है ।
इसका कारण यह है कि अभव्यसिद्ध जीवोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तत्वे भागसे गुणित
अतीतकालप्रमाण सर्वजीवराशिके समान भोग करके छोड़े गये पुद्गलोंका परिमाण पाया
जाता है ।

शंका— यदि जीवने आज तक भी समस्त पुद्गल भोगकर नहीं छोड़े हैं, तो—

इस पुद्गलपरिवर्तनरूप संसारमें समस्त पुद्गल इस जीवने एक एक करके पुनः पुनः
अनन्तवार भोग करके छोड़े हैं ॥ १८ ॥

इस सूत्रगाथाके साथ विरोध क्यों नहीं होगा ?

समाधान—उक्त सूत्रगाथाके साथ विरोध प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, गाथामें
स्थित सर्व शब्दकी प्रवृत्ति सर्वके एक भागमें की गई है । तथा, सर्वके अर्थमें प्रवर्तित होनेवाले
शब्दकी एकदेशमें प्रवृत्ति होना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, ग्राम जल गया, पद् (जनपद्)
जल गया, इत्यादिक वाक्योंमें उक्त शब्द ग्राम और पदोंके एक देशमें प्रवृत्त हुए भी पाये
जाते हैं ।

१ प्रतिपु ' एगो ' इति पाठः ।

२ स. सि. २, १०. गो. जी., जी. प्र. ५६०.

परियट्टादिसमए अगहिदसण्णिदे चेव पोग्गले तिण्हमेकदरसरीरणिप्पायणट्टमभवसिद्धिएहि अणंतगुणे' सिद्धाणमणंतिमभागमेत्ते गेण्हदि । ते च गेण्हंतो अप्पणो ओगाढखेत्तद्धिदे चेव गेण्हदि, णो पुध खेत्तद्धिदे । वुत्तं च—

एयक्खेतोगाढं सव्वपदेसेहि कम्मणो जोगं ।

बंधइ जहुत्तहेदू सादियमध णादियं चाविं ॥ १९ ॥

विदियसमए वि अप्पिदपोग्गलपरियट्टमंतरे अगहिदे चेव गेण्हदि । एवमुक्कस्सेण अणंतकालमगहिदे चेव गेण्हदि । जहण्णेण दो-समएसु चेव अगहिदे गेण्हदि, पढम-समयगहिदपोग्गलाणं विदियसमए णिज्जरिय अकम्मभावं गदाणं पुगो तदियसमए तम्हि चेव जीवे णोकम्मपज्जाएण परिदाणमुवलंभादो । तं कधं णव्वदे ? णोकम्मस्स आबाधाए विणा उदयादिणिसेगुवदेसा । एसो पोग्गलपरियट्टकालो तिविहो होदि, अगहिदगहणद्धा

अतएव पुद्गलपरिवर्तनके आदि समयमें औदारिक आदि तीन शरीरोंमेंसे किसी एक शरीरके निष्पादन करनेके लिए जीव अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भाग-मात्र अगृहीत संज्ञावाले पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है । उन पुद्गलोंको ग्रहण करता हुआ भी अपने आश्रित क्षेत्रमें स्थित पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है, किन्तु पृथक् क्षेत्रमें स्थित पुद्गलोंको नहीं ग्रहण करता है । कहा भी है—

यह जीव एक क्षेत्रमें अवगाढरूपसे स्थित, और कर्मरूप परिणमनके योग्य पुद्गल-परमाणुओंको यथोक्त (आगमोक्त मिथ्यात्व आदि) हेतुओंसे सर्व प्रदेशोंके द्वारा बांधता है । वे पुद्गलपरमाणु सादि भी होते हैं, अनादि भी होते हैं, और उभयरूप भी होते हैं ॥ १९ ॥

द्वितीय समयमें भी विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर अगृहीत पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है । इस प्रकार उत्कृष्टकालकी अपेक्षा अनन्तकाल तक अगृहीत पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है । किन्तु अधन्यकालकी अपेक्षा दो समयोंमें ही अगृहीत पुद्गलोंको ग्रहण करता है, क्योंकि, प्रथम समयमें ग्रहण किये गये पुद्गलोंकी द्वितीय समयमें निर्जरा करके अकर्मभाव (कर्मरहित अवस्था) को प्राप्त हुए वे ही पुद्गल पुनः तृतीय समयमें उसी ही जीवमें नोकर्म पर्यायसे परिणत हुए पाये जाते हैं ।

शंका — प्रथम समयमें गृहीत पुद्गलपुंज द्वितीय समयमें निर्जर्ण हो, अकर्मरूप अवस्थाको धारण कर, पुनः तृतीय समयमें उसी ही जीवमें नोकर्मपर्यायसे परिणत हो जाता है, यह कैसे जाना ?

समाधान — क्योंकि, आबाधाकालके विना ही नोकर्मके उदय आदिके निषेकोंका उपदेश पाया जाता है ।

यह पुद्गलपरिवर्तनकाल तीन प्रकारका होता है—अगृहीतग्रहणकाल, गृहीतग्रहणकाल

१ प्रतिपु 'गुणो' इति पाठः। २ गो. क. १८५. परं तत्र 'जहुत्तहेदू' इति स्थाने 'सगहेदूहि यं' इति पाठः।

गहिदगहणद्वा मिस्सयगहणद्वा चेदि । अप्पिदपोग्गलपरियट्टुब्भंतरे जं अगहिदपोग्गल-
गहणकालो अगहिदगहणद्वा णाम । अप्पिदपोग्गलपरियट्टुब्भंतरे गहिदपोग्गलाणं चय
गहणकालो गहिदगहणद्वा णाम । अप्पिदपोग्गलपरियट्टुब्भंतरे गहिदागहिदपोग्गलाण-
मकमेण गहणकालो मिस्सयगहणद्वा णाम । एवं तीहि पयारेहि पोग्गलपरियट्टुकालो
जीवस्स गच्छदि । एत्थ तिण्हमद्वाणं परियट्टणकमो वुच्चदे । तं जहा—पोग्गलपरियट्टादि-
समयप्पहुडि अणंतकालो अगहिदगहणद्वा भवदि, तत्थ सेसदोपयाराभावा । पुणो
अगहिदगहणद्वावसाणे सइं मिस्सयगहणद्वा होदि । पुणो वि विदियवारे अगहिदगहणद्वाए
अणंतकालं गंतूण सइं मिस्सयद्वा होदि । एवं तदियवारे वि अगहिदगहणद्वाए अणंतकालं
गमिय सइं मिस्सयद्वाए परिणमदि । एदेण पयारेण मिस्सयद्वाओ वि अणंताओ जादाओ ।
पुणो णंतकालं अगहिदगहणद्वाए गमिय सइं गहिदगहणद्वाए परिणमदि । एदेण कमेण
अणंतो कालो गच्छदि जाव गहिदगहणद्वासलागाओ वि अणंतत्तं पत्ताओ त्ति । पुणो उवारी

और मिश्रग्रहणकाल । विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर जो अगृहीत पुद्गलोंके ग्रहण करनेका
काल है उसे अगृहीतग्रहणकाल कहते हैं । विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर गृहीत पुद्गलोंके
ही ग्रहण करनेके कालको गृहीतग्रहणकाल कहते हैं । तथा विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर
गृहीत और अगृहीत, इन दोनों प्रकारके पुद्गलोंके अक्रमसे अर्थात् एक साथ ग्रहण करनेके
कालको मिश्रग्रहणकाल कहते हैं । इस तरह उक्त तीनों प्रकारोंसे जीवका पुद्गलपरिवर्तनकाल
व्यतीत होता है ।

विशेषार्थ— जिन पुद्गलपरमाणुओंके समुदायरूप समयप्रबद्धमें केवल पहले ग्रहण
किये हुए परमाणु ही हों, उस पुद्गलपुंजको गृहीत कहते हैं । जिस समयप्रबद्धमें ऐसे परमाणु
हों कि जिनका जीवने पहिले कभी ग्रहण नहीं किया हो उस पुद्गलपुंजको अगृहीत कहते हैं ।
जिस समयप्रबद्धमें दोनों प्रकारके परमाणु हों उस पुद्गलपुंजको मिश्र कहते हैं ।

अब यहांपर उक्त तीनों प्रकारके कालोंके परिवर्तनका क्रम कहते हैं ।
वह इस प्रकार है— पुद्गलपरिवर्तनके आदि समयसे लेकर अनन्तकाल तक अगृहीत-
ग्रहणका काल होता है, क्योंकि, उसमें शेष दो प्रकारके कालोंका अभाव
है । पुनः अगृहीतग्रहणकालके अन्तमें एक वार मिश्रपुद्गलपुंजके ग्रहण करनेका काल आता
है । फिर भी द्वितीयवार अगृहीतग्रहणकालके द्वारा अनन्तकाल जाकर एकवार मिश्रपुद्गल-
पुंजके ग्रहण करनेका काल आता है । इसी प्रकार तृतीयवार भी अगृहीतग्रहणकालके द्वारा
अनन्तकाल जाकर एक वार मिश्रग्रहणकालरूपसे परिणमन होता है । इस प्रकारसे मिश्र-
ग्रहणकालकी भी शलाकाएं अनन्त हो जाती हैं । पुनः अनन्तकाल अगृहीतग्रहणकालके
द्वारा बिता कर एकवार गृहीतग्रहणकालरूपसे परिणमन होता है । इस क्रमसे अनन्तकाल
व्यतीत होता हुआ तब तक चला जाता है जब तक कि गृहीतग्रहणकालकी शलाकाएं भी

१ प्रतिपु ' जं गहिद- ' इति पाठः ।

अणंतं कालं मिस्सयगहणद्वाए गमेदूणं सइं अगहिदगहणद्वा परिणमदि । एवमेदाहि दोहि अद्वाहि अणंतकालं गमिय सइं गहिदगहणद्वा भवदि । एवमेदेण पयारेण जीवस्स कालो गच्छदि जाव एत्थतणगहिदगहणद्वासलागाओ अणंतत्तं पत्ताओ त्ति । एवं दो परि-
यड्डणवारा गदा । पुणो णंतं कालं मिस्सयद्वाए गमिय सइं गहिदगहणद्वाए परिणमदि ।
एदेण पयारेण गहिदगहणद्वासलागाओ अणंतत्तं पत्ताओ । तदो सइमगहिदगहणद्वाए
परिणमदि । एदेण वि पयारेण अणंतो कालो गच्छदि जाव एत्थतणअगहिदगहणद्वा-
सलागाओ अणंतत्तं पत्ताओ त्ति । एसो तदियो परियड्डो । संपदि चउत्थपरियड्डं भणि-
स्सामो । तं जघा— अणंतकालं गहिदगहणद्वाए गमेदूणं सइं मिस्सयगहणद्वाए परिणमदि ।
एवमेदाहि दोहि अद्वाहि अणंतकालं गमेदि जाव एत्थतणमिस्सयगहणद्वासलागाओ अणं-
तत्तं पत्ताओ त्ति । तदो सइमगहिदगहणद्वाए परिणमदि । पुणो उवरि एदेण चेव क्रमेण
कालो गच्छदि जाव पोग्गलपरियड्डुचरिमसमओ त्ति । पोग्गलपरियड्डुआदिमसमए जे

अनन्तत्वको प्राप्त हो जाती है (इस प्रकार प्रथम परिवर्तनवार व्यतीत हुआ) । पुनः इसके ऊपर अनन्तकाल मिश्रग्रहणकालकी अपेक्षा बिताकर एकवार अगृहीतग्रहणकाल परिणत होता है । इस प्रकार इन दोनों प्रकारके कालोंसे अनन्तकाल बिताकर एकवार गृहीतग्रहणकाल होता है । इस तरह उक्त प्रकारसे जीवका काल तब तक व्यतीत होता हुआ चला जाता है जब तक कि यहांकी गृहीतग्रहणकालसम्बन्धी शलाकाएं भी अनन्तताको प्राप्त हो जाती हैं । इस प्रकार दो परिवर्तनवार व्यतीत हुए । पुनः अनन्तकाल मिश्रग्रहणकालके द्वारा बिताकर एकवार गृहीतग्रहणकालका परिणमन होता है । इस प्रकारसे गृहीतग्रहणकालकी शलाकाएं अनन्तताको प्राप्त हो जाती हैं । तत्पश्चात् एकवार अगृहीतग्रहणकालरूपसे परिणमन होता है । पुनः इस प्रकारसे भी अनन्तकाल तब तक व्यतीत होता है जब तक कि यहां पर भी अगृहीत-ग्रहणकालसम्बन्धी शलाकाएं अनन्तताको प्राप्त होती हैं । यह तीसरा परिवर्तन है । अब चतुर्थ परिवर्तनको कहते हैं । वह इस प्रकार है—अनन्तकाल गृहीतग्रहणकालसम्बन्धी बिताकर एकवार मिश्रग्रहणकालका परिवर्तन होता है । इस प्रकार इन दोनों प्रकारके कालोंद्वारा अनन्तकाल बिताता है जब तक कि यहांकी मिश्रग्रहणकालसम्बन्धी शलाकाएं अनन्तताको प्राप्त होती हैं । इसके पश्चात् एकवार अगृहीतग्रहणकालरूपसे परिणमित होता है । इसके पश्चात् फिर भी इसके आगे इस ही क्रमसे पुद्गलपरिवर्तनके अन्तिम समय तक काल व्यतीत होता जाता है । (इस चतुर्थ परिवर्तनके समाप्त हो जानेपर) नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनके

१ प्रतिपु ' गमेदूण ण सइं ' इति पाठः ।

२ अगहिदमिस्सं गहिदं मिस्समगहिदं तहेव गहिदं च । मिस्सं गहिदमगहिदं गहिदं मिस्सं च अगहिदं च ॥
गो. जी. जी. प्र. ५६०.

जीवेण नोकर्मस्वरूपेण गहिदा पोग्गला ते विदियादिसमएसु
अकम्मभावं गंतूण जम्हि काले ते चेव सुद्धा आगच्छंति
सो कालो पोग्गलपरियट्ठेत्ति भण्णादि ।

०	+	+	१
+	०	१	+
१	१	०	०

आदिम समयमें जीवके द्वारा नोकर्मस्वरूपसे जो पुद्गल ग्रहण किये थे वे ही पुद्गल द्वितीयादि समयोंमें अकर्मभावको प्राप्त होकरके जिस कालमें वे ही शुद्ध पुद्गल आने लगते हैं, वह काल 'पुद्गलपरिवर्तन' इस नामसे कहा जाता है ।

विशेषार्थ— परिवर्तन पांच प्रकारका है—द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन, कालपरिवर्तन, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तन । इनमें से द्रव्यपरिवर्तनके दो भेद हैं—नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन और कर्मद्रव्यपरिवर्तन । यहाँ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनका स्वरूप बतलाया गया है । उसी स्वरूपके समझानेके लिए मूलमें संदष्टि दी गई है । जिसमें अगृहीतसूचक शून्य (०) पुनः मिश्रसूचक हंसपद (+) और गृहीतसूचक एकका अंक (१) दिया गया है । इसका अभिप्राय यह है कि अनन्तवार अगृहीत परमाणुपुंजके ग्रहण करनेके बाद एक वार मिश्र परमाणुपुंजका ग्रहण होता है । पुनः अनन्तवार उक्त क्रमसे मिश्रग्रहण करनेके बाद एक वार गृहीत परमाणुपुंजका ग्रहण होता है । इस प्रकार अनन्तवार गृहीतग्रहण हो जाने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनका प्रथम भेद समाप्त होता है । यह संदष्टिकी प्रथम कोष्ठक-पंक्तिका अर्थ है । तत्पश्चात् अनन्तवार मिश्रका ग्रहण होने पर एकवार अगृहीतका ग्रहण होता है । और अनन्तवार अगृहीतका ग्रहण हो जाने पर एकवार गृहीतका ग्रहण होता है । इस प्रकारसे अनन्तवार गृहीतका ग्रहण हो जाने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनका दूसरा भेद समाप्त होता है । यही दूसरी कोष्ठक-पंक्तिका अभिप्राय है । पुनः अनन्तवार मिश्रका ग्रहण हो जाने पर एकवार गृहीतका, और अनन्तवार गृहीतका ग्रहण हो जाने पर एकवार अगृहीतका ग्रहण होता है । इस प्रकार अनन्तवार अगृहीतग्रहण होने पर नोकर्मपुद्गलका तीसरा भेद समाप्त होता है । यही तीसरी कोष्ठक-पंक्तिका अर्थ है । पुनः अनन्तवार गृहीतका ग्रहण होनेके पश्चात् एकवार मिश्रका और अनन्तवार मिश्रका ग्रहण होने पर एकवार अगृहीतका ग्रहण होता है । इस प्रकारसे अनन्तवार अगृहीतका ग्रहण हो जाने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनका चौथा भेद समाप्त होता है । इस सबके समुदायको नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन कहते हैं । तथा इसमें जितना समय लगता है उसको नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनका काल कहते हैं ।

२ प्रतिषु

०	०	१	१
+	१	०	+
१	+	+	०

इति पाठः ।

एत्थ अत्पावहुगं । सव्वत्थोवा अगहिदगहणद्वा । मिस्सयगहणद्वा अणंतगुणाओ । जहण्णिया गहिदगहणद्वा अणंतगुणा । जहण्णओ पोग्गलपरियट्ठो विसेसाहिओ । उक्कस्सिया गहिदगहणद्वा अणंतगुणा । उक्कस्सओ पोग्गलपरियट्ठो विसेसाहिओ । किं कारणम-गहिदगहणद्वा थोवा जादा ? बुच्चदे— जे णोकम्मपज्जाएण परिणमिय अकम्मभावं गंतूण तेण अकम्मभावेण जे थोवकालमच्छिया ते बहुवारमागच्छंति, अविणट्ठुचउव्विहपाओग्गादो । जे पुण अप्पिदपोग्गलपरियट्ठुभंतरे ण गहिदा ते चिरेण आगच्छंति, अकम्मभावं गंतूण तत्थ चिरकालावट्ठाणेण विणट्ठुचउव्विहपाओग्गात्तादो । भणिदं च—

सुद्धमट्ठिदिसंजुत्तं आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं ।

पाएण एदि गहणं दव्वमणिद्विसंठाणं ॥ २० ॥

अब उक्त अगृहीत, मिश्र और गृहीतसंबन्धी तीनों प्रकारके कालोंका अल्पबहुत्व कहते हैं—सबसे कम अगृहीतग्रहणका काल है । अगृहीतग्रहणके कालसे मिश्रग्रहणका काल अनन्तगुणा है । मिश्रग्रहणके कालसे जघन्य गृहीतग्रहणका काल अनन्तगुणा है । जघन्य गृहीतग्रहणके कालसे जघन्य पुद्गलपरिवर्तनका काल विशेष अधिक है । जघन्य पुद्गलपरिवर्तनके कालसे उत्कृष्ट गृहीतग्रहणका काल अनन्तगुणा है । और उत्कृष्ट गृहीतग्रहणके कालसे उत्कृष्ट पुद्गलपरिवर्तनका काल विशेष अधिक है ।

शंका—अगृहीतग्रहणकालके सबसे कम होनेका कारण क्या है ?

समाधान—जो पुद्गल नोकर्मपर्यायसे परिणमित होकर पुनः अकर्मभावको प्राप्त हो, उस अकर्मभावसे अल्पकाल तक रहते हैं वे पुद्गल तो बहुतवार आते हैं; क्योंकि, उनकी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप चार प्रकारकी योग्यता नष्ट नहीं होती है । किन्तु जो पुद्गल विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर नहीं ग्रहण किये गये हैं, वे चिरकालके बाद् आते हैं, क्योंकि, अकर्मभावको प्राप्त होकर उस अवस्थामें चिरकाल तक रहनेसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप संस्कारका विनाश हो जाता है । कहा भी है—

जो कर्मपुद्गल पहले बद्धावस्थामें सूक्ष्म अर्थात् अल्प स्थितिसे संयुक्त थे, अतएव निर्जरा द्वारा कर्मरूप अवस्थासे मुक्त अर्थात् रहित हुए, किन्तु आसन्न अर्थात् जीवके प्रदेशोंके साथ जिनका एकक्षेत्राधगाह है, तथा जिनका आकार अनिर्दिष्ट अर्थात् कहा नहीं जा सकता है, इस प्रकारका पुद्गल द्रव्य बद्धलतासे ग्रहणको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

१ अत्रागृहीतग्रहणकालः अनन्तोऽपि सर्वतः स्तोक्तः । कुतः, विनष्टद्रव्यक्षेत्रकालभावसंस्कारपुद्गलानां बहुवारग्रहणाघटनात् । अनेन विवक्षितपुद्गलपरिवर्तनमध्ये बहुवारग्रहणं संभवति। मुक्तं भवति । गो. जी. जी. प्र. ५६०.

२ अल्पस्थितिसंयुक्तं जीवप्रदेशेषु स्थितं निर्मरया विमोचितकर्मस्वरूपं पुद्गलद्रव्यं अनिर्दिष्टसंस्थानं विवक्षितपरिवर्तनप्रथमसमयोक्तस्वरूपाहितं जीवेन प्रचुरदृश्या स्वीक्रियते । कुतः ? द्रव्यादिचतुर्विधसंस्कारसंपन्नत्वात् । गो. जी. जी. प्र. ५६०.

एदेण कारणेण अगहिदग्रहणद्धा थोवा जादा । एसो णोकम्मपोग्गलपरियट्ठो णाम । जधा णोकम्मपोग्गलपरियट्ठो बुत्तो, तथा चेव कम्मपोग्गलपरियट्ठो वत्तव्वो । णवरि विसेसो णोकम्मपोग्गला आहारवग्गणादो आगच्छंति । कम्मपोग्गला पुण कम्मइयवग्गणादो । णोकम्मपोग्गलाणं तदियसमए चेव मिस्सयग्रहणद्धा हेदि । कम्मपोग्गलाणं पुण तिसमयाहियावलियाए । कुदो ? बंधावलियादीदानं समयाहियावलियाए ओकड्डणवसेण पत्तोदयाणं दुसमयाहियावलियाए अकम्मभावं गदाणं कम्मपोग्गलाणं तिसमयाहियावलियाए कम्मपज्जाएण परिणमिय अण्णपोग्गलेहि सह जीवे बंधं गदाणमुवलंभा । णवरि दोसु वि पोग्गलपरियट्ठेसु सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तएण पढमसमयतन्भवत्थेण पढमसमयाहारएण जहण्णुववाद्दजोगेण गहिदकम्म-णोकम्मदव्वं घेत्तूण आदी कायव्वा । एत्थ उवउज्जंती गाहा—

ग्रहणसमयमिह जीवो उत्पादेदि हु गुणंसपक्खयदो ।

जीवेहि अणंतगुणं कम्म पदेसेसु सव्वेसु ॥ २१ ॥

इस सूत्रोक्त कारणसे अगृहीतग्रहणका काल अल्प होता है ।

इस प्रकार इस सबका नाम नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन है ।

जिस प्रकारसे नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन कहा है, उसी प्रकारसे कर्मपुद्गलपरिवर्तन भी कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि नोकर्मपुद्गल आहारवर्गणासे आते हैं । किन्तु कर्मपुद्गल कर्मणवर्गणासे आते हैं । नोकर्मपुद्गलोंके मिश्रग्रहणका काल तृतीय समयमें ही होता है । किन्तु कर्मपुद्गलोंके मिश्रग्रहणका काल तीन समय अधिक आवली-प्रमाण कालके व्यतीत होने पर होता है, क्योंकि, जो बन्धावलीसे अतीत है, एक समय अधिक आवलीके द्वारा अपकर्षणके वशसे जो उदयको प्राप्त हुए हैं, और दो समय अधिक आवलीके रहनेपर जो अकर्मभावको प्राप्त हुए हैं, ऐसे कर्मपुद्गलोंका तीन समय अधिक आवलीके द्वारा कर्मपर्यायसे परिणमन होकर अन्य पुद्गलोंके साथ जीवमें बंधको प्राप्त होना पाया जाता है । विशेष बात यह है कि दोनों ही पुद्गलपरिवर्तनोंमें प्रथम समयमें तद्भवस्थ अर्थात् उत्पन्न हुए, तथा प्रथम समयमें ही आहारक हुए सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्त जीवके द्वारा जघन्य उपपाद्योगसे गृहीत कर्म और नोकर्मद्रव्यको ग्रहण करके आदि अर्थात् परिवर्तनका प्रारंभ करना चाहिए । यहां पर उपयुक्त गाथा इस प्रकार है—

कर्मग्रहणके समयमें जीव अपने गुणांश प्रत्ययोंसे, अर्थात् स्वयोग्य बंधकारणोंसे, जीवोंसे रुनन्तगुणे कर्मोंको अपने सर्व प्रदेशोंमें उत्पादन करता है ॥ २१ ॥

१ कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते—एकस्मिन् समये एकेन जीवेनाष्टविधकर्मभावैः पुद्गला ये गृहीताः समयाधिकामात्रालिकामतीत्य द्वितीयादिषु समयेषु निर्जाणाः पूर्वोक्तैर्नैव क्रमेण त एव तेनैव प्रकारेण तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् । स. सि. २, १०. २ प्रतिषु 'परियट्ठे' इति पाठः ।

एवं दब्बपोग्गलपरियट्ठणं गदं । खेत्त-काल-भव-भावपोग्गलपरियट्ठा भाणिवृण
गेण्हिदब्बा । तेसिं गाहाओ—

सब्बे त्ति पोग्गला खल्ल एगे भुत्तुञ्जिदा हु जीवेण ।
असइं अणंतखुतो पोग्गलपरियट्ठसंसारे' ॥ २२ ॥
सब्बमिहि लोमखेत्ते कमसो तण्णत्थि जण्ण ओच्छुण्णं ।
ओगाहणओ बहूसो हिंडंते खेत्तसंसारे' ॥ २३ ॥
ओसप्पिण्णि-उस्सप्पिणि-समयावल्लिया णिरंतरा सब्बा ।
जादो मुदो य बहूसो हिंडंते कालसंसारे' ॥ २४ ॥
'णिरआउआ जहण्णा जाव दु उवरिल्लओ दु गेवज्जो ।
जीवो मिच्छत्तवसा भवड्ढिदिं हिंडिदो बहूसो' ॥ २५ ॥

इस प्रकार द्रव्यपुद्गलपरिवर्तन समाप्त हुआ । क्षेत्र, काल, भव और भावपुद्गलपरिवर्तनोंको कहलाकर ग्रहण करा देना चाहिए । उन परिवर्तनोंकी (संश्लेषसे अर्थ-प्रतिपादक) गाथाएं इस प्रकार हैं—

इस जीवने इस पुद्गलपरिवर्तनरूप संसारमें एक एक करके पुनः पुनः अनन्तवार सम्पूर्ण पुद्गल भोग करके छोड़े हैं ॥ २२ ॥

इस समस्त लोकरूप क्षेत्रमें एक प्रदेश भी ऐसा नहीं है जिसे कि क्षेत्रपरिवर्तनरूप संसारमें क्रमशः भ्रमण करते हुए बहुतवार नाना अवगाहनानोंसे इस जीवने न छुआ हो ॥ २३ ॥

कालपरिवर्तनरूप संसारमें भ्रमण करता हुआ यह जीव उत्सर्पिणी और अधसर्पिणी कालके सर्व समयोंकी आवलियोंमें निरंतर बहुतवार उत्पन्न हुआ और मरा है ॥ २४ ॥

भवपरिवर्तनरूप संसारमें भ्रमण करता हुआ यह जीव मिथ्यात्वके वशसे जघन्य नारकायुसे लगाकर (तिर्य्यच, मनुष्य और) उपरिम त्रैवेयक तककी भवस्थितिको बहुतवार प्राप्त हो चुका है ॥ २५ ॥

१ स. सि. २, १०. परं तत्र ' एगे ' इति स्थाने ' कमसो ' इति पाठः । सर्वेऽपि पुद्गलाः खल्ल एकेना-
चोञ्जिताश्च जीवेन । अणन्तखुतःखः पुद्गलपरिवर्तसंसारे ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

२ स. सि. २, १०. परं तत्र ' ओच्छुण्णं ' इति स्थाने ' उप्पण्णं ' इति पाठः । सर्वत्र जगत्क्षेत्रे देशो न
अस्ति जंतुनाऽक्षुण्णः । अवगाहनानि बहुशो बंध्रमता क्षेत्रसंसारे ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

३ स. सि. २, १०. परं तत्र द्वितीयचरणे ' समयावल्लियासु णिरवसंसारासु ' इति पाठः । उत्सर्पणावसर्पण-
समयावल्लियासु निरवशेषासु । जातो मृतश्च बहुशः परिभ्रमन् कालसंसारे ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

४ प्रतिषु गाथेयं २६ तर्माकितगाथायाः पञ्चाहुपलभ्यते ।

५ णिरयादिजहण्णाविसु जाव दु उवरिल्लया दु गेवज्जो । मिच्छत्तसंसिदेण हु बहूसो त्ति भवड्ढिदी ममिदा ॥
स. सि. २, १०. नरकजघन्यायुश्यासुपरिमत्रैवेयकावसानेऽहु । मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता बहुशः ॥
गो. जी. जी. प्र. ५६०.

सन्वासिं पगदीणं अणुभाग-पदेसंबंधाणाणि ।
 जीवो मिच्छत्तवसा परिभमिदो भावसंसारे' ॥ २६ ॥
 परियट्टिदाणि बहुसो पंच वि परियट्टणाणि जीवेण ।
 जिणवयणमलभमाणेण दीदकाले अणंताणि' ॥ २७ ॥
 जह् गेण्हइ परियट्टं पुरिसो अच्चादणस्स विविहस्स ।
 तह् पोग्गलपरियट्टे गेण्हइ जीवो सरीराणि ॥ २८ ॥

अदीदकाले एगस्स जीवस्स सन्वत्थोवा भावपरियट्टवारा । भवपरियट्टवारा अणंत-
 गुणा । कालपरियट्टवारा अणंतगुणा । खेत्तपरियट्टवारा अणंतगुणा । पोग्गलपरियट्टवारा
 अणंतगुणा । सन्वत्थोवो पोग्गलपरियट्टकालो । खेत्तपरियट्टकालो अणंतगुणो । कालपरि-
 यट्टकालो अणंतगुणो । भवपरियट्टकालो अणंतगुणो । भावपरियट्टकालो अणंतगुणो' ।

यह जीव मिथ्यात्वके वशीभूत होकर भावपरिवर्तनरूप संसारमें परिभ्रमण करता
 हुआ सम्पूर्ण प्रकृतियोंके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंधस्थानोंको अनेकवार प्राप्त
 हुआ है ॥ २६ ॥

जिन-वचनोंको नहीं पा करके इस जीवने अतीतकालमें पांचों ही परिवर्तन पुनः पुनः
 करके अनन्तवार परिवर्तित किये हैं ॥ २७ ॥

जिस प्रकार कोई पुरुष नाना प्रकारके वस्त्रोंके परिवर्तनको ग्रहण करता है, अर्थात्
 उतारता है और पहनता है, उसी प्रकारसे यह जीव भी पुद्गलपरिवर्तनकालमें नाना शरी-
 रोंको छोड़ता और ग्रहण करता है ॥ २८ ॥

अतीतकालमें एक जीवके सबसे कम भावपरिवर्तनके वार हैं । भवपरिवर्तनके वार
 भावपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणे हैं । कालपरिवर्तनके वार भवपरिवर्तनके वारोंसे अनन्त-
 गुणे हैं । क्षेत्रपरिवर्तनके वार कालपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणे हैं । पुद्गलपरिवर्तनके वार
 क्षेत्रपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणे हैं ।

पुद्गलपरिवर्तनका काल सबसे कम है । क्षेत्रपरिवर्तनका काल पुद्गलपरिवर्तनके कालसे
 अनन्तगुणा है । कालपरिवर्तनका काल क्षेत्रपरिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है । भवपरिवर्तनका
 काल कालपरिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है । भावपरिवर्तनका काल भवपरिवर्तनके
 कालसे अनन्तगुणा है । (इन परिवर्तनोंकी विशेष जानकारीके लिये देखो सर्वार्थसिद्धि
 २, १०; व गोस्मटसार जीवकांड गाथा ५६० टीका) ।

१ सन्वा पयडिडिदिओ अणुभागपदेसंबंधाणाणि । मिच्छत्तसंशिवेण य भमिदा पुण भावसंसारे । स. सि.
 १, १०. सर्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधयोग्यानि । स्थानान्यनुभूतानि भ्रमता भुवि भावसंसारे ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

२ पंचविधे संसारे कर्मवशाज्जैनदक्षितं मुक्तेः । मार्गमपश्यन् प्राणी नानादुःखाकुले भ्रमति । गो. जी.
 जी. प्र. ५६०.

१ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

एदेषु परियट्टेषु पोग्गलपरियट्टेण पयदं । कम्म-णोकम्मभेदेण दुविहो पोग्गलपरियट्टो, तत्थ केण पयदं ? दोहि वि पयदं, दोण्हं कालभेदाभावा । सो वि कुदो अवगम्मदे ? पोग्गलपरियट्टप्पावहुगे दो वि पोग्गलपरियट्टे एक्कट्ठं कादूण कालप्पावहुगविधाणादो । एदस्स पोग्गलपरियट्टकालस्स अट्ठं देसूणं सादि-सणिहणमिच्छत्तस्स कालो होदि । तं कधं ? एगो अणादियमिच्छादिट्ठी अपरित्तसंसारो अधापवत्तकरणं अपुच्चकरणं अणियट्टिकरणमिदि एदाणि तिण्णि करणाणि कादूण सम्मत्तंगहिदपढमसमए चेव सम्मत्तगुणेण पुब्बिल्लो अपरित्तो संसारो ओहट्टिदूण परित्तो पोग्गलपरियट्टस्स अट्ठमेत्तो होदूण उक्कसेण चिट्ठदि । जहण्णेण अंतोमुहुत्तमेत्तो । एत्थ पुण जहण्णकालेण णत्थि कज्जं, उक्कस्सेण अधियारादो । सम्मत्तंगहिदपढमसमए णट्ठो मिच्छत्तपज्जाओ । कधमुप्पत्ति-विणासाणभेक्को समओ ?

इन ऊपर बतलाये गये पांचों परिवर्तनोंमेंसे यहां पर पुद्गलपरिवर्तनसे प्रयोजन है ।

शंका—कर्म और नोकर्मके भेदसे पुद्गलपरिवर्तन दो प्रकारका है, उनमेंसे यहांपर किससे प्रयोजन है ?

समाधान—यहां दोनों ही पुद्गलपरिवर्तनोंसे प्रयोजन है, क्योंकि, दोनोंके कालमें भेद नहीं है ।

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान—पुद्गलपरिवर्तनकालके अल्पबहुत्व बताते समय दोनों ही पुद्गलपरिवर्तनोंको इकट्ठा करके कालका अल्पबहुत्वविधान किया गया है । इससे जाना जाता है कि दोनों पुद्गलपरिवर्तनोंके कालमें भेद नहीं है ।

इस पुद्गलपरिवर्तनकालका कुछ कम अर्धभाग सादि-सान्त मिथ्यात्वका काल होता है ।

शंका—सादि-सान्त मिथ्यात्वका काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन कैसे होता है ?

समाधान—एक अनादि मिथ्यादृष्टि अपरीतसंसारी (जिसका संसार बहुत शेष है ऐसा) जीव, अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण, और अनिचृत्तिकरण, इस प्रकार इन तीनों ही करणोंको करके सम्यक्त्व ग्रहणके प्रथम समयमें ही सम्यक्त्वगुणके द्वारा पूर्ववर्ती अपरीत संसारीपना इटाकर व परीतसंसारी हो करके अधिकसे अधिक पुद्गलपरिवर्तनके आधे काल प्रमाण ही संसारमें ठहरता है । तथा, सादि-सान्त मिथ्यात्वका काल कम से कम अन्तर्मुहूर्त-मात्र है । किन्तु यहां पर जघन्यकालसे प्रयोजन नहीं है, क्योंकि, उत्कृष्ट कालका अधिकार है । सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें ही मिथ्यात्व पर्याय नष्ट हो जाती है ।

शंका—सम्यक्त्वकी उत्पत्ति और मिथ्यात्वका विनाश इन दोनों विभिन्न कार्योंका एक समय कैसे हो सकता है ?

ण, एकम्हि समए पिंडागारेण विणट्टु-घडाकारेणुप्पण-मट्टियदव्वस्सुवलंभा । सव्व-जहण्णमंतोमुहुत्तमुवसमसम्मत्तद्वाए अच्चिदूण मिच्छत्तं गदो । तदो मिच्छत्तेण सादिओ जादो, विणट्टो सम्मत्तपज्जाएण । तदो मिच्छत्तपज्जाएण उवड्डुपोगलपरियट्टं परियट्टिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे मणुस्सेसु उववण्णो । पुणो अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे तिण्णि वि करणाणि कादूण पढमसम्मत्तं पडिवण्णो (२) । तदो वेदगसम्मादिट्ठी जादो (३) । अंतो-मुहुत्तेण अणंताणुबंधिं विसंजोएदूण (४) तदो दंसणमोहणीयं खवेदूण (५) पुणो अप्पमत्तो जादो (६) । पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (७) खवगसेट्ठिमारुहमाणो अप्पमत्तसंजदट्टाणे अधापवत्तविसोहीए विसुज्झिदूण (८) अपुव्वकरणखवगो (९) अणियट्टिखवगो (१०) सुहुमखवगो (११) खीणकसाओ (१२) सजोगी (१३) अजोगी होदूण सिद्धो जादो (१४) । एवमेदेहि चोदसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्दुपोगलपरियट्टं सादिसपज्जवसिदमिच्छत्तकालो होदि ।

मिच्छत्तं णाम पज्जाओ । सो च उत्पाद-विणासलक्खणो, ट्टिदीए अभावादो । अह जइ तस्स ट्टिदी वि इच्छिज्जदि, तो मिच्छत्तस्स दव्वत्तं पसज्जदे; 'उत्पाद-ट्टिदि-भंगा हंदि

समाधान— नहीं, क्योंकि, जैसे एक ही समयमें पिण्डरूप आकारसे विनष्ट हुआ और घटरूप आकारसे उत्पन्न हुआ मृत्तिकारूप द्रव्य पाया जाता है; उसी प्रकार कोई जीव सबसे कम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उपशमसम्यक्त्वके कालमें रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इसलिए मिथ्यात्वसे वह आदि सहित उत्पन्न हुआ और सम्यक्त्वपर्यायसे विनष्ट हुआ । तत्पश्चात् मिथ्यात्वपर्यायसे कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण संसारमें परिभ्रमण कर, अन्तिम भवके ग्रहण करने पर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल संसारके अवशेष रह जाने पर तीनों ही करणोंको करके प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (२) । पुनः वेदकसम्यग्दृष्टि हुआ (३) । पुनः अन्तर्मुहूर्तकालद्वारा अनंतानुबंधी कषायका विसंयोजन करके (४), उसके बाद दर्शनमोहनीयका क्षय करके (५), पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (६) । फिर प्रमत्त और अप्रमत्त, इन दोनों गुणस्थानोंसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (७), क्षपकश्रेणीपर चढ़ता हुआ अप्रमत्तसंयतगुणस्थानमें अधःप्रवृत्तकरणविशुद्धिसे शुद्ध होकर (८), अपूर्वकरण क्षपक (९), अनिवृत्तिकरण क्षपक (१०), सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (११), क्षीणकषाय-वीतरागछद्मस्थ (१२), सयोगिकेवली (१३), और अयोगिकेवली होता हुआ सिद्ध हो गया (१४) । इस प्रकार इन चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण सादि और सान्त मिथ्यात्वका काल होता है ।

शंका— मिथ्यात्व नाम पर्यायका है । वह पर्याय उत्पाद और विनाश लक्षणवाला है, क्योंकि, उसमें स्थितिका अभाव है । और यदि उसकी स्थिति भी मानते हैं, तो मिथ्यात्वके द्रव्यपना प्राप्त होता है, क्योंकि, 'उत्पाद, स्थिति और भंग, अर्थात् व्यय, ही द्रव्यका लक्षण है'

१ देसूणमद्दुपोगलपरियट्टमुवड्डुपोगलपरियट्टमिदि मण्णदे । जयध.

दवियलक्खणं' इच्चारिसादो त्ति ? ण एस दोसो, जमकमेण तिलक्खणं तं दब्बं; जं पुण कमेण उप्पाद-द्विदि-भंगिलं सो पज्जाओ त्ति जिणोवदेसादो । जदि एवं, तो पुढवि-आउ-तेउ-वाऊणं पि पज्जायत्तं पसज्जदि त्ति बुत्ते, होदु तेसिं पज्जायत्तं, इट्ठादो । तेसु दब्ब-ववहारो वि लोए दिस्सदीदि चे ण, तस्स दुणयणिवंधणणेगमणयणिवंधणत्तादो । सुद्धे दब्बद्वियणए अवलंबिदे छच्चेय दब्बाणि; असुद्धे दब्बद्वियणए अवलंबिदे पुढविआदीणि अणेयाणि दब्बाणि होंति त्ति वंजणपज्जायस्स दब्बत्तब्भुवगमादो । सुद्धे पज्जायणए अप्पिदे पज्जायस्स उप्पाद-विणासा दो चेव लक्खणाणि । असुद्धे अस्सिदे कमेण तिण्णि वि लक्खणाणि, उप्पणपज्जयस्स वज्जसिलार्थंमादिसु वंजणसण्णिदस्स अवट्ठाणुवलंभादो । मिच्छत्तं पि वंजणपज्जाओ, तम्हा एदस्स उप्पाद-द्विदि-भंगा कमेण तिण्णि वि अविरुद्धा त्ति घेत्तव्वं ।

उप्पज्जन्ति विर्यन्ति य भावा णियमेण पज्जवणयस्स।

दब्बद्वियस्स सव्वं सदा अणुप्पणमविणहं ॥ २९ ॥

इस प्रकार अर्प वचन है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, जो अक्रमसे (युगपत्) उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, इन तीनों लक्षणोंवाला होता है, वह द्रव्य है । और जो क्रमसे उत्पाद, स्थिति और व्ययवाला होता है वह पर्याय है । इस प्रकारसे जिनेन्द्रका उपदेश है ।

शंका—यदि पेसा है तो पृथिवी, जल, तेज और वायुके पर्यायपना प्रसक्त होता है ?

समाधान — भले ही उनके पर्यायपना प्राप्त हो जावे, क्योंकि, वह हमें इष्ट है ।

शंका—किन्तु उन पृथिवी आदिकोंमें तो द्रव्यका व्यवहार लोकमें दिखाई देता है ?

समाधान — नहीं, वह व्यवहार शुद्धाशुद्धात्मक संग्रह-व्यवहाररूप नयद्वय-निबंधनक नैगमनयके निमित्तसे होता है । शुद्ध द्रव्यार्थिकनयके अवलंबन करने पर छहों ही द्रव्य हैं । और अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयके अवलंबन करने पर पृथिवी, जल आदिक अनेक द्रव्य होते हैं, क्योंकि, व्यंजनपर्यायके द्रव्यपना माना गया है । किन्तु शुद्ध पर्यायार्थिकनयकी विवक्षा करने पर पर्यायके उत्पाद और विनाश, ये दो ही लक्षण होते हैं । अशुद्ध पर्यायार्थिकनयके आश्रय करने पर क्रमसे तीनों ही पर्यायके लक्षण होते हैं, क्योंकि, वज्रशिला, स्तम्भादिमें व्यंजनसंज्ञिक उत्पन्न हुई पर्यायका अवस्थान पाया जाता है । मिथ्यात्व भी व्यंजनपर्याय है, इसलिए इसके उत्पाद, स्थिति और भंग, ये तीनों ही लक्षण क्रमसे अविरुद्ध हैं, पेसा जानना चाहिए ।

पर्यायनयके नियमसे पदार्थ उत्पन्न भी होते हैं और व्ययको भी प्राप्त होते हैं । किन्तु द्रव्यार्थिकनयके नियमसे सर्व-वस्तु सदा अनुत्पन्न और अविनष्ट है, अर्थात् ध्रौव्यात्मक है ॥२९॥

१ दब्बं पज्जवविउत्तं दब्बविउत्ता य पज्जवा णत्थि । उप्पाय-द्विदि-भंगा इदि दवियलक्खणं एयं ॥ स. त. १, १२.

२ उप्पादद्विदिभंगा विज्जन्ते पज्जएसु पज्जाया । दब्बन्दि संति णियदं तम्हा दब्बं ह्वदि सव्वं ॥ प्रव. सा. २, ९.

३ स. त. १, ११.

इदि एसा वि गाहा ण विरुज्झदे, सुद्धदव्व-पज्जवट्टियणए अवलंबिय ट्टिदत्तादो ।
 ' भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते हवति भवसिद्धा' इदि वयणादो सच्चैसिं भव्वजीवाणं
 वोच्छेदेण होदव्वं, अण्णहा तल्लक्खणविरोहादो । ण च सव्वओ ण णिट्ठदि, अण्णत्थ
 तहाणुवलंभादो ति ? ण एस दोसो, तस्साणंतियादो । सो अणंतो बुच्चदि, जो संखेज्जा-
 संखेज्जरासिच्चए संते अणंतेण वि कालेण ण णिट्ठदि । वुत्तं च—

संते वए ण णिट्ठदि कालेणाणंतएण वि ।

जो रासी सो अणंतो ति विणिट्ठो महेसिणा ॥ ३० ॥

जदि एवं, तो अद्धपोगलपरियट्ठादिरासीणं सव्वयाणमणंतत्तं फिट्ठदि ति वुत्ते
 फिट्ठु णाम, को दोसो ? तेसु अणंतववहारो सुत्ताइरियवक्खणपसिद्धो उवलम्बदे चे ण,
 तस्स उवयारणिबंधणत्तादो । तं जहा— पच्चक्खेण पमाणेण उवलद्धो जो थंभो सो जहा

यह उक्त गाथा भी विरोधको नहीं प्राप्त होती है, क्योंकि, इसमें किया गया व्याख्यान
 शुद्ध द्रव्यार्थिकनय और शुद्ध पर्यायार्थिकनयको अवलम्बन करके स्थित है ।

शंका—' जिन जीवोंकी सिद्धि भविष्यकालमें होनेवाली है, वे जीव भव्यसिद्ध
 कहलाते हैं', इस वचनके अनुसार सर्व भव्य जीवोंका व्युच्छेद होना चाहिए, अन्यथा
 भव्यसिद्धोंके लक्षणमें विरोध आता है । तथा, जो राशि व्ययसहित होती है, वह कभी नष्ट
 नहीं होती है, ऐसा माना नहीं जा सकता है, क्योंकि, अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता; अर्थात्
 स्वयं राशिका अवस्थान देखा नहीं जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, भव्यसिद्ध जीवोंका प्रमाण अनन्त है ।
 और अनन्त वही कहलाता है जो संख्यात या असंख्यातप्रमाण राशिके व्यय होने पर भी
 अनन्तकालसे भी नहीं समाप्त होता है । कहा भी है:—

व्ययके होते रहने पर भी अनन्तकालके द्वारा भी जो राशि समाप्त नहीं होती है, उसे
 महर्षियोंने ' अनन्त ' इस नामसे विनिर्दिष्ट किया है ॥ ३० ॥

शंका—यदि ऐसा है, तो व्ययसहित अर्धपुद्गलपरिवर्तन आदि राशियोंका अनन्तत्व
 नष्ट हो जाता है ?

समाधान—उनका अनन्तपना नष्ट हो जाय, इसमें क्या दोष है ?

शंका—किन्तु उन अर्धपुद्गलपरिवर्तन आदिकोंमें अनन्तका व्यवहार सूत्र तथा
 आचार्योंके व्याख्यानसे प्रसिद्ध हुआ पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उन पुद्गलपरिवर्तन आदिमें अनन्तत्वका व्यवहार उपचार-
 निबन्धनक है । अब इसी उपचारनिबन्धनताको स्पष्ट करते हैं— जो पाषाणादिका स्तम्भ

उवयारेण पच्चक्खो त्ति लोए वुच्चदे, त्हा ओहिणाणविसयमुल्लंघिय ट्ठिदरासीओ केवलस्स अणंतस्स विसओ त्ति उवयारेण ताओ अणंताओ त्ति वुच्चंति । तम्हा तेसु सुत्ताइरियवक्खाणपसिद्धेण अणंतववहारेण णेदं वक्खाणं विरुज्झदे । अहवा वए संते वि अक्खयो को वि रासी अत्थि, सव्वस्स सपडिवक्खस्सेवुवलंभादो । एसो वि भव्वरासी अणंतो, तम्हा संते वि वए अणंतेण वि कालेण ण णिट्ठिस्सइ त्ति सिद्धं ।

सासणसम्मादिट्टी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ ५ ॥

एदस्स सुत्तस्स अवयवत्थो पुवं परुविदो त्ति णेह वुच्चदे, पुणरुत्तमया । एत्थ एगसमयनिरुवणा कीरदे । तं जथा— दो वा तिण्णि वा एगुत्तरवड्डीए जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा उवमससम्मादिट्ठिणो उवसमसम्मत्तद्वाए एगो समओ अत्थि त्ति सासणत्तं पडिवण्णा एगसमयं दिट्ठा । विदियसमये सव्वे वि मिच्छत्तं गदा, तिसु वि लोएसु सासणाणमभावो जादो त्ति लद्धो एगसमओ ।

प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा उपलब्ध है, वह जिस प्रकार उपचारसे 'प्रत्यक्ष है' ऐसा लोकमें कहा जाता है, उसी प्रकारसे अवधिज्ञानके विषयका उल्लंघन करके जो राशियां स्थित हैं, वे सब अनन्त प्रमाणवाले केवलज्ञानके विषय हैं, इसलिए उपचारसे 'अनन्त हैं' इस प्रकारसे कही जाती हैं । अतएव सूत्र और आचार्योंके व्याख्यानसे प्रसिद्ध अनन्तके व्यवहारसे यह व्याख्यान विरोधको प्राप्त नहीं होता है । अथवा, व्ययके होते रहने पर भी सदा अक्षय रहनेवाली कोई राशि है जो कि क्षय होनेवाली सभी राशियोंके प्रतिपक्षके समान पाई जाती है ।

इसी प्रकार यह भव्यराशि भी अनन्त है, इसलिए व्ययके होते रहनेपर भी अनन्त-कालद्वारा भी यह नहीं समाप्त होगी, यह बात सिद्ध हुई ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय तक होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूत्रका अवयवार्थ पढ़ले कहा जा चुका है, इसलिए पुनरुक्त दोषके भयसे यहां पर नहीं कहते हैं । अब यहां पर एक समयकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकारसे है— दो अथवा तीन, इस प्रकार एक अधिक वृद्धिसे बढ़ते हुए पर्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समयमात्र काल अवशिष्ट रह जाने पर एक साथ सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए एक समयमें दिखाई दिये । दूसरे समयमें सबके सब मिथ्यात्वको प्राप्त हो गये । उस समय तीनों ही लोकोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अभाव हो गया । इस प्रकार एक समयप्रमाण सासादनगुणस्थानका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल प्राप्त हुआ ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६ ॥

दोण्णि वा तिण्णि वा एवं एगुत्तरवड्डीए जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा उवसमसम्मादिट्ठिणो एगसमयमादिं कादूण जावुक्कस्सेण छ आवलियाओ उवसमसम्मत्तद्वाए अत्थि त्ति सासणत्तं पडिवण्णा । जाव ते मिच्छत्तं ण गच्छंति ताव अण्णे वि अण्णे वि उवसमसम्मादिट्ठिणो सासणत्तं पडिवज्जंति । एवं गिम्हकालरुक्खच्छाहीव उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं कालं जीवेहि असुण्णं होदूण सासणगुणद्वारणं लब्भदि । केवडिओ सो पुण कालो ? सगरासीदो असंखेज्जगुणो । तं जहा— सासणगुणस्स णिरंतरुक्कमणकालो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो । सांतरुक्कमणवारा पुण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता । एवं होंति त्ति कट्टु सासणुक्कस्सकालुप्पत्तिविहाणं वुच्चदे । तं जधा— एगस्स सासणगुणद्वारणुक्कमणवारस्स जदि मज्झिमपडिवत्तीए आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो सासणगुणकालो लब्भदि, संखेज्जावलियमेत्तो वा, आवलियाए संखेज्जदिभागमेत्तो वा, तो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणवारारणं

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ ६ ॥

दो, अथवा तीन, अथवा चार, इस प्रकार एक एक अधिक वृद्धिद्वारा पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव एक समयको आदि करके उत्कर्षसे छह आवलियां उपशमसम्यक्त्वके कालमें अवशिष्ट रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए । वे जब तक मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होते हैं, तबतक अन्य अन्य भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादनगुणस्थानको प्राप्त होते रहते हैं । इस प्रकारसे ग्रीष्मकालके वृक्षकी छायाके समान उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालतक जीवोंसे अशून्य (परिपूर्ण) होकर, सासादनगुणस्थान पाया जाता है ।

शंका—सो वह काल कितना है ?

समाधान—अपनी, अर्थात् सासादनगुणस्थानवर्ती, राशिसे असंख्यातगुणा है । वह इस प्रकार है— सासादनगुणस्थानके निरन्तर उपक्रमणका काल आवलीके असंख्यातवें भागमात्र है । किन्तु सान्तर उपक्रमणके वार तो पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हैं । ये वार इस प्रकार होते हैं, ऐसा मानकर सासादनगुणस्थानके उत्कृष्टकालकी उत्पत्तिका विधान कहते हैं । वह इस प्रकार है—

एक जीवके सासादनगुणस्थानके उपक्रमणवारका यदि मध्यम प्रतिपत्तिसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र सासादनगुणस्थानका काल पाया जाता है, अथवा, संख्यात आवली मात्र, अथवा आवलीके संख्यातवें भागमात्र काल पाया जाता है; तो पल्योपमके असंख्यातवें

केत्तियं कालं लभामो त्ति इच्छाणुण्णिदफलम्हि पमाणेणोवट्टिदे सगरासीदो असंखेज्जगुणो सासणकालो होदि त्ति घेत्तव्वं । जदि वि एत्थ सुत्तं णत्थि, तो वि एदं वक्खाणं सुत्तं च सहहेदव्वं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ' ॥ ७ ॥

एदस्सत्थो— एक्को उवसमसम्मदिद्धी उवसमसम्मत्तद्वाए एगसमओ अत्थि त्ति सासणं गदो । जदि उवसमसम्मत्तद्वा महंती होदि, तो को दोसो ? ण, सासणगुणद्वाए बहुत्तप्पसंगा । जेत्तियाए उवसमसम्मत्तद्वाए सेसाए जीवो सासणं पडिवज्जदि, तेत्तिओ चेव सासणगुणकालो होदि त्ति आइरियपरंपरागदुवदेसा । वुत्तं च—

उवसमसम्मत्तद्वा जत्तियमेत्ता ह्नु होइ अवसिद्धा ।

पडिवज्जंता साणं तत्तियमेत्ता य तस्सद्वा ॥ ३१ ॥

भागमात्र उपक्रमण चारोंका कितना काल प्राप्त होगा ? इस प्रकार इच्छाराशिसे गुणित फल-राशिको प्रमाणराशिसे अपवर्तित करनेपर अपनी राशिसे असंख्यातगुणा सासादनगुणस्थानका काल होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए । यद्यपि इस विषयमें कोई सूत्रप्रमाण उपलब्ध नहीं है, तो भी यह व्याख्यान सूत्रके समान श्रद्धान करने योग्य है ।

एक जीवकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टिका जघन्यकाल एक समय है ॥ ७ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशिष्ट रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ ।

शंका— यदि उपशमसम्यक्त्वका काल अधिक हो, तो क्या दोष है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वका काल अधिक माननेपर सासादन-गुणस्थानकालके भी बहुत्वका प्रसंग प्राप्त होता है, अर्थात् सासादनगुणस्थानका काल बहुत मानना पड़ेगा । इसका कारण यह है कि जितने उपशमसम्यक्त्वकालके शेष रहनेपर जीव सासादनगुणस्थानको प्राप्त होता है, उतना ही सासादनगुणस्थानका काल होता है, ऐसा आचार्य-परम्परागत उपदेश है । कहा भी है—

जितने प्रमाण उपशमसम्यक्त्वका काल अवशिष्ट रहता है, उस समय सासादन-गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवोंका भी उतने प्रमाण ही उसका, अर्थात् सासादनगुण-स्थानका, काल होता है ॥ ३१ ॥

१ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ६.

एगसमयं सासाणगुणेण सह द्विदो, विदियसमए मिच्छतं गदो । एवं सासणगुणस्स लद्धो एगसमओ ।

उक्कस्सेण छ आवलियाओ' ॥ ८ ॥

एदस्स अत्थो बुच्चदे- एक्को उवसमसम्मत्तद्धा उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि ति सासणं गदो । तत्थ सासणगुणम्मिह छ आवलियाओ अच्छिद्धूण मिच्छतं गदो । कुदो ? साहियासु छसु आवलियासु सेसासु सासणगुणपडिवज्जणाभावा । बुत्तं च--

उवसमसम्मत्तद्धा जइ छावलिया हवेज्ज अवसिद्धा ।

तो सासणं पवज्जइ णो हेट्ठकट्टकालेसु ॥ ३२ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९ ॥

इस ऊपर बतलाए हुए प्रकारसे उक्त जीव एक समय मात्र सासादनगुणस्थानके साथ, अर्थात् उस गुणस्थानमें, दिखाई दिया, और द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया । इस प्रकार सासादनगुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकाल एक समयप्रमाण उपलब्ध हुआ ।

एक जीवकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्टकाल छह आवलीप्रमाण है ॥८॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियोंके शेष रहनेपर सासादनगुणस्थानमें गया । उस सासादनगुणस्थानमें छह आवली रह करके मिथ्यात्वमें गया, क्योंकि, साधिक छह आवलियोंके शेष रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेका अभाव है । कहा भी है—

यदि उपशमसम्यक्त्वका काल छह आवलीप्रमाण अवशिष्ट होवे, तो जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है । यदि इससे अधिक काल अवशिष्ट रहे, तो सासादनगुणस्थानको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

(इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा छह आवलीप्रमाण ही सासादनगुणस्थानका उत्कृष्टकाल है ।)

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ ९ ॥

१ उत्कर्षेण षडावलिकाः । स. सि. १, ८.

२ उवसमसम्मत्तद्धा छावलिमेत्तो दु समयमेत्तो ति । अवसिद्धे आसाणो अणअणदइदइ होदि ॥

कवि. १००.

३ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

एदस्स अत्थो— अट्टावीससंतकम्मियमिच्छादिद्वी वेदगसम्मत्तसहिदअसंजद-संजदा-संजद-पमत्तसंजदा सत्तद्द जणा वा, आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता वा, पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा परिणामपच्चएण सम्मामिच्छत्तं गदा । तत्थ सव्वलहुमतोमुहुत्त-मच्छिदूण मिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मत्तं वा पडिवण्णा । णट्ठं सम्मामिच्छत्तं । एवं सम्मामिच्छत्तस्स अंतोमुहुत्तकालो सिद्धो । अप्पमत्तसंजदो किमिदि सम्मामिच्छत्तं ण णीदो ? ण, तस्स संकिलेस-विसोहीहि सह पमत्तापुच्चगुणे मोत्तूण गुणंतरगमणाभावा । मदस्स वि असंजदसम्मादिद्विवदिरित्तगुणंतरगमणाभावा । पच्छा सम्मामिच्छादिद्वी संजमं संजमासंजमं वा किण्ण णीदो ? ण, तस्स मिच्छत्त-सम्मत्तसहिदासंजदगुणे मोत्तूण गुणंतर-गमणाभावा । किं कारणं ? सहावदो चेय । ण हि सहाओ परपज्जणिओगारुहो, विरोहा ।

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले मिथ्यादृष्टि, अथवा वेदकसम्यक्त्वसहित असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थानवाले सात आठ जन, अथवा आवलीके असंख्यातवें भागमात्र जीव, अथवा पल्लो-पमके असंख्यातवें भागमात्र जीव, परिणामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त हुए। वहाँपर सबसे कम अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण रह करके मिथ्यात्वको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त हुए। तब सम्यग्मिथ्यात्व नष्ट हो गया। इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल सिद्ध हुआ।

शंका— यहाँ पर अप्रमत्तसंयत जीव, सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त कराया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, यदि अप्रमत्तसंयत जीवके संक्लेशकी वृद्धि हो, तो प्रमत्त-संयतगुणस्थानको, और यदि विशुद्धिकी वृद्धि हो, तो अपूर्वकरण गुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें गमनका अभाव है। यदि अप्रमत्तसंयत जीवका मरण भी हो, तो असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें गमन नहीं होता है।

शंका— सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अपना काल पूरा कर पीछे संयमको अथवा संयमा-संयमको क्यों नहीं प्राप्त कराया गया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उस सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका मिथ्यात्वसहित मिथ्या-दृष्टिगुणस्थानको, अथवा सम्यक्त्वसहित असंयतगुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें गमनका अभाव है।

शंका— अन्य गुणस्थानोंमें नहीं जानेका क्या कारण है ?

समाधान— ऐसा स्वभाव ही है। और स्वभाव दूसरेके प्रश्नके योग्य नहीं हुआ करता है, क्योंकि, उसमें विरोध आता है।

उक्त्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो' ॥ १० ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे- पुव्वुत्तजीवा सम्मामिच्छत्तं गंतूण तत्थंतोमुहुत्तमच्छिय जाव ते मिच्छत्तं वा सासंजमसम्मत्तं वा ण पडिवज्जंति, ताव अण्णे वि अण्णे वि पुव्वुत्तजीवा सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जावेद्व्वा जाव सव्वुक्कस्सो णाणाजीवावेक्खो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालो जादो चि । सो पुण सगरासीदो असंखेज्जगुणो । एदस्स वि कारणं पुव्वं व वत्तव्वं । तदो णियमेण अंतरं होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११ ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे-एको मिच्छादिट्ठी विसुज्झमाणो सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो । सव्वलहुमंतोमुहुत्तकालमच्छिदूण विसुज्झमाणो चेव सासंजमं सम्मत्तं पडिवण्णो । संकिलेसं पूरिय मिच्छत्तं किण्ण गदो ? ण, विसोधिअद्वं संपुण्णमच्छिय संकिलेसं पूरिय मिच्छत्तं गच्छमाणसम्मामिच्छत्तकालस्स बहुत्तप्पसंगा । एविकस्से विसोहीए कालादो संकिलेस-

नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ १० ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहांपर अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर जबतक वे मिथ्यात्वको अथवा असंयमसहित सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त होते हैं, तबतक अन्य अन्य भी पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती ही जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त कराते जाना चाहिए, जबतक कि सर्वोत्कृष्ट नाना जीवोंकी अपेक्षा रखनेवाला पल्योपमका असंख्यातवां भागमात्र काल पूरा हो। वह काल अपने गुणस्थानवर्ती जीवराशिसे असंख्यातगुणा होता है। इसका भी कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए। उसके पश्चात् नियमसे अन्तर हो जाता है।

एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—एक मिथ्यादृष्टि जीव विशुद्ध होता हुआ सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। पुनः सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल रह कर विशुद्ध होता हुआ ही असंयमसहित सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ।

शंका—संक्लेशको पूरित करके, अर्थात् संक्लेशपरिणामी होकर, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वको क्यों नहीं प्राप्त हुआ ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, विशुद्धिके संपूर्ण काल तक अपने गुणस्थानमें रह करके और संक्लेशको धारण करके मिथ्यात्वको जानेवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वसंबंधी कालके बहुत्वका प्रसंग हो जायगा। इसका कारण यह है कि एक भी विशुद्धिके कालसे संक्लेश

१ उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येषुभागः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्यः उत्कृष्टान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

विसोहीणं दोण्हं पि कालो दोण्हं विच्चाले ट्टिदपडिभग्गकालसहिदो णिच्छएण संखेअणुणो चि अहिप्पाएण मिच्छत्तं ण णीदो । अधवा वेदगसम्मादिट्टी संकिलिस्समाणगो सम्मा-
मिच्छत्तं गदो, सच्चलहुमंतोमुहुत्तकालमच्छिदूण अविणट्टसंकिलेसो मिच्छत्तं गदो । एत्थ वि
कारणं पुव्वं व वत्तव्वं । एवं दोहि पयारेहि सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णकालपरुवणा गदा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२ ॥

तं कथं ? एको विसुज्झमाणो मिच्छादिट्टी सम्मामिच्छत्तं गदो, सच्चुक्कस्सअंतो-
मुहुत्तमच्छिदूण संकिलिट्टो होदूण मिच्छत्तं गदो । पुक्खिल्लजहण्णकालादो एसो उक्कस्स-
कालो संखेज्जगुणो, सच्चुक्कस्सतिकालसमूहत्तादो । अधवा वेदगसम्मादिट्टी संकिलिस्स-
माणगो सम्मामिच्छत्तं गदो । सच्चुक्कस्समंतोमुहुत्तकालमच्छिदूण असंजदसम्मादिट्टी
जादो । एत्थ वि कारणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

**असंजदसम्मादिट्टी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्दा' ॥ १३ ॥**

और विशुद्धि, इन दोनोंका ही काल, दोनोंके अन्तरालमें स्थित प्रतिभाग कालसहित
निश्चयसे संख्यातगुणा होता है, इस प्रकारके अभिप्रायसे वह वर्धमान विशुद्धिवाला सम्य-
ग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वको नहीं प्राप्त कराया गया । अथवा, संक्लेशको प्राप्त होनेवाला
वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ, और वहां पर सर्वलघु
अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविनष्टसंक्लेशी हुआ ही मिथ्यात्वको चला गया । यहां पर भी
कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए । इस तरह दो प्रकारोंसे सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य-
कालकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२ ॥

वह इस प्रकार है— एक विशुद्धिको प्राप्त होनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व
को प्राप्त हुआ । वहांपर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रहकर और संक्लेशयुक्त हो करके मिथ्यात्व
को प्राप्त हुआ । पहले बतलाये गए इसी गुणस्थानके जघन्य कालसे यह उत्कृष्ट काल
संख्यातगुणा है, क्योंकि, वह सर्वोत्कृष्ट त्रिकालके समूहात्मक है । अथवा, संक्लेशको प्राप्त होने
वाला वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहांपर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल
रह करके असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया । यहांपर भी कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए ।

**असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व-
काल होते हैं ॥ १३ ॥**

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

अदीदानामद-वडुमाणकालेसु असंजदसम्मादिट्टिवोच्छेदो णत्थि । कुदो ? सहावदो । एसो सहाओ असंजदसम्मादिट्टिरासिस्सत्थि त्ति कधं णव्वदे ? सव्वद्दा-वयणादो । कधं पक्खो चेव साहणत्तं पडिवज्जदे ? ण, उभयपक्खत्तिसट्टिजुत्तस्स जिणवयणस्स एकस्स वि पक्खसाहणत्ते विरोहाभावा । दिवायरो सुओ उदेदि त्ति वयणस्सेव किरियाविसेसणत्तादो सव्वद्धमिदि पावेदि ? ण, तहा विवक्खाभावा । पुणो कधमेत्थतणविवक्खा ? वुच्चदे-सच्चा अद्दा जेसिं ते सव्वद्दा, सव्वकालसंबंधिणो त्ति वुत्तं होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४ ॥

तं कधं ? अट्टावीससंवकम्मियमिच्छादिट्टी वा सम्मामिच्छादिट्टी वा संजदासंजदो वा पमत्तसंजदो वा पुवं सासंजमसम्मत्ते बहुवारं परियट्ठंतो अच्छिदो असंजदो जादो ।

इसका कारण यह है कि अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों ही कालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका व्युच्छेद नहीं है ।

शंका—त्रिकालमें भी असंयतसम्यग्दृष्टि राशिका व्युच्छेद क्यों नहीं होता ?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है ।

शंका—असंयतसम्यग्दृष्टि राशिका ऐसा स्वभाव है, यह कैसे जाना ?

समाधान—सूत्र-पठित 'सर्वाद्दा' अर्थात् सर्वकाल रहते हैं, इस वचनसे जाना ।

शंका—विवादस्थ पक्ष ही हेतुपनेको कैसे प्राप्त हो जायगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उभय पक्षके अतिशय युक्त अर्थात्, उभयपक्षातीत, एक भी जिनवचनके पक्ष और साधनके होनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

शंका—'दिवाकर स्वतः उदित होता है' इस वचनके समान क्रियाविशेषण होनेसे 'सव्वद्धं' ऐसा पाठ होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी विवक्षाका अभाव है ।

शंका—तो यहां पर किस प्रकारकी विवक्षा है ?

समाधान—वह विवक्षा इस प्रकारकी है— सर्व काल जिन जीवोंके होता है, वे सर्वाद्दा कहलाते हैं, अर्थात् 'सर्वकालसम्बन्धी जीव' यह 'सर्वाद्दा' पदका अर्थ है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥१४॥

शंका—यह काल कैसे संभव है ?

समाधान—जिसने पहले असंयमसहित सम्यक्त्वमें बहुतवार परिवर्तन किया है, ऐसा कोई एक मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव, भूत्वा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ ।

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

सव्वलहुमंतोमुहुत्तद्धमच्छिय मिच्छत्तं वा सम्मामिच्छत्तं वा संजमासंजमं वा अप्पमत्त-
भावेण संजमं वा पडिवण्णो । उवरिमगुणट्ठाणेहिंतो संकिलेसेण जे असंजदसम्मत्तं पडि-
वण्णा, ते अविणट्ठेण तेण संकिलेसेण सह मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा णेदव्वा । जे हेट्ठिम-
गुणट्ठाणेहिंतो विसोहीए सासंजमं सम्मत्तं पडिवण्णा, ते ताए चेव विसोहीए अविणट्ठाए
सह संजमासंजमं अप्पमत्तभावेण संजमं वा णेदव्वा, अण्णहा जहण्णकालाणुववत्तीदो ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि' ॥ १५ ॥

तं कथं ? एकको पमत्तो अप्पमत्तो वा चट्ठण्हमुवसामगणमेक्कदरो वा समऊण-
तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु अणुत्तरविमाणवासियदेवेषु उववण्णो । सासंजमसम्मत्तस्स
आदी जादो । तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । तत्थ असंजदसम्मादिट्ठी
होदूण ताव ट्ठिदो जाव अंतोमुहुत्तमेत्ताउअं सेसं ति । तदो अप्पमत्तभावेण संजमं पडि-
वण्णो (१) । तदो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (२) खवगसेट्ठिपाओग्गविसोहीए
विसुद्धो अप्पमत्तो जादो (३) । अपुव्वखवगो (४) अणियट्ठिखवगो (५) सुहुम-
खवगो (६) खीणकमाओ (७) सजोगी (८) अजोगी (९) होदूण सिद्धो जादो ।

फिर वह सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके मिथ्यात्वको, अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा
संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ । ऊपरके गुणस्थानोंसे
संक्लेशके साथ जो असंयतसम्यक्त्वको प्राप्त हुए हैं वे जीव उसी अविनष्टसंक्लेशके साथ
मिथ्यात्व अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त कराना चाहिए । जो अधस्तन गुणस्थानोंसे विशुद्धिके
साथ असंयमसहित सम्यक्त्वको प्राप्त हुए हैं, वे जीव उसी अविनष्टविशुद्धिके साथ संयमा-
संयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको ले जाना चाहिए; अन्यथा असंयतसम्यक्त्वका
जघन्य काल नहीं बन सकता है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट काल सातिरेक तेत्तीस सागरोपम है ॥ १५ ॥

शंका—वह सातिरेक तेत्तीस सागरोपमकाल कैसे संभव है ?

समाधान—एक प्रमत्तसंयत, अथवा अप्रमत्तसंयत, अथवा चारों उपशामकोंमेंसे
कोई एक उपशामक जीव एक समय कम तेत्तीस सागरोपम आयुकर्मकी स्थितिवाले अनुत्तर-
विमानवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ, और इस प्रकार असंयमसहित सम्यक्त्वकी आदि हुई ।
इसके पश्चात् वहाँसे च्युत होकर पूर्वकोटिवर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहाँपर वह
अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुके शेष रह जानेतक असंयतसम्यग्दृष्टि होकर रहा । तत्पश्चात् अप्रमत्त-
भावसे संयमको प्राप्त हुआ (१) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानमें सहस्रों परिवर्तन
करके (२), क्षपकश्रेणिके प्रायोग्य विशुद्धिसे विशुद्ध हो, अप्रमत्तसंयत हुआ (३) । पुनः
अपूर्वकरणक्षपक (४), अनिवृत्तिकरणक्षपक (५), सूक्ष्मसाम्परायक्षपक (६), क्षीणकपाय-
वीतरागलज्जस्थ (७), सयोगिकेधली (८), और अयोगिकेवली (९) होकरके सिद्ध हो गया ।

१ उत्कर्षेण त्रयास्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८.

एदेहि णवहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणपुव्वकोडीए अदिरित्ताणि समऊणतेत्तीससागरोवमाणि असंजदसम्मादिट्टिस्स उक्कस्सकालो होदि । किमट्ठं समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्टिदिएसु देवेसुप्पादिदो ? ण, अण्णहा असंजदद्वाए दीहत्ताणुवलंभा । कुदो ? जदि तेत्तीससागरोवमाउट्टिदिएसु देवेसु उप्पादिज्जदि, तो वासपुधत्तावसेसे आउए णिच्छएण संजमं पडि-वज्जदि । जो पुण समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्टिदिएसु देवेसुववज्जिय मणुसेसु उववण्णो, सो अंतोमुहुत्तणपुव्वकोडिमसंजमेण सह अच्छिय पुणो णिच्छएण संजदो होदि, तेण समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्टिदिएसु देवेसुप्पादिदो ।

संजदासंजदा केवचिरं कालादो हांति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्दा' ॥ १६ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, असंजदसम्मादिट्टिम्हि परूविदत्तादो ।

इन नौ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटि कालसे अतिरिक्त तेतीस सागरोपम असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल होता है ।

शंका — ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानका उत्कृष्ट काल बतलाते हुए उक्त जीवको एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें ही किसलिए उत्पन्न कराया गया है ?

समाधान — नहीं, अन्यथा, अर्थात् एक समय कम तेतीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें यदि उत्पन्न न कराया जाय तो, असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके कालमें दीर्घता नहीं पाई जा सकती है, क्योंकि, यदि पूरे तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न कराया जायगा तो, वर्षपृथक्त्वप्रमाण आयुके अवशेष रहने पर निश्चयसे वह संयमको प्राप्त हो जायगा । किन्तु जो एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होगा, वह अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि प्रमाणकाल असंयमके साथ रह कर पुनः निश्चयसे संयत होगा । इसलिए, अर्थात्, असंयतसम्यक्त्वके कालकी दीर्घता बतानेके लिए, एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले अनुत्तरविमानवासी देवोंमें उत्पन्न कराया गया है ।

संयतासंयत जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्ष्य सर्वकाल होते हैं ॥ १६ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके कालमें उसका प्रकृपण किया जा चुका है ।

१ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ६.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेणंतोमुहुत्तं ॥ १७ ॥

तं कथं ? एक्को अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी पमत्तसंजदो वा पुवं पि बहुसो संजमासंजमगुणट्ठाणे परियट्ठिदो परिणामपच्चएण संजमासंजमं पडिवण्णो । सच्चलहुमंतोमुहुत्तद्धमच्छिदूण पमत्तसंजदचरो मिच्छत्तं वा सम्मामिच्छत्तं वा असंजदसम्मत्तं वा पडिवण्णो । पच्छाकश्मिच्छत्ता सासंजमसम्मत्ता च अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवण्णा । कुदो ? अण्णहा संजदासंजदद्वाए जहण्णत्ताणुववत्तीए । किमट्ठं सम्मामिच्छादिट्ठी संजमासंजमं गुणं ण, णीदो ? ण, तस्स देसविरदिपज्जाएण परिणमणसत्तीए असंभवा । वुत्तं च—

ण य मरइ णेव संजममुवेइ तह देससंजमं वावि ।

सम्मामिच्छादिट्ठी ण उ मरणंतं समुग्वाओ' ॥ ३३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयतका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७ ॥

वह काल इस प्रकार संभव है— जिसने पहले भी बहुतवार संयमासंयम गुणस्थानमें परिवर्तन किया है ऐसा कोई एक मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा प्रमत्तसंयत जीव पुनः परिणामोंके निमित्तसे संयमासंयम गुणस्थानको प्राप्त हुआ। वहांपर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वह यदि प्रमत्तसंयतचर है, अर्थात् प्रमत्तसंयतगुणस्थानसे संयतासंयत गुणस्थानको प्राप्त हुआ है, तो मिथ्यात्वको, अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असंयतसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। अथवा, यदि वे पश्चात्कृत मिथ्यात्व या पश्चात्कृत असंयमसम्यक्त्ववाले हैं, अर्थात् संयतासंयत होनेके पूर्व मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि रहे हैं, तो अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुए; क्योंकि, यदि ऐसा न माना जाय तो संयतासंयत गुणस्थानका जघन्य काल नहीं बन सकता।

शंका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संयमासंयम गुणस्थानको किसलिए नहीं प्राप्त कराया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके देशविरातिरूप पर्यायसे परिणमनकी शक्तिका होना असंभव है। कहा भी है—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव न तो मरता है, न संयमको प्राप्त होता है, न देशसंयमको भी प्राप्त होता है। तथा उसके मारणाभितकसमुद्धात भी नहीं होता है ॥ ३३ ॥

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८,

२ सो संजमं ण गिण्हदि देसजमं वा ण बंधदे आउं । सम्मं वा मिच्छं वा पडिवविज्जं मरदि णिण्णमेण ॥ सम्मत्तमिच्छपरिणामेसु जहिं आउगं पुरा बद्धं । तहिं मरणं मरणंतसमुग्वादो वि य ण मिस्सम्मि ॥ गो. जी. २३-२४

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा^१ ॥ १८ ॥

तं कथं ? एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्टावीससंतकम्मिगो मिच्छाइट्ठी सण्णि-
पंचिदियतिरिक्खसंमुच्छिमपज्जत्तएसु मच्छ-कच्छव-मंडूकादिसु उववण्णो । सव्वलहुएण
अंतोमुहुत्तकालेण सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयो जादो (१) । विस्संतो (२) विमुट्ठो
(३) होट्ठण संजमासंजमं पडिवण्णो । पुव्वकोडिकालं संजमासंजमणुपालिट्ठण मदो
सोधम्मदि-आरणच्चुदंतैसु देवेषु उववण्णो । णट्ठो संजमासंजमो । एवमादिल्लेहि तीहि
अंतोमुहुत्तेहि ऊणा पुव्वकोडी संजमासंजमकालो होदि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्दा^२ ॥ १९ ॥

जेण तिसु वि कालेसु पमत्तापमत्तसंजदेहि विरहिदो एगो वि समओ णत्थि, तेण
सव्वद्धं हवंति ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं^३ ॥ २० ॥

संयतासंयत जीवका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है ॥ १८ ॥

वह काल इस प्रकार संभव है—मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला
एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव, संज्ञी पंचेन्द्रिय और पर्याप्तक, ऐसे संमूर्च्छन
तिर्यंच मच्छ, कच्छप, मंडूकादिकोंमें उत्पन्न हुआ, सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल द्वारा सर्व
पर्याप्तियोंसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुआ (१) । पुनः विश्राम लेता हुआ (२), विशुद्ध हो करके
(३), संयमासंयमको प्राप्त हुआ । वहाँ पर पूर्वकोटी काल तक संयमासंयमको पालन करके
मरा और सौधर्मकल्पको आदि लेकर आरण अच्युतान्त कल्पोंके देवोंमें उत्पन्न हुआ । तब
संयमासंयम नष्ट हो गया । इस प्रकार आदिके तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटिप्रमाण
संयमासंयमका काल होता है ।

प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा
सर्वकाल होते हैं ॥ १९ ॥

चूंकि, तीनों ही कालोंमें प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंसे विरहित एक भी समय नहीं है,
इसलिए वे सर्वकाल होते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतका जघन्य काल एक समय
है ॥ २० ॥

१ उक्कसेण पूर्वकोटी देशीया । स. सि. १, ८.

२ प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

तं जथा— पमत्तस्स ताव एगसमओ वुच्चदे । एक्को अप्पमत्तो अप्पमत्तद्वाए खीणाए एगसमयं जीविदमत्थि त्ति पमत्तो जादो । पमत्तगुणेण एगसमयं दिट्ठो विदियसमए मदो देवो जादो । णट्ठो पमादविसिट्ठसंजमो । एवं पमत्तस्स एगसमयपरूवणा गदा । अप्पमत्तस्स वुच्चदे— एक्को पमत्तो पमत्तद्वाए खीणाए एगसमयं जीवियमत्थि त्ति अप्पमत्तो जादो । अप्पमत्तगुणेण एगसमयं दिट्ठो विदियसमए मदो देवो जादो । णट्ठमप्पमत्तगुणट्ठणं । अथवा उवसमसेठीदो ओदरमाणो अपुव्वकरणो एगसमयं जीविदमत्थि त्ति अप्पमत्तो जादो, विदियसमए मदो देवेसुववण्णो । एवं देहि पयारेहि अप्पमत्तस्स एगसमयपरूवणा कदा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१ ॥

पमत्तस्स ताव वुच्चदे— एक्को अप्पमत्तो पमत्तपज्जाएण परिणमिय सव्वुक्कस्स-मंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गदो । एवं पमत्तस्स उक्कस्सकालपरूवणा गदा । अप्पमत्तस्स वुच्चदे— एक्को पमत्तो अप्पमत्तो होदूण सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय पमत्तो जादो । एसा अप्पमत्तस्स उक्कस्सकालपरूवणा ।

वह इस प्रकार है— पहले प्रमत्तसंयतका एक समय कहते हैं । एक अप्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर तथा एक समयमात्र जीवित शेष रहनेपर प्रमत्तसंयत हो गया । प्रमत्तगुणस्थानके साथ एक समय दिखा, और दूसरे समयमें मरकर देव उत्पन्न हो गया । तब प्रमादविशिष्ट संयम नष्ट हो गया । इस प्रकारसे प्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा हुई । अब अप्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा करते हैं— एक प्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर, तथा एक समयमात्र जीवनके शेष रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हो गया । तब अप्रमत्तगुणस्थानके साथ एक समय दिखा, और दूसरे समयमें मरकर देव हो गया । पुनः अप्रमत्तगुणस्थान नष्ट हो गया । अथवा, उपशमश्रेणीसे उतरता हुआ अपूर्वकरणसंयत एक समयमात्र जीवनके शेष रहनेपर अप्रमत्त हुआ, और द्वितीय समयमें मरकर देवोंमें उत्पन्न हो गया । इस तरह दोनों प्रकारोंसे अप्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा की गई ।

प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१ ॥

पहले प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट काल कहते हैं— एक अप्रमत्तसंयत, प्रमत्तसंयतपर्यायसे परिणत होकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण रह करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार प्रमत्तसंयतके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा हुई । अब अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट काल कहते हैं— एक प्रमत्तसंयतजीव, अप्रमत्तसंयत होकर, वहांपर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके प्रमत्तसंयत हो गया । यह अप्रमत्तसंयतके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा है ।

१ उत्कर्वेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

चउण्हं उवसमा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जह-
ण्णेण एगसमयं ॥ २२ ॥

तं कथं ? दो वा तिण्णि वा अणियट्टिउवसामगा सेठीदो ओदरमाणा एगसमयं जीविदमत्थि त्ति अपुव्वकरणउवसामगा जादा । एगसमयमपुव्वकरणेण सह दिट्ठा विदिय-समए मदा देवा जादा । एवमपुव्वकरणस्स एगसमयपरूवणा कदा । अप्पमत्तमपुव्वकरणं करिय विदियसमए कालं कराविय अपुव्वकरणस्स एगसमयपरूवणा किण्ण कदेत्ति वुचे ण, अपुव्वकरणपढमसमयादो जाव णिहा-पयलणं बंधो ण वोच्छिज्जदि ताव अपुव्व-करणणं मरणाभावा । एवं चेव तिण्हमुवसामगाणमेगसमयपरूवणा णाणाजीवे अस्सिदूण कायव्वा । णवरि अणियट्टि-सुहुमउवसामगाणं चढंत-ओदरंतजीवे अस्सिदूण दोहि पयारेहि एगसमयपरूवणा कादव्वा । उवसंतकसायस्स चढंतजीवे चेय अस्सिदूण एगसमय-परूवणा कादव्वा ।

उक्खसेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३ ॥

चारों उपशामक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २२ ॥

वह इस प्रकार है— उपशामश्रेणीसे उतरनेवाले दो, अथवा तीन अनिवृत्तिकरण उप-शामक जीव एक समयमात्र जीवनके शेष रहनेपर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक हुए । तब एक समयमात्र अपूर्वकरणगुणस्थानके साथ दिखे । पुनः द्वितीय समयमें मरे, और देव हो गये । इस प्रकार अपूर्वकरण उपशामकके एक समयकी प्ररूपणा की ।

शंका—अप्रमत्तसंयतको अपूर्वकरणगुणस्थानमें ले जा करके और द्वितीय समयमें मरण कराके अपूर्वकरणगुणस्थानके एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

समाधान—इसलिए नहीं की, कि अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथम समयसे लेकर जब तक निद्रा और प्रचला, इन दो प्रकृतियोंका बंध व्युच्छिन्न नहीं हो जाता है, तब तक अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती संयतोंका मरण नहीं होता है ।

इसी प्रकार शेष तीन उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा नाना जीवोंका आश्रय करके करना चाहिए । विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती उपशामक जीवोंके एक समयकी प्ररूपणा उपशामश्रेणी चढ़ते हुए और उतरते हुए जीवोंको आश्रय करके दोनों प्रकारोंसे करना चाहिए । किन्तु उपशान्तकषाय उपशामकके एक समयकी प्ररूपणा चढ़ते हुए जीवोंको ही आश्रय करके करना चाहिए ।

चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३ ॥

१ चतुर्णांशुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १. ८.

२ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १. ८.

तं कथं ? सत्तद्ध वा चउवण्णा वा अप्पमत्ता अपुव्वकरणउवसामगा जादा जाव ते अणियट्ठिड्डाणं ण पावेंति ताव अण्णे वि अण्णे वि अप्पमत्ता अपुव्वकरणगुणट्ठाणं पडि-वज्जावेदव्वा । ओयरमाणअणियट्ठिणो वि अपुव्वकरणं पडिवज्जावेदव्वा । एवं चढंत-ओयरंतजीवेहि असुण्णं होदूण अपुव्वकरणगुणट्ठाणं अच्छदि जाव तप्पाओग्गउक्कस्संतो-मुहुत्तं ति । तदो णिच्छएण विरहो । एवं चेव तिण्हमुवसामगाणमुक्कस्सकालपरुवणा कादव्वा । णवरि उवसंतकसायस्स उक्कस्सकाले भण्णमाणे एगो उवसंतकसाओ चडिय जाव णोअरदि ताव अण्णे सुहुमसांपराइया उवसंतकसायगुणट्ठाणं चडावेदव्वा । एवं पुणो संखेज्जवारं चडाविय उवसंतकालो वड्ढुवेदव्वो जाव तप्पाओग्गुक्कस्सअंतोमुहुत्तं पत्तो ति ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २४ ॥

तं कथं ? एक्को अणियट्ठिउवसामगो एगसमयं जीविदमत्थि ति अपुव्वउवसामगो जादो एगसमयं दिट्ठो विदियसमए मदो लयसत्तमो देवो जादो । एवं तिण्हमुवसामगाण-भेगसमयपरुवणा वत्तव्वा । णवरि अणियट्ठि-सुहुमउवसामगाणं चढणोयरणविहाणेण वेहि

वह इस प्रकार है— सात आठसे लेकर चौपन तक अप्रमत्तसंयत जीव एकसाथ अपूर्वकरणगुणस्थानी उपशामक हुए। जब तक वे अनिवृत्तिकरणगुणस्थानको नहीं प्राप्त होते हैं, तब तक अन्य अन्य भी अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरणगुणस्थानको प्राप्त करना चाहिए। इसी प्रकारसे उपशामश्रेणीसे उतरनेवाले अनिवृत्तिकरणगुणस्थानी उपशामक भी अपूर्वकरणगुणस्थानको प्राप्त कराना चाहिए। इस प्रकार चढ़ते और उतरते हुए जीवोंसे अशून्य (परिपूर्ण) होकर अपूर्वकरणगुणस्थान उसके योग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल पूरा होने तक रहता है। इसके पश्चात् निश्चयसे विरह (अन्तराल) हो जाता है। इसी प्रकारसे तीनों ही उपशामकोंके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष बात यह है कि उपशान्तकषाय उपशामकके उत्कृष्ट कालको कहनेपर एक उपशान्तकषाय जीव चढ़ करके जध तक नहीं उतरता है, तब तक अन्य अन्य सूक्ष्मसाम्परायिक संयत उपशान्तकषायगुण-स्थानको बढ़ाना चाहिए। इस प्रकारसे पुनः संख्यातवार जीवोंको चढ़ाकर उपशान्तकाल उसके योग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होने तक बढ़ाना चाहिए।

एक जीवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २४ ॥

वह इस प्रकार है— एक अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समयमात्र जीवन शेष रहने पर अपूर्वकरण उपशामक हुआ, एक समय दिखा, और द्वितीय समयमें मरणको प्राप्त हुआ, तथा उत्तम जातिका अनुत्तरविमानवासी देव हो गया। इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरण

१ एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

पयारेहि, चढणमस्सिदूण उवसंतकसायस्स एगपयारेण एगसमयपरूवणा कायच्चा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५ ॥

तं जहा— एक्को अप्पमत्तो अपुव्वउवसामगो जादो । तत्थ सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्त-
मच्छिय अणियद्धिद्धाणं पडिवण्णो । एवं तिण्हमुवसामगाणं वत्तव्वं ।

**चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, गाणा-
जीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६ ॥**

तं कथं ? सत्तद्ध जणा अट्टुत्तरसदं वा अप्पमत्ता अप्पमत्तद्वाए खीणाए अपुव्व-
करणखवगा जादा । अंतोमुहुत्तमच्छिय अणियद्धिद्धाणं गदा । एवं चेव चदुण्हं खवगाणं
जाणिदूण भाणिदव्वं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७ ॥

तं जधा— सत्तद्ध जणा वा बहुगा वा अप्पमत्तसंजदा अपुव्वखवगा जादा । ते तत्थ

और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानी उपशामकोंके चढ़ने और उतरनेके विधानकी अपेक्षा दोनों
प्रकारोंसे तथा आरोहणका आश्रय करके उपशान्तकषाय उपशामककी एक प्रकारसे एक
समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५ ॥

वह इस प्रकार है— एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानी उपशामक
हुआ । वहां पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रहकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इसी
प्रकारसे तीनों उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए ।

अपूर्वकरण आदि चारों क्षपक और अयोगिकेवली कितने काल तक होते हैं ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ २६ ॥

वह इस प्रकार है— सात आठ जन, अथवा अधिकसे अधिक एक सौ आठ,
अप्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर, अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक
हुए । वहां पर अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुए । इसी
प्रकारसे अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषायचरितरागछन्नस्थ और अयोगिकेवली, इन
चारों क्षपकोंके जघन्य कालकी प्ररूपणा जान करके कहलाना चाहिए ।

चारों क्षपकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७ ॥

वह इस प्रकार है — सात आठ जन अथवा बहुतसे अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ चतुर्णा क्षपकानामयोगकेबलिना च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः ।
स. सि. १, ८.

अंतोमुहुत्तमच्छिय अणियट्टिणो जादा । तम्हि चैव समए अण्णे अप्पमत्ता अपुव्वखवगा जादा । एवं पुणो पुणो संखेज्जवारं चढणकिरियाए कदाए णाणाजीवे अस्सिदूण अपुव्व-करणकस्सकालो होदि । एवं चैव चदुहं खवगाणं जाणिदूण वत्तव्वं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८ ॥

तं जहा—एको अप्पमत्तो अपुव्वकरणो जादो अंतोमुहुत्तमच्छिदूण अणियट्टिखवगो जादो । एवं चैव चदुहं खवगाणं जहण्णकालपरूवणा कादव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९ ॥

एको अप्पमत्तो अपुव्वखवगो जादो । तत्थ सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिदूण अणियट्टिगुणट्ठाणं पडिवण्णो । एगजीवमस्सिदूण अपुव्वकरणकस्सकालो जादो । एवं चैव चदुहं खवगाणं जाणिदूण वत्तव्वं । एत्थ जहण्णुक्कस्सकाला वे वि सरिसा, अपुव्वादि-परिणामाणमणुकट्टीए^१ अभावादो ।

गुणस्थानी क्षपक हुए । वे वहां पर अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानी हो गये । उसी ही समयमें अन्य अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुए । इस प्रकार पुनः पुनः संख्यातधार आरोहणक्रियाके करने पर नाना जीवोंका आश्रय करके अपूर्वकरण क्षपकका उत्कृष्ट काल होता है । इसी प्रकारसे चारों क्षपकोंका काल जान करके कहना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा चारों क्षपकोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८ ॥

यह इस प्रकार है — एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानी क्षपक हुआ और अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिवृत्तिकरण क्षपक हुआ । इसी प्रकारसे चारों क्षपकोंके जघन्य कालकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा चारों क्षपकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९ ॥

एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुआ । वहां पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुआ । यह एक जीवको आश्रय करके अपूर्वकरणका उत्कृष्ट काल हुआ । इसी प्रकारसे चारों क्षपकोंका काल जान करके कहना चाहिए । यहां पर जघन्य और उत्कृष्ट, ये दोनों ही काल सदृश हैं, क्योंकि, अपूर्वकरण आदिके परिणामोंकी अनुकृष्टिका अभाव होता है ।

विशेषार्थ — यहां पर अपूर्वकरण आदिके परिणामोंकी अनुकृष्टिके अभाव कहनेका

१ अंतोमुहुत्तमेत्ते पडिसमयमसंखलोगपरिणामा । कमउड्डापुव्वगुणे अणुकट्टी णत्थि णियमेण ॥ गो. जी. ५३. तम्हा उवरिमभावा हेट्टिमभावेहि सरिसमा णत्थि । तम्हा विदियं करणं अपुव्वकरणं ति णिदिट्ठं ॥ लब्धि. ५१. तत्र अनुकृष्टिर्नाम अधस्तनसमयपरिणामखंडानां उपरितनसमयपरिणामखंडैः सादृश्यं भवति । गो. जी. जी. प्र. ४९. अपूर्वकरणगुणस्थाने नियमेन अवश्यंभावेन अनुकृष्टिर्नास्ति, तत एव प्रतिसमयपरिणामाणां बहुखंडविधानामाव; । गो. जी. मं. प्र. ५३.

सयोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धान् ॥ ३० ॥

तिसु वि कालेसु जेण एक्को वि समओ सयोगिविरहिदो णत्थि तेण सव्वद्धत्तणं
जुज्जदे ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१ ॥

तं कथं ? एक्को खीणकसाओ सयोगी होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय समुग्घादं करिय
पच्छा जोगणिरोहं किच्चा अजोगी जादो । एवं सयोगिस्स जहण्णकालपरूवणा एगजीव-
मल्लीणा गदा ।

उक्कस्सेण पुव्वकोटी देसूणां ॥ ३२ ॥

अभिप्राय इस प्रकार है— विवक्षित समयमें विद्यमान जीवके अधस्तन समयवर्ती जीवोंके
परिणामोंके साथ सदृशता होनेको अनुकृष्टि कहते हैं । अधःप्रवृत्तकरणमें भिन्न समयवर्ती
जीवोंके परिणामोंमें सदृशता पाई जाती है, इसलिए वहां पर अनुकृष्टि रचना बतलाई
गई है । किन्तु अपूर्वकरण आदिमें उपरितन समयवर्ती जीवोंके परिणामोंकी अधस्तन
समयवर्ती जीवोंके परिणामोंके साथ सदृशता नहीं पाई जाती है, इसलिए अपूर्वकरण
आदिमें अनुकृष्टि रचनाका अभाव होता है । इसी कारण अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंके
जघन्य काल और उत्कृष्ट काल, सदृश बतलाये गये हैं ।

सयोगिकेवली जिन कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व-
काल होते हैं ॥ ३० ॥

चूंकि, तीनों ही कालोंमें एक भी समय सयोगिकेवली भगवान्से विरहित नहीं है,
इसलिए सर्व कालपना बन जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा सयोगिकेवलीका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१ ॥

वह इस प्रकार है -- एक क्षीणकषायवीतरागलजस्य संयत जीव सयोगकेवली हो,
अन्तर्मुहूर्त काल रह, समुद्घात कर, पीछे योगनिरोध करके अयोगिकेवली हुआ । इस प्रकार
सयोगिजिनके जघन्य कालकी प्ररूपणा एक जीवका आश्रय करके कही गई ।

एक जीवकी अपेक्षा सयोगिकेवलीका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ ३२ ॥

१ सयोगकेवलीमा नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येमान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशीना । स. सि. १, ८.

तं जघा- एको खइयसम्मादिट्ठी देवो वा णेरइओ वा पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । सत्त मासे गन्धे अच्छिदूण गन्धपवेसणजम्भेण अट्टवस्सिओ जादो (८) । अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवण्णो (१) । पुणो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (२) अप्पमत्तट्ठाणे अधापमत्तकरणं कादूण (३) अपुव्वकरणो (४) अणियट्ठिकरणो (५) सुहुमखवगो (६) खीणकसाओ (७) होदूण सजोगी जादो । अट्टहि वस्सेहि सत्तहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणपुव्वकोडिकालं विहरित्ता अजोगी जादो (८) । एवं अट्टहि वस्सेहि अट्टहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणपुव्वकोडी सजोगिकेवलिकालो होदि ।

(ओघपरूवणा समत्ता) ।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धां ॥ ३३ ॥

कुदो ? णिरयगदिमिह सव्वकालं मिच्छादिट्ठिवोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३४ ॥

वह इस प्रकार है — एक क्षायिकसम्यग्दीष्ट देव अथवा नारकी जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । सात मास गर्भमें रह करके गर्भमें प्रवेश करनेवाले जन्म-दिनसे आठ वर्षका हुआ (८) । आठ वर्षका होने पर अप्रमत्तभावसे संयमको प्राप्त हुआ (१) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतगुणस्थान सम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (२) अप्रमत्त-संयत गुणस्थानमें अधःप्रवृत्तकरणको करके (३) क्रमशः अपूर्वकरण (४) अनिवृत्तिकरण (५) सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (६), और क्षीणकषायवीतरागलज्जस्थ होकर (७), सयोगि-केवली हुआ । पुनः वहाँ पर उक्त आठ वर्ष और सात अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटी कालप्रमाण विहार करके अयोगिकेवली हुआ (८) । इस प्रकार आठ वर्ष और आठ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटी वर्षप्रमाण सयोगिकेवलीका काल होता है ।

(इस प्रकार ओघ पररूपणा समाप्त हुई) ।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३३ ॥

क्योंकि, नरकगतिमें सर्वकाल मिथ्यादृष्टियोंके व्युच्छेदका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३४ ॥

१ विशेषेण गल्लुषादेन नरकगतौ नारकेषु सप्तसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीविपेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

तं जघा- एको सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा पुवं पि बहुवारपरि-
णमिदमिच्छत्तो संकिलेसं पूरेदूण मिच्छादिट्ठी जादो । सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तकालमच्छिय
विसुद्धो होदूण सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं वा पडिवण्णो । एवं मिच्छादिट्ठिस्स जहण्णकाल-
परूवणा गदा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ३५ ॥

तं जघा- एको तिरिक्खो मणुसो वा सत्तमाए पुढवीए उववण्णो । तत्थ मिच्छत्तेण
सह तेत्तीसं सागरोवमाणि अच्छिय उवड्ढिदो । लद्धाणि णेरइयमिच्छादिट्ठिस्स तेत्तीसं
सागरोवमाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३६ ॥

कुदो ? णिरयगदिम्मिह एदेसिं दोण्हं गुणट्टाणाणं णाणेगजीवजहण्णुकस्सपरूवणाणं
एदेसिं चेव ओघणाणेगजीवजहण्णुकस्सपरूवणाहिंतो भेदाभावा ।

**असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो हांति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धां ॥ ३७ ॥**

घह इस प्रकार है — एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव, जो कि
पहले भी बहुत बार मिथ्यात्वको परिणत हो चुका है, संक्लेशको पूरित करके मिथ्यादृष्टि हो
गया । वहाँ पर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, विशुद्ध होकर, सम्यक्त्वको अथवा
सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे मिथ्यादृष्टिके जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई ।

एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागरोपम है ॥ ३५ ॥

घह इस प्रकार है — एक तिर्यंच अथवा मनुष्य सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । वहाँ
पर मिथ्यात्वके साथ तेतीस सागरोपम काल रह कर बाहर निकला । इस प्रकार नारकी
मिथ्यादृष्टिके तेतीस सागरोपम उपलब्ध हुए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंका एक और नाना
जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है ॥ ३६ ॥

क्योंकि, नरकगतिमें इन दोनों गुणस्थानोंके नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी
जघन्य काल और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणाओंका इन्हीं दोनों गुणस्थानोंकी ओघगत नाना
जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणाओंसे भेद नहीं है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा
सर्वकाल होते हैं ॥ ३७ ॥

१ सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवोपेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

कुदो ? णिरयगदिम्हि असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३८ ॥

तं जहा— एगो मिच्छादिट्ठी वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा सम्मत्ते बहुवारं पुच्चं परि-
यट्ठिदूण अच्छिदो विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवण्णो । तत्थ सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय
सम्मामिच्छत्तं मिच्छत्तं वा गदो । एवं णिरयगदिअसंजदसम्मादिट्ठिस्स जहण्णकाल-
परूवणा गदा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३९ ॥

तं जघा— एको तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ मिच्छादिट्ठी सत्तमाए
पुढवीए उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयोदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३)
वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो । पुणो अंतोमुहुत्तावसेसआउट्ठिदीए मिच्छत्तं गदो (४) । आउगं
बंधिदूण (५) अंतोमुहुत्तं विस्समिय (६) उवट्ठिदो । एवं छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि
तेत्तीसं सागरोवमाणि असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो ।

क्योंकि, नरकगतिमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित कालका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि नारकीका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ ३८ ॥

वह इस प्रकार है— एक मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव, जो कि सम्य-
क्त्वमें पहले बहुतवार परिवर्तन कर चुका है, पुनः विशुद्ध हो करके सम्यक्त्वको प्राप्त
हुआ । वहां पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा मिथ्यात्वको
प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे नरकगतिमें असंयतसम्यग्दृष्टिके जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई ।

असंयतसम्यग्दृष्टि नारकीका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेत्तीस सागरोपम है ॥ ३९ ॥

वह इस प्रकार है — मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखने वाला एक
तिर्थंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । पुनः छहों पर्याप्तियोंसे
पर्याप्त हो (१), विश्राम लेता हुआ (२), विशुद्ध होकर (३), वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ ।
पुनः अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण आयुर्कर्मकी स्थितिके अवशेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ
(४) । वहां आगामी भवकी आयुको बांधकर (५), अन्तर्मुहूर्त काल विश्राम लेकर (६),
निकला । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेत्तीस सागरोपम प्रमाण असंयतसम्यग्दृष्टिका
उत्कृष्ट काल होता है ।

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

पढमाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं
कालादो होति, णाणजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ४० ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठिविरहिदसत्तहं पुढवीणं सव्वद्धा अभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४१ ॥

तं जहा— अप्पण्णो पुढवीसु द्विदअसंजदसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी वा बहुसो
मिच्छत्तचरो परिणामपच्चएण मिच्छत्तं गदो । सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुण्विल्लगुणेसु
अण्णदरगुणं गदो । एवं सत्तहं पुढवीणं मिच्छादिट्ठिपादेकमंतोमुहुत्तपरूवणा कदा ।

उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं
सागरोवमाणिं ॥ ४२ ॥

पढमाए पुढवीए एकं सागरोवमं, विदियाए पुढवीए तिण्णि सागरोवमं, तदियाए
पुढवीए सत्त सागरोवमाणि, चउत्थीए पुढवीए दस सागरोवमाणि, पंचमीए पुढवीए
सत्तारस सागरोवमाणि, छट्ठीए पुढवीए वावीस सागरोवमाणि, सत्तमीए पुढवीए तेत्तीस

प्रथम पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारक्रियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने
काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ४० ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित सातों पृथिवियोंके नारक्रियोंका सर्वकाल अभाव है ।
एक जीवकी अपेक्षा उक्त पृथिवियोंके नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल
अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४१ ॥

वह इस प्रकार है — अपनी अपनी पृथिवियोंमें स्थित, तथा जिसने पहले भी
बहुतवार मिथ्यात्वको प्राप्त किया है ऐसा कोई असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि
जीव, परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहां पर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल
रह करके पूर्वोक्त दोनों गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे
सातों पृथिवियोंके प्रत्येक मिथ्यादृष्टि जीवके अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा की गई ।

उक्त सातों पृथिवियोंके मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः एक सागरो-
पम, तीन, सात, दस, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपमप्रमाण है ॥ ४२ ॥

प्रथम पृथिवीमें एक सागरोपम, द्वितीय पृथिवीमें तीन सागरोपम, तृतीय पृथिवीमें
सात सागरोपम, चौथी पृथिवीमें दस सागरोपम, पांचवीं पृथिवीमें सत्तरह सागरोपम, छठी
पृथिवीमें बाईस सागरोपम, और सातवीं पृथिवीमें तेतीस सागरोपम मिथ्यादृष्टि नारकोंका

१ तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः । तत्त्वार्थसू. ३, ६.
उत्कर्षेण यथासंख्यं एक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि । स. सि. १, ८.

सागरोवमाणि मिच्छादिद्विस्स उक्कस्सकालो । कुदो ? एदेहिंतो अधिगबंधाभावा । तं पि कुदो णव्वदे ?

एकं तियं सत्त दस तह सत्तरह दु-तिहदेक्कअधिय दस ।

उवही उक्कस्सद्विदी सत्तण्हं होइ पुढवीणं ॥ ३४ ॥

इदि गिरयाउबंधसुत्तादो ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ४३ ॥

कुदो ? दोण्हं गुणट्ठाणाणं णाणाजीवे पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण दोण्हं पि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण छ आवलियाओ अंतोमुहुत्तमेवमादिणा भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ४४ ॥

तं जहा— सत्तण्हं पुढवीणं असंजदसम्मादिद्विविरहिदाणं सव्वद्धाणुवलंभादो ।

उत्कृष्ट काल है, क्योंकि, इनसे अधिक आयुबंधका अभाव है ।

शंका— यह कैसे जाना जाता है कि सूत्रोक्त कालसे अधिक नारकायुके बंधका अभाव है ?

समाधान— एक, तीन, सात, दश, तथा सत्तरह सागरोपम, तथा दोसे गुणित एक अधिक दश ($2 \times 11 = 22$) अर्थात् बाईस सागरोपम, तथा तीनसे गुणित ग्यारह ($3 \times 11 = 33$) अर्थात् तेतीस सागरोपम, इस प्रकार सातों पृथिवियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ॥ ३४ ॥

इस नारकायुके बंधप्रदर्शक सूत्रसे जाना जाता है कि सूत्रोक्त कालसे अधिक नारकायुके बंधका अभाव है ।

सातों पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जिवि सम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है ॥ ४३ ॥

क्योंकि, उक्त दोनों गुणस्थानोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल क्रमशः एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट काल दोनों गुणस्थानोंका पत्योपमके असंख्यातवें भाग है । एक जीवकी अपेक्षा दोनों गुणस्थानोंका क्रमशः जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट काल छह आवलियां और अन्तर्मुहूर्त है । इत्यादि रूपसे कोई भेद नहीं है

सातों पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ४४ ॥

वह काल इस प्रकार संभव है — कि सातों पृथिवियां किसी भी कालमें असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित नहीं पाई जाती हैं ।

१ आ क प्रलोः ' एकद्विदा ' अपत्तौ ' एकद्विय ' इति पाठः ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४५ ॥

तं जहा—सत्तसु पुढवीसु द्विदचहुसो सम्मत्तचरअट्टावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी वा सम्मत्तं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा पडिवण्णो । एसो सत्तसु पुढवीसु असंजदसम्मादिट्ठिजहण्णकालो परूविदो ।

उक्कस्सं सागरोपमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ४६ ॥

तं जधा—एक्को तिरिक्खो मणुसो वा अट्टावीससंतकम्मिओ मिच्छादिट्ठी पढमाए पुढवीए वा एवं जाव सत्तमीए वा उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४) । सम्मत्तेण अप्पण्णो उक्कस्साउट्ठिदिमच्छिय णिप्फिडिदूण मणुसेसु उववण्णो । एवं तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणा अप्पण्णो उक्कस्साउट्ठिदी असंजदसम्मादिट्ठिउक्कस्सकालो होदि । णवरि सत्तमाए छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणा उक्कस्साट्ठिदि त्ति वत्तच्चं, तत्थ मिच्छत्तगुणेण विणा णिग्गमाभावा ।

एक जीवकी अपेक्षा सातों पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४५ ॥

वह इस प्रकार है— सातों ही पृथिवियोंमें स्थित पूर्वमें अनेकवार सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वको प्राप्त हो कर और अन्तर्मुहूर्त काल रह कर पुनः मिथ्यात्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । यह सातों ही पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिका जघन्य काल प्ररूपण किया गया ।

सातों पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ कम एक सागरोपम, तीन, सात, दश, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपम है ॥ ४६ ॥

वह इस प्रकार है— मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखने वाला एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव पहली पृथिवीमें, अथवा दूसरी पृथिवीमें, इस प्रकारसे लगा कर सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१), विश्राम लेता हुआ (२), विशुद्ध होकर (३), वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४), सम्यक्त्वके साथ अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट आयुर्कर्मकी स्थितिप्रमाण रह करके वहांसे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकारसे तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट आयुस्थिति ही उस उस पृथिवीके असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल होता है । विशेष बात यह है कि सातवीं पृथिवीमें छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम उत्कृष्ट स्थिति होती है, ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि, वहांसे मिथ्यात्वगुणस्थानके विना निर्गमनका अभाव है, अर्थात् मिथ्यात्वके अतिरिक्त अन्य गुणस्था-

असंजदसम्मादिट्टिम्मि आउअं बंधिय विस्संतो होदूण मिच्छत्तं गंतूण सत्तमपुढवीदो गिस्सरिदे सम्मत्तकालो बहुगो लब्भदि त्ति वुत्ते ण, सत्तमपुढाविणेरइयाणं मणुसेसुववादाभावा । असंजदसम्मादिट्टीणं पि गिरयतिरिक्खाउबंधाभावा । जेण गुणेण आउअबंधस्स संभवो अत्थि, तेणेव गुणेण गिग्गमादो च ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्टी केवचिरं कालादो होंति, गणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ४७ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्टीहि विणा सव्वद्धा तिरिक्खगदीए अणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४८ ॥

तं जहा— एक्को सम्मामिच्छादिट्टी असंजदसम्मादिट्टी संजदासंजदो वा बहुसो मिच्छत्तचरो मिच्छत्तं पडिवण्णो । सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वुत्तगुणेषु अण्णदरगुणं

नोंसे निकलना नहीं हो सकता है ।

शंका— असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें आगामी भवकी आयुको बांधकर विश्रान्त होता हुआ मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सातवीं पृथिवीसे निकलने पर सम्यक्त्वका काल बहुत प्राप्त होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सातवीं पृथिवीके नारकोंका मनुष्योंमें उपपाद नहीं होता है । तथा, असंयतसम्यग्दृष्टियोंके भी नारक और तिर्यंच भायुके बांधका अभाव है । दूसरी बात यह भी है कि जिस गुणस्थानसे आयुका बांध संभव है, उस ही गुणस्थानसे उसका निर्गमन भी होता है ।

तिर्यंचगतिमें, तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीवोंके बिना किसी भी कालमें तिर्यंचगति नहीं पाई जाती है ।

एक जीवकी अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४८ ॥

वह इस प्रकार है— पहले बहुतवार मिथ्यात्वमें भ्रमण किया हुआ एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत जीव मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहां पर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुण-

१ तिर्यंगती तिरश्चा मिथ्यादृष्टीना नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

गदो । एवं जहण्णकालपरूवणा गदा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठं ॥ ४९ ॥

एको मणुसो देवो णेरइओ वा अणादियछव्वीससंतकम्मिओ मिच्छादिट्ठी तिरि-
क्खेसु उववण्णो । आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि पोग्गलपरियट्ठाणि परियट्ठिदूण
अण्णगदिं गदो । असंखेज्जपोग्गलपरियट्ठाणि चि वयणादो अणंतोवलद्वी होदि चि
अणंतग्गहणं किण्णावणिज्जदे ? ण, अणंतग्गहणमंतरेण पोग्गलपरियट्ठस्स अणंतत्तुवलद्वीए
उवायाभावादो । पोग्गलपरियट्ठाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि चेवेत्ति कथं
णव्वदे ? आइरियपरंपरागदवक्खाणा तदवगदीए ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ५० ॥

कुदो ? णाणेगजीवजहण्णक्कस्सपरूवणाहि विसेसाभावा ।

स्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे तिर्यंच मिथ्यादृष्टिके जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई ।

एक जीवकी अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट काल अनन्त कालप्रमाण
असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ ४९ ॥

मोहकर्मकी छव्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मनुष्य, देव अथवा नारकी अनादि-
मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ । वहांपर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरि-
वर्तनोंको परिवर्तित करके अन्य गतिको चला गया ।

शंका— ' असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन ' इस प्रकारसे वचनसे अनन्तताकी उपलब्धि
होती है, इसलिये सूत्रमेंसे ' अनन्त ' पदका ग्रहण क्यों नहीं निकाल दिया जाय ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, अनन्तपदके ग्रहण किए बिना पुद्गलपरिवर्तनके अनन्त-
ताकी उपलब्धिका और कोई उपाय नहीं है ।

शंका— तिर्यंच मिथ्यादृष्टिके बताये गये उक्त पुद्गलपरिवर्तन, ' आवलीके असंख्या-
तवें भागमात्र ही होते हैं, ' यह कैसे जाना ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, आचार्य-परम्परागत व्याख्यानसे उक्त बातका ज्ञान
होता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंका काल ओघके समान
है ॥ ५० ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणाओंके
साथ इन दोनोंकी कालप्ररूपणाओंमें कोई विशेषता नहीं है ।

१ उत्कर्षणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिसंयतासंयतानां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ ५१ ॥

कुदो ? तीदाणागद-वट्टमाणकालेसु असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदतिरिक्खगदीए
अभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५२ ॥

तं जधा—एक्को मिच्छादिट्ठी वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा संजदासंजदो वा परि-
णामपच्चएण असंजदसम्मादिट्ठी जादो । सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय विसोहीए दुक्कओ
संजमासंजमं गदो, संकिलेपेण दुक्कओ मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा गदो । एवं जहण्ण-
कालपरूवणा गदा ।

उक्कसेण तिण्णि पलिदोवमाणि ॥ ५३ ॥

तं जधा— एक्को मणुस्सो बद्धतिरिक्खाउओ सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय
देवुत्तरकुरुतिरिक्खेसु उववण्णो । तिण्णि पलिदोवमाणि तत्थ सम्मत्तेण सह अच्छिय मदो

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ५१ ॥

क्योंकि, अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों ही कालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि
जीवोंसे रहित तिर्यचगति नहीं पाई जाती है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ ५२ ॥

वह इस प्रकार है— एक मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा संयतासंयत
तिर्यच जीव परिणामोंके निमित्तसे असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ । वहां सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल
रह करके विशुद्धिसे बढ़ता हुआ संयमासंयमको प्राप्त हो गया । पुनः संक्लेशसे बढ़ता हुआ
मिथ्यात्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई ।

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचका उत्कृष्ट काल तीन पल्लोपम है ॥ ५३ ॥

वह इस प्रकार है— बद्धतिर्यगायुष्क एक मनुष्य सम्यक्त्वको ग्रहण करके, और
दर्शनमोहनीयका क्षय कर, देवकुरु या उत्तरकुरुके तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर तीन
पल्लोपम कालप्रमाण सम्यक्त्वके साथ रह कर मरा, और देव हो गया । इस प्रकारसे

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उक्कसेण त्रीणि पल्लोपमाणि । स. सि. १, ८.

देवो जादो । एवं तिरिक्खेसु असंजदसम्मादिट्टिस्स उक्कस्सकालो परूविदो ।

संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्दा ॥ ५४ ॥

कुदो ? तिसु वि कालेसु संजदासंजदविरहिदतिरिक्खाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५५ ॥

तं जहा— अट्टावीससंतकम्मियमिच्छादिट्टी असंजदसम्मादिट्टी वा परिणाम-
पच्चएण संजमासंजमं गदो । सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वुत्ताणमेक्कदरं गदो ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ ५६ ॥

एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छादिट्टी अट्टावीससंतकम्मिओ सण्णिपंचिदिय-
तिरिक्खसंमुच्छिमपज्जत्तमंङ्क-कच्छ-मच्छवादीसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो
(१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) संजमासंजमं पडिवण्णो । एदेहि तीहि अंतोमुहुत्तेहि
उणपुव्वकोडिकालं संजमासंजमणुपालिदूण मदो देवो जादो ।

तिर्येचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल कहा ।

संयतासंयत तिर्येच कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल
होते हैं ॥ ५४ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें संयतासंयतोंसे रहित तिर्येचोंका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयत तिर्येचका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५५ ॥

वह इस प्रकार है— मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि, अथवा
असंयतसम्यग्दृष्टि जीव परिणामोंके निमित्तसे संयतासंयमको प्राप्त हुआ । वहां पर सर्वलघु
अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हो गया ।
(इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल सिद्ध हुआ ।)

एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयत तिर्येचका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि
वर्षप्रमाण है ॥ ५६ ॥

मोहकर्मकी अट्टाईस कर्मप्रकृतियोंकी सत्तावाला एक तिर्येच या मनुष्य मिथ्यादृष्टि,
संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्त मंङ्क, कच्छप आदि तिर्येचोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्ति-
योंसे पर्याप्त होता हुआ (१), विश्राम लेकर (२), और विशुद्ध होकर (३), संयतासंयमको
प्राप्त हुआ । इन तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटि कालप्रमाण संयतासंयमको परिपालन
करके मरा और देव हो गया । (इस प्रकार सूत्रोक्त काल सिद्ध हुआ ।)

पंचिंदियतिरिक्ख—पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त—पंचिंदियतिरिक्ख—
जोणिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्दा ॥ ५७ ॥

कुदो ? तिसु वि कालेसु पंचिंदियतिरिक्खतियमिच्छादिट्ठिविरहिदपंचिंदियतिरिक्ख-
तियाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५८ ॥

एकको सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो वा दिट्ठमग्गो मिच्छत्तं
पडिवण्णो । सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वुत्ताणमण्णदरं गुणं गदो । तेण अंतोमुहुत्तमिदि
सुत्ते वुत्तं ।

उक्कस्सं तिण्णि पल्लिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण अब्भ-
हियाणि ॥ ५९ ॥

तं जघा— एकको देवो णेरइओ मणुस्सो वा अप्पिदपंचिंदियतिरिक्खवदिरित्त-
तिरिक्खो वा अप्पिदपंचिंदियतिरिक्खेसु उववण्णो । साण्णि-इत्थि-पुरिस-णवुंसगवेदेसु

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें
मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते
हैं ॥ ५७ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंसे रहित
उक्त तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच नहीं पाये जाते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल
अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५८ ॥

जिसने मिथ्यात्वका मार्ग पहले कई बार देखा है ऐसा एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा
असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत तिर्यंच मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहां पर सर्वलघु
अन्तर्मुहूर्त काल रह कर पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस लिए
सूत्रमें ' अन्तर्मुहूर्तकाल ' ऐसा कहा है ।

उक्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्यो-
पम है ॥ ५९ ॥

जैसे, एक देव, नारकी, मनुष्य, अथवा विवाक्षित पंचेन्द्रिय तिर्यंचसे विभिन्न अन्य
तिर्यंच जीव, विवाक्षित पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर संज्ञी स्त्री, पुरुष और

कमेण अट्टट्टपुव्वकोडीओ हिंडिदूण असण्णि-इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेसु वि एवं चेव अट्टट्टपुव्वकोडीओ परिभमिय तदो पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उववण्णो । तत्थ अंतोसुहुत्तमच्छिय पुणो पंचिदियतिरिक्खअसण्णिपज्जत्तएसु उववज्जिय तत्थतणइत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदएसु पुणो वि अट्टट्टपुव्वकोडीओ परिभमिय पच्छा सण्णिपंचिदियतिरिक्ख-पज्जत्तइत्थि-णवुंसयवेदेसु अट्टट्टपुव्वकोडीओ पुरिसवेदेसु सत्त पुव्वकोडीओ हिंडिदूण तदो देव-उत्तरकुरुतिरिक्खेसु पुव्विल्लाउवसेण इत्थिवेदेसु वा पुरिसवेदेसु वा उववण्णो । तत्थ तिण्णि पलिदोवमाणि जीविदूण मदो देवो जादो । एदाओ पंचाणउदि पुव्वकोडीओ पुव्वकोडिवारसपुधत्तंसण्णिदाओ त्ति एदामिं पुव्वकोडिपुधत्तववदेसो सुत्तणिहिट्ठो ण जुज्जदे ? ण एस दोसो, तस्स वइउल्लवाइत्तादो । वारसण्हं पुव्वकोडिपुधत्ताणं कध-भेगत्तं ? ण, जाइमुहेण सहस्साण वि एगत्तविरोहाभावा । णवरि पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-एसु सत्तेतालीसपुव्वकोडीओ हिंडाविय पच्छा तिपलिदोवमिएसु तिरिक्खेसु उप्पादेदव्वो ।

नपुंसक वेदोंमें कमले आठ आठ पूर्वकोटि कालप्रमाण भ्रमण करके, असंज्ञी स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदोंमें भी इसी प्रकारसे आठ आठ पूर्वकोटि कालप्रमाण परिभ्रमण करके, इसके पश्चात् पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर अन्तर्मुहूर्त रह कर, पुनः पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंज्ञी पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, उनमेंके स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदी जीवोंमें फिर भी आठ आठ पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण करके, पीछे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक स्त्री और नपुंसक वेदियोंमें आठ आठ पूर्वकोटियां, तथा पुरुषवेदियोंमें सात पूर्वकोटियां भ्रमण करके उसके पश्चात् देवकुरु अथवा उत्तरकुरुके तिर्यंचोंमें पूर्वली आयुके षशसे स्त्रीवेदियोंमें अथवा पुरुषवेदियोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर तीन पल्योपम तक जीवित रह कर मरा और देव हो गया ।

शंका—ये ऊपर कही गई पंचानवे पूर्वकोटियां पूर्वकोटिद्वादशपृथक्त्व संज्ञारूप हैं; इसलिए, इनकी सूत्रनिर्दिष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व ऐसी संज्ञा नहीं बनती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यह पृथक्त्व शब्द वैपुल्यवाची है, (इस-लिए कोटिपृथक्त्वसे यथासंभव विवक्षित अनेक कोटियां ग्रहण की जा सकती हैं ।)

शंका—शारह पूर्वकोटिपृथक्त्वोंमें एकपना कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जातिके मुखसे, अर्थात् जातिकी अपेक्षा, सहस्रोंके भी एकत्व होनेमें विरोधका अभाव है ।

विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तकोंमें सैंतालीस पूर्वकोटियों तक भ्रमण कराके पीछे तीन पल्योपमवाले तिर्यंचोंमें उत्पन्न कराना चाहिए; क्योंकि, अपर्याप्तकताके

कुदो ? अपज्जत्तत्तेण एदेसिमपरिणदानं पच्छा सेसपुव्वकोडीओ परिब्भमणे संभवा-
भावा । अपज्जत्तएसु कधमित्थिवेदस्स संभवो ? ण, अपज्जत्तित्थिवेदानमण्णोणविरोहा-
भावा । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु पण्णारस पुव्वकोडीओ ममाविय पच्छा देवुत्तरकुरवेसु
उप्पादेदव्वो । कुदो ? वेदंतरसंकंतीए अभावादो । णत्थि अण्णो कोइ विसेसो ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ६० ॥

कुदो ? तिसु वि पंचिंदियतिरिक्खेसु द्विददोगुणट्ठाणाणं णाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एगजीवं
पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण छावलियाओ अंतोमुहुत्तमिदि एदेहि
विसेसाभावा ।

**असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो हंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ ६१ ॥**

कुदो ? तिसु वि पंचिंदियतिरिक्खेसु असंजदसम्मादिट्ठिविरिह्दिदकालाभावा ।

साथ अपरिणत हुए, अर्थात् लब्धपर्याप्तक हुए विना, उक्त जीवोंके पश्चात् शेष पूर्वकोटियां
परिभ्रमण करना संभव नहीं है ।

शंका— लब्धपर्याप्तकोंमें खीवेद कैसे संभव है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, लब्धपर्याप्त और खीवेद, इन दोनों अवस्थाओंमें पर-
स्पर कोई विरोध नहीं है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमातियोंमें पन्द्रह पूर्वकोटियों तक भ्रमण कराके पश्चात् देवकुरु
और उत्तरकुरुमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, भोगभूमिमें वेद-परिवर्तनका अभाव है । इसके
सिवाय अन्य कोई विशेषता नहीं है ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंका
काल ओघके समान है ॥ ६० ॥

क्योंकि, तीनों ही पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें स्थित उक्त दोनों गुणस्थानोंका नाना जीवोंकी
अपेक्षा जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां
भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त, तथा उत्कृष्ट काल छह
आवलियां और अन्तर्मुहूर्त है । इस प्रकार इन दोनों गुणस्थानोंसे उक्त तीनों पंचेन्द्रिय
जीवोंके कालोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ६१ ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित
कालका अभाव है ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६२ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी संजदासंजदो वा विसोहि-संकिलेसवसेण असंजदसम्मादिट्ठी होदूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय अविण्हसंकिलेस-विसोहीहि पडिवण्णगुणंतरस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ६३ ॥

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ताणं संपुण्णाणि तिण्णि पलिदोवमाणि । कुदो ? मणुस्सस्स बद्धतिरिक्खाउअस्स सम्मत्तं धेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय देवुत्तरकुरु-पंचिंदियतिरिक्खेसुववज्जिय अप्पणो आउट्ठिदिमणुपालिय देवेसुप्पणस्स संपुण्णतिण्णि-पलिदोवममेत्तसासंजमसम्मत्तकालुवलंभादो । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु देसूणतिण्णिपलि-दोवमाणि । कुदो ? तिरिक्खस्स मणुस्सस्स वा अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठिस्स देवुत्तरकुरुपंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु उप्पज्जिय वे मासे गब्भे अच्छिदूण णिक्खंतस्स मुहुत्तपुधत्तेण विसुद्धो होदूण वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय मुहुत्तपुधत्तव्भहिय-वे-मासूणतिण्णि

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६२ ॥

क्योंकि, कोई मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा संयतासंयत तिर्यंच यथाक्रमसे विशुद्धि, अथवा संक्लेशके बशसे असंयतसम्यग्दृष्टि होकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, अविनष्ट संक्लेश और विशुद्धिके साथ यथाक्रमसे दूसरे गुणस्थानको प्राप्त हुआ, ऐसे जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे तीन पल्योपम, तीन पल्योपम और कुछ कम तीन पल्योपम है ॥ ६३ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तिकोंका सम्पूर्ण तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है, क्योंकि, बद्धतिर्यगायुष्क मनुष्यके, सम्यक्त्वको ग्रहण करके, दर्शनमोहनीयका क्षपण कर, देवकुरु या उत्तरकुरुके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर, अपनी आयुस्थितिको परिपालन कर, देवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके तो सम्पूर्ण तीन पल्योपममात्र असंयतसहित सम्यक्त्वका काल पाया जाता है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें कुछ कम तीन पल्योपम काल है । क्योंकि, मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्या-दृष्टि जीवके देवकुरु अथवा उत्तरकुरुके पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें उत्पन्न होकर, और दो मास गर्भमें रहकर, जन्म लेनेवाले, और मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको

पलिदोवमाणि सम्मत्तमणुपालिय देवेसुववण्णस्स देस्सणतिण्णिपलिदोवममेत्तसम्मत्त-
कालुवलंभादो ।

संजदासंजदा ओघं ॥ ६४ ॥

कुदो ? तिसु वि पंचिंदियतिरिक्खेसु णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च
जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्खस्सेण पुव्वकोडी देस्सणा, इच्चाइणा भेदाभावा । णवरि जोणिणीसु
वे मासे अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया त्ति वत्तव्वं ।

**पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं
पडुच्च सव्वद्धा ॥ ६५ ॥**

कुदो ? पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तविरहिदकालाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ६६ ॥

कुदो ? एइंदिय-वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियपज्जत्त-अपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त
मणुसपज्जत्तापज्जत्तएसु अण्णदरस्स खुद्दाभवग्गहणावुद्धिदपंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु

प्राप्त करके मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो मास कम तीन पर्योपम तक सम्यक्त्वको अनुपालन
करके देघोंमें उत्पन्न होने वाले जीवके कुछ कम तीन पर्योपमप्रमाण सम्यक्त्वका काल
पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय संयतासंयत तिर्यचोंका काल ओघके समान
है ॥ ६४ ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक
जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त, और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण होता है,
इत्यादि रूपसे भेदका अभाव है । विशेष बात यह है कि योनिमतियोंमें दो मास और कुछ
अन्तर्मुहूर्तोंसे कम, अर्थात् जन्म से लेकर शीघ्रातिशीघ्र संयमासंयमको ग्रहण करने तकके
कालसे हीन, ऐसा काल कहना चाहिए ।

पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्यच कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ६५ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्यच जीवोंसे रहित कोई भी काल नहीं
पाया जाता ।

एक जीवकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त तिर्यचोंका जघन्य काल क्षुद्रभव-
ग्रहणप्रमाण है ॥ ६६ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक,
पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तक, तथा मनुष्य पर्याप्तक और अपर्याप्तकोंमेंसे किसी एक जीवके
क्षुद्रभवग्रहणकी आयुस्थितिवाले पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर,

उववज्जिय सव्वजहणकालमच्छिय पुव्वुत्ताणमण्णदरं गदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तअप-
ज्जत्तकालवलंभा ।

उकस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६७ ॥

कुदो ? पुव्वुत्ताणमण्णदरस्स पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उववज्जिय सण्णि-
असण्णि-अपज्जत्तएसु अट्ठट्ठवारमुप्पज्जिय णिस्सरिदूण पुव्वुत्ताणमण्णदरं गदस्स अंतो-
मुहुत्तमेत्तुकस्सकालवलंभा ।

**मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं
कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दां ॥ ६८ ॥**

कुदो ? तिविधेसु वि मणुस्सेसु मिच्छादिट्ठि-विरहिदकालाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६९ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छादिट्ठिस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स वा संकिलेस-

और वहां पर सर्व जघन्य काल रह कर, पूर्वोक्त एकेन्द्रियादिकोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुए
जीवके क्षुद्रभवग्रहणमात्र अपर्याप्तकाल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्यचका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ ६७ ॥

क्योंकि, पूर्वमें कहे गये एकेन्द्रियादिकोंमेंसे किसी एकके पंचेन्द्रियतिर्यच लब्ध-
पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, संज्ञी और असंज्ञी लब्धपर्याप्तकोंमें आठ आठ बार उत्पन्न होकर,
और उनमेंसे निकलकर, पूर्वोक्त जीवोंमेंसे किसी एक जीवकी पर्यायको प्राप्त हुए जीवके
अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

मनुष्यगतिमें, मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने
काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ६८ ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके मनुष्योंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित कोई काल नहीं
पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका जघन्य काल
अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६९ ॥

क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टिके, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टिके, अथवा संयतासंयतके

१ मनुष्यगती मनुष्येसु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

वसेण मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वत्ताणमण्णदरं गदस्स तिसु वि मणुस्सेसु अंतोमुहुत्तमेत्तमिच्छत्तकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणम्भहियाणि

॥ ७० ॥

कुदो ? अणप्पिदजीवस्स अण्णिदमणुसेसुववज्जिय इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेसु अट्टट्टपुव्वकोडीओ परिभमिय अपज्जत्तएसुववज्जिय तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो इत्थि-णवुंसयवेदेसु अट्टट्टपुव्वकोडीओ, पुरिसवेदेसु सत्त पुव्वकोडीओ हिंडिय देवुत्तरकुरवेसु तिण्णि पलिदोवमाणि अच्छिय देवेसुववण्णस्स पुव्वकोडिपुधत्तम्भहियतिण्णिपलिदोवम-सुवलंभा । णवरि मणुसमिच्छादिट्ठिस्स च्चैय सत्तेत्तालीसपुव्वकोडीओ अहिया होंति, ण सेसाणं । पज्जत्तमिच्छादिट्ठिगं तेवीसपुव्वकोडीओ, मणुसअपज्जत्तएसु तेसिमुप्पत्तीए अभावादो । मणुसिणीमिच्छादिट्ठिसु सत्तपुव्वकोडीओ अहियाओ, वेदंतरसंकंतीए अभावादो ।

संक्षेपके वशसे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर, सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, पूर्वोक्त गुण-स्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके तीनों ही प्रकारके मनुष्योंमें अन्तर्मुहूर्त-मात्र मिथ्यात्वका काल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा तीनों प्रकारके मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि-पृथक्त्ववर्षसे अधिक तीन पल्योपमप्रमाण है ॥ ७० ॥

क्योंकि, अविश्वक्षित जीवके विश्वक्षित मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, स्त्री, पुरुष और नपुंसकवेदियोंमें क्रमशः आठ आठ पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण करके, लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, वहां पर अन्तर्मुहूर्त काल रह करके, पुनः स्त्री और नपुंसक वेदियोंमें आठ आठ पूर्व-कोटियां तथा पुरुषवेदियोंमें सात पूर्वकोटियां भ्रमण करके, देवकुरु अथवा उत्तरकुरुमें तीन तीन पल्योपमों तक रह करके, देवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम पाये जाते हैं । विशेष बात यह है कि मनुष्य मिथ्यादृष्टिके ही तीन पल्योपमोंसे अधिक सैंतालीस पूर्वकोटियां होती हैं; शेष मनुष्योंके नहीं । पर्याप्त मिथ्यादृष्टि मनुष्योंके तेईस पूर्वकोटियां अधिक होती हैं; क्योंकि, मनुष्यलब्धपर्याप्तकोंमें उनकी उत्पत्ति नहीं होती है । मनुष्यनी मिथ्यादृष्टियोंमें सात पूर्वकोटियां अधिक होती है; क्योंकि, उनके वेदपरि-वर्तन नहीं होता ।

१ उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण एगसमयं ॥ ७१ ॥

कुदो ? उवसमसम्मादिट्ठीणं सत्तट्ठजणाणं उवसमसम्मत्तद्वाए एगसमओ अत्थि
त्ति सासणगुणं गदाणं तत्तेगसमयमच्छिय मिच्छत्तं पडिवण्णाणमेगसमओवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७२ ॥

कुदो ? संखेज्जाणं उवसमसम्मादिट्ठीणमुवसमसम्मत्तद्वाए एगसमयमादिं काट्ठण
जावुकस्सेण छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं पडिवण्णाणं संखेज्जवाराणुसंचिदसासण-
द्वाणमंतोमुहुत्तत्तुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ७३ ॥

कुदो ? उवसमसम्मादिट्ठिस्स उवसमसम्मत्तद्वाए एगसमओ अत्थि त्ति सासणं
पडिवज्जिय विदियसमए चेव मिच्छत्तं पडिवण्णसासणस्स एगसमयदंसणादो ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ ७१ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि सात आठ जनोंके उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय
शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए, तथा वहां पर एक समय रह कर मिथ्यात्वको
प्राप्त होनेवाले जीवोंके एक समयप्रमाण काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा
उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७२ ॥

क्योंकि, संख्यात उपशमसम्यग्दृष्टियोंके उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समयको
भादि करके उत्कर्षसे छ आवलियां शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए जीवोंके
संख्यात धारोंसे अनुसंचित सासादनगुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य-
काल एक समय है ॥ ७३ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने
पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर, दूसरे समयमें ही मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त हुए
सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके एक समयप्रमाण काल देखा जाता है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

२ प्रतिपु 'सासणाणं' इति पाठः ।

३ उत्कर्षेणास्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

४ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सं छ आवलियाओ' ॥ ७४ ॥

कुदो ? उवसमसम्मादिट्ठिस्स उवसमसम्मत्तद्वाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं पडिवज्जिय छ आवलियाओ तत्थ गमिय मिच्छत्तं पडिवण्णस्स छ-आवलिओ-वलंभा ।

सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७५ ॥

पमत्तसंजद-संजदासंजद-अट्ठावीसमोहसंतकम्मियमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-पच्छायदाणं संखेज्जसम्मामिच्छादिट्ठीणं सच्चजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय विसोहि-संकिलेस-वसेण सम्मत्त-मिच्छत्ताणि उवगदाणं सच्चजहण्णंतोमुहुत्तुवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७६ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठीणं सच्चुक्कस्ससम्मामिच्छत्तद्वाणं मिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-

उक्त तीनों प्रकारके सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल छह आवलीप्रमाण है ॥ ७४ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां रोष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर छह आवलीप्रमाण काल वहां पर बिताकर मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके छह आवलीप्रमाण काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ ७५ ॥

क्योंकि, प्रमत्तसंयत, अथवा संयतासंयत, अथवा मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे पीछे आये हुए संख्यात सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके विशुद्धि और संक्लेशके वशसे यथाक्रमसे सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुए जीवोंके सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७६ ॥

मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयत जीवोंसे संख्यात वारमें

१ उत्कर्षेण षड्वावलिकाः । स. सि. १, ८.

२ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

संजदासंजद-पमत्तसंजदेहि संखेज्जवारमणुसंचिदद्वाणमंतोमुहुत्तुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७७ ॥

सम्मामिच्छादिट्टिस्स दिट्ठमग्गस्स पुव्वुत्तचदुगुणट्ठणेषु एगजीवण्णदरगुणपच्छाय-
दस्स सव्वजहण्णद्धमच्छिद्दूण संकिलेस-विसोहिवसेण मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिगुणे
पडिवण्णस्स सव्वजहण्णंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७८ ॥

पुव्वुत्तचदुगुणट्ठणेषु अदिट्ठमग्गेगजीवण्णदरगुणपच्छायदसम्मामिच्छादिट्टिस्स
दीहद्धमच्छिय देस-सयलसंजमविरहिददोगुणट्ठणेषु गदस्स सव्वुक्कस्संतोमुहुत्तुवलंभा ।

**असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ ७९ ॥**

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदमणुस्साणं सव्वकालमणुवलंभा ।

संचित हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके सर्वोत्कृष्ट सम्यग्मिथ्यात्वका काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७७ ॥

क्योंकि, जिसने पूर्वमें मार्ग देखा है, ऐसे पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुण-
स्थानसे पीछे आये हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टिके सर्व जघन्य काल रह कर संक्लेश और विशुद्धिके
वशसे मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके सर्व जघन्य अन्त-
र्मुहूर्त काल पाया जाता है

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७८ ॥

क्योंकि, पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमेंसे नहीं देखा है मार्ग को जिसने, ऐसे जीवके किसी
एक गुणस्थानसे पीछे आये हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टिके दीर्घ काल तक रह करके देशसंयम
और सकलसंयमसे रहित दो गुणस्थानोंमें, अर्थात् मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि
गुणस्थानोंमें गये हुए जीवके सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ७९ ॥

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे रहित मनुष्योंका कोई भी काल नहीं पाया जाता ।

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८० ॥

दिट्ठमग्गमिच्छादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजदगुणट्ठाणेहिंतो आग-
दस्स सच्चजहण्णमंतोमुहुत्तद्वमच्छिय जहण्णकालाविरोहेण गुणंतरं गदस्स जहण्णंतोमुहुत्त-
मेत्तकालवलंभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरे-
याणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ८१ ॥

एत्थ सादिरेयसहो दोसु वि तिपलिदोवमेसु संबंधणिज्जो, दोण्हं पच्चासत्तिवसेण
एगत्तमुवगयाणं विसेसणरूवेण पयट्ठत्तादो । तम्हा मणुस-मणुसपज्जत्तएसु सादिरेयाणि
तिण्णि पलिदोवमाणि, अण्णत्थ देसूणाणि । कुदो ? ' जहा उद्देशो तथा णिद्देशो ' ति
णायादो । कथं सादिरेयत्तं ? अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठिस्स पुच्चकोडितिहाए सेसे
बद्धमणुसाउअस्स तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय सम्मत्तेण

एक जीवकी अपेक्षा तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका जघन्य काल
अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८० ॥

क्योंकि, देखा है मार्गको जिसने ऐसे, मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा
संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत गुणस्थानोंसे आये हुए, तथा सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह
करके जघन्य कालके अविरोधसे गुणस्थानान्तरको प्राप्त हुए जीवके जघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण
काल पाया जाता है ।

तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका यथाक्रमसे उत्कृष्ट काल तीन पल्यो-
पम, तीन पल्योपम सातिरेक, और देशोन तीन पल्योपम है ॥ ८१ ॥

यहां पर सातिरेक शब्द दोनों ही त्रिपल्योपमों पर संबद्ध करना चाहिए, क्योंकि
प्रत्यासत्तिके वशसे एकत्वको प्राप्त हुए दोनों पक्षोंके विशेषणरूपसे यह शब्द प्रवृत्त हुआ है
इसलिये मनुष्य और मनुष्यपर्याप्तकोंमें तो साधिक तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है । और
अन्यत्र अर्थात् मनुष्यनियोंमें, देशोन तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है । क्योंकि, ' जिस प्रकारसे
उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है ' ऐसा न्याय है ।

शंका — तीन पल्योपमसे सातिरेक अर्थात् अधिक काल कैसे संभव है ?

समाधान— मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले तथा पूर्वकोटीके
त्रिभाग शेष रहने पर बांधी है मनुष्य आयुको जिसने ऐसे मिथ्यादृष्टि मनुष्यके तत्पश्चात् अन्त-
र्मुहूर्त जाकर सम्यक्त्वको ग्रहण करके दर्शनमोहनीयका क्षपण कर सम्यक्त्वके साथ देशोन

१ एक जीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कृष्टेण त्रीणि पल्योपमानि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८.

सह देसणपुव्वकोडितिभागं गमिय तिपलिदोवमाउट्टिदिदेउत्तरकुरवेसुप्पज्जिय अप्पणो आउट्टिदिमणुपालिय देवेसुप्पणस्स तिण्णिपलिदोवमाणमुवरि देसणपुव्वकोडितिभागु-वलंभा । मणुसिणीसु देसणतिण्णि पलिदोवमाणि, अण्णदरअट्टावीससंतकम्मियमिच्छा-दिट्ठिस्स तिपलिदोवमिएसु मणुसेसुववज्जिय णव मासे गब्भे अच्छिदूण णिकखंतस्स उत्ताण-सेज्जाए अंगुलिआहारेण सत्त दिवसे, रंगंतो सत्त दिवसे, अथिरगमणेण सत्त दिवसे, थिर-गमणेण सत्त दिवसे, कलासु सत्त दिवसे, गुणेषु सत्त दिवसे, अण्णे वि सत्त दिवसे गमिय विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय अप्पणो आउट्टिदिं जीविदूण देवेसु उववण्णस्स एमूणवण्णदिवसेहि अहियणवमासूणतिण्णिपलिदोवमुवलंभा ।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघं ॥ ८२ ॥

कुदो ? ओघादो भेदाभावा । णवरि संजदासंजदाणं सव्वलहुं जोणिणिकखमण-जम्मणुभवद्वस्सेहि ऊणा पुव्वकोडी संजमासंजमकालो वत्तच्चो, तिरिक्खाणं व मणुस्साणं अंतोमुहुत्तकालेण अणुव्वयगहणाभावा ।

पूर्वकोटीका त्रिभाग बिताकर तीन पल्योपमप्रमाण आयुर्कर्मकी स्थितिवाले देवकुरु और उत्तरकुरुओंमें उत्पन्न होकर, अपनी आयुस्थितिको अनुपालन करके देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके तीन पल्योपमोंके ऊपर देशोन पूर्वकोटीका त्रिभाग अधिक पाया जाता है ।

मनुष्यनियोंमें देशोन तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है । वह इस प्रकारसे है—मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक मिथ्यादृष्टि मनुष्य तीन पल्योपमकी आयुवाले भोगभूमियां मनुष्योंमें उत्पन्न होकर और नौ मास गर्भमें रह कर निकलता हुआ उत्तानशय्या पर अंगुष्ठ चूसनेरूप आहारसे सात दिन, रंगते हुए सात दिन, अस्थिर गमनसे सात दिन, स्थिर गमनसे सात दिन, कलाओंमें सात दिन, गुणोंमें सात दिन, तथा अन्य भी सात दिन बिताकर, विशुद्ध होकरके सम्यक्त्वको प्राप्त हो, अपनी आयुस्थिति प्रमाण जीवित रह कर देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके उनंचास दिवसोंसे अधिक नव मासोंसे कम तीन पल्योपम काल पाया जाता है ।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली तक तीनों प्रकारके मनुष्योंका उत्कृष्ट वा जघन्य काल ओघके समान है ॥ ८२ ॥

क्योंकि, ओघवर्णित कालसे इनमें कोई भेद नहीं है । विशेष बात यह है कि संयता-संयतोंके सर्वलघु योनि-निष्क्रमणरूप जन्मसे उत्पन्न हुए जीवके आठ वर्षोंसे कम पूर्वकोटि-प्रमाण संयमासंयमका काल कहना चाहिए, क्योंकि, तिर्यंचोंके समान मनुष्योंके जन्म लेनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालसे ही अणुवर्तोंके ग्रहण करनेका अभाव है ।

१ शेषाणां सामान्योक्तः कालः । स. त्रि. १, ८.

मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ८३ ॥

एइंदियबादर-सुहुम-वि-ति-चउरिंदिय-सण्णि-असण्णिपंचिंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं मणुस-
पज्जत्ताणं वा मणुसअपज्जत्तएसु उववज्जिय खुदाभवग्गहणमेत्ताउट्ठिदिं गमिय पुव्वुत्त-
जीविसुप्पण्णाणं तक्कालवलंभा ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८४ ॥

पुव्वुप्पणमणुसअपज्जत्तएसु गदेसु तक्काले चव अण्णणे जीवे मणुसअपज्जत्ते-
सुप्पादिय उप्पादिय अणुसंधिज्जमाणे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तअणुसंधाण-
वारसलागुवलंभादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ८५ ॥

पुव्वुत्तजीवेहिंतो आगंतूण मणुसअपज्जत्तएसु उववण्णस्स खुदाभवग्गहणमेत्त-
जहण्णाउट्ठिदिकालदंसणादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८६ ॥

लब्धपर्याप्तक मनुष्य कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा
जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक होते हैं ॥ ८३ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रिय, बाक्व और सूक्ष्म, तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंखी
और संखी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तकोंके, अथवा मनुष्यपर्याप्तक जीवोंके, लब्ध-
पर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न होकर क्षुद्रभवग्रहणमात्र आयुस्थितिको बिताकर पूर्वोक्त जीवोंमें
उत्पन्न होनेवाले जीवोंके उक्त काल, अर्थात् क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल पाया जाता है ।

लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग
है ॥ ८४ ॥

क्योंकि, पूर्वोत्पन्न लब्धपर्याप्तक मनुष्योंमें चले जाने पर उसी कालमें ही अन्य अन्य
जीवोंको लब्धपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न करा कराके अनुसंधान करने पर पल्योपमके
असंख्यातवें भागमात्र अनुसंधानवारोंकी शलाकाएं पाई जाती हैं ।

लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण
है ॥ ८५ ॥

क्योंकि, पूर्वोक्त एकेन्द्रियादि जीवोंसे आकर लब्धपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न होने-
वाले जीवके क्षुद्रभवग्रहणमात्र जघन्य आयुस्थितिकाल देखा जाता है ।

उक्त लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट काल अन्तर्गृह्यते है ॥ ८६ ॥

पुव्वुत्तजीवेहिंतो आगंतूण मणुसअपज्जत्तएसु उप्पण्णस्स अंतोमुहुत्तादो उवरिम-
कालवियप्पाणमुक्कस्साउट्टिदिअपज्जत्तस्स वि अणुवलंभा ।

देवगदीए देवेषु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो हंति, णाणा-
जीवं पडुच्च सव्वद्दा' ॥ ८७ ॥

देवमिच्छादिट्ठिविरहिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं' ॥ ८८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा संकिलेसेण मिच्छत्तं गंतूण सव्व-
जहण्णकालमाच्छिय पुव्वुत्तदोगुणद्वानाणमण्णदरं गदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण एकक्तीसं सागरोवमाणि' ॥ ८९ ॥

मणुसमिच्छादिट्ठिस्स दव्वसंजमबलेण एकक्तीससागरोवमाउट्टिदिदेवेषुप्पज्जिय
मिच्छत्तेण सह अप्पणो आउट्टिदिमणुपालिय मणुसेसुववण्णस्स एकक्तीससागरोवमेत्त-
देवमिच्छादिट्ठिकालदंसणादो ।

क्योंकि, पूर्वोक्त जीवोंसे आकर लब्धपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवके अन्त-
र्मुहूर्त काल पाया जाता है, तथा अन्तर्मुहूर्तसे उपरिम कालके विकल्प उत्कृष्ट आयुस्थिति-
वाले लब्धपर्याप्तक जीवके भी नहीं पाये जाते ।

देवगतिमें, देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ८७ ॥

क्योंकि, देवोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे रहित कोई काल नहीं पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८८ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिके, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवके, संक्लेशसे मिथ्यात्वको प्राप्त
होकर, वहां पर सर्व जघन्य काल रह कर पूर्वोक्त दो गुणस्थानोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुए
जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल इकतीस सागरोपम है ॥ ८९ ॥

मिथ्यादृष्टि मनुष्यके द्रव्यसंयमके बलसे इकतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले
देवोंमें उत्पन्न होकर मिथ्यात्वके साथ अपनी आयुस्थितिको अनुपालन करके मनुष्योंमें
उत्पन्न होनेवाले जीवके इकतीस सागरोपमप्रमाण देवोंके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका काल
देखा जाता है ।

१ देवगतौ देवेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोवमाणि । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९० ॥

सव्वपयारेण ओघादो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्दा ॥ ९१ ॥

देवेषु असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९२ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा विसोहिवसेण सम्मत्तं पडिवज्जिय सव्व-
जहणसम्मत्तद्धमच्छिय मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणमण्णदरं गदस्स अंतोमुहुत्तकालदंसणादो ।

उकस्सं तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ९३ ॥

उकस्साउट्ठिदिदेवेषुप्पणसंजदस्स भुंजमाणाउअस्स वादाभावादो अप्पणो उकस्स-
ट्ठिदिं जीविय मणुसेसु उप्पणदेवअसंजदसम्मादिट्ठिस्स तेत्तीसं सागरोवममेत्तकालुवल्लदीए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥९०॥
क्योंकि, सर्व प्रकारसे, अर्थात् एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा, जघन्य और उत्कृष्ट
कालसे ओघप्ररूपणाके साथ कोई भेद नहीं है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल
होते हैं ॥ ९१ ॥

क्योंकि, देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥९२॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवके विशुद्धिके वशसे सम्यक्त्वको
प्राप्त होकर, वहां सर्व जघन्य सम्यक्त्वके कालप्रमाण रह करके, पश्चात् मिथ्यात्व अथवा
सम्यग्मिथ्यात्वमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल देखा
जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल तेत्तीस सागरोपम
है ॥ ९३ ॥

उत्कृष्ट आयुकी स्थितिधारक देवोंमें उत्पन्न हुए संयतके भुज्यमान आयुके घातका
अभाव होनेसे अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जीवित रह कर, मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले
असंयतसम्यग्दृष्टि देवके तेत्तीस सागरोपममात्र काल पाया जाता है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवोपेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

४ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । स. सि. १, ८.

भवणवासियप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छा-
दिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ ९४ ॥

तिण्हं पि कालाणं देवमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदाणमभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९५ ॥

एदस्स अत्थो जघा देवोधम्मि एदेसिं दोण्हं गुणट्टाणाणं जहण्णकालपरूवणा वुत्ता,
तहा भवणवासियप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पो त्ति मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं
जहण्णकालपरूवणा कादव्वा ।

उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं सादिरेयं वे सत्त दस चोइस
सोलस अट्टारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ९६ ॥

एदस्सुदाहरणं— एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छादिट्ठी भवणवासियदेवेसु
उववण्णो । पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागम्महियं सागरोवमं जीविदूण मिच्छत्तेणेव उव-

भवनवासी देवोंसे लेकर शतार सहस्रार कल्पवासी देवों तक मिथ्यादृष्टि और
असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते
हैं ॥ ९४ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंसे विरहित तीनों ही कालोंका
अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका जघन्य-
काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९५ ॥

इस सूत्रका अर्थ, जैसा देवोंके ओझमें इन दोनों गुणस्थानोंकी जघन्य कालपरूपणा
कही है उसी प्रकारसे भवनवासीको आदि लेकर शतार सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि
और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंकी भी जघन्य कालकी परूपणा करना चाहिए ।

उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल साधिक सागरोपम,
साधिक पत्योपम, साधिक दो सागरोपम, साधिक सात सागरोपम, साधिक दश
सागरोपम, साधिक चौदह सागरोपम, साधिक सोलह सागरोपम और साधिक अठारह
सागरोपम है ॥ ९६ ॥

इसका उदाहरण— एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव भवनवासी देवोंमें
कल्पत्रय हुआ । वहां पर पत्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक एक सागरोपम तक जीवित रह कर

द्विदो । एसो मिच्छादिद्विणो बद्धआउअघादं पडुच्च कालो बुत्तो । अथवा, अंतोमुहुत्तूण-
अद्धसागरोवमेण सादिरेगं सागरोवमं जीविदूण उव्वद्विदो । एसो सम्मादिद्विणो बद्ध-
आउअघादं पडुच्च उत्तो । एसो भवणवासियमिच्छादिद्वि-उक्कस्सकालो । एक्को विरा-
हियसंजदो वेमाणियदेवेसु आउअं बंधिदूण तमोवड्डणाघादेण घादिय भवणवासियदेवेसु
उववणो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मत्तं
पडिवणो । अंतोमुहुत्तूणसागरोवमद्वेण अहियं सागरोवमं तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणयं
सम्मत्तेण सह जीविदूण उव्वद्विय मणुसो जादो । एसो भवणवासियअसंजदसम्माद्विदिसस
उक्कस्सकालो । वाणवेंतर-जोदिसियाणं पि एवं चेव वत्तव्वं । णवरि अंतोमुहुत्तूणपलिदो-
वमद्वेण अहियं पलिदोवमं मिच्छत्तुक्कस्सकालो होदि । एसो चेव कालो तीहि अंतो-
मुहुत्तेहि ऊणओ असंजदसम्मादिद्विस्स उक्कस्सकालो होदि । सोधम्मीसाणे मिच्छा-
दिद्विस्स उक्कस्सकालो वे सागरोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण अब्भहियाणि ।
एसो मिच्छादिद्विणो बद्धाउअस्स घादं पडुच्च कालो बुत्तो । सम्मादिद्विणो बद्धदेवाउअघादं
पडुच्च अंतोमुहुत्तूणअद्धसागरोवमेण अब्भहियाणि वे सागरोवमाणि मिच्छत्तुक्कस्सकालो

मिथ्यात्वके साथ ही पर्यायसे च्युत हुआ । यह मिथ्यादृष्टि जीवका बद्ध आयुष्कघातकी अपेक्षा
काल कहा । अथवा अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक एक सागरोपम तक जीवित
रह कर पर्यायसे च्युत हुआ । यह सम्यग्दृष्टि जीवका बद्धायुष्कघातकी अपेक्षा काल कहा । इस
प्रकार यह भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल है । विराधना की है संयमकी जिसने
पेसा कोई संयत मनुष्य वैमानिक देवोंमें आयुको बांध करके उसे उद्धर्तनाघातसे घात करके
भवनवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ । और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होता हुआ (१), विभ्रान्त
हो (२), विशुद्ध होकर (३), सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरो-
पमसे अधिक तथा तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम एक सागरोपम काल सम्यक्त्वके साथ जीवित
रह कर पर्यायसे च्युत हो मनुष्य हुआ । यह भवनवासी असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल है ।
वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंका भी इसी प्रकारसे काल कहना चाहिये । विशेषता यह
है कि एक अन्तर्मुहूर्तसे कम आधे पत्योपमसे अधिक एक पत्योपम व्यन्तर और ज्योतिष्क
देवोंमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल होता है । यह उपर्युक्त काल ही तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम करने
पर असंयतसम्यग्दृष्टि व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंका उत्कृष्ट काल हो जाता है । सौधर्म और
ईशानकरूपमें मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यतवें भागसे अधिक दो
सागरोपम है । यह मिथ्यादृष्टिके बद्धायुके घातकी अपेक्षा काल कहा । सम्यग्दृष्टि जीवके
बद्धदेवायुके घातकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक दो सागरोपम
मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल होता है ।

१ उवहिदलं पडुद्धं भवणे वितरदुगे कमेणहियं । सम्मे मिच्छे घादे पहाइखं तु सव्वत्थ ॥ त्रि. सा. ५४१*

होदि । ' वे सत्त दस' चोद्दस सोलसद्वारस य वीस वावीसा' एदीए गाहाए सह एदस्स सुत्तस्स किण्ण विरोहो होदि ? ण होदि विरोहो, भिण्णविसयत्तादो । तं जहा— वुत्तं सुत्तं वंधप्पडिबद्धं, कालसुत्तं पुण संतमपेक्खिय द्दिमिदि' । सणक्कुमार-माहिंदे सत्त सागरोवमाणि सादिरेयाणि । बम्ह-बम्हुत्तरकप्पे दस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । लंतव-काविट्ठकप्पे चोद्दस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । सुक्क-महासुक्केसु सोलस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । सदर-सहस्सारकप्पेसु अद्वारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । जथा दोहि पयरेहि सोधम्मीसाणे सादिरेयत्तं परूविदं, तथा एत्थ वि वत्तव्वं । सोधम्मादि जाव सहस्सारो त्ति असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो वे सत्त दस चोद्दस सोलस अद्वारस सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तणअद्वसागरोवमेण सादिरेयाणि होति', एदस्स हेट्ठदो सम्मादिट्ठिस्सुववादाभावा ।

शंका—' सौधर्म-ईशानकल्पसे लगाकर आरण अच्युत कल्प तक क्रमशः ' दो, सात, दश, चौदह, सोलह, अठारह, बीस और बाईस सागरोपमकी स्थिति होती है ' इस गाथाके साथ, इस उक्त सूत्रका विरोध क्यों नहीं होगा ?

समाधान—विरोध नहीं होगा, क्योंकि, सूत्र और गाथा, इन दोनोंका विषय भिन्न भिन्न है । वह इस प्रकारसे है कि उक्त गाथासूत्र तो बंधकी अपेक्षा है, किन्तु कालसूत्र विद्यमान आयुकी अपेक्षा स्थित है ।

सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पमें कुछ अधिक सात सागरोपम, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पमें साधिक दश सागरोपम, लान्तव-कापिष्ठ कल्पमें साधिक चौदह सागरोपम, शुक्क-महाशुक्क कल्पमें साधिक सोलह सागरोपम, और शतार-सहस्रार कल्पमें साधिक अठारह सागरोपम मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट काल है । जिस तरह दोनों प्रकारोंसे सौधर्म और ईशान कल्पमें आयुकी साधिकता प्ररूपण की है, उसी प्रकार यहां पर भी कहना चाहिए । सौधर्म कल्पको आवे लेकर सहस्रार कल्प तक असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः एक अन्त-सुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक दो सागरोपम, सात सागरोपम, दश सागरोपम, चौदह सागरोपम, सोलह सागरोपम और अठारह सागरोपम प्रमाण होता है, क्योंकि, इस कालके नीचे सम्यग्दृष्टि जीवके उपपादका अभाव है ।

१ प्रतिषु ' दस ' इति पाठो नास्ति ।

२ पदमे विदिए जुगले बम्हादिसु चउसु आणददुग्गमि । आरणदुगे सुदंसणपहुदिसु एकारेसु कमे ॥
दुग सत्त दसं चउदस सोलस अद्वारस वीस वावीसा । ततो एक्केकहुदा उक्कस्ताज समुदववमाणा ॥
ति. प. ८, ४५८-४५९.

३ बद्धाउं पडि भणिदं उक्कसं मज्झिमं जहण्णाणि । घादाउवमासेज्जं अण्णसरूवं परूवेमो ॥ ति. प. ८, ४९१.

४ सम्मे घादेऊणं सायरदलमहियमासहस्सारा । जलहिदलमुहुवराज पडलं पडि जाण हाणिचयं । ति. सा. ५३३.

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९७ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, बहुसो परूविदत्तादो ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी असंजद-
सम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सब्बद्धा ॥९८॥

कुदो ? एदेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९९ ॥

विशेषार्थ—यहां पर जो ब्रह्म-आयुघातकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देवोंके दो प्रकारके कालकी प्ररूपणा की है, उसका अभिप्राय यह है कि किसी मनुष्यने अपनी संयम-अवस्थामें देवायुका बंध किया। पीछे उसने संक्लेश परिमाणोंके निमित्तसे संयमकी विराधना कर दी और इसीलिए अपवर्तनाघातके द्वारा आयुका घात भी कर दिया। संयमकी विराधना कर देने पर भी यदि वह सम्यग्दृष्टि है, तो मर कर जिस कल्पमें उत्पन्न होगा, वहांकी साधारणतः निश्चित आयुसे अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध सागरोपमप्रमाण अधिक आयुका धारक होगा। कल्पना कीजिए—किसी मनुष्यने संयत अवस्थामें अच्युतकल्पमें संभव बाईस सागरप्रमाण आयुका बंध किया। पीछे संयमकी विराधना और बांधी हुई आयुकी अपवर्तना कर असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। पीछे मरण कर यदि सहस्रारकल्पमें उत्पन्न हुआ, तो वहांकी साधारण आयु जो अठारह सागरकी है, उससे घातायुष्क सम्यग्दृष्टि देवकी आयु अन्तर्मुहूर्त कम आधा सागर अधिक होगी। यदि वही पुरुष संयमकी विराधनाके साथ ही सम्यक्त्वकी भी विराधना कर मिथ्यादृष्टि हो जाता है और पीछे मरण कर उसी सहस्रारकल्पमें उत्पन्न होता है, तो उसकी आयु वहां की निश्चित अठारह सागरकी आयुसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक होगी। ऐसे जीवको घातायुष्क मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

भवनवासीसे लेकर सहस्रारकल्प तकके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-
दृष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥ ९७ ॥

आनत-प्राणतकल्पसे लेकर नव त्रैवेयक विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और
असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते
हैं ॥ ९८ ॥

क्योंकि, इन कल्पोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित कालका
अभाव है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ ९९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, बहुसो परुविदत्तादो ।

उक्कस्सेण वीसं वावीसं तेवीसं चउवीसं पणवीसं छव्वीसं सत्ता-
वीसं अट्ठावीसं एग्गणतीसं तीसं एकत्तीसं सागरोवमाणि ॥ १०० ॥

एदेसु एक्कारससु उक्कस्साउअं बंधिय अप्पप्पणो देवेसुप्पज्जिय आउट्ठिदिमणु-
पालिय मणुसेसुप्पणामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमप्पप्पणो वुत्तुक्कस्सकालुवलंभा ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १०१ ॥

ओघादो णाणेगजीवं पडुच्च भेदाभावा ।

अणुहिस-अणुत्तरविजय-वइजयंत-जयंत-अवराजिदविमाणवासिय-
देवेसु असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्दा ॥ १०२ ॥

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदतेरसणं विमाणं सव्वकालमणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एकत्तीसं, वत्तीसं सागरोवमाणि सादि-
रयाणि ॥ १०३ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, बहुतवार पहले प्ररूपण किया जा चुका है ।

उक्त कल्पवासी देवोंका उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे बीस, बाईस, तेईस, चौबीस,
पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस सागरोपम है ॥१००॥

इन सूत्रोक्त आरण-अच्युतादि ग्यारह कल्पोंमें उत्कृष्ट आयुको बांधकर और देवोंमें
उत्पन्न होकर, अपनी अपनी आयुस्थितिको परिपालन करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले
मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अपने अपने कल्पका कहा गया उत्कृष्ट काल
पाया जाता है ।

उक्त ग्यारह कल्पोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल
ओघके समान है ॥ १०१ ॥

क्योंकि, ओघसे नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा इनके कालमें कोई भेद नहीं है ।

अनुदिश विमानवासी देवोंमें तथा अनुत्तरनामक विजय, वैजयन्त, जयन्त और
अपराजित विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १०२ ॥

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित उक्त तेरह विमान किसी भी कालमें
नहीं पाये जाते हैं ।

नौ अनुदिश विमानोंमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल सातिरेक इकतीस
सागरोपम और चार अनुत्तर विमानोंमें साधिक बत्तीस सागरोपम है ॥ १०३ ॥

कुदो ? गुणंतरं संकंतीए अभावादो । एत्थ सादिरियपमाणमेगो समओ, हेड्डिल्लु-
क्कस्सट्ठिदी समयाहिया उवरिल्लणं जहण्णट्ठिदी होदि त्ति आइरियपरंपरागदुवदेसादो ।

उक्कस्सेण वत्तीस, तेत्तीस सागरोवमाणि ॥ १०४ ॥

णवसु हेड्डिमेसु अणुदिसविमाणेसु वत्तीसं सागरोवमाणि । चट्टुसु अणुत्तरविमाणेसु
तेत्तीसं सागरोवमाणि संपुण्णाणि, सुत्ते हि ऊणाहियवयणाभावा ।

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेषु असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं
कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १०५ ॥

तिसु वि कालेसु तत्थ असंजदसम्मादिट्ठिविरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ १०६ ॥

पुध सुत्तारंभादो चेव णव्वदे सव्वट्ठसिद्धिं जहण्णक्कस्सट्ठिदी सरिसा त्ति ।
पुणो जहण्णक्कस्सगहणं किमट्ठं कीरदे ? ण तस्स मंदबुद्धिजणानुंगहट्ठत्तादो ।

एवं गदिमग्गणा समात्ता ।

क्योंकि, इन विमानोंमें अन्य गुणस्थानके संक्रमणका अभाव है। यहां पर सातिरेक
(साधिक) का प्रमाण एक समय है, क्योंकि, एक समय अधिक नीचेके विमानकी उत्कृष्ट
स्थिति ही ऊपरके विमानकी जघन्य स्थिति होती है, ऐसा आचार्य-परम्परागत उपदेशसे
जाना जाता है।

उक्त विमानोंमें उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे बत्तीस सागरोपम और तेत्तीस
सागरोपम है ॥ १०४ ॥

अवस्तन नौ अनुदिश विमानोंमें पूरे बत्तीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट काल है। चारों
अनुत्तरविमानोंमें पूरे तेत्तीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट काल है, क्योंकि, सूत्रमें हीन और
अधिकताके प्रतिपादक वचनका अभाव है।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते
हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १०५ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें वहां, अर्थात् सर्वार्थसिद्धिमें, असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंके
थिरहका अभाव है।

सर्वार्थसिद्धिमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्ट काल तेत्तीस सागरोपम
है ॥ १०६ ॥

शंका — पृथक् सूत्रके आरम्भसे ही जाना जाता है कि सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य और
उत्कृष्ट स्थिति सदृश है। फिर भी सूत्रमें जघन्य और उत्कृष्ट पदका ग्रहण किस लिए किया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, उस पदका ग्रहण मन्दबुद्धि जनोंके अनुग्रहके लिए
किया गया है।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

१ अ-कप्रश्नोः 'मंदबुद्धिजहण्णाणु-' इति पाठः ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया केवचिरं कालदो होंति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा' ॥ १०७ ॥

तिसु वि कालेसु एइंदियाणं विरहाभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं' ॥ १०८ ॥

अणेइंदियस्स एइंदिएसुप्पज्जिय सच्चजहण्णमेइंदियद्धमच्छिय अणेइंदिए उप्पण्णस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तएइंदियकालवलंभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं' ॥ १०९ ॥

अणेइंदिओ एइंदिएसुप्पज्जिय अदिवहुअं कालं जदि अच्छदि तो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि चेव पोग्गलपरियट्टाणि अच्छदि । कुदो ? एदम्हादो उचरि अच्छणसत्तीए अभावा ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १०७ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें एकेन्द्रिय जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १०८ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रियसे रहित अन्य द्वीन्द्रियादिक जीवका एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर, सर्वजघन्य एकेन्द्रिय जीवकी आयुके कालप्रमाण रह करके, पुनः एकेन्द्रियोंसे भिन्न अन्य द्वीन्द्रियादि जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण एकेन्द्रिय जीवका काल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ १०९ ॥

एकेन्द्रियोंसे भिन्न अन्य कोई जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर यदि अत्यधिक काल रहता है, तो आवलीके असंख्यातवै भागमात्र ही पुद्गलपरिवर्तन रहता है, क्योंकि, इस उक्त कालसे ऊपर एकेन्द्रियोंमें रहनेकी शक्तिका अभाव है ।

१ इन्द्रियाणुवादेन एकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ६.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

बादरएहंदिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ ११० ॥

बादरेहंदियविरहिदकालाभावादो । किमडुं तेसिं णत्थि विरहो ? सहावदो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १११ ॥

अणेहंदियस्स सुहुमेहंदियस्स वा बादरेहंदिएसु सव्वजहण्णाउवएसुप्पज्जिय अण्णि-
दियं गदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तबादरेहंदियभवद्धिदीए उवलंभा ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ
ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ११२ ॥

अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो अण्यवियप्पो त्ति कडु पदरावलियादिहेट्ठिमविय-
प्पाणं पडिसेहं कादूण उवरिमवियप्पगहणडुं असंखेज्जासंखेज्जाणि त्ति णिदेसो कदो ।
पदर-पल्लादिउवरिमवियप्पपडिसेहडुं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणिणिदेसो कदो । अणेहंदिओ सुहुमे-
हंदिओ वा बादरेहंदिएसु उप्पज्जिय तत्थ जदि सुडु महल्लं कालमच्छदि तो असंखेज्जा-

बादर एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल
होते हैं ॥ ११० ॥

क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

शंका—उनका विरह क्यों नहीं होता है ?

समाधान—क्योंकि, ऐसा स्वभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण
है ॥ १११ ॥

क्योंकि, किसी अन्य द्वीन्द्रियादि जीवका, अथवा सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवका सर्व
जघन्य आयुवाले बादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर पुनः अन्य द्वीन्द्रियादिमें उत्पन्न हुए जीवके
क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण बादर एकेन्द्रिय जीवोंकी भवस्थिति पाई जाती है ।

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवै
भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी प्रमाण है ॥ ११२ ॥

अंगुलका असंख्यातवां भाग अनेक विकल्परूप है, इसलिये प्रतरावली आदि
अधस्तन विकल्पोंका प्रतिषेध करके उपरिम विकल्पोंके ग्रहण करनेके लिए सूत्रमें 'असं-
ख्यातासंख्यात' ऐसा निर्देश किया । प्रतर, पश्य आदि उपरिम 'विकल्पोंके प्रतिषेध करनेके
लिए अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी' इस पदका निर्देश किया है । अन्य द्वीन्द्रियादि अथवा
सूक्ष्म एकेन्द्रिय कोई जीव बादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर, वहां पर यदि अति दीर्घकाल

१ प्रतिशु 'पदरावलियाओ' इति पाठः ।

संखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ अच्छदि । पुणो णिच्छएण अण्णत्थ गच्छदि त्ति जं
बुत्तं होदि । कम्मट्ठिदिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे बादरट्ठिदी जादा त्ति परि-
यम्मवयणेण सह एदं सुत्तं विरुज्झदि त्ति णेदस्स ओक्खत्तं, सुत्ताणुसारि परियम्मवयणं
ण होदि त्ति तस्सेव ओक्खत्तप्पसंगा ।

बादरेइंदियपज्जता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ ११३ ॥

कुदो ? बादरेइंदियपज्जत्ताणं तिसु वि कालेसु विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११४ ॥

खुद्दाभवग्गहणं संखेज्जावलियमेत्तं, एगं मुहुत्तं छासट्ठिसहस्स-तिसद-छत्तीसरूव-
मेत्तखंडाणि कादूण एगखंडमेत्तत्तादो । एदं पि कधं णव्वदे ?

तिणिण सया छत्तीसा छावट्ठि सहस्स चैव मरणाइं ।

अंतोमुहुत्तकाले तावदिया होति खुद्दमवा' ॥ ३५ ॥

तक रहता है, तो असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी तक रहता है। पुनः निश्चयसे
अन्यत्र चला जाता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

शंका—' कर्मस्थितिको आवलीके असंख्यातवै भागसे गुणा करने पर बादर स्थिति
होती है ' इस प्रकारके परिकर्म-वचनके साथ यह सूत्र विरोधको प्राप्त होता है ?

समाधान—परिकर्मके साथ विरोध होनेसे इस सूत्रके अवक्षिप्तता (विरुद्धता)
नहीं प्राप्त होती है; किन्तु परिकर्मका उक्त वचन सूत्रका अनुसरण करनेवाला नहीं है,
इसलिए उसके ही अवक्षिप्तताका प्रसंग आता है ।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा
सर्वकाल होते हैं ॥ ११३ ॥

क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंका तीनों ही कालोंमें विरह नहीं होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ ११४ ॥

क्षुद्रभवग्रहणका काल संख्यात आवलीप्रमाण होता है, क्योंकि, एक मुहूर्तके छयासठ
हजार तीन सौ छत्तीस रूपप्रमाण खंड करने पर एक खंडप्रमाण क्षुद्रभवका काल होता है ।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—एक अन्तर्मुहूर्त कालमें छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस मरण होते
हैं, और इतने ही क्षुद्रभव होते हैं ॥ ३५ ॥

१ छत्तीसं तिणिण सया छावट्ठिसहस्सवारमरणाणि । अंतोमुहुत्तमज्जे पत्तोसि णिगोषवासम्भि ॥ भावपा. ३८.

त्ति गाहासुत्तादो । मुहुत्तस्स एवदियभागो संखेज्जावलियमेत्तो त्ति कथं णव्वदे ?

आवलिय अणागारे चक्खिदिय-सोद-घाण-जिह्वाए ।

मण-त्रयण-कायफासे अवाय-ईहासुदुस्सासे ॥ ३६ ॥

केवलदंसण-णाणे कसायसुक्केक्कए पुधत्ते य ।

पडिवादुवसामेंतय खवेत्तए संपराए य ॥ ३७ ॥

माणद्धा कोधद्धा मायद्धा तह चैव लोभद्धा ।

खुदभवग्गहणं पुण किट्ठीकरणं च बोद्धव्वं ॥ ३८ ॥

इस गाथासूत्रसे जाना जाता है कि क्षुद्रभवका काल अन्तर्मुहूर्तका छयासठ हजार तीन सौ छत्तीसवां भाग है ।

शंका—मुहूर्तका छयासठ हजार तीन सौ छत्तीसवां भाग संख्यात आवलीप्रमाण होता है, यह कैसे जाना ?

समाधान—अनाकार दर्शनोपयोगका जघन्य काल आगे कहे जानेवाले सभी पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । (तथापि वह संख्यात आवलीप्रमाण है ।) इससे चक्षुरिन्द्रियसम्बन्धी अवग्रहज्ञानका जघन्य काल विशेष अधिक है । इससे, श्रोत्रेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे घ्राणेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे जिह्वेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे मनोयोग, इससे वचनयोग, इससे काययोग, इससे स्पर्शनेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे अवायज्ञान, इससे ईहाज्ञान, इससे श्रुतज्ञान और इससे उच्छ्वास, इन सबका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है ॥ ३६ ॥

तद्भवस्थ केवलीके केवलज्ञान और केवलदर्शन, तथा सकषाय जीवके शुक्लेश्या, इन तीनोंका जघन्य काल (परस्पर सदृश होते हुए भी) उच्छ्वासके जघन्य कालसे विशेष अधिक है । इससे एकत्ववितर्कअवीचारशुक्लध्यान, इससे पृथक्त्ववितर्कवीचारशुक्लध्यान, इससे उपशमश्रेणीले गिरनेवाले सूक्ष्मसाम्परायसंयत, इससे उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले सूक्ष्मसाम्परायसंयत, और इससे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले सूक्ष्मसाम्परायसंयत, इन सबका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है ॥ ३७ ॥

क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके जघन्य कालसे मानकषाय, इससे क्रोधकषाय, इससे मायाकषाय, इससे लोभकषाय और इससे लब्ध्यपर्याप्त जीवके क्षुद्रभवग्रहणका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है । क्षुद्रभवग्रहणके जघन्य कालसे कृष्टीकरणका जघन्य काल विशेष अधिक है, ऐसा जानना चाहिए ॥ ३८ ॥

१ कसायपाहुडे अद्धापरिमाणाधिकारे १-३.

इदि माहासुत्तादो । अंतोमुहुत्तं पि संखेज्जावलयमेत्तं चेव, तदो एदेसिं दोण्हं विसेसो णत्थि त्ति अंतोमुहुत्तवयणं सुत्तत्थं सन्देहमुप्पादेदि त्ति' युत्ते णत्थि सन्देहो, खुदाभवग्गहणमभणिय अंतोमुहुत्तमिदि भणिदजिणाणादो ताणं विसेसो अत्थि त्ति अव-
गम्मदे । घादखुदाभवग्गहणादो बादरेइंदियपज्जत्तजहण्णाउअं' संखेज्जगुणमिदि भणिद-
वेअणकालविधानअप्पाबहुगादो य । बादरेइंदियपज्जत्तवदिरित्तो सव्वजहण्णाउअवादरे-
इंदियपज्जत्तएसु उप्पज्जिय अण्णत्थ गदे बादरेइंदियपज्जत्तस्स जहण्णकालो लब्भदि त्ति
भणिदं होदि ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ ११५ ॥

पुढविकाइएसु वाव्वास वाससहस्साणि उक्कस्साउअं सुप्पसिद्धमत्थि । बादरेइंदिय-
पज्जत्तभवट्ठिदी असंखेज्जवासमेत्ता किण्ण होदि त्ति युत्ते ण होदि, तत्थासंखेज्जवार-

इन गाथासूत्रोंसे जाना जाता है कि श्रुद्रभवका काल भी संख्यात आवलीप्रमाण होता है ।

शंका—अन्तर्मुहूर्त भी तो संख्यात आवलीप्रमाण ही होता है, इसलिए अन्तर्मुहूर्त और श्रुद्रभवग्रहण काल इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है । अतएव यह अन्तर्मुहूर्तका वचनरूप सूत्रार्थ सन्देहको उत्पन्न करता है ?

समाधान— इसमें कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि, सूत्रमें 'श्रुद्रभवग्रहण' ऐसा पाठ न करके 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा वचन कहनेवाली जिन-आज्ञासे उन दोनोंमें भेद जाना जाता है । तथा, 'घातश्रुद्रभवग्रहणकालसे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवकी जघन्य आयु संख्यातगुणी है' इस प्रकारके कहे गये वेदनाकालविधानसम्बन्धी अल्पबहुत्वद्वारसे भी जाना जाता है ।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकसे व्यतिरिक्त किसी जीवके सर्व जघन्य आयुवाले बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, पुनः अन्य पर्यायमें चले जाने पर, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य काल पाया जाता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है ॥ ११५ ॥

पृथिवीकायिक जीवोंमें बाईस हजार वर्षकी उत्कृष्ट आयु सुप्रसिद्ध है ।

शंका—बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी भवस्थिति असंख्यात वर्षप्रमाण क्यों नहीं होती है ?

समाधान— नहीं होती है, क्योंकि, उनमें असंख्यातवार एक जीवकी उत्पात्ति

१ प्रतिषु 'मुप्पादेत्ति' इति पाठः ।

२ प्रतिषु 'जहण्णाउअ-' इति पाठः ।

३ प्रतिषु 'सुत्तसिद्ध-' इति पाठः ।

मेगजीवस्स उप्पत्तीए असंभवा । उक्कस्ससंखेज्जमेत्तं तस्स संखेज्जभागमेत्तं वा वारं
जदि उप्पज्जदि तो वि असंखेज्जाणि वस्साणि होंति त्ति बुत्ते ण होंति, संखेज्जाणि
वाससहस्साणि त्ति सुत्तण्णहाणुववत्तीदो तप्पाओग्गसंखेज्जवारुप्पत्तिसिद्धीए । अणप्पिदो
बादरेइंदियपज्जत्तएसु संखेज्जाणि वाससहस्साणि उक्कस्सेण तत्थ परिभमिय पुणो अण-
प्पिदेसु णिच्छएण उप्पज्जदि त्ति भणिदं होदि ।

बादरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ ११६ ॥

कुदो ? एदेसिं सव्वद्धासु विरहाभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ११७ ॥

कुदो ? अपज्जत्तएसु जहण्णियाए आउट्ठिदीए तत्तियमेत्ताए उवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११८ ॥

कुदो ? अणप्पिदिदिओ बादरेइंदियअपज्जत्तएसु उप्पज्जिय जदि वि संखेज्ज-

असंभव है ।

शंका— यदि कोई जीव बादर एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण वार, अथवा उसके
संख्यातवें भागप्रमाण वार उत्पन्न होता है, तो भी असंख्यात वर्ष तो हो ही जाते हैं ?

समाधान— नहीं होते हैं, क्योंकि, यदि ऐसा न माना जाय, तो बादर एकेन्द्रिय
जीवोंका उत्कृष्ट काल 'संख्यात हजार वर्षप्रमाण है' यह सूत्र-वचन नहीं बन सकता है ।
इसलिए तत्प्रायोग्य संख्यातवार ही बादर एकेन्द्रियोंकी उत्पत्ति सिद्ध होती है ।

अविवक्षित कोई जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर संख्यातसहस्र
वर्षप्रमाण अधिकसे अधिक काल तक उनमें परिभ्रमण करके पुनः अविवक्षित जीवोंमें
निश्चयसे उत्पन्न होता है, यह अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ११६ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें इन जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ११७ ॥

क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें जघन्य आयुकी स्थिति उतनेमात्र अर्थात् क्षुद्रभव-
ग्रहणप्रमाण ही पाई जाती है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११८ ॥

क्योंकि, अविवक्षित इन्द्रियवाला कोई जीव बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंमें

१ प्रतिषु 'तत्तियमेसा' इति पाठः ।

सहस्सवारं तत्थेव तत्थेव उप्पज्जदि, तो वि तेसु सव्वेसु अंतोमुहुत्तेसु एगद्ध कदेसु वि एगमुहुत्तपमाणाभावा ।

सुहुमएइंदिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ११९ ॥

कुदो ? सव्वद्धा सुहुमेइंदियविरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ १२० ॥

अणप्पिदिंदियस्स सुहुमेइंदियअपञ्जत्तएसु सव्वजहण्णकालमच्छिय अणप्पिदिंदियं गदस्स खुदाभवग्गहणुवलंभा ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १२१ ॥

तं जहा- अणिदिण्हितो आगंतूण सुहुमेइंदिएसुप्पज्जिय असंखेज्जलोगमेत्तं तेसि- मुक्कस्सभवट्ठिदिं तत्थ गामिय अणिण्णदियं गच्छदि । कुदो ? हेउसरूवजिणवयणोवलंभादो ।

सुहुमेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १२२ ॥

उत्पन्न होकर यद्यपि संख्यात सहस्रवार उन उनमें ही उत्पन्न होता है, तथापि उन सभी अन्तर्मुहूर्तोंके एकत्रित करने पर भी एक मुहूर्तप्रमाणका अभाव है, अर्थात् फिर भी पूरा एक मुहूर्त नहीं होता है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ११९ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥१२०॥

क्योंकि, अविवक्षित इन्द्रियवाले जीवके सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकोंमें सर्व जघन्य काल रह करके अविवक्षित इन्द्रियवाले जीवोंमें गये हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य काल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकके जितने प्रदेश हैं, तत्प्रमाण है ॥ १२१ ॥

जैसे, अविवक्षित अन्य इन्द्रियवाले जीवोंसे आकर, सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर कोई जीव असंख्यात लोकप्रमाण उनकी उत्कृष्ट भवस्थितिकी चर्चा पर विताकर अन्य इन्द्रियवाले जीवोंमें चला जाता है, क्योंकि, इस प्रकारके हेतुस्वरूप जिन-वचन पाये जाते हैं ।

सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १२२ ॥

सव्वद्वासु विरहाभावा । सो वि कधं णव्वदे ? अण्णहाणुववत्तिहेउलक्खणोव-
लक्खियजिणवयणादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२३ ॥

केम्महंतं ? तेसिं जहण्णाउट्ठिदिमेत्तं । एत्थ खुद्दाभवग्गहणं किण्ण लब्भदे ? ण,
अपज्जत्ते मोत्तूण अण्णत्थ तस्स संभवाभावा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२४ ॥

एगाउट्ठिदी संखेज्जावलियमेत्ता त्ति कट्टु संखेज्जवारं वा तत्थेव पुणो पुणो
उपपज्जमाणस्स दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छरादिकालो किण्ण लब्भदे ? ण, तेत्तिय-
वारं तत्थुप्पत्तीए असंभवा । सो वि कधं णव्वदे ? अंतोमुहुत्तवयणण्णहाणुववत्तीदो । कधं

क्योंकि, सभी कालोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके विरहका अभाव है ।

शंका — यह भी कैसे जाना ?

समाधान — अन्यथानुपपत्तिस्वरूप हेतुके लक्षणसे उपलक्षित जिन-वचनसे जाना
जाता है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव सर्वदा रहते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२३ ॥

शंका — यह अन्तर्मुहूर्त काल कितना बड़ा लेना चाहिए ?

समाधान — उनकी, अर्थात् सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी जघन्य आयुके
कालप्रमाण लेना चाहिए ।

शंका — इस सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' के स्थानपर 'क्षुद्रभवग्रहण' इस पदका उपादान
क्यों नहीं किया गया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, लब्धपर्याप्तक जीवोंको छोड़कर अन्यत्र उसका, अर्थात्
क्षुद्रभवका होना संभव नहीं है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२४ ॥

शंका — जब कि एक आयुकर्मकी स्थिति संख्यात आवलीप्रमाण है, तब संख्यात-
वार वहां पर ही पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाले जीवके दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, अथवा
संवत्सर आदि प्रमाण स्थितिकाल क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, उतने वार उस पर्यायमें उत्पत्ति होना असंभव है,
जितने वारमें कि मास, वर्ष आदि प्रमाण स्थितिकाल पाया जा सके ।

शंका — यह भी कैसे जाना ?

समाधान — अन्यथा, सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा वचन नहीं हो सकता था, इस
अन्यथानुपपत्तिसे जाना ।

सज्ज-साहणाणमेयत्तं ? ण, पमाणेणाणेर्यता । किंतु एगजीवजहण्णआउट्टिदिकालादो तस्सेवुक्कस्सभवट्टिदिकालो संखेज्जगुणो, णाणाआउट्टिदिसमूहणिप्फणत्तादो ।

सुहमेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १२५ ॥

सुगममेदं सुत्तं, बहुसो परूविदत्तादो । कधमेग-बहुवयणाणमेगमहियरणं ? ण एस दोसो, सव्वत्थ दोण्हमण्णोण्णाविणाभावुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १२६ ॥

असंजदसम्मादिट्ठीणमवहारकालो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो वि होंतो अंतोमुहुत्तमिदि सुत्ते णिदिट्ठो । एसो अपज्जत्ताउट्टिदी जहण्णिया संखेज्जावलियमेत्ता अंतोमुहुत्तमिदि सुत्ते किण्ण वुत्ता ? ण एस दोसो, पज्जत्ताउआदो अपज्जत्तजहण्णाउअं संखेज्जगुणहीणमिदि पदुप्पायणट्ठं खुद्दाभवग्गहणस्सुवदेसा ।

शंका—साध्य और साधन, इन दोनोंके एकत्व कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उक्त कथनमें प्रमाणसे अनेकान्त है, अर्थात्, प्रमाण स्वयं साध्य होते हुए भी अन्यका साधक होता है ।

किन्तु यथार्थ बात यह है कि एक जीवकी जघन्य आयुस्थितिके कालसे उसीकी अरुष्ट भवस्थितिका काल संख्यातगुणा होता है, क्योंकि, वह नाना आयुस्थितियोंके समूहसे निष्पन्न होता है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १२५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, पहले बहुतवार प्ररूपण किया गया है ।

शंका—एकवचन और बहुवचन, इन दोनोंका एक अधिकरण कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सर्वत्र ही एकवचन और बहुवचन, इन दोनोंका अधिनाभावसम्बन्ध पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १२६ ॥

शंका—असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अवहारकाल आवलीके असंख्यातवें भागमात्र होता हुआ भी 'अन्तर्मुहूर्त है' ऐसा सूत्रमें निर्देश किया गया है । फिर यह लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंकी जघन्य आयुस्थिति संख्यात आवलीप्रमाण होते हुए भी 'अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है' ऐसा सूत्रमें क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, पर्याप्तक जीवोंकी (जघन्य) आयुसे लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंकी जघन्य आयु संख्यातगुणी हीन होती है, यह बतलानेके लिए सूत्रमें क्षुद्रभवग्रहणका उपदेश दिया गया है ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२७ ॥

सुगममेदं सुत्तं, बहुसो परुविदत्तादो ।

बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-
पज्जता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १२८ ॥

उवदेसेण विणा जाणिज्जदि त्ति सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, अंतोमुहुत्तं ॥ १२९ ॥

‘जहा उद्देसो तथा णिद्देसो’ त्ति णायादो वि-ति-चउरिंदियाणं जहण्णकालो
खुद्दाभवग्गहणं, तत्थ अपज्जत्ताणं संभवा । पज्जत्ताणं अंतोमुहुत्तं, तत्थ खुद्दाभवग्गहणस्स
संभवाभावा ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ १३० ॥

तीइंदियाणमेगुणवण्णादिवसा उक्कस्साउट्ठिदिपमाणं, चउरिंदियाणं छम्मासा, बीइंदि-

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२७ ॥

पहले बहुतवार प्ररूपण किये जानेसे यह सूत्र सुगम है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा द्वीन्द्रियपर्याप्तक, त्रीन्द्रियपर्याप्तक
और चतुरिन्द्रियपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व-
काल होते हैं ॥ १२८ ॥

उपदेशके बिना ही जाना जाता है कि यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्रमशः क्षुद्रभवग्रहण और
अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥ १२९ ॥

‘जैसा उद्देश होता है, वैसा ही निर्देश होता है’ इस न्यायसे सामान्य द्वीन्द्रिय,
त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है, क्योंकि, उनमें
लभ्यपर्याप्तक जीवोंकी संभावना है । किन्तु पर्याप्तक जीवोंका काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि,
उनमें क्षुद्रभवग्रहणकी संभावना नहीं है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है ॥ १३० ॥

त्रीन्द्रिय जीवोंकी उमंचाल दिवस उत्कृष्ट आयुस्थितिका प्रमाण है, चतुरिन्द्रिय

१ विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण संख्येयानि वर्षसहस्राणि । स. सि. १, ८.

याणं वारस वासा । जदो एवं, तदो संखेज्जाणि वाससहस्साणि त्ति ण घडदे ? ण एस दोसो, एदाओ एगाउट्टिदीओ । एदाहि ण एत्थ कज्जमत्थि, भवट्टिदीए अहियारादो । का भवट्टिदी णाम ? आउट्टिदिसमूहो । जदि एवं, तो असंखेज्जाणि वाससहस्साणि भवट्टिदी किण्ण होदि ? ण एस दोसो, असंखेज्जवारं संखेज्जवाससहस्सविरोहिसंखेज्जवारं वा तत्थुप्पत्तीए संभवाभावा । अणप्पिदिदिएहिंतो आगंतूग अप्पिदिदिएसु उप्पज्जिय संखेज्जाणि चेव हिंडदि, असंखेज्जाणि ण परिभमदि त्ति बुत्तं होदि ।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति,
णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १३१ ॥

उवदेसेण विणा एदस्स सुत्तस्स अत्थो णव्वदे ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १३२ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

जीवोंकी छह मास और त्रीन्द्रिय जीवोंकी बारह वर्ष उत्कृष्ट आयुस्थिति होती है ।

शंका—यदि ऐसा है, तो सूत्रमें कही गई संख्यात हजार वर्षोंकी स्थिति नहीं घटित होती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, ये बतलाई गई स्थितियां एक आयु-सम्बन्धी हैं, इनसे यहां पर कोई कार्य नहीं है । किन्तु यहां पर भवस्थितिका अधिकार है ।

शंका—भवस्थिति किले कहते हैं ?

समाधान—अनेक आयुस्थितियोंके समूहको भवस्थिति कहते हैं ।

शंका—यदि ऐसा है, तो असंख्यात हजार वर्षप्रमाण भवस्थिति क्यों नहीं होती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, असंख्यातवार, अथवा संख्यात वर्ष-सहस्रके विरोधी संख्यातवार भी उनमें उत्पत्ति होनेकी संभावनाका अभाव है । अविश्रित इन्द्रियवाले जीवोंसे आ करके विश्रित इन्द्रियवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर, संख्यातसहस्र वर्ष ही भ्रमण करता है, असंख्यातवर्ष भ्रमण नहीं करता है, ऐसा अर्थ कहा हुआ समझना चाहिये ।

त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १३१ ॥

उपदेशके विना ही इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १३२ ॥ यह सूत्र सुगम है ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३३ ॥

एदं पि सुगमं चेव । णवरि वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियअपज्जत्ताणं जहाकमेण अंतरविरहिया असीदि-सद्धि-चालीसअपज्जत्तभवा । जदि वि एत्तियवारमेगो जीवो' तत्थ-तणुक्कस्सद्धिदीए उप्पज्जदि, तो वि तम्मवद्धिदिकालसमासो अंतोमुहुत्तमेत्तो चेव । कधमेदं णव्वदे ? अंतोमुहुत्तुवदेसण्णहाणुववत्तीदो ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धां ॥ १३४ ॥

[सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३५ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जधा मूलोघमिह मिच्छत्तस्स जहण्णकालपरूवणासुत्तस्स वुत्तो तथा वत्तव्वो ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १३३ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है । विशेष बात यह है कि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतु-रिन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीवोंके यथाक्रमसे अन्तररहित होकर अस्सी, साठ और चालीस लब्धपर्याप्तक भव होते हैं । यद्यपि इतने बार एक जीव उनकी उत्कृष्ट स्थितिमें उत्पन्न होता है, तो भी उनकी भवस्थितिके कालका जोड़ अन्तर्मुहूर्तमात्र ही होता है ।

शंका—यह कैसे जानते है ?

समाधान—अन्यथा, सूत्रमें अन्तर्मुहूर्तका उपदेश हो नहीं सकता था । इस अन्य-थानुपपत्तिसे जानते हैं कि उन भवोंका जोड़ अन्तर्मुहूर्तमात्र ही होता है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥ १३६ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा कालप्ररूपणाके मूलोघमें मिथ्यात्वके जघन्य कालकी प्ररूपणा करनेवाले सूत्रका कहा है, वैसा ही यहां कहना चाहिए ।

१ प्रतिपु 'बीओ' इति पाठः ।

२ पंचेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेर्नीनाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि,
सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १३६ ॥

‘जहा उद्देशो तथा णिद्देशो’ चि गायामो पंचिदियाणं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसहस्साणि, पंचिदियपज्जत्ताणं सागरोवमसदपुधत्तं । एदस्सुदाहरणं—एको एहं-दियादो विगळिदियादो वा आगंतूण पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु उव्वज्जिय सगळिदि-मच्छिय अण्णिदियं गदो । एकस्सेव सागरोवमसहस्सस्स सुवंतब्भूदबहुत्तमवेक्खिय सागरोवमसहस्साणि चि सुत्ते बहुवयणणिद्देशो कदो ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघं ॥ १३७ ॥

कुदो ? ओघादो णाणेगजीवसासणादिकालाणं भेदाभावा ।

पंचिदियअपज्जता बीहंदिअपज्जत्तभंगो ॥ १३८ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र और सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण है ॥ १३६ ॥

‘जैसा उद्देश होता है, तथैव निर्देश होता है’ इस न्यायसे सामान्य पंचेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र है, तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपमशतपृथक्त्व है ।

अब इन दोनों कालोंका उदाहरण कहते हैं— कोई एक जीव एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रियसे आकर पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, अपनी स्थिति तक रह कर, अन्य इन्द्रियको खला गया । यहाँ पर एक ही सागरोपमसहस्रके, अपने अन्तर्गत बहुत्वको देखकर ‘सागरोपमसहस्र’ ऐसा सूत्रमें बहुवचनका निर्देश किया गया है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ १३७ ॥

क्योंकि, ओघप्ररूपणासे नाना और एक जीवसम्बन्धी सासादनादि गुणस्थानोंके कालोंमें भेदका अभाव है ।

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका काल द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके कालके समान है ॥ १३८ ॥

१ उत्कृष्टेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्याधिकम् । स. सि. १, ८.

२ शेषाणां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तामिच्चाइणा भेदाभावा । णवरि पंचिदियअपज्जत्तएसु गिरंतरुप्पज्जणभववारा चउवीस होंति ।

एवमिदियमग्गणा समत्ता ।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १३९ ॥

कुदो ? सव्वद्धासु एदेसिं संताणस्स विच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ १४० ॥

एदस्सुदाहरणं— एगो अणप्पिदकाइओ जीवो अप्पिदकाइएसु उप्पज्जिय सव्व-जहणं कालमच्छिय अणप्पिदकाइयं गदो । लद्धो जहण्णेण खुदाभवग्गहणकालो ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १४१ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण-प्रमाण है, उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इत्यादिक रूपसे कोई भेद नहीं है। विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीवोंमें लगातार निरन्तर उत्पन्न होनेके भववार चौबीस होते हैं।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक और वायु-कायिक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १३९ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें इन पृथिवीकायिकादिकोंकी संतान-परम्पराका विच्छेद नहीं होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४० ॥

इसका उदाहरण—अविवक्षित कायवाला कोई एक जीव विवक्षित कायवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर सर्व जघन्य काल रह कर अविवक्षित कायको प्राप्त हुआ । तब क्षुद्रभवग्रहण-प्रमाण जघन्य काल उपलब्ध हुआ ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है ॥ १४१ ॥

१ कायाणुवादेन पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवोपेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणासंख्येयः कालः । स. सि. १, ८.

एदस्सुदाहरणं— एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइएसु उप्पज्जिय सव्वुक्कस्सियं अप्पिदकाइयट्ठिदिमसंखेज्जलोगमेत्तं परिभमिय अणप्पिदकायं गदो ।

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १४२ ॥

कुदो ? सव्वकालमणुच्छिण्णसंताणत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४३ ॥

एदस्सुदाहरणं— एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइयअपज्जत्तएसु उववज्जिय सव्वजहण्णमाउट्ठिदिं गमिय अणप्पिदकाइएसु उववण्णो । लद्धो जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणकालो ।

उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी ॥ १४४ ॥

कम्मट्ठिदि ति वुत्ते किं सव्वेसिं कम्माणं ट्ठिदीओ धेप्पंति, आहो एक्कस्स चेय ट्ठिदी धेप्पदि ति ? सव्वकम्माणं ट्ठिदीओ ण धेप्पंति, किंतु एक्कस्सेव कम्मट्ठिदी धेप्पदि ।

इसका उदाहरण—अविवक्षित कायवाला कोई एक जीव विवक्षित पृथिवीकायिक आदि जीवोंमें उत्पन्न होकर विवक्षित कायकी असंख्यात लोकप्रमाण सर्वोत्कृष्ट स्थिति तक परिभ्रमण करके पुनः अविवक्षित कायको प्राप्त हो गया ।

बादरपृथिवीकायिक, बादरजलकायिक, बादरतेजस्कायिक, बादरवायुकायिक और बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १४२ ॥

क्योंकि, इन सूत्रोक्त जीवोंकी सर्वकाल अविच्छिन्न संतान पाई जाती है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४३ ॥

इसका उदाहरण—अविवक्षित कायवाला कोई एक जीव विवक्षित कायके लब्धपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर वहाँ की सर्व जघन्य आयुस्थितिको बिताकर पुनः अविवक्षितकायिकोंमें उत्पन्न हो गया, तब क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य काल उपलब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है ॥ १४४ ॥

शंका—‘कर्मस्थिति’ इस प्रकार कहने पर क्या सर्व कर्मोंकी स्थितियां ग्रहण की जा रही हैं, अथवा, एक ही कर्मकी स्थिति ग्रहण की जा रही है ?

समाधान—सर्व कर्मोंकी स्थितियां नहीं ग्रहण की जा रही हैं, किन्तु एक मोहकर्मकी ही स्थिति यहां पर ‘कर्मस्थिति’ शब्दसे ग्रहण की जा रही है, क्योंकि, इस प्रकारका

कुदो ? गुरुवदेसादो । तत्थ वि दंसणमोहणीयस्स चेय उक्कस्सट्ठिदीए सत्तरिसागरो-
वमकोडाकोडिमेत्ताए गहणं कादव्वं, पाहणियादो । कुदो पहाणत्तं ? संगहिदासेसकम्म-
ट्ठिदीए । के वि आइरिया कम्मट्ठिदीदो बादरट्ठिदी परियम्मे उप्पण्णा त्ति कज्जे कारणोव-
यारमवलंबिय बादरट्ठिदीए चेय कम्मट्ठिदिसण्णमिच्छंति, तन्न घटते, 'गौण-मुख्ययोर्मुख्ये
संप्रत्यय' इति न्यायात् । ण च बादराणं सामण्णेण वुत्तकालो बादरेगदेसाणं बादरपुढवि-
काइयाणं पि सो चेव होदि त्ति, विरोहा । सामण्णबादरट्ठिदिमण्णपयारेण परूविय संपहि
बादरपुढविट्ठिदिं भण्णमाणे उवयारावलंबणे पओजणाभावा च । एदस्सुदाहरणं— अण-
प्पिदबादरकाइओ अप्पिदबादरकाइएसु उप्पज्जिय तत्थ सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्त-
कालमच्छिय अणप्पिदबादरकाइयं गदो ।

**बादरपुढविकाइय—बादरआउकाइय—बादरतेउकाइय—बादरवाउ—
काइय—बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति,
णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १४५ ॥**

गुरुका उपदेश है । उसमें भी केवल दर्शनमोहनीयकर्मकी ही सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम-
प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, वही प्रधान है ।

शंका— दर्शनमोहनीयकर्मकी स्थितिको प्रधानता कैसे है ?

समाधान— क्योंकि, उसमें सर्व कर्मोंकी स्थिति संगृहीत है ।

कितने ही आचार्य 'कर्मस्थितिसे बादरस्थिति परिकर्ममें उत्पन्न है' इसलिये कार्यमें
कारणके उपचारका अवलम्बन करके बादरस्थितिकी ही 'कर्मस्थिति' यह संज्ञा मानते हैं,
किन्तु वह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, 'गौण और मुख्यमें विवाद होने पर मुख्यमें ही
संप्रत्यय होता है' ऐसा न्याय है । दूसरी बात यह है कि बादरकायिक जीवोंका सामान्यसे
कहा हुआ काल, बादरकायिक जीवोंके एकदेशभूत बादर पृथिवीकायिकोंका भी वही ही नहीं
हो सकता है, क्योंकि, इसमें विरोध आता है । तथा, सामान्य बादरकायिक स्थितिको
अन्य प्रकारसे प्ररूपण करके अब बादरपृथिवीकायिककी स्थितिको कहने पर उपचारके
आलम्बनमें कोई प्रयोजन भी नहीं है ।

अब उक्त कर्मस्थितिप्रमाण कालका उदाहरण कहते हैं— अविवाक्षित बादरकायवाला
कोई जीव विवाक्षित बादरकायिकोंमें उत्पन्न होकर वहां पर सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम-
प्रमाण काल तक रह करके अविवाक्षित बादरकायिकमें चला गया ।

बादरपृथिवीकायिकपर्याप्त, बादरजलकायिकपर्याप्त, बादरतेजस्कायिकपर्याप्त,
बादरवायुकायिकपर्याप्त और बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्त जीव कितने काल
तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १४५ ॥

सव्वद्वासु एदेसिं विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४६ ॥

एदस्सुदाहरणं—एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइएसु उप्पज्जिय सव्वजहण्णमंतो-
मुहुत्तमच्छिय अणप्पिदकायं गदो ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ १४७ ॥

सुद्धपुढविजीवाणमाउट्टिदिपमाणं वारह वस्ससहस्सा (१२०००), खरपुढविकाइ-
याणं वावीस वस्ससहस्सा (२२०००), आउकाइयपज्जत्ताणं सत्त वाससहस्सा (७०००),
तेउकाइयपज्जत्ताणं तिण्णि दिवसा (३), वाउकाइयपज्जत्ताणं तिण्णि वाससहस्साणि
(३०००), वणप्फइकाइयपज्जत्ताणं दस वाससहस्साणि (१००००) उक्कस्साउट्टिदि-
पमाणं होदि । एदासु आउट्टिदीसु संखेज्जसहस्सवारमुप्पण्णे संखेज्जाणि वाससहस्साणि
होति । उदाहरणं— एगो अणप्पिदकाइयो, अप्पिदकाइयपज्जत्तएसु उववण्णो । पुणो
तम्हि चैव संखेज्जाणि वाससहस्साणि अच्छिय अणप्पिदकाइयं गदो ।

क्योंकि, सभी कालोंमें इन जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४६ ॥

इसका उदाहरण—एक अविवक्षितकायिक कोई जीव विवक्षित कायवाले जीवोंमें
उत्पन्न होकर सर्व-जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविवक्षित कायको प्राप्त हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है ॥ १४७ ॥

शुद्धपृथिवीकायिक पर्याप्तक जीवोंकी आयुस्थितिका प्रमाण वारह हजार (१२०००)
वर्ष है । खरपृथिवीकायिकपर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण बाईस हजार (२२०००) वर्ष
है । जलकायिकपर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण सात हजार (७०००) वर्ष है । तेज-
स्कायिकपर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण तीन (३) दिवस है । वायुकायिकपर्याप्तक
जीवोंकी स्थितिका प्रमाण तीन हजार (३०००) वर्ष है । वनस्पतिकायिकपर्याप्तक जीवोंकी
स्थितिका प्रमाण दश हजार (१०००) वर्ष है । इन आयुस्थितियोंमें संख्यात हजार वार
उत्पन्न होनेपर संख्यात सहस्र वर्ष हो जाते हैं ।

इसका उदाहरण—एक अविवक्षित कायवाला कोई जीव विवक्षित कायवाले पर्या-
प्तकोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः उसी ही कायमें संख्यात सहस्र वर्ष रह करके अविवक्षित कायको
प्राप्त हो गया ।

१ पृथिवीकायिकाः द्विविधाः शुद्धपृथिवीकायिकाः खरपृथिवीकायिकाश्चेति । तत्र शुद्धपृथिवीकायिकानां
उत्कृष्टा स्थितिर्द्वादश वर्षसहस्राणि । खरपृथिवीकायिकानां द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि । वनस्पतिकायिकानां दश
वर्षसहस्राणि । अप्कायिकानां सप्तवर्षसहस्राणि । वायुकायिकानां त्रीणि वर्षसहस्राणि । तेजःकायिकानां त्रीणि
रात्रिदिवानि । त. रा. वा. ३, ३९.

बादरपुठविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउ-
काइय-बादरवणफ्फदिकाइयपत्तेयसरीरअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति,
णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १४८ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४९ ॥

उदाहरणं—एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइयअपज्जत्तएसु उववण्णो । तत्थ
खुद्दाभवग्गहणमच्छियूण अणप्पिदं काइयं गदो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५० ॥

उदाहरणं—एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइएसु उप्पज्जिय सव्वुक्कस्समंतो-
मुहुत्तकालं तत्थ परिभमिय अण्णकायं गदो ।

सुहुमपुठविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुम-
वाउकाइया सुहुमवणफ्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता-
पज्जत्ता सुहुमेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो ॥ १५१ ॥

बादरपृथिवीकायिकलब्ध्यपर्याप्तक, बादरजलकायिकलब्ध्यपर्याप्तक, बादरतेज-
स्कायिकलब्ध्यपर्याप्तक, बादरवायुकायिकलब्ध्यपर्याप्तक और बादरवनस्पतिकायिक-
प्रत्येकशरीरलब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व-
काल होते हैं ॥ १४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४९ ॥

उदाहरण—एक अविवक्षित कायवाला कोई जीव विवक्षित कायवाले लब्ध्यपर्याप्तक
जीवोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर क्षुद्रभवग्रहणकालप्रमाण रह करके पुनः अविवक्षित
कायको प्राप्त हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १५० ॥

उदाहरण—एक अविवक्षित कायिक जीव विवक्षित कायिक जीवोंमें उत्पन्न होकर
सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक उनमें परिभ्रमण करके पुनः अन्य कायमें चला गया ।

सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मतेजस्कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक,
सूक्ष्मवनस्पतिकायिक, सूक्ष्मनिगोद जीव और उनके ही पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंका
काल सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक और अपर्याप्तकोंके कालके समान है ॥ १५१ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा । पज्जत्ताणमपज्जत्ताणं च अंतोमुहुत्तमिच्चेदेहि सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्तेहि विसेसाभावा ।

वणप्फदिकाइयाणं एइंदियाणं भंगो' ॥ १५२ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टमिच्चेदेण एइंदिएहितो वणप्फदिकाइयाणं भेदाभावा ।

णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १५३ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ १५४ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं चेय ।

उक्कस्सेण अट्टाइज्जादो पोग्गलपरियट्टं ॥ १५५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल, क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त, तथा उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है । पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंका काल अन्तर्मुहूर्त है, इत्यादि रूपसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंके साथ सूक्ष्मपृथिवीकायिकादिकके कालमें विशेषताका अभाव है ।

वनस्पतिकायिक जीवोंका काल एकेन्द्रिय जीवोंके कालके समान है ॥ १५२ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है, इस रूपसे एकेन्द्रियोंसे वनस्पतिकायिक जीवोंके कालका कोई भेद नहीं है ।

निगोद जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा निगोद जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १५४ ॥

यह भी सूत्र सुगम ही है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अट्टाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ १५५ ॥

१ वनस्पतिकायिकानामेकेन्द्रियवत् । स. सि. १, ८.

तं जघा- एगो अण्णकायादो आगंतूण निगोदेसुववण्णो । तत्थ अङ्काइज्जा पोगगलपरियट्ठाणि परियट्ठिदूण अण्णकायं गदो ।

बादरणिगोदजीवाणं बादरपुढविकाइयाणं भंगो ॥ १५६ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं, उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी इच्चेएण बादरणिगोदाणं बादरपुढविकाइएहिंतो भेदाभावा ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १५७ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५८ ॥

तसकाइयाणं तेसिं पज्जत्ताणं च जहण्णकालो अंतोमुहुत्तं । तसकाइयाणमंतोमुहुत्त-मिदि अभणिय खुदाभवग्गहणं ति किण्ण वुत्तं ? ण, खुदाभवग्गहणं पेक्खिदूण जहण्ण-मिच्छत्तकालस्स थोवत्तादो । सेसं सुगमं ।

जैसे— कोई एक जीव अन्य कायसे आ करके निगोदिया जीवोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ पर अर्द्धाई पुद्गलपरिवर्तन काल तक परिभ्रमण करके अन्य कायको प्राप्त हो गया।

बादरनिगोद जीवोंका काल बादरपृथिवीकायिक जीवोंके समान है ॥ १५६ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल श्रुद्रभव-ग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है, इस रूपसे बादरनिगोदिया जीवोंके कालका बादरपृथिवीकायिक जीवोंके कालसे कोई भेद नहीं है।

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १५७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १५८ ॥

त्रसकायिक और उनके पर्याप्तकोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

शंका—‘त्रसकायिक जीवोंका अन्तर्मुहूर्त काल है, ऐसा न कह कर ‘श्रुद्रभव-ग्रहणप्रमाण काल है,’ ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, श्रुद्रभवग्रहणके कालको देखकर अर्थात् उसकी अपेक्षा जघन्य मिथ्यात्वका काल और भी छोटा है।

शेष सूत्रार्थ सुगम है।

१ त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एक जीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि,
वे सागरोवमसहस्साणि ॥ १५९ ॥

तं जधा- दो जीवा थावरकायादो आगंतूण एगो तसकाइएसु, अण्णेगो तसकाइय-
पज्जत्तएसु उववण्णो । तत्थ जो सो तसकाइएसु उववण्णो सो पुव्वकोडिपुधत्तब्भहिय-
वे-सागरोवमसहस्साणि तत्थ परिभमिय थावरकायं गदो । इदरो वि वे सागरोवमसहस्सं
परिभमिय थावरं गदो, एत्तो उवरि तत्थच्छणसंभवाभावा ।

सासणसम्भादिट्टिपहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघं ॥१६०॥

कुदो? ओघसासणादिसयलगुणद्वानाणं णाणेगजीवजहण्णुकस्सकालेहिंतो तसकाइय-
तसकाइयपज्जत्तसासणादिसयलगुणद्वानाणेगजीवजहण्णुकस्सकालाणं भेदाभावादो ।

तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो ॥ १६१ ॥

कुदो? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं,

त्रसकायिक जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम
और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल पूरे दो हजार सागरोपमप्रमाण
है ॥ १५९ ॥

जैसे— दो जीव एक साथ स्थावरकायसे आकर एक तो सामान्य त्रसकायिक
जीवोंमें और दूसरा त्रसकायिक पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । उनमेंसे जो सामान्य त्रसकायिक
जीवोंमें उत्पन्न हुआ, वह जीव पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम काल उनमें
परिभ्रमण करके स्थावरकायको प्राप्त हुआ । तथा दूसरा जीव भी दो हजार सागरोपमप्रमाण
उनमें परिभ्रमण करके स्थावरकायमें चला गया, क्योंकि, इसके ऊपर त्रसकायमें रहना
संभव नहीं है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवलीगुणस्थान तकका काल ओघके समान
है ॥ १६० ॥

क्योंकि, ओघके सासादनादि सकल गुणस्थानोंके नाना और एक जीवके जघन्य
और उत्कृष्ट कालोंसे त्रसकायिक तथा त्रसकायिकपर्याप्तकोंके सासादनादि सकल
गुणस्थानोंके नाना और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका कोई भेद नहीं है ।

त्रसकायिकलब्ध्यपर्याप्तकोंका काल पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकोंके समान है ॥१६१॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल श्रुद्रभव-

१ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्से पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके । स. सि. १, ८.

२ शेषाणां पंचेन्द्रियवत् । स. सि. १, ८.

उक्तसेण बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्तएसु जहाकमेण असीदि-सट्ठि-चालीस-चदुवीस-अणुवद्धमवेसु बहुसदवारपरियट्ठणसंभूदअंतोमुहुत्तकालो इच्चेदेहि विसेसाभावा ।

एवं कायमगणा समात्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठी असं-जदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १६२ ॥

कुदो ? मणजोग-वचिजोगेहि परिणमणकालादो तदुवक्कमणकालंतरस्स थोवत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थणिच्छयसमुप्पायणट्ठं मिच्छादिट्ठिआदिगुणट्ठणाणि अस्सिदूण एगसमयपरूवणा कीरदे । एत्थ ताव जोगपरावत्ति-गुणपरावत्ति-मरण-वाघादेहि मिच्छत्त-गुणट्ठणस्स एगसमओ परूविज्जदे । तं जधा— एक्को सासणो सम्मामिच्छादिट्ठी असं-जदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा मणजोगेण अच्छिदो । एगसमओ मण-

ग्रहण, उत्कृष्ट काल, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंमें यथाक्रमसे अस्ली, साठ, चालीस और चौबीस क्षुद्रभवोंमें कई सौ चार परिवर्तनसे उत्पन्न हुआ अन्तर्मुहूर्तकाल होता है, इस प्रकारसे कोई विशेषता नहीं है ।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगि-केवली कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १६२ ॥

क्योंकि, मनोयोग और वचनयोगके द्वारा होनेवाले परिणमन कालसे उनके उप-क्रमणकालका अन्तर अल्प पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १६३ ॥

इस सूत्रके अर्थ-निश्चयके समुत्पादनार्थ मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंको आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा की जाती है—उनमेंसे पहले योगपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन मरण और व्याघात, इन चारोंके द्वारा मिथ्यात्वगुणस्थानका एक समय प्ररूपण किया जाता है । वह इस प्रकार है—सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती कोई एक जीव मनोयोगके साथ विद्यमान था ।

१ योगानुवादेन वाज्जानसयोगिषु मिथ्यादृष्टकसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगिकेवलिना नाना-जीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

जोगद्वाए अत्थि त्ति मिच्छत्तं गदो । एगसमयं मणजोगेण सह मिच्छत्तं दिट्ठं । विदिय-
समए मिच्छादिट्ठी चेव, किंतु वच्चिजोगी कायजोगी वा जादो । एवं जोगपरावत्तीए पंच-
विहा एयसमयपरूवणा कदा । कधं समयभेदो ? सासणादिगुणद्वानपच्छाकधत्तेण । गुण-
परावत्तीए एगसमओ वुच्चदे । तं जहा— एक्को मिच्छादिट्ठी वच्चिजोगेण कायजोगेण
वा अच्छिदो । तस्स वच्चिजोगद्वासु कायजोगद्वासु खीणासु मणजोगो आगदो । मणजोगेण
सह एगसमये मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए वि मणजोगी चेव । किंतु सम्मामिच्छत्तं वा
असंजमेण सह सम्मत्तं वा संजमासंजमं वा अपमत्तभावेण संजमं वा पडिवण्णो । एवं
गुणपरावत्तीए चउत्विहा एगसमयपरूवणा कदा । कधमेत्थ समयभेदो ? पडिवज्जमाण-
गुणभेएण । पुच्चिल्लपंचसु समएसु संपहिल्लद्वचदुसमए पक्खित्ते णव भंगा होंति (९) ।
एक्को मिच्छादिट्ठी वच्चिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो । तेसिं खएण मणजोगो आगदो ।
एगसमयं मणजोगेण सह मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए मदो । जदि तिरिक्खेसु वा मणु-

मनोयोगके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर वह मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहां पर एक
समयमात्र मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया । द्वितीय समयमें भी वह जीव मिथ्यादृष्टि
ही रहा, किन्तु मनोयोगीसे वह वचनयोगी अथवा काययोगी हो गया । इस प्रकार योगपरि-
वर्तनके साथ पांच प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा की गई ।

शंका—यहां पर समयमें भेद कैसे हुआ ?

समाधान—सासादनादि गुणस्थानोंको पीछे करनेसे, अर्थात् उनमें पुनः वापिस
आनेसे, समय-भेद हो जाता है ।

अब गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहते हैं । वह इस प्रकार है—
कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था । उसके वचनयोग
अथवा काययोगका काल क्षीण होने पर मनोयोग आगया और मनोयोगके साथ एक
समयमें मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ । पश्चात् द्वितीय समयमें भी वह जीव यद्यपि मनोयोगी
ही है, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको,
अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे गुणस्थानके परिवर्तनद्वारा
चार प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा की गई ।

शंका—यहां पर समय-भेद कैसे हुआ ?

समाधान—आगे प्राप्त होनेवाले गुणस्थानके भेदसे समयमें भेद हुआ ।

पूर्वोक्त योगपरिवर्तनसम्बन्धी पांच समयोंमें साम्प्रतिक लब्ध गुणस्थानसम्बन्धी
चार समयोंको प्रक्षिप्त करने पर नौ (९) भंग हो जाते हैं । कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव
वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था । पुनः योगसम्बन्धी कालके क्षय हो जाने पर
उसके मनोयोग आ गया । तब एक समय मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया और

सेसु वा उप्पण्णो, तो कम्मइयकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वा । अध देव-णेइएसु जइ उववण्णो तो कम्मइयकायजोगी वेउव्वियमिस्सकायजोगी वा जादो । एवं मरणेण लद्धएगभंगे पुव्विल्लणवभंगेसु पविस्सत्ते दस भंगा होंति (१०) । वाघादेण एक्को मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो । तेसिं वचि-कायजोगाणं खएण तस्स मणजोगो आगदो । एगसमयं मणजोगेण मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए वाघादिदो काय-जोगी जादो । लद्धो एगसमओ । एदं पुव्विल्लदसभंगेसु पविस्सत्ते एक्कारस भंगा (११) । एत्थ उववुज्जंती गाहा—

गुण-जोगपरवक्ती वाघादो मरणमिदि हु चत्तारि ।

जोगेसु होंति ण वरं पच्छिल्लदुगुणका जोगे ॥ ३९ ॥

एदमिह गुणट्ठाणे द्विदजीवा इमं गुणट्ठाणं पडिवज्जंति, ण पडिवज्जंति त्ति णादूण गुणपडिवण्णा वि इमं गुणट्ठाणं गच्छंति, ण गच्छंति त्ति चितिय असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजदाणं च चउव्विहा एगसमयपरुवणा परुविदव्वा । एवमप्पमत्त-संजदाणं । णवरि वाघादेण विणा तिविधा एगसमयपरुवणा कादव्वा । किमट्ठं वाघादो

दूसरे समयमें मरा । सो यदि वह तिर्यंचोंमें था मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ तो कर्मणकाययोगी, अथवा औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया । अथवा, यदि देव या नारकियोंमें उत्पन्न हुआ तो कर्मणकाययोगी अथवा वैकियिकमिश्रकाययोगी हो गया । इस प्रकार मरणसे प्राप्त एक भंगको पूर्वोक्त नौ भंगोंमें प्रक्षिप्त करने पर दश भंग हो जाते हैं (१०) । अब व्याघातसे लब्ध होनेवाले एक भंगकी प्ररूपणा करते हैं— कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था । सो उन वचनयोग अथवा काययोगके क्षय हो जाने पर उसके मनोयोग आ गया । तब एक समय मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दृष्ट हुआ और द्वितीय समयमें वह व्याघातको प्राप्त होता हुआ काययोगी हो गया । इस प्रकारसे एक समय लब्ध हुआ । पूर्वोक्त दश भंगोंमें इस एक भंगके प्रक्षिप्त करने पर ग्यारह भंग होते हैं (११) । इस विषयमें उपयुक्त गाथा इस प्रकार है—

गुणस्थानपरिवर्तन, योगपरिवर्तन, व्याघात और मरण, ये चारों बातें योगोंमें अर्थात् तीनों योगोंके होने पर, होती हैं । किन्तु सयोगिकेवलीके पिछले दो, अर्थात् मरण और व्याघात, तथा गुणस्थानपरिवर्तन नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥

इस विवक्षित गुणस्थानमें विद्यमान जीव इस अविवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होते हैं, या नहीं, ऐसा जान करके, गुणस्थानोंको प्राप्त जीव भी इस विवक्षित गुणस्थानको जाते हैं, अथवा नहीं, ऐसा चिन्तन करके असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयतोंकी चार प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए । इसी प्रकारसे अप्रमत्तसंयतोंकी भी प्ररूपणा होती है, किन्तु विशेष बात यह है कि उनके व्याघातके विना तीन प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

१ आ-प्रती ' उववुज्जंती ' क-प्रती ' उववुज्जंती ' इति पाठः ।

णत्थि ? अप्पमाद-वाधादाणं सहअणवट्टाणलक्खणविरोहा । सजोगिकेवलिस्स एगसमय-परूवणा कीरदे । तं जथा-एक्को खीणकसाओ मणजोगेण अच्छिदो मणजोगद्वाए एगो समओ अत्थि त्ति सजोगी जादो । एगसमयं मणजोगेण दिट्ठो सजोगिकेवली विदियसमए वचिजोगी वा जादो । एवं चट्ठसु मणजोगेसु पंचसु वचिजोगेसु पुण्वुत्तगुणट्टाणाणं एग-समयपरूवणा कादव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १६४ ॥

तं जथा- मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो (अप्पमत्त-संजदो) सजोगिकेवली वा अणप्पिदजोगे ट्ठिदो अट्ठाक्खएण अप्पिदजोगं गदो । तत्थ तप्पाओग्गुक्कस्समतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदजोगं गदो ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १६५ ॥

शंका—अप्रमत्तसंयतके व्याघात किस लिए नहीं है ?

समाधान—क्योंकि, अप्रमाद और व्याघात, इन दोनोंका सहानवस्थानलक्षण विरोध है ।

अब सयोगिकेवलीके एक समयकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है— एक क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव मनोयोगके साथ विद्यमान था । जब मनोयोगके कालमें एक समय अवशिष्ट रहा, तब वह सयोगिकेवली हो गया और एक समय मनोयोगके साथ दृष्टिगोचर हुआ । वह सयोगिकेवली द्वितीय समयमें वचनयोगी हो गया । इस प्रकारसे चारों मनोयोगोंमें और पांचों वचनयोगोंमें पूर्वोक्त गुणस्थानोंकी एक समयसम्बन्धी प्ररूपणा करना चाहिए ।

उक्त पांचों मनोयोगी तथा पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवलीका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १६४ ॥

जैसे—अविवक्षित योगमें विद्यमान मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, (अप्रमत्तसंयत) और सयोगिकेवली उस योगसम्बन्धी कालके क्षय हो जानेसे विवक्षित योगको प्राप्त हुए । वहां पर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके पुनः अविवक्षित योगको चले गये ।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका काल ओघके समान है ॥ १६५ ॥

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टेः सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असं-
खेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ; इच्चेदेहि
पंचमण-वचिजोगसासणाणं ओघसासणेहिंतो भेदाभावा । एत्थ वि जोग-गुणपरावत्ति-मरण-
वाघादेहि समयाविरोहेण एगसमयपरूवणा कायच्चा ।

**सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो हंति, णाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण एगसमयं ॥ १६६ ॥**

उदाहरणं— सत्तट्ट जणा बहुगा वा मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मदिट्ठी संजदासंजदा
पमत्तसंजदा वा अप्पिदमण-वचिजोगेसु ट्ठिदा अप्पिदजोगद्वाए एगसमओ अत्थि त्ति
सम्मामिच्छत्तं गदा । एगसमयमप्पिदजोगेण सह दिट्ठा, विदियसमए सच्चे अणप्पिदजोगं
गदा । एवं मरणेण विणा जोग-गुणपरावत्ति-वाघादेहि एगसमयपरूवणा चितिय वत्तच्चा ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६७ ॥

कुदो ? अप्पिदजोगेण सहिदसम्मामिच्छादिट्ठीणं पवाहस्स अच्छिण्णरूवस्स पलिदो-
वमस्स असंखेज्जदिभागायामस्सुवलंभा ।

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पर्योपमका असं-
ख्यातत्रां भाग, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलियां, इस
रूपसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंके कालका ओघ-
सम्बन्धी सासादनोंके कालसे कोई भेद नहीं है । यहां पर भी योगपरावर्तन, गुणस्थानपरा-
वर्तन, मरण और व्याघातके द्वारा आगमके अविरोधसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सम्यग्मिध्यादृष्टि जीव कितने काल
तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा एक समय होते हैं ॥ १६६ ॥

उदाहरण— विवक्षित मनोयोग अथवा वचनयोगमें स्थित सात आठ जन, अथवा
बहुतसे मिध्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत जीव उस विवक्षित
योगके कालमें एक समय अवशिष्ट रह जाने पर सम्यग्मिध्यात्वको प्राप्त हुए और एक
समयमात्र विवक्षित योगके साथ दृष्टिगोचर हुए । द्वितीय समयमें सभीके सभी अविवक्षित
योगको चले गये । इसी प्रकार मरणके विना शेष योगपरावर्तन, गुणस्थानपरावर्तन और
व्याघात, इन तीनोंकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा चिंतन करके करना चाहिए ।

सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल पर्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥१६७॥

क्योंकि, विवक्षित योगसे सहित सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंका अविच्छिन्नरूप प्रवाह
पर्योपमके असंख्यातवें भाग लम्बे काल तक पाया जाता है ।

१ सम्यग्मिध्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पर्योपमासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६८ ॥

एत्थ वि मरणेण विणा गुण-जोगपरावत्ति-वाघादे अस्सिदूण एगसमयपरूवणा जाणिय वत्तच्चा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १६९ ॥

उदाहरणं—एक्को सम्मामिच्छादिट्ठी अणप्पिदजोगे ट्ठिदो अप्पिदजोगं पडिवण्णो । तत्थ तप्पाओग्गुकस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदजोगं गदो । लद्धमंतोमुहुत्तं ।

चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा केवचिरं कालदो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७० ॥

उवसामगाणं वाघादेण विणा जोग-गुणपरावत्ति-मरणेहि णाणाजीवे अस्सिदूण एगसमयपरूवणा कादच्चा । खवगाणं मरण-वाघादेहि विणा जोग-गुणपरावत्तीओ दो चेव अस्सिदूण एगसमयपरूवणा परूवेदच्चा ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १६८ ॥

यहां पर भी मरणके विना गुणस्थानपरावर्तन, योगपरावर्तन और व्याघात, इन तीनोंका आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १६९ ॥

उदाहरण—अविवक्षित योगमें विद्यमान कोई एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव विवक्षित योगको प्राप्त हुआ । वहां पर अपने योगके प्रायोग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके अविवक्षित योगको चला गया । इस प्रकारसे एक अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो गया ।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी चारों उपशामक और क्षपक कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १७० ॥

उपशामक जीवोंके व्याघातके विना योगपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरणके द्वारा नाना जीवोंका आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए । क्षपक जीवोंकी मरण और व्याघातके विना योगपरिवर्तन और गुणस्थानपरिवर्तन, इन दोनोंका आश्रय लेकर ही एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए ।

१ एक जीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ चतुर्णांपुपश्मकानां क्षपकाणां च नानाजीवपेक्षया एकजीवपेक्षया च जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७१ ॥

तं जधा-चत्तारि उवसामगा चत्तारि खवगा च अणप्पिदजोगे द्विदा अद्वाक्ख-
एण अप्पिदजोगं गदा । तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो वि अणप्पिदजोगं पडिवण्णा ।
लद्धमंतोमुहुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७२ ॥

एत्थ एगसमयपरूवणा खवगुवसामगाणं दोहि तीहि पयारेहि जाणिय वत्तच्चा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७३ ॥

एत्थ अंतोमुहुत्तपरूवणा जाणिय वत्तच्चा । एत्थ एगसमयवियप्पपरूवणद्धं गाहा-
एक्कारस छ सत्त य एक्कारस दस य णव य अट्टे वा ।

पण पंच पंच तिण्णि य दु दु दु दु एगो य समयगणा ॥ ४१ ॥

११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, २, १ ।

**कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं
पडुच्च सव्वद्दा ॥ १७४ ॥**

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७१ ॥

वह इस प्रकार है—अविवक्षित योगमें स्थित चारों उपशामक और क्षपक जीव उस
योगके कालक्षयसे विवक्षित योगको प्राप्त हुए। वहां पर अन्तर्मुहूर्त तक रह करके पुनरपि
अविवक्षित योगको प्राप्त हो गए। इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो गया।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १७२ ॥

यहां पर एक समयकी प्ररूपणा क्षपकोंके योगपरावर्तन और गुणस्थानपरावर्तनकी
अपेक्षा दो प्रकारसे और उपशामकोंकी व्याघातके विना शेष तीन प्रकारोंसे जान करके कहना
चाहिए।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७३ ॥

यहां अन्तर्मुहूर्तकी प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए। यहां पर एक समय-
सम्बन्धी विकल्पोंके प्ररूपण करनेके लिए यह गाथा है—

मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्थानोंमें क्रमशः ग्यारह, छह, सात, ग्यारह, दश, नौ, आठ,
पांच, पांच, पांच, तीन, दो, दो, दो, दो और एक, इतने एक समयसम्बन्धी प्ररूपणाके
विकल्प होते हैं। ११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, २, १ ॥ ४० ॥

**काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १७४ ॥**

१ उक्तर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ काययोगिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

कुदो ? सच्चद्धासु कायजोगिमिच्छादिद्वीणं विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७५ ॥

तं जघा— एगो सासणसम्मादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी संजदा-
संजदो पमत्तसंजदो वा कायजोगद्वाए अच्छिदो । तिस्से एगसमयावसेसे मिच्छादिद्वी
जादो । कायजोगेण एगसमयं मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए अण्णजोगं गदो । अधवा मण-
वचिजोगेसु अच्छिदस्स मिच्छादिद्विस्स तेसिमद्वाक्खएण कायजोगो आगदो । एगसमयं
कायजोगेण सह मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए सम्मामिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मत्तं
वा संजमासंजमं अप्पमत्तभावेण संजमं वा पडिवण्णो । लद्धो एगसमओ । एत्थ मरण-वाघा-
देहि एगसमओ णत्थि । कुदो ? मुदे वाघादिदे वि कायजोगं मोत्तूण अण्णजोगाभावा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेजा पोग्गलपरियट्ठं ॥ १७६ ॥

तं जघा—एगो मिच्छादिद्वी मण-वचिजोगेसु अच्छिदो अद्वाक्खएण कायजोगी

क्योंकि, सभी कालोंमें काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल एक समय
है ॥ १७५ ॥

जैसे— एक सासादनसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि,
अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव काययोगके कालमें विद्यमान था । उस योगके
कालमें एक समय अवशेष रहने पर वह मिथ्यादृष्टि हो गया । तब काययोगके साथ एक
समय मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ । पुनः द्वितीय समयमें वह अन्य योगको चला गया । अथवा,
मनोयोग और वचनयोगमें विद्यमान मिथ्यादृष्टि जीवके उन योगोंके कालक्षयसे काययोग आ
गया । तब एक समय काययोगके साथ मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ । पुनः द्वितीय समयमें
सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको, अथवा
अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकार एक समय लब्ध हो गया । यहाँ पर
मरण अथवा व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं है, क्योंकि, मरण होने पर अथवा व्याघात
होने पर भी काययोगको छोड़कर अन्य योगका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक
असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ १७६ ॥

जैसे— मनोयोग अथवा वचनयोगमें विद्यमान एक मिथ्यादृष्टि जीव, उस योगके

१ एक जीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु ' सगसमओ ' इति पाठः ।

३ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

जादो, सब्बुकस्समंतोमुहुत्तमच्छिदूण एइंदिएसु उप्पण्णो । तत्थ अणंतकालमसंखेज्ज-
पोग्गलपरियट्ठं कायजोगेण सह परियट्ठिदूण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गल-
परियट्ठेसुप्पण्णेसु तसेसु आगंतूण सब्बुकस्समंतोमुहुत्तमच्छिय वचिजोगी जादो । लद्धो
कायजोगस्स उक्कस्सकालो ।

**सासणसम्मादिट्ठिपहुडि जाव सजोगिकेवलि ति मणजोगि-
भंगो ॥ १७७ ॥**

एदं सुत्तं सुगमं, मणजोगे गिरुद्धे पवंचेण परूविदत्तादो । णवरि मरण-वाघादा
सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणं णत्थि । सासणसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजदाणं
वाघादेण एगसमओ णत्थि, मरणेण पुण अत्थि ।

**ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालदो होंति,
णाणाजीवं पडुच्च सब्बद्धा ॥ १७८ ॥**

कुदो ? ओरालियकायजोगिमिच्छादिट्ठिसंताणस्स सब्बद्धासु वोच्छेदाभावा ।

कालक्षय हो जानेसे काययोगी हो गया । वहां पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके
एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर अनन्तकालप्रमाण असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन काययोगके
साथ परिवर्तन करके आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंके शेष रहने पर
प्रसर्जियोंमें आकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वचनयोगी हो गया । इस
प्रकारसे काययोगका उत्कृष्ट काल प्राप्त हुआ ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक काय-
योगियोंका काल मनोयोगियोंके कालके समान है ॥ १७७ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, मनोयोगके निरुद्ध करनेपर पहले प्रपंचसे (विस्तारसे)
प्ररूपण किया जा चुका है । विशेष बात यह है कि काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-
सम्यग्दृष्टियोंके मरण और व्याघात नहीं होते हैं । तथा काययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि,
संयतासंयत और प्रमत्तसंयतोंके व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं होता है, किन्तु मरणकी
अपेक्षा एक समय होता है ।

औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १७८ ॥

क्योंकि, औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी परम्पराके सभी कालोंमें विच्छे-
दका अभाव है ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७९ ॥

एत्थ मरण-गुण-जोगपरावत्तीहि एगसमयो परूवेदव्वो । वाघादेण एगसमओ ण लब्भदि, तस्स कायजोगाविणाभावित्तादो ।

उक्कस्सेण वावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि ॥ १८० ॥

तं जधा- एगो तिरिक्खो मणुस्सो देवो वा वावीससहस्सवासाउट्ठिदिएसु एइंदिएसु उव्वण्णो । सच्चजहण्णेण अंतोमुहुत्तकालेण पज्जत्तिं गदो । ओरालियअपज्जत्तकालेणूण-वावीसवाससहस्साणि ओरालियकायजोगेण अच्छिय अण्णजोगं गदो । एवं देसूणवावीस-वाससहस्साणि जादाणि । अधवा देवो ण उप्पादेदव्वो, तस्स जहण्णअपज्जत्तकालाणुवलंभा ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि ति मणजोगि-
भंगो ॥ १८१ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, पुवं परूविदत्तादो । णवरि वाघादेण एत्थ एग-
समयपरूवणा परूवेदव्वा ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १७९ ॥

यहां पर मरण, गुणस्थानपरावर्तन और योगपरावर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा करनी चाहिए । किन्तु यहां पर व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, वह काययोगका अविनाभावी है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है ॥ १८० ॥

जैसे- एक तिर्यंच, मनुष्य, अथवा देव, बाईस हजार वर्षकी आयुस्थितिवाले एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुआ । पुनः इस औदारिकशरीरके अपर्याप्तकालसे कम बाईस हजार वर्ष औदारिककाययोगके साथ रह करके पुनः अन्य योगको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे कुछ कम बाईस हजार वर्ष हो जाते हैं । अथवा, यहां पर देव नहीं उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, देवोंसे आकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके जघन्य अपर्याप्तकाल नहीं पाया जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक औदारिककाययोगियोंका काल मनोयोगियोंके कालके समान है ॥ १८१ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, पूर्वमें कहा जा चुका है । विशेष बात यह है कि यहां पर व्याघातकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति,
गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १८२ ॥

कुदो ? ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिसंताणवोच्छेदस्स सव्वद्धासु अभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं तिसमऊणं ॥ १८३ ॥

तं जहा- एगो एइंदिओ सुहुमवाउकाइएसु अधोलोगंते ट्टिएसु खुदाभवग्गहणाउ-
ट्टिदिएसु तिण्णि विग्गहे काऊण उववण्णो । तत्थ तिसमऊणखुदाभवग्गहणमपज्जचो
होदूण जीविय मदो, विग्गहं कादूण कम्मइयकायजोगी जादो । एवं तिसमऊणखुदाभव-
ग्गहणमोरालियमिस्सजहणकालो जादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८४ ॥

तं जघा- अपज्जत्तएसु उववज्जिय संखेज्जाणि भवग्गहणाणि तत्थ परियट्ठिय
पुणो पज्जत्तएसु उववज्जिय ओरालियकायजोगी जादो । एदाओ संखेज्जभवग्गहणद्वाओ
मिलिदाओ वि मुहुत्तस्संतो चेव होंति ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १८२ ॥

क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टियोंकी परस्पराके विच्छेदका सर्व-
कालोंमें अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल
तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १८३ ॥

जैसे— एकेन्द्रिय जीव अधोलोकके अन्तमें स्थित और क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण आयु-
स्थितिवाले सूक्ष्मवायुकायिकोंमें तीन विग्रह करके उत्पन्न हुआ । वहाँ पर तीन समय कम
क्षुद्रभवग्रहणकाल तक लब्ध्यपर्याप्त हो, जीवित रह कर मरा । पुनः विग्रह करके कार्मण-
काययोगी हो गया । इस प्रकारसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण औदारिकमिश्रकाय-
योगका जघन्य काल सिद्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १८४ ॥

जैसे— कोई एक जीव लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर संख्यात भवग्रहणप्रमाण
उनमें परिवर्तन करके पुनः पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर औदारिककाययोगी हो गया । इन सब
संख्यात भवोंके ग्रहण करनेका काल मिल करके भी मुहूर्तके अन्तर्गत ही रहता है, अधिक
नहीं होता है ।

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १८५ ॥

तं जघा— सत्तडु जणा बहुआ वा सासणा सगद्धाए एगसमओ अत्थि ति ओरा-
लियमिस्सकायजोगिणो जादा । एगसमयमच्छिदूण विदियसमए मिच्छत्तं गदा । लद्धो
ओरालियमिस्सेण सासणाणमेगसमओ ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८६ ॥

तं जघा— सत्तडु जणा बहुआ वा सासणा ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा ।
सासणगुणेण अंतोसुहुत्तमच्छिय ते मिच्छत्तं गदा । तस्समए चेय अण्णे सासणा ओरा-
लियमिस्सकायजोगिणो जादा । एवमेक-दो-तिण्णि आदिं कादूण जाव उक्कस्सेण पलिदो-
वमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवारं सासणा ओरालियमिस्सकायजोगं पडिवज्जावेदच्चा । तदो
णियमा अंतरं होदि । एवमेस कालो मेलाविदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १८७ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १८५ ॥

जैसे—सात आठ जन, अथवा बहुतसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव, अपने योगके कालमें
एक समय अवशेष रहने पर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गये । उसमें एक समय रह करके
द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुए । इस प्रकारसे औदारिकमिश्रकाययोगके साथ
सासादनसम्यग्दृष्टियोंका एक समय लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ १८६ ॥

जैसे— सात आठ जन, अथवा बहुतसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाय-
योगी हुए । सासादनगुणस्थानके साथ अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पीछे वे मिथ्यात्वको प्राप्त
हुए । उसी समयमें ही अन्य दूसरे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी
हुए । इस प्रकारसे एक, दो, तीनको आदि करके उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र
वार सासादनसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगको प्राप्त कराना चाहिए । इसके पश्चात्
नियमसे अन्तर हो जाता है । इस प्रकारसे यह सब मिलाया गया काल पल्योपमके असं-
ख्यातवें भागमात्र होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १८७ ॥

तं जघा- एको सासणो सगद्वाए एगसमओ अत्थि त्ति ओरालियमिस्सकायजोगी जादो । विदियसमए मिच्छत्तं गदो । लद्धो एगसमओ ।

उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ ॥ १८८ ॥

तं जघा- देवो वा णेरइओ वा उवसमसम्मादिट्ठी उवसमसम्मत्तद्वाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो । एगसमयमच्छिय कालं करिय तिरिक्ख-मणुस्सेसु उजु-गदीए उववज्जिय ओरालियमिस्सकायजोगी जादो । समऊण-छ-आवलियाओ अच्छिय मिच्छत्तं गदो ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८९ ॥

तं जघा- सत्तइ जणा बहुगा वा असंजदसम्मादिट्ठिणो णेरइया ओरालियमिस्स-कायजोगिणो जादा । सव्वलहुं पज्जत्तिं गदा, बहुसागरोवमाणि पुवं दुक्खेण सह द्विदत्तादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९० ॥

जैसे— एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया और द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार एक समय प्राप्त हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल एक समय कम छह आवलीप्रमाण है ॥ १८८ ॥

जैसे— कोई एक देव अथवा नारकी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव, उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली कालके शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ । वहां पर एक समय रह करके मरण कर तिर्यंच और मनुष्योंमें ऋजुगतिसे उत्पन्न होकर औदारिकमिश्र-काययोगी हो गया । वहां पर एक समय कम छह आवली तक रह करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक होते हैं ॥ १८९ ॥

जैसे— सात आठ जन, अथवा बहुतसे असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव औदारिक-मिश्रकाययोगी हुए । और बहुतसे सागरोपम काल तक पहले दुःखोंके साथ रहे हुए होनेसे सर्वलघु कालसे पर्याप्तियोंको प्राप्त हुए ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९० ॥

तं जधा— देव-णेरइया मणुस्सा सत्तद्ध जणा बहुआ वा सम्मादिट्ठिणो ओरालिय-
मिस्सकायजोगिणो जादा । ते पज्जत्तिं गदा । तस्समए चेत्र अण्णे असंजदसम्मादिट्ठिणो
ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा । एवमेक-दो-तिणिण जावुकस्सेण संखेज्जवारा त्ति ।
एदाहि संखेज्जसलागाहि एगमपज्जत्तद्धं गुणिदे एगमुहुत्तस्स अंतो चेत्र जेण होदि, तेण
अंतोमुहुत्तमिदि वुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९१ ॥

तं जधा— एको सम्मादिट्ठी वावीस सागरोवमाणि दुक्खेकरसो होदूण जीविदो ।
छट्ठीदो उच्चट्ठिय मणुसेसु उत्पण्णो । विग्गहगदीए तस्स सम्मत्तमाहप्पेण उववज्जिदपुण्ण-
पोग्गलस्स ओरालियणामकम्मोदएण सुअंध-सुरस-सुवण्ण-सुहयासपरमाणुपोग्गलबहुला
आगच्छंति, तस्स जोगवहुत्तदंसणादो । एदस्स जहण्णिया ओरालियमिस्सकायजोगस्स
अद्दा होदि ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९२ ॥

जैसे— देव, नारकी, अथवा मनुष्य सात आठ जन, अथवा बहुतसे सम्यग्दृष्टि
जीव, औदारिकमिश्रकाययोगी हुए । वे सब पर्याप्तपनेको प्राप्त हुए । उसी समयमें ही अन्य
असंयतसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए । इस प्रकार एक, दो, तीन इत्यादि
क्रमसे उत्कृष्ट संख्यातवार तक अन्य अन्य असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मिश्रकाययोगी होते गये ।
इन संख्यात शलाकाओंसे एक अपर्याप्तकालको गुणित करने पर वह सब काल चूंकि एक
मुहूर्तके अन्तर्गत ही होता है, इसलिए सूत्रकारने अन्तर्मुहूर्त काल कहा है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९१ ॥

जैसे— छठी पृथिवीका कोई एक सम्यग्दृष्टि नारकी वाईस सागर तक दुखोंसे एक
रस अर्थात् अत्यन्त पीड़ित होकर जीता रहा । पुनः छठी पृथिवीसे निकलकर मनुष्योंमें
उत्पन्न हुआ । विग्रहगतिमें, सम्यक्त्वके माहात्म्यसे उदयमें आये हैं पुण्यप्रकृतिके पुद्गलपरमाणु
जिसके पेसे उस जीवके औदारिकनामकर्मके उदयसे सुगन्धित, सुरस, सुवर्ण और शुभ
स्पर्शवाले पुद्गलपरमाणु बहुलतासे आते हैं, क्योंकि, उस समय उसके योगकी बहुलता देखी
जाती है । पेसे जीवके औदारिकमिश्रकाययोगका जघन्य काल होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट काल
अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९२ ॥

१ आ प्रती ' बहु आगच्छंति ' इति पाठ ।

एदं कस्स होदि ? सच्चट्टसिद्धिविमाणवासियदेवस्स तेत्तसि सागरोवमाणि सुहलालियस्स पमुट्टदुक्खस्स माणुसगम्भे गूह-मुत्तंत-पित्त-खरिस-वस-संभ-लोहि-सुक्कामाट्टिदे अइद्दुग्गंधे दूरसे दुव्वण्णे दुप्पासे चमारकुंडोपमे उप्पण्णस्स, तत्थ मंदो जोगो होदि त्ति आइरियपरंपरागदुवदेसा । मंदजोगेण थोवे पोग्गले गेण्हंतस्स ओरालियमिस्सद्धा दीहा होदि त्ति उच्चं होदि । अथवा जोगो एत्थ महल्लो चव होदु, जोगवसेण बहुआ पोग्गला आगच्छंतु, तो वि एदस्स दीहा अपज्जत्तद्धा होदि, विलिप्पाए दूसियस्स लहुं पज्जत्तिसमाणे' असामत्थियादो ।

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १९३ ॥

एसो एगसमओ कस्स होदि ? सत्तट्टजणणं दंडादो क्वाडं गंतूण तत्थ एगसमयमच्छिय रुजगं गदाणं, रुजगादो क्वाडं गंतूण एगसमयमच्छिय दंडं गदकेवलीणं वा ।

शंका— यह उत्कृष्ट काल किस जिवके होता है ?

समाधान—तेतीस सागरोपमकाल तक सुखसे लालित पालित हुए तथा दुःखोंसे रहित सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवके विद्या, मूत्र, आंतडी, पित्त, खरिस (कफ) चर्वी, नासिकामल, लोह शुक्र और आमसे व्याप्त, अतिदुर्गन्धित, कुत्सितरस, दुर्बर्ण और दुष्ट स्पर्शवाले चमारके कुंडके सदृश मनुष्यके गर्भमें उत्पन्न हुए जीवके औदारिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट काल होता है, क्योंकि, उसके विग्रहगतिमें तथा उसके पश्चात् भी मंदयोग होता है, इस प्रकारका आचार्य-परम्परागत उपदेश है । मंदयोगसे अल्प पुद्गलोंको ग्रहण करनेवाले जीवके औदारिकमिश्रकाययोगका काल दीर्घ होता है, यह अर्थ कहा गया है । अथवा, यहाँ पर चाहे योगकाल बड़ा ही रहा आवे, और योगके वशसे पुद्गल भी बहुतसे आते रहें, तो भी उक्त प्रकारके जीवके अपर्याप्तकाल बड़ा ही होता है, क्योंकि, विलाससे दूषित जीवके शीघ्रतापूर्वक पर्याप्तियोंके सम्पूर्ण करनेमें असामर्थ्य है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १९३ ॥

शंका— यह एक समय किसके होता है ?

समाधान— दंडसमुद्घातसे कपाटसमुद्घातको प्राप्त होकर और वहाँ एक समय रह कर प्रतरसमुद्घातको प्राप्त हुए सात आठ केवलियोंके यह एक समय होता है । अथवा, रुक्कसमुद्घातसे कपाटसमुद्घातको प्राप्त होकर और एक समय रह करके दंडसमुद्घातको प्राप्त होनेवाले केवलियोंके यह एक समय होता है ।

१ आ प्रतौ ' पज्जत्ति समाणो ' इति पाठः ।

उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ॥ १९४ ॥

एदे संखेज्जसमया कम्हि होंति ? कवाडे चडण-ओयरणकिरियावावददंड-पदर-पज्जायपरिणदसंखेज्जकेवलीहि संखेज्जसमयपंतीए ढिदेहि अधिउत्तेहि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ॥ १९५ ॥

एसो कम्हि होदि ? कवाडगदकेवलिम्हि चडणोदरणकिरियावावददंड-पदरपज्जाय-परिणदकेवलीहितो आगदम्हि । बहुआ समया किण्ण होंति ? ण, कवाडम्हि एगसमयं मोत्तूण बहुसमयमच्छणाभावा । कधमेक्कस्सेव जहण्णुक्कस्सववएसो ? ण एस दोसो, कणिट्ठो वि जेट्ठो वि एसो चेव मम पुत्तो त्ति लोगे ववहारुवलंभा ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ॥ १९४ ॥

शंका—ये संख्यात समय किसमें होते हैं ?

समाधान—कपाटसमुद्घातकी आरोहण और अवतरणरूप क्रियामें लगे हुए क्रमशः दंडसमुद्घात और प्रतरसमुद्घातरूप पर्यायसे परिणत संख्यात समयोंकी पंक्तिमें स्थित, ऐसे संख्यात केवलियोंके द्वारा अधिकृत अवस्थामें उक्त संख्यात समय पाये जाते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ॥ १९५ ॥

शंका—यह एक समय कहां पर होता है ?

समाधान—आरोहण और अवतरणरूप क्रियामें व्यापृत, ऐसे दंडसमुद्घात और प्रतरसमुद्घातरूप पर्यायसे क्रमशः परिणत हो उक्त समुद्घात केवली अवस्थासे आये हुए कपाटसमुद्घातगत केवलीके यह एक समय पाया जाता है ।

शंका—उक्त प्रकारके जीवोंके बहुत समय क्यों नहीं पाये जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कपाटसमुद्घातमें एक समयको छोड़कर बहुत समय तक रहनेका अभाव है ।

शंका—तो फिर एक ही समयके जघन्य और उत्कृष्टका व्यपदेश कैसे किया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, कनिष्ठ भी और ज्येष्ठ भी 'यही हमारा पुत्र है' इस प्रकारका लोकमें व्यवहार पाया जाता है, इसलिए एकमें भी जघन्य और उत्कृष्टका व्यपदेश हो सकता है ।

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १९६ ॥

कुदो ? सव्वद्धासु वेउव्वियकायजोगिमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिसंताण-वोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १९७ ॥

तं जथा— एगो मिच्छादिट्ठी मण-वचिजोगेसु अच्छिदो अट्ठाखएण वेउव्विय-कायजोगी जादो । एगसमयं वेउव्वियकायजोगेण दिट्ठो । विदियसमए मदो अण्णजोगं गदो । मरणेण विणा सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा जादो । अधवा सासण-सम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा वेउव्वियकायजोगद्धाए एगो समओ अत्थि ति मिच्छादिट्ठी जादो । विदियसमए अण्णजोगं गदो । वाघादेण एगसमओ णत्थि, णिरुद्धकायजोगादो । एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स वि एगसमयपरूवणा तीहि पयारेहि कायच्चा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९८ ॥

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १९६ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें वैक्रियिककाययोगवाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी परम्पराके विच्छेदका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १९७ ॥

जैसे— कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव, मनोयोग अथवा वचनयोगमें विद्यमान था । वह उस योगके कालके क्षय हो जानेसे वैक्रियिककाययोगी हो गया । तब वह एक समय वैक्रियिककाययोगके साथ दृष्टिगोचर हुआ । द्वितीय समयमें मरा और अन्य योगको प्राप्त हो गया । अथवा, मरणके बिना सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया । अथवा, सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि कोई जीव, वैक्रियिककाययोगके कालमें एक समय अवशेष रहने पर, मिथ्यादृष्टि हो गया और द्वितीय समयमें अन्य योगको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे एक समय लब्ध होता है । यहाँ पर व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, काययोगकी अपेक्षा कथन हो रहा है । (व्याघात तो मन या वचनयोगमें पाया जाता है ।) इसी प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके भी एक समयकी प्ररूपणा तीन प्रकारसे करना चाहिए ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९८ ॥

तं जधा— मिच्छादिट्टि-असंजदसम्मादिट्टिणो देवा णेरइया वा मण-वच्चिजोगेसु
ट्टिदा कायजोगिणो जादा । सच्चुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अण्णजोगिणो जादा । लद्ध-
मंतोमुहुत्तं ।

सासणसम्मादिट्टी ओघं ॥ १९९ ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,
एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेदेहि ओघसासणादो
भेदाभावा ।

सम्मामिच्छादिट्टीणं मणजोगिभंगो ॥ २०० ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,
एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमिच्चेएण मणजोगिसम्मा-
मिच्छादिट्टीहिंतो वेउव्वियकायजोगिसम्मामिच्छादिट्टीणं विसेसाभावा ।

**वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्टी असंजदसम्मादिट्टी केव-
चिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥२०१॥**

जैसे— मनोयोग या वचनयोगमें स्थित मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि कोई
देव अथवा नारकी जीव वैक्रियिककाययोगी हुए और उसमें सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल
रह करके अन्य योगवाले हो गये । इस प्रकारसे उत्कृष्ट कालरूप अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो गया ।

वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥१९९॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग,
तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवली, इस रूपसे
ओघवर्णित सासादनगुणस्थानके कालसे इसमें कोई भेद नहीं है ।

वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल मनोयोगियोंके समान
है ॥ २०० ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, तथा उत्कृष्ट काल पल्योपमका असं-
ख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त है । इस
प्रकारसे मनोयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंसे वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके कालमें
कोई विशेषता नहीं है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने
काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक होते हैं ॥२०१॥

एत्थ ताव मिच्छादिट्टिस्स जहण्णकालो बुच्चदे— सत्तट्ट जणा बहुआ वा दव्वलिंणिणो उवरिमगेवज्जेसु उववण्णा सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदा । संपहि सम्मादिट्ठीणं बुच्चदे— संखेज्जा संजदा' सव्वट्टदेवेषु दो विग्गहं कादूण पज्जत्तिं गदा । किमट्टं दो विग्गहे कराविदा ? बहुपोग्गलग्गहणट्टं । तं पि किमट्टं ? थोवकालेण पज्जत्तिसमाणट्टं । मिच्छादिट्ठी दो विग्गहे किण्ण कराविदो ? ण, तत्थ वि पडिसेहाभावा ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०२ ॥

सत्तट्ट जणा उक्कस्सेण असंखेज्जसेट्ठिमेत्ता वा मिच्छादिट्ठिणो देव-णेरइएसु उववज्जिय वेउव्वियमिस्सकायजोगिणो जादा, अंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदा । तस्समए चेव अण्णे मिच्छादिट्ठिणो वेउव्वियमिस्सकायजोगिणो जादा । एवमेक्क-दो-तिणिण उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ सलागाओ' लब्भंति । एदाहि वेउव्वियमिस्सद्धं

यहां पर पहले मिथ्यादृष्टिका जघन्य काल कहते हैं— सात आठ जन, अथवा बहुतसे द्रव्यलिंगी जीव उपरिम श्रैवेयकोंमें उत्पन्न हुए और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तकपनेको प्राप्त हुए। अब सम्यग्दृष्टिका जघन्य काल कहते हैं— संख्यात संयत दो विग्रह करके सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंमें पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुए ।

शंका— दो विग्रह किस लिए कराये गये हैं ?

समाधान— बहुतसी पुद्गलवर्गणाओंके ग्रहण करानेके लिए दो विग्रह कराये गये हैं ?

शंका— बहुतसे पुद्गलोंका ग्रहण भी किसलिए कराया गया ?

समाधान— अल्पकालके द्वारा पर्याप्तियोंके सम्पन्न करनेके लिए बहुतसे पुद्गलोंका ग्रहण आवश्यक है ।

शंका— मिथ्यादृष्टि जीवके दो विग्रह क्यों नहीं कराये गये ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उनमें भी प्रतिषेधका अभाव है, अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव भी दो विग्रह कर सकते हैं ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल पर्योपमके असंख्यातवै भाग है ॥ २०२ ॥

सात आठ जन, अथवा उत्कर्षसे असंख्यातश्रेणिमात्र मिथ्यादृष्टि जीव देव, अथवा नारकियोंमें उत्पन्न होकर वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुए, और अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुए । उसी समयमें ही अन्य मिथ्यादृष्टि जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुए । इस प्रकारसे एक, दो, तीनको आदि लेकर पर्योपमके असंख्यातवै भागमात्र

१ अ-आ-क प्रतिपु 'संखेज्जासंखेज्जा संजदा'; म २ प्रती तु स्वीकृतः पाठः ।

२ अ-आ-क प्रतिपु 'सलागाओ' इति पाठो नास्ति । म २ प्रती तु अस्ति ।

गुणिदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो वेउव्वियमिस्सकालो होदि । असंजदसम्मादिट्ठीणं पि एवं चेव वत्तव्वं । णवरि एदे एगसमएण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो उक्कस्सेण उप्पज्जंति, रासीदो वेउव्वियमिस्सकालो असंखेज्जगुणो । तं कथं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुव्वदेसादो । देवलोए उप्पज्जमाणसम्मादिट्ठीहिंतो देवणेइएसु उप्पज्जमाणमिच्छादिट्ठी असंखेज्जसेट्ठिगुणिदमेत्ता होंति त्ति कालो वि तावदिगुणो किण्ण होदि त्ति बुत्ते, ण होदि, उहयत्थ वेउव्वियमिस्सद्वासलागाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुव्वदेसा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०३ ॥

तं जधा—एकको दव्वलिगी उवरिमगेवेज्जेसु दो विग्गहे कादूण उववण्णो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो । सम्मादिट्ठी एको संजदो सव्वहुदेवेसु दो विग्गहे कादूण उववण्णो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंकी शलाकाएं पाई जाती हैं । इनसे वैक्रियिकमिश्रकाययोगके कालको गुणा करने पर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण वैक्रियिकमिश्रकाययोगका काल होता है । असंयतसम्यग्दृष्टियोंका भी काल इसी प्रकारसे कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि ये असंयतसम्यग्दृष्टि जीव एक समयमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उत्कृष्टरूपसे उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, इस उत्पन्न होनेवाली राशिसे वैक्रियिकमिश्रकाययोगका काल असंख्यातगुणा है ।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—आचार्यपरम्परागत उपदेशसे जाना जाता है कि एक समयमें उत्पन्न होनेवाली असंयतसम्यग्दृष्टिराशिसे उक्त काल असंख्यातगुणा है ।

शंका—देवलोकमें उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दृष्टियोंसे देव या नारकियोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात श्रेणियोंसे गुणितप्रमाण होते हैं; इसलिए वैक्रियिकमिश्रका काल भी असंख्यात श्रेणिगुणित क्यों नहीं होता है ?

समाधान—ऐसी आशंका पर उत्तर देते हैं कि नहीं होता है, क्योंकि, दोनों ही स्थानों पर, अर्थात् मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें, वैक्रियिकमिश्रकालकी शलाकाओंके पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होनेका उपदेश है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०३ ॥

एक द्रव्यलिंगो साधु उपरिम त्रैवेयकोंमें दो विग्रह करके उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तके द्वारा पर्याप्तिके प्राप्त हुआ । एक सम्यग्दृष्टि भावलिंगी संयत सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंमें दो विग्रह करके उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताके प्राप्त हुआ ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०४ ॥

तं जधा— एको तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छादिट्ठी सत्तमपुढविणेरइएसु उववण्णो सव्वचिरेण अंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो । सम्मादिट्ठिस्स— एको बद्धणिरयाउओ सम्मत्तं पडिवज्जिय दंसणमोहणीयं खविय पढमपुढविणेरइएसु उववज्जिय सव्वचिरेण अंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो । दोण्हं जहण्णकालेहिंतो उक्कस्सकाला दो वि संखेज्जगुणा । कधमेदं णव्वदे ? गुरुवदेसादो ।

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०५ ॥

तं जधा— सत्तट्ठ जणा बहुआ वा सासणसम्मादिट्ठिणो सगद्धाए एगो समओ अत्थि ति देवेषु उववण्णा । विदियसमए सव्वे मिच्छत्तं गदा । लद्धो एगसमओ ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०४ ॥

जैसे— कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ और सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ । अब असंयतसम्यग्दृष्टिकी कालपरूपणा करते हैं— कोई एक बद्धनरकायुष्क जीव सम्यक्त्वको प्राप्त होकर दर्शनमोहनीयका क्षपण करके और प्रथम पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न होकर सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ । दोनोंके जघन्य कालोंसे दोनों ही उत्कृष्ट काल संख्यातगुणे हैं ।

शंका— यह कैसे जाना ?

समाधान— गुरुके उपदेशसे जाना कि वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि एक जीव की अपेक्षा बतलाए गए जघन्य कालोंसे उन्हींके उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होते हुए भी संख्यातगुणित हैं ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २०५ ॥

जैसे— सात आठ जन, अथवा बहुतसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रहने पर देवोंमें उत्पन्न हुए और द्वितीय समयमें सबके सब मिथ्यात्वको प्राप्त हुए । इस प्रकार एक समय प्राप्त हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ २०६ ॥

१ प्रतिषु ' सव्वमिच्छत्तं ' इति पाठः ।

तं जहा— सत्तद्द जणा जावुक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा एक्क-
वे-तिण्णि समए आदिं कादूण जाव उक्कस्सेण समऊण-छ-आवलियाओ सासणद्धा अत्थि
त्ति देवेषु उववण्णा । ते सब्बे क्रमेण मिच्छत्तं गदा । तस्समए चेव पुब्बं व सासणा
देवेषुववण्णा । एवं णिरंतरं णाणाजीवे अस्सिदूण सासणद्धा पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-
भागमेत्ता सगरासीदो असंखेज्जगुणा जादा त्ति ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०७ ॥

तं जधा— एक्को सासणो सगद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति देवेषुववण्णो, विदिय-
समए मिच्छत्तं गदो । लद्धो एगसमओ ।

उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ ॥ २०८ ॥

तं जधा— एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ
अत्थि त्ति आसाणं गंतूण एगसमयमच्छिय उजुमदीए देवेषुववज्जिय समऊण-छ-आव-
लियाओ आसाणेणच्छिय मिच्छत्तं गदो ।

जैसे—सात भाठ जन, अथवा उत्कर्षसे पत्योपमके असंख्यातवें भागमात्र जीव,
एक, दो अथवा तीन समयको आदि करके उत्कर्षसे एक समय कम छह आवलीप्रमाण
सासादनकालके अवशेष रहने पर वे सबके सब देवोंमें उत्पन्न हुए । पुनः वे सब क्रमसे
मिथ्यात्वको प्राप्त हुए । उसी समयमें ही पूर्वके समान अन्य सासादनसम्यग्दृष्टि जीव
देवोंमें उत्पन्न हुए । इस प्रकार निरन्तर नाना जीवोंका आश्रय करके सासादनगुणस्थानका
काल पर्योपमके असंख्यातवें भागमात्र और अपनी राशिसे असंख्यातगुणा हो जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २०७ ॥

जैसे—कोई एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने गुणस्थानके कालमें एक समय
अवशिष्ट रहने पर देवोंमें उत्पन्न हुआ और द्वितीय समयमें ही मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया ।
इस प्रकारसे एक समयप्रमाण काल उपलब्ध हो गया ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल एक समय कम
छह आवलीप्रमाण है ॥ २०८ ॥

जैसे—कोई एक तिर्येच्च अथवा मनुष्य उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां
अवशिष्ट रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर और एक समय वहां पर रहकर
ऋतुगतिले देवोंमें उत्पन्न होकर एक समय कम छह आवलीप्रमाण काल तक सासादनगुण-
स्थानके साथ रह कर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ।

आहारकायजोगीसु प्रमत्तसंजदा केवचिरं कालादो ह्येति, पाणा-
जीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०९ ॥

तं जहा— सत्तद्ध जणा प्रमत्तसंजदा मणजोगेण वचिजोगेण वा अच्छिदा सगद्धाए
खीणाए आहारकायजोगिणो जादा । विदियसमए मुदा, मूलसरीरं वा पविट्ठा^१ । लद्धो एग-
समओ । एत्थ वाघाद-गुणपरावत्तीहि एगो समओ ण लब्भदि ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१० ॥

तं जहा— आहारसरीरमुट्ठाविदपमत्तसंजदा मण-वचिजोगिणो आहारकायजोगिणो
जादा । जाधे^२ ते जोगंतरं गदा, ताधे चैव अण्णे आहारकायजोगं पडिवण्णा । एवमेगादि
एगुत्तरवट्ठीए संखेज्जसलागाओ लब्भंति । एदाहि एगं कायजोगद्वं गुणिदे आहारकाय-
जोगद्धा उक्कस्सिया अंतोमुहुत्तपमाणा होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ २११ ॥

आहारककाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २०९ ॥

जैसे— सात आठ प्रमत्तसंयत मनोयोग अथवा वचनयोगके साथ वर्तमान थे । वे
अपने योगकालके क्षीण हो जाने पर आहारककाययोगी हुए । द्वितीय समयमें मरे अथवा मूल
औद्यारिकशरीरमें प्रविष्ट हुए । इस प्रकारसे एक समयका काल उपलब्ध हो गया । यहाँ पर
व्याघात अथवा गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा एक समय नहीं प्राप्त होता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१० ॥

जैसे— आहारकशरीरको उत्पन्न करनेवाले, मनोयोग अथवा वचनयोगमें विद्यमान
प्रमत्तसंयत जीव आहारककाययोगी हुए । जब वे किसी दूसरे योगको प्राप्त हुए उसी समयमें
ही अन्य प्रमत्तसंयत आहारककाययोगी प्राप्त हुए । इस प्रकार एकको आदि लेकर
एकोत्तर वृद्धिसे संख्यात शलाकाएं प्राप्त होती हैं । इन शलाकाओंसे एक काययोगके कालको
गुणा करने पर उत्कृष्ट आहारककाययोगका काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण हो जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा आहारककाययोगी जीवोंका जघन्य काल एक समय
है ॥ २११ ॥

१ प्रतिष्ठा 'पविट्ठो' इति पाठः ।

२ प्रतिष्ठा 'जाधे' इति पाठः ।

तं जथा—एको पमत्तसंजदो मणजोगे वचिजोगे वा अच्छिदो आहारकायजोगं गदो । विदियसमए मदो, मूलसरीरं वा पविट्ठो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१२ ॥

तं जथा—मणजोगे वचिजोगे वा द्विदपमत्तसंजदो आहारकायजोगं गदो, सब्बु-
क्कस्समंतोमुहुत्तमाच्छिय अण्णजोगं गदो ।

**आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति,
णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१३ ॥**

तं जथा—सत्तड्ढ जणा पमत्तसंजदा दिट्ठमग्गा आहारमिस्सजोगिणो जादा,
सब्बलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदा । एवं जहण्णकालो परूविदो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१४ ॥

तं जथा—सत्तड्ढ जणा पमत्तसंजदा दिट्ठमग्गा अदिट्ठमग्गा वा आहारमिस्सकाय-
जोगिणो जादा, अंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदा । तस्समए चैव अण्णे आहारमिस्सकाय-
जोगिणो जादा । एवमेक-दो-तिण्णि जाव संखेज्जसलागा जादा त्ति कादब्बं । पुणो

जैसे—मनोयोग या वचनयोगमें विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारक-
काययोगको प्राप्त हुआ और द्वितीय समयमें मरा, अथवा मूल शरीरमें प्रविष्ट होगया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१२ ॥

जैसे—मनोयोग या वचनयोगमें विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारककाय-
योगको प्राप्त हुआ । वहां पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अन्य योगको प्राप्त हुआ ।

आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयतजीव कितने काल तक होते हैं ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्तकाल होते हैं ॥ २१३ ॥

जैसे—देखा है मार्गको जिन्होंने ऐसे सात आठ प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्र-
काययोगी हुए और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुए । इस प्रकार जघन्य
काल कहा ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१४ ॥

जैसे—देखा है मार्गको जिन्होंने ऐसे, अथवा अदृष्टमार्गी सात आठ प्रमत्तसंयत
जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुए और अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुए । उसी
समयमें ही अन्य भी प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुए । इस प्रकारसे एक, दो,
तीनको आदि लेकर जब तक संख्यात शलाकाएं पूरी हों, तब तक संख्या बढ़ाते जाना

१ अ-आ प्रलोः अत्र ' विदियसमए मदो ' इत्यधिकः पाठः; क-प्रतौ म-प्रलोस्तु तत्पाठो नोपलभ्यते ।

एदाहि सलागाहि आहारमिस्सकायजोगद्वं गुणिदे आहारमिस्सकायजोगस्स उकस्सकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१५ ॥

तं जथा— एको पमत्तसंजदो पुच्चमणेगवारमुट्ठाविदआहारसरीरो आहारमिस्सकाय-जोगी जादो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो । लद्धो जहण्णकालो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१६ ॥

तं जथा— एको पमत्तसंजदो अदिट्ठमग्गो आहारमिस्सो जादो । सव्वचिरेण अंतो-मुहुत्तेण जहण्णकालादो संखेज्जगुणेण पज्जत्तिं गदो ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणा-जीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २१७ ॥

कुदो ? विग्गहगदीए वट्ठमाणजीवाणं सव्वद्धासु विरहाभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २१८ ॥

चाहिए । पुनः इन शलाकाओंसे आहारकमिश्रकाययोगके कालको गुणा करने पर आहारक-मिश्रकाययोगका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कृष्ट काल होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१५ ॥

जैसे— पूर्वमें जिसने अनेक बार आहारकशरीरको उत्पन्न किया है ऐसा कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुआ और सबसे लघु अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तकपनेको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे जघन्य काल प्राप्त हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१६ ॥

जैसे— नहीं देखा है मार्गको जिसने ऐसा कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारक-मिश्रकाययोगी हुआ, और जघन्य कालसे संख्यातगुणे सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तद्वारा पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ ।

कर्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २१७ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २१८ ॥

तं जहा- एगो मिच्छादिद्वी विग्गहगदिणामकम्मवसेण एगविग्गहे मारणंतिर्यं गदो । पुणो अंतोसुहुत्तेण छिण्णाउओ होदूण च्छाउवसेण उप्पण्णपढमसमए कम्मइयकाय-जोगी जादो । विदियसमए ओरालियमिस्सं वेउव्वियमिस्सं वा गदो । लद्धो एगसमओ ।

उक्कस्सेण तिण्णि समया ॥ २१९ ॥

तं जधा- एगो सुहुमेइंदियो अहो सुहुमवाउकाइएसु तिण्णि विग्गहं मारणंतिर्यं गदो । अंतोसुहुत्तेण छिण्णाउओ होदूण उप्पण्णपढमसमयप्पहुडि तिसु विग्गहेसु तिण्णि समयं कम्मइयजोगी होदूण चउत्थसमए ओरालियमिस्सं गदो । सुहुमेइंदियाणं सुहुमे-इंदिएसु उप्पज्जमाणानं तिण्णि विग्गहा होंति त्ति णियमो कधं णव्वदे ? णत्थि एत्थ णियमो, किंतु संभवं पडुच्च सुहुमेइंदियग्गहणं कदं । बादरेइंदिया सुहुमेइंदिया तसकाया वा सुहुमेइंदिएसु उववज्जमाणा तिण्णि विग्गहे करंति त्ति एस णियमो घेत्तव्वो, आइरिय-परंपरागदत्तादो । तिण्णिविग्गहाकरणदिसा बुच्चदे- बम्हलोगुद्देसे वामदिसालोगपरंतादो

जैसे— एक मिथ्यादृष्टि जीव, विग्रहगतिनामकर्मके वशसे एक विग्रहवाले मारणांतिकसमुद्रातको प्राप्त हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे छिन्नायुष्क होकर धांधी हुई आयुके वशसे उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें कर्मणकाययोगी हुआ । पुनः द्वितीय समयमें औदारिकमिश्रकाययोगको, अथवा वैक्रियिकमिश्रकाययोगको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे एक समय उपलब्ध हुआ ।

एक जीवकी अपेक्षा कर्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल तीन समय है ॥ २१९ ॥

जैसे— एक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव अधरतन सूक्ष्मवायुकायिकोंमें तीन विग्रहवाले मारणांतिकसमुद्रातको प्राप्त हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे छिन्नायुष्क होकर उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लगाकर तीन विग्रहोंमें तीन समय तक कर्मणकाययोगी होकर चौथे समयमें औदारिकमिश्रकाययोगको प्राप्त हो गया ।

शंका— सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके तीन विग्रह होते हैं, यह नियम कैसे जाना ?

समाधान— यद्यपि इस विषयमें कोई नियम नहीं है, तो भी संभावनाकी अपेक्षा यहाँ पर सूक्ष्म एकेन्द्रियोंका ग्रहण किया है । अतएव सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले बादर एकेन्द्रिय या सूक्ष्म एकेन्द्रिय अथवा त्रसकायिक जीव ही तीन विग्रह करते हैं, यह नियम ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, यही उपदेश आचार्यपरम्परासे आया हुआ है ।

अब तीन विग्रह करनेकी दिशाको कहते हैं— ब्रह्मलोकवर्ती प्रदेशपर वामदिशा-

तिरिच्छेण दक्षिणं तिण्णि रज्जुमेत्तं गंतूण तदो साद्धदसरज्जूणि अधो कंडुज्जुवं गंतूण तदो संसुहं चदुरज्जुमेत्तं आगंतूण कोणदिसाठिदलोगपेरंतसुहुमवाउकाइएसु उप्पज्जमाणस्स^१ तिण्णि विग्गहा होंति ।

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २२० ॥

तं जघा— सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी एगविग्गहं कादूणुप्पण्णपढमसमए एगसमओ कम्मइयकायजोगेण लब्भदि ।

उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ २२१ ॥

तं जघा— सासणसम्मादिट्ठी-असंजदसम्मादिट्ठिणो दोण्णि विग्गहं कादूण वद्धाउ-वसेणुप्पज्जिय दोण्णि समए अच्छिय ओरालियमिस्सं वेउव्वियमिस्सं वा गदा । तस्समए चेव अण्णे कम्मइयकायजोगिणो जादा । एवमेगं कंडयं कादूण एरिसाणि^२ आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तं कंडयाणि होंति । एदाणं सलागाहि दोण्णि समए गुणिदे आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो कम्मइयकायजोगस्स उक्कस्सकालो होदि ।

सम्बन्धी लोकके पर्यन्त भागसे तिरछे दक्षिणकी ओर तीन राजुप्रमाण जाकर पुनः साढ़े दश राजु नीचेकी ओर वाणके समान सीधी गतिसे जाकर पश्चात् सामनेकी ओर चार राजुप्रमाण आकर कोणवर्ती दिशामें स्थित लोकके अन्तवर्ती सूक्ष्म वायुकायिकोंमें समुत्पन्न होनेवाले जीवके तीन विग्रह होते हैं ।

कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २२० ॥

जैसे— कोई सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव एक विग्रह करके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें एक समय कर्मणकाययोगके साथ पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ २२१ ॥

जैसे— पूर्व पर्यायको छोड़नेके पश्चात् कितने ही सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि जीव बांधी हुई आयुके वशसे उत्पन्न होकर विग्रहगतिमें दो विग्रह करके, दो समय रह कर, पुनः औदारिकमिश्रकाययोगको अथवा वैक्रियिकमिश्रकाययोगको प्राप्त हुए । उसी समयमें ही दूसरे भी जीव कर्मणकाययोगी हुए । इस प्रकार इसे एक कांडक करके, इसी प्रकारके अन्य अन्य आवलीके असंख्यातवें भागमात्र कांडक होते हैं । इन कांडकोंकी शलाकाओंसे दोनों समयोंको गुणा करने पर आवलीका असंख्यातवां भागमात्र कर्मणकाय-योगका उत्कृष्ट काल होता है ।

१ अ-क प्रत्तो: 'काइयाए समुप्पज्जमाणस्स'; आ-प्रती 'काइयाएसं उप्पज्जमाणस्स' इति पाठः ।

२ प्रतिषु 'एरिसाणे' इति पाठः ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २२२ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

उक्कस्सेण वे समयं ॥ २२३ ॥

कुदो ? एदेसिं सुहुमेइंदिएसु उप्पत्तीए अभावा, वड्ढि-हाणिकमेण ड्ढिदलोगेते उप्पत्तीए अभावादो च ।

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णिण समयं ॥ २२४ ॥

तं जहा— सत्तड्ढु जणा वा सजोगिणो समगं कवाडं गदा, पदर-लोगपूरणं गंतूण भूओ पदरं गंतूण तिण्णिण समयं कम्मइयकायजोगिणो होदूण कवाडं गदा ।

उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ॥ २२५ ॥

कुदो ? तिण्णिण समइयं कंडयं काऊण संखेज्जकंडयाणमुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णिण समयं ॥ २२६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २२२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल दो समय है ॥ २२३ ॥

क्योंकि, इन सासादन या असंयतगुणस्थानवर्ती जीवोंकी सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पात्तिका अभाव है । तथा वृद्धि और हानिके क्रमसे विद्यमान लोकके अन्तमें भी उनकी उत्पात्तिका अभाव है ।

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवली कितने समय तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय होते हैं ॥ २२४ ॥

जैसे— सात अथवा आठ सयोगिजिन एक साथ ही कपाटसमुद्धातको प्राप्त हुए, और प्रतर तथा लोकपूरणसमुद्धातको प्राप्त होकर पुनः प्रतरसमुद्धातको प्राप्त हो, तीन समय तक कार्मणकाययोगी रह करके कपाटसमुद्धातको प्राप्त हुए ।

कार्मणकाययोगी सयोगिजिनोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ॥ २२५ ॥

क्योंकि, तीन समयवाले कांडकको करके उनके संख्यात कांडक पाये जाते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा कार्मणकाययोगी सयोगिजिनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय है ॥ २२६ ॥

कुदो ? पदरादो लोगपूरणादो वा कवाडस्स गमणाभावा ।

एवं जोगमग्गणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदेषु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति,
णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा' ॥ २२७ ॥

कुदो ? सव्वद्धासु इत्थिवेदमिच्छादिट्ठीणं विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २२८ ॥

तं जथा— एको इत्थिवेदगो सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो
पमत्तसंजदो वा परिणामपच्चएण मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णकालमच्छिय अण्णगुणं गदो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं ॥ २२९ ॥

तं जथा— एक्को अणप्पिदवेदो इत्थिवेदेषु उववण्णो । पुणो तत्थ इत्थिवेदेण
पलिदोवमसदपुधत्तं परियट्ठिय अणप्पिदवेदं गदो ।

क्योंकि, कार्मणकाययोगी सयोगिजिनका प्रतर और लोकपूरणसमुद्धातसे लौटकर
कपाटसमुद्धातमें जानेका अभाव है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २२७ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें स्त्रीवेदवाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २२८ ॥

जैसे— कोई एक स्त्रीवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा
संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सबसे
जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण रह करके अन्य गुणस्थानको चला गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमशतपृथक्त्व है ॥ २२९ ॥

जैसे— अविवाक्षित वेदवाला कोई एक जीव स्त्रीवेदियोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः वहां पर
स्त्रीवेदके साथ पल्योपमशतपृथक्त्व काल तक परिवर्तन करके अविवाक्षित वेदको चला गया ।

१ स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम् । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २३० ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण रासीदो असंखेज्जगुणो, पलिदो-
वमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलि-
याओ, इच्चेण ओघादो विसेसाभावा ओघमिदि वुत्तं ।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २३१ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सगरासीदो असंखेज्जगुणो
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं, इच्चेण
ओघादो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ २३२ ॥

कुदो ? इत्थिवेदम्हि असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदकालाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३३ ॥

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३० ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे अपनी राशिसे असंख्यातगुणा
पल्योपमका असंख्यातवां भाग, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह
आवलीप्रमाण काल है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई विशेषता नहीं है, अतएव ओघ
यह पद सूत्रमें कहा ।

स्त्रीवेदी सम्यग्मिध्यादृष्टियोंका काल ओघके समान है ॥ २३१ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त, और उत्कृष्ट काल अपनी
राशिसे असंख्यातगुणित पल्योपमके असंख्यातवें भाग है; तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य
और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई भेद नहीं है ।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २३२ ॥

क्योंकि, स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित कोई काल नहीं पाया
जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३३ ॥

१ सासादनसम्यग्दृष्ट्याणनिवृत्तिवादान्तानां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ किंतु असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

तं जघा— एगो मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा इत्थिवेदगो परिणामपच्चएण असंजदसम्मादिट्ठी होदूण सच्चजहणमंतोमुहुत्तमच्छिय जहण-कालविरोहेण गुणंतरं गदो । लद्धो जहणकालो ।

उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ २३४ ॥

कुदो ? अणप्पिदवेदस्स पणवण्णपलिदोवमाउट्ठिदिदेवीसु उववज्जिष छ पज्जत्तीओ समाणिय अंतोमुहुत्तं विस्समिय पुणो अंतोमुहुत्तं विसुद्धो होदूण वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय सम्मत्तेण आउट्ठिदिमणुपालिय कालं कादूण पुरिसवेदं पडिवण्णस्स तीहिं अंतोमुहुत्तेहि ऊणपणवण्णपलिदोवमुवलंभा ।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओघं ॥ २३५ ॥

कुदो ? ओघं पेक्खिदूण उत्तगुणट्ठाणाणं भेदाभावा । णवरि संजदासंजदउक्कस्स-कालम्हि अत्थि विसेसो । तं जघा— एक्को अट्ठवीससंतकम्मिओ त्थीवेदेसु कुक्कुड-

जैसे— एक मिथ्यादृष्टि, या सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत स्त्रीवेदी जीव परिणामोंके निमित्तसे असंयतसम्यग्दृष्टि होकर और सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त रह करके जघन्य कालके अविरोधसे किसी दूसरे गुणस्थानको चला गया । इस प्रकार जघन्य काल लब्ध हुआ ।

एक जीवकी अपेक्षा स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पल्योपम है ॥ २३४ ॥

क्योंकि, किसी अविश्वसित अन्य वेदवाले जीवके पचवन पल्योपमकी आयुस्थितिवाली देवियोंमें उत्पन्न हो, छहों पर्याप्तियोंको सम्पन्न कर, अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके, पुनः अन्तर्मुहूर्तमें विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर सम्यक्त्वके साथ अपनी आयुस्थितिको परिपालन कर, मरणको करके पुरुषवेदको प्राप्त हुए जीवके तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पचवन पल्योपमप्रमाण काल पाया जाता है ।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक स्त्रीवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३५ ॥

क्योंकि, ओघके कालको देखते हुए सूत्रोक्त गुणस्थानोंके कालोंमें कोई भेद नहीं है । केवल संयतासंयतके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है । वह इस प्रकार है—मोहकर्मकी अट्टाईस

१ उत्कर्षेण पंचपंचाशत्पल्योपमानि देशीनानि । स. सि. १, ८.

२ क प्रती 'विहि' इति पाठ ।

मकडादिसु उववज्जिय वे मासे गग्गे अच्छिदूण णिष्फडिय मुहुत्तंपुधत्तस्सुवरि सम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं घेत्तूण वेमासमुहुत्तपुधत्तूणपुव्वकोडिं संजमासंजमणुपालिय मदो देवो जादो ति । ओघग्घि पुण अंतोमुहुत्तपुव्वकोडिसंजदासंजदउक्कस्सकालो सण्णि-सम्मच्छिमपज्जत्तमच्छ-कच्छैव-मंइकादिसु लद्धो, एत्थ सो ण लब्भदि, सम्मुच्छिमेसु इत्थि-वेदाभावा ।

पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धां ॥ २३६ ॥

तिसु वि अद्वासु पुरिसवेदमिच्छादिट्ठीणं विरहासंभवा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३७ ॥

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स पमत्तसंजदस्स वा दिट्ठमग्गस्स मिच्छादिट्ठी होदूण सव्वजहण्णमच्छिय गुणंतरं पडिवण्णस्स अंतो-मुहुत्तुवलंभा ।

प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव स्त्रीवेदी कुक्कुट, मर्कट आदिमें उत्पन्न होकर, और दो मास गर्भमें रह, निकल करके मुहूर्तपृथक्त्वके ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयमको युगपत् ग्रहण करके दो मास और मुहूर्तपृथक्त्वसे कम पूर्वकोटीवर्षप्रमाण संयमासंयमको परिपालन करके मरा और देव हो गया । किन्तु ओघकालप्ररूपणामें जो अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी वर्ष संयतासंयतका उत्कृष्ट काल कहा है वह संक्षी सम्मूर्च्छिम पर्याप्त मच्छ, कच्छप मंइकादिकोंमें ही पाया जाता है, वह यहां पर नहीं पाया जाता है; क्योंकि, सम्मूर्च्छिम जीवोंमें स्त्रीवेदका अभाव है ।

पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २३६ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका विरह असंभव है ।

एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३७ ॥

क्योंकि, देखा है मार्गको जिसने, ऐसे असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयतके, मिथ्यादृष्टि होकर और सर्वजघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

- १ अ प्रतौ 'णिष्फलिय मुहुत्तं'; आ प्रतौ 'णिष्फडियमंतोमुहुत्तं'; क प्रतौ 'णिष्फडिलिय मुहुत्तं'; म प्रतौ 'णिष्फलिय मुहुत्त-' इति पाठः । २ प्रतिपु 'दुग्दं' इति पाठः ।
३ प्रतिपु 'कच्छमदि-' इति पाठः । ४ पुंवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवा षेक्षपाठर्वःकालः । स. सि. १, ८.
५ एक जीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स, सि. १, ८.

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ २३८ ॥

एदस्सुदाहरणं—एको त्थी-णवुंसयवेदेसु बहुवारं परियट्ठिदजीवो पुरिस्सवेदेसु उव-
वण्णो । पुरिसवेदो होदूण सागरोवमसदपुधत्तं परिभमिय अणप्पिदवेदं गदो । तिसदमादि
करिय जाव णवसदं ति एदिस्से संखाए सदपुधत्तमिदि सण्णा ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओघं ॥ २३९ ॥

कुदो ? एदेसिं उत्तगुणट्ठाणाणं णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सकालेहि ओघादो
भेदाभावा । णवरि संजदासंजदाणमित्थिवेदभंगो ।

णवुंसयवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं
पडुच्च सव्वद्दां ॥ २४० ॥

कुदो ? सव्वद्दासु एदेसिं विरहाभावा ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ २३८ ॥

इसका उदाहरण— स्त्री और नपुंसकवेदी जीवोंमें बहुत बार परिभ्रमण किया हुआ कोई एक जीव पुरुषवेदियोंमें उत्पन्न हुआ । पुरुषवेदी होकर सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक परिभ्रमण करके अविवक्षित वेदको चला गया । तीन सौ को आवि करके नौ सौ तककी संख्याकी 'शतपृथक्त्व' यह संज्ञा है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पुरुषवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३९ ॥

क्योंकि, इन सूत्रोक्त गुणस्थानोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालके साथ ओघसे कोई भेद नहीं है । विशेष बात यह है कि पुरुषवेदी संयतासंयतोंका काल स्त्रीवेदी संयतासंयतोंके समान है ।

नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २४० ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें इन जीवोंके विरहका अभाव है ।

१ उत्कृष्टेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । स. सि. १, ८.

२ अ-आ-क प्रतिषु 'अपिदवेदं' इति पाठः; स प्रतौ तु स्वीकृतपाठः ।

३ सासादनसम्यग्दृष्टिवाचनिवृत्तिवादरान्तानां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

४ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४१ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छादिट्टिस्स असंजदसम्मादिट्टिस्स संजदासंजदस्स संजदस्स वा मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णद्वमच्छिय गुणंतरं गदस्स अंतोमुहुत्तुवलंभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ २४२ ॥

एदस्सुदाहरणं— एकको परिभमिदत्थी-पुरिसवेदट्टिदिगो णत्तुंसयवेदं पडिवज्जिय तमच्छदंतो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टाणि परिभमिय अणवेदं गदो ।

सासणसम्मादिट्टी ओघं ॥ २४३ ॥

सम्मामिच्छादिट्टी ओघं ॥ २४४ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

असंजदसम्मादिट्टी केवचिरं कालदो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २४५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४१ ॥

क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयत, अथवा संयत जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहाँ पर सर्व जघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्तकाल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ २४२ ॥

इसका उदाहरण— जिसने पुरुषवेद और स्त्रीवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण किया है, ऐसा कोई एक जीव नपुंसकवेदको प्राप्त होकर, उसे नहीं छोड़ता हुआ आवलीके असंख्यातवै भागभाज पुद्गलपरिवर्तनोंतक परिभ्रमण करके अन्य वेदको प्राप्त हुआ ।

सासादनसम्यग्दृष्टि नपुंसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४३ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि नपुंसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४४ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टि नपुंसकवेदी जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २४५ ॥

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

३ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

४ किन्त्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४६ ॥

कुदो ? मिच्छादिद्विस्स संजदासंजदस्स वा दिट्ठमग्गस्स असंजदसम्मत्तं पडिवज्जिय सव्वजहण्णद्धमच्छिय गुणंतरं गदस्संतोमुहुत्तुवलंभा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २४७ ॥

कुदो ? अट्ठावीससंतकम्मिग्गस्स सत्तमपुट्ठीए^१ उप्पज्जिय छ पज्जत्तीओ समाणिय विस्समिय विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तावसेसे आउए मिच्छत्तं गंतूण आउअं बंधिय अंतोमुहुत्तं विस्समिय णिग्गदस्स छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणतेत्तीस-सागरोवलंभा ।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओघं ॥ २४८ ॥

कुदो ? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि ओघादो विसेसाभावा ।

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४६ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी मिथ्यादृष्टि या संयतासंयत जीवके असंयतसम्यक्त्वको प्राप्त होकर सर्वजघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होने पर अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ २४७ ॥

क्योंकि, मोहकर्मकी अट्ठावीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले किसी जीवके सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न होकर, छह पर्याप्तियोंको सम्पन्न करके, विश्राम कर और विशुद्ध होकर, तथा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर, आयुके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर, मिथ्यात्वको जाकर, आगामी भवसम्बन्धी आयुको बांधकर, अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके निकलनेवाले जीवके छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम काल पाया जाता है ।

संयतासंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक नपुंसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४८ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालके साथ ओघसे कोई विशेषता नहीं है ।

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उक्कस्सेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । स. सि. १, ८.

३ प्रतिपु 'सप्तपुट्ठीए' इति पाठः ।

अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघं
॥ २४९ ॥

कुंदो ? णाणेगजीवजहणुक्कस्सकालेहि ओघादो विसेसाभावा ।

एवं वेदमगणा समत्ता ।

कसायाणुवादेण कोहकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाइसु
मिच्छादिट्टिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा ति मणजेगिभंगो ॥ २५० ॥

कुंदो ? दव्वट्टियणयावलंबणेण । पज्जवट्टियणए अवलंबिज्जमाणे अत्थि विसेसो ।
तं वत्तइस्सामो । तं जघा- कोधकसाई मिच्छादिट्टी एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।
एत्थ कसाय-गुणपरावत्ति-मरणेहि एगसमओ वत्तव्वो । वाघादेण एगसमओ ण लब्भदि,
क्रोधस्सेव तत्थुप्पत्तीदो । तं जघा-एको सासणो सम्मामिच्छादिट्टी असंजदसम्मदिट्टी संजदा-
संजदो पमत्तसंजदो वा कोधकसाई एगसमयं कोधकसायद्धा अत्थि ति मिच्छत्तं गदो ।
एगसमयं कोधेण मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए अण्णकसायं गदो । एसा कसायपरावत्ती ।

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अवेदभागसे लेकर अयोगि-
केवली गुणस्थान तकके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४९ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालके साथ ओघसे
कोई विशेषता नहीं है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभ-
कषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत तकका काल मनोयोगियोंके
समान है ॥ २५० ॥

क्योंकि, सूत्रमें प्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन किया गया है । किन्तु पर्यायार्थिकनयके
अवलम्बन करने पर विशेषता है । उसे कहते हैं । जैसे— क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टि जीवका
एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है । यहां पर कषायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन
और मरणके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए । व्याघातकी अपेक्षा एक
समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, व्याघातके होने पर तो क्रोधकी ही उत्पत्ति होती है ।
जैसे— कोई सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असंयतसम्यग्दृष्टि, या संयता-
संयत, अथवा प्रमत्तसंयत क्रोधकषायी जीव क्रोधकषायके कालमें एक समय अवशेष
रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । एक समय क्रोधके साथ मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ,
और द्वितीय समयमें किसी और कषायको प्राप्त हो गया । यह कषायपरिवर्तनसम्बन्धी एक

१ अपगतवेदानां सामान्यत् । स. सि. १, ८.

२ कषायाद्वादेन चतुष्कषायीणां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तानां मनोयोगिवत् । स. सि. १, ८.

एको मिच्छादिद्वी अण्णकसाएणच्छिदो, तस्स अद्वाक्खएण कोधकसाओ आगदो, एगसमयं कोहेण सह दिट्ठो । विदियसमए सम्मामिच्छत्तं असंजदसम्मत्तं संजमासंजमं अप्पमत्त-भावेण संजमं वा पडिवण्णो । एसा गुणपरावत्ती । एको मिच्छादिद्वी अण्णकसाएणच्छिदो, तस्सद्वाक्खएण कोहकसाई जादो । एगसमयं कोहेण सह दिट्ठो । विदियसमए मदो अण्ण-कसाएसु उववण्णो । एसो मरणेण एगसमओ । कोहेण मदो णिरयगदीएण उप्पादेदब्बो, तत्थुप्पण्णजीवाणं पढमं कोधोदयस्सुवलंभा । माणेण मदो मणुसगदीएण उप्पादेदब्बो, तत्थुप्पण्णाणं पढमसमए माणोदयणियमोवदेसा । मायाए मदो तिरिक्खगईएण उप्पादे-दब्बो, तत्थुप्पण्णाणं पढमसमए माओदयणियमोवदेसा । लोभेण मदो देवगदीएण उप्पादे-दब्बो, तत्थुप्पण्णाणं पढमं चेय लोहोदओ होदि त्ति आइरियपरंपरागदुवदेसा । एवं सेसगुणट्ठाणाणं पि णादूण वत्तव्वं । एवं माण-माया लोभाणं वत्तव्वं । णवरि कसाय-गुण-परावत्ति-मरण-वाघादेहि चउहि वि एगसमयपरूवणा वत्तव्वा ।

समयकी प्ररूपणा है । एक मिथ्यादृष्टि जीव जो कि अन्य कषायमें वर्तमान था, उस कषायके कालक्षयसे क्रोधकषायको प्राप्त हुआ । एक समय वह क्रोधकषायके साथ दृष्टिगोचर हुआ और द्वितीय समयमें समयमिथ्यात्वको अथवा असंयतसम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ । यह गुणस्थानपरिवर्तन है । एक मिथ्यादृष्टि जीव अन्य कषायमें विद्यमान था । उस कषायके कालक्षयसे वह क्रोधकषायी हो गया । एक समय क्रोधकषायके साथ दृष्टिगोचर हुआ । पुनः द्वितीय समयमें मरा और अन्य कषायोंमें उत्पन्न हुआ । यह मरणकी अपेक्षा एक समय हुआ । क्रोधकषायके साथ मरा हुआ जीव नरकगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, नरकोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सर्व प्रथम क्रोधकषायका उदय पाया जाता है । मानकषायसे मरा हुआ जीव मनुष्यगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवोंके प्रथम समयमें मानकषायके उदयके नियमका उपदेश देखा जाता है । मायाकषायसे मरा हुआ जीव तिर्यग्गतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, तिर्यचोंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें मायाकषायके उदयका नियम देखा जाता है । लोभ-कषायसे मरा हुआ जीव देवगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, उनमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सर्व प्रथम लोभकषायका उदय होता है; ऐसा आचार्यपरम्परागत उपदेश है । इसी प्रकारसे शेष गुणस्थानोंका भी काल जान कर कहना चाहिए । इसी प्रकार मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषायोंके कालोंकी प्ररूपणा करना चाहिए । विशेष बात यह है कि कषायपरिवर्तन, गुणपरिवर्तन, मरण और व्याघात, इन चारोंके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए ।

१ णारयतिरिक्खणरसुरगईसु उप्पण्णपढमकालमि । कोहो माया माणो लोहोदओ अणियमो वापि ॥
गो. जी. २८८.

दोष्णि तिष्णि उवसमा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण एगसमयं ॥ २५१ ॥

तिसु वि कसाएसु दोष्णि उवसामगा, अणियट्ठीदो उवरि तिष्णं कसायाणमभावा ।
लोभकसाए तिष्णि उवसामगा, उवसंतकसाए लोभोदयाभावा । एदेसिं कसायपरावत्ति-
गुणपरावत्ति-वाघादेहि एगसमओ णत्थि । कुदो ? तहाविहुवएसामावा । किंतु अणियट्ठि-
सुहुमसांपराइयाणं चढंत-ओयरंत-पढमसमए मदाणं एगसमओ लब्भइ । अपुच्चस्स पुण
ओयरंतस्स पढमसमए चेव । कुदो ? चढमाणअपुच्चस्स पढमसमए मरणाभावा ।

उक्खस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५२ ॥

कुदो ? चढंत-ओयरंतपज्जयपरिणदजीवेहि अंतोमुहुत्तकालं एदेसिं गुणट्टाणाणम-
सुण्णत्तुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २५३ ॥

क्रोध, मान और माया, इन तीनों कषायोंकी अपेक्षा दो उपशामक अर्थात् आठवें
और नवें गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव, और लोभकषायकी अपेक्षा तीन उपशामक
अर्थात् आठवें, नवें और दशवें गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेण्यारोहक जीव, कितने काल तक
होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २५१ ॥

क्रोधादि तीनों ही कषायोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, ये दो गुणस्थानवर्ती
उपशामक जीव होते हैं; क्योंकि, अनिवृत्तिकरणसे ऊपर तीनों कषायोंका अभाव है । लोभ-
कषायमें अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, ये तीन गुणस्थानवर्ती उपशामक
जीव होते हैं, क्योंकि, उपशान्तकषाय गुणस्थानमें लोभकषायके उदयका अभाव है । इन
उपर्युक्त दो और तीन गुणस्थानवर्ती उपशामकोंमें कषायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और
व्याघात, इन तीनोंकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा नहीं है, क्योंकि, उस प्रकारका उपदेश
नहीं पाया जाता है । किन्तु, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंके चढ़ने या
उतरनेके प्रथम समयमें मरे हुए जीवोंके एक समय पाया जाता है । अपूर्वकरण गुणस्थानके
उतरनेके प्रथम समयमें ही एक समय पाया जाता है, क्योंकि, उपशमश्रेणी पर चढ़नेवाले
अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीवके प्रथम समयमें मरणका अभाव है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५२ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणी पर चढ़ती और उतरती हुई पर्यायसे परिणत जीवोंकी अपेक्षा
अन्तर्मुहूर्त काल इन गुणस्थानोंके अशून्य अर्थात् परिपूर्ण रूपसे पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २५३ ॥

१ इथोपशमकयोः X X केवललोभस्य च X X सामान्यीक्तः कालः । स. सि. १, ८.

कुदो ? तिण्हमुवसामगाणं मरणेण एगसमओवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५४ ॥

कुदो ? कसायाणमुदयस्स अंतोमुहुत्तादो उवरि णिच्छएण विणासो होदि ति गुरुवदेसा ।

दोण्णि तिण्णि खवा केवचिरं कालदो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५५ ॥

एत्थ एगसमओ किण्ण लब्भदे ? उच्चदे- ण ताव कसायपरावत्तीए एगसमओ लब्भदि, खवगुवसामगे सकसायुदयस्स जहण्णकालस्स वि अंतोमुहुत्तपरिमाणुवदेसा । ण गुणपरावत्तीए वि एगसमओ, एगसमइयस्स कसायुदयस्स खवगुवसमसेठीसु अभावा । ण वाघादेण, खवगुवसमसेठीसु वाघादस्स पडिसेधा । ण मरणेण वि, खवगेसु मरणाभावा । तदो जहण्णकालेण णिच्छएण अंतोमुहुत्तेण होदव्वमिदि ।

क्योंकि, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, इन तीनों उपशामक जीवोंके मरणके साथ एक समय पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५४ ॥

क्योंकि, कषायोंके उदयका अन्तर्मुहूर्त कालसे ऊपर निश्चयसे विनाश होता है, इस प्रकार गुरुका उपदेश है ।

अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, ये दो गुणस्थानवर्ती क्षपक तथा अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, ये तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ २५५ ॥

शंका—इन सूत्रोक्त क्षपक जीवोंके एक समयप्रमाण काल क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—उक्त आशंकापर उत्तर कइते हैं कि उक्त दोनों या तीनों गुणस्थानोंमें न तो कषायपरिवर्तनसे एक समय पाया जाता है, क्योंकि, क्षपक या उपशामकोंमें अपनी उदयागत कषायके उदयका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही होता है, ऐसा आचार्य परम्पराका उपदेश है । और न गुणपरिवर्तनके द्वारा ही एक समयप्रमाण काल पाया जाता है, क्योंकि, एक समयवाले कषायके उदयका क्षपक और उपशाम श्रेणियोंमें अभाव है । न व्याघातके द्वारा ही एक समय पाया जाता है, क्योंकि, क्षपक और उपशामश्रेणियोंमें व्याघातका प्रतिषेध पाया जाता है । और न मरणके द्वारा ही एक समय पाया जाता है, क्योंकि, क्षपकोंमें मरणका अभाव है । इसलिए यहाँ पर कषायोंका जघन्य काल निश्चयसे अन्तर्मुहूर्त ही होना चाहिए ।

१ X X द्वयोः क्षपकयोः केवललोभस्य च X सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५६ ॥

क्रमेण अंतोमुहुत्तंतरेण खवगसेट्ठिं चडमाणबहुजीवे अस्सिइण जहण्णकालादो संखेअगुणकालुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५७ ॥

एदस्स अत्थो सुगमो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५८ ॥

एदं पि सुगमं ।

अकसाईसु चटुट्टाणी ओघं ॥ २५९ ॥

कुदो ? सव्वेण वि पयारेण णाणेगजीवजहण्णकस्सकालगदविसेसाभावा ।

एवं कसायमग्गणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २६० ॥

उक्त जीवोंके उक्त कषायोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५६ ॥

क्योंकि, क्रमशः अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे क्षपकश्रेणी पर चढ़नेवाले बहुत जीवोंकी अपेक्षा जघन्य कालसे उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५७ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अकषायी जीवोंमें अन्तिम चतुर्गुणस्थानी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २५९ ॥

क्योंकि, सर्व ही प्रकारसे नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालगत कोई विशेषता नहीं है ।

इस प्रकार कषायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मत्स्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६० ॥

१ ××× अकषायणां च सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ ज्ञानानुवादेन मत्स्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टयोः सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियङ्कं देसुणमिच्चेएण ओघादो भेदाभावा । अणादिअणिहण-अणादिसणिहण-अण्णाणेषु मदि-सुदअण्णाणी वि अत्थि, किंतु तेहि एत्थ अण्हियारो ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २६१ ॥

कुदो ? मदि-सुदअण्णाणविरहिदसासणाणमभावा ।

विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २६२ ॥

कुदो ? विभंगणाणिमिच्छादिट्ठीणं तिसु वि कालेषु संताणवोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६३ ॥

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स वा दिट्ठमग्गस्स मिच्छत्तं पडिवज्जिय सव्वजहण्णद्धमच्छिय गुणंतरं गदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तविभंगणाणकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २६४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्त-मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है । इस प्रकारसे ओघके कालसे कोई भेद नहीं है । यद्यपि अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त अज्ञानोंमें मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी भी जीव हैं, किन्तु उनका यहां पर अधिकार नहीं है ।

मति-श्रुताज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६१ ॥

क्योंकि, मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानसे रहित सासादनगुणस्थानी जीवोंका अभाव है ।

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २६२ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी परम्पराके व्युच्छेदका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है ॥ २६३ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयतके मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होकर और सर्व जघन्य काल तक वहां रह कर गुणस्थानान्तरको गये हुए जीवके अन्तमुहूर्त-प्रमाण विभंगज्ञानका काल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेत्तीस सागरोपम है ॥ २६४ ॥

१ विभंगज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवपेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तमुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । स. सि. १, ८.

उदाहरण— एको मिच्छादिद्वी सत्तमाए पुढवीए उववज्जिय छ पज्जत्तीओ समाणिय विभंगणाणी जादो । अप्पणो आउट्टिदिमणुपालिय कालं काऊण गिग्गयस्स णट्ठं विभंगणाणं, अपज्जत्तद्वाए तस्स विरोहा । एवमंतोमुहुत्तूणतेत्तीससागरोवमाणि विभंगणाणस्स उक्कस्सकालो होदि ।

सासणसम्मादिद्वी ओघं ॥ २६५ ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण सगरासीदो असंखेज्जगुणो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेएण ओघादो भेदाभावादो ।

**आभिणिवोहियणाणि-सुदणाणि-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिद्वि-
प्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ति ओघं ॥ २६६ ॥**

कुदो ? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि एदेसिं ओघादो विसेसाभावा । णवरि ओधिणाणिसंजदासंजदेगजीवुक्कस्सकालमिह अत्थि विसेसो^१ । तं जहा— एको अट्ठावीस-

उदाहरण— एक मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न होकर और छहों पर्याप्तियोंको सम्पन्न करके विभंगज्ञानी हुआ । अपनी आयुस्थितिको परिपालन कर और मरण करके निकला । तब उसका विभंगज्ञान नष्ट हो गया, क्योंकि, अपर्याप्तकालमें विभंगज्ञानके होनेका विरोध है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कम तैतीस सागरोपम विभंगज्ञानका उत्कृष्ट काल होता है ।

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, उत्कृष्ट काल अपनी राशिसे असंख्यातगुणा, तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण, इस प्रकार ओघ कालसे कोई भेद नहीं है ।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछदुमत्थ गुणस्थान तक जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६६ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा इन सूत्रोक्त जीवोंके कालमें ओघसे कोई विशेषता नहीं है । केवल, अवधिज्ञानी संयतासंयत गुणस्थानसम्बन्धी एक जीवके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है । वह इस प्रकार है— मोहकर्मकी

१ सासादनसम्यग्दृष्टेः सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

३ प्रतिष्ठा 'अत्थि ति विसेसा' इति पाठः ।

संतकम्मिओ सण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो संजमासंजमं पडिवज्जिय मदि-सुदणाणी जादो । तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण ओधिणाणमुप्पादेदिं । एत्तिओ चेव विसेसो, णत्थि अणत्थ कत्थ वि ।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-
छदुमत्था ति ओघं ॥ २६७ ॥

कुदो ? पमत्तापमत्तसंजदाणमुवसामगाणं खवगाणं च णाणेगजीवजहण्णुकस्सकालेहि ओघादो भेदाभावा ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओघं ॥ २६८ ॥

कुदो ? केवलणाणविरहिदसजोगि-अजोगिकेवलीणमभावा ।

एवं णाणमग्गणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवल-
ति ओघं ॥ २६९ ॥

अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव संज्ञी, सम्मूर्च्छिम, पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो, विश्राम करता हुआ, विशुद्ध होकर, संयमासंयमको प्राप्त कर, मति-श्रुतज्ञानी हो गया । पुनः अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् अवधिज्ञानको उत्पन्न करता है । इतनी मात्र ही विशेषता है और कहीं भी कोई विशेषता नहीं है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६७ ॥

क्योंकि, प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका तथा उपशामक और क्षपकोंका नाना जीव और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंके साथ ओघप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है ।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६८ ॥

क्योंकि, केवलज्ञानसे रहित सयोगिकेवली और अयोगिकेवलियोंका अभाव है ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली तक जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६९ ॥

१ प्रतिपु ' ओधिणाणीमुप्पादेदि ' इति पाठः ।

२ संयमानुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसास्परायवथाख्यातशुद्धिसंयतानां ×× सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

सामणसंजमे अवलंबिदे विसेसाणुवलद्वीदो ।

सामाइय-च्छेदोवट्टावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणि-
यट्टि ति ओघं ॥ २७० ॥

कुदो ? पमत्तापमत्ताणं णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो
समओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । दोण्हमुवसामगाणं जहण्णेण णाणेगजीवं पडुच्च एगो
समओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं, दोण्हं खवगाणं णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतो-
मुहुत्तमिच्चेएण ओघादो भेदाभावा ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं ॥ २७१ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ,
अंतोमुहुत्तमिच्चेदेहि विसेसाभावा ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा
खवा ओघं ॥ २७२ ॥

कुदो ? सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदाणमुभयत्थ संजमभेदाभावा ।

क्योंकि, संयमसामान्यके अवलंबन करने पर ओघके कालसे कोई भेद नहीं
पाया जाता ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर
अनिष्टुत्तिकरण तकके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २७० ॥

क्योंकि, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल है । एक
जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आठवें और नवें
गुणस्थानवर्ती दोनों उपशामकोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय
है, तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आठवें और नवें गुणस्थानवर्ती दोनों क्षपकोंका नाना
जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार ओघके
कालसे कोई भेद नहीं है ।

परिहारविशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका काल ओघके समान
है ॥ २७१ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट
काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई विशेषता नहीं है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत उपशामक और
क्षपकोंका काल ओघके समान है ॥ २७२ ॥

क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंके दोनों श्रेणियोंमें संयमके भेदका अभाव है ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्टाणी ओघं ॥ २७३ ॥

कुदो ? ओघादेसेसु चदुण्हं गुणट्टाणाणं संजमभेदाणुवलंभा ।

संजदासंजदा ओघं ॥ २७४ ॥

सुगमो एदस्स अत्थो ।

असंजदेसु मिच्छादिट्टिण्हुडि जाव असंजदसम्मादिट्टि ति ओघं

॥ २७५ ॥

एदस्स वि अत्थो अवधारिओघद्धानं सुगमो ।

एवं संजममग्गणा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चक्रखुदंसणीसु मिच्छादिट्टी केवचिरं कालादो होंति,
णाणाजीवं पडुच्च सब्बद्धा ॥ २७६ ॥

कुदो ? चक्रखुदंसणिमिच्छादिट्टिविरहिदकालाभावा ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोमें अन्तिम चार गुणस्थानवाले जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २७३ ॥

क्योंकि, ओघ और आदेशमें चारों गुणस्थानोंके संयमोंमें कोई भेद नहीं पाया जाता है ।

संयतासंयतोका काल ओघके समान है ॥ २७४ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

असंयत जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक असंयतोका काल ओघके समान है ॥ २७५ ॥

जिन्होंने ओघसम्बन्धी कालको भलीभांति अवधारण किया है, ऐसे शिष्योंके लिए इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २७६ ॥

क्योंकि, चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

१ ××× संयतासंयतानां ×× सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ ××× असंयतानां च सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

३ दर्शनानुवादेन चक्षुर्वर्शनिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७७ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छादिट्ठिस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स संजदस्स वा दिट्ठमग्गस्स मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णद्वमच्छिय गुणंतरं गदस्स अंतोमुहुत्तकालुवलंभा ।

उकस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि ॥ २७८ ॥

उदाहरणं— एगो अचक्खुदंसणी मिच्छादिट्ठी चक्खुदंसणीसु उववण्णो । चक्खुदंसणी होदूण वे सागरोवमसहस्साणि परिभमिय अचक्खुदंसणं गदो । लद्धिअपज्जत्तेसु चक्खुदंसणं णिव्वत्तिअपज्जत्ताणं व किण्ण उच्चदे ? ण, तम्हि भवे तत्थ चक्खुदंसणुवजोगाभावा । णिव्वत्तिअपज्जत्ताणं तम्हि भवे णियमेण चक्खुदंसणुवजोगुवलंभा ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागल्लदुमत्था त्ति ओघं ॥ २७९ ॥

कुदो ? चक्खुदंसणविरहिदसासणादीणमभावा ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७७ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असंयतसम्यग्दृष्टि, या संयतासंयत, या संयतके मिथ्यात्वको प्राप्त होकर वहाँ पर सर्व जघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल दो हजार सागरोपम है ॥ २७८ ॥

उदाहरण— कोई एक अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव चक्षुदर्शनियोंमें उत्पन्न हुआ, और चक्षुदर्शनी होकर दो हजार सागरोपम काल तक परिभ्रमण करके अचक्षुदर्शनको प्राप्त हो गया । (इस प्रकार सूत्रोक्त काल सिद्ध हुआ ।)

शंका — निर्वृत्त्यपर्याप्तकोंके समान लब्ध्यपर्याप्तकोंमें चक्षुदर्शन क्यों नहीं कहा ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्तकोंके उसी भवमें चक्षुदर्शनोपयोगका अभाव पाया जाता है । किन्तु निर्वृत्त्यपर्याप्तकोंके तो उसी भवमें नियमसे ही चक्षुदर्शनोपयोग पाया जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागल्लदुमत्थ गुणस्थान तक चक्षुदर्शनी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २७९ ॥

क्योंकि, चक्षुदर्शनसे रहित सासादनादि गुणस्थान नहीं पाये जाते हैं ।

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहसे । स. सि. १, ८.

३ सासादनसम्यग्दृष्टिवादीनां क्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसायवीदराग-
छदुमत्था ति ओघं ॥ २८० ॥

कुदो ? अचक्खुदंसणविरहिदसावरणजीवाणुवलंभा ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ २८१ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २८२ ॥

एदाणि दोवि सुत्ताणि अवहारिदणाणाणुवादाणं सुगमाणि ।

एवं दंसणमरगणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छा-
दिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २८३ ॥

कुदो ? सव्वकालं तिलेस्सियमिच्छादिट्ठीगं विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८४ ॥

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागद्वयस्य गुण-
स्थान तकका काल ओघके समान है ॥ २८० ॥

क्योंकि, अचक्षुदर्शनसे रहित सावरण जीव नहीं पाये जाते हैं ।

अवधिदर्शनी जीवोंका काल अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २८१ ॥

केवलदर्शनी जीवोंका काल केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २८२ ॥

ज्ञानमार्गणाके कालानुवादका अवधारण करनेवाले शिष्योंके लिए ये दोनों ही सूत्र
सुगम हैं ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें
मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते
हैं ॥ २८३ ॥

क्योंकि, सर्वकाल ही तीनों अशुभ लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा तीनों अशुभ लेश्यावाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ २८४ ॥

१ अचक्षुदर्शनियु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ अवधि-केवलदर्शनिनोरवाधि-केवलज्ञानिवत् । स. सि. १, ८.

३ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्याद्यु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

४ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

किण्हलेस्साए ताव अंतोमुहुत्तपरुवणं कीरदे । तं जघा- नीललेस्साए अच्छिदस्स तिस्से अद्वाखण्ण किण्हलेस्सा जादा । सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिदूण नीललेस्सिओ जादो । काउलेस्सिओ किण्ण होदि ? ण, किण्हलेस्साए परिणदस्स जीवस्स अणंतरमेव काउलेस्सापरिणमणसत्तीए असंभवा ।

नीललेस्साए उच्चदे- हीयमाण-वड्डमाणकिण्हलेस्साए काउलेस्साए वा अच्छिदस्स नीललेस्सा आगदा । सव्वजहण्णमंतोमाच्छिय जहण्णकालाविरोहेण काउलेस्सं किण्हलेस्सं वा गदो, अण्णलेस्सागमणासंभवा । के वि आइरिया हीयमाणलेस्साए चेव जहण्णकालो होदि त्ति भणंति ।

काउलेस्साए वि उच्चदे- हायमाणनीललेस्साए तेउलेस्साए वा अच्छिदस्स काउलेस्सा आगदा । तत्थ सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय जदि तेउलेस्सादो आगदो, तो नीललेस्सं णेदव्वो । अह नीललेस्सादो आगदो तो तेउलेस्साए णेदव्वो, अण्णहा संकिलेस-विसोहीओ आउरंतस्स जहण्णकालाणुववत्तीदो । एत्थ जोगस्सेव एगसमओ जहण्ण-

पहले कृष्णलेश्याके अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है— नीललेश्यामें वर्तमान किसी जीवके उस लेश्याके काल क्षय हो जानेसे कृष्णलेश्या हो गई, और वह उसमें सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके नीललेश्यावाला हो गया ।

शंका—कृष्णलेश्याके पश्चात् कापोतलेश्यावाला क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कृष्णलेश्यासे परिणत जीवके तदनन्तर ही कापोतलेश्यारूप परिणमन शक्तिका होना असंभव है ।

अब नीललेश्याके अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा करते हैं— हीयमान कृष्णलेश्यामें अथवा वर्धमान कापोतलेश्यामें विद्यमान किसी जीवके नीललेश्या आगई । तब वह जीव उसमें सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके जघन्य कालके अविरोधसे यथासंभव कापोतलेश्याको अथवा कृष्णलेश्याको प्राप्त हुआ, क्योंकि, इन दोनों लेश्याओंके सिवाय उसके अन्य किसी लेश्याका आगमन असंभव है । कितने ही आचार्य, हीयमान लेश्यामें ही जघन्य काल होता है, ऐसा कहते हैं ।

अब कापोतलेश्याके जघन्य कालको कहते हैं— हायमान नीललेश्यामें अथवा तेजोलेश्यामें विद्यमान जीवके कापोतलेश्या आगई । वह जीव उस लेश्यामें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके, यदि तेजोलेश्यासे आया है तो नीललेश्यामें ले जाना चाहिए; और यदि नीललेश्यासे आया है तो तेजोलेश्यामें ले जाना चाहिए । अन्यथा संक्लेश और विशुद्धिको आपूरण करनेवाले जीवके जघन्य काल नहीं बन सकता है ।

शंका—यहां पर योगपरावर्तनके समान एक समयरूप जघन्य काल क्यों नहीं

१ म-प्रती ' हायमाण ' इत्यपि पाठः ।

कालो किण्ण लब्भदे ? ण, जोग-कसायाणं व लेस्साए तिस्सा परावत्तीए गुणपरावत्तीए मरणेण वाघादेण वा एगसमयकालस्सासंभवा । ण ताव लेस्सापरावत्तीए एगसमओ लब्भदि, अप्पिदलेस्साए परिणमिदविदियसमए तिस्से विणासाभावा, गुणंतरं गदस्स विदियसमए लेस्संतरगमणाभावादो च । ण गुणपरावत्तीए, अप्पिदलेस्साए परिणदविदियसमए गुणंतरगमणाभावा । ण च वाघादेण, तिस्से वाघादाभावा । ण च मरणेण, अप्पिदलेस्साए परिणदविदियसमए मरणाभावा ।

उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि सादिरेयाणि^१
॥ २८५ ॥

एदेसिमुदाहरणाणि । तं जघा— णीललेस्साए अच्छिदस्स किण्हलेस्सा आगदा । तत्थ सव्वुकस्समतोमुहुत्तमच्छिय अधो सत्तमीए पुढवीए उववण्णो । तत्थ तेत्तीसं सागरोवमाणि गमिय उवट्ठिदो । पच्छा वि अंतोमुहुत्तकालं भावणवसेण सा चेव लेस्सा होदि । एवं दोहि अंतोमुहुत्तेहि सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि किण्हलेस्साए उक्कस्सकालो होदि ।

पाया जाता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, योग और कषायोंके समान लेश्यामें लेश्याका परिवर्तन, अथवा गुणस्थानका परिवर्तन, अथवा मरण और व्याघातसे एक समय कालका पाया जाना असंभव है । इसका कारण यह है कि न तो लेश्यापरिवर्तनके द्वारा एक समय पाया जाता है, क्योंकि, विवक्षित लेश्यासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें उस लेश्याके विनाशका अभाव है । तथा इसी प्रकारसे अन्य गुणस्थानको गये हुए जीवके द्वितीय समयमें अन्य लेश्यामें जानेका भी अभाव है । न गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समय संभव है, क्योंकि, विवक्षित लेश्यासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें अन्य गुणस्थानके गमनका अभाव है । न व्याघातकी अपेक्षा ही एक समय संभव है, क्योंकि, वर्तमानलेश्याके व्याघातका अभाव है । और न मरणकी अपेक्षा ही एक समय संभव है, क्योंकि, विवक्षित लेश्यासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें मरणका अभाव है ।

उक्त तीनों अशुभ लेश्याओंका उत्कृष्ट काल क्रमशः साधिक तेत्तीस सागरोपम, साधिक सत्तरह सागरोपम और साधिक सात सागरोपम प्रमाण है ॥ २८५ ॥

इनके उदाहरण इस प्रकार हैं— नीललेश्यामें विद्यमान किसी जीवके कृष्णलेश्या आगई । उसमें वह सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके मरण कर नीचे सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । वहां वह तेत्तीस सागरोपम काल बिताकर निकला । सो पीछे भी अन्तर्मुहूर्त काल तक भावनाके वशसे वही ही लेश्या होती है । इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक तेत्तीस सागरोपम कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल होता है ।

१ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि सात्तिरेयाणि । स. सि. १, ८.

णीललेस्साए उच्चदे— काउलेस्साए अच्छिदस्स णीललेस्सा आगदा । तत्थ दीह-
मंतोमुहुत्तमच्छिदूण पंचमीए पुठवीए उववण्णो । तत्थ सत्तारस सागरोवमाणि ताए लेस्साए
गमिय उववट्ठिदो । उववट्ठिदस्स वि अंतोमुहुत्तं सा चेव लेस्सा होदि । एवं दोहि अंतो-
मुहुत्तेहि सादिरेयाणि सत्तारस सागरोवमाणि णीललेस्साए उक्कस्सकालो होदि ।

काउलेस्साए उच्चदे— तेउलेस्साए अच्छिदस्स सगद्धाए खीणाए काउलेस्सा
आगदा । तत्थ दीहमंतोमुहुत्तमच्छिय तदियाए पुठवीए उववण्णो । तीए लेस्साए सत्त
सागरोवमाणि तत्थ गमिय उववट्ठिदो । उववट्ठिदस्स वि सा चेव लेस्सा अंतोमुहुत्तं
होदि । एवं दोहि अंतोमुहुत्तेहि सादिरेयाणि सत्त सागरोवमाणि काउलेस्साए उक्कस्स-
कालो होदि ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २८६ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण रासीदो असंखेज्ज-
गुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण
छ आवलियाओ, एदेहि तिलेस्सागदसासणानं तदो भेदाभावा ।

अब नीललेश्याका काल कहते हैं— कापोतलेश्यामें वर्तमान जीवके नीललेश्या आ
गई । उसमें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रह करके वह जीव पांचवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । वहां पर
सत्तरह सागरोपम काल उस लेश्याके साथ बिताकर निकला । निकलने पर भी अन्तर्मुहूर्त
तक वही ही लेश्या होती है । इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक सत्तरह सागरोपम नील-
लेश्याका उत्कृष्ट काल होता है ।

अब कापोतलेश्याका उत्कृष्ट काल कहते हैं— तेजोलेश्यामें विद्यमान किसी जीवके उस
लेश्याके कालके क्षीण हो जाने पर कापोतलेश्या आगई । उसमें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह
कर मरण करके तृतीय पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । वहां पर उसी लेश्याके साथ सात सागरोपम
काल बिताकर निकला । निकलनेके पश्चात् भी वही लेश्या अन्तर्मुहूर्त तक रहती है । इस
प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक सात सागरोपम कापोतलेश्याका उत्कृष्ट काल होता है ।

उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान
है ॥ २८६ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे अपनी राशिसे
असंख्यातगुणा पल्योपमका असंख्यातवां भाग काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक
समय और उत्कर्षसे छह आवलीप्रमाण काल है । इस प्रकारसे तीनों अशुभ लेश्याओंको
प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके कालका ओघसे कोई भेद नहीं है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिग्धादृष्टयोः सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

सम्मामिच्छादिद्वी ओघं ॥ २८७ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सगरासीदो असंखेज्ज-
गुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमिच्छेदेहि
तदो भेदाभावा ।

असंजदसम्मामिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धां ॥ २८८ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८९ ॥

तं जहा— एगो असंजदसम्मामिच्छादिद्वी वड्डमाणणीललेस्साए अच्छिदो किण्वलेस्सं गदो ।
तत्थ सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो णीललेस्सामागदो । णीललेस्साए उच्चदे— हाय-
माणकिण्वलेस्सिओ णीललेस्सी जादो । ताए सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय काउलेस्सं गदो ।
काउलेस्साए उच्चदे— एगो सम्मामिच्छादिद्वी हायमाणणीललेस्सिओ काललेस्सं गदो । तत्थ

उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान
है ॥ २८७ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट काल अपनी राशिसे
असंख्यातगुणा पत्योपमका असंख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट
काल अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार इनका ओघकालसे कोई भेद नहीं है ।

उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८९ ॥

जैसे— वर्धमान नीललेश्यामें विद्यमान कोई एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कृष्ण-
लेश्याको प्राप्त हुआ । वहाँ पर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पुनः नीललेश्यामें
आगया । अब नीललेश्याका काल कहते हैं— हायमान कृष्णलेश्यावाला कोई एक जीव
नीललेश्यावाला होगया । उस लेश्यामें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर कापोत-
लेश्याको प्राप्त होगया । अब कापोतलेश्याका काल कहते हैं— हायमान नीललेश्यावाला

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवपेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्राप्ते जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

सम्बजहणमंतोमुहुत्तमच्छिय तेउलेस्सओ जादो । पुच्चं हायमाण-वड्डमाणतेउ-काउलेस्सा-
हिंतो काउ-णीललेस्साणमागदाणं जहणकालो उत्तो, सो संपहि एत्थ किण्ण उच्चदे ? ण,
पाएण तस्सुवएसाभावा ।

उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि ॥२९०॥

किण्हलेस्साए देसूणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि, णीललेस्साए देसूणसत्तारस सागरो-
वमाणि, काउलेस्सियाए देसूणसत्त सागरोवमाणि । ' जहा उद्देशो तथा णिद्देशो ' ति
णायादो उदाहरणाणि उद्देशपरिवाडीए णिद्दिसंते । तं जहा— एको अट्टावीससंतकम्मिओ
मिच्छादिट्ठी सत्तमाए पुढवीए किण्हलेस्साए सह उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो
विस्संतो विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवण्णो । अंतोमुहुत्तूणतेत्तीसं सागरोवमाणि भवसंबंधेण
अवट्ठिदाए किण्हलेस्साए गमिय अंतोमुहुत्तावसेसे मिच्छत्तं गंतूण आउअं बंधिय विस्समिय
मदो, तिरिक्खो जादो । एवं छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि किण्ह-
लेस्साए उक्कस्सकालो होदि ।

एक असंयतसम्पग्दष्टि जीव कापोतलेश्याको प्राप्त हुआ । उसमें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल
रह करके तेजोलेश्याको प्राप्त हुआ ।

शंका—पहले हायमान तेजोलेश्या और वर्धमान कापोतलेश्यासे क्रमशः कापोत
और नीललेश्यामें आये हुए जीवोंका जघन्य काल कहा है, सो वह अब यहां पर क्यों नहीं
कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रायः आजकल उस प्रकारके उपदेशका अभाव है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागरोपम, सत्तरह सागरोपम
और सात सागरोपम है ॥ २९० ॥

कृष्णलेश्यामें कुछ कम तेतीस सागरोपम, नीललेश्यामें कुछ कम सत्तरह सागरोपम
और कापोतलेश्यामें कुछ कम सात सागरोपम काल है । सो ' जैसा उद्देश होता है, उसी
प्रकारसे निर्देश होता है ' इस न्यायानुसार इनके उदाहरण भी उद्देशकी परिपाटीसे निर्दिष्ट
किये जाते हैं । वे इस प्रकारसे हैं— मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक
मिथ्यादष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें कृष्णलेश्याके साथ उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त
होकर, विश्राम ले तथा विशुद्ध होकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । सम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त
कम तेतीस सागरोपम भवसम्बन्धसे अवस्थित कृष्णलेश्याके साथ बिताकर, अन्तर्मुहूर्त
कालके अवशिष्ट रहने पर मिथ्यात्वको जाकर परभवकी आयु बांधकर, विश्राम लेकर मरा
और तिर्यंच हुआ । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट
काल होता है ।

१ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशीनानि । स. सि. १, ८.

एगो अट्टावीससंतकम्मिओ णीललेस्साए पंचमपुढवीए हेड्डिमपत्थडे उक्कस्साउ-
ड्डिदिओ होदूण उववण्णो। तत्थ जहणिया किण्हलेस्सा चे ण, सव्वेसि णेरइयाणं तत्थतणाणं
तीए चेव लेस्साए अभावा। एक्कम्मिह पत्थडे मिण्णलेस्साणं कथं संभवो? विरोहाभावा। एसो
अत्थो सव्वत्थ जाणिद्व्वो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो होदूण सम्मत्तं
पडिवण्णो। आउड्डिदिमणुपालिय मुदो मणुस्सो जादो। तत्थ त्रि अंतोमुहुत्तं तीए चेव
लेस्साए अच्छिदूण लेस्संतरं गदो। पच्छिल्लमंतोमुहुत्तं पुच्चिल्लतिसु अंतोमुहुत्तेसु सोहिय
सुद्धसेसेणं ऊणाणि सत्तारस सागरोवमाणि असंजदसम्मादिट्टिस्स णीललेस्साए उक्कस्सकालो
होदि। एगो मिच्छादिट्ठी तदियाए पुढवीए उक्कस्साउड्डिदिओ काउलेस्साओ होदूण उव-
वण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय आउ-
ड्डिदिमणुपालिय मणुसो जादो। पच्छा त्रि अंतोमुहुत्तं सा चेव लेस्सा होदि। पच्छिल्लं

मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव नीललेश्याके साथ
पांचवीं पृथिवीके अधस्तन प्रस्तारके उत्कृष्ट आयुर्कर्मकी स्थितिवाला हो करके उत्पन्न हुआ।

शंका—पांचवीं पृथिवीके अधस्तन प्रस्तारमें तो जघन्य कृष्णलेश्या होती है ?

समाधान—नहीं, पांचवीं पृथिवीके अधस्तन प्रस्तारके समस्त नारकियोंके उसी
ही लेश्याका अभाव है।

शंका—एक ही प्रस्तारमें दो भिन्न भिन्न लेश्याओंका होना कैसे संभव है ?

समाधान—एक ही प्रस्तारमें भिन्न भिन्न जीवोंके भिन्न भिन्न लेश्याओंके होनेमें
कोई विरोध नहीं है। (अर्थात् कुछ नारकियोंके उत्कृष्ट नीललेश्या ही होती है, और कुछके
जघन्य कृष्णलेश्या होती है।) यही अर्थ सर्वत्र जानना चाहिए।

इस प्रकार पांचवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ वह जीव छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो,
विश्राम लेकर तथा विशुद्ध होकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। वहां अपनी आयुस्थितिका
परिपालन करके मरा और मनुष्य हुआ। वहां पर भी अन्तर्मुहूर्त तक उसी पूर्वलेश्याके साथ
रह कर अन्य लेश्याको प्राप्त हुआ। इस प्रकार पिछले अन्तर्मुहूर्तको पूर्वके तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे
कम करके बचे हुए अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सत्तरह सागरोपम असंयतसम्यग्दृष्टिके नीललेश्याका
उत्कृष्ट काल होता है।

एक मिथ्यादृष्टि जीव तीसरी पृथिवीमें वहां की उत्कृष्ट आयुर्कर्मकी स्थितिवाला
तथा कापोतलेश्यावाला होकरके उत्पन्न हुआ, और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो, विश्राम
ले, विशुद्ध होकर सम्यक्त्वको प्राप्त करके और अपनी आयुर्कर्मकी स्थितिको भोग करके
मनुष्य हुआ। पीछे भी अन्तर्मुहूर्त तक वही ही लेश्या होती है। इस पिछले अन्तर्मुहूर्तको

अंतोमुहुत्तं पुव्विल्लतिसु' अंतोमुहुत्तेसु सोहिय सुद्धसेसेण ऊणाणि सत्त सागरोवमाणि काउलेस्साए उक्कस्सकालो होदि ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केव-
चिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २९१ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९२ ॥

तं जथा— हायमाणपम्मलेस्साए अच्छिदस्स सगद्धाखएण तेउलेस्सा आगदा । तत्थ सव्वजहणमंतोमुहुत्तमच्छिय काउलेस्सं गदो । एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स वि तेउलेस्साए जहणकालो वत्तव्वो । पम्मलेस्साए उच्चदे— एक्को सुक्कलेस्साए हायमाणाए अच्छिदो मिच्छादिट्ठी तिस्से अद्धाखएण पम्मलेस्सिओ जादो । सव्वजहणमंतोमुहुत्तमच्छिदूण तेउलेस्सं गदो । एवं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं मिच्छादिट्ठी पम्मलेस्साए । एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स वि जहणकालो वत्तव्वो ।

पहलेके तीन अन्तर्मुहूर्तोंमेंसे घटा कर शेष बचे हुए अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सात सागरोपम कापोतलेश्याका उत्कृष्ट काल होता है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९२ ॥

जैसे— हायमान पद्मलेश्यामें विद्यमान किसी मिथ्यादृष्टि जीवके अपनी लेश्याके काल क्षय हो जानेसे तेजोलेश्या आगई । उसमें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वह कापोतलेश्याको प्राप्त हो गया । इस प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके भी तेजोलेश्याका जघन्य काल कहना चाहिए ।

अब पद्मलेश्याका जघन्य काल कहते हैं— कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव हायमान शुक्ललेश्यामें विद्यमान था । उस लेश्याके कालके क्षय हो जानेसे वह पद्मलेश्यावाला हो गया । वहां सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके तेजोलेश्याको प्राप्त हुआ । इस प्रकार जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक वह मिथ्यादृष्टि जीव पद्मलेश्यामें रहा । इसी प्रकारसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका भी जघन्य काल कहना चाहिए ।

१ प्रतिपु ' अंतोमुहुत्तं सा चेव लेस्सा पुव्विल्लतिसु ' इति पाठः ।

२ तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्टवसंयतसम्यग्दृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सर्वैः कालः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि' ॥ २९३ ॥

तं जधा- एको मिच्छादिट्ठी काउलेस्साए अच्छिदो । तिस्से अट्टाखएण तेउलेस्सिओ जादो । तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिदूण मदेो सोहम्मो उववण्णो । वे सागरोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणब्भहियाणि जीविदूण चुदो णट्टुलेस्सिओ जादो । लद्धा समट्ठिदी पुब्बिल्लंतोमुहुत्तेण अब्भधिया । अंतोमुहुत्तूणअट्टाहज्जसागरोवममेत्ता ट्ठिदी किण्ण लब्भदे ? ण, मिच्छादिट्ठि-सम्मादिट्ठीहि उवरिमदेवेसु बद्धमाउअमोवट्टणाघादेण घादिय मिच्छादिट्ठी जदि सुट्टु महंतं करेदि, तो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणब्भधियवेसागरोवमाणि करेदि, सोहम्मो उप्पज्जमाणमिच्छादिट्ठीणं एदम्हादो अहियाउट्टवणे सत्तीए अभावा । अट्टाहज्जसागरो-वमट्ठिदीए उप्पण्णसम्मादिट्ठिं मिच्छत्तं णेदूण उक्कस्सकालं भणिस्सामो ? ण, अंतोमुहुत्तूण-ट्टाहज्जसागरोवमेसु उप्पण्णसम्मादिट्ठिस्स सोहम्मणिवासिस्स मिच्छत्तगमणे संभवाभावा ।

तेजोलेश्याका उत्कृष्ट काल सातिरेक दो सागरोपम और पद्मलेश्याका उत्कृष्ट काल सातिरेक अठारह सागरोपम है ॥ २९३ ॥

जैसे— एक मिथ्यादृष्टि जीव कापोतलेश्यामें विद्यमान था । उस लेश्याके कालक्षयसे वह तेजोलेश्यावाला हो गया । उसमें अन्तर्मुहूर्त रहकर मरा और सौधर्मकल्पमें उत्पन्न हुआ । वहाँ पर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक दो सागरोपम काल तक जीवित रह कर च्युत हुआ और उसकी तेजोलेश्या नष्ट हो गई । इस प्रकार पूर्वके अन्तर्मुहूर्तसे अधिक दो सागरोपम सौधर्मकल्पकी मिथ्यादृष्टिसम्बन्धी उत्कृष्ट स्थिति तेजोलेश्याकी प्राप्त हो गई ।

शंका—मिथ्यादृष्टि जीवके तेजोलेश्याकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तसे कम अढ़ाई सागरोपमप्रमाण क्यों नहीं पाई जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा उपरिम देवोंमें बांधी हुई आयुको उद्धर्तनाघातसे घात करके मिथ्यादृष्टि जीव यदि अच्छी तरह खूब बड़ी भी स्थिति करे, तो पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अभ्यधिक दो सागरोपम करता है, क्योंकि, सौधर्मकल्पमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके इस उत्कृष्ट स्थितिसे अधिक आयुकी स्थिति स्थापन करनेकी शक्तिका अभाव है ।

शंका—यदि हम अढ़ाई सागरोपम स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए सम्यग्दृष्टिको मिथ्यात्वमें ले जाकर तेजोलेश्याका उत्कृष्ट काल कहें तो ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अन्तर्मुहूर्त कम अढ़ाई सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए सौधर्मेनिवासी सम्यग्दृष्टि देवके मिथ्यात्वमें जानेकी संभावनाका अभाव है ।

१ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८.

तं पि कथं णव्वदे ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागब्भहियवेसागरोवममेत्ता सोहम्मीसाणे मिच्छाइड्ढि-आउड्ढिदी होदि त्ति आइरियपरंपरागदोवदेसा । अधवा अण्णेणुवएसेण अड्ढाइज्जसागरोवमाणि देसूणाणि मिच्छादिड्ढिस्स वि संभवन्ति, भवणादिसहस्सारंतदेवेसु' मिच्छाइड्ढिस्स दुविहाउड्ढिदिपरूवणणहाणुववत्तीदो ।

असंजदसम्मादिड्ढिस्स उच्चदे— एको असंजदो सोहम्मीसाणदेवेसु वे सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तुणं सागरोवमस्स अद्धं च आउवं करिय अंतोमुहुत्तं तेउलेस्सी होदूण कमेण कालं करिय सोहम्मे उववणो । सगद्धिदिमच्छिय पुणो मणुसेसुववज्जिय अंतोमुहुत्तं तीए चेव लेस्साए परिणमिय पम्मलेस्सं काउलेस्सं वा गदो । लद्धाणि अंतोमुहुत्तुणअड्ढाइज्जसागरोवमाणि संपुणाणि । अहियाणि वा किण्ण होंति त्ति उत्ते ण, पुव्वावरकालमिह लद्धअंतो-मुहुत्तादो अद्धसागरोवममिह पडिदंतोमुहुत्तस्स बहुत्तुवदेसा ।

पम्मलेस्साए उच्चदे— एको मिच्छादिड्ढी वड्ढमाणतेउलेस्सिओ सगद्धाए खीणाए

शंका— यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान—पल्योपमके असंख्यांतर्वे भागसे अधिक दो सागरोपमप्रमाण सौधर्म-ईशानकल्पमें मिथ्यादृष्टिकी आयुस्थिति होती है; इस प्रकारका आचार्यपरम्परागत उपदेश है अथवा अन्य उपदेशसे कुछ कम अढ़ाई सागरोपमकाल सौधर्म-ईशानकल्पवासी मिथ्यादृष्टि देवके भी संभव है, अन्यथा, भवनवासियोंसे लगाकर सहस्रारकल्प तकके देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवके दो प्रकारकी आयुस्थितिकी प्ररूपणा हो नहीं सकती थी ।

अब असंयतसम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट तेजोलेश्याके कालको कहते हैं— एक असंयत-सम्यग्दृष्टि जीव सौधर्म-पेशान देवोंमें दो सागरोपम और अन्तर्मुहूर्त कम सागरोपमके अर्ध भागप्रमाण आयुको बांध करके एक अन्तर्मुहूर्त तेजोलेश्यावाला हो करके और क्रमसे मर कर सौधर्मकल्पमें उत्पन्न हुआ । पुनः अपनी आयुस्थिति तक वहां रह कर और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त तक उसी ही लेश्यासे परिणत हो, पद्मलेश्या या कापोतलेश्याको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त कम पूरा अढ़ाई सागरोपमकाल प्राप्त हो गया ।

शंका— अन्तर्मुहूर्तसे कम अढ़ाई सागरोपमकालसे अधिक काल क्यों नहीं होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, अढ़ाई सागरोपमकालके आदि और अन्तमें लब्ध होनेवाले अन्तर्मुहूर्तसे अर्ध सागरोपम कालमें पतित अन्तर्मुहूर्तके बहुत्वका उपदेश पाया जाता है ।

अब पद्मलेश्याके उत्कृष्ट कालको कहते हैं— वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई एक

१ प्रतिषु ' देवीसु ' इति पाठः ।

पम्मलेस्सिओ जादो । दीहमंतोमुहुत्तद्वमच्छिय सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु उववण्णो । तत्थ अट्टारह सागरोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणब्भहियाणि जीविदूण चुदस्स णट्ठा पम्मलेस्सा । असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे-एको संजदो पम्मलेस्साए अंतोमुहुत्त-मच्छिदो सदार-सहस्सारदेवेसु अट्टारस सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तणमद्वसागरं च आउअं करिय कमेण कालं करिय सहस्सारदेवेसु उववज्जिय सगट्ठिदिमच्छिय चुदो मणुसो जादो । तत्थ वि अंतोमुहुत्तं पम्मलेस्साए अच्छिय सुक्कलेस्सं तेउलेस्सं वा गदो । लद्धाणि अंतोमुहुत्तणद्वसागरोवमेण अहियाणि अट्टारस सागरोवमाणि ।

सासनसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २९४ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण सगरासीदो असंखेज्ज-गुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेदेहि तेउ-पम्मलेस्सियसासणाणं ततो भेदाभावा ।

सम्माभिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २९५ ॥

मिथ्यादृष्टि जीव अपने कालके क्षीण होने पर पद्मलेश्यावाला हो गया । और वहां उस लेश्यामें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके शतार-सहस्रारकल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक अटारह सागरोपम काल तक जीवित रह कर च्युत हुआ, तब उसके पद्मलेश्या नष्ट हो गई ।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके पद्मलेश्याका उत्कृष्ट काल कहते हैं— एक संयत पद्म-लेश्यामें अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा और शतार-सहस्रार देवोंमें अटारह सागरोपम और अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध सागरोपमकी आयुको बांध कर, क्रमसे मरण कर, सहस्रारकल्पके देवोंमें उत्पन्न होकर और अपनी स्थितिप्रमाण वहां रह करके च्युत हो मनुष्य होगया । वहां पर भी अन्तर्मुहूर्त तक पद्मलेश्यामें रह करके शुक्ललेश्याको या तेजोलेश्याको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपम कालसे अधिक अटारह सागरोपम प्राप्त हुए ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २९४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अपनी राशिसे असंख्यातगुणा पल्योपमका असंख्यातवां भाग काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलिप्रमाण काल है । इस रूपसे तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंके कालका ओघप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है ।

उक्त दोनों लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥२९५॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे-
ज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमिच्चेएहि तेउ-पम्मलेस्सिय-
सम्मामिच्छादिट्ठीणं तत्तो भेदाभावा ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणा-
जीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २९६ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २९७ ॥

तत्थ ताव संजदासंजदाणमेगसमयपरूवणा कीरदे- एक्को मिच्छादिट्ठी असंजद-
सम्मामिच्छादिट्ठी वा वड्डमाणतेउलेस्सिओ एगसमओ तेउलेस्साए अत्थि त्ति संजमासंजमं पडि-
वण्णो । एगसमयं संजमासंजमं तेउलेस्साए सह दिट्ठं । विदियसमए संजदासंजदो पम्म-
लेस्सं गदो । एसा लेस्सापरावत्ती (१) । अधवा एक्को संजदासंजदो हायमाणपम्म-
लेस्सिओ पम्मलेस्सद्धाए खीणाए एगसमयं संजमासंजमगुणो अत्थि त्ति तेउलेस्सिओ
जादो । तेउलेस्साए सह संजमासंजमो एगसमयं दिट्ठो । विदियसमए तीए लेस्साए सह

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्योपमका
असंख्यातवां भागप्रमाण है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इस
प्रकारसे तेजोलेइया और पद्मलेइयावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका ओघप्ररूपणासे कोई भेद
नहीं है ।

उक्त दोनों लेइयावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने
काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २९६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २९७ ॥

इनमेंसे पहले संयतासंयतोंके लेइयासम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा की जाती है—
वर्धमान तेजोलेइयावाला एक मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव तेजोलेइयाके कालमें
एक समय अवशेष रह जाने पर संयतासंयतको प्राप्त हुआ । एक समय संयतासंयत तेजो-
लेइयाके साथ दृष्टिगोचर हुआ । दूसरे समय वह संयतासंयत पद्मलेइयाको प्राप्त हो गया ।
यह लेइयापरिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा है (१) । अथवा, हायमान पद्मलेइयावाला
एक संयतासंयत पद्मलेइयाके कालके क्षीण हो जाने पर एक समय संयतासंयत गुणस्थानका
अवशेष रहने पर तेजोलेइयावाला हो गया । तेजोलेइयाके साथ संयतासंयत एक समय दृष्ट

१ प्रतिपु ' अंतोमुहुत्तो मुहुत्त- ' इति पाठः ।

२ प्रतिपु ' मिच्छादिट्ठीणं ' इति पाठः ।

३ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तानां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

४ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

असंजदसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी मिच्छादिट्ठी वा जादो । एसा गुणपरावत्ती (२) । मरण-वाघादेहि एगसमओ ण लब्भदि ।

संपदि पम्मलेस्साए उच्चदे । तं जघा— एगो मिच्छादिट्ठी असंजद-सम्मादिट्ठी वा वड्डमाणपम्मलेस्सिओ पम्मलेस्सद्वाए एगो समओ अत्थि त्ति संजमासंजमं पडिवण्णो । विदियसमए संजमासंजमेण सह सुक्कलेस्सं गदो । एसा लेस्सापरावत्ती (३) । अधवा वड्डमाणतेउलेस्सिओ संजदासंजदो तेउलेस्सद्वाए खएण पम्मलेस्सिओ जादो । एगसमयं पम्मलेस्साए सह संजमासंजमं दिट्ठं, विदियसमए अप्प-मत्तो जादो । एसा गुणपरावत्ती । अधवा संजदासंजदो हायमाणसुक्कलेस्सिओ सुक्क-लेस्सद्वाखएण पम्मलेस्सिओ जादो । विदियसमए पम्मलेस्सिओ चेव, किंतु असंजद-सम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी मिच्छादिट्ठी वा जादो । एसा गुणपरा-वत्ती (४) । मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिगुणट्ठाणेसु तेउ-पम्मलेस्साणं लेस्सा-गुणपरावत्तीओ अस्सिदूण एगसमओ किण्ण उच्चदे ? ण, तत्थ एगसमयसंभवाभावा । वड्डमाणतेउलेस्सादो

हुआ । द्वितीय समयमें उसी लेश्याके साथ असंयतसम्यग्दृष्टि, या सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या सासादनसम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि हो गया । यह गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा हुई (२) । यहाँ पर मरण और व्याघातके द्वारा एक समय नहीं पाया जाता है ।

अब पञ्चलेश्याके एक समयकी प्ररूपणा कहते हैं । जैसे— वर्धमान पञ्चलेश्यावाला कोई एक मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव, पञ्चलेश्याके कालमें एक समय अवशेष रहने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ । द्वितीय समयमें संयमासंयमके साथ ही शुक्ललेश्याको प्राप्त हुआ । यह लेश्यापरावर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा हुई (३) । अथवा, वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई संयतासंयत तेजोलेश्याके कालके क्षय हो जानेसे पञ्चलेश्यावाला हो गया । एक समय पञ्चलेश्याके साथ संयमासंयम दृष्टिगोचर हुआ । और वह द्वितीय समयमें अप्रमत्तसंयत हो गया । यह गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा हुई । अथवा, हायमान शुक्ललेश्यावाला कोई संयतासंयत जीव शुक्ललेश्याके कालके पूरे हो जाने पर पञ्चलेश्यावाला हो गया । द्वितीय समयमें वह पञ्चलेश्यावाला ही है, किन्तु असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा सासादनसम्यग्दृष्टि, अथवा मिथ्यादृष्टि हो गया । यह गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा हुई (४) ।

शंका— मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, इन दो गुणस्थानोंमें तेज और पञ्च-लेश्यावाले जीवोंकी लेश्या और गुणस्थानसम्बन्धी परिवर्तनोंको आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं कही ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, इन गुणस्थानोंमें एक समयकी प्ररूपणाका होना संभव नहीं है ।

पम्मलेस्सं गंतूण विदियसमए उवरिमगुणद्वानं गच्छंताणं मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणं पम्मलेस्साए एगसमओ लब्भदि । हायमाणतेउलेस्साए एगसमओ अत्थि त्ति मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिगुणद्वाने पडिवण्णाणं तेउलेस्साए एगसमओ लब्भदि । एवं काउ-णील-लेस्साणं पि एगसमओ लब्भदि त्ति उत्ते ण लब्भदि, जदो मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा-दिट्ठिण एगसमयं लेस्साए परिणमिय विदियसमए अण्णगुणं लेस्संतरं वा ण गच्छंति । एदाणि गुणद्वानाणि पडिवज्जंता वि लेस्साए एगो समओ अत्थि त्ति ण पडिवज्जंति । कुदो ? सभावदो । हेट्ठिमगुणद्वानाणि लेस्साए एगो समओ अत्थि त्ति जहा संजमासंजमगुण-द्वानं पडिवज्जंति, पमत्तसंजदो तथा संजमासंजमगुणद्वानं किण्ण पडिवज्जदे ? सहावदो । अधवा णत्थि एत्थ पडिसेहो ।

पमत्तस्स उच्चदे— एको पमत्तो हायमाण-पम्मलेस्साए अच्छिदो । तिस्से अद्वा-स्सएण पमत्तद्वाए एगो समओ अत्थि त्ति तेउलेस्सिओ जादो एगसमओ दिट्ठो । विदिय-

वर्धमान तेजोलेइयासे पञ्चलेइयाको जाकर द्वितीय समयमें उपरिम गुणस्थानोंको जाने वाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके पञ्चलेइयाके साथ एक समय पाया जाता है । इसी प्रकार हायमान तेजोलेइयामें एक समय अवशेष रहने पर मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवोंके तेजोलेइयाके साथ एक समय पाया जाता है ।

शंका—तेज और पञ्चलेइयाके समान ही कापोत और नीललेइयाओंका भी एक समय पाया जाता है, (फिर उसे क्यों नहीं कहा) ?

समाधान—कापोत और नीललेइयाके साथ एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव एक समयमें विवक्षित लेइयाके द्वारा परिणत होकर द्वितीय समयमें अन्य गुणस्थानको, अथवा अन्य लेइयाको नहीं जाते हैं । तथा इन गुणस्थानोंको प्राप्त होनेवाले भी जीव विवक्षित धारण की गई लेइयाके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर उन उन गुणस्थानोंको नहीं प्राप्त होते हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है ।

शंका—अपनी लेइयामें एक समय रहने पर जैसे नीचेके गुणस्थानवाले संयमा-संयम गुणस्थानको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकारसे प्रमत्तसंयत भी संयमासंयम गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है । अथवा, इस विषयमें कोई प्रतिषेध नहीं है ।

अब प्रमत्तसंयतका काल कहते हैं— एक प्रमत्तसंयत हायमान पञ्चलेइयामें विद्यमान था । उस लेइयाके कालक्षयसे तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रहने पर वह तेजोलेइयावाला होगया । एक समय वह तेजोलेइयाके साथ प्रमत्तसंयतके

समए तेउलेस्सा चैव, किंतु संजमासंजमं असंजमेण सह सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं सासण-
सम्मत्तं मिच्छत्तं वा गदो। एसा गुणपरावत्ती (१)। अधवा, अप्पमत्तो तेउलेस्साए अच्छिदो।
तिस्से अप्पमत्तद्वाए खएण पमत्तो जादो। पमत्तो तेउलेस्साए सह एगसमयं दिट्ठो।
विदियसमए मदो देवो जादो। एवं मरणेण (२)। पमत्तसंजदो तेउलेस्साए परिणमिय
विदियसमए जेण लेस्संतरं ण गच्छदि, पमत्तगुणं पडिवज्जमाणो वि तेउलेस्सद्वाए
एगसमओ अत्थि त्ति ण पडिवज्जदि, तेण लेस्सापरावत्ती णत्थि। अप्पमत्तो हायमाण-
पम्मलेस्सओ पम्मलेस्सद्वाए एगो समओ अत्थि त्ति पमत्तो जादो। विदियसमए वि
पमत्तो चैव, किंतु तेउलेस्सओ जादो। एसा लेस्सापरावत्ती (३)। अधवा पमत्तो तेउलेस्साए
अच्छिदो। तिस्से अद्वाखएण पम्मलेस्सा आगदा। पम्मलेस्साए सह पमत्तो एगसमयं
दिट्ठो। विदियसमए पम्मलेस्सओ चैव, किंतु अप्पमत्तो जादो। एसा गुणपरावत्ती।
पम्मलेस्सद्वाए अच्छिदो पमत्तो तिस्से अद्वाखएण तेउलेस्साए परिणमिय विदियसमए
अप्पमत्तो किण्ण कीरदे ? ण, हीयमाणलेस्साए अप्पमत्तगुणग्गहणाभावा। मिच्छत्तादिगुणं

रूपमें दृष्टिगोचर हुआ। पश्चात् द्वितीय समयमें तेजोलेइया ही रही, किन्तु वह संयमा-
संयमको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको, अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा सासादन-
गुणस्थानको, अथवा मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होगया। यह एक समयरूप गुणस्थान-
परिवर्तन है (१)। अथवा, कोई एक अप्रमत्तसंयत तेजोलेइयामें वर्तमान था। उसी लेइयामें
रहते हुए ही अप्रमत्तगुणस्थानके कालक्षयसे वह प्रमत्तसंयत हो गया। वह प्रमत्तसंयत
तेजोलेइयाके साथ एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समयमें मरा और देव होगया। इस
प्रकार मरणकी अपेक्षा एक समय उपलब्ध हुआ (२)। प्रमत्तसंयत तेजोलेइयाके साथ
परिणमित होकर द्वितीय समयमें चूंकि, दूसरी अन्य लेइयाको नहीं प्राप्त होता है, और प्रमत्त-
संयत गुणस्थानको प्राप्त होता हुआ भी तेजोलेइयाके कालमें एक समय शेष रहता है, इसी
लिए वह लेइयान्तरको नहीं प्राप्त होता है। इस कारणसे यहां पर लेइयाका परिवर्तन नहीं
है। हायमान पञ्चलेइयावाला कोई अप्रमत्तसंयत, पञ्चलेइयाके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने
पर प्रमत्तसंयत हो गया। द्वितीय समयमें भी वह प्रमत्तसंयत ही रहा, किन्तु तेजोलेइया-
वाला होगया। यह लेइयासम्बन्धी परिवर्तन है (३)। अथवा, कोई प्रमत्तसंयत तेजोलेइयामें
विद्यमान था। उसके उस तेजोलेइयाके कालक्षयसे पञ्चलेइया आगई। पञ्चलेइयाके साथ वह
प्रमत्तसंयत एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समयमें वह पञ्चलेइयावाला ही रहा, किन्तु
अप्रमत्तसंयत हो गया। यह गुणस्थानपरिवर्तन हुआ।

शंका—पञ्चलेइयाके कालमें विद्यमान कोई प्रमत्तसंयत उस लेइयाके कालक्षयसे
तेजोलेइयासे परिणमित होकर द्वितीय समयमें अप्रमत्तसंयत क्यों नहीं हो जाता ?

किण्ण पडिवज्जदि ? ण, तेउलेस्साए पडिय अंतोमुहुत्तमणच्छिय हेट्ठिमगुणग्गहणाभावा । अधवा अप्पमत्तो पम्मलेस्साए अच्छिदो अप्पमत्तद्वाखएण पमत्तो जादो । विदियसमए मदो देवत्तं गदो ।

अप्पमत्तसंजदस्स उच्चदे- मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्त-संजदो वा वड्डमाणतेउलेस्सिओ तेउलेस्सद्वाए एगो समओ अत्थि त्ति अप्पमत्तो जादो । तेउलेस्साए सह एगसमयं अप्पमत्तो दिट्ठो । विदियसमए पम्मलेस्सिगो जादो । एसा लेस्सापरावत्ती (१) । अधवा पमत्तो हायमाणपम्मलेस्सिगो एगसमयमप्पमत्तद्वा अत्थि त्ति पम्मलेस्सद्वाए खएण तेउलेस्सिगो जादो । विदियसमए पमत्तगुणं पडिवण्णो । एसा गुणपरावत्ती (२) । अधवा पमत्तो वड्डमाणतेउलेस्सिओ अप्पमत्तो जादो । विदियसमए मदो देवत्तं गदो । एवं मरणेण (३) । पमत्तो वड्डमाणपम्मलेस्सिगो पम्मलेस्सद्वाए एगसमओ अत्थि

समाधान— नहीं, क्योंकि, हीयमान लेइयाके साथ अप्रमत्तगुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव है ।

शंका— तो उक्त प्रकारका जीव मिथ्यात्व आदिक नीचेके गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त हो जाता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, तेजोलेइयामें गिर करके अन्तर्मुहूर्त रहे विना नीचेके गुणस्थानोंके ग्रहण करनेका अभाव है ।

अथवा, कोई अप्रमत्तसंयत पद्मलेइयामें विद्यमान था । वह अप्रमत्तसंयतगुणस्थानके कालक्षयसे प्रमत्तसंयत हो गया । वह द्वितीय समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ ।

अब अप्रमत्तसंयतके एक समयसम्बन्धी लेइयादिपरिवर्तनको कहते हैं— वर्धमान तेजोलेइयावाला कोई मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव, तेजोलेइयाके कालमें एक समय अवशेष रहने पर अप्रमत्तसंयत हो गया । वह तेजोलेइयाके साथ एक समय अप्रमत्तसंयतरूपसे दृष्टिगोचर हुआ, और द्वितीय समयमें पद्मलेइयावाला हो गया । यह लेइयापरिवर्तन है (१) । अथवा, हायमान पद्मलेइयावाला कोई प्रमत्तसंयत, एक समय अप्रमत्तसंयत कालके अवशेष रहने पर पद्मलेइयाके काल क्षयसे तेजोलेइयावाला हो गया, और द्वितीय समयमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानको प्राप्त हुआ । यह गुणस्थानपरिवर्तन है (२) । अथवा, वर्धमान तेजोलेइयावाला कोई प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत हो गया । वह द्वितीय समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार मरणसे एक समय लब्ध हुआ (३) । कोई वर्धमान पद्मलेइयावाला प्रमत्तसंयत, पद्मलेइयाके

त्ति अप्पमत्तो जादो । विदियसमए अप्पमत्तो चेव, किंतु सुक्कलेस्सं गदो । एसा लेस्सा-
परावत्ती (१) । अधवा अप्पमत्तो हायमाणसुक्कलेस्सिगो सुक्कलेस्सद्वाखएण पम्मलेस्सिगो
जादो । विदियसमए पम्मलेस्साए सह पमत्तगुणं पडिवण्णो । एसा गुणपरावत्ती (२) ।
अधवा पमत्तो पम्मलेस्साए अच्छिदो पमत्तद्वाए खीणाए एगसमयं जीविदमत्थि त्ति
अप्पमत्तो जादो । विदियसमए मदो देवत्तं गदो । एवं मरणेण (३) ।

उक्कस्समंतोमुहुत्तं ॥ २९८ ॥

तं जधा— संजदासंजदो पमत्तसंजदो अप्पमत्तसंजदो वा तेउ-पम्मलेस्सासु अप्पिद-
लेस्साए परिणमिय सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदलेस्सं गदो ।

**सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं
पडुच्च सव्वद्दा ॥ २९९ ॥**

कुदो ? तिसु वि कालेसु सुक्कलेस्सियमिच्छादिट्ठीणं विरहाभावा ।

कालमें एक समय अवशेष रहने पर अप्रमत्तसंयत हो गया। वह द्वितीय समयमें अप्रमत्तसंयत
ही रहा, किन्तु शुक्कलेश्याको प्राप्त हो गया। इस प्रकार यह लेश्यापरिवर्तन हुआ (१)। अथवा,
हायमान शुक्कलेश्यावाला कोई अप्रमत्तसंयत जीव शुक्कलेश्याके कालक्षयसे पद्मलेश्यावाला हो
गया। द्वितीय समयमें पद्मलेश्याके साथ प्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त हुआ। यह गुणस्थान-
परिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा हुई (२)।

अथवा, कोई प्रमत्तसंयत पद्मलेश्यामें विद्यमान था। वह प्रमत्तकालके क्षीण हो
जाने पर, तथा एक समयप्रमाण जीवनके शेष रहने पर अप्रमत्तसंयत हो गया, दूसरे समयमें
मरा और देवत्वको प्राप्त हो गया। यह मरणके साथ एक समयकी प्ररूपणा हुई (३)।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका
उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९८ ॥

जैसे— कोई संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत, अथवा अप्रमत्तसंयत जीव तेजो-
लेश्या और पद्मलेश्याओंमेंसे विवक्षित किसी एक लेश्यामें परिणत होकर और सर्वोत्कृष्ट
अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविवक्षित लेश्याको प्राप्त हो गया।

शुक्कलेश्यामें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा
सर्व काल होते हैं ॥ २९९ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें शुक्कलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है ।

१ उत्कर्षणान्तमुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ शुक्कलेश्यानां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३०० ॥

तं जधा— एको मिच्छादिट्ठी बड्डमाणपम्मलेस्सिओ सगद्धाए खएण सुक्कलेस्सिओ जादो । सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पम्मलेस्सं गदो, अण्णलेस्सागमणे संभवामावा ।

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३०१ ॥

तं जधा— एक्को दव्वलिंगी दव्वसंजममाहप्पेण उवरिमगेवज्जेसु आउअं बंधिय पम्मलेस्साए अच्छिदस्स तिस्से अद्धाखएण सुक्कलेस्सा आगदा । तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय कालं करिय उवरिमगेवेज्जेसु उववज्जिय सगद्धिदिं गमिय चुदो तक्खणे चैव णट्टलेस्सिओ जादो । एवं पढमिल्लंतोमुहुत्तेण सादिरेगएक्कत्तीस सागरोवममेत्तो ति मिच्छत्तसहिद-सुक्कलेस्सुक्कस्सकालो होदि ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३०२ ॥

सुक्कलेस्सेत्ति अणुवट्टे । कुदो ओघत्तं ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०० ॥

जैसे— वर्धमान पद्मलेश्यावाला कोई मिथ्यादृष्टि जीव अपनी लेश्याका काल समाप्त हो जानेसे शुक्कलेश्यावाला हो गया । वह उसमें सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पद्मलेश्याको प्राप्त हुआ, क्योंकि, उसका पद्मलेश्याके सिवाय अन्य किसी लेश्यामें जाना संभव ही नहीं है ।

शुक्कलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागरोपम है ॥ ३०१ ॥

जैसे— एक द्रव्यलिंगी साधु द्रव्यसंयमके माहात्म्यसे उपरिम प्रैवेयकोंमें आयुको बांधकर पद्मलेश्यामें विद्यमान था । उसके उस लेश्याके कालक्षयसे शुक्कलेश्या आगई । उसमें अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, कालको करके, उपरिम प्रैवेयकोंमें उत्पन्न होकर, अपनी स्थितिको बिताकर च्युत हुआ और उसी क्षणमें ही नष्टलेश्यावाला होगया । इस प्रकार प्रथम अन्तर्मुहूर्तके साथ साधिक इकतीस सागरोपमप्रमाण मिथ्यात्वसहित शुक्कलेश्याका उत्कृष्ट काल होता है ।

शुक्कलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०२ ॥

यहां पर 'शुक्कलेश्या' इस पदकी अनुवृत्ति होती है ।

शंका—सूत्रोक्त ओघपना कैसे संभव है ?

समाधान—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, और उत्कृष्ट काल

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कृष्टेणैकत्रिसत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८.

३ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादिसयोगकेवच्यन्तानां × × सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

समओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ,
उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेदेहि तदो भेदाभावा ।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३०३ ॥

कुदो ? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि सह ओघसम्मामिच्छादिट्ठीहिंतो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३०४ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण
तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि, इच्चेदेहि विसेसाभावा । णवरि पज्जवट्टियणए अवलं-
विज्जमाणे अत्थि विसेसो एत्थ । कुदो ? पच्छिममणुससहगदअंतोमुहुत्तेण सादिरेगत्तुवलंभा ।
ओघम्हि देस्सणपुव्वकोडीए सादिरेगत्तदंसणादो ।

**संजदासंजदा पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति,
णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३०५ ॥**
सुगममेदं सुत्तं ।

पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, और उत्कृष्ट
काल छह आवलिप्रमाण है । इस प्रकार ओघसे इसके कालमें कोई भेद नहीं होनेसे ओघपना
बन जाता है ।

शुक्लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०३ ॥

क्योंकि, नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालोंके साथ ओघ-
सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंसे कोई भेद नहीं है ।

शुक्लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्त-
मुहूर्त है, उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागरोपम है, इस प्रकारसे कोई विशेषता नहीं
है । किन्तु केवल पर्यायार्थिकनयके अवलम्बन करने पर यहां विशेषता है । वह
इस प्रकार है— पिछले मनुष्यभवमें होनेवाली शुक्लेश्याके एक अन्तर्मुहूर्तके साथ उक्त
कालकी सातिरेकता पाई जाती है । किन्तु ओघमें देशोन पूर्वकोटीके साथ उक्त कालकी
सातिरेकता देखी जाती है ।

शुक्लेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने काल तक
होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३०५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३०६ ॥

तं जघा— एको पमत्तसंजदो हायमाणसुकलेस्सिगो एगो समओ सुकलेस्साए अत्थि चि संजदासंजदो जादो । विदियसमए संजदासंजदो चेव, किंतु पम्मलेस्सं गदो । एसा लेस्सापरावत्ती (१) । सेसगुणद्व्याणेहिंतो संजमासंजमं पडिवज्जंताणं सुकलेस्साए एगसमओ ण लब्भदि । कुदो ? वड्डमाणसुकलेस्साए संजमासंजमं पडिवण्णाणं विदियसमए पम्मलेस्साए गमणाभावा । अधवा संजदासंजदो वड्डमाणपम्मलेस्सिगो तिस्से अद्वाखएण संजमासंजमद्वाए एगो समओ अत्थि चि सुकलेस्सिओ जादो । विदियसमए सुकलेस्सिओ चेव, किंतु अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवण्णो । एसा गुणपरावत्ती (२) ।

पमत्तस्स उच्चदे— एको अप्पमत्तो हायमाणसुकलेस्सिगो सुकलेस्सद्वाए एगो समओ अत्थि चि पमत्तो जादो । विदियसमए पमत्तो चेव, किंतु लेस्सा परावत्तिदा । एसा लेस्सापरावत्ती (१) । अधवा एको पमत्तो वड्डमाणपम्मलेस्सिगो पम्मलेस्सद्वाए खएण सुकलेस्सिगो जादो । विदियसमए (सुकलेस्सिगो) चेव, किंतु अप्पमत्तो जादो ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ ३०६ ॥

जैसे— हायमान शुक्लेश्यावाला एक प्रमत्तसंयत जीव, शुक्लेश्याके कालमें एक समय शेष रहने पर संयतासंयत हुआ । द्वितीय समयमें वह संयतासंयत ही है, किन्तु पद्मलेश्याको प्राप्त हो गया । यह लेश्याका एक समयसम्बन्धी परिवर्तन है (१) । शेष गुणस्थानोंसे संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंके शुक्लेश्याका एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, वर्धमान शुक्लेश्याके साथ संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंके द्वितीय समयमें पद्मलेश्यामें गमनका अभाव है । अथवा कोई संयतासंयत वर्धमान पद्मलेश्यावाला है । उस लेश्याके कालक्षयसे और संयमासंयमके कालमें एक समय अवशेष रहने पर वह शुक्लेश्यावाला हो गया । द्वितीय समयमें वह शुक्लेश्यावाला ही है, किन्तु अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ । यह गुणस्थानपरिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा है (२) ।

अब प्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा करते हैं— हायमान शुक्लेश्यावाला कोई एक अप्रमत्तसंयत शुक्लेश्याके कालमें एक समय अवशेष रहने पर प्रमत्तसंयत हो गया । द्वितीय समयमें वह प्रमत्तसंयत ही रहा, किन्तु लेश्या परिवर्तित हो गई । यह लेश्यापरिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा हुई (१) । अथवा, वर्धमान पद्मलेश्यावाला कोई एक प्रमत्तसंयत जीव, पद्मलेश्याके कालक्षयसे शुक्लेश्यावाला हो गया । द्वितीय समयमें वह (शुक्लेश्यावाला) ही

१ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

एसा गुणपरावत्ती (२) । अधवा अप्पमत्तो हायमाणसुककलेस्सिगो सुककलेस्सद्दाए सह पमत्तो जादो । विदियसमए मदो देवत्तं गदो (३) ।

अप्पमत्तस्स उच्चदे— एक्को पमत्तो सुककलेस्साए अच्छिदो, सुककलेस्साए सह अप्पमत्तो जादो । विदियसमए मदो देवत्तं गदो (१) । अधवा अपुव्वकरणो ओदरंतो सुककलेस्सिगो अप्पमत्तो होदूण मदो देवो जादो (२) । एत्थ एगसमयमंगपरुवणगाहा—

दो दो य तिण्णि तेऊ तिण्णि तिया होंति पम्मलेस्साए ।

दो तिग दुगं च समया बोद्धव्वा सुककलेस्साए ॥ ४१ ॥

उक्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३०७ ॥

कुदो ? सुककलेस्साए परिणमिय उक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय पम्मलेस्सं गदाण्ण-सुककस्सकालुवलंभा ।

है, किन्तु अप्रमत्तसंयत हो गया । यह गुणस्थानसम्बन्धी परिवर्तन है (२) । अधवा, हायमाण शुक्लेश्यावाला कोई अप्रमत्तसंयत, शुक्लेश्याके ही कालके साथ प्रमत्तसंयत हो गया । पुनः दूसरे समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ (३) ।

अब अप्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा करते हैं— शुक्लेश्यामें विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव शुक्लेश्याके साथ ही अप्रमत्तसंयत हो गया । वह द्वितीय समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ (१) । अधवा, शुक्लेश्यावाला श्रेणीसे उतरता हुआ कोई अपूर्वकरणसंयत अप्रमत्तसंयत होकर मरा और देव हो गया (२) । यहां पर एक समयके भंगोंकी प्ररूपणा करनेवाली गाथा इस प्रकार है—

तेजोलेश्याके दो, दो और तीन समयभंग होते हैं । पद्मलेश्याके तीन त्रिक अर्थात् तीन, तीन और तीन समयभंग होते हैं । तथा, शुक्लेश्याके दो, तीन और दो समयभंग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥ ४१ ॥

विशेषार्थ— ऊपर जो एकसमयसम्बन्धी अनेक विकल्प बताये गये हैं, उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है— तेजोलेश्यासम्बन्धी देशसंयतके दो भंग, प्रमत्तसंयतके दो भंग, और अप्रमत्तसंयतके तीन भंग, इस प्रकार कुल (२+२+३=७) सात भंग होते हैं । पद्मलेश्यासम्बन्धी देशसंयतके तीन भंग, प्रमत्तसंयतके तीन भंग और अप्रमत्तसंयतके तीन भंग, इस प्रकार कुल (३+३+३=९) नौ भंग होते हैं । शुक्लेश्यासम्बन्धी देशसंयतके दो भंग, प्रमत्तसंयतके तीन भंग और अप्रमत्तसंयतके दो भंग, इस प्रकार कुल (२+३+२=७) सात भंग जानना चाहिए ।

उक्त तीनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०७ ॥

क्योंकि, शुक्लेश्यासे परिणत होकर उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रह कर पद्मलेश्याको प्राप्त हुए जीवोंके उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ६.

चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा सजोगिकेवली ओघं ॥ ३०८ ॥

कुदो ? एदेसिमोघे वि सुक्कलेस्सं मोत्तूण अण्णलेस्साभावा ।

एवं लेस्सामग्गणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति,
णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ॥ ३०९ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्ज-
वसिदो ॥ ३१० ॥

तं जहा— भवियत्तं दुविहं, अणादिसपज्जवसिदं सादिसपज्जवसिदमिदि । पुव्वम-
लद्धसम्मत्तस्स अणादिसपज्जवसिदं । सम्मत्तं लह्दिऊण मिच्छत्तं गदस्स सादिसपज्जवसिदं ।
अणादित्तादो अकट्टिमस्स ण विणासो चे ण, अण्णाणस्स कम्मबंधस्स य अणादिस्स वि

शुक्कलेश्यात्राले चारों उपशामक, चारों क्षपक और सयोगिकेवलीका काल ओघके
समान है ॥ ३०८ ॥

क्योंकि, इन गुणस्थानवालोंके ओघमें भी शुक्कलेश्याको छोड़कर अन्य लेश्याका
अभाव है ।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल
तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३०९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा अनादि-सान्त और सादि-सान्त काल है ॥ ३१० ॥

जैसे— भव्यत्व दो प्रकारका है, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । पूर्वमें नहीं प्राप्त
हुआ है सम्यक्त्व जिसको, ऐसे जीवके अनादि-सान्त भव्यत्व होता है । सम्यक्त्वको प्राप्त
करके मिथ्यात्वको गये हुए जीवके सादि-सान्त भव्यत्व होता है ।

शंका—जो वस्तु अनादि है, वह अकृत्रिम होती है और उसका विनाश नहीं होता ।
(इसलिए मिथ्यात्वको अनादि होनेसे अकृत्रिमता सिद्ध है, फिर उसका विनाश नहीं होना
चाहिए ?)

समाधान—नहीं, क्योंकि, भज्जानका और कर्मबंधका, उनके अनादि होते हुए भी,

१ भव्यानुवादेन भव्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवापेक्षया द्वौ भंगौ, अनादिः सपर्यवसानः, सादिः सपर्यवसानश्च । स. सि. १, ८.

विणासुवलंभा । अकारणत्तादो ण तस्स विणासो चे ण, अणादिवंधनवद्धकम्मकारणत्तादो । सिद्धाणं मिच्छत्तासंजमकसायजोगकम्मासवविरहियाणं ण संसारे पदणमत्थि, तदो ण सादि भवियत्तं । ण पडिवण्णसम्मत्तस्स वि सादि भवियत्तं होदि, पुवं पि तत्थ भवियत्तुवलंभा ? एत्थ परिहारो वुच्चदे- ण संसारे णिवदिदसिद्धे अस्सिदूण भवियत्तं सादि उच्चदे । ण च ते संसारे णिवदंति, णट्टासवत्तादो । किंतु गहिदसम्मत्तजीवस्स भवियत्तं सादि उच्चदे । ण च तं पुवंमत्थि, सादिसांतस्सेदस्स पुव्विल्लेण अणादि-अणंतेण सह एत्तविरोहा । पुव्विल्लमवि भवियत्तं सांतं चे ण, सत्तिं पडुच्च तस्स सांतत्तुवएसा । ण वत्तिं पडुच्च सम्मत्तगहणेण विणा अणंतसंसारस्स जीवस्स सांतं भवियत्तं, विरोहा । अणादि-अणंतेण वि भवियत्तेण होद्वं, अण्णहा भव्वजीवोच्छेदप्पसंगादो ।

अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो ।

भावकलंकइपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति' ॥ ४२ ॥

विनाश पाया जाता है ।

शंका—कारणरहित वस्तुका विनाश नहीं होता है, इसलिए अज्ञान या कर्मबन्धका भी विनाश नहीं होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अज्ञान या कर्मबन्धका कारण अनादिवन्धनवद्ध कर्म ही है ।

शंका—मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगके द्वारा कर्मास्त्रवसे विरहित सिद्ध जीवोंका पुनः संसारमें पतन नहीं होता है, इसलिए भव्यत्व सादि-सान्त नहीं है । और न प्रतिपन्नसम्यक्त्वी जीवके भी भव्यत्व सादि होता है, क्योंकि, सम्यक्त्वकी प्राप्तिके पूर्व भी उस जीवमें भव्यत्व पाया जाता है ?

समाधान—अब उक्त आशंकाका परिहार कहते हैं—संसारमें पुनः लौटकर आने-वाले सिद्ध जीवोंकी अपेक्षासे भव्यत्वको सादि नहीं कह सकते, क्योंकि, कर्मास्त्रवोंके नष्ट हो जानेसे वे संसारमें पुनः लौटकर नहीं आते । किन्तु ग्रहण किया है सम्यक्त्वको जिसने, ऐसे जीवके भव्यत्वको सादि कहते हैं; तथा, वह पूर्वमें भी नहीं है, क्योंकि, इस सादि-सान्त भव्यत्वके पूर्ववर्ती उस अनादि-अनन्त भव्यत्वके साथ एकत्वका विरोध है ।

शंका—पहलेके भव्यत्वको भी यदि सान्त मान लिया जाय, तो क्या हानि है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, शक्तिकी अपेक्षासे उसके सान्तताका उपदेश किया गया है । व्यक्तिकी अपेक्षा सम्यक्त्वग्रहणके विना अनन्त संसारी जीवके सान्त भव्यत्व नहीं माना जा सकता, क्योंकि, ऐसा माननेमें विरोध आता है । अर्थात्, फिर तो भव्यत्वको अनादि-अनन्त भी होना पड़ेगा, अन्यथा, भव्य जीवोंके विच्छेदका प्रसंग प्राप्त होगा । तथा—

ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं कि जिन्होंने त्रसोंकी पर्याय अभी तक नहीं पाई है, और जो वृषित भावोंकी अति प्रचुरताके कारण कभी भी निगोदके वासको नहीं छोड़ते हैं ॥ ४२ ॥

एयणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा ।

सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण' ॥ ४३ ॥

इच्छादिसुत्तदंसणादो य । ण च मोक्खमगच्छंताणं भवियत्तं णत्थि त्ति वोत्तुं जुत्तं, मोक्खमगमणसत्तिसब्भावं पडुच्च तेसिं भवियत्तुवदेसा' (३) । ण च सत्तिमंताणं सव्वेसिं पि वत्तीए होदव्वमिदि णियमो अत्थि सव्वस्स वि हेमपासाणस्स हेमपज्जाएण परिणमण-प्पसंगा' । ण च एवं, अणुवलंभा । णिव्वुइं गच्छमाणो वि ण वोच्छिज्जदि भव्वरासि त्ति कधमेदं णव्वदे ? तस्साणंतियादो । सो रासी अणंतो उच्चइ, जो संते वि वए ण णिट्ठादि, अण्णहा अणंतववएसो अणत्थओ होज्ज । तम्हा तिविहेण भवियत्तेण होदव्वमिदि । ण च सुत्तेण सह विरोहो, सत्तिं पडुच्च सुत्ते अणादिसांतत्तुवएसो ।

जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिहेसो' ॥ ३११ ॥

एक निगोदशरीरमें द्रव्यप्रमाणसे जीव सिद्धोंसे तथा समस्त अतीत कालके समयोंसे अनन्तगुणे देखे गये हैं ॥ ४३ ॥

इत्यादि सूत्रोंके देखे जानेसे भी भव्य जीवोंके विच्छेदका अभाव सिद्ध है । तथा, मोक्षको नहीं जानेवाले जीवोंके भव्यपना नहीं होता है, ऐसा भी कहना युक्त नहीं है, क्योंकि, मोक्ष-गमनकी शक्तिके सद्भावकी अपेक्षा उनके भव्यत्वके पाये जानेका उपदेश है । तथा यह भी कोई नियम नहीं है कि भव्यत्वकी शक्ति रखनेवाले सभी जीवोंके उसकी व्यक्ति होना ही चाहिए, अन्यथा, सभी स्वर्णपाषाणके स्वर्णपर्यायसे परिणमनका प्रसंग प्राप्त होगा ? किन्तु इस प्रकारसे देखा नहीं जाता है ।

शंका—निवृत्ति (मोक्ष) को जानेके कारण नित्यव्ययात्मक भव्यराशि विच्छेदको प्राप्त नहीं होगी, यह कैसे जाना ?

समाधान—क्योंकि, वह राशि अनन्त है । और वही राशि अनन्त कही जाती है, जो व्ययके होते रहने पर भी समाप्त नहीं होती है । अन्यथा, फिर उस राशिकी अनन्त संज्ञा अनर्थक हो जायगी । इसलिए भव्यत्व तीन प्रकारका ही होना चाहिए । तथा सूत्रके साथ भी कोई विरोध नहीं आता है, क्योंकि, शक्तिकी अपेक्षा सूत्रमें भव्यत्वके अनादि-सान्तताका उपदेश दिया गया है ।

उक्त तीन प्रकारोंमेंसे जो भव्यत्व सादि और सान्त है उसका निर्देश इस प्रकार है ॥ ३११ ॥

१ गो. जी. १९६.

२ अ प्रती ' भवियत्तुवलंमदेसा ' इति पाठः ।

३ मव्वत्तणस्स जोग्गा जे जीवा ते हव्वंति भवसिद्धा । ण हु मलविगमे णियमा ताणं कणओवळाणमिदं ॥
गो. जी. ५५८.

४ तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्घृहर्तः । घ. सि. १, ८.

तिण्हं भवियाणं मज्जे जो सादिसपज्जवसिदो भविओ तस्स इमो णिहेसो परूवणा पणवणा च्चि उच्चं होदि । अथवा भवियाणं जं मिच्छत्तं तं दुविहं, अणादिसपज्जवसिदं सादिसपज्जवसिदमिदि । तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो मिच्छादिट्ठी तस्स इमो णिहेसो च्चि वत्तव्वं । पुच्चिव्वल्लमिह पुण अत्थे जो सादिओ सपज्जवसिदो भविओ तस्स मिच्छत्तस्स इमो णिहेसो परूवेदव्वो ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१२ ॥

तं जधा— सम्मादिट्ठी दिट्ठमग्गो मिच्छत्तं गंतूण सच्चजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय अण्णगुणं गदो ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्ठं देसूणं ॥ ३१३ ॥

तं जहा— एक्को अणादियमिच्छादिट्ठी तिण्णि करणाणि करिय सम्मत्तं पडिवण्णो । तेण सम्मत्तेण उप्पज्जमाणेण अणंतो संसारो छिण्णो संतो अद्धपोग्गलपरियट्ठमेत्तो कदो । उवसमसम्मत्तेण जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय उवसमसम्मत्तद्वाए छावलियसेसाए आसाणं गंतूण मिच्छत्तं णेदव्वो । अहवा उवसमसम्मादिट्ठी चेव मिच्छत्तं गंतूण अद्धपोग्गलपरियट्ठं

तीन प्रकारके भवियोंके मध्यमें जो सादि-सान्त भव्य है, उसका यह निर्देश है, अर्थात् उसकी यह प्ररूपणा या प्रज्ञापना की जाती है । अथवा, भव्य जीवोंके जो मिथ्यात्व है, वह दो प्रकारका होता है— (१) अनादि-सान्त, और (२) सादि-सान्त । उनमेंसे जो सादि और सान्त मिथ्यादृष्टि है, उसका यह निर्देश है, ऐसा कहना चाहिए । तथा पहलेके अर्थमें जो सादि-सान्त भव्य कहा है, उसके मिथ्यात्वका यह निर्देश है, ऐसा प्ररूपण करना चाहिए ।

सादि-सान्त मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१२ ॥

जैसे— दृष्टमार्गी कोई सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अन्य गुणस्थानको चला गया ।

सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥ ३१३ ॥

जैसे— कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तीनों करणोंको करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । उत्पन्न होनेके साथ ही उस सम्यक्त्वसे अनन्त संसार छिन्न होता हुआ अर्धपुद्गल-परिवर्तन कालमात्र कर दिया गया । उपशमसम्यक्त्वके साथ सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह कर उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां शेष रह जाने पर उसी जीवको सासादनगुण-स्थानमें ले जाकर मिथ्यात्वमें ले जाना चाहिए । अथवा, उपशमसम्यग्दृष्टि जीव ही मिथ्यात्वको जाकर देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल मिथ्यात्वके साथ परिभ्रमण करके

देसणं मिच्छत्तेण परियट्ठिय अंतोप्पुहुत्तावसेसे संसारे सम्मत्तं घेत्तूण अणंताणुबंधी विसंजो-
ह्यं विस्समिय दंसणमोहं खविय पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं करिय अधापमत्तकरणं काऊण
अप्पुवो अणियट्ठी सुहुमो खीणो सजोगी अजोगी होदूण सिद्धो जादो । जादं देसणमद्द-
योग्गलपरियट्ठं ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघं ॥३१४॥

कुदो ? सासणादीणं भवियत्तं मोत्तूण अण्णस्सासंभवा ।

अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ ३१५ ॥

कुदो ? अव्वयत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ ३१६ ॥

कुदो ? मिच्छत्तं मोत्तूण तस्स गुणंतरगमणाभावा ।

एवं भवियमग्गणा समत्ता ।

अन्तर्मुहूर्तमात्र संसारके शेष रहने पर सम्यक्त्वको ग्रहण करके, पुनः अनन्तानुबन्धी कषायका
विसंयोजन करके, पश्चात् विश्राम ले, दर्शनमोहको क्षपण कर, प्रमत्त और अप्रमत्त गुण-
स्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके, अधःप्रवृत्तकरण कर, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण
सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषाय, सयोगी और अयोगी हो करके सिद्ध होगया । इस प्रकारसे
देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल सिद्ध हुआ ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली तकका काल ओघके समान
है ॥ ३१४ ॥

क्योंकि, सासादनादि गुणस्थानवर्ती जीवोंके भव्यत्वको छोड़कर अन्यका होना,
अर्थात् अभव्यपना, असंभव है ।

अभव्यसिद्ध जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल
होते हैं ॥ ३१५ ॥

क्योंकि, अभव्य जीवोंका व्यय ही नहीं होता ।

एक जीवकी अपेक्षा अभव्योंका अनादि और अनन्त काल है ॥ ३१६ ॥

क्योंकि, मिथ्यात्वको छोड़कर अभव्यके अन्य गुणस्थानमें जानेका अभाव है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

१ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्योगकेव्यन्तानां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ अभव्यानामनाद्यपर्यवसानः । स. सि. १, ८.

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिद्वि-खइयसम्मादिद्वीसु असंजदसम्मादिद्वि-
प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघं ॥ ३१७ ॥

कुदो? सव्वगुणट्टाणाणमप्पणो णाणेगजीवजहण्णुकस्सकाले अस्सिदूण भेदाभावा ।
णवरि खइयसम्मादिद्वि-संजदासंजदेसु अत्थि भेदो । तं भणिस्सामो । ण चेतो भेदो सुत्तेण
अपरूविदो, समंहिदविसेससामणमवलंबिय ओघमिदि णिहेसादो । तं जहा- एगो देवो
णेरइओ वा सम्मादिद्वी मणुसेसुवज्जिय अंतोमुहुत्तंभहियगब्भादिअट्टवस्से गमिय संजमा-
संजमं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तं विस्समिय अंतोमुहुत्तेण दंसणमोहणीयं खविय खइय-
सम्मादिद्वी जादो । चट्टुहि अंतोमुहुत्तेहि अब्भहियअट्टवस्सेहि ऊणियं पुव्वकोडिसंजमा-
संजममणुपालिय मदो देवो जादो । एत्थेव विसेसो, णत्थि अण्णत्थ कत्थ वि ।

वेदगसम्मादिद्वीसु असंजदसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा
त्ति ओघं ॥ ३१८ ॥

कुदो? णाणेगजीवजहण्णुकस्सकालेहि सव्वगुणट्टाणाणं ओघगुणट्टाणेहिंतो भेदाभावा ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्य-
ग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकका काल ओघके समान है ॥३१७॥

क्योंकि, चौथे गुणस्थानसे लेकर ऊपरके सभी गुणस्थानोंका अपने अपने नाना
जीव और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालका आश्रय करके सम्यग्दृष्टि जीवोंके साथ
कोई भेद नहीं है । विशेष बात यह है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंके कालमें भेद है,
उसे कहते हैं । यह कहा जानेवाला भेद सूत्रके द्वारा न कहा गया हो, ऐसी बात नहीं है,
क्योंकि, संगृहीत हैं सामान्य और विशेष जिसमें, ऐसे द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करके
'ओघ' ऐसा पद सूत्रमें निर्दिष्ट किया गया है । अब उक्त कालका स्पष्टीकरण करते हैं- कोई
एक देव, अथवा नारकी सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, अन्तर्मुहूर्त अधिक, गर्भको
आदि लेकर आठ वर्ष बिताकर, संयमासंयमको प्राप्त होकर और अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके, एक
अन्तर्मुहूर्तसे दर्शनमोहनीयका क्षण कर, क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो गया । इन चार अन्तर्मुहूर्तोंसे
अधिक आठ वर्षोंसे कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण संयमासंयमको परिपालन करके मरा और देव
हुआ । यहां पर ही इतनी विशेषता है, और कहीं कुछ भी विशेषता नहीं है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकका
काल ओघके समान है ॥ ३१८ ॥

क्योंकि, नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालोंकी अपेक्षा
सूत्रोक्त सर्व गुणस्थानोंके कालका ओघ गुणस्थानोंके कालसे कोई भेद नहीं है ।

१ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्टयाद्योगकेदव्यन्तानां सामान्योक्तः कालः ।
स. सि. १, ८. २ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां चतुर्णां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

उवसमसम्मादिद्वीसु असंजदसम्मादिद्वी संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१९ ॥

तं जहा— सत्तद्द जणा बहुआ वा मिच्छादिद्विणो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णा । उवसमसम्मत्तद्वाए छावलियसेसाए सव्वे आसाणं गदा । अंतरं गदं ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३२० ॥

तं जहा— सत्तद्द जणा बहुआ वा मिच्छादिद्विणो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णा । तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय वेदगसम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं सासणसम्मत्तं मिच्छत्तं वा गदा । एदस्स एगा सलागा णिक्खिविदव्वा । तस्समए चैव अण्णे मिच्छादिद्विणो उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय चदुण्हं गुणद्वानाणमण्णदरं गदा । विदियसलागा लद्धा होदि । एवं तिण्णि चत्तारि आदिं गंतूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ सलागाओ लब्भंति । तं कथं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुवदेसादो । एदाहि सलागाहि उवसमसम्मत्तद्दं गुणिदे सगरासीदो असंखेज्जगुणो अणंतरकालो होदि ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल होते हैं ॥ ३१९ ॥

जैसे— सात आठ जन, या बहुतसे मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए, और उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलीप्रमाण कालके अवशिष्ट रहने पर सभीके सभी सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो गये और पुनः अन्तरको प्राप्त हुए ।

उपशमसम्यग्दृष्टि असंयत और संयतासंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ ३२० ॥

जैसे— सात आठ जन, अथवा बहुतसे मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए । उसमें अन्तर्मुहूर्त रह करके वे सब वेदकसम्यक्त्वको, या सम्यग्मिथ्यात्वको, या सासादनसम्यक्त्वको, अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुए । इसकी एक शलाका स्थापित करना चाहिए । उसी समयमें ही अन्य भी मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर, उसमें अन्तर्मुहूर्त रह कर, पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुए । यह दूसरी शलाका प्राप्त हुई । इस प्रकारसे तीन चारको आदि लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र शलाकाएं प्राप्त होती हैं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि उपशमसम्यक्त्वकी शलाकाएं पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होती हैं ?

समाधान—आचार्यपरम्परागत उपदेशसे यह जाना जाता है ।

इन लब्ध शलाकाओंसे उपशमसम्यक्त्वके कालको गुणा करने पर अपनी राशिसे असंख्यातगुणा अन्तररहित उपशमसम्यक्त्वका काल होता है ।

१ ओपशमिकसम्यक्त्वेषु असंयतसम्यग्दृष्टि संयतासंयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२१ ॥

तं जहा— एको मिच्छादिद्वी उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो, अवरो देससंजमेण सह तं चैव पडिवण्णो, सच्चजहणमद्वमच्छिय उवसमसम्मत्तद्वाए छावलियावसेसाए आसाणं गदा । एसो दोण्हं पि जहणकालो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२२ ॥

तं जहा— दो मिच्छादिद्विणो । तत्थ एगो उवसमसम्मत्तं, अवरो देससंजमं पडिवण्णो । सच्चुक्कस्समंतोमुहुत्तद्वमच्छिय दोण्णि वि तिण्हमण्णदरं गदा ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागच्छदुमत्था ति केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥३२३॥

तं जहा—पमत्त-अप्पमत्ताणं ताव उच्चदे । सत्तद्व जणा बहुआ वा उवसमसम्मादिद्विणो उवसमसेदीदो ओदरिय पमत्तापमत्ता होदूण एगसमयमच्छिय कालं करिय देवा जादा । अपुच्चकरणस्स ओदरमाणेहि, अणियद्वि-सुहुमसांपराइयाणं चढणोयरणकिरियावावेदेहि, उवसंतस्स चढंतेहि अप्पिदगुणपडिवण्णविदियसमए मदेहि जीवेहि एगसमओ वत्तव्वो ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२१ ॥

जैसे— एक मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । दूसरा देशसंयमके साथ उसी उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । दोनों ही जीव सर्वजघन्य काल अपने अपने गुणस्थानोंमें रह करके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आचलियां अवशेष रह जाने पर साक्षादन-गुणस्थानको प्राप्त हुए । यह दोनों गुणस्थानोंका जघन्य काल है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२२ ॥

जैसे— दो मिथ्यादृष्टि जीव हैं । उनमेंसे एक उपशमसम्यक्त्वको और दूसरा देशसंयमको प्राप्त हुआ । वहां वे दोनों ही जीव सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके सम्यग्मिथ्यात्व, मिथ्यात्व, अथवा वेदकसम्यक्त्व, इन तीनोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुए ।

प्रमत्तसंयतसे लेकर उपशान्तकषायवीतरागलजस्थ गुणस्थान तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥३२३॥

वह इस प्रकार है— उनमेंसे पहले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंकी एक समयकी प्ररूपणा करते हैं— सात आठ जन, अथवा बहुतसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव, उपशमश्रेणीसे उतर कर प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत होकर, वहां पर एक समय रह करके, मरण कर, देव हुए । अपूर्वकरण गुणस्थानवालेके उतरते हुए, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानवालोंके आरोहण और अवतरण, इन दोनों ही क्रियाओंमें लगे हुए, तथा उपशान्तकषायके चढ़ते हुए विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होकर द्वितीय समयमें मरे हुए जीवोंके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

१ एकजीवं प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ प्रमत्ताप्रमत्तयोश्चतुर्णांमुपशमकानां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

३ प्रतिषु ' अप्पिदगुणपडिवण्णं ' इति पाठः ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२४ ॥

पमत्तापमत्ताणं ताव उच्चदे- सत्तद्दु जणा बहुआ वा दंसणमोहणीयउवसामगा चारित्तमोहणीयउवसामगा वा पमत्तापमत्तगुणे पडिवण्णा। तेसु अंतोमुहुत्तद्दमच्छिय अण्ण-गुणं गदा। तम्हि चेव समए अण्णे उवसमसम्मादिट्ठिणो पमत्तापमत्तगुणे पडिवण्णा। एवमेत्थ संखेज्जसलामा लभंति। एदाहि पमत्तापमत्तद्दं गुणिदे वि अंतोमुहुत्तं चेव होदि। कुदो? अंतोमुहुत्तमिदि सुत्ते उदिट्ठत्तादो। एवं चेव चदुण्हमुवसामगाणं वि वत्तच्चं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३२५ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२६ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि, णाणाजीवजहण्णुक्कस्सकालपरुवणाए परू-विदत्तादो।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३२७ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३२८ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३२९ ॥

उक्त गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥३२४॥

उनमेंसे पहले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका काल कहते हैं—सात आठ जीव अथवा बहुतसे जीव, चाहे वे दर्शनमोहनीयकर्मके उपशामक हों, अथवा चाहे चारित्र-मोहनीयकर्मके उपशामन करनेवाले हों, प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त हुए। उन दोनों गुणस्थानोंमें अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त हुए। उसी ही समयमें अन्य भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे यहाँ पर संख्यात शलाकाएं प्राप्त होती हैं। इन शलाकाओंसे प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतके कालको गुणा करने पर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है, क्योंकि, सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा पद कहा गया है। इसी प्रकारसे चारों उपशामकोंका भी काल कहना चाहिए।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ ३२५ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२६ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं, क्योंकि, इनका अर्थ नाना जीवोंके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणामें प्ररूपण किया जा चुका है।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२७ ॥

सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२८ ॥

मिध्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२९ ॥

१ उत्कषेणास्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिध्यादृष्टि-मिध्यादृष्टीनां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

ओघमिह उत्तसासणादीणं सम्मत्ताणुवादमिह उत्तसासणादितिण्हं गुणट्टाणाणं च भेदाभावा ।

एवं सम्मत्तमगणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति,
णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा' ॥ ३३० ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३१ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं चेय, बहुसो परुविदत्तादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ३३२ ॥

तं जथा— एगो असण्णी सण्णीसु उववण्णो सागरोवमसदपुधत्तं तत्थेव भमिय पुणो असण्णित्तं गदो ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागळदुमत्था ति
ओघं ॥ ३३३ ॥

ओघमें कहे गये सासादनसम्यग्दृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंकी कालप्ररूपणाका और सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादमें कहे गये सासादनसम्यग्दृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंकी काल-प्ररूपणाका परस्परमें कोई भेद नहीं है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञामार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ३३० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३१ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है, क्योंकि, पहले बहुत बार प्ररूपण किया जा चुका है ।

एक जीवकी अपेक्षा संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपमशत-पृथक्त्व है ॥ ३३२ ॥

जैसे— कोई एक असंज्ञी जीव संज्ञियोंमें उत्पन्न हुआ और सागरोपमशतपृथक्त्वके अन्त तक वह संज्ञियोंमें ही भ्रमण करके पुनः असंज्ञित्वको प्राप्त हुआ ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागळमत्थ गुणस्थान तक संज्ञियोंकी कालप्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३३३ ॥

१ संज्ञानुवादेन संज्ञिषु मिथ्यादृष्टयाद्यनिवृत्तिनादरान्तानां पुवेदवत् । स. सि. १, ८.

२ शेषाणां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

सण्णिसासणादीणं ओघसासणादीणं च सण्णित्तं पडि भेदाभावा ।

असण्णी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा

॥ ३३४ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ३३५ ॥

तं जहा— एगो सण्णी असण्णीसु उप्पज्जिय खुदाभवग्गहणमेत्तकालमच्छिय सण्णित्तं गदो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ३३६ ॥

तं जधा— एगो सण्णी मिच्छादिट्ठी असण्णी होदूण आवलियाए असंखेज्जदि-
भागमेत्तपोग्गलपरियट्ठी तत्थ परियट्ठिट्ठूण सण्णित्तं गदो ।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता ।

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति,
णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३३७ ॥

क्योंकि, संक्षी सासादनादिकोंका और ओघ सासादनादिकोंका संबन्धित्वके प्रति कोई भेद नहीं है ।

असंज्ञी जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंज्ञी जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ३३५ ॥

जैसे— कोई एक संक्षी जीव असंज्ञियोंमें उत्पन्न होकर क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल रह करके संबन्धित्वको प्राप्त हो गया ।

एक जीवकी अपेक्षा असंज्ञियोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ ३३६ ॥

जैसे— कोई एक संक्षी मिथ्यादृष्टि जीव असंज्ञी होकर, आवलीके असंख्यातवें भाग-
मात्र पुद्गलपरिवर्तनोत्तक उन्हींमें परिभ्रमण करके संबन्धित्वको प्राप्त हुआ ।

इस प्रकार संक्षीमार्गणा समाप्त हुई ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३३७ ॥

१ असंक्षिना मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८,

३ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

४ आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३८ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं चेय, ओघमिह उच्चत्थादो ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ
ओसप्पिणि-उस्सप्पिणी ॥ ३३९ ॥

तं जहा- एको मिच्छादिट्ठी विग्गहं कादूण उववण्णो । अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं
असंखेज्जासंखेज्जा ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीपमाणं तत्थ परिभमिय आहारगो जादो । पुणो
अवसाणे विग्गहं करिय अणाहारित्तं गदो । एवमाहारिमिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो
सिद्धो होदि ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि ति ओघं ॥ ३४० ॥

कुदो? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि आहारिसासणादीणं ओघसासणादीहि भेदाभावा ।

अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो ॥ ३४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ ३३८ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है, क्योंकि, ओघमें इसका अर्थ कह दिया गया है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातर्वे भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात
अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी है ॥ ३३९ ॥

जैसे— एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके (आहारक मिथ्यादृष्टियोंमें) उत्पन्न
हुआ । अंगुलके असंख्यातर्वे भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी तक
उनमें परिभ्रमण करता हुआ आहारक रहा । पुनः अन्तमें विग्रह करके अनाहारकपनेको प्राप्त
हुआ । इस प्रकारसे आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल सिद्ध हो जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके आहारकोंका
काल ओघके समान है ॥ ३४० ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा आहारक
सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंका ओघ सासादनादि गुणस्थानोंके कालके साथ कोई
भेद नहीं है ।

अनाहारक जीवोंका काल कर्मणकाययोगियोंके समान है ॥ ३४१ ॥

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. वि. १, ८.

२ उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागा असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः । स. सि. १, ८.

३ शेषाणां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

४ अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वैः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण त्रयः

कुदो ? मिच्छादिद्वी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धं होंति, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण तिण्णि समया; सासणसम्मादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वे समया; सयोगिकेवलीणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समया, उक्कस्सेण संखेज्जसमया, एकजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णि समया इच्चेएहि अणाहारमिच्छादिद्विआदीणं कम्मइयकायजोगिमिच्छादिद्विआदीहिंतो विसेसाभावा ।

अजोगिकेवली ओघं ॥ ३४२ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं, एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण पंचहरस्सक्खरुच्चारणकालो इच्चेदेहि भेदाभावा ।

(एवं आहारमग्गणा समत्ता ।)

एवं कालाणिओगद्वारं सम्मत्तं ।

क्योंकि, अनाहारक मिथ्यादृष्टि नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं, और उत्कर्षसे तीन समय होते हैं; अनाहारक सासादन-सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे आवलीके असंख्यातवें भाग, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे दो समय तक होते हैं; सयोगिकेवलीका काल नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय और उत्कर्षसे संख्यात समय है, तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय है; इस प्रकारसे अनाहारक मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंका कर्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि आदिसे विशेषताका अभाव है ।

अनाहारक अयोगिकेवलीका काल ओघके समान है ॥ ३४२ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल पांच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारण कालके समान है, इस प्रकार ओघप्ररूपणाले कोई भेद नहीं है ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार कालानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

समयाः । सासादनसम्यग्दृष्टथसंयतसम्यग्दृष्टथोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणावलिकाया असंख्येय-
भागः । एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण द्वी समयौ । सयोगिकेवलिनो नानार्जीवापेक्षया जघन्येन त्रयः
समयाः । उत्कर्षेण संख्येयाः समयाः । एकजीवं प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्च त्रयः समयाः । स. सि. १, ८.

१ अयोगिकेवलिनो सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ कालो वर्णितः । स. सि. १, ८.

परिशिष्ट

१ खेत्तपरूवणासुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	खेत्ताणुगमेण दुविहो णिहेसो, ओधेण आदेसेण य ।	२	१०	पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	७३
२	ओधेण मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते, सच्चलोगे ।	१०	११	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	७३
३	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि-केवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभाए ।	३९	१२	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, ओधं ।	७५
४	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे, असंखेज्जेसु वा भागेषु, सच्चलोगे वा ।	४८	१३	मणुसअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	७६
५	आदेसेण गदियाणुवादेण गिरय-गदीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	५६	१४	देवगदीए देवेषु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	७७
६	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ।	६५	१५	एवं भवणवासियप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जविमाण-वासियदेवा त्ति ।	७७
७	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेषु मिच्छा-दिट्ठी केवडि खेत्ते, सच्चलोए ।	६६	१६	अणुदिसादि जाव सच्चट्ठिसिद्धि-विमाणवासियदेवा असंजदसम्मा-दिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखे-ज्जदिभागे ।	८१
८	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदा-संजदा त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	६७	१७	इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता केवडि खेत्ते, सच्चलोगे ।	८१
९	पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-पज्जत्त-पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदा-संजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असं-खेज्जदिभागे ।	६९	१८	वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	८४

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१९	पंचिदिय-पंचिदियपञ्जत्तएसु मिच्छा- इट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि- भागे ।		२७	सजोगिकेवली ओघं ।	१०१
२०	सजोगिकेवली ओघं ।		२८	तसकाइयअपज्जत्ता पंचिदियअप- ज्जत्ताणं भंगो ।	१०१
२१	पंचिदियअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	८६	२९	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंच- वचिजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१०२
२२	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउ- काइया तेउकाइया वाउकाइया, बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा त- स्सेव अपज्जत्ता, सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, सव्व- लोगे ।	८७	३०	कायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं ।	१०३
२३	बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवणप्फदि- काइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	९३	३१	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीण- कसायवीदरागच्छदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१०३
२४	बादरवाउकाइयपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स संखेज्जदिभागे ।	९९	३२	सजोगिकेवली ओघं ।	१०४
२५	वणप्फदिकाइयणिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्तापज्जत्ता केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ।	१००	३३	ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं ।	१०४
२६	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मि- च्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि- केवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१०१	३४	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जदि- भागे ।	१०५
			३५	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मि- च्छादिट्ठी ओघं ।	१०५
			३६	सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मा- दिट्ठी सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१०६
			३७	वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठि- प्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि- भागे ।	१०८
			३८	वेउव्वियामिस्सकायजोगीसु मिच्छा- दिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजद- सम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१०९

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३९	आहारकायजोगीसु आहारमिस्स- कायजोगीसु पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१०९	५१	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुद- अण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।	११७
४०	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं ।	११०	५२	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	११८
४१	सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मा- इट्ठी ओघं ।	११०	५३	विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी सासण- सम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	११८
४२	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा ।	१११	५४	आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरामछदुमत्था के- वडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि- भागे ।	११९
४३	वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखे- ज्जदिभागे ।	१११	५५	मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजद- प्पहुडि जाव खीणकसायवीदराम- छदुमत्था लोगस्स असंखेज्जदि- भागे ।	११९
४४	णवुंसयवेदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति ओघं ।	११२	५६	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ।	१२०
४५	अपमदवेदएसु अणियट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	११३	५७	अजोगिकेवली ओघं ।	१२०
४६	सजोगिकेवली ओघं ।	११३	५८	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्त- संजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ।	१२१
४७	कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माण- कसाइ-मायकसाइ--लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।	११३	५९	सजोगिकेवली ओघं ।	१२२
४८	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	११४	६०	सामाइय-च्छेदोवड्ढावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति ओघं ।	१२२
४९	णवरि विसेसो, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उव- समा खवा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	११६	६१	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्प- मत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१२३
५०	अकसाईसु चदुड्ढाणमोघं ।	११६	६२	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुम- सांपराइयसुद्धिसंजदउवसमा खवणा	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि- भागे ।	१२३	७५	सुककलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागळदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखे- ज्जदिभागे ।	१३०
६३	जहाक्खादविहारमुद्धिसंजदेसु चट्टु- ट्ठाणमोधं ।	१२४	७६	सजोगिकेवली ओधं ।	१३१
६४	संजदासंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१२४	७७	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि- केवली ओधं ।	१३१
६५	असंजदेसु मिच्छादिट्ठी ओधं ।	१२४	७८	अभवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते, सच्चलोए ।	१३२
६६	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा- दिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओधं ।	१२५	७९	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठि-खइय- सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि- प्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओधं ।	१३३
६७	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीण- कसायवीदरागळदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१२६	८०	सजोगिकेवली ओधं ।	१३४
६८	अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी ओधं ।	१२७	८१	वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मा- दिट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि- भागे ।	१३४
६९	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागळदुमत्था त्ति ओधं ।	१२७	८२	उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मा- दिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसाय- वीदरागळदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१३४
७०	ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ।	१२७	८३	सासणसम्मादिट्ठी ओधं ।	१३५
७१	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।	१२७	८४	सम्मामिच्छादिट्ठी ओधं ।	१३५
७२	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णील- लेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छा- दिट्ठी ओधं ।	१२८	८५	मिच्छादिट्ठी ओधं ।	१३५
७३	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा- दिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओधं ।	१२८	८६	सणियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छा- दिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय- वीदरागळदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१३६
७४	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छा- इट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि- भागे ।	१२९	८७	असण्णी केवडि खेत्ते, सच्चलोए ।	१३६

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
८८	आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छा- दिट्ठी ओघं ।	१३७	९१	सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मा- दिट्ठी अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१३८
८९	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१३७	९२	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा ।	१३८
९०	अणाहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।	१३७			

फौसणपरुवणासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	पोसणाणुगमेण दुविहो णिदेसो, ओघेण आदेसेण य ।	१४१		केवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१७०
२	ओघेण मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ।	१४५	१०	सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेजा वा भागा, सव्वलोगो वा ।	१७२
३	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि- भागो ।	१४८	११	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरय- गदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१७३
४	अट्ट चोद्दसभागा वा देखणा ।	१४९	१२	छ चोद्दसभागा वा देखणा ।	१७३
५	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा- इट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१६६	१३	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि- भागो ।	१७७
६	अट्ट चोद्दसभागा वा देखणा ।	१६६	१४	पंच चोद्दसभागा वा देखणा ।	१७७
७	संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि- भागो ।	१६७	१५	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा- दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१७८
८	छ चोद्दसभागा वा देखणा ।	१६८			
९	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगि-				

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१६	पठमाए पुठवीए णेरइएसु मिच्छा-इड्ढिप्पहुडि जाव असंजदसम्मा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१८२	१६	फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ।	२०६
१७	विदियादि जाव छट्ठीए पुठवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१८८	२७	असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२०७
१८	एग वे तिणिग चत्तारि पंच चोइस-भागा वा देखणा ।	१८८	२८	छ चोइसभागा वा देखणा ।	२०७
१९	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१८९	२९	पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरि-क्खपज्जत्त-जोणिणीसु मिच्छा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२११
२०	सत्तमाए पुठवीए णेरइएसु मिच्छा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१९०	३०	सच्चलोगो वा ।	२११
२१	छ चोइसभागा वा देखणा ।	१९०	३१	सेसाणं तिरिक्खगदीणं भंगो ।	२१३
२२	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छा-दिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केव-डियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१९१	३२	पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि केव-डियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२१३
२३	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, ओर्धं ।	१९२	३३	सच्चलोगो वा ।	२१४
२४	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ।	१९३	३४	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीहि केव-डियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असं-खेज्जदिभागो ।	२१६
२५	सत्त चोइसभागा वा देखणा ।	१९३	३५	सच्चलोगो वा ।	२१६
२६	सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं		३६	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ।	२१७
			३७	सत्त चोइसभागा वा देखणा ।	२१७
			३८	सम्मामिच्छाइड्ढिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२२०

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३९	सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा, सच्चलोगो वा ।	२२३	५०	सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि ति देवोर्व ।	२३४
४०	मणुसअपज्जत्तेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२२३	५१	सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदारसहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२३७
४१	सच्चलोगो वा ।	२२४	५२	अट्ट चोहसभागा वा देखणा ।	२३७
४२	देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२२४	५३	आणद जाव आरणच्चुइकप्पवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२३८
४३	अट्ट णव चोहसभागा वा देखणा ।	२२५	५४	छ चोहसभागा वा देखणा पोसिदा ।	२३८
४४	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२२७	५५	णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२३९
४५	अट्ट चोहसभागा वा देखणा ।	२२७	५६	अणुइस जाव सच्चट्ठिसिद्धिमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२४०
४७	अट्टुट्ठा वा, अट्ट णव चोहसभागा वा देखणा ।	२२९	५७	इंदियाणुवादेण एइंदिय-वाहरसुहुम-पज्जत्तापज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, सच्चलोगो ।	२४०
४८	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२३३	५८	वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तएहि	
४९	अट्टुट्ठा वा अट्ट चोहसभागा देखणा ।	२३३			

(८)

परिशिष्ट

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२४२		खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२५०
५९	सव्वलोगो वा ।	२४३	६८	सव्वलोगो वा ।	२५०
६०	पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२४४	६९	बादरवाउपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स संखेज्जदिभागो ।	२५२
६१	अट्ट चोइसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ।	२४४	७०	सव्वलोगो वा ।	२५३
६२	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	२४५	७१	वणप्फदिकाइयणिगोदजीववादर--सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ।	२५३
६३	सजोगिकेवली ओघं ।	२४५	७२	तसकाइय—तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	२५४
६४	पंचिदियअपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२४६	७३	तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिदिय-अपज्जत्ताणं भंगो ।	२५४
६५	सव्वलोगो वा ।	२४६	७४	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२५५
६६	कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-तस्सेव अपज्जत्त-सुहुमपुढविकाइय-सुहुमआउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय-तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ।	२४७	७५	अट्ट चोइसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ।	२५५
६७	बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिका-इयपत्तेयसरीरपज्जत्तएहि केवडियं		७६	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं ।	२५६
			७७	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२५७
			७८	कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।	२५८

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७९	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ।	२५८	९३	सम्माभिच्छादिट्ठी असंजदसम्मा-दिट्ठी ओघं ।	२६७
८०	सजोगिकेवली ओघं ।	"	९४	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छा-दिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजद-सम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ।	२६८
८१	ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं ।	२५९	९५	आहारकायजोगि-आहारमिस्स-कायजोगीसु पमत्तसंजदेहि केव-डियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२६९
८२	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ।	२६०	९६	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।	"
८३	सत्त चोइसभागा वा देखणा ।	"	९७	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखे-ज्जदिभागो ।	२७०
८४	सम्माभिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ।	२६१	९८	एक्कारह चोइसभागा देखणा ।	"
८५	असंजदसम्मादिट्ठीहि संजदा-संजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	९९	असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखे-ज्जदिभागो ।	"
८६	छ चोइसभागा वा देखणा ।	२६२	१००	छ चोइसभागा देखणा ।	"
८७	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगि-केवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	१०१	सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जा भागा, सव्वलोगो वा ।	२७१
८८	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छा-दिट्ठी ओघं ।	२६३	१०२	वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिस-वेदएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखे-ज्जदिभागो ।	"
८९	सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२६४	१०३	अट्ट चोइसभागा देखणा, सव्व-लोगो वा ।	२७२
९०	वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ।	२६६			
९१	अट्ट तेरह चोइसभागा वा देखणा ।	"			
९२	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	२६७			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१०४	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोमस्स असंखेज्जदिभागो ।	२७२	११७	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओघं ।	२७८
१०५	अट्ठ णव चोइसभागा देसूणा ।	"	११८	अपगदवेदएसु अणियट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघं ।	२७९
१०६	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोमस्स असंखेज्जदिभागो ।	२७४	११९	सजोगिकेवली ओघं ।	२८०
१०७	अट्ठ चोइसभागा वा देसूणा फोसिदा ।	"	१२०	कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाइसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओघं ।	"
१०८	संजदासंजदेहि केवडि खेत्तं फोसिदं, लोमस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	१२१	णवरि लोभकसाइसु सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं ।	"
१०९	छ चोइसभागा देसूणा ।	२७५	१२२	अकसाइसु चदुट्ठाणमोघं ।	"
११०	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठिउवसामग-खवएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोमस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	१२३	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।	२८१
१११	णत्तंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।	२७६	१२४	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	"
११२	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोमस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	१२५	विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोमस्स असंखेज्जदिभागो ।	२८२
११३	काह चोइसभागा वा देसूणा ।	२७७	१२६	अट्ठ चोइसभागा देसूणा, सच्च-लोमो वा ।	"
११४	सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोमस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	१२७	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	२८३
११५	असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोमस्स असंखेज्जदिभागो ।	२७८	१२८	आभिणिबोहिय—सुद—ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ति ओघं ।	"
११६	छ चोइसभागा देसूणा ।	"	१२९	मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ति ओघं ।	२८४
			१३०	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१३१	अजोगिकेवली ओषं ।	२८५	१४४	ओधिदंसणी ओधिणाधिभंगो ।	२८९
१३२	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्त- संजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओषं ।	"	१४५	केवलदंसणी केवलणाधिभंगो ।	२९०
१३३	सजोगिकेवली ओषं ।	"	१४६	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय- णीललेस्सिय-काउलेस्सिय- दिट्ठी ओषं ।	"
१३४	सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंज- देसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति ओषं ।	२८६	१४७	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	२९१
१३५	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्प- मत्तसंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	१४८	पंच चत्तारि वे चोइसभागा वा देसणा ।	"
१३६	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहु- मसांपराइय-उवसमा खवा ओषं ।	२८७	१४९	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा- दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२९२
१३७	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु च- दुट्ठाणी ओषं ।	"	१५०	तेउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि- सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	२९४
१३८	संजदासंजदा ओषं ।	"	१५१	अट्ठ णव चोइसभागा वा देसणा ।	२९५
१३९	असंजदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओषं ।	२८८	१५२	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा- दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
१४०	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि- भागो ।	"	१५३	अट्ठ चोइसभागा वा देसणा ।	"
१४१	अट्ठ चोइसभागा देसणा सब्ब- लोगो वा ।	"	१५४	संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि- भागो ।	२९६
१४२	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडिहि जाव खीणकसायवीदरागळदुमत्था त्ति ओषं ।	२८९	१५५	दिवट्ठ चोइसभागा वा देसणा ।	"
१४३	अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठि- प्पहुडि जाव खीणकसाय- वीदरागळदुमत्था त्ति ओषं ।	"	१५६	पमत्त-अपमत्तसंजदा ओषं ।	२९७
			१५७	पम्मलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केव-	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	डियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२९७	१७१	वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मा-दिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदात्ति ओघं ।	३०४
१५८	अट्ट चोद्दसभागा वा देखणा ।	"	१७२	उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ।	"
१५९	संजदासंजदेहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२९८	१७३	संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागळदुमत्थेहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	३०५
१६०	पंच चोद्दसभागा वा देखणा ।	"	१७४	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	३०६
१६१	पमत्त-अपमत्तसंजदा ओघं ।	२९९	१७५	सम्माभिच्छादिट्ठी ओघं ।	"
१६२	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-प्पहुडि जाव संजदासंजदेहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	१७६	मिच्छादिट्ठी ओघं ।	"
१६३	छ चोद्दसभागा वा देखणा ।	"	१७७	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
१६४	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगि-केवलि त्ति ओघं ।	३००	१७८	अट्ट चोद्दसभागा देखणा, सब्बलोगो वा ।	"
१६५	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि-केवलि त्ति ओघं ।	३०१	१७९	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागळदुमत्था ओघं ।	३०७
१६६	अभवसिद्धिएहिं केवडियं खेतं पोसिदं, सब्बलोगो ।	"	१८०	असण्णीहि केवडियं खेतं पोसिदं, सब्बलोगो ।	"
१६७	संमत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	३०२	१८१	आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।	३०८
१६८	खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ।	"	१८२	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं ।	"
१६९	संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगि-केवलीहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	३०३	१८३	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगि-केवलीहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
१७०	सजोगिकेवली ओघं ।	३०४			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१८४	अणाहारएसु कम्मइयकायजोगि- भंगो ।	३०९		केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	३०९
१८५	णवरिविसेसा, अजोगिकेवलीहि-				

कालपरूवणासुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	कालाणुगमेण दुविहो णिदेसो, ओघेण आदेसेण य ।	३१३		होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३४२
२	ओघेण भिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	३२३	१०	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	३४४
३	एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्ज- वसिदो, अणादिओ सपज्जवसिदो, सादिओ सपज्जवसिदो । जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिदेसो । जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३२४	११	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	३४५
४	उक्कस्सेण अद्धपोगगलपरियट्ठं देसुणं ।	३२५	१२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३४५
५	सासणसम्माट्ठिदी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ।	३३९	१३	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	३४६
६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	३४०	१४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	३४६
७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समओ ।	३४१	१५	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।	३४७
८	उक्कस्सेण छ आवलियाओ ।	३४२	१६	संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	३४८
९	सम्मामिच्छाट्ठी केवचिरं कालादो		१७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	३४९
			१८	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसुणा ।	३५०
			१९	पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	३५०

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	३५०	३६	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा- दिट्ठी ओघं ।	३५८
२१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३५१	३७	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	"
२२	चउण्हं उवसमा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	३५२	३८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	३५९
२३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३९	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसणाणि ।	"
२४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	३५३	४०	पढमाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	३६०
२५	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३५४	४१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"
२६	चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली केव- चिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	४२	उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरो- वमाणि ।	"
२७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	४३	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा- दिट्ठी ओघं ।	३६१
२८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	३५५	४४	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	"
२९	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	४५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	३६२
३०	सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	३५६	४६	उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसणाणि ।	"
३१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	४७	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छा- दिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	३६३
३२	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसणा ।	"			
३३	आदेसेण गदियाणुवादेण गिरय- गदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केव- चिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	३५७			
३४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"			
३५	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ।	३५८			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	३६३	६२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं	३७०
४९	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोगगलपरियट्टं ।	३६४	६३	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ।	"
५०	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा- दिट्ठी ओघं ।	"	६४	संजदासंजदा ओघं ।	३७१
५१	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६५	६५	पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केव- चिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"
५२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	६६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभव- ग्गहणं ।	"
५३	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि ।	"	६७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३७२
५४	संजदासंजदा केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६६	६८	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त- मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"
५५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	६९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"
५६	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ।	"	७०	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणअभहियाणि ।	३७३
५७	पंचिंदियतिरिक्ख—पंचिंदिय— तिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख- जोणिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६७	७१	सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	३७४
५८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	७२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
५९	उक्कस्सं तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण अब्भहियाणि ।	"	७३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	"
६०	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा- दिट्ठी ओघं ।	३६९	७४	उक्कस्सं छ आवलियाओ ।	३७५
६१	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	७५	सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३७५	९१	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३८१
७७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	३७६	९२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
७८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	९३	उक्कस्सं तेत्तीसं सागरोवमाणि ।	"
७९	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	९४	भवणवासियप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेषु मिच्छा-दिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३८२
८०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	३७७	९५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
८१	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ।	"	९६	उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं सादिरेयं वे सत्त चोदस सोलस अट्टारस सागरोवमाणि सादिरे-याणि ।	"
८२	संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगि-केवलि त्ति ओघं ।	३७८	९७	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा-दिट्ठी ओघं ।	३८५
८३	मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ।	३७९	९८	आणद जाव णवगेवज्जविमाण-वासियदेवेषु मिच्छादिट्ठी असं-जदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"
८४	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे-ज्जदिभागो ।	"	९९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
८५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा-भवग्गहणं ।	"	१००	उक्कस्सेण वीसं चावीसं तेवीसं चउवीसं पणवीसं छव्वीसं सत्ता-वीसं अट्टावीसं एगूणतिसं तिसं एककत्तीसं सागरोवमाणि ।	३८६
८६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"			
८७	देवगदीए देवेषु मिच्छादिट्ठी केव-चिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३८०			
८८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	"			
८९	उक्कस्सेण एकत्तीसं सागरोवमाण ।	३८०			
९०	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा-दिट्ठी ओघं ।	३८१			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१०१	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा- दिट्ठी ओघं ।	३८६	११२	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदि- भागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ।	३८९
१०२	अणुद्दिस-अणुत्तरविजय-वइ- जयंत-जयंत-अवराजिद्विमाण- वासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणा- जीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	"	११३	वादरेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	३९०
१०३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एक- त्तीसं, वत्तीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ।	"	११४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"
१०४	उक्कस्सेण बत्तीस, तेत्तीस सागरोवमाणि ।	३८७	११५	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससह- स्साणि ।	३९२
१०५	सव्वद्दिसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	"	११६	वादरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	३९३
१०६	एगजीवं पडुच्च जहण्णुककस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ।	"	११७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा- भवग्गहणं ।	"
१०७	इंदियाणुवादेण एइंदिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	"	११८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
१०८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा- भवग्गहणं ।	"	११९	सुहुमएइंदिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	३९४
१०९	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- पोग्गलपरियट्ठं ।	"	१२०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा- भवग्गहणं ।	"
११०	वादरेइंदिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	३८८	१२१	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।	"
१११	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा- भवग्गहणं ।	"	१२२	सुहुमेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	"
		"	१२३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	३९५
		"	१२४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
		३८९	१२५	सुहुमेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	३९६

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१२६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा- भवग्गहणं ।	३९६	१३९	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउ- काइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति, णाणा- जीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४०१
१२७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३९७	१४०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा- भवग्गहणं ।	"
१२८	बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया, बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-- पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	१४१	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।	"
१२९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा- भवग्गहणं, अंतोमुहुत्तं ।	"	१४२	वादरपुढविकाइया वादरआउ- काइया वादरतेउकाइया वादर- वाउकाइया वादरवणप्फदिकाइय- पत्तेयसररीरा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४०२
१३०	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससह- स्साणि ।	"	१४३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा- भवग्गहणं ।	"
१३१	बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया अ- पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३९८	१४४	उक्कस्सेण कम्मट्टिदी ।	"
१३२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा- भवग्गहणं ।	"	१४५	वादरपुढविकाइय-वादरआउ- काइय-वादरतेउकाइय-वादरवाउ- काइय-वादरवणप्फदिकाइय- पत्तेयसररीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४०३
१३३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३९९	१४६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	४०४
१३४	पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मि- च्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	१४७	उक्कस्सेण संखज्जाणि वास- सहस्साणि ।	"
१३५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	१४८	वादरपुढविकाइय-वादरआउ- काइय-वादरतेउकाइय-वादरवाउ- काइय--वादरवणप्फदिकाइय-- पत्तेयसररीरअपज्जत्ता केवचिरं	
१३६	उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणवभहियाणि, सागरोवमसदपुधत्तं ।	४००			
१३७	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओषं ।	"			
१३८	पंचिंदियअपज्जत्ता बीइंदिय- अपज्जत्तभंगो ।	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४०५	१६०	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओर्धं ।	४०८
१४९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा- भवग्गहणं	"	१६१	तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिदिय- अपज्जत्तभंगो ।	"
१५०	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	१६२	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंच- वचिजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजद- सम्मादिट्ठी संजदासंजदा पमत्त- संजदा अप्पमत्तसंजदा सजोगि- केवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४०९
१५१	सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउ- काइया सुहुमतेउकाइया सुहुम- वाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता- पज्जत्ता सुहुमेइंदियपज्जत्त-अप- ज्जत्ताणं भंगो ।	"	१६३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	"
१५२	वणप्फदिकाइयाणं एइंदियाणं भंगो ।	४०६	१६४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४१२
१५३	णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	१६५	सासणसम्मादिट्ठी ओर्धं ।	"
१५४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा- भवग्गहणं ।	"	१६६	सम्मादिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४१३
१५५	उक्कस्सेण अड्डाइजादो पोग्गल- परियट्ठं ।	"	१६७	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	"
१५६	बादरणिगोदजीवाणं बादरपुढवि- काइयाणं भंगो ।	४०७	१६८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	४१४
१५७	तसकाइय --तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	१६९	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
१५८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	१७०	चटुण्हमुवसमा चटुण्हं खवगा केवचिरं कालादो होंति, णाणा- जीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	"
१५९	उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणव्भहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि ।	४०८	१७१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४१५
			१७२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	"
			१७३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१७४	कायजोगीसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	४१५	१८७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ।	४२०
१७५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४१६	१८८	उक्कस्सेण छ आवलियाओ समज्जाओ ।	४२१
१७६	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियडुं ।	"	१८९	असंजदसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
१७७	सासणसम्मादिद्विप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो ।	४१७	१९०	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
१७८	ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	"	१९१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४२२
१७९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४१८	१९२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
१८०	उक्कस्सेण वावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि ।	"	१९३	सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४२३
१८१	सासणसम्मादिद्विप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो ।	"	१९४	उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ।	४२४
१८२	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	४१९	१९५	एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ।	"
१८३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं तिसमऊणं ।	"	१९६	वेउच्चियकायजोगीसु मिच्छादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	४२५
१८४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	१९७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ।	"
१८५	सासणसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४२०	१९८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
१८६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	१९९	सासणसम्मादिद्वी ओधं ।	४२६
			२००	सम्माभिच्छादिद्वीणं मणजोगिभंगो ।	"
			२०१	वेउच्चियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	केवचिरं कालादो ह्येति, णाणा- जीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।		२१६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४३३
२०२	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	४२६	२१७	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छा- दिट्ठी केवचिरं कालादो ह्येति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४३३
२०३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	४२७	२१८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	४३४
२०४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४२८	२१९	उक्कस्सेण तिण्णि समयया ।	४३४
२०५	सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो ह्येति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४२९	२२०	सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मा- दिट्ठी केवचिरं कालादो ह्येति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	४३५
२०६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	४३०	२२१	उक्कस्सेण आवलियाए असंखे- ज्जदिभागो ।	४३५
२०७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं	४३०	२२२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	४३६
२०८	उक्कस्सेण छ आवलियाओ सम- ऊणाओ ।	४३०	२२३	उक्कस्सेण वे समयं ।	४३६
२०९	आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो ह्येति, णाणा- जीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४३१	२२४	सजोगिकेवली केवचिरं कालादो ह्येति, णाणाजीवं पडुच्च जह- ण्णेण तिण्णि समयं ।	४३६
२१०	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४३१	२२५	उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ।	४३६
२११	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	४३२	२२६	एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णि समयं ।	४३६
२१२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४३२	२२७	वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु मिच्छा- दिट्ठी केवचिरं कालादो ह्येति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४३७
२१३	आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्त- संजदा केवचिरं कालादो ह्येति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	४३३	२२८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	४३७
२१४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४३३	२२९	उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं ।	४३७
२१५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	४३३	२३०	सासणसम्मादिट्ठी ओधं ।	४३८

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२३१	सम्मामिच्छादिद्वी ओषं ।	४३८	२४६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	४४३
२३२	असंजदसम्मामिच्छा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	२४७	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ।	"
२३३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	२४८	संजदासंजदप्पहुडि जाव अणि- यट्ठि त्ति ओषं ।	"
२३४	उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि ।	४३९	२४९	अपगदवेदएसु अणियट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओषं ।	४४४
२३५	संजदासंजदप्पहुडि जाव अणि- यट्ठि त्ति ओषं ।	"	२५०	कसायाणुवादेण कोधकसाइ- माणकसाइ-मायकसाइ-लोभ- कसाईसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति मणजोगि- भंगो ।	"
२३६	पुरिसवेदएसु मिच्छादिद्वी केव- चिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४४०	२५१	दोण्णि तिण्णि उवसमा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४४६
२३७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	२५२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
२३८	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ।	४४१	२५३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	"
२३९	सासणसम्मामिच्छिप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति ओषं ।	"	२५४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४४७
२४०	णवुंसयवेदेषु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	२५५	दोण्णि तिण्णि खवा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
२४१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	४४२	२५६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४४८
२४२	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- पोगगलपरियट्ठं ।	"	२५७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"
२४३	सासणसम्मामिच्छादिद्वी ओषं ।	"	२५८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
२४४	सम्मामिच्छादिद्वी ओषं ।	"	२५९	अकसाईसु चदुट्ठाणी ओषं ।	"
२४५	असंजदसम्मामिच्छा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	२६०	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुद- अण्णाणीसु मिच्छादिद्वी ओषं ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२६१	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	४४९	२७३	जहाकखादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं ।	४५३
२६२	विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी केव- चिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	२७४	संजदासंजदा ओघं ।	"
२६३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	२७५	असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि ति ओघं ।	"
२६४	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ।	"	२७६	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"
२६५	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	४५०	२७७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	४५४
२६६	आभिणिब्रोहियणाणि-सुदणाणि- ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठि- प्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग- छदुमत्था ति ओघं ।	"	२७८	उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि ।	"
२६७	मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजद- प्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग- छदुमत्था ति ओघं ।	४५१	२७९	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ति ओघं ।	"
२६८	केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओघं ।	"	२८०	अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठि- प्पहुडि जाव खीणकसायवीद- रागछदुमत्था ति ओघं ।	४५५
२६९	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्त- संजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघं ।	"	२८१	ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ।	"
२७०	सामाइय च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंज- देसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओघं ।	४५२	२८२	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।	"
२७१	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्प- मत्तसंजदा ओघं ।	"	२८३	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय- णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मि- च्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"
२७२	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहु- मसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा ओघं ।	"	२८४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"
			२८५	उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि सादिरैयाणि ।	४५७
			२८६	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	४५८

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२८७	सम्मामिच्छादिद्वी ओषं ।	४५९	२०२	सासणसम्मादिद्वी ओषं ।	४७२
२८८	असंजदसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	२०३	सम्मामिच्छादिद्वी ओषं ।	४७३
२८९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	२०४	असंजदसम्मादिद्वी ओषं ।	"
२९०	उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसुणाणि ।	४६०	२०५	संजदासंजदा पमत्त-अप्पमत्त- संजदा केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"
२९१	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मि- च्छादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होति, णाणा- जीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४६२	२०६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	४७४
२९२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	२०७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४७५
२९३	उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरो- वमाणि सादिरेयाणि ।	४६३	२०८	चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा सजोगिकेवली ओषं ।	४७६
२९४	सासणसम्मादिद्वी ओषं ।	४६५	२०९	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"
२९५	सम्मामिच्छादिद्वी ओषं ।	"	२१०	एगजीवं पडुच्च अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्ज- वसिदो ।	"
२९६	संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्त- संजदा केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४६६	२११	जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिदेसो ।	४७८
२९७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	२१२	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४७९
२९८	उक्कस्समंतोमुहुत्तं ।	४७१	२१३	उक्कस्सेण अट्टपोग्गलपरियट्ठं देसुणं ।	"
२९९	सुककलेस्सिएसु मिच्छादिद्वी केव- चिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	२१४	सासणसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओषं ।	४८०
३००	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	४७२	२१५	अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"
३०१	उक्कस्सेण एककत्तीसं सागरो- वमाणि सादिरेयाणि ।	"	२१६	एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३१७	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्मादिट्ठीसु असंजद-सम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि-केवलि त्ति ओघं ।	४८१	३२०	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छा-दिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	४८५
३१८	वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मा-दिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं ।	"	३२१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
३१९	उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजद-सम्मादिट्ठी संजदासंजदा केव-चिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४८२	३२२	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं	"
३२०	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे-ज्जदिभागो ।	"	३२३	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागळदुमत्था त्ति ओघं ।	"
३२१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	४८३	३२४	असण्णी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	४८६
३२२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३२५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा-भवग्गहणं ।	"
३२३	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंत-कसायवीदरागळदुमत्था त्ति केव-चिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	"	३२६	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-पोग्गलपरियट्ठं ।	"
३२४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४८४	३२७	आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	"
३२५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समयं ।	"	३२८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	४८७
३२६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३२९	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखे-ज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणी ।	"
३२७	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	"	३३०	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोभिकेवलि त्ति ओघं ।	"
३२८	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	"	३३१	अणाहारएसु कम्मइयकायजोगि-भंगो ।	"
३२९	मिच्छादिट्ठी ओघं ।	"	३३२	अजोगिकेवली ओघं ।	४८८

२ अवतरण-गाथा-सूची

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहाँ	क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहाँ
४२	अतिथि अणंता जीवा	४७७	गो. जी. १९७	३	छावट्टिं च सहस्सं णव-	१५२	अभिधा. रा. वन्द्रशब्दे
१	अपमयणिवारणट्टं	२		२८	जह गेण्हइ परियट्टं पुरि-	३३४	
४	आगासं सपदेसं तु	७	अभिधा. रा. उद्धृत.	९	णत्थि चिरं वा खिणं	३१७	पंचा. गा. २६.
३६	आवलिय अणागारे	३९१	कसायपाहुडे अद्दाप.	३	ण य परिणमइ सयं सो	३१५	गो. जी. ५७०
७	इट्टसलागाखुत्तो चत्तारि	२०१		३३	ण य मरइ णेव संजम-	३४९	
१०	उच्छासानां सहस्राणि	३१८		२	णामं ठवणा द्वियं ति	३	स. त. १, ६.
२९	उप्पजंति वियंति य भावा	३३७	स. त. १, ११.	२५	णिरआउआ जहण्णा	३३३	स. सि. १, १०. गो. जी. टीका. ५६.
३१	उवसमसम्मत्तद्धा	२४१		३५	तिणिण सया छत्तीसा	३९०	गो. जी. १२३.
३२	उवसमसम्मत्तद्धा जह	३४२		४१	दो हो य तिणिण तेऊ	४७५	
१९	पयक्खेतोगाढं सव्व-	३२७	गो. क. १८५.	१७	नन्दा भद्रा जया रिक्ता	३१९	
४०	एक्कारस छ सत्त य	४१५		११	निमेपणां सहस्राणि	३१८	
१४	एक्कारसयं तिसु हेट्टिमेसु	२३६		१८	पणुवीसं अमुराणं	७९	त्रि. सा. २४९.
३४	एकं तिय सत्त दस तह	३६१		१२	पण्णासं तु सहस्सा	२३५	
४३	पयणिगोदसरीरे जीवा	४७८	गो. जी. १९६.	२७	परियट्टिदाणि बहुसो	३३४	गो. जी. जी. प्र. ५६० (संस्कृत-च्छाया)
२४	ओसप्पिणि-उस्सप्पिणी	३३३	स. सि. २, १०. गो. जी. ५६०. टीका.	५	पहो सायर सूई पदरो य	१०	ति. प. १, ९३. त्रि. सा. ९२.
१	कालो त्ति य वयएसो	३१५	पंचा. गा. २४.	६	पंचत्थिया य छर्जाव-	३१६	मूलाचा. ३९९
२	कालो परिणामभवो	३१५	पंचा. गा. १०८	११	वम्हे कणे वम्होत्तरे य	२३५	
३७	केवलदंसण-णाणे कसा-	३९१	कसायपाहुडे अद्दाप.	५	बाहिरसूईवग्गो अब्भं-	१९५	ति. प. ५, ३६. त्रि. सा. ३१६. (अर्धसमता)
३	खेत्तं खलु आगासं	७		१६	वीजे जोणीभूदे जीवो	२५१	गो. जी. १९०.
२१	गहणसमयम्हि जीवो	३३२		३८	माणद्धा कोधद्धा मायद्धा	३९१	कसायपाहुडे अद्दाप.
३९	गुणजोगपरावत्ती वाघा-	४११		९	मुह-तलसमास-अद्धं	२०	ति. प. १, १६५. जं. प. ११, १०८
१५	गेवज्जाणुवरिमया णव-	२३६		१६		५१	
२	चंदाइच्च-गहेहिं चेषं	१५१					
१३	छच्चेव सहस्साइं सयार-	२३६					
५	छप्पंचणवविहाणं अत्था-	३१५	गो. जी. ५६०.				

४ ग्रन्थोल्लेख

पृष्ठ

१ अप्पाबहुगसुत्त

१. तस्सरासिमस्सिदूण वुत्तबंधप्पाबहुगसुत्तादो णज्जदे ।

१३२

२ करणाणिओगसुत्त

१. ण च सत्तरज्जुवाहल्लं करणाणिओगसुत्तविरुद्धं, तस्स तत्थ विधिप्पडि-
सेधाभावादो ।

३ कालसुत्त

१. 'वे सत्त दस चोदस सोलसट्ठारस य वीस वावीसा' एदीए गाहाए सह
एदस्स सुत्तस्स किण्ण विरोहो होदि ? ण होदि विरोहो, भिण्णविसयत्तादो । तं
जहा- वुत्तं सुत्तं बंधप्पडिबद्धं । कालसुत्तं पुण संतमवेक्खिय द्विदमिदि ।

२८४

४ खुदाबंधसुत्त

१. कदजुम्भेहि पंचिदियतिरिक्ख-पज्जत्त-जोणिभिजोदिसिय-वेतरदेव-अव-
हारकालेहि खुदाबंधसुत्तसिद्धेहि अकदजुम्मजगपदरे भागे हिदे एदाओ रासीओ
सल्लेधाओ होज्ज ? ण च एवं, जीवाणं छेदाभावा ।

१८४

२. खुदाबंधम्मि उववादपरिणयसासणाणमेक्कारहचोदसभागपोसणपरुवय-
सुत्तादो च णव्वदे ।

२०६

५ खेत्ताणिओगहार

१. एदेसिं चेष खेत्ताणिओगहारोघग्ग्हि उत्तपरुवणाए तुल्ला ।

२४५

६ गाहासुत्त (कसायपाहुड)

१. ' आवलिय अणागारे '... (३६-३८) इदि गाहासुत्तादो (कसायपाहुड)

३९१

७ जीवट्ठाण

१. जीवट्ठाणादिसु दव्वकालो ण वुत्तो ित्ति तस्साभावो ण वोत्तुं सक्किज्जदे,
एत्थ छद्ववपदुप्पायणे अद्वियाराभावा ।

३१६

८ जीवसमास

१ जीवसमासाए वि उत्तं—' छप्पंचणवविहाणं.....

३१५

९ गिरयाउबंधसुत्त

१. ' एक्कं तिय सत्त दस '.....इदि गिरयाउबंधसुत्तादो ।

३६९

१० तच्चत्थसुत्त (तत्रार्थसूत्र)

१. तह गिद्धपिंछाहरियप्पयासिदत्तच्चत्थसुत्ते वि' वर्त्तनापरिणामक्रिया परत्वा-
परत्वे च कालस्य ' इदि दव्वकालो परूविदो ।

३१६

११ तिलोयपण्णत्ती

१. एसा तप्पाओग्गसंखेज्जरूवाहियजंबूदीवळेदणयसहिददीवसायररूवमेत्त-
रज्जुच्छेदपमाणपरिक्खाविही ण अण्णाहरिओव्वेसपरंपराणुसारिणी, केवलं
तु तिलोयपण्णत्तिसुत्ताणुसारिजोदिसियदेवभागहारपदुप्पाइयसुत्तावलंबिजुत्तिवलेण
पयदगच्छसाहणट्टमग्गेहि परूविदा, प्रतिनियतसूत्रावष्टम्भवलविजृम्भितगुणप्रतिपन्न-
प्रतिबद्धासंख्येयावलिक्कावहारकालोपदेशवत् आयतचतुरस्रलोकसंस्थानोपदेशवद्वा ।

१५७

१२ दव्वाणिओगहार

१. किं च दव्वाणियोगहारवक्खाणमिह वुत्तद्वेद्विम-उवरिमवियप्पा अभावमुव-
हुक्कंते, अवग्गसमुट्ठिदलोगत्तादो ।

२. दव्वाणिओगहारे वि तत्थ एगगुणट्ठाणदव्वस्स पमाणपरूवणादो च । १६२-६३

१३ परियम्म

१. जत्तियाणि दीवसागररूवाणि जंबूदीवळेदणाणि च रूवाहियाणि तत्तियाणि
रज्जुच्छेदणाणि त्ति परियम्मेण एदं वक्खाणं किण्ण विरुज्झदि ? एदेण सह विरुज्झदि,
किंतु सुत्तेण सह ण विरुज्झदि । तेणेदस्स वक्खाणस्स गहणं कायव्वं, ण परियम्मस्स;
तस्स सुत्तविरुद्धत्तादो । ण सुत्तविरुद्धं वक्खाणं होदि, अइप्पसंगादो ।

१५६

२. रज्जु सत्तगुणिदा जगसेदी, सा वग्गिदा जगपदरं, सेदीए गुणिदजगपदरं
अणलोगो होदि त्ति परियम्मसुत्तेण सव्वाहरियसम्मदेण विरोहप्पसंगादो ।

१८४

३. के वि आहरिया कम्मट्ठिदीदो बादरट्ठिदी परियम्मे उप्पण्णा त्ति कज्जे
कारणोवयारमवलंबिय वादरट्ठिदीए चेय कम्मट्ठिदिसण्णमिच्छंति, तन्न घटते ।

४०३

४. कम्मट्ठिदिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे बादरट्ठिदी जादा त्ति
परियम्मवयणेण सह एदं सुत्तं विरुज्झदि त्ति णेदस्स ओक्खत्तं, सुत्ताणुसारि परियम्म-
वयणं ण होदि त्ति तस्सेव ओक्खत्तप्पसंगा ।

३९०

१४ पंचत्थिपाहुड

१. वुत्तं च पंचत्थिपाहुडे—' कालो त्ति य ववपत्तो ' इत्यादि १०४ गाथा. ३१५

२. वुत्तं च पंचत्थिपाहुडे अवहारकालस्स अत्थित्तं— सव्भावसहावाणं.....

७०९ गाथा.

३१७

१५ वग्गणसुत्त

१. अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवाहल्लतिरियपद्दमिह सेढीए असंखेज्जदि-
भागमेत्तओगाहणवियप्पेहि गुणिदे तत्थ जत्तिओ रासी तत्तियमेत्ताओ गिरयगइपा-
ओग्गणुपुञ्जीए पयडीओ.....त्ति वग्गणसुत्तादो । १७५-१७६

२. महामच्छोगाहणमिह एगबंधणबद्धल्लज्जीवणिकायाणमत्थित्तं कर्ध णव्वदे ?
वग्गणमिह उत्तअप्पाबहुगादो । २१५

१६ वेदणाखेत्तविधाण

१. ' एगजीवस्स जहण्णोगाहणा वि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता ' त्ति
वेदणाखेत्तविधाणे परूविदत्तादो ।

२. पत्तेयसरिरपज्जत्तजहण्णोगाहणादो बीइंदियपज्जत्तजहण्णोगाहणा असं-
खेज्जगुणा त्ति कुदो णव्वदे ? वेदणाखेत्तविहाणमिह वुत्तओगाहणदंडयादो । २४

१७ संताणिओगहार

१. जदि सासणा एइंदिएसु उप्पज्जंति, तो तत्थ दो गुणट्ठाणाणि ह्यंति ! ण
अ एयं, संताणिओगहारे तत्थ एकमिच्छादिट्ठिगुणप्पदुप्पायणादो ।

२. एदं पि वक्खाणं संत दव्वसुत्तविरुद्धं ति ण धेत्तव्वं । १५६

५ पारिभाषिक शब्दसूची

सूचना—यहां शब्दोंके केवल उन्हीं पृष्ठोंका उल्लेख किया गया है जहां उनके विषयमें कुछ
विशेष कहा गया पाया जाता है ।

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अ		अज्ञान	४७६
अकर्मभाव	३२७	अणुव्रत	३७८
अकृतयुग्मजगप्रतर	१८५	अतिप्रसंग	२३, २०८
अकृत्रिम	११, ४७६	अतीतकालविशेषितक्षेत्र	१४५
अक्षयराशि	३३९	अतीतानागतवर्तमान--	
अगृहीतग्रहणाद्धा	३२७, ३२९	कालविशिष्टक्षेत्र	१४८
अचित्तद्रव्यस्पर्शन	१४३	अतीन्द्रिय	१५८
अच्युतकल्प	१६५, १७०, २३६	अर्थ	२००
	२६२, २०८	अर्थपद	१८७

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अद्धा	३२८	अपनयनध्रुवराशि	२०१
अर्धतृतीयक्षेत्र	३७, १६९	अपनयनराशि	२००
अर्धतृतीयद्वीपसमुद्र	२१४	अपर्याप्त	९१
अधोलोक	९, २५६	अपराजित	३८६
अधोलोकक्षेत्रफल	१६	अपरीतसंसार	३३५
अधोलोकप्रमाण	३२, ४१, ५०	अपवर्तना	३८, ४१, ४३, ४७, १०३, १२६, १३०
अधःप्रवृत्तकरण	३३५, ३५७	अपवर्तनाप्रात	४६३
अधःप्रवृत्तविशोधि	३३६	अर्पित	३९३, ३९८
अधस्तनविकल्प	१८५	अपूर्वकरण	३३५, ३५७
अन्तरकाल	१७९	अपूर्वकरणक्षपक	३३६
अन्तर्मुहूर्त	३२४, ३८०	अपूर्वकरणगुणस्थान	३५३
अनन्त	३३८	अप्रशस्ततैजसशरीर	२८
अनन्तकाल	३२८	अभिजित्	३१८
अनन्तव्यपदेश	४७८	अभिव्यक्तिजनन	३२२
अनन्तानुबन्धी	३३६	अभेद्	१४४
अनर्पित	३९३, ३९८	अमूर्त	१४४
अनवस्था	३२०	अयन	३१७, ३९५
अनवस्थाप्रसंग	१६३	अयोगी	३३६
अनाकारोपयोग	३९१	अर्यमन्	३१८
अनादि	४३६	अरुण	३१९
अनादिमिथ्यादृष्टि	३३५	अलोकाकाश	९, २२
अनाहारक	४८७	अल्पबहुत्व	२५
अनिवृत्तिकरण	३३५, ३५७	अवक्षिप्तप्रसंग	३९०
अनिवृत्तिक्षपक	३३६	अवर्गसमुत्थितलोक	१८५
अनुकृष्टि	३५५	अवगाहनलक्षण	८
अनुगम	९, ३२२	अवगाहना	२५, ३०, ४५
अनुत्तरविमान	२३६, ३८६	अवगाहनागुणकार	४४, ९८
अनुदिशविमान	८१, २३६, २४०, ३८६	अवगाहनाविकल्प	१७६
अनुसंचिताद्धा	३७६	अवगाह्यमान	२३
अन्योन्याभ्यस्त	१५९, १९६, २०२	अवधिक्षेत्र	३८, ७९
अपकर्षण	३३२	अवबोध	३२२
अपक्रमणोपक्रमण	२६५	अवहारकाल	१५७, १८५
अपक्रमणनियम	१७९		

(३२)

परिशिष्ट

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अवसन्नासन्न	२३	आयतचतुरस्रक्षेत्र	१३
अवसर्पिणी	३८९	आयतचतुरस्रलोकसंस्थान	१५७
अविभागप्रतिच्छेद	१५	आयाम	१३, १६५, १८१
अविसंवाद	१५८	आरण	१६५, १७०, २३६
अष्टमपृथिवी	९०, १६४	आवलिका	४३
अष्टाविंशतिसत्कर्मिक- ३४९, ३५९, ३६२, ३६६, मिथ्यादृष्टि ३७०, ३७५, ३७७, ४३९	४४३, ४६१	आवली	३१७, ३४०, ३९१
असद्भावस्थापनाकाल	३१४	आवास	७८
असंयम	४७७	आहारकसमुद्घात	२८
असंयमबहुलता	२८	आहारवर्गणा	३३२
असंयतसम्यग्दृष्टि	३५८	आहारशरीर	४५
असंख्येयराशि	३३८	इच्छाराशि	५७, ७१, १९९, ३४१
आ		इन्द्र	३१९
आकाश	८, ३१९	इन्द्रक	१७४, २३४
आकाशप्रदेश	१७६		
आगमद्रव्यकाल	३१४	ईशान	२३५
आगमद्रव्यक्षेत्र	५	ईषत्प्राग्भारपृथिवी	१६२
आगमद्रव्यस्पर्शन	१४२		
आगमभावकाल	३१६	उ	
आगमभावक्षेत्र	७	उच्छ्रेणी	८०
आगमभावस्पर्शन	१४४	उत्तानशय्या	३७८
आज्ञाकनिष्ठता	२८	उत्पत्तिक्षेत्र	१७९
आदित्य	१५०	उत्पत्तिक्षेत्रसमानक्षेत्रान्तर	१७९
आदेश	१०, १४३, ३२२	उत्पाद	३३६
आदेशनिर्देश	१४५, ३२२	उत्तरकुरु	३६५
आधार	८	उत्तराभिमुखकेवली	५०
आधेय	८	उत्सर्पिणी	३८९
आनुपूर्वीनामकर्म	३०	उत्सेध	१३, २०, ५७, १८१
आनुपूर्वीप्रायोग्यक्षेत्र	१९१	उत्सेधकृति	२१
आनुपूर्वीविपाकाप्रायोग्यक्षेत्र	१७७	उत्सेधकृतिगुणित	५१
आशधा	३२७	उत्सेधगुणकार	२१०
आयत	११, १७२	उत्सेधयोजन	३४

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
उत्सेधांगुल	२४, १६०, १८५	ऋजुवलन	१८०
उत्सेधांगुलप्रमाण	४०	ऋतु	३१७, ३९५
उदयादिनिषेक	३२७		
उद्धर्तन	३८३	ए	
उद्वेध	१७	एकक्षेत्रावगाढ	३२७
उपक्रमणकाल	७१, १२९	एकत्ववितर्कअबीचारशुद्ध्यान	३९१
उपक्रमणकालगुणकार	८५	एकदंड	२२६
उपपाद्	२६, १६६, २०५	एकनारकावासविष्कम्भ	१८०
उपचार	२०४, ३३९	ऐ	
उपपादकाल	३२२	ऐरावत	४५
उपपादक्षेत्र	८५		
उपपादक्षेत्रप्रमाण	१६५	ओ	
उपपादक्षेत्रायाम	७९	ओघ	९, १४४, ३२२
उपपादभवनसम्मुखवृत्तक्षेत्र	१७२	ओघनिर्देश	१४५, ३२२
उपपादयोग	३३२	ओघप्ररूपणा	२५९
उपपाद्राशि	३१		
उपपादस्पर्शन	१६५	औ	
उपमालोक	१८५	औदारिकशरीर	२४
उपरिमउपरिमग्रैवेयक	८०	औपचारिकनोकर्मद्रव्यक्षेत्र	७
उपरिमाविकल्प	१८५		
उपशमश्रेणी	३५१, ४४७	अं	
उपशमसम्यक्त्वगुण	४४	अंगुल	५७
उपशमसम्यक्त्वाद्वा	४४, ३३९, ३४१, ३४२, ३७४, ४८३	अंगुलगणना	४०
उपशान्तकाल	३५३		
उपशामक	३५२, ४४६	क	
उपार्धपुद्गलपरिवर्तन	३३६	कथन	१४४, ३२२
उश्वास	३९१	कपाटगतकेवली	४९
		कपाटसमुद्घात	२८, ४३६
		करण	३३५
		करणगाथा	२०३
ऊर्ध्वकपाटच्छेदनकनिष्पन्न	१७६	कर्ण	१४
ऊर्ध्वलोक	९, २५६	कर्णक्षेत्र	१५
ऊर्ध्वलोकक्षेत्रफल	१६	कर्णकार	७८
ऊर्ध्वलोकप्रमाण	३२, ४१, ५१	कर्म	२३
ऊर्ध्ववृत्त	१७२	कर्मद्रव्यक्षेत्र	६
		कर्मबन्ध	४७६
ऋजुगति	२६, २९, ८०	कर्मभूमि	१४, १६९

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
कर्मभूमिप्रतिभाग	२१४	क्रोधाद्धा	३९१
कर्मपुद्गल	३३२	कांडक	४३५
कर्मपुद्गलपरिवर्तन	३२२, ३२५	कांडर्जुगति	७८, २१९
कर्मास्त्रव	४७७	कुंडलपर्वत	१९३
कर्मस्थिति	३९०, ४०२, ४०७	क्षण	३१७
कर्मस्थितिकाल	३२२	क्षपक	३५४, ४४७
कल्प	३२०	क्षपकश्रेणी	३३५, ४४७
कल्पवासिदेव	२३८	क्षपकश्रेणीप्रायोग्यविशोधि	३४७
कपाय	३९१	क्षायिकसम्यग्दृष्टि	३५७
कपायसमुद्घात	२६, १६६	क्षीणकषाय	३३६, ३५६
कापिष्ठ	२३५	क्षुद्रभव	३९०
कार्मणवर्गणा	३३२	क्षुद्रभवग्रहण	३७१, ३७९, ३८८, ३९१, ४०१, ४०६
कार्मणशरीर	२४, १६५	क्षेत्र	६, २३१
काययोग	३९१	क्षेत्रपरिवर्तन	३२५
कायस्थितिकाल	२३२	क्षेत्रपरिवर्तनकाल	३३४
कायोत्सर्ग	५०	क्षेत्रपरिवर्तनवार	"
काल	३१८, ३२१	क्षेत्रफल	१८०
कालपरिवर्तन	३२५	क्षेत्रफलशलाका	१९५
कालपरिवर्तनकाल	३३४	क्षेत्रफलसंकलना	२००
कालपरिवर्तनवार	३३४	क्षेत्रसंसार	३३३
कालसंसार	३३३	क्षेत्रस्पर्शन	१४१
कालस्पर्शन	१४१	क्षेत्रानुगम	२
कालाणु	३१५		
कालानुगम	३१३, ३२२		
कालोदकसमुद्र	१५०, १९४, १९५	ख	
काष्ठा	३१७	खातफल	१२, १८१, १८६
कुलशैल	१९३, २१८		
कृतयुग्म	१८४	ग	
कृति	२३२	गगन	८
कृष्टीकरण	३९१	गच्छ	१५३, २०१
कृष्णादिमिथ्यात्वकाल	३२४	गच्छराशि	१५४
केवलज्ञान	३९१	गच्छसमीकरण	१५३
केवलदर्शन	३९१	गणित	३५, २०९
केवलिसमुद्घात	२८	गर्भोपक्रान्त	१६३
कोटाकोटी	१५२	गुण	२००
कोटी	१४	गुणकार	७६
क्रोधकषायाद्धा	४४४	गुणकारशलाका	१९६

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
गुणकारशलाकासंकलना	२०१	छ	
गुणपरावृत्ति	४०९, ४७०, ४७१	छिन्नायुष्ककाल	१६३
गुणस्थितिकाल	३२२	ज	
गुणान्तरसंक्रमण	३२५	जगप्रतर	१८, ५२, १५०, १५१, १५५, १६९, १८०, १८४, १९९, २०९, २०२, २३३
गुह्यकाचरित	८	जगध्रेणी	१०, १८, १८४
गृहीतग्रहणाद्धा	३२८	जघन्यावगाहना	२२, ३३
गृहीतग्रहणाद्धाशलाका	३२९	जम्बूद्वीप	१५०
गोमूत्रकगति	२९	जम्बूद्वीपक्षेत्र	१९४
गोमिहक्षेत्र	३४	जम्बूद्वीपच्छेदनक	१५५
गौणभाव	१४५	जम्बूद्वीपशलाका	१९६
ग्रह	१५१	जयन्त	३८६
त्रैवेयक	२३६	जया	३१९
		जाति	१६३
	घ	जिह्वेन्द्रिय	३९१
घनफल	२०	जीवसमास	३१
घनरज्जु	१४६	ज्योतिष्कजीवराशि	१५५
घनलोक	१८, १८४, २५६	ज्योतिष्कस्वस्थानक्षेत्र	१६०
घनलोकप्रमाण	५०	ज्योतिष्कसासादनसम्यग्दृष्टि- स्वस्थानक्षेत्र	१५०
घनांगुल	१०, ४३, ४४, ४५, १७८		
घनांगुलगुणकार	३३	झ	
घनांगुणप्रमाण	,,	झलरीसंस्थान	११, २१
घनांगुलभागहार	९८		
घातक्षुद्रभवग्रहण	३९२	त	
घ्राणेन्द्रिय	३९१	तद्भवसामान्य	३
		तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्य	३१५
	च	तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यस्पर्शन	१४२
चक्षुरिन्द्रिय	३९१	तलबाह्व्य	१३
चतुर्थपृथिवी	८९	तारा	१५१
चतुर्थसमुद्रक्षेत्र	१९८	तालप्रमाण	४०
चतुर्वंशगुणस्थाननिबद्ध	१४८	तालवृक्षसंस्थान	११, २१
चतुरस्र	१७८	तिथि	३१९
चन्द्र	१५०, ३१९	तिर्यक्क्षेत्र	३६
चन्द्रबिम्बशलाका	१५९		
चित्रा	२१७		
चित्राउपरिमतल	२३९		

(३८)

परिशिष्ट

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
प्रतरसमुद्घात	२९, ४३६	ब्रह्मोत्तर	२३५
प्रतराकार	२०४		
प्रतरावली	३८९	भ	
प्रतरांगुल	१०, ४३, ४४, १५१, १६०, १७२	भद्रा	३१९
प्रतरांगुलभागहार	९८	भरत	४५
प्रतिभाग	८२	भवनवासिउपपादक्षेत्र	८०
प्रत्यक्ष	३३९	भवनवासिक्षेत्र	७८
प्रथमपृथिवी	८८	भवनवासिजगप्रणधि	"
प्रथमपृथिवीस्वस्थानक्षेत्र	१८२	भवनवासिजगमूल	१६४
प्रत्यवस्थान	"	भवनवासिप्रायोग्यानुपूर्वी	२३०
प्रत्यासत्ति	३७७	भवनवासी	१६२
प्रत्यासन्नविपाकानुपूर्वीफल	१७५	भवनविमान	"
प्रधानभाव	१४५	भवपरिवर्तन	३२५
प्रभापटल	८०	भवपरिवर्तनकाल	३३४
प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्तसहस्र	३४७	भवपरिवर्तनवार	"
प्रमाण	३९६	भवस्थिति	३३३, ३९८
प्रमाणघनांगुल	३५	भवस्थितिकाल	३२२, ३९९
प्रमाणलोक	१८	भव्यत्व	४८०
प्रमाणराशि	७१, ३४१	भव्यद्रव्यस्पर्शन	१४२
प्रमाणवाक्य	१४५	भव्यनोभागमद्रव्यकाल	३१४
प्रमाणांगुल	४८, १६०, १८५	भव्यराशि	३३९
प्रमेयत्व	१४४	भागहार	७१
प्रवेध	१९१	भानु	३१९
प्रशस्ततैजसशरीर	२८	भार्ग्य	३१८
प्रस्तार	५७	भावकाल	३१३
		भावक्षेत्र	३
फलराशि	५७, ७१, ३४१	भावक्षेत्रागम	६
		भावपरिवर्तन	३२५
बल	३१८	भावपरिवर्तनकाल	३३४
बद्धायुष्कघात	३८३	भावपरिवर्तनवार	"
बद्धायुष्कमनुष्यसम्यग्दृष्टि	६९	भावसंसार	"
बादरनिगोदप्रतिष्ठित	२५१	भावस्थितिकाल	३२२
बादरस्थिति	३९०, ४०३	भावस्पर्शन	१४१
बाहल्य	१२, ३५, १७२	भुज	१४
बाह्यपंक्ति	१५१	भूत	२३२
बंधावली	३३२	भूमि	८
ब्रह्म	२३५	भेद	१४४

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
भेदप्ररूपणा	२५९	मिश्रद्रव्यस्पर्शन	१४३
भोगभूमि	२०९	मुक्तमारणान्तिक	१७५, २३०
भोगभूमिप्रतिभाग	१६८	मुक्तमारणान्तिकराशि	७६
भोगभूमिप्रतिभागद्वीप	२११	मुख	१४६
भोगभूमिसंस्थानसंस्थित	१८९	मुखप्रतरांगुल	४८
भंग	३३६, ४११	मुखविस्तार	१३
भंगप्ररूपणा	४७५	मुहूर्त	३१७, ३९०
भ्रमरक्षेत्र	३३	मूल	१४६
		मूलाग्रसमास	३३
		मृदंगक्षेत्र	५१
मध्यमक्षेत्रफल	१३	मृदंगमुखसंदप्रमाण	"
मध्यमगुणकार	४१	मृदंगसंस्थान	२२
मध्यमप्रतिपत्ति	३४०	मृदंगाकार	११, १२
मध्यमविस्तार	११	मेरु	१९३
मध्यलोक	९	मेरुतल	२०४
मनुष्यगतिप्रयोग्यानुपूर्वी	१७६	मेरुपर्वत	२१८
मनुष्यलोकप्रमाण	४२	मेरुमूल	२०५
मनोयोग	३९१	मैत्र	३१८
मरण	४०९, ४७०, ४७१	मंदरमूल	८३
महामत्स्यक्षेत्र	३६		
महामत्स्यक्षेत्रस्थान	६६		
महाशुक्र	२३५	यम	३१९
मागधप्रस्थ	३२०	यादृच्छिकप्रसंग	१८
मानाद्धा	३९१	युग	३१७
मानुषक्षेत्र	१७०	योग	४७७
मानुषक्षेत्रव्यपदेशान्यथानुपपत्ति	१७१	योगनिरोध	३५६
मानुषोत्तरपर्वत	१९३	योगपरावृत्ति	४०९
मानुषोत्तरशैल	१५०, २१६	योग्य	३१९
मायाद्धा	३९१		
मारणान्तिककाल	४३	रज्जु	११, १३, १६५, १६७
मारणान्तिकक्षेत्रायाम	६६	रज्जुच्छेदनक	१५५
मारणान्तिकराशि	८५	रज्जुप्रतर	१५०, १६४
मारणान्तिकसमुद्धात	२६, १६६	रत्नि	४५
मास	३१७, ३९५	राक्षस	२३२
माहेन्द्र	२३५	रिक्ता	३१९
मिथ्यात्व	३३६, ३५८, ४७७	रत्नकपर्वत	१९३
मिथ्यात्वादिकारण	२४	रूप	२००
मिश्रग्रहणाद्धा	२२९, ३२८	रूपप्रक्षेप	१५०

म

य

र

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
रूपोनावलिका	४३	विशोभ	३१९
रोहण	३१८	विगूर्वणादिऋद्धिप्राप्त	१७०
रौद्र	,,	विगूर्वमानएकेन्द्रियराशि	८२
रुद्र	१९	विग्रह	६४, १७५
		विग्रहगति	२६, ३०, ४३, ८०
लब्धिसम्पन्नमुनिविरं	११७	विग्रहगतिनामकर्म	४३४
लयसत्तम	३५३	विजय	३१८, ३८६
लव	३१७	विदिशा	२२६
लवणसमुद्र	१५०, १९४	विदेह	४५
लवणसमुद्रक्षेत्रफल	१९५, १९८	विदेहसंयतराशि	,,
लान्तव	२३५	विनाश	३३६
लांगलिकगति	२९	विन्यासक्रम	७६
लेख्यापरावृत्ति	४७०, ४७१	विमान	१७०
लोक	९, १०	विमानतल	१६५
लोकनाली	२०, ८३, १४८, १६४	विमानशिखर	२२७
		विरलन	२०१
लोकपूरणसमुद्धात	२९, ४३६	विरह	३९०
लोकप्रतर	१०	विशेष	१४५
लोकप्रमाण	१४६, १४७	विष्कम्भ	११, ४५, १४७
लोकाकाश	९	विष्कम्भचतुर्भाग	२०९
लोकालोकविभाग	२२	विष्कम्भवर्गगुणितरज्जु	८५
लोभाद्धा	३९१	विष्कम्भवर्गदशगुणकरणी	२०९
		विष्कम्भसूचीगुणितश्रेणी	८०
		विष्कम्भार्ध	१२
वर्ग	२०, १४६	विसंयोजन	३३६
वर्गण	२००	विस्तार	१६५
वर्गमूल	२०२	विस्त्रसोपचय	२५
वचनयोग	३९१	विहायोगतिनामकर्म	३२
वर्तमानविशिष्टक्षेत्र	१४५	विहारवत्स्वस्थान	२६, ३२, १६६
वर्धनकुमारमिथ्यात्वकाल	३२४	वृत्त	२०९
वर्धितराशि	१५४	वृद्धि	१९, २८
वर्ष	३२०	वेत्रासन	११, २१
वर्षपृथक्त्व	३४८	वेत्रासनसंस्थित	२०
वर्षसहस्र	४१८	वेदनासमुद्धात	२६, ७९, ८७, १८६
वाच्यवाचकशक्ति	२	वेदान्तरसंक्रान्ति	३६९, ३७३
वातवलय	५१	वेध	२०
वायु	३१९	वेलंधर	२३२
वारुण	३१८		

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
वैकियिकसमुद्घात	२६, १६६	सत्त्व	१४४
वैजयन्त	३१९, ३८६	सदुर्कम्बदुबाह	१८७
वैरोचन	३१८	सङ्गावस्थापनाकाल	३१४
वैश्वदेव	"	सप्तमपृथिवी	९०
व्यन्तरदेव	१६१	सप्तमपृथिवीनारक	१६३
व्यन्तरदेवराशि	"	समचतुरस्र	८३
व्यन्तरदेवसासादनसम्यदृष्टि- स्वस्थानक्षेत्र	"	समपरिमंडलसंस्थित	१७२
व्यन्तरावास	१६१, २३१	समय	३१७, ३१८
व्यभिचार	४६, ३२०	समानजातीय	१६३
व्यवहारकाल	३१७	समीकरण	१७८
व्याख्यान	७९, १४४, १६५, ३३१	समीकृत	५१
व्याघात	४०९	समुद्घात	२६
व्यापक	८	समुद्घातकेवलिजीवप्रदेश	४५
व्यास	२२१	समुद्राभ्यन्तरप्रथमपंक्ति	१५१
व्यंजनपर्याय	३३७	सम्प्रदायविरोधाशंका	१५८
		सम्यक्त्व	३५८
		सम्यग्मिथ्यात्व	"
श		सम्यग्मिथ्यादाष्टि	"
शत	२३५	सयोगिकाल	३५७
शतसहस्र	"	सयोगी	३३६
शतार	२३६	सर्वलोकप्रमाण	४२
शलाका	४३५, ४८४	सर्वाकाश	१८
शलाकासंकलना	२००	सर्वार्थसिद्धि	२४०, ३८७
शशिपरिवार	१५२	सर्वार्थसिद्धिविमान	८१
शालभंजिका	१६५	सर्वाद्धा	३६३
शुक	२६५	सहस्र	२३५
शंखक्षेत्र	३५	सहस्रार	२३६
श्रेणी	७६, ८०	सहानवस्थानलक्षणविरोध	२५९, ४१२
श्रेणीबद्ध	१७४, २३४	सागर	१०, १८५
श्वेत	३१८	सागरोपम	१०, १८५, ३१७, ३६०, ३८०, ३८७
श्रोत्रेन्द्रिय	३९१	सागरोपमशतपृथक्त्व	४००, ४४१, ४८५
		सान्तरौपक्रमणवार	३४०
ष		सादृशसामान्य	३
षडंश	१७८	साध्य	३९६
षट्पापक्रमनियम	२१८, २२६	साधन	"
षष्ठपृथिवी	९०	सानत्कुमार	२३५
स			
सचित्तद्रव्यस्पर्शन	१४३		

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
साम्परायिक	३९१	संस्थाननामकर्म	३०
सारभट्ट	३१८	संस्थानविपाकी	१७६
सावित्र	३१९	स्वकप्रत्यय	२३४
सासादनकाल	३५१	स्तूपतल	१६२
सासादनमारणान्तिकक्षेत्रायाम	१६२	स्थापना	३, ३१४
सासादनसम्यक्त्वपृष्ठायत	३२५	स्थापनाकाल	३१३
सिद्ध	४७७, ३३६	स्थापनाक्षेत्र	३
सिद्धसेन	३१९	स्थापनास्पर्शन	१४१
सिद्धार्थ	"	स्थिति	३३६
सुगन्धर्व	"	स्पर्शन	२३२, १४४, १४१
सूक्ष्मक्षपक	३३६	स्पर्शानुगम	१४४
सूचीक्षेत्रफल	१६	स्पर्शानेन्द्रिय	३९१
सूच्यगुल	१०, २०३, २१२	स्वयंप्रभपर्वत	२२१
सूर्पक्षेत्र	१३	स्वयंप्रभपर्वतपरभाग	२१४
सूर्य	३१९, १५०	स्वयंप्रभपर्वतपरभागक्षेत्र	१६८
सौधर्म	२३५	स्वयंप्रभपर्वतोपरिमभाग	२०९
सौधर्मविमानशिखरध्वजदंड	२२९	स्वयंभूरमणसमुद्र	१९४, १५१
सौधर्मादि	१६२	स्वयंभूरमणक्षेत्रफल	१९८
संकलन	१४४, १९९	स्वयंभूरमणसमुद्रविष्कम्भ	१६८
संकलना	१५९	स्वस्थान	२६, ९२, १२१
संश्लेषराशि	३३८	स्वस्थानक्षेत्रमेलापनविधान	१६७
संयतराशि	४६	स्वस्थानस्वस्थान	२६, १६६
संयतासंयतउत्सेध	१६९	स्वस्थानस्वस्थानराशि	३१
संयतासंयतस्वस्थानक्षेत्र	"		ह
संयम	३४३	हस्त	५७
संयमासंयम	३४३, ३५०	हानि	१९
संयोग	१४४	हुताशन	३१९
संघत्सर	३१७, ३९५	हेतुवाद	१५८
संवर्ग	१७	हेमपाषाण	४७८

जैन — हित्य उद्धारक फंड

तथा

कारंजा जैन ग्रंथमालाओंमें

प्रो. हीरालाल जैन द्वारा आधुनिक ढंगसे सुसम्पादित होकर प्रकाशित

जैन साहित्यके अनुपम ग्रंथ

प्रत्येक ग्रंथ सुविस्तृत भूमिका, पाठभेद, टिप्पण व अनुक्रमणिकाओं आदिसे खूब सुगम और उपयोगी बनाया गया है।

१ षट्खंडागम—(धवलसिद्धान्त) हिन्दी अनुवाद सहित—

भाग १, सत्पररूपणा,	पुस्तकाकार १०),	शाखाकार (अप्राप्य)
भाग २, सत्पररूपणालाप,	” १०),	” १२]
भाग ३, द्रव्यप्रमाणानुगम,	” १०),	” १२]
भाग ४, क्षेत्र-स्पर्शन-कालानुगम,	” १०),	” १२]

यह भगवान् महावीर स्वामीकी द्वादशांग वाणीसे सीधा संबन्ध रखनेवाला, अत्यन्त प्राचीन, जैन सिद्धान्तका खूब गहन और विस्तृत विवेचन करनेवाला सर्वोपरि प्रमाण ग्रंथ है। श्रुतपंचमीकी पूजा इसी ग्रंथकी रचनाके उपलक्ष्यमें प्रचलित हुई।

२ यशोधरचरित—पुष्पदंतकृत अपभ्रंश काव्य... .. १]

इसमें यशोधर महाराजका अत्यंत रोचक वर्णन सुन्दर काव्यके रूपमें किया गया है। इसका सम्पादन डा. पी. एल. वैद्य द्वारा हुआ है।

३ नागकुमारचरित—पुष्पदंतकृत अपभ्रंश काव्य... .. १]

इसमें नागकुमारके सुन्दर और शिक्षापूर्ण जीवनचरित्र द्वारा श्रुतपंचमी विधानकी महिमा बतलाई गई है। यह काव्य अत्यंत उत्कृष्ट और रोचक है।

४ करकंडुचरित—मुनि कनकामरकृत अपभ्रंश काव्य... .. १]

इसमें करकंडु महाराजका चरित्र वर्णन किया गया है, जिससे जिनपूजाका माहात्म्य प्रगट होता है। इससे धाराशिवकी जैन-गुफाओं तथा दक्षिणके शिलाहार राजवंशके इतिहास पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है।

५ श्रावकधर्मदोहा—हिन्दी अनुवाद सहित... .. २]]

इसमें श्रावकोंके व्रतों व शीलेंका बड़ा ही सुन्दर उपदेश पाया जाता है। इसकी रचना दोहा छंदमें हुई है। प्रत्येक दोहा काव्यकला-पूर्ण और मनन करने योग्य है।

६ पाण्डुदोहा—हिन्दी अनुवाद सहित... .. २]]

इसमें दोहा छंदद्वारा अध्यात्मरसकी अनुपम गंगा बहाई गई है जो अवगाहन करने योग्य है।